श्रीमद् भगवत्कुन्दकुन्दाचार्य विरचित

रयणसार

पर

सागार अनगार धर्म देशना



देशनाकार

श्रमणाचार्य विशुद्धसागर मुनि

श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्य विरचित

रयणसार

पर

सागार-अनगार धर्म देशना

देशनाकार

आचार्य विशुद्धसागरजी

प्रकाशक

पिय धम्मो

दृढ़ धम्मो

श्रमण संस्कृति सेवा समिति

रयणसार

- ❖ मूलकृति – श्रीमद् भगवत्कुन्दकुन्दाचार्य विरचित ''रयणसार''
- ❖ प्रस्तुत कृति – **''सागार अनगार धर्म देशना''**
  (रयणसार पर वर्ष 2011 में सागर वर्षायोग में किये गये प्रवचनों का संग्रह)
- ❖ देशनाकार – **आचार्य श्री विशुद्धसागर जी महाराज**
- ❖ संकलन – **श्रमण सुव्रतसागर मुनि**
- ❖ प्रस्तुति – इंजी. जिनेन्द्र जैन, पद्मनाभ नगर, भोपाल
  इंजी. दिनेश जैन, रिसाली (भिलाई)
- ❖ प्रस्तुति सहयोग – ब्र. प्रतिष्ठा दीदी, ब्र. किरण दीदी, टीकमगढ़
- ❖ संपादक – प्रो. फूलचंद जैन 'प्रेमी', दिल्ली
  प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश जैन, फिरोजाबाद (उ.प्र.)
- ❖ सह संपादक – प्रो. डॉ. भागचन्द्र जैन, 'भास्कर'
- ❖ संस्करण – प्रथम / सन् 2014 / 5000 प्रतियाँ
  द्वितीय / सन् 2015 / 1100 प्रतियाँ
- ❖ पुण्यार्जक –
  1. जैन बंधु, ललितपुर
  2. श्री पवन कुमार, प्रवीण कुमार, इंजी. अंशु कुमार उमरिया परिवार
     गुरुवर क्लासेस, ललितपुर
  3. श्री सुभाषचन्द्र निशिल कुमार जैन, ललितपुर (उ.प्र.)
  4. श्रीमती अरुणा जैन, श्रीमती सुषमा जैन, लाजपत नगर, दिल्ली-110024
- ❖ सहयोग राशि – 200/- (पुनः प्रकाशन हेतु)
- ❖ प्राप्ति स्थान –
  1. **श्रावक संस्कार साहित्य केन्द्र**, श्री नंदीश्वर द्वीप जिनालय
     श्री 1008 नेमीनाथ दिग. जैन मंदिर, जैन नगर
     लालघाटी, भोपाल (म.प्र.) मो. 09425374897
  2. श्रमण संस्कृति सेवा संघ, इंदौर मो. 09425321151, 09826210189
  3. नमोस्तु शासन संघ, 602/1, लार्ड शिवा पैराडाईज,
     होटल पैराडाईज के सामने, वेगास रेसीडेन्सी के पास,
     बिरला कॉलेज रोड, कल्याण (वेस्ट), मुम्बई (महाराष्ट्र)
     मो. : 09324358036, ई-मेल : namostushasangh@gmail.com
  4. श्री जीवराज ग्रंथमाला, सोलापुर (महा.) मो. 09421040022
- ❖ मुद्रक – विकास ऑफसेट प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स
  45, सेक्टर-एफ, औद्योगिक क्षेत्र, गोविन्दपुरा, भोपाल
  फोन : 0755-2601952, 9425005624

मंगलाचरण

ओंकारं बिन्दुसंयुक्तं, नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव, ओंकाराय नमो नमः ॥1॥

अविरल-शब्दघनौघ-प्रक्षालित-सकलभूतल-कलङ्का।
मुनिभि-रुपासित-तीर्था सरस्वती हरतु नो दुरितम्॥

अज्ञान-तिमिरान्धानां ज्ञानाञ्जन-शलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन, तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥2॥

श्री परमगुरवे नमः परम्पराचार्यगुरवे नमः।
सकलकलुष विध्वंसकं, श्रेयसां परिवर्धकं, धर्मसम्बन्धकं भव्य-जीवमनः प्रतिबोध-कारकं, पुण्यप्रकाशकं, पापप्रणाशकमिदं शास्त्रं श्री रयणसार नामधेयं, अस्य मूलग्रन्थकर्त्तारः श्रीसर्वज्ञदेवास्तदुत्तर ग्रन्थकर्तारः श्रीगणधर-देवाः, प्रतिगणधरदेवास्तेषां वचनानुसारमासाध्य श्री कुन्दकुन्दाचार्येण विरचितं, रयणसारमिदं तस्य सागार-अनगार धर्मदेशना नाम्नी भाषा टीका आचार्य श्री विशुद्धसागरेण विरचितम्।

मङ्गलं भगवान वीरो, मंङ्गलं गौतमो गणी।
मङ्गलं कुन्दकुन्दाद्यो, जैनधर्मोऽस्तु मङ्गलं॥

सर्वमङ्गल-माङ्गल्यं, सर्वकल्याणकारकम्।
प्रधानम् सर्वधर्माणां, जैनं जयतु शासनम्॥

❖❖❖❖❖

पुरोवाक्

जैनदर्शन में सब जीवों के कल्याण की कामना की गई है। जीवों के कल्याण हेतु अनादिकाल से सतत्, निराबाध तीर्थंकरों की देशना चलती रही है। इस सतत् प्रवाहमान, निराबाध देशना को निर्ग्रन्थ दिगम्बर आचार्यों ने जन-जन के कल्याण हेतु कठिन परिश्रम करके निष्पक्ष, निर्लोभ भाव से लिपिबद्ध किया है। इन जैनाचार्यों की परम्परा में ईसा की प्रथम शताब्दी में जैन अध्यात्म विद्या के महान्ज्ञाता आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी हुए हैं। आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी को दिगम्बर जैन आम्नाय में सर्वाधिक महत्व दिया गया है। भगवान महावीर स्वामी एवं गौतम गणधर स्वामी के पश्चात् इन्हीं का स्मरण किया गया है।

मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो, जैन धर्मोस्तु मंगलम्।।

दक्षिण भारतीय चार प्रमुख जैनसंघ में तीन कुन्दकुन्दान्वय हैं—नन्दी, सिंह एवं यापनीय मूलसंघ वृषभसेन अन्वय का है।

आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी ने स्व-पर कल्याण के विचार से चौरासी पाहुड़ लिखे। वर्तमान में समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय, अष्टपाहुड़ (दंसण, सुत्त, चारित, बोध, भाव, मोक्ख, लिंग, सील), नियमसार आदि तथा बारस अणुवेक्खा, दशभक्ति, रयणसार आदि वर्तमान में उपलब्ध हैं। कुछ लोग मूलाचार, कुरल काव्य को भी आपकी कृति मानते हैं। उल्लेखों के आधार पर कहा जाता है कि षट्खण्डागम के प्रथम तीन खण्डों पर आपने 'परिकर्म' नामक टीका लिखी थी, वर्तमान में वह उपलब्ध नहीं है।

आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी द्वारा रचित समयसार, प्रवचनसार एवं पंचास्तिकाय पर लगभग एक हजार वर्ष पश्चात् आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी द्वारा संस्कृत टीका लिखी गई। उसके लगभग तीन सौ वर्ष पश्चात् आचार्य जयसेन-स्वामी ने सरल, सुबोध संस्कृत टीका लिखी।

परवर्ती आचार्यगण, आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी के अत्यन्त कृतज्ञ हैं, क्योंकि उन्हीं के ग्रन्थों को आधार बनाकर ग्रन्थों, टीकाओं आदि की रचना की है। विशेष रूप से उनके तीन ग्रन्थ पंचास्तिकाय, प्रवचनसार एवं समयसार नाटकत्रय या प्राभृतत्रय कहे जाते हैं। ये जैनों के उपनिषद्,

ब्रह्मसूत्र, भगवद्गीता कहे जा सकते हैं। समयसार ग्रन्थ दिगम्बर, श्वेताम्बर, स्थानक तीनों आम्नाय में बड़े सम्मान, आदर के साथ पढ़ा जाता है।

'रयणसार' गन्थ की गाथाओं की संख्या तथा पाठ में अंतर दृष्टिगोचर होता है। यहाँ तक कि गाथाओं के क्रम में भी अंतर परिलक्षित होता है। मध्य की कुछ गाथायें अपभ्रंश में हैं जो आचार्यभगवन् की प्रतीत नहीं होती हैं। पर ग्रन्थ के रचयिता आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी ही हैं, इसमें कोई संदेह नहीं है।

आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी के ग्रन्थों के अध्ययन से लगता है कि वे शिथिलाचार के घोर विरोधी थे। उन्हें शिथिलाचार न तो श्रावकों में मान्य था और न मुनियों में। इस विषय में वे कठोर प्रशासक के रूप में दिखते हैं। आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी विगत दो हजार वर्षों से अपने ग्रन्थों के माध्यम से शिथिलाचार के विरुद्ध आवाज उठाकर मोक्षमार्ग को प्रशस्त कर रहे हैं। वर्तमान का काल हुण्डावसर्पिणी काल है। इसमें उत्तरोतर शिथिलाचार का बढ़ना स्वाभाविक है। अतः आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी के ग्रन्थ आत्मकल्याण के लिये, जैनसमाज के लिये, श्रमण संस्कृति के लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। उत्तरोतर इन ग्रन्थों की उपयोगिता बढ़ती ही जायेगी। वर्तमान में श्रावक और श्रमण के समन्वय के नाम पर, सुविधाओं के मोह में निरन्तर शिथिलाचार बढ़ता ही जा रहा है। कुछ व्यक्तियों द्वारा निजी स्वार्थपोषण हेतु श्रमण संस्कृति में शिथिलाचार का प्रोत्साहन किया जा रहा है। ऐसे व्यक्ति तर्क देते हैं कि काल के प्रभाव के कारण संहनन हीन है, तो थोड़ा बहुत शिथिलाचार चल सकता है। वे व्यक्ति यह विचार नहीं कर रहे हैं कि माना संहनन हीन है, परन्तु श्रद्धान तो हीन नहीं होना चाहिये।

रयणसार ग्रन्थ में 167 गाथायें हैं। यह ग्रन्थ श्रावक व मुनिधर्म का आचार-विचार कैसा होना चाहिये, इसका विस्तार से वर्णन करता है। जैसे गाड़ी में दो पहिये होते हैं, ऐसे ही श्रावक एवं मुनिधर्म रूपी गाड़ी के दो पहिये हैं। दोनों पहिये अपने-अपने स्थान में रहते हुए चलते हैं तो गाड़ी बिना किसी बाधा के अच्छी तरह चलती है। आचार्यभगवन् ने श्रावक-मुनि धर्म का वर्णन करने के साथ-साथ निरन्तर कठोर अनुशासन में रहने की सद्शिक्षा, प्रेरणा दी है। जीवन के प्रत्येक क्षण में श्रावक-मुनि दोनों को जागरूक रहना चाहिये तथा ये विचार करना चाहिये कि हमारी बाह्य एवं अंतरंग की प्रवृत्ति कैसी चल रही है ?

श्रावक धर्म एवं मुनि धर्म की स्वतंत्र विवेचना करने वाले कई ग्रन्थ हैं। यथा श्रावक धर्म हेतु रत्नकरण्ड श्रावकाचार आदि बत्तीस श्रावकाचार, सागार धर्मामृत, पुरुषार्थ-सिद्धि-उपाय आदि ग्रन्थ हैं। मुनिधर्म की विवेचना हेतु मूलाचार, भगवती आराधना, अनगार धर्मामृत आदि हैं। लेकिन

रयणसार मात्र ऐसा ग्रन्थ है जो उभय धर्मों की व्याख्या करता है। इस ग्रन्थ की शैली आगम और अध्यात्म का अनूठा, अनुपम समन्वय है।

रयणसार ग्रन्थ में भी आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी ने श्रावक एवं श्रमण की व्याख्या में प्रत्येक स्थल पर कठोर अनुशासन का परिचय दिया है। कहीं भी शिथिलाचार का रंचमात्र भी दर्शन नहीं है। वर्तमान में जब भी शिथिलाचार के विरुद्ध आवाज उठाई जाती है तो कुन्दकुन्द स्वामी के ग्रन्थों को ही आधार बनाया जाता है। अत: आचार्यभगवन् के ग्रन्थों की उपयोगिता निरन्तर बढ़ती ही रहेगी, जबतक चतुर्विध संघ इस धरा पर विराजमान रहेगा।

रयणसार ग्रन्थ में आचार्य भगवन् कुन्दकुन्द स्वामी ने श्रावक और मुनि के धार्मिक/आध्यात्मिक कर्त्तव्यों का वर्णन किया है। तीर्थंकरों की जो देशना गणधरों के माध्यम से परम्परा से प्राप्त हुई है, निर्ग्रन्थ आचार्य उसी का कथन/उपदेश सम्यक्त्व सहित करते हैं। सम्यक्त्व ही मोक्षमार्ग की जड़ है। इसके बिना कर्मों से मुक्ति संभव नहीं है। श्रावक का मुख्य कर्त्तव्य दान एवं पूजा होता है और साधु का मुख्य कर्त्तव्य ध्यान एवं अध्ययन ही है। जिनेन्द्रदेव की पूजा एवं सुपात्र को दान देना श्रावक का नित्यकार्य होना चाहिये। इससे वर्तमान एवं भविष्य में सांसारिक सुख की प्राप्ति होती है। यह क्रियाएँ उत्तम खेत में डाले गये बीज के समान हैं। सुपात्र दान से सकलसुखों की प्राप्ति, यहाँ तक कि चक्रवर्ती का वैभव प्राप्त होता है। मुनियों को आहारदान देने में विवेक आवश्यक है। दाता के भाव की अपेक्षा दान का फल भी भिन्न-भिन्न होता है। कामना सहित समृद्धि मिलती है। दान देने में पात्र-अपात्र का विवेक आवश्यक है। निर्माल्य द्रव्य का उपयोग करने से बीमारियाँ, विकलांगता तथा भविष्य में दुर्गति होती है। जो पूजा नहीं करता, दान नहीं देता, वह दुर्गति का पात्र है। जो हेय उपादेय नहीं जानता, उसको सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं होती। रत्नत्रय में सम्यक्त्व की मुख्यता है। सबसे बड़ा कष्ट देने वाला मिथ्यात्व है। यही संसार में भ्रमण कराता है। पंचमकाल में सम्यग्दृष्टि मुनि दुर्लभ हैं। मोही जीव का कल्याण नहीं होता। मात्र भेष से कल्याण नहीं होने वाला है। मात्र ज्ञान कर्मक्षय का हेतु नहीं है। बिना भाव के वैराग्य व्यर्थ है। भक्ति के बिना शिष्य का व्रत, चारित्र सब निष्फल है। ज्ञानविहीन तप की शोभा नहीं है। साधु के पास परिग्रह दु:ख का कारण है। अन्तरात्मा-परमात्मा के भाव मुक्ति के कारण हैं। रत्नत्रय से मुक्ति होती है, पर जिनलिंग मुक्ति का हेतु है। ममकार त्याग बिना मुक्ति नहीं। जिनेन्द्र वचनों का अभ्यास मोक्ष का हेतु है।

आचार्यश्री विशुद्धसागर जी सूत्र-परमागम के अर्थ में विशारद हैं। वे सारण (आचरण) व वारण (निषेध) तथा शोधन में निरन्तर उद्यत रहते हैं। तत्कालीन स्वसमय व परसमय में पारंगत हैं।

आगम के पालन में मेरू के समान निश्चल, सात प्रकार के भयों से रहित हैं। अंतरंग, बहिरंग परिग्रहों से रहित हैं। आकाश के समान निर्लेप, वायु के समान निस्संग हैं।

सागार–अनगार धर्मदेशना के कुछ वाक्यों पर विहंगम दृष्टि करते हैं तो ज्ञात होता है कि वह सूत्रवाक्य तुल्य हो गये हैं।

आचार्य भगवान् कुन्दकुन्द स्वामी के ग्रन्थ रयणसार पर आचार्य विशुद्धसागर जी ने प्रवचन किये हैं। आचार्य श्री शिथिलाचार के घोर विरोधी हैं। आचार्यश्री ने कुन्दकुन्द स्वामी के ग्रन्थों को मात्र पढ़ा ही नहीं, आत्मसात भी किया है। आचार्यश्री संस्कृत, प्राकृत आदि के अधिकारिक विद्वान् हैं। इन्होंने ग्रन्थों का पारायण मूल ग्रन्थों से प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश आदि के माध्यम से किया है। चर्या की विशुद्धि के कारण कुन्दकुन्द स्वामी की गाथायें जीवन्त रूप में झलकती हैं। आचार्यश्री सदैव कहते हैं कि यदि संहनन की हीनता है, तो भी श्रद्धा की हीनता मत करो। मुनि नहीं बन सकते हो, तो मुनियों की सेवा करने से पीछे मत रहो। यह उनकी आंतरिक करुणा का प्रतीक है। उनके मन में यह विचार सदैव रहता है कि स्व के साथ–साथ पर का कल्याण कैसे हो।

यह ग्रन्थ आचार्यश्री के प्रवचनों के आधार पर तैयार किया गया है। इसमें त्रुटियाँ होना संभव है। सुधिजनों से अनुरोध है कि त्रुटियों के सम्बन्ध में सूचित करेंगे, जिससे परिमार्जन हो सके। जिन शासन, नमोऽस्तु जिन शासन जयवन्त हो।

अन्तर्ध्वनि

सागार एवं अनगार धर्म देशना

(आचार्य कुन्दकुन्दकृत 'रयणसार' की एक सरस व्याख्या)

ईसापूर्व 108 में आचार्य कुन्दकुन्द जैनाध्यात्म के एक युगप्रवर्तक एवं प्रभावक उद्‌गाता थे। अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीर और उनके प्रमुख गणधर इन्द्रभूति गौतम के बाद उनका नाम ही मंगल-रूप में स्मरण किया जाता है। जैन आचार्य-परम्परा में उनका नाम सर्वोपरि है। एक कविमनीषी ने कहा भी है—**'हुए न हैं, न होंइगे मुनीन्द्र कुन्दकुन्द से'।**

जैन परम्परा की आध्यात्मिक रचनाओं में आचार्य कुन्दकुन्द द्वारा रचित साहित्य ही आद्य साहित्य है। अध्यात्म पर उनका असाधारण अधिकार था। प्रसिद्ध विद्वान् डॉ. ए. एन. उपाध्ये ने लिखा है—'आचार्य कुन्दकुन्द के पंचास्तिकाय, प्रवचनसार और समयसार, ये तीनों ग्रन्थ जैनों के लिए उतने ही पवित्र हैं, जितने वेदान्तियों के लिए उपनिषद, ब्रह्मसूत्र और भगवद्‌गीता हैं। ये तीनों ही ग्रन्थ सातवें गुणस्थानवर्ती श्रमण को ध्यान में रखकर लिखे गए हैं। जैनधर्म के प्राथमिक अभ्यासियों के लिए उनकी बारस अणुपेक्खा, अष्टपाहुड, रयणसार, दशभक्ति आदि कृतियाँ उपादेय हैं।'

यह 'रयणसार' एक ऐसी कृति है, जो श्रावक और मुनि दोनों के लिए साधना का सम्यक् मार्ग प्रशस्त करती है। यह व्यवहार रत्नत्रय का प्रतिपादन करने वाला एक अप्रतिम ग्रन्थ है। शुद्धात्मा को लक्ष्य में रखकर इसमें मुनि एवं गृहस्थ के संयमाचरण का निरूपण किया गया है। यह रचना आकार में लघु होते हुए भी उपयोगिता की दृष्टि से उत्कृष्ट है। इसके अनुसार चलने वाले श्रावक और मुनि कभी लक्ष्य-भ्रष्ट नहीं हो सकते। निर्दोष चर्या के पालन में यह कृति एक अयाचित वरदान के समान है। इस कृति का प्रमेय सरल होते हुए भी उनके अन्य ग्रन्थों की तरह गूढ़ार्थ से गुम्फित है। अनुभव और तर्क की कसौटी पर यह ग्रन्थ खरा उतरता है।

आचार्य कुन्दकुन्द को साधुओं या श्रावकों का शिथिलाचार सहन नहीं था। उनके अनुसार अन्तरंग (हृदय या मन) की निर्मलता के अभाव में पाले जाने वाले व्रत-नियम आदि बाह्य आचार की कोई सार्थकता नहीं है। उनका जोर इस बात पर है कि साधु परिग्रहोन्मुख न हो तथा श्रावक अपने को संयत करें। जैसे कुलांगना अपने सतीत्व की रक्षा करती है, इसी प्रकार साधु और श्रावक को अपने मूलगुणों और व्रतों की रक्षा करनी चाहिए। वह लिखते हैं— 'धुंधले दर्पण में जैसे अपना प्रतिबिम्ब स्पष्ट दिखाई नहीं पड़ता, वैसे ही रागादि मिथ्यात्व-मल

से मलिन रहते हुए आत्मा का शुद्ध स्वरूप अनुभव में नहीं आता।' उनके अनुसार एक सद्गृहस्थ के लिए दान और पूजा तथा मुनि के लिए ध्यान और अध्ययन मुख्य है। उनकी दृष्टि व्यापक, उदार और स्पष्ट है। यथार्थ में उनके उपदेश मावा के दूध की तरह पवित्र और पुष्टि कारक हैं।

'देशना-महोदधि' पूज्य आचार्य श्री विशुद्धसागर जी महाराज ने गत वर्ष अपने सागर-प्रवास में 'रयणसार' ग्रन्थ पर प्रवचन किए थे। उनके प्रवचनों की यह विशेषता है कि वह ग्रन्थ की एक-एक गाथा के एक-एक शब्द की गहराई में जाकर उसकी ऐसी सरल, सटीक एवं बुद्धिग्राह्य व्याख्या करते हैं कि वह श्रोताओं के हृदय को उद्वेलित कर देती है। 167 गाथाओं के इस लघुकाय ग्रन्थ पर बोलते समय वह यथास्थान वर्ण्य विषय की पुष्टि के लिए मूलाचार्यों द्वारा प्रणीत शास्त्रों के उद्धरण देकर उसकी प्रामाणिकता पर मुहर लगाते हैं। उनकी मधुर और मर्मस्पर्शी वाणी केवल श्रोताओं के कानों में गूँजकर ही न रह जाए, बल्कि अन्तरंग में भी अपना स्थान बनाए, इसके लिए वह आवश्यकतानुसार अकलंक-निकलंक, बालि मुनि, कमठ-मरुभूति, बज्रनाभि चक्रवर्ती, राम-लक्ष्मण, राजा श्रीवर्मादि के पौराणिक प्रसंगों का उल्लेख कर श्रोताओं के मनों को मुग्ध करते हुए दिखते हैं।

विषय-प्रतिपादन करते समय उनकी दृष्टि में आत्महित या अध्यात्म की मुख्यता रहती है, जो एक निर्ग्रन्थ और नि:स्पृह साधु के लिए सर्वथा उचित ही है। अध्यात्म तो जैनधर्म का प्राण है। अध्यात्म-निरपेक्ष वचन 'जनवाणी' की संज्ञा भले ही पा लें, किन्तु 'जिनवाणी' की तो कदापि नहीं। लोक-लुभावक वाणी लोकरंजक हो सकती है, किन्तु आत्मरंजक नहीं। सन्त तिरुवल्लवर ने ठीक ही लिखा है—

'स्नेहपूर्णा दयादृष्टिर्हादिकी या च वाक्सुधा।
एतयोरेव मध्ये तु धर्मो वसति सर्वदा'।।

प्रस्तुत 'सागार एवं अनगार धर्मदेशना' में आगम और अध्यात्म का अनूठा संगम देखने को मिलता है। साधु और श्रावक दोनों के लिए ही यह देशना उपयोगी है। चारों ही अनुयोगों की सार्थकता को सिद्ध करने वाला यह देशना ग्रन्थ नीति, विवेक, सदाचरण और मर्यादा-पालन का मार्गदर्शक एक ऐसा संग्रहणीय दस्तावेज है, जिसका आत्म-चिन्तकों के लिए वैसा ही महत्व है, जैसा वैद्यों या चिकित्सकों के लिए महर्षि चरक के आयुर्वेद शास्त्र का है। विवेचना करते-करते मुनिश्री के मुखाविन्द से कुछ वाक्य या वाक्यांश ऐसे निकल पड़े हैं, जो सरस सूक्तियों की तरह धर्म-जिज्ञासुओं के हृदय को आह्लादित करते हैं। यहाँ हम ऐसी ही कुछ सरस सूक्तियों को दो वर्गों में विभाजित कर प्रस्तुत कर रहे हैं।

कुछ श्रमणोचित सूक्तियाँ

- चन्दे का आहार दिगम्बर मुनि के लिए पूर्णतया निषिद्ध है। मुनियों का आहार चन्दे के द्रव्य से नहीं व्यक्तिगत द्रव्य से होता है। हे साधु! चन्दे का आहार मत करना। शुद्ध चर्या तो तभी पल सकती है, जब श्रावक के चौके में आहार को जाओ। जहाँ भी स्वयं का चौका लेकर जाओगे, वहाँ चर्या का पालन हो ही नहीं सकता है।
- जो व्यक्ति निर्माल्य के एक दाने को भी खाता है, (श्रवणबेलगोला के एक शिलालेख के अनुसार) वह हजारों वर्षों तक विष्ठा में कीड़ा होता है।
- दिगम्बर मुनि रात्रि में मौन रहते हैं, परन्तु किसी की सल्लेखना चल रही हो अथवा धर्म पर संकट आया हो, तो वे असमय में भी बोल सकते हैं।
- जिस तरह बिना स्नेह के मरने वाले के प्रति रोना व्यर्थ है, उसी तरह निर्ग्रन्थ वेश धारण करने के पश्चात् यदि वैराग्य नहीं है, तो वेश धारण करना व्यर्थ है।
- जो मुनि एकल विहार करें, उनको जिनवाणी में कोई श्रद्धा नहीं है—यह ध्रुव सत्य है।
- जिस प्रकार मधुर दुग्ध में एक बूँद जामन की गिर जाय तो दुग्ध खट्टा हो जाता है, उसी प्रकार चित्त में ख्याति-लाभ की कणिका गिर गई तो साधना की मधुरता नष्ट हो जाती है।
- वस्त्र का उतार देना, पिच्छि का ग्रहण कर लेना, कमण्डलु के भार को धारण कर लेना—यह जिनशासन में दीक्षा नहीं है। यह केवल एक देहाश्रित क्रिया है। परिणति में दिगम्बरत्व (अकिंचन्य भाव) होना चाहिए।

कुछ श्रावकोचित सूक्तियाँ

- चाबी वही है, जो ताला खोल दे। उपदेश भी वही है, जिससे मिथ्यात्व के कपाट खुल जायें और सम्यक्त्व का देव प्रकट हो जाए।
- भैया! भगवान् की प्रतिष्ठा करना, किन्तु प्रतिष्ठा के लिए नहीं करना, आत्मकल्याण की प्रतिष्ठा के लिए भगवान् की प्रतिष्ठा करना।
- जो विपत्तियों के दिनों में भी मुस्कराना जानते हैं, वे विपत्तियों को भी विपत्ति में डालना जानते हैं।
- जिस दिन बल्व के नीचे कीड़े गिर रहे हों, उस दिन स्वाध्याय बन्द कर देना। तत्त्वचिन्तन कर लेना। णमोकार का पाठ कर लेना। णमोकार की माला फेरना भी स्वाध्याय है। स्वाध्याय अहिंसा की सिद्धि के लिए होना चाहिए।

- धर्म की रक्षा करना चाहते हो तो अपने बेटे-बेटियों की रक्षा करना। परिणाम निर्मल रखने के लिए भोजन-शुद्धि और भाषा-शुद्धि के साथ देह-शुद्धि भी आवश्यक है। देह-शुद्धि से तात्पर्य अपने स्वजातीय वंश में ही विवाह करना है। अपनी वंश-परम्परा में सम्बन्ध होंगे तो जिनशासन जयवन्त रहेगा।
- जीवन में पूज्यता ज्येष्ठता से नहीं आती, पूज्यता श्रेष्ठता से आती है। स्पर्धा ज्येष्ठ बनने की नहीं, श्रेष्ठ बनने की करो।
- गुणहीन चाहे श्रमण हो या श्रावक, जिनशासन में इनकी वन्दना नहीं।
- किसी से मत पूछिए कि धर्म का फल क्या है अथवा पाप का फल क्या है? सामने देखो—एक पुरुष पालकी कंधे पर ढो रहा है और एक पुरुष पालकी में बैठा हुआ है। दोनों ही किसी-न-किसी माँ के बेटे हैं। यही है पाप-पुण्य का परिणाम।
- भगवान् से मिलना नहीं है, भगवान् बनना है। भगवान् से मिलाने वाले बहुत सारे लोग हैं, परन्तु भगवान् बनाने वाला मेरी निजात्मा को छोड़कर अन्य कोई नहीं है।
- जमीन में मूर्ति गाड़कर और फिर निकालकर चमत्कार की बात मत करना। झूठे चमत्कारों से जो हँसी होती है, वह कोई दूसरा नहीं करवाता, (उसे समर्थन देकर) आप ही करवाते हो, धर्म की प्रभावना करना हो तो दर्शन-ज्ञान-चारित्र से तथा दान-पूजा-विद्या से करो। अतिशय का बोध न हो तो अतिशय मत दिखाओ।
- निज ध्रुवात्मा को जानना ही शिवत्व का मार्ग है।

उपसंहार

आचार्य वादीभसिंह ने लिखा है—'जिस प्रकार दृष्टिसम्पन्न व्यक्ति भी अंधेरे में दीपक की सहायता के बिना कमरे में रखी घट-पटादि वस्तुओं को नहीं पहचान पाता है, उसी प्रकार गुणी, जिज्ञासु और बुद्धिमान व्यक्ति भी किसी कुशल वक्ता की देशना के बिना आत्महित के मार्ग को जानने में समर्थ नहीं है। यह समाज का सौभाग्य है कि इस कलिकाल में भी हमें पूज्य आचार्य श्रीविशुद्धसागर-सरीखे विद्वान् एवं अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी श्रमणों का मार्गदर्शन सुलभ है। 'रयणसार' का यह भाष्य उनकी शब्द-पारगामी प्रतिभा और गहन-गम्भीर पाण्डित्य का परिचायक है। उनके पुनीत चरणाम्बुजों में हमारा विनम्र नमन।

104, नई बस्ती
फिरोजाबाद (उत्तर प्रदेश)

नरेन्द्र प्रकाश जैन
संरक्षक : भा. व. दि. जैन शास्त्रि परिषद्
दूरभाष—9358581008

भूमिका

कुन्दकुन्दाचार्य कृत रयणसार और प्रस्तुत देशना का वैशिष्ट्य

प्रो. फूलचन्द जैन प्रेमी
निर्देशक, बी. एल. इन्स्टीट्यूट ऑफ इण्डोलॉजी,
दिल्ली 110036

श्रमण संस्कृति अपनी जिन–विशेषताओं के कारण सदा से गरिमा–मण्डित रही है, उनमें श्रम, संयम और त्याग जैसे आध्यात्मिक आदर्शों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह संस्कृति सुदूर अतीत में जैनधर्म के आदि तीर्थंकर वृषभ या ऋषभदेव द्वारा प्रवर्तित हुई। ऋषभदेव का उल्लेख श्रमण और वैदिक इन दोनों ही संस्कृतियों में स्वयं–सिद्ध है। ये इस अवसर्पिणी काल के प्रथम सुसंस्कृत पुरुष थे, जिन्होंने सर्वप्रथम विविध ज्ञान–विज्ञान और कलाओं की शिक्षा दी थी। मनुष्य को जीवनोपयोगी असि, मसि, कृषि, विद्या, वाणिज्य और शिल्प–इन छह कलाओं का उपदेश देकर समाज–व्यवस्था स्थापित की। इन्हीं के प्रथम चक्रवर्ती पुत्र भरत के नाम से इस पुण्यदेश का ''भारतवर्ष''–यह नाम प्रसिद्ध हुआ।

प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव से लेकर अन्तिम एवं चौबीसवें तीर्थंकर महावीर तक की इस गौरवशाली तीर्थंकर परम्परा से प्राप्त तत्त्वज्ञान और आत्म कल्याणकारी उपदेशों के आधार पर श्रमण संस्कृति के अमर गायक और उन्नायक सहस्रों जैन–आचार्यों ने प्रायः सभी प्राचीन भारतीय भाषाओं एवं सभी विधाओं में अपने श्रेष्ठ साहित्य के माध्यम से समर्थ भारतीय साहित्य और चिन्तन परम्परा की समृद्धि में महत्त्वपूर्ण योगदान किया है। इन्हीं आचार्यों की विशाल परम्परा में आचार्य कुन्दकुन्द और उनके द्वारा सृजित प्राकृत भाषा के अनुपम साहित्य की श्रेष्ठता को प्रायः सभी स्वीकार करते हैं।

आचार्य कुन्दकुन्द और उनका दिव्य अवदान

तीर्थंकर महावीर और गौतम गणधर के बाद की उत्तरवर्ती जैन आचार्यों की विशाल परम्परा में अनेक महान् आचार्यों का नाम श्रद्धापूर्वक लिया जाता है, जिनके अनुपम व्यक्तित्व और कर्तृत्व से भारतीय चिन्तन अनुप्राणित होकर चतुर्दिक् प्रकाश की किरणें फैलाता रहा है, किन्तु इन सबमें अब से दो हजार वर्ष पूर्व युगप्रधान आचार्य कुन्दकुन्द ऐसे प्रखर प्रभापुंज महान् आचार्य हुए जिनके अनुपम आध्यात्मिक चिन्तन से सम्पूर्ण भारतीय मनीषा प्रभावित हुई और उसने एक अद्भुत मोड़ लिया। यही कारण है कि इनके परवर्ती आचार्यों ने अपने को उनसे प्रचलित परम्परा

का अपने को एक साधक आचार्य श्रमण या श्रावक स्वीकार कर उनकी सम्पूर्ण विरासत से जुड़ने में अपना गौरव माना तथा उनकी मूल–परम्परा तथा ज्ञान–गरिमा को सभी ने श्रेष्ठ मान्य करते हुए यही कहा–

मंगलं भगवदो वीरो मंगलं गोदमो गणी।
मंगलं कोण्डकुंदाइ, जेण्ह धम्मोत्थु मंगल॥

| ***मंगलं भगवान्वीरो मंगलं गौतमो गणी।***
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो जैनधर्मोऽस्तु मंगलम्॥ |

अर्थात् तीर्थंकर भगवान् महावीर–वर्धमान मंगलस्वरूप हैं। इनके प्रथम गणधर गौतम–स्वामी (तीर्थंकर महावीर की दिव्यध्वनि के विवेचनकर्ता तथा द्वादशांग आगमों के रचयिता) मंगलात्मक हैं। आचार्य कुन्दकुन्द जैसे समर्थ आचार्यों की आचार्य–परम्परा मंगलमय है तथा प्राणिमात्र का कल्याण करने वाला जैनधर्म सभी के लिए मंगलकारक है।

साहित्य और शिलालेखों में इनके विभिनन नामों का उल्लेख मिलता है, जिनमें कौण्डकुन्द (कुन्दकुन्द), पद्मनन्दि, वक्रग्रीव, एलाचार्य, महामुनि, गृद्धपिच्छ–ये प्रमुख नाम हैं।

जन्मस्थान और आयुष्य

शिलालेखों आदि में उल्लिखित प्रमाणों के अनुसार इनका जन्मस्थान कोणुकुन्दे प्रवलित नाम कौण्डकुन्दी (कुन्दकुन्दपुरम) तहसील गुण्टूर है, जो कि आन्ध्रप्रदेश के अनन्तपुर जिले में कौण्डकुन्दपुर अपरनाम कुरुमरई नामक स्थान माना जाता है। कुन्दकुन्द भारती, दिल्ली से 1978 में प्रकाशित समयसार में पं. बलभद्र जैन द्वारा लिखित पुरोवाक् के अनुसार आ. कुन्दकुन्द का जन्म शार्वरी नाम संवत्सर माघ शुक्ल 5 ईसापूर्व 108 (बी. श.) में हुआ था। इन्होंने 11 वर्ष की अल्पायु में ही श्रमण दीक्षा ली तथा 33 वर्ष तक मुनिपद पर रहकर ज्ञान और चारित्र की सतत् साधना की। 44 वर्ष की आयु (ईसा पूर्व 64) चतुर्विध संघ ने इन्हें आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया। 51 वर्ष 10 माह और 15 दिन तक उन्होंने आचार्यपद को सुशोभित किया। इस तरह इन्होंने कुल 95 वर्ष 10 माह 15 दिन की दीर्घायु पायी और ईसापूर्व 12 में समाधिमरण पूर्वक स्वर्गारोहण किया।

समय—इनके द्वारा रचित साहित्य, इसकी पृष्ठभूमि, भाव, भाषा, शिलालेख और उत्तरवर्ती आचार्यों के उल्लेखों आदि अनेक आधारों पर आचार्य कुन्दकुन्द निश्चित रूप से ईसा की प्रथम शताब्दी के सिद्ध होते हैं। डॉ. ए. एन. उपाध्ये ने भी इनका समय ईसवीं सन् का प्रारम्भ माना है और भी अनेक विद्वानों के मतानुसार इनका समय यही सिद्ध होता है। किन्तु कुछ आग्रहशील

विद्वान् आचार्य कुन्दकुन्द को तृतीय या पाँचवीं—छठी शती तक का भी सिद्ध करने में अपने को विशिष्ट विद्वान् कहलाने में ही अपना गौरव मान रहे हैं। लगता है मूल दिगम्बर परम्परा के महान् पोषक श्रेष्ठ आचार्य होने और अध्यात्म के चरमबिन्दु के अप्रतिम उद्गाता होने के कारण आचार्य कुन्दकुन्द जैसे अनुपम व्यक्तित्व और कर्तृत्व के धनी आचार्य की उत्कृष्ट मौलिकता, प्राचीनता एवं कीर्ति को कुछ विद्वान् सहन नहीं कर पा रहे हैं, इसलिए उन्हें परवर्ती सिद्ध करने के लिए तथ्य—रहित प्रमाण बतलाकर अपने को सन्तुष्ट मान रहे हैं।

वस्तुतः आचार्य कुन्दकुन्द जैसे अनेक समर्थ एवं प्रभावक जैनाचार्यों द्वारा श्रेष्ठ साहित्य के निर्माण का उद्देश्य स्व-पर कल्याण करना था, न कि आत्म-प्रदर्शन या लौकिक यश की प्राप्ति। इसलिए आज अज्ञातकर्तृक रूप में अनेक श्रेष्ठ ग्रन्थ उपलब्ध मिलते हैं, जिनमें उन्होंने स्वयं द्वारा लिखित ग्रन्थ में लेखक या ग्रन्थकर्ता के रूप में अपना नाम निवासादि तक लिखना उचित नहीं समझा और उस ग्रन्थ के लेखक का कोई नाम, परिचय आदि का विवरण उल्लिखित न होने से वे आज भी अज्ञातकर्तृक बने हुये हैं।

आचार्य अमृतचन्द्राचार्य (8-9वीं शती) के पूर्व तक कुन्दकुन्द के साहित्य पर किसी के द्वारा टीका या व्याख्या आदि न लिखे जाने का यह अर्थ नहीं कि वे परवर्ती थे, अपितु उन मूल ग्रन्थों की लम्बे समय तक उपलब्धता का अभाव, साहित्य का कष्ट होना, भाषायी आक्रमण और आज जैसे प्राचीन काल में विविध सम्पर्क और साधनों का अभाव कारण हैं।

आचार्य कुन्दकुन्द के ग्रन्थ ही उनकी प्राचीनता, प्रामाणिकता और मौलिकता को कह रहे हैं। उन्होंने अपने ग्रन्थों में ''सुयणाणिभद्दबाहु गमयगुरु भगवओ जयओ'' कहकर अपने को बारह अंगों और चौदह पूर्वों के विपुल विस्तार के वेत्ता, गमकगुरु (प्रबोधक) भगवान् श्रुतज्ञानी-श्रुतकेवली भद्रबाहु का शिष्य कहा है। भद्रबाहु को अपना गमकगुरु कहने का यही अर्थ है कि इनको प्रतिबोधित करने वाले वे इनके गुरु थे। इसीलिए अपने समयसार तथा अन्य ग्रन्थों को भी उन्होंने ''श्रुतकेवली भणित'' कहा है। यथा—

वंदित्तु सव्वसिद्धे धुवमचलमणोपमं गइं पत्ते।
वोच्छामि समयपाहुडमिणमो सुयकेवली भणियं॥

विविध संघ और कुन्दकुन्दान्वय

आचार्य कुन्दकुन्द का व्यक्तित्व और विशाल वाङ्मय के रूप में उनका कर्तृत्व इतना अनुपम है कि दिगम्बर परम्परा के प्रायः सभी संघों ने अपने को इनके समय और नाम से प्रचलित ''कुन्दकुन्दावय'' नामक अन्वय की परम्परा से अपने को इसी में सम्मिलित मानने में गौरवशाली अनुभव किया। यही कारण है कि मूलसंघ के अनेक भेद—प्रभेद हो जाने अथवा स्वतन्त्र अन्यान्य

संघों के बन जाने के बावजूद सभी संघ आचार्य कुन्दकुन्द या कुन्दकुन्दान्वय की परम्परा का अपने को सच्चा अनुयायी मानते हुए भावनात्मक एकता, जैन शासन की अभ्युन्नति एवं आत्मकल्याण के लक्ष्य में एकजुट होकर संगठित रहे।

वस्तुतः जब हम उस दीर्घकालीन समय के जैन साहित्य, संस्कृति, धर्म-दर्शन और आचार-विचारों की श्रेष्ठता तथा जैनधर्म को शाश्वतता प्रदान करने हेतु उनके त्याग की ओर दृष्टिपात करते हैं तो हमारा मस्तक गौरव से ऊँचा उठ जाता है और हमें अपने अन्दर अपूर्व आनन्द प्राप्त होता है कि हम सभी अपने भारत की इस महान् धरोहर के उत्तराधिकारी और अनुयायी हैं। किन्तु इस बड़े उत्तरदायित्व का बोध होने और इसके विकास के लिए चेष्टा करते रहने के विषय में भी सभी को निरन्तर जाग्रत रहने की बड़ी आवश्यकता है।

वस्तुतः आचार्य कुन्दकुन्द लोकहित में जो भी कहना और करना चाहते थे—एक श्रेष्ठ मनोवैज्ञानिक और प्रभावक समर्थ आचार्य की भाँति वे अपने चिन्तन एवं सिद्धान्तों का प्रयोग अपने अनुभव की बाजी लगाकर स्वयं अपने जीवन में ही सर्वप्रथम प्रयोग करने का प्रयास करते थे और उनकी सत्यता का पूर्ण अनुभवंकर बाद में उनका प्रचार जनभाषा प्राकृत भाषा के माध्यम से सार्वभौमिक रूप में किया करते थे। इसलिए वे अपने समयसार में ही यह घोषणा करते हुए कहते हैं—

तं एयत्तविभत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण।
जदि दाएज्ज पमाणं चुक्किज्ज छलं ण घेत्तव्वं॥ 5 ॥

अर्थात् परभाव से भिन्न और एकत्व से युक्त उस आत्मा को मैं अपनी आत्मा के निज वैभव से आपको दिखाता हूँ। अगर दिखा सका तो उसे प्रमाण स्वीकार करना, अगर चूक गया तो उसे प्रमाण मत मानना और छल ग्रहण मत करना।

वे जानते थे कि भाषा भावों की अभिव्यक्ति और ज्ञान-प्रचार का साधन है। अतः इसके लिए यदि जनसामान्य के बोलचाल की जनभाषा प्राकृत को माध्यम बनाया जाए तो अत्युत्तम होगा। इसीलिए उन्होंने संस्कृत की अपेक्षा जनभाषा प्राकृत, इसमें भी शौरसेनी जैसी लोकप्रिय प्राकृत भाषा को ही अपने साहित्य सृजन हेतु अपनाया। क्योंकि कुन्दकुन्दाचार्य का आध्यात्मिक तत्त्वज्ञान विषयक चिन्तन मानव-मात्र तक ही सीमित नहीं हैं, अपितु सम्पूर्ण विश्व के समस्त प्राणियों के लिए कल्याणकारी है। अर्थात् उनके द्वारा विवेचित सभी सिद्धान्त सार्वजनीन, सार्वकालिक एवं सार्वभौमिक हैं। इसलिए उन्होंने अपने सम्पूर्ण शास्त्र का सृजन जनभाषा प्राकृत में किया और अपने द्वारा अनुभूत सत्य अर्थात् परमार्थ को निश्चयनय और व्यवहारनय—इन दोनों दृष्टियों से समझाया। उन्होंने लिखा है—

जह णवि सक्कमणज्जो अणज्जभासं विणा उ गाहेदुं।
तह ववहारेण विणा परमत्थुवदेसमणमसक्कं॥ समयसार, 8॥

अर्थात् जिस प्रकार अनार्य व्यक्ति को उसी अनार्य भाषा के बिना वस्तु का स्वरूप नहीं समझाया जा सकता उसी प्रकार किसी व्यक्ति को परमार्थ का उपदेश भी बिना व्यवहार के नहीं समझाया जा सकता। इसीलिए उन्होंने तत्कालीन प्रचलित लोकभाषा शौरसेनी प्राकृत में ही अपने ग्रन्थों की रचना की। ऐसे महान् साधक, विचारक एवं उपदेष्टा को लोकनायक युगप्रधान महान् आचार्य कहा जाना उचित ही है।

आचार्य कुन्दकुन्द ने दार्शनिक, आध्यात्मिक, तात्त्विक एवं आचार के क्षेत्र में अनेक चिन्तन परम्पराओं की पुनर्स्थापना की, जिनका सीधा सम्बन्ध तीर्थंकरों द्वारा प्रतिपादित चिन्तन से था, किन्तु कालक्रम और विपरीत परिस्थितियों के कारण वह श्रुत परम्परा विस्मृत सी हो रही थी, जिसे उन्होंने अपने अनुभव की बाजी लगाकर सम्यक्दर्शन-ज्ञान और चारित्र के उस मूल आध्यात्म-स्वरूप को अपने द्वारा सृजित आगम शास्त्रों में दो हजार वर्ष पहले ही लिपिबद्ध कर दिया था।

आध्यात्मिक और तात्त्विक साहित्य सृजन की पहल

वस्तुत: भगवान् महावीर ने जिस दर्शन का प्रतिपादन किया वह द्वादशांग आगमों के रूप में मौखिक परम्परा से चला आ रहा था। कालान्तर में विस्मृति के कारण इसमें विच्छेद भी होने लगा। श्रुत परम्परा प्राय: इतनी विच्छिन्न और विस्मृत सी हो गयी थी कि सर्व साधारण विद्वान् और साधु इन विषयों पर लेखनी चलाने का साहस नहीं कर पा रहे थे। किन्तु इस स्थिति को आचार्य कुन्दकुन्द ने बड़ी कुशलता के साथ संभाला और युगानुरूप कल्याणकारी विशाल साहित्य का सृजन किया। साथ ही जन-जन को उद्बोधन करने के लिए वे आगे बढ़े और उन्होंने जो साहित्य सृजन किया वह इस प्रकार है—

1. पंचास्तिकाय, 2. समयपाहुड (समयसार), 3. पवयणसार (प्रवचनसार), 4. नियमसार, 5. अट्ठपाहुड (दंसणपाहुड, चारित्तपाहुड, सुत्तपाहुड, बोधपाहुड, भावपाहुड, मोक्खपाहुड, सीलपाहुड तथा लिंगपाहुड—इन आठ पहुडों का संग्रह), 6. बारस अणुवेक्खा, 7. रयणसार तथा 8. भत्ति संगहो—(सिद्ध, सुद, चारित, जोई (योगी), आइरिय, णिव्वाण, पंचगुरु तथा तित्थयर भक्ति—नामक भक्ति संग्रह) जैसे महान् ग्रन्थों की रचना की। तमिल—वेद के रूप में सुविख्यात तिरुक्कुरल नामक नीति प्रधान श्रेष्ठ ग्रन्थ भी इनकी कृति माना जाता है।

बीसवीं सदी के कुछ वरिष्ठ विद्वान् रयणसार को आचार्य कुन्दकुन्द कृत नहीं मानते, किन्तु अधिकांश विद्वान् अनेक प्रमाण प्रस्तुत करते हुये रयणसार को आचार्य कुन्दकुन्द प्रणीत ही मान्य करते हैं।

इनके कृतित्व के सम्बन्ध में ऐसी मान्यता है कि आचार्य कुन्दकुन्द ने चौरासी पाहुड ग्रन्थों की रचना की थी, किन्तु इनके द्वारा लिखित मात्र पूर्वोक्त ग्रन्थ ही उपलब्ध होते हैं।

आचार्य कुन्दकुन्द ने अपने बहुआयामी समग्र चिन्तन को पूर्वोक्त ग्रन्थों में संजोकर प्रस्तुत किया है, ताकि सम्पूर्ण विश्व उस चिन्तन का लाभ उठा सके। आचार्य कुन्दकुन्द की अलौकिक विद्वत्ता, शास्त्र-लेखन-प्रतिभा एवं सिद्धान्त ग्रन्थों के सार को विशुद्ध आध्यात्मिक, तात्विक और दार्शनिक चिन्तन के परिपेक्ष्य में प्रस्तुत करना, उनका अपना अलग ही वैशिष्ट्य है। इसलिए तीर्थंकर महावीर और गौतम गणधर के बाद यह पहला ही अवसर था जबकि ज्ञानाभ्यासियों को तत्त्वचिंतन और उत्कृष्ट आध्यात्म की एक व्यवस्थित दिशा मिली और इसीलिए आचार्य कुन्दकुन्द का नाम युग प्रतिष्ठापक प्रभावक आचार्य के रूप में बड़ी श्रद्धा और भक्ति के साथ लिया जाता है और युगों-युगों तक वे इस रूप में हम सभी के समक्ष सदा उपस्थित रहेंगे। कहा भी है—कीर्तिर्यस्य सः जीवति।

कुन्दकुन्द साहित्य में प्रतिपाद्य विषय

आचार्य कुन्दकुन्द ने अपने पवयणसार ग्रन्थ में जहाँ ज्ञान, ज्ञेय और चारित्र—इनकी उत्कृष्ट मीमांसा को लक्ष्य बनाया, वहीं समयपाहुड में जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष, पुण्य और पाप—इन नव पदार्थों का उस नयी विवेचना के साथ प्रस्तुत किया, जिसे जनमानस भूलता जा रहा था। इस तरह समयपाहुड ग्रन्थ के माध्यम से आचार्य कुन्दकुन्द ने आध्यात्मिक क्षेत्र में आत्मतत्त्व रूप तत्त्वज्ञान और आध्यात्म की जिस ऊँचाई को छुआ है वह सम्पूर्ण विश्व साहित्य में दुर्लभ है।

इसी तरह उन्होंने पंचत्थिकाय ग्रन्थ में सम्यग्दर्शन के विषयभूत जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश—इन पाँच अस्तिकाय तथा काल द्रव्य—इन छह द्रव्यों का विवेचन प्रस्तुत किया है। नियमसार ग्रन्थ में उन्होंने सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, और सम्यक् चारित्र रूप रत्नत्रय को मोक्षप्राप्ति का उपाय मार्ग प्रतिपादित किया है। इसी प्रकार अटठ्पाहुड, बारस अणुवेक्खा और भत्तिसंगहो—इन ग्रन्थों में क्रमशः रत्नत्रय, वैराग्य और भक्ति आदि अनेक विषयों का प्रतिपादन अनुपम है।

रयणसार

जिस प्रकार 'प्रवचनसार' में आगम के सारभूत शुद्धात्म तत्त्व का वर्णन किया गया है, उसी प्रकार 'नियमसार' में नियम के साररूप शुद्ध रत्नत्रय का और 'समयसार' में शुद्ध आत्मा का वर्णन तत्त्वज्ञान और आध्यात्म में परिपक्व भव्यजनों के हितार्थ किया गया है। इसलिए जन सामान्य को विशेषतः ध्यान में रखकर 'अष्टपाहुड' रयणसार, भक्तिसंग्रह आदि ग्रन्थों की रचना

की गयी है। 'रयणसार' व्यवहार-रत्नत्रय का प्रतिपादन करने वाला अतिमहत्त्वपूर्ण सहज-सरल ग्रन्थ है। यद्यपि अन्य रचनाओं की भाँति, इसमें भी शुद्ध आत्मतत्त्व को लक्ष्य में रखकर गृहस्थ और मुनि के संयमचारित्र का भी निरूपण अत्यन्त कुशलता के साथ किया गया है। इसकी उद्घोषणा वे अपने मंगलाचारण में भी इस प्रकार करते हैं—*वोच्छामि रयणसारं सायारणयार धम्मीणं।* इस प्रकार यह ग्रन्थ मुख्य रूप से यह आचार और नीतिशास्त्र है।

रयणसार (गाथा 36) में कहा है कि जो मनुष्य दान नहीं देते, पूजा नहीं करते, शील या सदाचार का पालन नहीं करते और गुणों को धारण नहीं करते वे चारित्रवान नहीं होते। ऐसे दुश्चरित्र लोग मरकर बुरी गतियों में जाते हैं, या कुत्सित मनुष्य होते हैं। यथा—

णहि-दाणं णहि सीलं णहि गुणं च चारित्तं।
जे जइणा भणिया ते णरया हुंति कुमाणुसा तिरिया॥

रयणसारकार ने आचार्य कुन्दकुन्द की वाणी किसी धर्म या वर्ग विशेष के लिए नहीं, अपितु सार्वभौमिक और सार्वजनीन है। इसलिए उन्होंने रयणसार में श्रावकों के लिए विधि-निषेध सम्बन्धी जो भी बातें कहीं हैं, वे केवल जैन लोगों के लिए नहीं है, वरन् प्राणी मात्र के लिए समान रूप से हितकारी हैं। इसलिए यह नहीं समझना चाहिए कि जो जैनधर्म मानता है, वह मिथ्यादृष्टि नहीं है और जो नहीं मानता है, वह मिथ्यादृष्टि है। वास्तव में यह हमारा भ्रम है। आचार्य कुन्दकुन्द ने मिथ्याबुद्धि वाले मनुष्य को जो योग्य-अयोग्य, नित्य-अनित्य, हेय-उपादेय, सत्य-असत्य, भव्य-अभव्य को अर्थात् अच्छे-बुरे को नहीं जानता, उसे भी मिथ्यादृष्टि कहा है। यथा—

णहि जाणइ जोग्गमजोग्गं णिच्चमणिच्चं हेयमुवादेयं।
सच्चमसच्चं भव्वमभव्वं सो सम्मउम्मुक्को॥ रयणसार, 38॥

मूढ़ प्राणी अपने मोह को नहीं छोड़ता। इसलिए वह अनेक तरह के दारुण कर्मों को करता हुआ संसार में भटकता रहता है, संसार का पार नहीं पाता। इस प्रकार वह अनेक दु:खों को भोगता है। कहा है—

मोह ण छिज्जइ अप्पा दारुणकम्मं करेइ बहुवारं।
णहु पावइ भवतीरं किं बहुदुक्खं वहेइ मूढ़मई॥॥ रयणसार॥

रयणसार (गा. 43) में स्पष्ट रूप से गृहस्थ और साधु दोनों के लिए मिथ्या-बुद्धि एवं अन्धविश्वास त्याग करने का उपदेश दिया है। उनका कथन है कि हम कहीं भी और किसी भी अवस्था में हों; जब तक दृष्टि नहीं पलटती है, तब तक सच्चा आत्मविश्वास, आत्मज्ञान और आत्मचारित्र प्रकट नहीं होता है। यथा—

सम्मविणा सण्णाणं सच्चारित्तं ण होइ णियमेण।
तो रयणत्तयमज्झे सम्मगुणक्किट्ठमिदि जिणुद्दिट्ठं॥

आगम-दृष्टि से ही आत्मदृष्टि उपलब्ध होती है। सम्यक्त्व की प्राप्ति में आगम-दृष्टि निमित्त है। साम्यदृष्टि ही आगम और जिनवाणी को भली-भाँति समझते हैं। इस दृष्टि के बिना उनकी मान्यता अन्धविश्वास ही कही जाती है। कहा भी है—

देवगुरुधम्मगुणचारित्तं तवायारमोक्खगइभेयं।
जिणवयणसुदिदि्ठविणा दीसइ किह जाणए सम्मं॥

जिनकी दृष्टि बहिर्मुखी है और जो लोक-रंजन में लगे हुए हैं, वे सम्यक्त्व से सहित हैं। सम्यग्दृष्टि सांसारिक कार्यों में आसक्त नहीं होते। उनकी प्रवृत्ति अन्तर्मुखी होती है। वे विषय-कषायों तथा संग्रहवृत्ति से उदासीन रहते हैं। इसलिए वे "लोयववहारपउरा" नहीं होते। यथा—

जे पावारंभरया कसायजुत्ता परिग्गहासत्ता।
लोयववहारपउरा ते साहू सम्मउम्मुक्का॥ रयणसार, 97॥

इस तरह आचार्य कुन्दकुन्द जैसे महामनीषी ने रयणसार के साथ ही अपने विशाल साहित्य के माध्यम से उन्होंने तत्त्वज्ञान की जो विवेचना प्रस्तुत की है वह उनकी अलौकिक विद्वता, शास्त्रग्रथन की प्रतिभा एवं आध्यात्मिक दृष्टि का अपना अलग ही वैशिष्ट्य है।

आचार्य कुन्दकुन्द ने तीर्थंकरों द्वारा प्रतिपादित तत्त्वज्ञान को मूलस्वरूप में जिस उत्कृष्ट विवेचन के साथ प्रस्तुत किया है, भारतीय दार्शनिक चिन्तन उससे बहुत प्रभावित है। अतः वेदान्त, बौद्ध, सांख्य, न्याय, वैशेषिक एवं चार्वाक आदि भारतीय दर्शनों एवं उनके सिद्धान्तों के साथ यथायोग्य तुलनात्मक अध्ययन किया जाये तो सम्पूर्ण भारतीय दार्शनिक मनीषा के लिए बहुमूल्य उपहार सिद्ध होगा। भारतीय विद्याओं और दर्शनों के विकास में उनका बहुविध योगदान है।

प्रमुख व्याख्याकार—आचार्य कुन्दकुन्द एवं उनके उत्कृष्ट साहित्य में इतना गहन चिन्तन समाहित है कि उसका दूर तक गहरा प्रभाव दिखलाई देता है। यही कारण है कि दसवीं सदी के आचार्य अमृतचन्द्र, इनके परवर्ती आचार्य जयसेन, आचार्य श्रुतसागर, मलधारी हेमचन्द्र, कनडी वृत्तिकार आध्यात्मी बालचंद्र से लेकर आगे पं. जयचंदजी छावड़ा आदि विद्वानों के द्वारा सोलहवीं सदी से प्रारम्भ की गई टीकाओं के द्वारा इस इक्कसवीं सदी के प्रारम्भ तक अनेक मनीषियों ने इनके साहित्य को अपनी विवेचना का विषय बनाया और ये सब भी स्वयं आध्यात्म के मार्ग पर चलकर सहस्रों जीवों को इस मार्ग का पथिक बनने हेतु प्रेरणायें प्रदान कीं।

इन मनीषियों में मुख्यत: पंडित बनारसीदास, पांडे राजमल्ल, पं. जयचन्द जी छावड़ा आदि तथा बीसवीं सदी के अनेक सन्त और विद्वान् भी सम्मिलित हैं, जिन्होंने इस साहित्य की हृदयंगम कर अपने शास्त्रों के माध्यम से सम्पूर्ण मानवता के कल्याण हेतु प्रस्तुत किया।

आचार्यश्री विशुद्धसागर जी एवं उनकी रयणसार देशना :

आचार्यश्री पूर्णत: अध्यात्मयोगी हैं। उनके प्रवचनों को प्रबुद्ध विशाल श्रोता समुदाय मन्त्र-मुग्ध हो उनकी वाणी को बड़े ही शान्त और गम्भीर भाव से सुनता है। भले ही वे अपने प्रवचनों के मध्य श्रोताओं की मानसिकता, आचार, व्यवहार, वेषभूषा आदि प्रवृत्तियों को भो ज्ञानी! मुमुक्षु! जैसे विविध सम्मानित सम्बोधनों को इसलिए आधार बनाते और मधुर चोट करते हैं, ताकि हम उनके कथन का उद्देश्य और प्रमेय कर सकें समझकर अपने में सुधार ला सकें। क्योंकि एक व्यक्ति के सुधरने से या आदर्श आचार धारण करने से मात्र वही नहीं सुधरता, अपितु सम्पूर्ण परिवार, समाज, देश और आस-पास का सम्पूर्ण वातावरण सुधरकर सुखद और सौहार्दयुक्त हो जाता है।

आपके पूरे प्रवचन सुनते जाएं या ग्रन्थ रूप में प्रकाशित देशनाओं को गम्भीरता से पढ़ते जाएं, प्रवचन में प्रमेय का चिन्तन भले ही अध्यात्म प्रधान हो, किन्तु प्रवचनों में पूरी तरह वह व्यावहारिकता मिलेगी, जो मन को बांधेगी भी, झकझोरेगी भी और प्रत्येक श्रोता के मन में ऐसा लगेगा कि उन्होंने मेरे मन की वह बात कह दी जिसे मैं लम्बे समय से महसूस तो कर रहा था किन्तु उसे व्यक्त करने के लिए मेरे पास ना शब्द थे ना भाव थे पर जिन्हें भी व्यक्त करना चाहता था।

ऐसे ही सरल, सहज किन्तु गम्भीर प्रवचनों के माध्यम से तत्वचिन्तन को पूज्यश्री प्राचीन आचार्यों द्वारा प्रणीत मूलशास्त्रों के आधार पर प्रस्तुत करने में कुशल हैं। यद्यपि कहीं-कहीं ऐसा भी लगता है कि वे जिस प्राचीन शास्त्र की जिस गाथा या पद्य पर प्रवचन कर रहे हैं उसकी सटीक प्रस्तुति या पूरी तरह उसका विषय प्रतिपादन या कथन में नहीं आ रहा है, किन्तु जब हम उस मूल विषय की जगह आधुनिक युगीन प्रतिपादन हमारे ही आस-पास के उदाहरणों के साथ वे प्रस्तुत करते हैं, तब उस गाथा का रहस्य भी उसमें निहित दिखता है। इन प्रवचनों के माध्यम से पूज्यश्री गाथा या श्लोक के प्रतिपाद्य विषय के साथ ही तुलनात्मक दृष्टि से अन्यान्य आचार्य प्रणीत शास्त्रों के विषय, गाथाएं, पद्यांशों और प्राचीन अथवा बीसवीं सदी के श्रेष्ठ संयमी आत्माओं के जीवन प्रसंगों को प्रस्तुत कर हम सभी को इस प्रकार प्रेरित करते हैं, मानो उन प्रसंगों के वे प्रत्यक्ष दृष्टा रहे हों।

प्रस्तुत रयणसारदेशना भी अन्य प्रकाशित देशना ग्रन्थों की तरह बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं। आपने प्रत्येक गाथा को बहुत ही विस्तार से सूक्ष्मतापूर्वक सरल, सहज भाषा में समझाया है। मध्यप्रदेश के सागर नगर के श्री गणेश वर्णी दि.जैन संस्कृत महाविद्यालय, मोराजी भवन के

विशाल प्रांगण में चातुर्मास काल में प्रवचन सभा में प्रस्तुत नित्य का चिन्तन प्रबुद्ध श्रोताजनों के मन में आज भी प्रत्यक्ष सा प्रतीत होता है और फिर आचार्य कुन्दकुन्द जैसे उत्कृष्ट प्रभावक आचार्य प्रणीत रयणसार ग्रन्थ की विवेचना का वैशिष्ट्य ही कुछ अलग है।

इस शास्त्र की महत्ता बतलाते हुए आचार्यश्री विशुद्धसागर जी कहते हैं—रयण यानि रतन और रतनों में भी सार। ज्ञानियो! रत्नों में भी यदि कोई महारत्न है तो उसका नाम है बज्र। रत्नों में वज्र, वृक्षों में गोशीर चन्दन, पर्वतों में पूज्य पर्वत सम्मेद शिखर और धर्म में भी कोई धर्म श्रेष्ठ है तो उसका नाम है जैनधर्म।

रयणसार यानि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र—ये तीन रत्न हैं। इन तीन रत्नों का सार है—रयणसार। जिस ग्रन्थ में इन तीन रत्नों का विवेचन है ऐसे ग्रन्थ का नाम है रयणसार। इसके मंगलाचरण में कहा है—

णमिऊण वड्ढमाणं परमप्पाणं जिणं तिसुद्धेण।
वोच्छामि रयणसारं सायारणयार धम्मीणं॥1॥

जो परमात्मा जिनेन्द्र वर्द्धमान हैं, ऐसे वर्द्धमान को नमस्कार करता हूँ। कैसे? त्रिशुद्धं मनशुद्धि, वचनशुद्धि काय शुद्धि पूर्वक।

चतुर्थ गाथा के विवेचन प्रसंग में वे सम्बोधित करते हुये साधु की पहचान कैसे करना चाहिये? यह बतला रहे हैं—

मुमुक्षुओ! वर्ण से पहचान मत करो। पहचान करना है तो वाणी से करो। भेष एक हो सकता है, लेकिन भाव एक नहीं है। परन्तु ध्यान रखना, जितने धरती के देवता, निर्ग्रन्थ तपोधन इस भारत की ही भूमि पर नहीं, वरन् पूरे ढाई द्वीप में विचरण कर रहे हैं। करणानुयोग कहता है कि निर्वाण तभी होगा जब सभी योगियों का भाव एक होगा। शरीर के भेद हो सकते हैं, भाषाओं के भेद हो सकते हैं, परन्तु निर्वाण सभी जीवों का अनेक भाषाओं से अनेक ऋद्धियों से नहीं, एक भाव से होता है। ये गुणस्थान की धारा है।

इसी चतुर्थ गाथा के विवेचन प्रसंग में आगे कहते हैं—सत्य मार्ग क्या है, इसे भूल मत जाओ। सत्य पर चल नहीं पा रहे हो, ये तुम्हारी कमजोरी है; परन्तु सत्य को बोल नहीं पा रहे हो, ये महा कमजोरी है। सत्य पर नहीं चल पाना, ये चारित्रमोहनीय कर्म का उदय मैं मान सकता हूँ, लेकिन सत्य को बोल नहीं पा रहे हो, ये दर्शनमोहनीय काम कर रहा है, मिथ्यात्व काम कर रहा है। जिनवाणी के अनुसार नहीं चल पाओ तो क्षम्य है, लेकिन जिनवाणी को जिनवाणी के अनुसार बोल नहीं पा रहे हो, ये अक्षम्य है। अपनी कमजोरी को आगम मत बना लेना।

गाथा संख्या 42 की विवेचना में निश्चयनय से वस्तुस्वरूप की यथार्थता प्रतिपादित करते हुए वे कहते हैं—पराधीन दृष्टि को छोड़ो निज के उपादान की बात करो। पर को दोष मत दो। दोष तेरा ही है। ज्ञान-दर्शन का विपर्यास मत करो तो विपरीत गति नहीं हो सकती। ज्ञान-दर्शन यदि पवित्र है, तो परिणति पवित्र होगी और गति नियम से पवित्र होगी। जो यूँ कहते हैं कि मैं तो कुछ नहीं करता हूँ, वह तो पुद्गल का परिणमन चल रहा है, वह तो क्रियावती शक्ति कर रही है। यह मिथ्या भाषा बंद करो, वस्तुस्वरूप समझो। क्रियावती शक्ति अपना काम करती है, परन्तु लक्ष्य के साथ करती है।

48वीं गाथा के विषय विवेचन के प्रसंग आपने यज्ञोपवीत धारण के मूल उद्देश्यों का उद्घाटन करते हुए अपने बुजुर्गों की धर्म एवं आचार के प्रति निष्ठा का उल्लेख करते हुए पूज्यश्री कहते हैं।—

हमारे बुजुर्गों ने पोटली टांगकर बंजी करना पसंद किया, परन्तु किसी विधर्मी के यहाँ काम करना पसंद नहीं किया, क्योंकि अपनी बंजी की पोटली लेकर जायेंगे तो जहाँ मन करेगा वहाँ बैठ जायेंगे, सामायिक कर लेंगे, समय पर अनथऊ कर लेंगे। वह पैसा किस काम का जो रात्रि में भोजन कराये।

रयणसार की 34वीं गाथा, जिसमें पूजा, दानादि द्रव्य अन्यथा प्रयोग का अनौचित्य समझाया गया है, उस सन्दर्भ में कटुसत्य का उद्घाटन करते हुये वे कहते हैं—

कुछ क्षेत्रों में ट्रस्टीगण ऐसे बैठे हुए हैं जैसे काला नाग बैठा हो, वो हटना पसंद नहीं करते। बोले—क्यों ? हमारी इज्जत दाँव पर है। कोई इनाम, यशख्याति मिल रही है ? ज्ञानी ! मंदिर में एक घूँट पानी माली के हाथ का पी लिया तुमने, तो घोर बंध होगा। मंदिर का बागवान देव-शास्त्र-गुरु की सेवा के लिए लगाया है, यह ट्रस्टियों की सेवा के लिए नहीं लगा है। यदि आपने उससे अपना स्वयं का काम करवाया है तो वह निर्माल्य का सेवन हो गया।

61-62वीं गाथा की विवेचना में हम अपने भावों और आत्मा के स्वभावों के विपरीत जो भी आचरण करते हैं उनके सम्बन्ध में वे सटीक चिन्तन रख रहे हैं और वे कितने मार्मिक हैं, इसे देखिए—

यदि किसी ने धक्का मार दिया तो चार लोग उठाने आ जायेंगे, लेकिन हे ज्ञानी ! भावों में जो धक्का मारा है, उसे उठाने एक भी आदमी नहीं आयेगा। पर के द्वारा किए गए उपसर्ग को दूर करने के लिए देव भी आ जायेंगे। परन्तु तेरी आत्मा पर तेरी आत्मा के द्वारा किया गया जो उपसर्ग है, उसे देखने के लिए तेरा सगा भाई भी नहीं आयेगा। शरीर पर जितने उपसर्ग हुए, उनसे कभी दुर्गति नहीं

हुई। क्रोध-मान-माया-लोभ इन विकारी भावों को देखकर कोटि-कोटि लोग कहेंगे कि अच्छा नहीं हुआ, परन्तु अंतरंग जो उपसर्ग चल रहा है, इस पर भी तो करुणा करो।

इन्हीं गाथाओं की विषय विवेचना में वे कहते हैं—हे योगीश्वर! भक्तों की भीड़ आपके शरीर की रक्षा के भाव तो बनासकती है। लेकिन हे योगीश्वर! भक्तों के राग का जो उपसर्ग है, उसे भगवान् भी दूर करने नहीं आ पायेंगे। इस उपसर्ग को दूर करने वाला कोई है विश्व में, तो मात्र निज का भाव है। स्वभावोपलब्धि ही साधन है।

गाथा संख्या 106 का विवेचन करते हुये वे देश में बढ़ती हुई मंदिरों, मूर्तियों की संख्या एवं लोगों के मन में घटती निर्मल परिणामों की दशा पर चिन्ता व्यक्त करते हुये वे कहते हैं—ज्ञानियो! मंदिरों की संख्या बढ़ रही है, श्रीजी (मूर्तियों) की संख्या बढ़ रही है, साधुओं की संख्या बढ़ रही है, साध्वियों की संख्या बढ़ रही है, लेकिन साम्यभावियों की संख्या घट रही है। इसका कारण यह है कि हम बहिरंग की बातों पर जोर दे रहे हैं, अंतरंग पर लक्ष्य नहीं जा रहा है। एक करोड़ मंदिर स्थापित कर देना कठिन नहीं है, क्योंकि मंदिर स्थापित करने में तेरा कुछ भी नहीं जाता है, वह तो द्रव्य का पररूप परिणमन करा रहा है, लेकिन प्राणीमात्र में मित्रता रखना, ये निज के परिणामों की परिणति है और मंदिर बहिरंग परिणति है। हे श्रावको! ध्यान रखना जीवन में, निर्ग्रन्थों को निर्ग्रन्थ बनकर रहने देना, उनको भोगी बनने में निमित्त न होना। तुम्हारे नगर में आयें, तब उनकी साधना में सहयोग तो करना, लेकिन ज्ञानी! विराधना में सहयोग मत करना। ये कूलर, पंखे—ये योगियों का काम नहीं है। पंचमकाल में आप पर्वत पर नहीं बैठ सकते हो, लेकिन शान्ति से कमरे में बैठो।

ग्रन्थ के अन्त में अपनी सम्पूर्ण देशना के परिप्रेक्ष्य में अपनी भूलों के प्रति क्षमायाचना करते हुये वे कहते हैं कि ज्ञानियो! ग्रन्थराज के वाचन में किंचित्मात्र भी भूल हुई हो तो माँ वाग्वादिनी से क्षमाप्रार्थी हूँ। इस रयणसार रूप 'सागार-अनगार धर्म देशना' में जो भूलचूक हो उसे सुधीजन तत्वज्ञानी ठीक कर लें। मैं अल्प श्रुतज्ञ हूँ। श्रुत-भक्ति से प्रेरित हो, भव्य जनों के हितार्थ, अशुभ से रक्षार्थ यह तत्व गवेषणा की है।

इस प्रकार इस ग्रन्थ में इतने अधिक प्रेरक वाक्य हैं कि यदि उनका संकलन किया जाए तो एक बहुत अच्छा सूक्ति संग्रह बन सकता है। किन्तु प्रस्तावना या भूमिका लेख की भी अपनी एक सीमा होती है। वस्तुतः प्रस्तुत रयणसार देशना नामक ग्रन्थ के माध्यम से पूज्य कुन्दकुन्दाचार्य की मूलवाणी का विस्तार स्वरूप प्रस्तुत विवेचना आचार्यश्री विशुद्ध सागर महाराज जी की अनुपम देन है। जिस तरह सागर नगर की सुधी समाज ने प्रत्यक्ष इन प्रवचनों को सुनकर पुण्यार्जन किया और ज्ञानलाभ लिया। उसी तरह इस प्रकाशित ग्रन्थ का स्वाध्याय एवं वाचना के माध्यम से दीर्घकाल

तक सम्पूर्ण देश का जन-जन इससे लाभ लेकर आत्मकल्याण का मार्ग प्रशस्त करता रहे—ऐसी मंगलकामना है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के सम्पादन, संकलन, संशोधन आदि के रूप में जिन-जिन मुमुक्षुओं और ज्ञानियों का सहयोग रहा है, उन सभी का सार्थक श्रम अभिनन्दनीय है और उन सभी सुधीजनों के प्रति विशेष कृतज्ञता ज्ञापित करते हुये अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव कर रहा हूँ।

प्रो. फूलचन्द जैन प्रेमी
निदेशक, बी. एल. इंस्टीट्यूट ऑफ इण्डोलॉजी
विजय वल्लभ स्मारक जैन मंदिर कॉम्पलेक्स
जी. टी. करनाल रोड, दिल्ली 110036
मो. 09868883648, ईमेल director@blinstitute.org

मंगलाचरण

णमिदूण वड्ढमाणं परमप्पाणं जिणं तिसुद्धेण।
वोच्छामि रयणसारं, सायारणयारधम्मीणं ।। 1 ।।

अन्वयार्थ–**(परमप्पाणं)** परमात्मा **(वड्ढमाणं)** वर्द्धमान **(जिणं)** जिन को **(तिसुद्धेण)** मन, वचन और काय की शुद्धिपूर्वक **(णमिदूण)** नमस्कार करके **(सायारणयारधम्मीणं)** सागार/गृहस्थ और अनगार/साधु धर्म वालों का व्याख्यान करने वाला **(रयणसारं)** रयणसार नामक ग्रंथ विषय को **(वोच्छामि)** कहता हूँ।

धर्मदेशना

भव्य बन्धुओ! अन्तिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। ये सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमण संस्कृति।

आचार्यप्रवर कुन्दकुन्द स्वामी ग्रन्थराज 'रयणसार' जी में वस्तुस्वरूप की व्याख्या प्रारम्भ कर रहे हैं। गुरुपूर्णिमा के दिन गुरु-शिष्य का मिलन हुआ है। भगवान् वर्द्धमान के चरणों का आश्रय गौतम स्वामी ने प्राप्त किया। योग्य पात्र के मिलते ही आज छयासठवें दिन भगवान् महावीर स्वामी की दिव्य देशना खिर रही है। तीर्थंकर के जन्म से तीर्थंकर शासन नहीं चलता। तीर्थंकर को केवलज्ञान हो जाये, तब भी तीर्थंकर शासन नहीं चलता। जब तीर्थंकर की दिव्य-देशना खिरती है, उसी दिन से तीर्थंकर का शासन प्रारम्भ होता है। जैनियों का यदि नववर्ष है तो आज का दिन है। यह श्रावण कृष्णा एकम्, आज हमारा धर्म का वर्ष प्रारम्भ होता है। जिनके शासन में हम बैठते हैं, जिनके काल में हम रहते हैं, ऐसे भगवान् की दिव्य देशना का दिन है। भगवान् महावीर स्वामी की वाणी आज ही के दिन प्रवाहमान हुई थी। वह जिन-देशना, जिसमें सम्पूर्ण तत्त्वों की व्याख्या है, सम्पूर्ण सिद्धांतों का प्रतिपादन है। कैवल्य से अनन्त को जाना और अनन्त को अनन्त रूप में जाना है। जिसका अन्त नहीं, वो अनन्त है। जैसा वस्तु का धर्म है, वैसा भगवान् ने जाना है। भगवान् के जानने से वस्तुव्यवस्था नहीं बनी। वस्तुव्यवस्था जैसी है, भगवान् ने वैसा जाना है। बहुत गम्भीर है, समझना। भगवान् ने जाना है, इससे वस्तुव्यवस्था नहीं है। भगवान् ने बताया है, इसलिये वस्तुव्यवस्था नहीं है। भगवान् के बताने से छः द्रव्यों का निर्माण हुआ क्या ? भगवान् के जानने से छः द्रव्यों का निर्माण हुआ क्या ? नहीं, ये छः द्रव्य त्रैकालिक हैं।

ज्ञानियो! भगवान् के जानने से, भगवान् के बताने से वस्तुव्यवस्था नहीं बनती। वस्तुव्यवस्था व्यवस्थित है और जैसी वस्तुव्यवस्था है, वह भगवान् के ज्ञान में आ रही है। यदि हम यों कहें कि भगवान् ने जाना है इसलिये ऐसा हो रहा है, तो भगवान् के जानने का कर्तृत्व भगवान् के बनाने में

चला जायेगा। सबसे मूल जो वस्तु है हमारे जैनदर्शन की, उसको सुरक्षित रखने की आवश्यकता है। भगवान् तीर्थंकर देव जान रहे हैं, इसलिये द्रव्य परिणमन कर रहा है, यदि ऐसा आप कहेंगे तो भगवान् के कैवल्य के पराधीन हो गया जगत् का परिणमन। जिस काल में केवली नहीं हुये, तो क्या उस काल में और उस क्षेत्र में द्रव्य का परिणमन नहीं हुआ ? भरतक्षेत्र में वर्तमान काल में तो कोई केवली नहीं हैं। भरतक्षेत्र में पंचमकाल में तो कोई अवधिज्ञानी, मन:पर्ययज्ञानी जीव नजर नहीं आ रहे हैं, तो क्या वस्तुव्यवस्था का परिणमन नहीं हो रहा है? जो जीव केवली के ज्ञान पर आलम्बित हुआ बैठा है, उससे प्रश्न करना कि अभी सम्प्रति वर्तमान काल में आपके सामने केवली नहीं हैं, फिर ये सारा-का-सारा विषय आप पता कैसे कर रहे हो ? सारे-के-सारे विषय की व्याख्या कैसे कर रहे हो ? सत् से कर रहे हो, कि मतिश्रुत ज्ञान से कर रहे हो ? मति-श्रुत ज्ञान आत्मा का धर्म नहीं है। जो-जो द्रव्य के बारे में कथन कर रहे हैं, वो सर्वज्ञ की वाणी का आलम्बन लेकर कर रहे हैं।

केवली भगवान् किसी वस्तु के कर्त्ता नहीं हैं और ज्ञानियो ! ध्यान रखना—आप अपने चैतन्य द्रव्य के भी कर्त्ता नहीं हो। सम्हलकर सुनना, ये जिनागम है। आप अपने चैतन्य द्रव्य के भी कर्त्ता नहीं हो। यदि आप अपने चैतन्य द्रव्य के कर्त्ता हो गये, तो इसे उत्पत्ति मानना पड़ेगी और यदि द्रव्य की उत्पत्ति मानते हो तो क्या वे त्रैकालिक हैं ? क्योंकि जो त्रैकालिक नहीं है, वो वस्तु नहीं है और जो वस्तु नहीं है, उसकी उत्पत्ति होती नहीं है। जो उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य है वो द्रव्य की पर्याय के परिणमन में घटित होता है। द्रव्य के द्रव्यत्व की उत्पत्ति नहीं है। द्रव्य की पर्यायों में परिणमन चलता है, लेकिन द्रव्य के द्रव्यत्व का नाश नहीं होता, द्रव्य के द्रव्यत्व की उत्पत्ति नहीं होती है। द्रव्य का द्रव्यत्व ध्रौव्य होता है और जो ध्रौव्य होता है उसी में उत्पाद, व्यय होता है। जैनधर्म का एक क्रिया पक्ष है और एक दार्शनिक पक्ष है। क्रिया पक्ष तो आपको मन्दिर में दिखाई देता है, मुनि महाराज दिखाई दे रहे हैं, पूजन पद्धति चल रही है, सब कुछ आप कर रहे हो, ये एक पक्ष है, ये जैनदर्शन नहीं है। जो ये देख-सुन रहे हो, ये जैनदर्शन का दार्शनिक पक्ष है।

भगवान् के होने से हम नहीं हैं, हमारे होने से भगवान् नहीं हैं। जिस आत्मा ने चारित्र का पालन किया है, मिथ्यात्व का विगलन किया है, सम्यक्त्व को प्राप्त किया है, रत्नत्रय से मण्डित हुआ है, ऐसा आत्मा परिणामों की विशुद्धि को उत्कर्ष करते हुये, कर्मों की क्षपणा करके, कर्मों का नाश करके केवली बना है। उसके ज्ञान में चराचर झलकता है। ज्ञान की विशुद्धि, ज्ञान की निर्मलता का प्रभाव है। चार व्यक्तियों का ज्ञान एक-सा नहीं होता। हर व्यक्ति के ज्ञान में तारतम्य होता है। जब हर व्यक्ति के ज्ञान में तारतम्य है, तो ऐसा भी कोई ज्ञानी है जिसके ज्ञान में चराचर झलकता है। हे ज्ञानी! ये पंजा है। ज्ञानी ! तेरे देखने से ये पंजा है या पंजा होने से तुझे दिख रहा है ? भैया ! जरा सम्हल

कर सुनना। मैं चाहता हूँ कि आप जरा भी भ्रम में न जायें, वस्तुस्वरूप को वास्तविक समझें। ये जो हाथ का पंजा आपको दिख रहा है, ये पंजा होने से आपको दिख रहा है या आपके दिखने से ये पंजा है ? भैया ! न ये आपके दिखने से पंजा है और न पंजा होने से आपको दिख रहा है। तो फिर क्या है ? तेरे नेत्रों में देखने का क्षयोपशम है और वस्तु 'हाथ' स्वतंत्र है, देखना स्वतंत्र है। ये तेरे नेत्रों के देखने की निर्मलता का प्रभाव है कि उसमें तुझे हाथ दिख रहा है, लेकिन हाथ के होने से नहीं दिख रहा है। हाथ है और नेत्रों की निर्मलता से दिख रहा है, ज्ञानी ! तेरे देखने से हाथ नहीं है, हाथ की सत्ता स्वतंत्र है और नेत्रों की सत्ता स्वतंत्र है। निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध इतना है कि ये हाथ है, इसलिये वह दिख रहा है और आँख है, इसलिये हाथ दिख रहा है। लेकिन आँख के होने से हाथ नहीं बना और हाथ के होने से आँख नहीं बनी। **'कण-कण स्वतंत्र है।'** व्यवहार में आप नहीं ला पाओ, ये विषय भिन्न है, लेकिन बुद्धि में लेकर बैठना कि वस्तु का स्वभाव कैसा है। जो मैं कह रहा हूँ वो आपको समझ में आ रहा है क्या ? आपके नेत्र निर्मित नहीं हुये हैं, दोनों स्वतंत्र हैं; परन्तु ये ज्ञेय है, दिखाई दे रहा है, जिसे आप जान रहे हो और ज्ञान जानता है, ज्ञाता है। पदार्थ ज्ञेय है और जिसको ज्ञान है, वो ज्ञाता है। ज्ञाता ज्ञान से जानता है और ज्ञाता ज्ञान को केवल जानता ही है, वो किसी वस्तु का परिणमन कराता नहीं है। ज्ञाता ज्ञान से केवल जानता ही है। यथार्थ मानकर चलना, नीति-निपुण की बातें तो दुनियाँ करना जानती है, लेकिन वस्तुस्वतंत्रता की बात केवल जैनदर्शन ही जानता है। ज्ञाता ज्ञेय को केवल जानता ही है, ज्ञाता ज्ञेयों का निर्माता नहीं है। ज्ञाता यानि जाननेवाला। पदार्थ तो जो ज्ञेय है, उन ज्ञेयों के जानने से ज्ञाता निर्मित नहीं हुआ और ज्ञाता के जानने से ज्ञेय निर्मित नहीं हुये हैं। ज्ञेय स्वतंत्र है,ज्ञाता स्वतंत्र है। यानि परस्पर का ज्ञेय-ज्ञायक भाव सम्बन्ध है। ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध है, ज्ञान-ज्ञेय सम्बन्ध है, परन्तु ज्ञेयों में अविनाभाव सम्बन्ध नहीं है। पर-ज्ञेयों में अविनाभाव सम्बन्ध नहीं है। निज ज्ञाता का निज ज्ञेय में अविनाभाव सम्बन्ध है। भैया ! मेरे होने से आपमें परिणमन नहीं हो रहा है, आपके परिणमन से मेरे में ज्ञान नहीं हो रहा है। मेरा ज्ञान ज्ञेयों को जानने में स्वतंत्र है और तेरा परिणमन स्वतंत्र है। यदि आपने अरिहंतदेव को यूँ कह दिया कि हे स्वामी ! आपके ज्ञान में झलकने से मेरे में परिणमन हुआ है, तो हे मुमुक्षु ! मेरा परिणमन पराधीन हो जायेगा और फिर हे जैनियो ! हे ज्ञानियो ! जैसे ईश्वरवादी सारे जगत् का परिणमन ईश्वर के हाथ में सौंप देता है, वैसे-ही जैनी भी अपना सारा परिणमन केवली पर सौंप देंगे तो मिथ्यादृष्टि, दोनों मिथ्यादृष्टि।

ज्ञानी ! इन बातों को सीखो, इनसे जैनदर्शन की रक्षा होगी, बाहर की बातों से कोई जैनत्व की रक्षा नहीं होगी। 'गुरुदेव की कृपा से सब काम हो रहे हैं। काम आप करते हो, नाम मेरा हो रहा है।' ये भक्ति की भाषा तो हो सकती है, लेकिन वस्तुस्वभाव नहीं है। क्योंकि यदि ऐसा है, तो फिर

गुरुदेव भोजन करें और तेरा पेट भर जाना चाहिये और शिष्य भोजन करे तो गुरु का पेट भर जायेगा। ध्यान दो-बाहर की भाषा में आकर हम जैन सिद्धांत के प्राण नष्ट नहीं करा सकते। ये जो भजन है, ये जैनदर्शन का भजन नहीं है। अरे भैया ! आप चाबी लिये घूम रहे हो और ताला नहीं खुल रहा है। जो चाबी ताले को नहीं खोले, वो चाबी 'चाबी' की संज्ञा को प्राप्त है क्या ? चाबी उसी के लिये कारणभूत है, जिस ताले को खोल पाये। ज्ञानी ! जिस उपदेश से मिथ्यात्व के कपाट न खुलें और सम्यक्त्व का देव न दिखे, वो मोक्षमार्ग का उपदेश नहीं होता है। चाबी तो वही है, जो ताला खोल दे। उपदेश तो वही है, जिससे मिथ्यात्व के कपाट खुल जायें और सम्यक्त्व का देव प्रकट हो जाये। ये भाषा नहीं चलेगी कि महाराज ! वो हम भक्ति में बोल गये। भक्ति तो आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने की है, तुम क्या भक्ति करोगे ? लड्डू खाकर नमस्कार नहीं किया। अरे ! नमस्कार किया तो चन्द्रप्रभ भगवान् को प्रकट कर लिया। ऐसी भक्ति करो। समझ गये ? लड्डू खाकर भी नमस्कार नहीं किया और जब नमन करने की बात आयी तो नमस्कार करते ही सामने चन्द्रप्रभ स्वामी प्रकट हो गये।

'वन्देऽभिवन्दम्', इतना शब्द बोला था, तो पिण्डी फट गयी और सामने चन्द्रप्रभ भगवान् प्रकट हो गये। वन्दना करो तो ऐसी करो जिसमें बन्ध न हो। ऐसी वन्दना मत करो जिसमें बन्ध हो। अवन्दनीय की क्या वन्दना ? भगवान् बाहुवली की वन्दना करने से काम तो बनता है, लेकिन भगवान् बाहुवली काम बनाने नहीं आते हैं। असाताकर्म के उदय से, पापकर्म के उदय से दुःख होता है और पुण्य के उदय से सुख होता है और पुण्य का आस्रव अरिहन्त की भक्ति से होता है। अरिहन्त की भक्ति से, पुण्य के आस्रव से तुझे फल प्राप्त हुआ है, न कि परमात्मा तुझे देने आया। भक्ति नहीं छुड़ा रहे। भक्ति तो खूब करना। और अधिक करना, लेकिन भगवान् को कर्त्ता नहीं बनाना। भगवान् भी मेरा कर्त्ता नहीं हैं और जिनवाणी भी मेरा कर्त्ता नहीं है और गुरु भी मेरा कर्त्ता नहीं हैं। आचार्य विरागसागर महाराज ! भो स्वामी ! आप मेरे दीक्षा के संस्कार के कर्त्ता तो हो, परन्तु दीक्षा के परिणामों के कर्त्ता नहीं हो। गुरु दीक्षा तो दे सकता है, गुरु पिच्छि-कमण्डलु तो दे सकता है, गुरु कपड़े उतारने के लिये तो बोल सकता है, लेकिन हे ज्ञानियो ! गुरु गुणस्थान नहीं दे सकता है। गुणस्थान तो तुझे स्वयं ही बनाना पड़ेंगे। गुणस्थान कौन बनायेगा ? परिणामकर्त्ता कौन होगा ? ये जगत् की लीपापोती वाली भाषा अब समाप्त करना पड़ेगी। ये बाहर के सिद्धान्त जैनत्व के सिद्धान्त नहीं हैं। उसको शुद्ध रखिये। भैया ! तूने भगवान् बुला लिये और यदि तेरा अशुभ कर्म का उदय हुआ और तेरा काम नहीं बना, तो भगवान् को सबसे पहले गाली तू ही देगा कि इतनी मेहनत की, इतना पुरुषार्थ किया और कुछ भी तो नहीं हुआ। अरे अभागे ! अपने पुण्य-पाप को क्यों नहीं निहारता ? भगवान् को दोष मत दो, अपने पाप को दोष दो। ये व्यापारियों का मार्ग नहीं

है कि हे प्रभु ! मैं सिद्धचक्र विधान करा दूँगा, मेरा ये काम बन जाये। यदि तेरा तीव्र असाता कर्म का उदय हुआ और तेरा काम नहीं बन पाया, तो तू यों कहेगा कि सिद्धों में कोई शक्ति नहीं है। अरे ज्ञानी ! सिद्धों में शक्ति का अभाव नहीं है, आप अपने पापोदय को क्यों नहीं निहारते हो ? ज्ञानियो ! बराबर है कि नहीं ? अरे मुमुक्षु ! तू घर का राग छोड़कर भगा, सो मन्दिर के राग में लग गया, आखिर में तूने किया क्या ? स्थानान्तरण ही तो किया है, राग कहाँ छोड़ा है ? अहो! बेचारे ने क्या किया ? घर का राग छोड़ने के लिये दूसरे राग में लग गया। परन्तु हे ज्ञानी ! ये वीतराग मार्ग है, इसमें राग से राग हटाने के लिये तो राग करना, परन्तु राग में लीन होने के लिये राग नहीं करना। क्या गजब की बात है—"राग को हटाने के लिये तो राग करना, पर राग में लीन होने के लिये राग नहीं करना।" यदि पैर में काँटा चुभ जाये तो हे ज्ञानी! हाथ में काँटा लेकर उस काँटे को निकाल लेना, यानि काँटे को निकालने के लिये काँटा हाथ में लेना, पर जेब में रखने के लिये काँटा मत लेना। अरिहंत प्रभु के प्रति राग तो रखना, भक्ति करना, ये प्रशस्त राग है। परन्तु हे ज्ञानी! ये राग भी केवल अशुभ राग से हटने के लिये रखना, उस राग में डूब मत जाना। नहीं तो मालूम चला कि जिसके लिये तू यहाँ आया था, उस पर लक्ष्य ही नहीं गया और तेरा पूरा जीवन इन फोटो, कलेण्डर में नष्ट हो गया। क्या किया आपने ?

मेरा चातुर्मास चल रहा है यहाँ सागर में, इसके कितने कलेण्डर छपवाये आपने ? अरे ज्ञानी ! चित्रों में छपने से यदि मोक्ष मिलता होता तो चारित्र की क्या आवश्कता थी ? ज्ञानी ! चित्रों से मोक्ष नहीं मिलता, मोक्ष तो चारित्र से मिलता है। ये फोटो, ये कलेण्डर ये मोक्षमार्ग की परम्परा नहीं है। इसलिये चित्रों को मत सम्हालिये, सम्हाल सको तो चित्त को सम्हालो। मुमुक्षु ! चित्रों को मत सम्हालिये। ये कितने ही सुन्दर बनेंगे, परन्तु समय आने पर ये नीचे जमीन पर ही गिरे मिलेंगे। चित्रों को मत सम्हालिये, यदि सम्हालने की इच्छा है तो अपने चित्त को सम्हाल लीजिये। यदि तेरा चित्त सम्हल जायेगा, तो चारित्र सम्हल जायेगा और चारित्र सम्हल गया तो निर्वाण मिल ही जायेगा। ये है रयणसार।

अब सोचो मुमुक्षुओ ! तुम तो परोक्ष वाणी सुन रहे हो। साक्षात् तीर्थंकर के समवसरण में बैठा राजा श्रेणिक कितना भाग्यशाली होगा ? अहो ! जब आचार्य, मुनि के मुख से तुम तत्त्व सुनते हो तो गद्‌गद् भाव आते हैं, फिर साक्षात् तीर्थंकर के श्रीमुख मण्डल से सुनता होगा वो कितना भाग्यवान् जीव होगा ? बड़े भवन में बैठकर हजारों की भीड़ में तुम केवल वेदन ही करो। आज साक्षात् तीर्थंकर, विपुलाचल पर्वत पर बैठे वर्द्धमान स्वामी के समवसरण में बैठकर ही अरिहंत की वाणी का पान कर रहे हैं। असंख्यात गुणश्रेणी कर्म की निर्जरा कराती है माँ जिनवाणी। दिख तो चेहरे मात्र रहे हैं, परन्तु उन ज्ञानियों से पूछो—परिणाम कैसे ऊपर-नीचे हो रहे हैं ? गद्‌गद् भाव आ रहे हैं। जितने गद्‌गद् भाव हैं, यही आत्मा की विशुद्धि है। कर्मबद्ध आत्मा मूर्तिक है, कर्म निर्बद्ध

आत्मा अमूर्तिक है। योगी जब शुद्धोपयोग में लीन होता है, उस समय पंचपरमेष्ठी का आलम्बन छूट जाता है। तब आलम्बन किसका रहेगा ? निज ध्रुव चैतन्य आत्मा का ही आलम्बन रहेगा। कैसे ? घृत का मल हटता है अग्नि पर रखने से और घी का मल हट जाता है तब भी घी तपता रहता है, अब क्या तप रहा है? घी का तपन घी में ही हो रहा है। अब शब्दों के पास सामर्थ्य नहीं है, अतः जो मैं कह रहा हूँ, उसे अनुभूति का विषय बनाइये। आप बहुत गहरे में जा चुके हो। आप तो कानों से मात्र सुन रहे हो, मैं कह नहीं रहा हूँ, यानि अन्दर का विषय है। ज्ञानी ! जितना गहरा जिनवाणी का रहस्य था, वो लोगों के सामने आ नहीं पाया। नियोग तुम्हारा पुण्य का है, कि ऐसे भाव मन में आये कि ऐसे ग्रन्थों का वाचन करो। हमारी भोली समाज को इस बात का बोध होना चाहिये कि जैनविद्या मात्र **स्वाहा-स्वाहा** नहीं है, स्व भी है। इसके अन्दर, इसके आगे ज्ञानी! और-कुछ भी है, उसका नाम ध्रुव भगवान्-आत्मा की प्राप्ति है।

सागर चातुर्मास वर्ष 2000 के बाद आप सोचो मैं क्या करता रहा हूँ ? कुछ भी नहीं किया। मात्र इसमें प्रयास किया है कि भगवान् महावीर का असली रूप क्या था ? और लोग सब देखते हैं कि महाराज मुस्कुरा रहे हैं, अच्छे से बैठे हैं, तो तुम विशुद्धसागर को देखते हो, जितने मुनिराजों को देखते हो, वो बाहरी रूप देखते हो। पिच्छि-कमण्डलु के मुनि को देखना हो तो वे 'मूलाचार' में मिलेंगे और आत्मस्वभाव के मुनि देखना हो तो 'समयसार' में मिलेंगे। मुनि के बाहरी रूप का वर्णन 'मूलाचार' में है और मुनि के अंतरंग मुनि का वर्णन 'समयसार' में है। और अंतरंग मुनि प्रकट कैसे होता है ? इसका वर्णन करणानुयोग में मिलेगा और मुनि होते कैसे हैं ? ये प्रथमानुयोग में मिलेगा। बस ! और आप कैसे जानो ? सामने जो यंत्र (वीडियो केमरा) रखा हुआ है, इससे जानो। ये जो वीडियो केमरा है,ये जो भी चित्र खींचेगा, जो भी चित्र दिखायेगा, ये सब शरीर के दिखायेगा, केवल ऊपरी-भाग, परन्तु ये एक्सरा नहीं है। एक्सरे की जो मशीन होती है, वो शरीर की चमड़ी नहीं बता पायेगी, आपने कैसे कपड़े पहने हैं, वो नहीं बता पायेगी। वो क्या देखेगी ? मुमुक्षु ! शरीर के अन्दर की हड्डियाँ कैसी हैं ? परन्तु ध्यान रखना, जिस चित्र को केमरा खींच रहा है, वो भी पूर्ण नहीं है और जिसे एक्सरा खींच रहा है, वो भी पूर्ण नहीं है। इन दोनों से जो खिंच रहा है, वो पूर्ण है व्यवहार से। एक्सरा जो खींचेगा, वो हड्डी का चित्र निकालेगा। केमरा जो चित्र खींचेगा, वो शरीर का निकालेगा और यह शरीर न हड्डी मात्र है, न चमड़ा मात्र है। तेरा शरीर दोनों रूप है। ज्ञानी ! व्यवहारनय केमरा है, निश्चयनय एक्सरा है।

बाहर मत आओ, अन्दर जाओ। भीतर का तत्त्व क्या है ? जब सुनते-सुनते 'आहा' निकल पड़े मुख से कि ये क्या है ? तब समझो तुम भीतर कुछ सुन रहे हो। आप जो देख रहे हो, वो नेत्रों का विषय है और जो देख रहा है, वो आत्मा का विषय है। जो देख रहे हो, वो नेत्रों का विषय है

और आप जो देखना चाहते हो, वो आत्मा का विषय है। तो आत्मा के विषय को शब्दों से कैसे बताया जाये ? मुमुक्षु ! **'शब्दानुच्चारणेऽपि स्वस्यानुभवनमर्थवत्।** (प. मुख. सू.) ये सब विद्वान् पढ़े-लिखे बैठे हुये हैं, पर इनका कोई दोष नहीं है, इनकी कोई गलती नहीं है। विद्वानों को मध्यकाल में छला गया है बेचारों को। ज्ञानी ! जब ये युवा विद्वान् था, उस समय इससे ये बोला गया होगा कि 'समयसार' नहीं पढ़ना। तो इन लोगों को ऐसा रटा कर रखा गया कि समयसार नहीं पढ़ना। तो इन बेचारों ने क्या किया ? पूरा जीवन इन्होंने समयसार के विरोध में नष्ट कर दिया। अब बताओ—आप इस समय क्या सुन रहे हो ? जो मैं आपको सुना रहा हूँ, इसमें आप सुन क्या रहे हो ? तत्त्व यानि समयसार। सत्य बताना, आपको यदि समझ में नहीं भी आ रहा हो, तो भी शांति महसूस होती है कि नहीं ? होती है न ? विश्वास रखना, जब भी निर्वाण मिलेगा, इस तत्त्व से ही मिलेगा। कुछ लोगों ने विपरीत व्याख्या कर दी समयसार की, सो गड़बड़ कर दिया। कुछ लोगों ने समयसार की व्याख्या ही बंद कर दी, सो गड़बड़ कर दिया। निषेध में जीवन व्यर्थ किया है। यदि उसकी सम्यक् प्ररूपणा करते तो आज हमारी अखण्ड समाज दिखाई देती। क्या करूँ ? महाराज ! दृष्टांत तो आप देते रहो। अरे ज्ञानी ! सुनो, जाति मिक्स, कुल मिक्स, वंश मिक्स । ये सब मिक्स-मिक्स तो हो गया। पता ही नहीं चलता। घर के द्वार पर लिखा है 'जैन' और घर में भीतर जाकर देखो तो पिता जैन, माँ का पता नहीं कौन—ये हैं मिक्स। अहो ! बुरा लगे तो आज ही लग जाये। मैं तो जानकर बोलता हूँ। अरे ! युवा सुधर जायेंगे। भैया ! इतनी करुणा करना जैनदर्शन के ऊपर। तुम्हारे पिता ने तुमको जन्म दिया है, सन्तान को जन्म दिया है और सन्तान का अर्थ ये होता है कि वो सनातन धर्म को लेकर आगे चले। यदि आप किसी भी कुल की लड़की लेकर आ गये, तो फिर ज्ञानी ! तुम्हारे घर में नमोऽस्तु-नमोऽस्तु कहना बंद हो जायेगा, तो जैनशासन कैसे आगे चलेगा ? इसलिये जितने युवा आज यहाँ बैठे हों, आज नियम ले लेना कि या तो शादी नहीं करायेंगे और यदि कराई तो अपने ही समाज में। यही दृष्टि बेटियों को भी रखना है। ये व्याख्यान तो विद्वानों को करना चाहिये, मगर ये बोलते नहीं हैं। बोलें कैसे ? चोर-चोर मौसेरे भाई। बोले कि मुझे ही नहीं मालुम कि मेरे घर में क्या होने वाला है ? अरे ! मेरा कोई घर नहीं है, इसलिये मुझे तो मालूम है कि मेरे घर में कुछ नहीं होने वाला है। धर्म की रक्षा करना चाहते हो तो पहले बेटे-बेटियों की रक्षा करो। बाहर का विषय जल्दी समझ में आता है और भीतर का बोलो तो सब ठण्डे हो जाते हैं।

ज्ञानी ! श्रुतज्ञान जो है, इससे विराट कोई ज्ञान नहीं है। कैवल्य भी प्रकट होगा तो श्रुत के नियोग से होगा। दोनों में अन्तर इतना है कि एक प्रत्यक्ष है और दूसरा परोक्ष है। जैसे केवली भगवान् मूर्तिक-अमूर्तिक द्रव्यों को प्रत्यक्ष जानते हैं, ऐसे-ही श्रुतकेवली प्रत्यक्ष नहीं जानते, लेकिन परोक्ष जानते हैं। अमूर्तिक को विषय नहीं बनायेंगे तो अमूर्तिक की व्याख्या कैसे करेंगे ?

अमूर्तिक की व्याख्या कर रहे हैं तो अमूर्तिक भी श्रुत का विषय बन रहा है, परोक्षभूत। निज आत्मा का आलम्बन लिये बिना कैवल्य प्रकट होगा नहीं और शुक्लध्यान की जो भूमिका बनती है, उसमें एकत्व-विभक्त योगों की संक्रांति है। ज्ञानी ! द्रव्ययोग, भावयोग इनका जो संक्रमण चल रहा है, आत्मा का आलम्बन जो है, वो यथार्थ में श्रुतज्ञान है। वो आत्मा को छोड़कर कोई भिन्न नहीं है। जो तत्त्वज्ञान है वह केवलज्ञान है, जोकि युगपत् कहता है। क्रमभावी जो जो ज्ञान है वह स्याद्वाद नय से युक्त है उसका नाम श्रुतज्ञान है। दोनों में अन्तर क्या है ? एक परोक्ष है और दूसरा प्रत्यक्ष है।

तत्त्वज्ञानं प्रमाणं ते, युगपत् सर्वभासनम्।
क्रमभावि च यज्ज्ञानं स्याद्वाद नय संस्कृतम्॥ (आ.मी. ॥ 101)

ध्यान दो, इसलिये सर्वज्ञ के होने से वस्तु में परिणमन नहीं है। वस्तु का परिणमन सर्वज्ञ के ज्ञान में झलक रहा है, इसमें कोई शंका नहीं है। क्योंकि हम लोग जो हैं वे अकर्तृत्व पर दृष्टि रखे हुये हैं। हे ज्ञानी ! तूने यदि कर्त्ता किसी को बनाया है, तो विश्वास रखना—मूलगुणों का निर्मल पालन करेगा तब भी मिथ्यादृष्टि होगा। ध्यान दो, जो योगी मूलगुणों का निर्दोष पालन करता है, लेकिन परमात्मा को अपना कर्त्ता मानकर चलता है, तो वह मिथ्यादृष्टि है। मूलगुणों के पालन में किंचित् कमी भी हो जाये, लेकिन कर्तृत्व भाव से कभी युक्त नहीं होता है। वह प्रायश्चित लेकर निर्दोष परमात्मा बनेगा, वो मोक्षमार्गी है और निर्दोष नियम का पालन करने वाला यदि परमात्मा को कर्त्ता मानकर चलता है तो वो मोक्षमार्गी है ही नहीं। मूल को निहारो, मूल को। इसलिये भूल जाओ आज से कि तेरी कृपा से सब काम हो रहे हैं, प्रभु काम आप करते हो नाम मेरा हो रहा है। हमारे भगवान् करने नहीं आते हैं। ये कुछ पण्डितों ने भ्रष्ट किया है, आप बुरा नहीं मानना। अरे ! बुरा मानो। बिल्कुल क्षमा नहीं करना। क्या करूँ ? स्याद्वाद है, इसलिये कह रहा हूँ। अब कल्पना करो, वीरशासन जयंती के दिन जब वीर की वाणी खिरी होगी, क्या अद्भुत घोष गूँजा होगा। ये वचन किसी ऐरे-गैरे के नहीं हैं, ये वचन उस वीर के हैं। वैसे चौबीस घंटे बिल्कुल शांत रहना चाहिये, सीधे-सादे सरल बनकर रहना चाहिये, परन्तु जिनवाणी की गद्दी पर आओ तो गीदड़ बनकर नहीं आना, सिंह बनकर आना। भगवान् की वाणी को कहने में बिल्ली-जैसे नहीं बनना। जब मिथ्यादृष्टि लोग चिल्ला-चिल्लाकर मिथ्यात्व बोल सकते हैं, तो आपको अरिहंत की देशना में डरने की क्या आवश्यकता है ? **पटुसिंघनादै।** आचार्य समन्तभद्र स्वामी कहते हैं—हे प्रभु ! आपकी वाणी सिंह का नाद है। कितने ही भयंकर पहाड़-जैसे गज घूम रहे हों जंगल में, परन्तु जैसे-ही सिंह की दहाड़ होती है, सारे हाथी सूँड को दबाकर भाग जाते हैं जंगल में। ऐसे-ही अरिहंत की देशना, स्याद्वाद वाणी सिंह है और मिथ्यात्व के वे हाथी अपने आप भाग जायेंगे।

पटुसिंघनादै। और आचार्य समन्तभद्र स्वामी क्या लिख रहे हैं—हे वर्द्धमान ! आपके श्री पादमूल में अभद्र भी आ जाये वो भी समन्तभद्र हो जाये।

मंगलाचरण प्रारम्भ कर रहे हैं 'रयणसार' ग्रंथ का। रयण यानि रत्न और रत्नों में भी सार। ज्ञानियो ! रत्नों में भी यदि कोई महारत्न है तो उसका नाम है वज्र। रत्नों में वज्र यानि पन्ना का हीरा, वृक्षों में गोशीर चन्दन, पर्वतों में पूज्य पर्वत सम्मेद शिखर। धर्म में कोई धर्म है तो उसका नाम जैनधर्म है। जिनशासन यानि जिनेन्द्र की वाणी और जैनशासन यानि नमोस्तु शासन। जैनशासन का पर्यायवाची नाम नमोऽस्तु शासन है। जगत् के किसी भी दर्शन में नमोऽस्तु नहीं बोला जाता है, एकमात्र जैनशासन में नमोऽस्तु बोला जाता है। रयणसार यानि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र ये तीन रत्न हैं। इन तीन रत्नों का सार है—रयणसार। जिस ग्रंथ में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र का वर्णन है, ऐसे ग्रंथ का नाम है रयणसार।

ज्ञानी ! हर वस्तु में गुण होते हैं, हर व्यक्ति में गुण होते हैं। ऐसी कोई वनस्पति नहीं जिसमें औषधि गुण न हो।

णमिदूण वड्ढमाणं, परमप्पाणं जिणं तिसुद्धेण।
वोच्छामि रयणसारं, सायारणयारधम्मीणं ॥ 1॥

मैं उन वर्द्धमान स्वामी को नमस्कार करता हूँ। ऐसे वर्द्धमान नहीं जो श्री व स्त्री से युक्त हों। ज्ञानी ! श्रीमान् स्त्रीमान् ये कोई परमात्मा नहीं होते हैं। उन वर्द्धमान की वन्दना है जिनके अन्तरंग से श्री भी निकल गयी हो, स्त्री भी निकल गयी हो। ज्ञानी सन्मति ! अब सन्मति बनो कैसे आप ? जिसके अन्तस् में श्री बैठी हो, जिसके अन्तस् में श्रीमती बैठी हो, वो सन्मति हो ही नहीं सकता है। पहले श्रीमती हटाओ, तब बनोगे सन्मति। जिसकी मति श्री में लगी है, वो सन्मति नहीं होता है। जो स्त्री और श्री दोनों को छोड़ चुका है, उसका नाम तीर्थंकर सन्मति है। आप किसकी वन्दना कर रहे हो ? श्रीमती की । भैया ! जितने युवाओं को शादी करना हो, मैं उन्हें शादी करने से मना नहीं कर रहा हूँ, लेकिन इतना ध्यान रखना—एक बार अपने पिताजी से ये जरूर पूछ लेना कि पिताजी ! साँची-साँची कहियो, क्या मिला तुम्हें शादी करने से ?

जो परमात्मा जिनेन्द्र वर्द्धमान हैं, ऐसे वर्द्धमान को नमस्कार करता हूँ। कैसे ? त्रिशुद्धं (मनशुद्धि, वचनशुद्धि, कायशुद्धि)।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्। आत्मा का स्वभाव परभाव से अत्यंत भिन्न है।

'भगवान् महावीर स्वामी की जय'

❖ ❖ ❖

सम्यग्दृष्टि कौन ?

पुव्वं जिणेहि भणिदं, जहट्ठियं गणहरेहि वित्थरिदं।
पुव्वाइरियक्कमजं, तं बोल्लदि जो हु सद्दिट्ठी ॥2॥

अन्वयार्थ – **(जो)** जो **(हु)** वस्तुतः/निश्चय से **(सद्दिट्ठी)** सम्यग्दृष्टि है वह **(पुव्वं)** पूर्व काल में **(जिणेहि)** जिनेन्द्रों ने जो **(भणिदं)** कहा **(गणहरेहि)** गणधरों ने **(जहदिट्ठं)** उसी सत्य को **(वित्थरिदं)** विस्तृत किया—विस्तार रूप से बताया और जो **(पुव्वाइरियक्कमजं)** पूर्वाचार्यों के क्रम से/परम्परा से प्राप्त हुआ उसी को **(बोल्लदि)** कहता है।

धर्मदेशना

भव्य बन्धुओ ! अन्तिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना जिनेन्द्रवाणी मनीषियो ! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति।

आचार्य भगवान् कुन्दकुन्द स्वामी ग्रन्थराज रयणसार जी में सत्यार्थ स्वरूप का व्याख्यान करते हुये समझा रहे हैं—वस्तुव्यवस्था व्यवस्थित है, अतः वस्तु को व्यवस्थित करने का प्रयास मत करो। यदि व्यवस्थित करना ही चाहते हो तो अपने परिणामों को व्यवस्थित कर लो। वस्तुव्यवस्था व्यवस्थित है, उससे आपका बंध-मोक्ष से कोई संबंध नहीं है। यदि जीव के बंध-मोक्ष का संबंध किसी का है तो अपने निज योगों को व्यवस्थित करने का है। ज्ञानी ! चाहे वायु पूर्व दिशा की ओर जा रही हो, चाहे पश्चिम से पूर्व की ओर जाये, चाहे उत्तर से दक्षिण की ओर जाये या दक्षिण से उत्तर की ओर आये, वायु के संचार से तेरे बंध-मोक्ष में कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। वायु के संचार से आपके बंध-मोक्ष में कोई प्रभाव नहीं पड़ता है, लेकिन आपके परिणामों के संचार से ज्ञानी बंध/मोक्ष में प्रभाव पड़ता है। ज्ञानी ! मन्दिर की ध्वजा को निहारो। वो चलायमान है, स्थिर नहीं है। कितनी ही सुन्दर ध्वजा लगा दो, विश्वास रखना, कुछ ही दिनों के अन्दर वो नष्ट होती दिखाई देगी। लेकिन कलश व शिखर, वो सोने का कलश जो चढ़ा हुआ है, उस पर ज्ञानी ! बारिश हो रही है, धूप पड़ रही है, शीत आ रहा है, लेकिन शुद्ध सोना अपना रंग नहीं बदलता। जो स्थिर होता है, वो सुरक्षित होता है और जो चलायमान होता है, वो नष्ट होता है। जिसके परिणाम स्थिर हो जाते हैं, वो सिद्धालय में तिलक बनकर बैठता है और जिसके परिणाम चलायमान होते हैं, वो नरक का नारकी बन जाता है। स्थिरता लाओ, भगवान् को स्थिर मत करो। यदि स्थिर कर सकते हो तो भावों को स्थिर करो। भगवान् को स्थिर करने से आप भगवान् नहीं बन सकते। जो भावों को स्थिर करता है, वो ही भगवान् बनता है। इसलिये स्थिरता लाओ। आप विश्वास रखना, भगवान् कभी भगवान् नहीं बनता है। जिसके भाव स्थिर हैं, वो ही भगवान् बनता है।

भगवान् कुन्दकुन्द स्वामी 'रयणसार' जी में कह रहे हैं—जो बन्ध न कर रहे हैं, वे वन्दना कर रहे हैं। समझ में आ रहा है क्या ? वन्दना करो, बन्ध न करो। बन्ध न करो, वन्दना करो। परमेष्ठी के पादमूल में आकर भी बन्ध करके चला जाता है और ज्ञानी घर में बैठकर भी वन्दना कर लेता है। घर में बैठकर भी कर्म की निर्जरा कर लेता है। ज्ञानी ! ध्यान दो, घर में बैठे-बैठे यदि नारी का ध्यान कर रहा है तो अशुभ आस्रव होगा कि नहीं होगा ? ज्ञानी ! जब अशुभ आस्रव घर में बैठे-बैठे हो सकता है, तो घर में बैठे-बैठे यदि भगवान् का ध्यान करेगा तो पुण्य-आस्रव भी होगा। मोक्ष तेरे हाथ में है, संसार तेरे हाथ में है। भगवान् के हाथ में न तो मेरा मोक्ष है, न मेरा बन्ध ा है। कण-कण स्वतंत्र है। निज के भावों में ही बन्ध है और निज के भावों में ही मोक्ष है। भगवान् स्वतंत्र हैं, उनकी सत्ता स्वतंत्र है। सम्पूर्ण पदार्थों की सत्ता स्वतंत्र है। भगवान् बंध नहीं कराते, भगवान् मोक्ष नहीं दिलाते; परन्तु भगवान् की अवहेलना यदि करेगा, तो निश्चित ही बन्ध होगा और भगवान् की वन्दना करेगा तो मोक्ष मिलेगा। सारे विश्व में वस्तुस्वतंत्रता की व्याख्या करने वाला यदि कोई है तो उसका नाम वीतराग जिनशासन है। वर्द्धमान को नमस्कार हो। कौन-से वर्द्धमान को ? जो श्री से वर्द्धमान हों, धी से वर्द्धमान हों, चारित्र से वर्द्धमान हों और जो श्री की वर्द्धमानता को छोड़कर चारित्र में वर्द्धमान हुये हैं, वो तीर्थंकर भगवान् महावीर हैं। नमः श्री वर्द्धमानाय। मैं उन वर्द्धमान की वन्दना करता हूँ जो 'श्री' से सम्पन्न हैं। ऐसे वर्द्धमान नहीं जो श्री व स्त्री से युक्त हों। उन वर्द्धमान की वन्दना है जिनके अन्तरंग से श्री भी निकल गयी हो, स्त्री भी निकल गयी हो।

ज्ञानी ! आप यहाँ शांति से समझना, थोड़ा विरोधाभास है। विरोध एकान्तवादियों के घर में होता है, अनेकान्तवादियों के घर में विरोध नहीं होता है। श्री रहित वर्द्धमान की वन्दना हो। श्री यानि धन, रुपया-पैसा और श्री यानि अन्तरंग केवलज्ञान लक्ष्मी से युक्त जो हैं, ऐसे वर्द्धमान की वन्दना है। नमः श्री वर्द्धमानाय, मैं उन वर्द्धमान की वन्दना करता हूँ जो वर्द्धमान 'श्री' से युक्त हैं। ज्ञानी ! दरिद्रियों की कौन वन्दना करता है ? भिखारी की कौन वन्दना करता है ? भैया ! भिखारी को तो कोई अच्छे से देखता भी नहीं है। ये तीर्थंकर वर्द्धमान हैं। ज्ञानियो ! ये मोक्षमार्ग निर्ग्रन्थों का मार्ग तो है, लेकिन ये भिखारियों का मार्ग नहीं है। ये कंगालों का मार्ग नहीं है, ये चारित्रसम्पन्नों का मार्ग है। कोई ये न सोचे कि जिनको खाने को, रहने को न मिलता हो, वे मुनिमहाराज बन जायें। यदि रहने को, खाने को न मिलने से मुनि बनते होते तो ज्ञानी ! विश्वास रखना, भारतभूमि में कोटि-कोटि भिखारी घूम रहे हैं, वो क्यों नहीं मुनि बनते ? समझो, गली-गली में भीख माँगने वाले मिल जायेंगे। बहुत अच्छा हुआ कि हे वर्द्धमान ! हे तीर्थेश ! तुम भिखारियों के बेटे नहीं थे, तुम ब्राह्मण के बेटे नहीं थे, तुम क्षत्रिय सम्राट के बेटे थे। इन रागियों को मालूम चलना चाहिये कि ये

भिखारियों का मार्ग नहीं है, ये वीतरागियों का मार्ग है। ये श्रीजिन शासन, ये नमोऽस्तु शासन भिखारियों का मार्ग नहीं है। ये **वित्तरागियों** का मार्ग नहीं है, ये तो वीतरागियों का मार्ग है। जो वित्त के रागी हैं, वे भिखारी हैं और जो वीतरागी हैं, वे अरिहंत सर्वज्ञदेव हैं।

सुनो ध्यान से, ये वाणी धर्मज्ञ की नहीं है। भैया ! जरा सम्हल कर सुनना। न्यायमिश्रित व्याख्यान है ये। ये अपने पुण्य का नियोग है कि अरिहंत की वाणी सुनने को मिल रही है। ये मार्ग जो है, ये जो उपदेश चल रहा है, ये धर्मज्ञों का उपदेश नहीं है। ज्ञानी ! सर्वज्ञ बनने के लिये धर्मज्ञ बनना पड़ता है। जो धर्मज्ञ मात्र बन कर बैठा है, वो सर्वज्ञ कभी बन नहीं पायेगा। धर्मज्ञ के लिये रत्नत्रय का पालन नहीं होता है, सर्वज्ञता के लिये रत्नत्रय का पालन होता है। इतना ही अंतर है सुगत में और महावीर में। सुगत धर्मज्ञ मात्र थे और महावीर धर्मज्ञ नहीं, धर्मज्ञता के साथ सर्वज्ञ थे। उपदेश सर्वज्ञ का प्रमाण होता है, धर्मज्ञ का कोई प्रमाण नहीं होता है। धर्मज्ञों का उपदेश कोई प्रमाण नहीं होता है, क्योंकि हर सम्प्रदाय का आचार्य धर्मज्ञ होता है। हर सम्प्रदाय का गुरु धर्मज्ञ होता है। चार्वाक कहता है कि मेरा धर्म चार्वाक है यानि जब तक जियो, सुख से जियो और खाने को न मिले तो ऋण लेकर घी पियो। पूछा, क्यों ? बोले-महाराज ! जब तक जीवन है, आनंद से रहो, कल किसने देखा है ? वो चार्वाक हो गया। पिता ने बेटे से कहा कि तुम मन्दिर जाओ। अब बेटा ही कहने लगा कि तुम ही जाओ। तुमने पाप किये हैं, तुम ही मन्दिर जाओ। किसने देखा स्वर्ग ? किसने देखा मोक्ष ? सामने जो है, मैं तो उसका सुख भोग रहा हूँ, आपको जाना है तो आप ही जाओ। अहो ज्ञानी ! अब नयनों से आँसू टपकाओ मुझे नहीं था मालूम कि जिस कुल में नमोऽस्तु-नमोऽस्तु बोला जाता हो, जिस कुल में जिनवाणी का पान किया जाता हो, उस कुल में ये चार्वाक कहाँ से आ गया ? जरा ध्यान से सुनो। यदि तुम्हारे कहने से भी बेटा मन्दिर नहीं जा रहा है तो ये मानकर चलना कि तेरे घर में ही चार्वाक प्रवेश कर चुका है जो कहता है कि जब तक जियो सुख से जियो; न हो तो ऋण लेकर घी पियो।

ज्ञानी ! धर्म की बड़ी-बड़ी चर्चा करने के पहले आत्मा की सिद्धि की बात होनी चाहिये। जिसको आत्मा की सिद्धि पता नहीं है, आत्मा की सत्ता को नहीं स्वीकारता है, उसे जगत् के धर्म की व्याख्या करने की क्या आवश्यकता है ? आत्मा की त्रैकालिकता स्वीकार करना पहले, इसके बाद धर्म की व्याख्या करना। **त्रैकाल्यं द्रव्य षट्कम्।** जिसको तीन काल का बोध न हो, तीनकाल को न स्वीकारता हो, उस ज्ञानी को आप धर्म की क्या बात बताओगे ? आत्मा त्रैकालिक है। आत्मा त्रैकालिक है, तभी तो पुण्य-पाप की व्याख्या है और त्रैकालिक आत्मा को यदि नहीं मानता है, तो उसके लिये पुण्य-पाप की व्याख्या क्यों ? ये 'नमः श्री वर्द्धमानाय' मंगलाचरण क्यों ? श्री वर्द्धमान को नमस्कार क्यों ?

भैया ! आप कल्पना करो, हमारे आचार्यों ने कितनी मेहनत की है इस श्रमण संस्कृति की रक्षा के लिये। जैन तत्त्व की सुरक्षा के लिये वीतरागी आचार्यों ने कितनी मेहनत की है। अकलंक ने अपने भाई को खो दिया, तब नमोऽस्तु शासन को जयवंत किया। मेरे युवाओ ! मेरे मित्रो ! आप से मित्र कह रहा हूँ, मित्र। निर्ग्रंथ योगी का तो प्राणीमात्र मित्र होता है। सुनो भैया, जो बात माँ से छिपा ली जाये, पिता से छिपा ली जाये, परन्तु मित्र से कोई बात छिपाई नहीं जाती है, इसलिये मैं आपको मित्र कह रहा हूँ। मेरे मित्रो ! इतना ध्यान रखना, एक क्षण को अकलंक-निकलंक को निहार लेना। विद्याध्ययन को गये और अध्यापन कराते-कराते अध्यापक ने एक सूत्र को छोड़ दिया। जिस सूत्र को छोड़ा था, उसमें जैनदर्शन के स्याद्वाद की सिद्धि हो रही थी। अकलंक एक बार जो सुन लेते थे, उन्हें वो पूर्ण याद हो जाता था। जब भी वस्तु की सिद्धि होगी तो नय प्रमाण से होगी, ये सिद्धांत-सिद्ध है। वापस अध्यापक आया, उसने श्यामपट्ट को देखा, उसे देखते ही वो सोच में डूब गया, अरे ! ये क्या है ? जरूर कक्षा में कोई जैन छात्र होना चाहिये। युक्ति नहीं होगी तो आगम की सिद्धि नहीं कर पाओगे। युक्ति नहीं होगी तो ज्ञानी ! जिनशासन की रक्षा नहीं कर पाओगे। सभी छात्रों को बंद कर दिया गया और अरिहंत की प्रतिमा को जमीन पर डाल दिया गया। अहो ! कैसे दिन देखे उन लोगों ने। अरिहंत की प्रतिमा को जमीन पर डाल दिया और छात्रों से कहा कि इसको लांघो। वीर अकलंक निकलंक दोनों भैया एक दूसरे को देख रहे हैं, क्या करें ? जिनमुद्रा को कैसे लांघ सकते हैं ? ध्यान रखना, **न धर्मोधार्मिकैर्विना।** धार्मिकों के बिना धर्म नहीं होता है।

भैया ! पुण्य से सम्पत्ति मिली है, पुण्य से अधिकार मिले हैं। इन अधिकारों और सम्पत्ति को प्राप्त करके समाज की रक्षा करना। आपका शत्रु भी क्यों न हो, यदि वो णमोकार पढ़ता हो तो उसकी रक्षा करना। शत्रु मेरा व्यक्तिगत तो हो सकता है, परन्तु चूँकि वो णमोकार पढ़ रहा है, इसलिये वो अरिहंतदेव का भक्त है और जो अरिहंतदेव का भक्त है अर्थात् मेरा भगवान् और उसका भगवान् एक है, तो जिनके पिता एक हों वे आपस में कौन कहलायेंगे ? भाई-भाई हैं कि नहीं ? जब दोनों के परमात्मा एक हैं, तो दोनों आपस में भाई हैं। इसलिये भले ही आपस में लड़ लेना, लेकिन भगवान् के नाम पर एक होकर बैठ जाना। कोई तुमको णमोकार पढ़ते मिल जाये, भले ही उसने तुमको पहले गाली दी हो, ज्ञानी ! उसकी सुरक्षा करना, क्योंकि गाली तो उसने मुझे दी है, भगवान् को नहीं दी है।

भैया ! क्या करो ? अकलंक ने अपने ऊपरी वस्त्र से, वो छात्र-दुपट्टा ओढ़े ही था, उसमें से एक धागा निकाला और प्रतिमा पर डाल दिया। **युक्ति।** बोले-भैया! विलम्ब का समय नहीं है, निकल जाइये। आँखों-आँखों में बात हो गई। क्योंकि जिनशासन में निर्ग्रन्थ की वन्दना है,

वस्त्रधारी की वन्दना नहीं है। वो अध्यापक खोज नहीं कर पाये कि वो छात्र कौन था और अध्यापक का षड़यंत्र जारी था। अन्त में बच्चों से कहा गया कि जब भी कष्ट के दिन आयें तब अपने इष्ट की आराधना करना और प्रत्येक छात्र के कक्ष पर एक-एक पहरेदार खड़ा कर दिया और अनेक प्रकार का भयावह वातावरण पैदा कर दिया और जैसे-ही अर्द्ध रात्रि का समय हुआ, डर के मारे बौद्ध छात्र कहने लगे—बुद्धं शरणम् गच्छामि, बुद्धं शरणम् गच्छामि, बुद्धं शरणम् गच्छामि। अब अरिहंत का भक्त कहाँ मौन रह सकता था ? उसने बोला—चत्तारि सरणं पव्वज्जामि, अरहंते सरणम् पव्वज्जामि, सिद्धे सरणम् पव्वज्जामि, साहू सरणम् पव्वज्जामि, केवलि पण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि। इन शब्दों को सुनते ही कमरे को सील कर दिया। बोले, पकड़े गये, ये हैं जैन छात्र।

लेकिन ध्यान रखना, **जब जगत् में कोई नहीं होता है, तब धम्मं सरणं पव्वज्जामि।** भैया! यदि आपके जीवन में कभी संकट के दिन आयें, उस समय आप पड़ोसी के घर नहीं जाना। संकट के दिनों में अपने सगे भैया के घर मत जाना। संकट के दिन जब आयें तब ज्ञानी! ससुराल मत चले जाना। कुत्ता कहलवाना हो तो ससुराल जाना। बुरा नहीं मानना। ससुराल में जमाई, बहन के घर में भाई श्वान से गया-बीता। अपनी धुलाई करवाना हो तो रहो अपनी ससुराल में। भैया ! संकट के दिनों में जनकपुरी रहने मत जाना। विश्वास रखना—भरे को दुनियाँ भरती है, खाली को कोई नहीं पूछता। **सबके दिन एक से नहीं होते।** ज्ञानी जब सुबह जंगल जाता है तो अपने लोटे को मांजने के लिये मिट्टी उसी मकान से निकालता है जो जर्जर हो रहा है। ज्ञानी नये बने मकान से मिट्टी नहीं निकालता है। ये ही दुनियाँ की रीत है—गिरे को दुनियाँ गिराती है, नये को कोई नहीं गिराता। भूल मत कर लेना। अभी जितने तुम्हारा साथ दे रहे हैं, वे कोई तुम्हारे साथी नहीं हैं। पापी हैं, पापी। यदि नारी सोचे कि पति मेरा साथ दे रहा है, तो विश्वास रखना, वो साथ नहीं दे रहा है। वो पापी है, इसलिये तेरा साथ दे रहा है। क्यों ? क्योंकि यदि वो पुण्यात्मा होता तो अब तक मुनि बनके चला जाता। बुरा तो नहीं लग रहा ? धन्य हो आपको जो अब भी बुरा नहीं लग रहा।

भैया कहते हैं-चत्तारि सरणं पव्वज्जामि। कोई-न-कोई तो मिलेगा आपको। दोनों भैया चेहरा देखने लगे, अब क्या करें ? नियोग देखो, पीछे की खिड़की खुली थी, दोनों भैया उसमें से निकल गये। प्रातः की बेला हुई, उनके कमरे को देखा कि उनका कमरा सूना है। सम्राट ने बौद्ध भिक्षुओं के कहने पर उन्हें पकड़ने के लिये घोड़े दौड़ा दिये। जब दोनों भाई घोड़े के टाप की आवाज सुनते हैं तो सोचते हैं कि अब क्या होगा ? वो निर्णय कितना कठोर था ? तालाब सामने है, कमल खिले हुये हैं, बड़े-बड़े पत्ते हैं। भैया निकलंक ! आप छिप जाओ इसमें। निकलंक कहता है, भैया अकलंक ! मेरे छिपने से क्या होगा ? आप बच जाओगे तो जिनशासन का

केसरिया ध्वज लहरायेगा, इसलिये आप छिप जाओ। समय लगाने का समय नहीं था, क्योंकि यदि जरा भी देर लगाते तो दोनों नहीं बचते तो जिनशासन जयवंत कैसे होता ? अकलंक वहीं पत्तों में छिप गये और निकलंक दौड़ते-दौड़ते चले गये आगे। आगे एक दूसरे तालाब पर धोबी का बालक कपड़े धो रहा था, उसने निकलंक के भागते-भागते आने पर पूछा कि भैया ! क्या हो गया ? तो निकलंक ने कहा कि पीछे सेना आ रही है, जो देखते-देखते सबको मार रही है। तो वो धोबी का बालक भी साथ में दौड़ने लग गया। आगे कुछ ही दूर जाने पर पीछे से आ रहे सैनिकों ने दोनों को (निकलंक और उस धोबी के बालक को) पकड़ लिया और उन सैनिकों ने दोनों के सिर धड़ से अलग कर सम्राट के सामने रख दिये। ये कैसा धर्म जो दूसरे के सिर को निकलवाकर अपना धर्म करे ? किसी की निन्दा करके, अवहेलना करके प्रभावना करो, वो कैसी प्रभावना ? प्रभावना का अर्थ होता है कि बिना किसी को गृहण किये अपने शासन की बात करना। इसका नाम प्रभावना है।

इधर कमलपत्र से अकलंक स्वामी निकलते हैं। सरोवर से कुछ दूर आगे चलकर देखते हैं कि भैया का धड़ पड़ा हुआ था। मोहवश लिपट गये भाई के धड़ से कि मेरे भैया ! मैं घर से निकलते समय माता-पिता से बोलकर आया था कि अध्ययन करने जा रहा हूँ, अब किस रूप में चेहरा दिखा पाऊँगा, भाई को खोकर कैसे जीऊँगा ? लेकिन मेरे भैया निकलंक ! आज मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि भारत की भूमि से निरात्मवादियों को बाहर निकाल फेंकूँगा। ये अकलंक की ही प्रतिज्ञा थी। युवाओं से कह रहा हूँ, अपने भैया को खोकर जिनशासन की प्रभावना की है। वीर के जिनशासन को अकलंक करने वाले आचार्य अकलंक स्वामी। ऐसे-ऐसे आचार्य हुये हैं।

भैया ! ये शरीर तो नष्ट होना ही है, इसमें कोई शंका मत करना। देह का विनाश तो होना ही है, इसमें शंका मत करना। जब तक इस देह में तेरा देही विराजा है, तब तक निर्मल जिनशासन की प्रभावना करो। जीवन में ऐसा कोई काम न करना जिससे किसी जीव को अरिहंत के शासन के प्रति अश्रद्धा हो जाये। ऐसी वाणी मत बोलना, जिससे कि कोटि-कोटि जीवों का जीवन डगमग होने लग जाये। वही बोलना, वही सुनना, वही समझना, जिससे अरिहंत का शासन जयवंत हो। ज्ञानी ! जाना तो पड़ेगा ही, ये विश्वास रखना। परन्तु जाने से पहले कुछ करके जाना। उन आचार्यों के प्रति श्रद्धा उमड़ती है। यदि वे कुन्दकुन्द, समन्तभद्र, पुष्पदंत, भूतबली जैसे महान् योगीश्वर जिनवाणी न लिखते तो आज तुम जिनप्रवचन कहाँ से सुन पाते ? जयवंत हों हमारे वे आचार्य, जयवंत हों। यदि ये आचार्य कुन्दकुन्द न होते तो मुख पर पट्टी लगाये घूमते आप सब।

सुनो ध्यान से। गिरनार पर्वत पर यात्रा को निकले दो संघ। एक श्वेताम्बर और दूसरा दिगम्बर। एक संघ कहता है कि मेरा संघ पहले वंदना करेगा और दूसरा संघ कहता है कि मेरा संघ

पहले वंदना करेगा। अब निर्णय कौन करे ? संवाद बढ़ गया, बात सम्राट तक पहुँची। सम्राट बोले कि मैं साधुओं के बीच क्या बोलूँ ? तब निर्णय ये हुआ कि यहाँ पर जो अम्बिका नाम की देवी है, वो देवी जो कह देगी, वही होगा। कुन्दकुन्द स्वामी कहते हैं—आप बुलवा लो। अब पत्थर की प्रतिमा को बुलवाने लगे। वो बोले-बोलो देवी ! आद्य दिगम्बर, आद्य श्वेताम्बर ? आद्य दिगम्बर, आद्य श्वेताम्बर ? वे बेचारे सिर पटक-पटककर मर गये। अब वो कहते हैं—हे कुन्दकुन्द स्वामी! आप बुलवाओ। तब कुन्दकुन्द भगवन्त ने उठाई मयूर पिच्छि और कहा-हे देवी ! बोल, आद्य दिगम्बर, आद्य श्वेताम्बर ?' इस पर उस मूर्ति में से आवाज गूँजती है—आद्य दिगम्बर, आद्य दिगम्बर। महा साहू, महा साहू, महा साहू दिगम्बरा। यानि इस ब्रह्माण्ड में कोई महासाधु है, उसका नाम दिगम्बर साधु है। तब श्वेताम्बर बेचारे अपने आप पीछे खिसक गये, क्योंकि आज निर्णय हो गया—आद्य दिगम्बर, आद्य दिगम्बर, आद्य दिगम्बरा। ये कुन्दकुन्द स्वामी हैं, इन्होंने लिखा है—

ण वि सिज्झइ वत्थधरो जिणसासणे जइ वि होइ तित्थयरो।
णग्गो विमोक्ख मग्गो, सेसा उम्मग्गया सव्वे॥ सु.पाहुड॥

जिनेन्द्र के शासन में ज्ञानी ! तीर्थंकर भी क्यों न हों, जब तक वस्त्र धारण करे रहेंगे, तब तक सिद्धि होने वाली नहीं है। नग्नता ही मोक्षमार्ग है, शेष सभी उन्मार्ग हैं। जयवंत हों वे कुन्दकुन्द स्वामी, जिन्होंने सनातन वीतराग धर्म की रक्षा की हो। भारत की भूमि में विचरण कर रहे योगियों से कह देना कि हे स्वामी ! बाह्य विकल्पों को छोड़कर जिनशासन की रक्षा में लीन हो जाओ, तत्त्व की प्ररूपणा करो, सब अन्त-पन्थ के विकल्पों को छोड़कर अरिहन्त के मार्ग की विवेचना करो। सत्यार्थ क्या है ? निर्ग्रन्थ मार्ग है। जिसे बनाया नहीं जाता है, वो तो बना-बनाया ही है। सच बताऊँ—तुम सब निर्ग्रन्थ हो। विश्वास न हो तो अपने कपड़े उतार कर देख लो। तुम सब निर्ग्रन्थ हो, सही है कि नहीं ? ये वस्त्र क्यों धारण कर लिये हैं ? ये बनावटी मुद्रा है। सत्यार्थ मुद्रा तो ये है, इसे बनाया ही नहीं गया है। **यथाजात स्वरूपोऽहं।** यथाजात स्वरूप है। 'नमः श्री वर्धमानाय,' उन वर्द्धमान स्वामी को नमस्कार है, जो अन्तरंग व बहिरंग लक्ष्मी से युक्त हैं। बहिरंग में समवसरण, अन्तरंग में अनन्त चतुष्टय। 'निर्धूत कलिलात्मने,' जिन्होंने आत्मा में लगे हुये कर्म-कलंक को नष्ट कर दिया है, जिनके ज्ञान में 'सालोकानां त्रिलोकानां' लोकाकाश व अलोकाकाश सहित सम्पूर्ण लोक दृष्टिगोचर होता है। 'यद्विद्या दर्पणायते,' दर्पण के समान। उन श्री वर्द्धमान स्वामी को नमस्कार हो। 'णमिऊण वड्ढमाणं,' उन वर्द्धमान को नमस्कार है। जो स्त्रीरहित हैं, उन वर्द्धमान को नमस्कार है। जो अस्त्र-वस्त्र से रहित हैं, उन वर्द्धमान को नमस्कार है। जो दिगम्बरत्व से युक्त हैं, उन वर्द्धमान को नमस्कार है। जो वीतरागता से युक्त हैं, उन वर्द्धमान को नमस्कार है। जो सर्वज्ञता से युक्त हैं, उन वर्द्धमान को नमस्कार है। जो हितोपदेश से युक्त हैं,

ऐसे वर्द्धमान को नमस्कार है। जो अस्त्र-शस्त्र से युक्त हैं, ऐसे किसी वर्द्धमान नामधारी की वन्दना नहीं है जिनशासन में।

ज्ञानी ! इस मस्तक को सभी जगह झुकाना नहीं। मान लो कि यहाँ पर एक व्यंतर खड़ा हो जाये और कहने लगे कि मुझे नमस्कार करो, अन्यथा अभी मैं आपका नाश करता हूँ, तो आप क्या करोगे ? कहना-हे ज्ञानी ! अभी क्या, तू बिना समय गँवाये इसी क्षण समाप्त कर दे मुझे; लेकिन ध्यान रखना, तू जिसका नाश करेगा, वो नशने लायक ही है, परन्तु जिसे नाश करना चाहता है, वो त्रैकालिक ध्रुव है। आत्मा का नाश नहीं होता है। पर्याय का नाश होगा, उसकी चिन्ता नहीं है, परन्तु तुझे मैं नमस्कार करने वाला नहीं हूँ। दिगम्बरत्व के आगे किसी की चलती नहीं है। जिस स्थान पर अरिहंत देव की प्रतिमा स्थापित हो, वहाँ पर नागकुमार देव की विद्या फेल हो जाती है। नंगे से तो दुनियाँ घबड़ाती है, आप कोई चिंता नहीं करना। इसलिये हर किसी के सामने सिर झुकाना नहीं। श्रद्धा का नीर अरिहंत के चरणों में जायेगा, निर्ग्रन्थ के चरणों में जायेगा और वीतरागवाणी में ही झुकेगा। 'णमिऊण वड्ढमाणं,' ऐसे वर्द्धमान को नमस्कार करते हैं। समन्तभद्र स्वामी जब महावीर स्वामी की वन्दना करते हैं, तो परीक्षा करके करते हैं। हे प्रभू ! आपके समवसरण को देखकर, आपके वैभव को देखकर मैं वन्दना नहीं करता हूँ, आपकी वीतरागता को देखकर मैं आपकी वन्दना करता हूँ। भीड़ तो कोई भी इकट्ठा कर सकता है। जादूगर भी भीड़ इकट्ठी कर सकता है। डमरू बजानेवाला भी भीड़ इकट्टी कर सकता है। ज्ञानी ! तुम भीड़ देखकर किसी को भी नमस्कार नहीं करना। भीड़ की वन्दना नहीं है जिनशासन में वन्दनीय की वन्दना है।

आचार्यभगवान् कुन्दकुन्द स्वामी कह रहे हैं—**परमप्पाणं।** ऐसे परमात्माओं की वन्दना है। कैसे ? जो परमात्मा होने के उपरान्त पुनः उतरकर नहीं आता है। एक बार परमात्मा हुआ और हुआ, सो हुआ। लेकिन ध्यान रखना, 'वीर बनके, पारस बनके चले आना'—ऐसे मिथ्यात्व के भजन नहीं गाना। हमारे भगवान् उतर-उतर कर नहीं आते हैं। '**परमप्पाणं**' जो परमात्मा बन जाता है, वो कभी उतरकर नहीं आता है। '**दग्धबीजवत्**' जैसे जला हुआ बीज पुनः कभी अंकुरित नहीं होता है। भगवान की भक्ति करो तो 'तिसुद्धेण,' देखो लिखा है कि नहीं ? तीन शुद्धि होनी चाहिये—शरीर की शुद्धि। शरीर पवित्र हो, सर्वांग शुद्धि हो। लघुशंका करके चले आ रहे हो, दीर्घ शंका करके चले आ रहे हो, हाथ भी धोये कि नहीं ? और मन्दिर में घुस गये। धिक्कार हो उस पापी को। शुद्ध वस्त्र पहनकर आइये ! सत्यता ये है कि पहले घरों में मन्दिर के कपड़े अलग से टंगे होते थे। सच कहूँ आपसे ? हे ज्ञानी, अज्ञानी ! सुसराल जायेगा तो अलग से कपड़े बनवायेगा, मित्रों से मिलने जायेगा तो अलग कपड़े, किसी नेता से मिलने जायेगा तो अलग कपड़े,

क्या तीनलोक के नाथ इतने पुण्यक्षीण हैं जिनके पास तू अशुद्ध कपड़े पहन कर आ गया ? दुनियाँ में अलग स्थान जाने के लिये अलग-अलग ड्रेस और मन्दिर जाने के लिये कोई अलग ड्रेस नहीं ? आज से आपके घरों में मन्दिर के कपड़े अलग होना चाहिये। अब आप पेंट शर्ट पहनने लगे, अब आप स्वयं समझदार हो, कहने की आवश्यकता नहीं है। श्वान कभी चारों पैरों से लघुशंका नहीं करता है और पेंट-शर्ट वाले ऐसे ही होते हैं। भैया ! जब तुम पेंट-शर्ट पहन कर जा रहे हो लघुशंका करने, तो पेंट पर छींटे पड़ेंगे कि नहीं पड़ेंगे ? अब तुम्हारे वस्त्र अशुद्ध हुये हैं कि नहीं हुये हैं ? और इतने पवित्र स्थान पर तुम ऐसे कपड़े पहन कर आ गये हो तो **शुद्धेण,** तुम्हारी शुद्धि कहाँ बची ? इसलिये जिन वस्त्रों को पहनकर लघुशंका/दीर्घशंका और भोजन किया हो, ऐसे वस्त्रों को पहनकर श्री जिनेन्द्र के मन्दिर में प्रवेश नहीं करना चाहिये। इसका मतलब आप मन्दिर आना मत छोड़ देना। आजकल तो लोगबाग पेंट-शर्ट पहनकर, खड़े-खड़े अष्टद्रव्य से पूजन ही करने लग गये। भैया ! तनक धोती-दुपट्टा पहन लिया करो। सुना ! जब तक मुनि महाराज दिख रहे हैं, मुनि महाराज बचे हैं, तब तक पूजा दिख रही है, ये धोती-दुपट्टा दिख रहे हैं, अन्यथा तुम्हें ये भी नहीं दिखेंगे। कहीं मुनि महाराज भी पेंट-शर्ट वालों से आहार और लेने लग जायें, तो फिर हो गई पूरी अशुद्धि।

दक्षिण भारत में तो पेंट-शर्ट, पजामा पहनकर अभिषेक भी होने लग गये। वहाँ के पुजारी को मैंने समझाया कि भैया ! इतनो बड़ो पंचमकाल अबै नहीं आओ। इतना ही नहीं, एक दिन मैंने वहाँ बड़ा आश्चर्य भी देखा। चातुर्मास चल रहा था। 2006 की बात है। मैं गया था शुद्धि के लिये। पर्वत से उतर रहा था, रास्ते में बारिश होने लगी मूसलाधार। वहीं पास में एक मन्दिर था, जहाँ हम लोग रुक गये। वहाँ बढ़िया सी. डी. लगी हुई थी, कैसेट चल रही थी और नल की टोंटी में सटक लगी हुई थी। सटक से अभिषेक हो रहा था और कैसेट से पूजा हो रही थी। हमने कहा कि ये बड़े अच्छे सस्ते भगवान् इनके हैं। पुजारियों के पास बिल्कुल समय नहीं है। सटक से अभिषेक हो गया और कैसेट से पूजा हो गयी। अब तुम ऐसा मत करने लगना। अब ये भी समझाना पड़ रहा है कि कहीं ऐसा आपके मन में आ भी जाये तो भी शुरू मत कर देना। आपका पता नहीं है, आजकल तो सोला की चप्पल भी आ गयी हैं घरों में। नहीं मानो तो पूछ लो। इसलिये हे माताओ ! वे चप्पलें पहनकर चौके में मत घुसना। चौका है, चौका। जहाँ मन शुद्धि, वचन शुद्धि, भाव शुद्धि, काय शुद्धि ये चार शुद्धि होती हैं, उसका नाम 'चौका' है। अब तुम्हारे घर में चौका बचा कहाँ है ? किचन है, किचन। जहाँ किच-किच होती रहती है। मार्बल लगा रहता है चौके में, इसलिये मातायें चप्पलें पहनती हैं चौके में। तो भैया ! मार्बल लगा ही क्यों लिया चौके में ? उसे हटवा दो, लेकिन किसी भी हालत में चौके में चप्पल पहनकर मत जाना।

मन शुद्धि। भावों में विशुद्धि है, शरीर को भी शुद्ध लेकर जाना और मन्दिर में कभी अशुभ वचन मत बोलना भगवान् की वन्दना करते समय, नमस्कार करते समय, मंगलाचरण करते समय। **विसुद्धेण**—मन की शुद्धिपूर्वक, वचन की शुद्धिपूर्वक और शरीर की शुद्धिपूर्वक। **वोच्छामि रयणसारं**। प्रतिज्ञा बद्ध हैं, कि मैं कहूँगा। किसको ? रयणसार नाम के ग्रंथ को। इस ग्रंथ में क्या कहेंगे ?—**सायारणयार।** श्रावक और साधु।

ज्ञानियो ! निर्ग्रंथ मुनि ही समयसार है और समयसार की जो उपासना करे, उनका नाम समयसार उपासक है। जितने श्रावक हैं सच्चे, ये सब समयसार उपासक हैं और जितने भावलिंगी मुनि हैं, वे सब समयसार हैं। प्रतिज्ञा की है, अभी ग्रंथ कहाँ शुरू हुआ है, मंगलाचरण किया है। आचार्यभगवान् कुन्दकुन्द स्वामी इस गाथा में कह रहे हैं कि सम्यग्दृष्टि जीव की पहचान क्या है ? समझ में आ रहा है न आपको ? बहुत अच्छी बात है। कितने थोड़े से दिनों में ही समझ में आने लग गया आपको। ये दिलों की बात है, यदि ये दिलों में और चले जायें तो ज्ञानी ! विश्वास रखना, भगवान् बनने में देर नहीं लगेगी आपको।

जब से ये मोबाईल शुरू हो गये हैं, तब से संवेदनायें कम हो गयी हैं। बात बाद में होती है, पहले तू बोलता है—हैलो। यानि पहले हिला दिया पूरा। पत्र लिखा जाता था तो कितने प्रेमपूर्वक लिखा जाता था और जब पत्र पहुँचता था तो भोजन करते समय भी पत्र को खोल-खोल कर देखता था कि पिताजी ने क्या लिखा है, तो कितना आनन्द आता था। पढ़ा है कभी पत्र ? पत्र में माधुर्य भरा होता है। कितना ही कोई कुपित होगा, कषायी होगा, लेकिन जब वो लिखने बैठेगा तो अच्छा ही लिखेगा। पत्र में माधुर्य होता है। जब तू पिता का पत्र पढ़ता है तो आनन्द आता है कि नहीं ? जब तुझे पिता के पत्र को पढ़ने में इतना आनन्द आता है, तो जो परमपिता परमेश्वर वीतरागी अरिहंतदेव की पाती है, ये जिनवाणी अरिहंत की पत्रिका है, उनकी वाचना में आनन्द आता है कि नहीं आता है ? जो कोई पढ़ा-लिखा नहीं होता है तो पड़ोस में जाता है उस पत्र को, तार को पढ़वाने के लिये। उस पत्र को वाचने में तुझे इतना आनन्द आ रहा है, तो ज्ञानी ! तू पहुँच जाना मुनियों के पास, आचार्यों के पास कि हे भगवन् ! बता दो कि हमारे तीर्थंकर परमेश्वर ने इसमें क्या लिख दिया है ? ये सुनना चाहता हूँ, जगत् का औरकुछ नहीं सुनना चाहता हूँ। मैं अपनी तरफ से कुछ नहीं बता रहा हूँ, जो भगवान् लिख गये हैं, वो मैं आपको खोलकर दिखा रहा हूँ, बस।

''पुव्वं जिणेहि भणिदं''

मैं भी बाहर के प्रवचन करना जानता हूँ और किया भी है, परन्तु ये सोचता हूँ कि जितना भी किया, अपना समय ही नष्ट किया। आँख कब खुली, सुनाऊँ क्या ? किसी बात को छिपाने का नहीं। सागर चातुर्मास के बाद जब मैं विदिशा पहुँचा और सहज रूप में 'प्रवचनसार' की अस्सी

नम्बर की गाथा पर प्रवचन किया और प्रवचन करने के उपरान्त जैसे ही जाकर के कक्ष में बैठा, श्रावकों की भीड़ लग गयी। सबने नमोऽस्तु किया, लेकिन एक बूढ़ी माँ हाथ जोड़कर कहती है कि हे महाराज ! बुरा न लगे तो एक बात कहूँ ? तो मैंने उनसे कहा कि बुराई तो मैं बहुत पहले ही छोड़ चुका हूँ, आप तो निःसंकोच कह दो। एक नहीं, दो कह दो। तो उस बूढ़ी माँ ने कहा, हे महाराज ! आप तो ये बताओ कि मुनि महाराज ग्रंथों की भाषा बोलना कब से सीख गये ? इन शब्दों को सुनकर ऐसा लगा कि मुनियों पर एक कलंक है। वो माँ क्या बोली कि महाराज ! ग्रंथों की भाषा बोलना कब से सीख गये ? आप तात्पर्य समझे, उस माँ ने क्या बोला था ? वो ये कहना चाहती थी कि मुनि महाराज आजकल ग्रंथों पर प्रवचन नहीं करते, वो केवल बाहर की बातें करते हैं। उसी दिन मैंने कायोत्सर्ग किया कि अब जो भी प्रवचन होगा वो ग्रंथ की गाथा पर ही होगा। ओ हो ! कितना बड़ा कलंक ? उन्होंने कहा कि हमारे पण्डितजी आते हैं तो गाथाओं पर बोलते हैं और आप लोग आते हो तो यहाँ-वहाँ की सुना कर चले जाते हो, जिनवाणी सुनाते ही नहीं हो। मैंने कहा कि माँ ! जो महाराज बोलते हैं, वे स्वयं जिनवाणी हैं। कुछ वे लोग होते हैं जो ग्रंथ लिखा करते हैं, लेकिन कुछ वे लोग होते हैं जिन पर ग्रंथ लिखे जाते हैं। ये निर्ग्रन्थ स्वयं में ग्रंथ हैं। निर्ग्रन्थ योगी जिनका शरीर ही मोक्षमार्ग का उपदेश देता हो, यही तो अरिहंत की मुद्रा है।

पुव्वं जिणेहि भणिदं, जहदिठ्यं गणहरेहि वित्थरिदं।
पुव्वाइरियक्कमजं, तं बोल्लदि जो हु सिद्दिट्ठी ॥ 2॥

कुन्दकुन्द स्वामी क्या लिख रहे हैं—'पुव्वं जिणेहिभणियं।' अब यहाँ चिंतवन नहीं चलेगा, आगम चलेगा। आपका चिंतवन यदि आगम के अनुसार है तो स्वीकार है, नहीं तो अस्वीकार है। चिंतवन आगम नहीं होता है, आगम में चिंतवन हो सकता है। 'पुव्वं जिणेहिभणियं,' पूर्व में भगवान् जिनेन्द्रदेव ने कहा है, उसको गणधर परमेष्ठी ने विस्तृत किया है और सत्यार्थ आगम को पूर्वाचार्यों के क्रम से जो बोलता है, वो सम्यग्दृष्टि जीव है। जो अपने मन का बोलता है, वो मिथ्यादृष्टि है। प्रमाणपत्र दे दिया, जो तीर्थंकर के द्वारा कहा हुआ, गणधर के द्वारा गुंथित और पूर्वाचार्यों के क्रम से जो चला आ रहा है आगम, उस आगम का व्याख्यान करता है जो, वो वक्ता सम्यग्दृष्टि है और जो वक्ता अपने मन का बोलता है, उसका नाम मिथ्यादृष्टि है। जाओ, अपने घर जाओ, घर जाओगे क्या ? अरे! अपने निज घर जाओ।

"आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

मिथ्यादृष्टि की पहिचान

मदि-सुद-णाण-वलेण दु, सच्छंदं बोल्लदे जिणुद्दिट्ठं।
जो सो होदि कुदिट्ठी ण होदि जिणमग्गलग्गरवो॥ 3॥

अन्वयाथ–**(जो)** जो जीव **(जिणु-द्दिट्ठं)** जिनेन्द्रदेव कथित तत्त्व को **(मदि-सुद-णाण-बलेण दु)** मतिज्ञान और श्रुतज्ञान के बल से **(सच्छंदं)** स्वच्छंद/मन:कल्पित **(बोल्लदे)** बोलता है **(सो)** वह **(कुदिट्ठी)** मिथ्यादृष्टि **(होदि)** होता है। वह **(जिणमग्गलग्गरवो)** जिनेन्द्रदेव के मार्ग में संलग्न जीव का वचन **(ण)** नहीं **(होदि)** होता है।

भव्यजनो ! अन्तिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेश की पीयूष देशना जिनेन्द्रवाणी मनीषियो ! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमण संस्कृति।

आचार्यप्रवर कुन्दकुन्द स्वामी वस्तुस्वरूप की प्ररूपणा कर रहे हैं। वो चाक्षुष को ही नहीं कहते हैं, अचाक्षुष को भी कहते हैं। लोक में जितने सम्प्रदाय हुये, उनने चाक्षुष के बारे में बहुत चर्चा की है, परन्तु ध्रुव भगवान्आत्मा के बारे में शून्यता ही हासिल की। लोक में लोगों को ऐसा महसूस हुआ, चन्द क्रियाओं में लीन होकर, क्रियाकाण्ड में तल्लीन होकर परेशानी महसूस करने लगा। विश्वास रखना, लम्बे समय तक आप संगीत नहीं सुन सकते। लम्बे समय तक आप पूजन, विधान भी नहीं कर सकते। जिसने आत्म-साधना का समय निश्चित किया है, वो तो आप कर लेंगे बहुत आनन्द के साथ, लेकिन वर्षों-वर्षों तक आप विधान नहीं कर सकते। स्तब्धता तो है, शान्ति तो है, पर स्थायी नहीं है। जब व्यक्ति हल-चल से थक जाता है, तो वो शांति की खोज की ओर चलता है। वह शांति का उपाय ही आत्म-तत्त्व है। जिसके लिये मैं सबकुछ कर रहा हूँ, वो क्या है ? जो सबकुछ करा रहा है, वो क्या है ? सुनो जरा ध्यान से। पूजन की, विधान किया, परमात्मा की आराधना की, लेकिन जो परमात्मा की आराधना कर रहा है, वो कौन है ? जिसके लिये परमात्मा की आराधना की जा रही है, वो कौन है ? **वो ध्रुव अखण्ड आत्मद्रव्य है।** यदि आत्मद्रव्य पर लक्ष्य नहीं गया, तो भैया ! विश्वास रखना, बाजे बजते रहेंगे, बाजे बज जायेंगे और बाजे बज जायेंगे। ज्ञानी ! जब जन्म लिया था, तब बाजे बजे थे और जब तुम्हारी शादी हो रही थी, तब बाजे बज रहे थे। एक बार और बज जायेंगे। पर अन्तर इतना होगा कि अभी तक तो ब जे सीधे बजे थे, पर अबकी बार जो बजेंगे वो उल्टे बजेंगे। बाजे ही बज पायेंगे। ज्ञानियो ! उल्टे बाजे बजने के पहले यदि परिणाम सीधे हो गये, तो फिर कभी उल्टे बाजे नहीं बज पायेंगे। **जलने के पहले ज्ञानी ! जलना छोड़ देना ।** ये देह जले, इस देह के जलने के पहले ज्ञानी ! पड़ोसी से जलना

छोड़ देना। जलने वाला तो जल ही जायेगा, वो तुझे जला नहीं पायेगा और तुझे जलानेवाला कौन है ? ज्ञानी ! तू ही है अपने को जलाने वाला। विश्व के लोग तेरे शरीर को तो जला सकते हैं, आपका पुत्र भी अग्निसंस्कार करेगा तो वो तेरे देह का ही संस्कार कर पायेगा, परन्तु देही का नहीं कर पायेगा।

जीव का अशुभ परिणमन जगत् के किसी भी द्रव्य में नहीं हुआ है। जीव विकार स्व में ही करता है। उस ध्रुव सत्ता को समझने के लिये कोटि-कोटि भव चाहिये। आप कल्पना करो, इस पुस्तक में जैनदर्शन का सार है। इस पुस्तक में बहुत बढ़िया बात लिखी है कि "अहो ! आश्चर्य है कि जिस विद्या को सीखने के लिये लोग जगत् में भटक रहे हैं, वो विद्या जैनियों के घर में भरी पड़ी हुई है। बहु व्यापारिक समाज होने के कारण इनको धंधों से ही फुर्सत नहीं है, इसलिये जिनागम का अध्ययन नहीं कर पा रहे हैं।" अहो ! जिसने ये पुस्तक लिखी, उसके परिणामों से पूछना—क्या करूँ ? उस ज्ञानी से पूछना, भूतपूर्व अध्यक्ष अब भूत बन गया। उससे पूछना, ज्ञानी ! जब तेरे मुख में बत्तीस दाँत थे, तब ये जीभ कहाँ-कहाँ जाती थी ? और जिस दिन एक दांत निकल गया था, उस दिन तेरी जीभ कहाँ जाती थी? भैया! जब वस्तु होती है, तब ज्ञानियों को उसकी कीमत नजर नहीं आती है और जब वो वस्तु चली जाती है, तो फिर पूरा ध्यान उसी पर लगा रहता है। जो दाँत निकल गया है, अब जीभ उसी खाली जगह पर जाती है। एक दाँत निकल जाये तो ३१ की चिंता नहीं होती है। अब जो एक दाँत निकल गया है, जीभ वहीं बार-बार जाती है, जीभ का परिणमन वैसा है। अभाव में कीमत नजर आती है, सद्भाव में कीमत नजर नहीं आती है। यदि सद्भाव में कीमत नजर आ जाये, तो अभाव के दिन क्यों देखना पड़ें ?

ऐसे-ही अगाध आगम अपने पास है। जब वेदों के क्रिया-काण्ड अदृश्य हो गये, तो क्षत्रियों से जाकरके पूछा कि आपके पास वो कौन-सी विद्या है जिसके बल पर आप जीते हो ? उस क्षत्रिय से तात्पर्य यह था कि जैनधर्म जो है, जिनशासन जो है, ये सनातन है और इसकी परम्परा को जो आगे बढ़ाने वाले हैं, उनका नाम क्षत्रिय है। क्षत्रियों से पूछा। क्षत्रिय कौन थे वो ? वो तीर्थंकर थे। क्षत्रियों ने इसको प्रकट किया, ब्राह्मण ने झेला और बनिया पी रहे हैं। क्षत्रिय वीर वर्द्धमान से निकसी। ये जिनवाणी वीर हिमाचल से निकली है। गुरु गौतम के मुखकुण्ड धरी है, गौतम ब्राह्मण के कुण्ड में मिली है। ज्ञानियो ! आज हम सभी के बीच में लहरें ले रही है। **वीर हिमाचल से निकसी, गुरु गौतम के मुख-कुण्ड धरी है,** भैया ! ऐसी बात है। ये वाङ् गंगा है, ये स्याद्वाद गंगा है, ये जिन सत्ता है, इसका नाम जिनवाणी है। पूछा, आप लोग कैसे जीते हो ? मुझे तो चरस का सेवन करना पड़ता है, भाँग का सेवन करना पड़ता है, इन्द्रियों का नियंत्रण करने के लिये सप्त व्यसनों का सेवन करना पड़ता है और आप नग्न होकर कैसे रह लेते हो ? तो क्षत्रियों

ने कहा—मेरे पास वह विद्या है जिसे लेने पर जगत् की सारी विद्यायें समाप्त हो जाती हैं। उसका नाम अध्यात्म विद्या है। जब ये जीव आत्मा-परमात्मा के भेद को भी भूल जाता है, परमात्मा को भी पर-रूप मानता है, उस समय आत्मा ही परमात्मा है और आत्मा का गुरु आत्मा ही होता है, तब ये ज्ञानी परम विद्या में लीन होता है।

''न शिष्योगुरुर्नापि हीनं न दीनं, चिदानन्दरूपं नमो वीतरागम्''

जहाँ शिष्य का भेद नहीं, गुरु का भेद नहीं। हीनता नहीं, दीनता नहीं। एकमात्र चिदानन्द स्वरूप है। आवरण में धर्म कहाँ ? आडम्बरों में धर्म कहाँ और धर्म में आडम्बर कहाँ ? आडम्बरों में कोई धर्म नहीं होता है और धर्म में कोई आडम्बर नहीं होता है। इसलिये दिगम्बर होता है। धर्म करने के लिये कोई भेष बनाने की आवश्यकता ही नहीं है। जिस भेष में जन्मे थे, उसी भेष में रहो, इसका नाम दिगम्बर धर्म है। '**चिदानन्दस्वरूपं।** आडम्बरों में धर्म नहीं है। विश्वास रखना—जितने आडम्बर धर्म के नाम पर हो रहे हैं—ये किंचित् भी धर्म नहीं हैं। परिणामों की विशुद्धि का नाम धर्म है। **उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिंचन, ब्रह्मचर्य** इसका नाम **धर्म** है। आडम्बर का नाम धर्म नहीं है। उन विद्वानों से, उन त्यागियों से भी कहना है कि इस आडम्बर विहीन धर्म की विश्व में जो जयनाद होती थी, उसको वैसे-ही रहने दो, इसको आडम्बरों में मत मिलाओ। बाहर के लिवास ओढ़ने की आवश्यकता नहीं है। ये जीव बाहर के आडम्बरों को लेकर रहता है, तो उसको कुन्दकुन्द स्वामी मिथ्यादृष्टि कहते हैं। इससे बड़ा शब्द क्या होगा ?

जितनी चातुर्मास में पत्रिकायें छपती हैं, यदि एक चातुर्मास में प्रत्येक योगी ये नियम ले ले कि इस चातुर्मास में पत्रिका नहीं छपेगी, तो विश्वास रखो, इससे इतना द्रव्य इकट्ठा हो सकता है कि एक नया तीर्थ खड़ा हो सकता है। भैया ! जिसको आना होता है वो ज्ञानी दुनियाँ में मालूम करके आता है और जिसको नहीं आना है, उसके लिये कितने ही पीले चावल भेज दो, वो नहीं आयेगा। एक चातुर्मास की पत्रिकाओं का खर्च यदि इकट्ठा किया जाये तो पता नहीं कितने गरीबों के घर बस जायें और कितने नवीन तीर्थ बन जायें।

जिनशासन ज्ञानी ! आडम्बरविहीन है। ये मैं क्यों कह रहा हूँ ? कहीं ऐसा न हो जाये कि कल ऐसा दिन आ जाये, कि दिगम्बर वीतरागी धर्म को लोग म्यूजियम में देखने जायें। वीतराग धर्म का स्वरूप ये था और आज वीतराग धर्म का स्वरूप ये है। घर के चूल्हे तो गये, क्यों माताओ ! चक्की भी घर की गयी। बिजली की चक्की, 'बटन चटकाओ और इल्ली चूहा तक खा जाओ।' भिलाई में एक ज्ञानी मेरे पास प्रायश्चित लेने आया, बोला-महाराज ! प्रायश्चित दे दो। मैंने उस ज्ञानी से पूछा, बता तो सही हुआ क्या है ? तो वो बोला, स्वामी ! घर की इलेक्ट्रिक आटा चक्की

है। आटा चाहिये था, तो बटन चटकाया, उस चक्की में चूहा बैठा हुआ था, आटे की जगह रक्त निकल पड़ा। अहो ! कहाँ वे दिन चले गये जब एक माँ सुबह उठकर सूर्य का उदय होने पर, पाटों को उठाकर देखकर और साफ करके फिर आटा पीसा करती थी, लेकिन अब तो तुमने बटन चटकाया और कोटि-कोटि जीव पीस डाले और बड़े स्वाद से रोटियाँ खा रहे हो। कहाँ गया तुम्हारा धर्म ? आज यदि ज्ञानी ये नियम ले ले कि मैं तो केवल घर की चक्की का ही आटा खाऊँगा तो उसकी पत्नी कहेगी कि तुम कौन-से पंथ के हो गये ? हाँ, भैया ! ऐसा ही है। ज्ञानी! मैं किसी पंथ का नहीं हुआ हूँ। शिथिलाचार का विरोधी, जिन शासन का पथिक हूँ, ऐसा बोलना। आपको बुरा तो नहीं लग रहा ? धन्य हो, बुरा भी नहीं लगता।

वर्तमान के परिप्रेक्ष्य में धर्म को मोड़ने की किंचित् भी आवश्यकता नहीं है। धर्म मात्र उतना है जितनी परिणामों की विशुद्धि है, आडम्बर विहीन प्रवृत्ति ही धर्म है। आडम्बर से युक्त प्रदर्शन तो हो सकता है, लेकिन 'आत्मदर्शन' किंचित् मात्र भी नहीं है। यह श्रमण संस्कृति ज्ञानियो ! प्रदर्शन का दर्शन नहीं है, ये आत्मदर्शन का दर्शन है। सुन रहे हैं आप ? ये प्रदर्शन का मार्ग नहीं है, ये दर्शन का मार्ग है। जब तक दुनियाँ के दर्शन करते रहोगे, तब तक आत्म दर्शन नहीं होगा और जिस दिन निज का दर्शन हो जायेगा, उस दिन पर का दर्शन नहीं होगा और दुनियाँ तेरे दर्शन करने आ जायेगी। जगत् का शासन कभी जगत्पूज्य नहीं होता है। जो निज मन पर शासन करता है, वो जगत् को पूज्य हो जाता है। क्या कर रहे हैं आप लोग ? जगत् का शासन कभी जगत्पूज्य नहीं होता। यदि शासन जगत्पूज्य होता तो चक्रवर्ती को पद छोड़ने की क्या आवश्यकता थी ? छःखण्ड का स्वामी, छ्यान्वे हजार रानियों का स्वामी, अठारह करोड़ घोड़े, चौरासी लाख हाथी। भैया ! बुरा तो लग नहीं रहा है ? और अगर बुरा लग भी जाये तो लग जाये। **जो है, सो है**। भैया जिसके घर में अठारह करोड़ घोड़े, चौरासी लाख हाथी हों, उस जीव को ये मालूम चल गया था कि ये आडम्बर मात्र है। ये पुण्य का परिणमन तो है, लेकिन दिलाता हित नहीं है, परन्तु भैया ! सही बताऊँ, ज्ञानी के पास तो एक गधा तक नहीं है। अहो ! एक गधा तक नहीं है, तब भी नहीं छोड़ पा रहा है। धन्य हो चक्रवर्ती को, जिसने अठारह करोड़ घोड़े, चौरासी लाख हाथी इत्यादि सम्पत्ति को सड़े तिनके के समान छोड़ दिया हो। ध्यान से सुनना, तिनके के समान नहीं छोड़ा, सड़े तिनके के समान छोड़ा है, क्योंकि तिनका तो काम में आ भी सकता है। जब आप भोजन करते हो तो दाँतों में जो अनाज फँस जाता है, उस कण को निकालने के काम में आता है तृण। इसलिये उसे तृण के समान नहीं छोड़ा। **जीर्णतृण सम,** सड़े तिनके के समान छोड़ दिया।

अहो ज्ञानी ! छोड़ने वाले से बड़ा कोई प्रशंसनीय नहीं होता है। जरा-सा दान देते हो तो उसके स्वागत में मालायें मिलती हैं कि नहीं मिलती ? ये जलतुम्बी का न्याय है। भैया ! तेल पानी

में ऊपर जाता है। तुम्बी कैसी ही हो, सूखी तुमड़ी पानी के नीचे डुबो देना, वो अपने आप ऊपर आ जाती है। तेल की बाटल को पानी में नीचे ले जाना तल में, वहाँ छोड़ देना, तू बाद में ऊपर आ पायेगा, लेकिन वो तेल सबसे पहले ऊपर आ जायेगा। जैसे तेल पानी में ऊपर आता है, ऐसे-ही आत्मा की गति उर्ध्व गति होती है। ऐसे-ही दाता यदि छिपकर भी दान देगा, तो भी उसका नाम तेल की भांति सारे जगत् में हो जाता है। छोड़ने वाले का नाम होता है। छोड़ने वाला प्रशंसनीय होता है, जोड़ने वाला प्रशंसनीय होता ही नहीं है और जो छोड़ने के बाद जोड़ने लग जाये, उससे बड़ा जगत् में कोई निन्दनीय नहीं होता है।

ज्ञानी ! मुनि बनने के भाव तो बनाना, लेकिन मुनि बनने के बाद दुनियाँ को बनाने में मत लग जाना। भैया! योगी बना था कल्याण के लिये और निज कल्याण छोड़कर लग गया पर-कल्याण मार्ग में। जो निज-कल्याण करेगा, वो पर कल्याण कर सकता है, लेकिन पर-कल्याण करने वाला न तो निज का कल्याण कर पायेगा और न ही पर का कल्याण कर पायेगा। कभी नहीं कर पायेगा। दर्पण आपके चेहरे के लिये स्वच्छ है या दर्पण अपने स्वभाव में स्वच्छ है ? वस्तुस्वभाव से बोलना ? हे ज्ञानियो ! दर्पण आपके चेहरे के लिये स्वच्छ नहीं है, दर्पण अपने स्वभाव में ही स्वच्छ है। उसमें स्वच्छता का परिणमन ऐसा है कि जो जैसा सामने पहुँचता है, उसका वैसा चेहरा उसमें झलकता है। ऐसेही योगी अपने स्वभाव में स्वच्छ होता है। जो कल्याण करना चाहता है, उसका कल्याण हो ही जाता है परन्तु, योगी किसी का कल्याण करने जाते नहीं हैं। इनको फुर्सत ही नहीं मिलती है, समय ही नहीं है उनके पास, क्योंकि समय में ही समय है, इसलिये पर-समय के लिये समय नहीं है। समय यानि आत्मा और समय यानि काल जो स्व-समय में लगा है, उसके पास पर-समय के लिये समय ही नहीं है और जो पर समय में लगा है, उसके पास स्व-समय के लिये समय नहीं है।

एक ज्ञानी मेरे से बोल रहा था—महाराज ! हमने ऐसी बात तो अभी तक कभी सुनी ही नहीं है। अरे ज्ञानी ! जब बातें सुनने का समय आता है तब पर-समय से समय को हटाना पड़ता है और जो पर-समय में लगे हुये हैं, वे ऐसी बातें सुना नहीं पायेंगे और जो ऐसी बातें सुना पायेंगे, वे पर-समय में जा नहीं पायेंगे, क्योंकि उपदेश देने के पहले उपदेशक को स्वयं में सम्हलकर रहना पड़ेगा। जो स्वयं में नहीं सम्हला होता है, वो जगत् को क्या सम्हाल पायेगा ? आप यदि किसी को सिखाने जाओ तो उसके पहले स्वयं सीख कर जाना। प्रदीपवत्। किसी को सिखाने जाने से पहले स्वयं सीख कर जाना। भैया ! अंधेरे कक्ष में लड्डू रखा हुआ है, तो ज्ञानी बुझे हुये दीप को लेकर जायेगा, कि जले हुये दीप को लेकर जायेगा उस कक्ष में ? बुझा हुआ दीप जब स्वयं को ही प्रकाशित नहीं कर पा रहा है, तो लड्डू क्या दिखा पायेगा ? लड्डू देखने के लिये आपको लट्टू

जलाना पड़ता है, समझ गये ? लट्टू यानि बल्व, दीप। दीप वही है, जो स्व को प्रकाशित करता है और पर को प्रकाशित करता है। ऐसे-ही ज्ञानी वही होता है, जो पहले स्वयं को प्रकाशित कर लेता है, फिर दूसरे को भी प्रकाशित करता है। जो स्वयं को प्रकाशित नहीं कर पायेगा, वो दुनियाँ को क्या प्रकाश दे पायेगा ?

यही कारण है कि नमोऽस्तु शासन जीवंत होता है, क्योंकि इस शासन में निर्ग्रन्थ बनते हैं। पहले निर्ग्रन्थता का बोध करें। पहले उपदेश नहीं देते हैं, पहले उपदेश के फल को जान लेते हैं। केवली बनने के बाद ही उपदेश प्रारम्भ होता है, इसके पहले चारित्र धारण कर लेते हैं। जब तक स्वयं में दिव्य ज्योति नहीं है, तब तक तीर्थंकर गृहस्थ अवस्था में कभी धर्म का उपदेश नहीं देते हैं, क्योंकि उनको मालूम है कि जब मुझे ही ज्ञात नहीं है, तो मैं जगत् को क्या बताऊँगा ? इसलिये मूल सिद्धांत का ध्यान रखना, भैया ! धर्म में आडम्बर नहीं है। पुनः पुनः कह रहा हूँ। धर्म में आडम्बर नहीं है और आडम्बर में धर्म नहीं है। कषाय भाव बढ़ सकते हैं कि इन्होंने इतना सजाया है मन्दिर, तो मैं और सजाऊँगा। तो मालूम चला कि मन्दिर की सजावट गौण हो गयी, कषाय की सजावट प्रधान हो गयी। तीर्थंकर का सिंहासन तीर्थंकर ने नहीं लगाया, उनके पुण्य के नियोग में सिंहासन लगा है और आप तीर्थंकर के सिंहासन को देखकर सिंहासन लगाने में लग गये हो तो मानकर चलना कि आपका सिंहासन खिसक चुका है। ये रत्नत्रय के फल का प्रभाव था कि वो परमात्मा अपने आप उर्ध्व में चले गये और अधर में जाने के लिये आप अधर में लटक गये। समझो मैं क्या बोल रहा हूँ? अधर में जाने के लिये अधर में लटक गये। अभी आपको यहाँ शान्ति का अनुभव हो रहा है, आनन्द है। जितनी शान्ति आ रही है, इतना ही धर्म है।

भगवत् कुन्दकुन्द स्वामी कह रहे हैं—हे जीव! जैसा अरिहंतदेव ने कहा है, गणधर परमेष्ठी ने गुंथन किया है, आचार्यों ने लिखा है, उस क्रम से ही वचन बोलना, अपनी तरफ से आडम्बर को धर्म मत कह देना। यदि आडम्बर को तुमने धर्म कह दिया, तो मारीचि से मिल लेना। हे मारीचि! सामर्थ्य न हो तो श्रद्धा से धर्म की वन्दना करना। असमर्थता में धर्म को धारण करके बदनाम नहीं करना। 'भीड़ नहीं चाहिये, वस्तुस्वभाव चाहिये।' लाखों-लाखों बबूल के वृक्ष के मध्य में चन्दन का केवल एक वृक्ष भी सुगन्ध देता है। लाखों बबूल के वृक्ष के मध्य में एक चन्दन का वृक्ष भी कह देता है कि मैं यहाँ पर हूँ। ऐसे-ही लाखों-लाखों आडम्बरियों के बीच में ज्ञानियो! एक वीतरागी धर्मात्मा कहता है कि मैं यहाँ पर हूँ। इतना ध्यान रखना, ये श्रमण संस्कृति वीतराग शासन की परीक्षा भीड़ से मत करना, इतनी बात मेरी मानना। जिनशासन की परीक्षा ज्ञानी! आडम्बर से मत करना, क्योंकि भीड़ जुटाना, ये तो जादूगर भी कर सकता है, मदारी भी भीड़ जुटा लेता है। भीड़ से धर्म की पहचान नहीं होती है, धर्म की पहचान वीतरागता से होती है।

इतना ध्यान रखना कि आडम्बर धर्म नहीं है, धर्म में आडम्बर नहीं है। आडम्बरशून्य जो है, उसका नाम धर्म है। धर्म वस्तु का स्वभाव है और वस्तुस्वभाव में पर-वस्तु का मिश्रण होता नहीं है और जहाँ पर-वस्तु का मिश्रण हो जाता है तो वो वस्तु का स्वभाव होता नहीं है। जैसे हल्दी चूना का मिश्रण। हल्दी का वर्ण पीला है, चूने का वर्ण सफेद है और जब दोनों मिल जायें, अब न चूना बचा, न हल्दी बची, उसकी तीसरी पर्याय आ गयी। रंग बदल गया, ज्ञानी! पर में मिलोगे तो रंग बदल जायेगा। पर में मिलोगे तो तेरा वर्ण बदल जायेगा। तू जैन जाति से बाहर हो गया, अब सन्तान क्या होगी ? इसलिये ध्यान दो, पवित्र धर्म में पवित्रता ही रखना। जैनदर्शन के वस्तुस्वरूप को समझना है तो **पंचास्तिकाय, नियमसार, प्रवचनसार और समयसार** जैसे ग्रंथों का अध्ययन करना पड़ेगा। समयसार ग्रंथ को यदि समझना है तो न्यायदीपिका, प्रमेयकमलमार्तण्ड, अष्टसहस्री, न्यायकुमुदचन्द्र, सिद्धि विनिश्चय, प्रमाण संग्रह, ऐसे ग्रंथों का अध्ययन करना पड़ेगा।

कल शाम को यहीं के छोटे-छोटे चार बालक आपस में महाराज के सामने बतिया रहे थे, बोले-महाराज! ये बताओ कि महाराज कैसे बनना पड़ता है ? जब मैंने ये सुना तो बहुत अच्छा लगा। उस समय महाराज का तो मौन था, तो उन्हीं में से एक बालक कहता है कि महाराज ! यहाँ पर भी पढ़ाई करना पड़ती होगी ? दूसरा बालक कहता है कि हाँ, करना पड़ती है। बोले-अरे दद्दा ! सब जगह पढ़ना ही पड़ता है क्या ? तब मैंने उनसे कहा कि ऐसे मोटे-मोटे ग्रन्थ पढ़ लोगे तब कहीं जैन योगी बन पाओगे। जिनसेन स्वामी ने तो ये लिख दिया महापुराण में कि जो ज्ञानी जिनागम की विद्या के अध्ययन का इच्छुक हो, ऐसे जीव को दीक्षा देना चाहिये। जो तत्त्व जानने का इच्छुक नहीं है, तत्त्व में प्रीति नहीं है, वो जिनदीक्षा लेकर भी क्या करेगा ? **तत्त्वज्ञानविहीनानाम् निर्ग्रंथमपि निष्फलम्।** वादीभ सिंह सूरि महाराज ने 'क्षत्रचूड़ामणि' ग्रंथ में लिखा है कि तत्त्वज्ञान से विहीन, निर्ग्रंथ भी क्यों न हो वो, निष्फल है। कैसे ? ज्ञानी ! बादाम खरीदने गया और इतनी कीमती बादाम खरीदकर लाया और अन्दर खोखला है, जब फोड़ेंगे तो क्या मिलेगा ? घुन लग गया हो बादाम में, तो ऐसी बादाम का कवच ही तो निकाल पायेगा, लेकिन खाने को क्या मिलेगा ? ऐसे-ही जो जीव तत्त्वज्ञान से विहीन है, दिगम्बर मुनि भी बन गया, तो भी वो केवल छिलका ही फोड़ पायेगा, लेकिन अन्दर की विजि का स्वाद नहीं ले पायेगा। इसलिये तत्त्वज्ञान की आवश्यकता है। यथार्थ मानना, आप लोग भी अनुभव कर रहे हो, जबसे इन ग्रंथों का वाचन प्रारम्भ किया है, तब से ये महसूस तो किया है कि वस्तुस्वरूप कुछ है।

तो ध्यान दो, भगवान् के द्वार पर जब भी जाओ, एक ही प्रार्थना करना कि हे नाथ ! कुछ नहीं चाहिये, मात्र इतना मेरे पास रहे कि मैं अहंकार में आकर के पंच-परमगुरु को न भूल जाऊँ।

भगवान् से यही प्रार्थना करना कि मैं अरिहंत के राग में अरहंत को न भूल जाऊँ, निर्ग्रंथ के राग में निर्ग्रंथों को न भूल जाऊँ और ग्रंथ के राग में निर्ग्रंथों को न भूल जाऊँ। समझो, वस्तुस्वभाव को समझो। आपको राग हो गया कि मेरे बाहुवली भगवान् से बड़ा कोई नहीं है। हे ज्ञानी ! बाहुवली के राग में बाहुवली को मत भूल जाना। एक योगी के राग में दूसरे योगियों को मत भूल जाना और जिनशासन कहता है, जिनागम कहता है कि राग अच्छा होता नहीं है। ज्ञानी ! राग तो आग है, इसका काम जलाना है। इसलिये राग-आग से बचना है तो साम्यभाव का सेवन करो। जो-जो जले हैं, जो-जो जल रहे हैं, वो सब राग के कारण जले हैं।

मारीचि से पूछना कि आपने तीर्थंकर ऋषभदेव की बात को नहीं माना, निज का मत चला दिया। बुद्धि के बल पर आपने ३६३ मिथ्यामतों का संचालन किया। हे वर्द्धमान महावीर ! आपने मारीचि की पर्याय में जिन मतों का प्रारम्भ किया था, उनको आप महावीर बनके भी ठीक नहीं कर पाये हो। इसलिये वक्ताओं से कह देना कि जिनवाणी की गद्दी पर उतना ही बोलना जितना आगम हो; नहीं तो महावीर-जैसे तीर्थंकर भी बन जाओगे, तब अपना कल्याण तो कर लोगे, परन्तु कोटि-कोटि जीवों को भटका जाओगे। ध्यान दो, आडम्बर धर्म नहीं है, इसलिये बहुत ताम-झाम की कोई आवश्यकता नहीं है। **जो है, सो है।** ज्ञानी वस्तुस्वभाव जो है, सो है।

आप सभी समझदार हो, जब भी घर की देहरी के नीचे उतरो, इसके पहले कह दिया करो, भैया ! क्षमा करना, फिर आकर मिलेंगे यदि पर्याय रही तो। यदि पर्याय नहीं रही तो हम कमठ बनकर नहीं जा रहे हैं, इसलिये क्षमा माँगकर जा रहे हैं। भरोसा नहीं है, कि वापस आ पाये या नहीं आ पाये।

मदि-सुद-णाण-बलेण दु सच्छंदं बोल्लदे जिणुद्दिट्ठं।
जो सो होदि कुदिट्ठी ण होदि जिणमग्ग-लग्गरवो॥

भैया ! इस गाथा को याद कर लेना और जगत् में जितने भी वक्ता हों उन सबको कह देना कि हे ज्ञानी ! 'मदिसुदणाणबलेण,' मति-श्रुतज्ञान के बल से, पूर्व पुण्य के नियोग से बुद्धि मिल गयी, क्षयोपशम मिल गया, विवेक मिल गया, इसका तात्पर्य ये नहीं है आगम की गद्दी पर बैठकर मनमानी कुछ भी कहते रहो। ये अरिहंत की, गणधर की गद्दी कहलाती है। अरिहंत की, जिनेन्द्र की, गणधर की गद्दी पर बैठकर मनमानी भाषा नहीं चलती है। ये प्रवचन है, प्रवचन में कोई व्यक्तिगत लक्ष्य नहीं आना चाहिये, प्रवचन में किसी की निन्दा, उपहास के शब्द नहीं आना चाहिये, प्रवचन में मात्र अरिहंत के वचन ही कहना चाहिये। वक्ता को किसी व्यक्ति विशेष पर लक्ष्य बनाकर भाषण करने की आवश्यकता नहीं है। मात्र **मृदु मधुर गम्भीरा वांग, मोक्षमार्ग**

उपदेशना। 'आचारसार' ग्रंथ में लिखा हुआ है कि निर्ग्रंथ योगी को अपनी वाणी पर नियंत्रण रखते हुये मृदु बोलना चाहिये, मधुर बोलना चाहिये, गम्भीर बोलना चालिये और उतना ही बोलना चाहिये जिसमें मोक्षमार्ग का उपदेश हो। मोक्षमार्ग के उपदेश के अलावा '**दोषवादे च मौनं**' पर के दोष कहने के लिये निर्ग्रंथ मुनि जीवनपर्यन्त मौन धारण कर ले। एक दो दिन के लिये नहीं, जीवनपर्यन्त के लिये। ज्ञानी ! सुनो, पर के दोष कहने के लिये मेरा मौन है, पर के दोष सुनने के लिये बहरे हो जाना, पर के दोष कहने के लिये मूक हो जाना और दोषों में जाने के लिये लंगड़े हो जाना और सज्जन पुरुष पर-स्त्री को देखने के लिये नपुंसक ही होता है। अब आप सब ज्ञानी हो गये। मति-श्रुत ज्ञान से 'सच्छंदं बोल्लई,' जो स्वच्छंद बोलता है, वो कहता है-जिणुदिट्ठं। ओ हो ! नाम भगवान् का ले दो और कुछ-भी कह दो। नहीं ! अपने वचन को जिनेन्द्र के वचन मत कहना। जो मति-श्रुत ज्ञान के बल से अपने मनमाने वचन बोलता है, उसको कुन्दकुन्द स्वामी कह रहे हैं कि जो सो होदि कुदिट्ठी, वो मिथ्यादृष्टि है। ण होदि जिणमग्गलग्गरवो, वो जीव जिनेन्द्र के मार्ग में आरूढ़ नहीं है। जिन शब्दों से भव्यों के भाव बिगड़ जायें, जिन शब्दों से अखण्ड समाज में टुकड़े हो जायें, वे शब्द प्रवचन नहीं हैं, वो तो मात्र कोरे भाषण हैं। टूटी समाज जुड़ना चाहिये, टूटे हृदय जुड़ना चाहिये। बस इतना काम करना आप लोग। यदि भैया-भैया में झगड़ा हो जाये, तो ऐसा न कहियो कि वे ऐसा कह रहे हैं। ऐसा कहना कि तुम्हारे बड़े भैया तो कितने अच्छे हैं, आपके बारे में सोच रहे थे कि मेरे छोटे भैया की दुकान और फल जाये। विश्वास रखना, छोटा भैया सोचेगा कि अरे ! मेरा भैया मेरे बारे में इतना अच्छा सोच रहा है। उन दोनों के भाव जुड़ जायेंगे। तुम इतना-सा काम अवश्य करना। भले ही तुम हजारों के दान मत देना, मन्दिर मत बनवाना, लेकिन इतना पुण्य कर लेना कि जुड़े हृदयों को तोड़ने का काम मत करना। भैया ! यदि दीवाल गिर गयी तो कारीगर बुलाके खड़ी करवा सकते हो, लेकिन एक बार श्रद्धा टूट गयी तो उसको कोई कारीगर ठीक नहीं कर सकता। जाओ, **जोत से जोत जलाते चलो, प्रेम की गंगा बहाते चलो।** धन्य हो ज्ञानियो ! सबकुछ तो जानते हो, फिर इसे मानने भी लग जाओ।

'**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं**' आत्मा का स्वभाव परभाव से अत्यंत भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

सम्यक्त्व के भेद

सम्मत्तरयणसारं, मोक्खमहारुक्खमूलमिदि भणिदं ।
तं जाणिज्जदि णिच्छय-ववहारसरूवदो भेदं ॥ 4 ॥

अन्वयार्थ—(सम्मत्तरयणसारं) सम्यक्त्व रत्न ही सारभूत है, वह **(मोक्खमहारुक्खमूलं)** मोक्ष रूपी महान् वृक्ष का मूल है। **(इदि)** ऐसा **(भणिदं)** कहा गया है **(तं)** वह **(णिच्छय ववहारसरूवदो)** निश्चय और व्यवहार रूप से **(भेदं)** दो भेद वाला **(जाणिज्जदि)** जाना जाता है।

भव्यजनो ! अन्तिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेश की पीयूष देशना जिनेन्द्रवाणी मनीषियो ! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो श्री वीतराग श्रमण संस्कृति।

आचार्यभगवान् कुन्दकुन्द स्वामी ग्रन्थराज 'रयणसार' जी में लिख रहे हैं कि वक्ता, जो अरिहंत की देशना को, निर्ग्रंथ की वाणी को ग्रन्थभूत कहता है, वही सम्यग्दृष्टि है। मति-श्रुतज्ञान के बल से किंचित् मात्र भी निज के चिंतवन को जिनवाणी में प्रवेश कराता है, स्वच्छंद बोलता है जिनवचन को, वो मिथ्यादृष्टि है। कारण क्या है ? जैसा भाव होगा, वैसी भाषा होगी। एक तिर्यंच की भाषा में भी भाव नजर आता है। गाय भी अपने बछड़े को जब दुलार से देखती है, **भैंस** भी जब अपने बच्चे को दुलार से देखती है, तो जैसे मनुष्य में माँ जब अपने बेटे को खिलाती है, नन्हें से बालक को वो बच्चे के साथ बच्चा बनकर बोलती है। अन्दर का दुलार, गाय और भैंस की आवाज को सुनना भैया ! जब बच्चे की ओर वो दुलार देती है, तब उसकी भाषा बच्चों जैसी हो जाती है। भाषा तो भावों के उद्घाटन की जननी है। भाषा तो भावों को उद्घाटित करने का मार्ग है, हेतु है, कारण है। भाषा वही निकलती है, जो भाव होता है। भावों की पहचान यदि किसी से होती है, उसका नाम भाषा है। मन की भावना पूरी नहीं होती है, उस समय की भाषा देखना। कामी की भाषा देखना, क्रोधी की भाषा देखना, मानी की भाषा देखना, मायावी की भाषा देखना। कषाय को दिखानेवाली भाषा है और उपशमभाव को बतानेवाली भाषा है। भाव मूक है, भाषा बोलती है।

ज्ञानी ! ध्यान रखना, भट्टी के अन्दर अग्नि झुलस रही है और भट्टी की अग्नि आँखों से कहाँ दिखाई देती है ? भैया! भट्टी की अग्नि आँखों से दृष्टिगोचर नहीं हो रही है, वो तो चारों ओर से दबी हुई है, लेकिन उष्ण गर्मी कह रही है कि भट्टा कितना तप्तमान है। बाहर की भाप ज्ञात करा रही है कि भट्टे में कितनी ज्वाला भरी हुई है। ज्ञानी ! ध्यान रखना, जिसकी भाषा कठोर है, वो भाषा कह रही है कि इसके भाव कितने कठोर होंगे—अग्नि के भट्टे के समान, ईंट के भट्टे

के समान। वाणी में माधुर्य हो, वाणी में ओज हो, ज्ञानी ! वाणी में मैत्री भाव हो, वाणी में वीणा हो, वाणी में बाण न हो। हे बाँस ! तू बाँसुरी भी बनता है, हे बाँस ! तू लाठी भी बनता है। लाठी कमर को तोड़ देती है और बाँसुरी टूटे हृदय को जोड़ देती है। बाँसुरी की आवाज को सुनकर जंगल में विचरण करने वाली गायें भी इकट्ठी हो जाती हैं, बांसुरी की आवाज को सुनकर मृग भी आकरके खड़ा हो जाता है और बाँस की लाठी को देखकर तुम्हारी गाय भी भाग जाती है। बस ! हमारी वाणी बाँसुरी तो बने, परन्तु हमारी वाणी बाँस की लाठी न बने। अरिहंत की देशना बाण नहीं है, वाणी है।

ज्ञानियो ! तत्त्व भी पिलाना हो तो शरबत बनाकर पिलाना, चाय बनाकर मत पिलाना। ओ हो! वे दिन कहाँ गये जब घर में मेहमान आता था तो ज्ञानी शरबत पिलाते थे, ठंडा करते थे रास्ते की थकान को दूर करने के लिए, लेकिन आज तुम गरम कर रहे हो। समय बदल गया। शरबत की जगह चाय पिला रहा है, यानि मेहमान को ठंडा करना चाहिए था तो उसे गरम कर रहा है। जैसे आज के श्रावक बदल गये, ऐसे-ही ज्ञानियो ! योगी को नहीं बदलना है। श्रावक भले ही शरबत की जगह गरम चाय पिला रहे हैं, ओंठ झुलसा रहे हैं, जिह्वा झुलसा रहे हैं और शरीर के अन्दर की आँतों को झुलसा रहे हैं। अपने विशुद्ध परिणामों को झुलसा रहे हैं, और ज्ञानी ! ध्यान दो—चाय को पी-पीकर इतना मद चढ़ चुका है कि आदमी अपना विवेक भूल रहा है। परन्तु हे योगी ! ये गृहस्थ भले शरबत की जगह चाय पिलायें, लेकिन आप जिनवाणी की जगह बाण नहीं खींचना, जिनवाणी की जगह जिनवाणी ही पिलाना। जिनके मुखचन्द्र तें अमृत झरें। तपोधन के मुखचन्द्र तैं। ऐसा लोक में कहा जाता है कि चन्द्रमा से अमृत झरता है, ऐसे-ही निर्ग्रन्थों के श्रीमुख से अरिहंत के वचन रूपी अमृत झरते हैं।

इसलिए भाषा कह रही है कि मेरा दोष नहीं है, मुख कह रहा है कि मेरा दोष नहीं है। मुख में दोष नहीं है, भाषा में दोष नहीं है। दोष तो भावों में है, मुख में दोष नहीं है। इस मुख से अच्छा बोलना भी तो जानते हो, बुरा भी बोलना जानते तो। बिल्ली देखी है क्या आपने ? हे ज्ञानी ! उस बिल्ली से कह देना, हे बिल्ली ! तू माँ भी होती है, हे बिल्ली ! तू हत्यारिन भी होती है। मुख तेरा एक है। हे बिल्ली ! जैसे तू अपने मुख से अपने बच्चे को उठा ले जाती है, ऐसे-ही उसी मुख से तू चूहे को भी उठाने लग जाये, तो तुझे हत्यारिन क्यों कहें ? तू जगत् की माँ बन जायेगी। जब बच्चे को उठाती है तो प्रेम की दृष्टि, उसे प्रीतिपूर्वक उठाती है और चूहे को ..... । मुख एक है, भाव भिन्न है। हे ज्ञानी ! जिस मुख से अपनों से बोलते हो, उसी मुख से दूसरे से बोलते हो, पर भाषा में इतना अन्तर क्यों आ गया ? क्योंकि भाव विकृत हैं।

जिनागम कहता है कि शरीर से साधु की पहचान मत करना, वर्ण से साधु की पहचान मत करना, कौआ को और कोयल को निहार लेना। दोनों का वर्ण समान है। कौआ भी काला है और कोयल भी काली होती है। दोनों काले हैं। यदि दोनों एकसाथ बैठे हों तो समझ नहीं आता कि कौन कौआ है और कौन कोयल है, लेकिन जब काग बोलता है—कांओ कांओ, कोयल कूँकती है, तो मालूम चल जाता है कि कौआ कौन है और कोयल कौन है। मुमुक्षुओ ! वर्ण से पहचान मत करो। पहचान करना है तो वाणी से करो। भेष एक हो सकता है, लेकिन भाव एक नहीं है। परन्तु ध्यान रखना, जितने धरती के देवता, निर्ग्रन्थ तपोधन इस भारत की ही भूमि पर नहीं, वरण् पूरे ढाई द्वीप में विचरण कर रहे हैं। करणानुयोग कहता है कि निर्वाण तभी होगा, जब सभी योगियों का भाव एक होगा। शरीर के भेद हो सकते हैं, भाषाओं के भेद हो सकते हैं, परन्तु निर्वाण सभी जीवों का अनेक भाषाओं से, अनेक ऋद्धियों से नहीं, एक भाव से होता है। ये गुणस्थान की धारा है। ९ मुनि बिराजते हैं और ९ मुनियों के कद में भिन्नत्व होगा, भावों में भिन्नत्व होगा, गुणस्थान एक होने पर भी गुणस्थान में तारतम्य हो, लेकिन निर्वाण का दिन आयेगा उसके पहले ज्ञानी सभी के भाव एक से होंगे। भाव एक-से होना चाहिए।

हे माँ ! तूने कभी लड्डू बनाया ? दस कढ़ाही रख देना एकसाथ और दस माताओं को बिठाल देना लड्डू बनाने के लिए। चासनी का तार जब टूटेगा, हे माँ ! लड्डू बनने की योग्यता तभी आयेगी, जब सभी कढ़ाहियों में चासनी का तार एकसा टूटेगा, ऐसा नहीं है क्या ? ऐसा ही है। ध्यान दो, मैं क्या कह रहा हूँ ? दृष्टांत मात्र चासनी का है, परन्तु ये परिणामों की धारा है। जैसे लड्डू तभी बन पायेगा जब सभी कढ़ाहियों का तार एक-सा टूटेगा, अन्यथा कोई लप्सी बनायेगा, कोई हलुआ बना रहा है, कोई कसार बना रहा है। ये सब बनाओ, लेकिन लड्डू तो तभी बनेगा, जब सब का तार एक-सा टूटेगा। ऐसे-ही हे मुमुक्षुओ ! जब तक तार में भिन्नता है, तो कोई स्वर्ग में जा रहे हैं, कोई भवनत्रिक में जा रहे हैं, कोई सर्वार्थसिद्धि में जा रहे हैं; लेकिन निर्वाण तभी होगा, जब सबके परिणामों का तार एकसा होगा। ये भावों की दशा है। जितने व्रती, प्रतिमाधारी यहाँ बैठे हैं, भैया ! ध्यान से सुनना—ये अन्दर के तंत्र का वर्णन चल रहा है। आचार्य पूज्यपाद स्वामी ने 'समाधितंत्र' ग्रन्थ में लिखा है, अन्दर के तार एकसे होंगे, तभी निर्वाण हो पायेगा और जब तक अन्दर का तार एकसा नहीं है, भेष एकत्व हो सकता है। भेष का एकत्व मोक्ष का एकत्व नहीं है, भावों का एकत्व मोक्ष का एकत्व है।

हे ज्ञानी ! जब सभी कढ़ाहियों का तार एकत्व को प्राप्त होता है, उत्कृष्टता को प्राप्त होता है, तब कहीं लड्डू बनता है। ऐसे-ही जब जीव के परिणाम चर्मोत्कृष्ट अवस्था में पहुँचते हैं, उत्कृष्ट अवस्था में पहुँचते हैं, तब कहीं निर्वाण का मार्ग खुलता है, सामान्य परिणामों से मोक्ष मिलनेवाला

नहीं है। असमग्र चारित्र निर्वाण नहीं दे सकता है। इसमें फूल मत जाना कि मैं तो इतना पालन कर रहा हूँ, तो मेरा कल्याण हो जायेगा। ज्ञानियो ! कुछ नहीं कर रहे थे, उसकी अपेक्षा से अच्छा है, लेकिन ध्यान रखना, निर्वाण के लिये तो समग्र चारित्र चाहिए, असमग्र चारित्र से निर्वाण होता नहीं है। जल्दी थी, पानी को प्रासुक करना था, तो पानी को केवल कुनकुना करके चल दिये। लेकिन ध्यान रखना, पानी की २४ घण्टे की मर्यादा तभी बनेगी जब वो उबलेगा। विवेक लगाइये। जल्दी थी आपको, अभिषेक करना था श्री जी का, तो पानी को जरा-सा कुनकुना किया और अभिषेक कर लिया। लेकिन ध्यान रखना, इस गंधोदक को २४ घण्टे नहीं चला सकते आप। उबलते पानी से भी अभिषेक मत कर लेना, उसे ठंडा करके करना। अरे भाई ! पंचमकाल है, सब समझाना पड़ता है, नहीं तो गड़बड़ कर लेंगे। यदि आप वक्तव्य दे रहे हो, प्रवचन कर रहे हो, टीका का अर्थ होता है, श्लोक जो लोगों को समझ में नहीं आ रहे हैं, उसकी टीका करके समझाया जाता है और टीका ही यदि इतनी कठिन हो जाये तो..... ? उसे सरल कीजिये आप। उपदेश का अर्थ है कि वो टीका से भी सरल होना चाहिए। भाषा की प्रांजलता तो हो, लेकिन साथ में श्रावकों को वो समझ में भी आना चाहिए। तुम ज्ञानी तो कहलाओगे, लेकिन ज्ञान किसी को दे नहीं पाओगे।

इसलिए हमारा जैन आगम का जो उपदेश है, वो प्राकृतिक (प्राकृत) भाषा में है, क्यों ? क्योंकि ये प्रकृति की भाषा है। जिस समय जो जिस भाषा को जानते हैं, उस बारे में हमारे आचार्यों ने उसी भाषा का प्रयोग किया है। मगवा शब्द का अर्थ जानते हो ? मगवा यानि इन्द्र। विडोजा शब्द का अर्थ भी इन्द्र होता है। इसलिए वर्तमान में जो भी उपदेश हों, बिल्कुल स्पष्ट शब्दों में होना चाहिए, संशय में नहीं आना चाहिए। क्योंकि पंचम काल इतना खोटा है कि जिनवाणी के साथ-साथ यदि ये श्रावकाचार, मूलाचार, समयसार आदि ग्रन्थ न होते, इनके होने पर भी चारित्र में जो भिन्नता दिख रही है, होने पर भी लोगों में जो विषमतायें दिख रही हैं, समाज में, मुनिसंघ में बेचारे पिस रहे हैं। जिनवाणी एक है, अरिहंत एक है, निर्ग्रन्थमुद्रा एक है, भावों का एकत्व आ जाये तो तुम सबका निर्वाण बहुत दूर नहीं है। बस, सन्तुलन बनाओ भावों का। जब तक शत्रु, मित्र में भेद है तब तक ज्ञानी योगी की दशा नहीं है। जब तक शत्रु-मित्र में भेद है, तब तक निर्ग्रन्थ दशा नहीं है। शत्रु-मित्र के भेद में अभेद है, इसका नाम निर्ग्रन्थ मुनि है। कठिन नहीं है। शत्रु मित्र में दुविधा कैसी ? निर्ग्रन्थ का कोई मित्र भी नहीं होता। सबके प्रति, प्राणीमात्र के प्रति मैत्रीभाव होता है लेकिन मित्र नहीं होता, मैत्री भाव होता है और मैत्री भाव का अर्थ हाथ में हाथ दबाकर जीवों की हिंसा करना नहीं है। किसी को गले लगाकर उसका पसीना अपने में छपा लेना, इसका नाम मैत्रीभाव नहीं है। किसी के पत्तल और थाली का जूठन खा लेना, कैंसर और टी.बी. जैसे रोगों को

बुला लेना, इसका नाम मैत्रीभाव नहीं है। किसी की उतरन को पहन लेना, इसका नाम मैत्रीभाव नहीं है। ये तो आस्रव भाव है। ओ हो ! सुनो जिनवाणी। बोले—महाराज ! जीने दोगे कि नहीं ? नहीं, जैसे जी रहे हो वैसे नहीं जीने दूँगा। जैसे जीना चाहिए, वैसे जीने दूँगा।

यदि आप बिल्कुल सट सट कर बैठते हो, तब भी हिंसा हो रही है। किसी के वस्त्र आदि का उपयोग कर रहे हो, तब भी हिंसा हो रही है। ज्ञानी ! व्यवहार को व्यवहार समझो, लोकाचार को व्यवहार मत कहो। ये व्यवहार धर्म नहीं है, ये लोकाचार है। पिच्छि कमण्डलु धारण करना, बारह व्रतों का पालन करना, इसका नाम व्यवहार धर्म है और निजस्वरूप में लीन होना, इसका नाम निश्चय धर्म है। यानि पिता के पैर पड़ना कोई व्यवहार धर्म नहीं है, ये लोकाचार है। लोकधर्म कहो, लोकव्यवहार कहो। व्यवहार और लोकव्यवहार में अन्तर डालो, अन्यथा ज्ञानी ! मिश्रधारा बन जायेगी। उपदेशों में भेद डालना पड़ेगा, अन्यथा ये पंचमकाल है, यदि आप वही-वही कहते रहे, ज्ञानी ! विश्वास रखना, बाहर का धर्म देखा और भीतर का धर्म खोखला हो गया। इतने समझौतावादी हो गये कि समाज में एकता होना चाहिये और ज्ञानी ने जूठन खाना शुरू कर दी। सुनो धर्म की वास्तविक चर्चा। हे माँ ! घर में भोजन बना है और अधिक बन गया है और अगर तू किसी को खिला नहीं सकती है तो वो सड़ जायेगा, तब सुबह ऊपर छत से गली में फेंक देती हो, बोले कि गाय खा जायेगी। जिस अभक्ष्य को तुम नहीं खा सकती हो, कीड़े जिसमें पड़ गये; उसे गाय को खिलाकर हिंसा की कि नहीं ? जब वो स्वच्छ था, उसी समय क्यों नहीं खिला देते हो। अब शुरू हो रहा है **'रयणसार'**। भाषा में कीड़े न हों, भावों में कीड़े न हों और ज्ञानी ! चर्या में कीड़े न हों।

समझ में आ रहा है न ? मैत्री का अर्थ विपरीत मत करना। पर को पीड़ित नहीं करना, इसका नाम मैत्री है। पीड़ित के कष्ट को हरण कर लेना, इसका नाम मैत्री है। इसलिए आज से ध्यान रखना कि मिलना-जुलना सबसे, लेकिन जहाँ तक बने, दूसरे के वस्त्र मत पहनना। ये मार्ग बदल गया है। स्वयं के वस्त्र पहन कर तीर्थंकर की पूजन-अभिषेक होना चाहिए। और वे मन्दिर में टंगी धोतियाँ हैं, उन्हीं से ज्ञानी नाक पोंछ लेता है, पसीना पोंछ लेता है और उन्हीं वस्त्रों को पहनकर भगवान् का अभिषेक भी कर लेता है। ससुराल जायेंगे तो बड़े अच्छे से बनकर जायेंगे और भगवान् के सामने आये तो ऐसे ही आ गये। नहीं भैया ! खाने को यदि अच्छा न भी मिले तो जैसा मिले वैसा खा लेना, शुद्ध खाना, लेकिन तीर्थंकर के पादमूल में जो द्रव्य चढ़ाना वो उत्कृष्ट-से-उत्कृष्ट द्रव्य चढ़ाना। खाने के चावल बासमति और पूजन के चावल अलग। नहीं, भैया ! नहीं, ऐसा कभी नहीं करना। ध्यान दो, टूटे चावल, फूटे बर्तन, फटे वस्त्रों से जो पूजा कर

रहा है, वो भविष्य का दरिद्री है। ये मैं अपनी तरफ से नहीं बोल रहा हूँ, जिनवाणी में लिखा है। घबड़ाओ नहीं, इसमें अभी और-भी बहुतकुछ लिखा हुआ है। उत्तरीय वस्त्र, अधो वस्त्र। नूपुर पैरों में ही पहने जाते हैं, कुण्डल कानों में ही पहने जाते हैं। ऐसा कभी नहीं होता कि बिछिया कानों में लटका लो और कुण्डल पैरों में पहन लो। ऐसे-ही ज्ञानियो ! ये ध्यान रखना, कि अभिषेक धोती-दुपट्टा पहनकर ही करना। ये सब तो विद्वानों को कहना चाहिए, जो अब मुझे कहना पड़ रहा है।

सम्यग्दृष्टि जीव बहुत विवेक के साथ रहता है। हर क्रिया में विवेक है। धर्म की रक्षा करना आपके हाथ में है। यदि आप अहिंसा का पालन और चारित्र का पालन करना चाहते हो, शुद्ध की बात करते हो, तो पियो कुये का पानी, तब होगी बिलछानी। ये विद्वान् लोग जो पूरे देश में घूमते हैं, चाहें तो नियम ले लें, तो लोग इनको शुद्ध खिलायेंगे और शुद्ध खायेंगे, तो शुद्ध के संस्कार भी पड़ेंगे लोगों के। विषय ये नहीं है कि तुम क्या कर रहे हो। मैं समझता हूँ तुम्हारी विषमताओं को। लेकिन सत्य मार्ग क्या है, इसे भूल मत जाओ। सत्य पर चल नहीं पा रहे हो, ये तुम्हारी कमजोरी है; परन्तु सत्य को बोल नहीं पा रहे हो, ये महा कमजोरी है। सत्य पर नहीं चल पाना, ये चारित्रमोहनीय कर्म का उदय मैं मान सकता हूँ, लेकिन सत्य को बोल नहीं पा रहे हो, ये दर्शनमोहनीय काम कर रहा है, मिथ्यात्व काम कर रहा है। जिनवाणी के अनुसार नहीं चल पाओ तो क्षम्य है, लेकिन जिनवाणी को जिनवाणी के अनुसार बोल नहीं पा रहे हो, ये अक्षम्य है। अपनी कमजोरी को आगम मत बना लेना। महाराज! मूलाचार के अनुसार चलना और अगर नहीं चल पाओ तो अपने चलने की क्रिया को मूलाचार मत कह देना। अहो श्रावको! श्रावकाचार के अनुसार चलना, घर में कुये का पानी आना चाहिए, घर के चौके में चंदोवा लगा होना चाहिये, ये सारी शुद्धि होना चाहिये। तुम यदि नहीं कर पा रहे हो तो अपनी गलती को श्रावकाचार मत कह देना, उसे अपनी कमजोरी ही कहना और तब तक अपनी कमजोरी कहते रहना जब तक यथाख्यात चारित्र को प्राप्त न कर लो।

वो दिन कब आयेगा जब मैं भी एक वृक्ष के नीचे ध्यान में बैठा होऊँगा ? इतने लोगों के बीच में यहाँ चातुर्मास करना अच्छी बात है क्या ? परन्तु क्या करूँ ? ऐसा कोई पाप किया होगा कि पंचमकाल में आकर पंचमकाल का मुनि बनना पड़ा। परन्तु ऐसा कोई शुभ भी किया होगा कि पंचमकाल में आकर भी महाव्रती बनने का अवसर मिला है। दोनों बातें निहारते रहना। परन्तु ये भी ध्रुव सत्य है कि आप लोग जो यहाँ बैठे हो, तो कहीं-न-कहीं अपने पूर्वभव का सम्बन्ध अवश्य है, इसमें कोई शंका नहीं करना। आज यदि हमारे पास केवली भगवान् होते तो उनसे पूछ लेते-भो स्वामी ! कौन से भव का सम्बन्ध है आपसे ? तो भगवान् कह देते कि पूर्वभव के संस्कार हैं, जिसके कारण तुम आज यहाँ आकर मिले हो। ऐसे-ही भाव बनाओ कि हे भगवन् ! पूर्व में पुण्य

किये हैं, तो आज हमसब एकसाथ बैठकर जिनवाणी सुन रहे हैं। अब ऐसा पुण्य का नियोग बन जाये कि हमसब एकसाथ सिद्धालय में जाकर बैठें। भाव बनाने में क्या जाता है ? भाव बनाओ-काश ! भगवान् महावीर स्वामी के सामने हमसब ऐसे-ही बैठे हों। भगवान् सीमन्धर स्वामी के ज्ञान में ये झलक रहा होगा कि भरतक्षेत्र में, भारत में खोटे काल में भी लोग श्रद्धा से जिनवाणी सुन रहे हैं। मैं भगवान् सीमन्धर स्वामी से कह रहा हूँ कि हे सीमन्धर स्वामी ! आपके भक्तों की अपेक्षा से मेरे भक्त इस समय श्रेष्ठ हैं। बोले-क्यों ? इसलिए श्रेष्ठ हैं, प्रभू ! आप क्षायिक ज्ञानी हो, आप प्रत्यक्ष ज्ञानी हो, आपके धर्म का वैभव दिखाई दे रहा है तब लोग आये हैं, परन्तु यहाँ तो कुछ भी नहीं दिख रहा है, तब भी यहाँ पर आकर बैठे हैं।

सुनो भैया ! यदि समता है, तो साधु बन जाना। साम्यभाव को मैं साधुता स्वीकारता हूँ। यथार्थ मानिये—बहुत बड़ा ज्ञान, बहुत बड़ी तपस्या गौण है, साम्यभाव प्रधान है। ज्ञान और तपस्या साम्यभाव के लिये ही की जाती है और यदि समता नहीं है, विकल्प हैं, तो कोई फायदा नहीं। भैया ! काम करो, लेकिन समता से करो। फल मिलेगा, विकल्प नहीं। साधना करो, मोक्ष का टेंशन मत पालो। विश्वास रखना, यदि किसी के मन में ये प्रश्न आता हो कि पंचमकाल में मोक्ष होता नहीं है, फिर क्यों साधना करो ? तो घबड़ाना नहीं, मौसम आने दो। आचार्य शान्तिसागर महाराज जी के पास एक विद्वान् पहुँचे। विद्वान् भी कोई दूसरे नहीं थे, जो आचार्य वीरसागर हुए हैं, वो विद्वान् थे, पण्डित थे, शास्त्री। ज्ञानी ! एक ऐसा समय आ गया था जब विद्वान् शुष्क हो चुके थे, चारित्रवान् दिखाई देते नहीं थे, तो उनको ज्ञान ही सर्वस्व दिखता था। ध्यान दो, ऐसे विद्वान् बहुत कम हुये हैं जो साधुओं के पास श्रद्धा से बैठे हैं। ऐसे भी विद्वान् हुये जिन्होंने छिप-छिप कर साधुओं की परीक्षा की है। वीरसागर गृहस्थ अवस्था में आचार्य शान्तिसागर को जाकरके देखते रहे और एक दिन उनके पास जाकर बोल ही पड़े कि महाराज ! पंचमकाल में मोक्ष नहीं होता, आप क्यों ये दीक्षा लेकर बैठ गये हो ? कोई सूखे प्रश्न भी करे, प्रश्न कठोर हो सकता है, प्रश्नकर्ता कठोर हो सकता है, लेकिन उत्तरकर्ता को कठोर नहीं होना चाहिये। सुनो ध्यान से, प्रश्नकर्त्ता मनमाने प्रश्न कर सकता है, आपको उल्टा-सीधा भी बोल सकता है, लेकिन योगी तो सरल, सौम्य ही होना चाहिये।

भैया ! वो कुल्हाड़ी तो पैनी होती ही है, उसका काम तो काटना होता ही है, पर चन्दन कहता है कि तू मुझे काट भी देगी तब भी मैं तुझे सुगन्ध ही दूँगा। बस, भैया ! जैसे चन्दन का वृक्ष कटने पर भी कुल्हाड़ी को सुवासित ही करता है, ऐसे-ही दिगम्बर तपोधन उपसर्ग करने वाले को सम्यक्त्व प्रदान कराता है। भक्त में भक्त, अभक्त में अभक्त देखने की तुममें आँख जब तक है, तब तक आप साधु बनने लायक नहीं हो। साधु नहीं हो—ये नहीं कह रहा हूँ। साधु बनने लायक

नहीं हो। मालूम होना चाहिये कि कच्चे माल में ही पक्का माल निकलता है। साँची बोलो—आटा खाते हो या रोटी? रोटी खाते हो न, तो-फिर कच्चा आटा फेंक दिया करो, केवल रोटी ही खाया करो। हे ज्ञानी ! यदि कच्चा आटा नहीं होगा तो पक्की रोटी कहाँ से बनेगी? ये मिथ्यादृष्टि, क्रोधी, मायावी यदि नहीं होंगे, तो सम्यग्दृष्टि बनेगा कौन ? ये ही तो सम्यग्दृष्टि बनते हैं। इसलिये यदि कोई कुपित होकर भी मेरे पास आ जाये, विश्वास रखना, उसको मैं आशीर्वाद ही दूँगा। कोई गाली भी दे जाये, तब भी उसे आशीर्वाद ही दूँगा। क्यों ? तेरे पास जो है, तू वही देगा और मेरे पास जो है, मैं भी वही तो दे सकूँगा। जिसके पास जो होता है, वही तो देता है। आचार्य शान्तिसागर, उस महाराज बननेवाले वीरसागर विद्वान् से कहते हैं—पण्डित जी ! आम चाहिये, वो सामने वृक्ष है। बोले—महाराज ! मैंने तो सुना है कि शान्तिसागर महाराज बहुत ज्ञानी हैं, अभी आम कहाँ से लायें ? महाराज ने कहा कि वृक्ष से लाओ, वो सामने तो है वृक्ष। विद्वान् बोले—महाराज! अभी आम नहीं आता। कब आयेगा, किससे आयेगा? बोले—'आयेगा तो इसी वृक्ष से महाराज! लेकिन जब मौसम आयेगा, तब आयेगा।' अच्छा ! मौसम आयेगा न, तब आयेगा, कहाँ से आयेगा ? इसी वृक्ष से आयेगा न ? महाराज बोले—अरे ज्ञानी ! तू ज्ञानी है कि अज्ञानी ? जब भी आम आयेगा, इसी वृक्ष से आयेगा न ? लेकिन कब आयेगा ? जब मौसम आयेगा। हे मुमुक्षु ! जब भी मोक्ष मिलेगा तो इसी निर्ग्रन्थ मुद्रा से मिलेगा। कब मिलेगा ? जब मौसम आयेगा। तो जब मौसम नहीं है, तो वृक्ष को निकाल कर फेंक दोगे क्या ? यदि वृक्ष को ही काटकर फेंक दिया, तो फल कहाँ से आयेंगे ? ऐसे-ही ज्ञानी ! निर्ग्रन्थ मार्ग है, आज वृक्ष तो है, क्योंकि जब चतुर्थकाल का मौसम आयेगा, तो इसी वृक्ष से मोक्ष का फल लगेगा। इसलिए हे ज्ञानियो ! आज की साधना भी भविष्य के मोक्ष के लिये सहकारी बनेगी। इसलिए तुम तो सब मुनि बनो, लेकिन बनके बनना, मिटने के लिये मत बनना, कर्म मिटाने के लिये बनना। बनो, लेकिन क्षयोपशम को प्राप्त करके जिनवाणी का विपर्यास नहीं करना। क्यों भैया ! जब शास्त्र सुनने में इतना आनन्द आता है, तो भगवान् बनने में कितना आनन्द आता होगा ? साक्षात् तीर्थंकर महावीर बोलते होंगे तो कैसा लगता होगा?

जिनवाणी तो अगाध है, पर इतना ध्यान रखना कि आज से श्रद्धा चलायमान मत करना। एक जरा-सा दीप लेकर जाते हो और हवा चल रही हो तो क्या करते हो ? ढक लेते हो न ? कितने सम्हाल कर दीप ले जा रहे हो, ताकि दीप बुझने न पाये। हे भैया ! घी का दीप बुझ गया तो माचिस तेरे हाथ में है, पुनः जला लोगे, लेकिन श्रद्धा का यदि दीप बुझ गया, तो फिर कोई काड़ी काम में नहीं आयेगी। जगत् की बातें तो सुनना, पर अपने पास बुद्धि है, अपना निर्णय लेकर जीना। नहीं तो ये दुनियाँ है, रागी है रागी। ये अपने स्वार्थ को देखती है, तेरा कल्याण कोई नहीं देखता है, विश्वास

रखना। झमेलों में पड़कर अपनी श्रद्धा को डवाँडोल नहीं करना। ये पंचमकाल है। समन्तभद्र स्वामी से प्रश्न किया महावीर स्वामी ने, कि हे समन्तभद्र ! मेरा शासन इतना महान् है, फिर भी इसको मानने वाले लोग इतने कम क्यों हैं, मुट्ठीभर ?

कालः कलिर्वा कलुषाशयो वा, श्रोतुः प्रवक्तुर्वचनानयो वा।
त्वच्छासनैकाधिपतित्वलक्ष्मी, प्रभुत्वशक्तेरपवाद हेतु :॥ 5॥ युक्त्यनुशासन

हे प्रभु ! आपके शासन में कोई दोष नहीं है। आपका शासन तो महान् पवित्र है। तो फिर बात क्या है ? ये काल काला है, ये भी बहुत बड़ा दोष नहीं है। परन्तु क्या करूँ, नाथ ! इस काले काल में जन्म लेने वाले लोगों के आशय भी काले हैं। आपको भी नहीं देखते हैं अपने स्वार्थ के पीछे। भैया ! विश्वास रखो। कितने तीर्थ आपको ऐसे मिल जायेंगे जिन तीर्थों में बैठे लोग तीर्थ की मिट्टी को खा रहे हैं। जो तीर्थकमेटियों में बैठे हुये हैं, इन बेचारों पर करुणा करना और कह देना भैया ! सुनो, उन गरीबों से पूछो जो यात्रा को आते हैं। अपने बेटे को नहीं खिलाते हैं, परन्तु एक सिक्का गोलक में डालना पसंद करते हैं। उनके द्रव्य को तुम कहाँ, कैसे-कैसे नष्ट करते हो ? जो निर्माल्य के एक दाने को खाता है, वो साठ हजार वर्ष तक विष्टा में कीड़ा होता है। श्रवणवेलगोल के विन्ध्यगिरि चन्द्रगिरि पर्वत पर प्रशस्ति लिखी हुई है ऐसी। इसलिए बड़े सम्हलकर रहना। मन्दिरों में, तीर्थों में काम तो करवाना, लेकिन जैसे अपने घर पर पहले सब तैयारी कर लेते हो, तब ईंट लगाते हो इंजीनियर को बुलाकर ज्ञानी ! समाज के द्रव्य को ऐसे ही लगाना, नहीं तो हर एक ट्रस्टी के घर में अंधे, लूले, पागल आदमी मिल जायेंगे। एक दीवार रोज गिरा रहे हो, एक दीवार उठा रहे हो, भैया ! उन गरीबों के द्रव्य पर थोड़ा ध्यान तो दो, तुम कर क्या रहे हो ? पैसा फिर आ जायेगा, लेकिन पैसा आता कैसे है ? जो त्यागी-व्रती समाज के द्रव्य का दुरुपयोग करवा रहे हैं, उनको भी उस पाप का बंध नियम से होगा। सत्य जिनवाणी समझो। बंध नियम से होगा और अन्तराय कर्म का आस्रव होगा। ग्रन्थ का नाम नोट कर लो—'तत्त्वार्थसार'। नहीं तो कोई बोलेगा कि विशुद्धसागर कुछ भी बोलते हैं। तत्त्वार्थसार ग्रन्थ में इसका स्पष्ट उल्लेख है।

यदि रत्नों में कोई सार है तो उसका नाम सम्यक्त्व है। यदि वास्तव में कोई सारभूत रत्न है, तो उसका नाम सम्यक्त्व है। इसको नष्ट मत होने देना। बहुत त्यागी यदि नहीं बन पाओ तो मत बनना, लेकिन श्रद्धा में कमी मत रखना। वर्तमान की श्रद्धा ही आपको भविष्य का वर्द्धमान बनायेगी। उस श्रद्धा में कमी मत रखना। कोई गाड़ी के पलटने से पटरियाँ नहीं उखड़तीं। जो डिब्बा खराब हो जाता है, उसको अलग करके, ठीक करके, फिर गाड़ी चलती है। यदि तुमको धर्मात्मा जीव में कोई कमी दिख जाये तो उसे देख कर पूरे धर्म को बुरा मत कह देना। जैसे गाड़ी के खराब डिब्बे

को अलग करके उसे फिर चला दिया जाता है, लेकिन गाड़ी उसी पटरी पर चलती है, ऐसे-ही कोई एकाध व्यक्ति में आपको कमी दिखने लग जाये तो, ज्ञानी ! मोक्षमार्ग के पूरे मुनियों को, मुमुक्षुओं को गलत नहीं कह देना। मार्ग तो चलेगा और कब तक चलेगा ? अनादि अनन्त काल तक चलेगा। अवनि कब से है, पृथ्वी कब से है, अम्बर कब से है ? कब तक रहेगा ? तो ऐसे ही मुमुक्षुओ ! अवनि व अम्बर है, तब तक दिगम्बर रहेगा। कब से है ? अनादि से है। कब तक रहेगा? अनन्त काल तक रहेगा। इसका टेंशन नहीं करना। **जो है, सो है।** अकाट्य श्रद्धा होना चाहिये। कुछ भी कहो, कोई कितना ही हिला ले, पर जिनवाणी के प्रति अकाट्य श्रद्धा होना चाहिये। जो अरिहंतदेव ने कहा है वो ध्रुव सत्य है, और श्रद्धा के प्रभाव से ज्ञानी ! सब काम होंगे। जैसे हमारे मन्दिर के शिखर हैं। कितने ही झंझावात चलें, पर मन्दिर का शिखर जरा भी हिलनेवाला नहीं है। ऐसे-ही हमारी श्रद्धा का शिखर होना चाहिये, जो हिलने-डुलने वाला नहीं होना चाहिये। प्राकृत भाषा में वृक्ष को रूख कहते हैं। तो ज्ञानी ! जैसे रूख का मूल जड़ है, ऐसे ही मोक्ष का मूल यदि कोई है तो सम्यक्त्व है, उसको जानो। सम्यग्दर्शन दो प्रकार का है—निश्चय सम्यक् और व्यवहार सम्यक्।

"आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

सम्यग्दृष्टि कैसा होता है ?

भयवसणमलविवज्जिद संसारसरीरभोगणिव्विण्णो ।
अट्ठगुणंगसमग्गो, दंसणसुद्धो हु पंचगुरुभत्तो ॥ 5॥

अन्वयार्थ—(दंसणसुद्धो) निर्दोष सम्यग्दर्शन का धारक **(हु)** निश्चय ही **(भयवसणमल-विवज्जिद)** भय, व्यसन और मलों से रहित होता है **(संसारसरीरभोगणिव्विण्णो)** संसार, शरीर और भोगों से विरक्त होता है। **(अट्ठगुणंगसमग्गो)** अष्टांग गुणों से युक्त होता है **(पंचगुरुभत्तो)** पंच गुरु परमेष्ठी का भक्त होता है।

भव्य बन्धुओ ! अन्तिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेश की पीयूष देशना जिनेन्द्रवाणी मनीषियो ! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो श्री वीतराग श्रमण संस्कृति।

आचार्यप्रवर भगवान् कुन्दकुन्द स्वामी ग्रन्थराज रयणसार जी में प्रवृत्ति-निवृत्तिमूलक धर्म की चर्चा कर रहे हैं। धर्म अन्तस् का विषय है और कषाय की उपशमना, परिणामों की विशुद्धि, स्वानुभूति का लक्ष्य जहाँ है, निराकुल दशा जहाँ बढ़ रही है, उसका नाम धर्म है। निराकुलता जहाँ है, उसका नाम धर्म है और वही सुख है। सुख की अन्य कोई परिभाषा नहीं है। निराकुलता में ही सुख है, आकुलता में किंचित् भी सुख नहीं है। जिस क्रिया में आकुलता है, वह धर्म का फल नहीं है, वो कषाय का फल है। कषायभाव जो है, वह चंचल है। कषाय भाव जो है, अस्थिर है। साम्यभाव स्थिर है। चलायमान, हिलते पानी में चन्द्रमा भी दिखाई नहीं देता। यदि आपको विश्वास न हो तो आज ही देख लेना। यदि बाल्टी में पानी भरा हुआ है और हिल रहा है, तो उसमें आपका चेहरा नहीं दिखाई देता और यदि वही पानी स्थिर हो जाये तो उसमें चेहरा दिखने लगेगा। जिसका चित्त चलायमान होगा, जिसका चित्त अस्थिर है, उसको परमात्मा का चेहरा भी दिखाई नहीं देता, फिर निज ध्रुव आत्मा को देखना तो बहुत कठिन है। जितना साम्यभाव है, उतना ही आनन्द है।

धर्मस्थान पर भी आकुलतायें बढ़ने लग जायें, तो विश्वास रखना, वहाँ भी आनन्द समाप्त हो जायेगा। धर्म करने के लिये आये हो तो निहारना आपके भाव कहाँ हैं ? जिन-जिन निमित्तों से परिणामों में आकुलता, असमता आती हो, उन निमित्तों से दूर हो जाना। कम-से-कम एक पर्याय में तो उस सत्य का वेदन कर लो, जिस सत्य को पाने के लिए अनन्त भव पूर्ण किये हैं, लेकिन ये प्राप्त नहीं हुआ। जैनकुल में आये हो, जिनशासन में जी रहे हो तो, ज्ञानी ! कम-से-कम इतना कर लेना। दुनियाँ का लेना, दुनियाँ का देना, ये अनन्त भवों में किया है। ये भी ध्रुव सत्य है कि डाकू

को भी जब डाका डालने को मिलता है तो उसमें भी उसका पुण्य का उदय होता है। ओ हो ! बोले, क्या बोल रहे हो महाराज ? हे ज्ञानी ! सुन ! डाकुओं को भी डाके की जो सामग्री मिलती है, उसमें भी उसके पुण्य का उदय होता है। जब तक लाभान्तराय कर्म का क्षयोपशम नहीं होगा, तब तक वो दुनियाँ में कितना ही भटक ले, उसे एक कण तक नहीं मिलेगा। उसका भी पुण्य का उदय चल रहा है और पुण्योदय के काल में ही वह तीव्र पाप का बंध कर रहा है, ये अच्छी बात नहीं है। डाका डालना, ये अच्छी बात नहीं है। जिस ग्रन्थ का वाचन आप कर रहे हो आश्रम में, '**आत्मानुशासन ग्रन्थ**', उसी ग्रन्थ में लिखा हुआ है—सागर कभी पातालतोड़ पानी से नहीं भरते। समुद्र कभी पातालतोड़ पानी से नहीं भरते हैं। यानि यदि समुद्र भरा हुआ है, तो गंदे नदी नालियों से ही भरा हुआ है। जितने धनपति बने हैं, गंदे नदी-नालों से ही बने हैं। अहो ! सागर कभी पातालतोड़ पानी से नहीं भरता है। नालों से, नदियों से भरा। ऐसे-ही कितना ही पैसों से भरा जीव होगा, कहीं-न-कहीं नदी नाले का पानी उसमें मिल रहा है। इसलिए ध्यान देना। अन्तर इतना है कि अपने-अपने डाके डालने के तरीके अलग-अलग हैं। इन्कम टेक्स, सेल्स टेक्स। आप तो कुछ चोरी करते ही नहीं हो, पूरी ईमानदारी से अपना काम करते हो ? माँ बेटे से कह रही है कि बेटा ! दूध पी लो। हे माँ ! तू सत्य बोल रही है क्या ? हे माँ ! तू बेटे से कह रही है 'बेटा ! दूध पी लो।' ग्वाला तो पहले से ही पानी मिलाकर लाता है और आपकी आदत में है कि बिना मिलाये दूध देती कहाँ हो, इसलिए ये क्यों नहीं कहती हो कि पानी मिला दूध पी लो ? क्या ये झूठ नहीं है ? ये धर्म की व्याख्या है ? यहाँ ऐसा नहीं चलेगा कि महाराज ! आजकल तो ये सब चलता है। कर्मसिद्धान्त कहता है कि बिल्कुल नहीं चलता।

हे ज्ञानी ! किसको तू दोष देगा ? मत किसी को दोष दो। दे सको तो दोष अपनी दृष्टि को दो कि हे मेरी आँखें ! तुम इतनी अभागी क्यों हो कि तुझे दूसरे के दोष ही दिखे ? अरे ज्ञानी ! कुन्दकुन्द स्वामी को निगोदिया में भगवान् दिखाई देता है और तुझे भगवान् में भी दोष दिखाई देते हैं। कौन दोषी है ? किसी में दोष नहीं है। ज्ञानी ! राग में दोष है, द्वेष में दोष है, किसी में दोष नहीं है। राग हट जाये और द्वेष हट जाये, तो हर जीव निर्दोष परमात्मा है। उस निर्दोष परमात्मा की प्राप्ति कैसे हो ? उसका उपाय है **श्रमणाचार, श्रावकाचार**। जो ये ग्रन्थ है, ये परमात्मा की प्राप्ति का उपाय बता रहा है। जो आप सुन रहे हो, वो आपको भगवान् नहीं बनायेगा, भगवान् बनने की विधि बता रहा है। ये 'रयणसार' ग्रन्थ आपको भगवान् नहीं बना रहा है, भगवान् बनने की विद्या सिखा रहा है, क्योंकि जिनशासन में कोई किसी का कर्त्ता होता नहीं है। विधि बता रहे हैं, बनना आपको है। तटस्थ हो जाओ, प्रारम्भ करो अपने विषय को। इस लोक में कोई सार है, रत्न है, तो उसका नाम सम्यक्त्व है। ज्ञानियो ! सम्यग्दृष्टि नारकी मोक्षमार्गी है और मिथ्यादृष्टि देव

संसार-मार्गी है। सम्यग्दृष्टि नारकी मोक्षमार्गी है, ज्ञानी ! सम्यक्त्व सहित नरक में जाना श्रेष्ठ है। अपने हृदय को बड़ा पवित्र करके सुनना।

गृहस्थो मोक्षमार्गस्थो, निर्मोहो नैव मोहवान् ।
अनगारो गृही श्रेयान्, निर्मोहो मोहिनो मुनेः ॥33॥ र.क.श्रा.॥

हे परमेश्वर ! आपके पादमूल में मेरी आस्था बनी रहे, तो नरक में जाना पसन्द है और आपकी श्रद्धा, चरणों से विहीन होकर मैं स्वर्ग का देव बनना भी पसन्द नहीं करता हूँ। नरक का नारकी सम्यग्दृष्टि है, मोक्षमार्गी है। श्रद्धाविहीन स्वर्ग का देवता भी संसारमार्गी है। जीवन में सब कुछ मिल जायेगा, लेकिन यदि श्रद्धा खोखली हो गयी तो विश्वास रखना, सारा आनन्द समाप्त हो चुका है। जब तक प्रतीति है, तब तक अनुभूति है। प्रतीति नहीं है, तो आनन्द नहीं है। जिस परिवार में आप रह रहे हो, एक दूसरे के प्रति प्रेम-वात्सल्य रहता है तो घर में आनन्द आता है और जिस दिन एक दूसरे के प्रति विश्वास हट जाये तो बुन्देलखण्ड में कहते हैं भैया ! घर खावे दौड़ रओ। बोले—महाराज ! घर में सबकुछ है, सम्पदा है, परिवार है, लेकिन घर में प्रीति नाम की वस्तु नहीं है। यानि उस घर में कुछ भी नहीं है। जिस घर में परस्पर में प्रीति न हो, एक दूसरे के प्रति विश्वास न हो, उस घर में क्या है ? कुछ भी नहीं है। भैया ! ध्यान रखना, न ईंट-मिट्टी के भवन में सुख है, न चर्म के पिण्डों में सुख है। जिस घर में आपस में विश्वास नहीं है, उस घर में मात्र चर्म के पिण्ड रखे हुये हैं और ईंट-चूने के ढेर हैं और यदि वात्सल्य है, परस्पर में प्रेम है, तो समझना कि उस घर में कुछ लोग रहते हैं। सम्यक्त्व क्या कह रहा है ? नरक का नारकी मोक्षमार्गी है, क्योंकि उसके पास श्रद्धा है। किसी के बढ़ते कदमों को कभी नीचे मत गिराना। नीचे को उठाने का भाव तो रखना, पर उठे को गिराने का भाव मत रखना। अपने भाग्य से दुनियाँ खाती है, पीती है, लेकिन तेरे भाग्य से न कोई खाता है, न कोई पीता है। यदि आप भी खिला रहे हो, तब भी ज्ञानी ! भाग्य उसी का है, तभी तुम्हारे भाव बने हैं और यदि भाग्य उसका न होता, तो तुम्हारे भाव ही नहीं बनते। इस भ्रम को निकाल दो आज से कि सबका कर्त्ता मैं हूँ। यदि आप सुख में जीवन जीना चाहते हो तो यूँ कहना सीखो—मैं कर्त्ता नहीं हूँ। भाग्यवान् के भाग्य को कौन छीन सकता है ?

हे केकयी ! आप श्रीराम को जंगल भिजवाने में निमित्त बन गयी हो। आपने अपने बेटे के लिये राज्य माँग लिया। श्रीराम जंगल चले गये। लेकिन ध्यान रखो, बनवास तो भेज सकते हो, पर वन में वास हो, ये आपका नियोग नहीं है। दु:ख के साधन तो दूसरा जुटा सकता है, लेकिन दूसरा आपको दुख नहीं दे सकता है। सुख के साधन दूसरा जुटा सकता है, लेकिन दूसरा आपको सुख नहीं दे सकता है। आप दु:ख के साधन जुटा सकते हो, लेकिन किसी को दु:खी नहीं कर सकते

हो, क्योंकि दु:खी वो होता है, जिसके अन्दर राग है, द्वेष है। जिसने दु:ख ही नहीं स्वीकारा है, उसे तुम क्या दु:खी कर पाओगे ? आप गाली दो मुझे और मैं आपकी गाली को स्वीकार नहीं कर रहा हूँ और मुस्करा रहा हूँ, तो तेरी गाली किसके पास है ? कोई किसी को सुखी नहीं कर सकता है। आप थाली लाकर किसी को भोजन करा सकते हो, पर जिसके गाल में फोले पड़ चुके हैं और लीवर कमजोर हो चुका है, तो क्या तू उसे बादाम का हलुआ खिला सकता है ? और मान लो उसने खा भी लिया, तो क्या वो पुरुष स्वस्थ होगा, सुखी होगा ? इधर भोजन बिगाड़ेगा, फिर भूमि बिगाड़ने जायेगा। समझ गये न आप ? साता का उदय है तो बंद कमरे में भी आनन्द है और असाता का उदय है तो महलों में भी हाय-हाय होती है। याद करो, विहार के समय कैसे-कैसे स्थानों पर साधु ठहरते हैं। खेतों में ठहरते हैं। एक दिन तो श्मशान घाट में मेरा पाटा लगा। सुबह मैंने देखा, वहाँ मटके पड़े हुये थे। ओ हो ! भूमि कौन-सी थी ? श्मशान घाट। पुण्य होता है तो भूत भी पूजा करने आ जाते हैं, वे लगते नहीं हैं और पुण्य नहीं होता है तो घर में भी भूत लग जाते हैं। कौन किसको सुख देता है, कौन किसको दुख देता है ? प्रद्युम्न कुमार के लिये भाइयों ने कितना उपद्रव किया ? ऐसी बावड़ी में पटक दिया कि निकलना मुश्किल था, ऐसे भवन में डाल दिया कि निकलना मुश्किल था, पर वहाँ पर भी देवों ने आकर रक्षा की है। रत्नों का थाल लिये माला पहना दी गले में। यदि पुण्य सत्ता में है, तो शत्रु के घर में भी सम्मान मिलता है और यदि पुण्य नष्ट हो चुका है, तो निज के घर में ही शत्रु का जन्म होता है। श्रीराम से पूछो। विभीषण मिल गये। और पुण्य नष्ट होता है तो रावण से पूछो, घर में शत्रु विभीषण मिल गये। दोनों ओर विभीषण। राम के लिये विभीषण अभीष्ट हो गये और रावण के लिये विभीषण अनिष्ट हो गये, जबकि विभीषण तो एक ही था। ज्ञानी ! जगत् में किसी का कुछ कर नहीं पाओगे, अपने भाव बिगाड़ कर अपना भव ही बिगाड़ पाओगे। कौन किसका कर्त्ता है ?

आचार्य भगवान् कुन्दकुन्द स्वामी कह रहे हैं कि सम्यग्दृष्टि जीव इतना विवेक से भरा होता है, सबके बीच में रहता हुआ भी सबसे भिन्न रहता है, जल में कमल के समान। जरा सोचो, मेरा साथ कौन-कौन देगा ? ज्ञानी ! तेरा तन भी तेरा साथ नहीं देगा, तो फिर तन के सम्बन्धी तेरा साथ क्या दे पायेंगे ? जिसके लिये कमा कर रखा है, उसका तन भी तेरे साथ नहीं जा पायेगा। संज्ञान को प्राप्त करो, संज्ञा को छोड़ो। ये नाम की भूख ने भोजन की भूख मिटा दी। नाम नहीं हो पाया तो थाली का भोजन नहीं रुच रहा है। पेट भरने की संज्ञा के लिये तो ज्ञानी ! दस पन्द्रह रोटी से तेरी भूख पूरी हो जाये, लेकिन कानों से सुनने की संज्ञा तेरी कोटि-कोटि मुख से भी की जाये तो तेरी पूरी नहीं होती है। जितना घात तूने आहार, भय, मैथुन, परिग्रह इन चार संज्ञाओं से नहीं किया, उतना तूने नाम की संज्ञा में किया है। अमुकचन्द, अमुकचन्द, अमुकचन्द, हे ज्ञानी ! इस धरती पर न

जाने कितने चन्द होकर चले गये और ज्ञानी ! विश्वास रखना, इस जीव ने ही अनन्त '**चन्द**' शब्दों को प्राप्त कर लिया है, लेकिन एक चन्द्र भी दिखाई नहीं दिया। अहो ! क्या ये नाम शाश्वत रहेगा तेरा ? नाम के राग में निज आत्मा को बदनाम क्यों कर रहा है ? अरे ! तेरा नाम है भी क्या ? जिस देह में प्रवेश किया, उस देह का नाम माता-पिता ने रख दिया। सुन ज्ञानी ! जब देह में ही तू नहीं रह पायेगा, तो नाम तेरा क्या रहेगा ? जितने भू-तल पर सो रहे, सोयेंगे, ये नाम के राग में निज को खो गये। लगता है कि माता-पिता ने कितना अच्छा काम किया कि बेटे का नाम रख दिया, पर बेटे ! विश्वास रखना, जो कष्ट तुझे माता-पिता ने दिया है, जिस दिन तू शुद्ध चिंतवन करेगा, उस दिन मालूम चलेगा कि मेरे माता-पिता ने मुझे महान् कष्ट दिया है। भैया! पूरी बात सुन लेना।

ज्ञानी ! जब तेरा जन्म हुआ था, तब तेरा नाम क्या था ? जब तू माँ के उदर से आया था उस समय माँ भी सत्य बोल रही थी, पिता भी सत्य बोल रहा था। वो क्या बोल रहे थे ? **जीव** आया है। जिस क्षण जन्म हुआ था, उस समय सत्य बोला जा रहा था और जिस दिन मृत्यु होगी, उस दिन भी सत्य बोलते हैं कि **जीव** चला गया। जब तेरा जन्म हुआ था, उस समय सत्य बोला जा रहा था और जब तू इस पर्याय से जायेगा तो सत्य बोला जायेगा, लेकिन इस बीच का जो असत्य है, इसने जीवन बर्बाद कर दिया। माँ ! तूने मेरा नाम नरेन्द्र रख दिया, अब मैं सोता भी हूँ और कोई मेरा नाम पुकारे तो मैं जग जाता हूँ। सुरेन्द्र के नाम की कोई आवाज लगाये तो नरेन्द्र नहीं जगता है, लेकिन नरेन्द्र नाम लो तो जग जाता है। हे माँ ! मन्दिर में जब मैं भगवान् की पूजा करता हूँ और उसी समय कोई मुझे नरेन्द्र नाम से गाली दे दे, तो मेरे भाव बिगड़ जाते हैं। भैया ! सुनो ! ये कौन-सी वस्तु है, जो तेरे भाव बिगाड़ती है ? अब बोलो, माता-पिता ने तेरे साथ अच्छा किया या बुरा किया ? अरे ! उन्होंने अपना कर्तव्य किया। उन्हें तू क्यों बुरा बोलता है ? उसे तू मान क्यों बैठा है ? ये बुराई तेरी है। सुनो, भैया ! लोकाचार चलाने के लिये सभी के नाम रखे जाते हैं। तीर्थंकरों के भी नाम रखे गये हैं। मेरा भी नाम रखा गया था। मैं भी कुछ कहलाता था। ज्ञानी! ध्रुव सत्य है और ये भी ध्रुव सत्य है कि ये मात्र व्यवहार के लिये है, वस्तुस्वभाव नहीं है। मैं तो इसी पर्याय में इस शरीर के तीन-तीन नाम देख चुका हूँ। तो अब बताओ कि इनमें से कौन-सा सत्य है ? रागियों के बीच में था तो मेरा कोई दूसरा नाम लेते थे और आचार्य विरागसागर जी ने दो नाम बदल दिये। अब बताओ, इनमें से कौन-सा शाश्वत है ? जब तक एक नाम का राग पूरा नहीं हो पाया तो दूसरे नाम में चला गया और दूसरा नाम भी हट गया और ज्ञानी ! जब तक तेरे इस शरीर के नाम की ख्याति फैल पायेगी तब तक तू शरीर से ही हट गया। अब बताओ, बचेगा क्या ? परमार्थ दृष्टि पर लक्ष्य करो।

सम्यग्दृष्टि जीव सम्पूर्ण लोकाचार, सम्पूर्ण लोकव्यवहार को जानता है और मानता है, लेकिन फिर भी अपनी आत्मा को लोक से भिन्न मानता है। वो सबके साथ हिल-मिल कर रहेगा,

पर श्रद्धा में बैठा हुआ है '**अहमिक्को**' मैं एक हूँ। गुनगुनाओ अन्दर—मैं एक हूँ। सागर भरा है, लहरें पानी की चल रही हैं, पक्षी उड़ रहा है, उसे वृक्ष नजर आ नहीं रहा है। हे पक्षी ! सागर के बीच से उड़ान भरेगा, बैठने को कहीं स्थान नहीं मिलेगा, थक जायेगा, तो गिरेगा, तो क्या होगा ? डूबेगा । हे पक्षी ! समुद्र के मध्य से तू विचरण करेगा और वृक्ष का आश्रय दिखाई नहीं दे रहा है, यदि तू थक गया और गिरेगा, तो सागर में निश्चित डूबेगा। हे पक्षी ! हे श्रमण ! इस लोक में शरण कोई दिखाई दे नहीं रहा है और भवसागर विशाल है, यदि धर्म-वृक्ष का आश्रय नहीं लिया, तो ज्ञानी ! गिरेगा और डूबेगा तो तेरा क्या होगा ? कोई सहारा नहीं है, भैया ! बहुत विश्वास के साथ बोल रहा हूँ, अन्दर के विश्वास के साथ बोल रहा हूँ। जब तक तेरे पुण्य का आश्रय तेरे साथ है, तब तक लोक में दुनियाँ पूछनेवाली मिलेगी और जहाँ तेरा पुण्य क्षीण होगा, विश्वास रखना, पक्षी की भाँति अकेला तड़पता रहेगा। अपने को अकेला ही स्वीकारो, बात मेरी मान लो। संयोग की दशा में मिलने-जुलने वाले मिलते रहेंगे, लेकिन साथ कोई नहीं देगा। एक क्षण को उसका वेदन कर लो, विपत्ति के काल को निहार लो। किसने, किसका साथ दिया ? विपत्ति के काल में तो माँ 'बेटा' कहना बंद कर देती है। विपत्ति के काल में सगा भाई भी द्वार बंद कर लेता है। जब सगा ही 'सगा' तेरा नहीं हुआ, तो 'पर' तेरा कैसा हो सकता है ? भैया ! किसी के निमित्त से दीक्षा मत लेना। ये मत सोचना कि यदि मैं दीक्षा ले लूँगा तो ये ज्ञानी मेरा साथ देगा। कभी ऐसा सोच कर दीक्षा मत लेना। जिस भी काम को करने जाओ, पराश्रित होकर कभी काम करने मत जाना। पराश्रयभूत होकर कोई काम मत करना। निज वीर्य पर विश्वास हो तो ज्ञानी ! वीरता का काम कर लेना और यदि निज पर विश्वास नहीं है, पर के ऊपर विश्वास है, तो कोई काम करने मत जाना। अपनी इस देह पर भी विश्वास करके काम मत करना। जो आज चमकती दिख रही है, कल इसका भरोसा नहीं है कि कौन-से रोग से ये ग्रसित हो जाये। निज के भावों पर विश्वास हो जाये तो ज्ञानी ! आज ही आप मुनि बन जाना। निज के भावों पर विश्वास हो तो काम कर लेना और यदि निज के भावों पर ही विश्वास नहीं है, तो पर के भावों पर क्या विश्वास करना ? जब तेरे स्वयं के भाव डग-मग हो रहे हैं, स्वयं के परिणाम अस्थिर हैं, तो दूसरे के परिणामों पर क्या विश्वास करना ? इसलिये किसी को अपना मत मानना, साम्य भाव का जीवन जीना।

सम्यक्त्व दो प्रकार का है—निश्चय सम्यक्त्व और व्यवहार सम्यक्त्व। देव, शास्त्र, गुरु पर श्रद्धान करना, पंचपरमेष्ठी पर श्रद्धान करना, सात तत्त्वों पर श्रद्धान करना, छः द्रव्यों पर श्रद्धान करना, पंचास्तिकाय पर श्रद्धान करना, नौ पदार्थों पर श्रद्धान करना, इसका नाम व्यवहार सम्यक्त्व है। निज ध्रुव चैतन्य आत्मा में लीन होकर प्रतीति करना, निज आत्मा पर श्रद्धान है। ये निश्चय सम्यक्त्व है। ये है निश्चय और व्यवहार। जो भेददृष्टि है, वो व्यवहार दृष्टि है और जो अभेददृष्टि

है, वो निश्चय दृष्टि है। अखण्ड समाज से मेरा कहना है कि नयों के राग में उलझकर समाज की अखण्डता को मत तोड़ देना। नय तो नय है। 'नय' वस्तु को समझने की शैली है, 'नय' वस्तु नहीं है। आत्मा का परिणाम यानि 'काकाक्षी न्याय'। काग यानि कौआ और अक्ष यानि आँख। कौये की दो आँखें होती हैं, पर कौये की दो आँखों में दो गोलक नहीं होते हैं, केवल एक ही गोलक होता है। जब कौये की दायीं आँख खुलेगी, तब बायीं आँख बन्द हो जायेगी और बायीं आँख खुलेगी, तब दायीं आँख बंद हो जायेगी, क्योंकि जब एक ओर गोलक जायेगा तो दूसरी आँख बंद होना ही है। ज्ञानियो ! आँख एक नहीं है, आँखें दो ही हैं, लेकिन जब वो एक आँख से देखता है, तो दूसरी आँख बंद हो जाती है, ऐसे-ही हे सम्यग्दृष्टि ! जब तू निश्चय में लीन होगा, तो व्यवहार की आँख बंद हो जायेगी और जब व्यवहार में लीन होगा, तो निश्चय की आँख बंद हो जायेगी। आँखें तो दो हैं, लेकिन गोलक एक है। जब जीव के परिणाम अशुभ उपयोग में होंगे, तब शुभ उपयोग की आँख बंद हो जायेगी और जब परिणाम शुभ उपयोग में होंगे, तब अशुभ उपयोग की आँख बंद हो जायेगी। ज्ञानी ! परिणाम तो वही हैं, लेकिन परिणति बदलना तेरे हाथ का काम है। ये काकाक्षी न्याय है। बाहर की बात करने के लिये अपने पास समय कहाँ ? जिनागम में इतना विषय भरा हुआ है कि अलग से कहने की कोई आवश्यकता ही नहीं है।

समझ में आ रहा है न आपको ? हे माँ ! सुई के छेद में कभी धागा डाला आपने ? ध्यान देना, जब माँ सुई के छेद में धागा डालती है तो अपनी एक आँख बंद कर लेती है। हे माँ ! सुई के छेद में धागा डालने के लिये एक आँख बंद करना पड़ती है, तो हे माँ ! भगवान् जिनेन्द्र की वाणी के सूत्र को निज आत्मा में डालना है तो तेरे पास दो आँखें हैं—एक भोग दृष्टि और एक योग दृष्टि। भोग की आँख बंद करना पड़ेगी, तब योग की आँख खुलेगी। तुम्हारे पास दो दृष्टियाँ हैं। अशुभ के काम बंद नहीं कर रहे हो, तो अशुभ के बंध को बंद कैसे करोगे ? वस्तुस्वरूप समझो। ये चर्चायें मोराजी (सागर) मात्र के लिये नहीं हैं, पूरे विश्व के लिये हैं। ध्यान दो। हे पक्षी! गगन में गमन करो, गगन में उड़ान भरो, लेकिन उस पक्षी से पूछना कि दायें पंख से उड़ेगा कि बायें पंख से उड़ेगा ? यदि कहता है कि मैं बायें पंख से उड़ूँगा तो फिर दायें पंख का परिग्रह क्यों रखा है? उसे अलग कर दो। और यदि कहता है कि दायें पंख से उड़ूँगा, तो फिर बायें पंख का परिग्रह क्यों रखा है ? उसे अलग कर दो। आप बताओ, पक्षी क्या एक पंख से उड़ सकता है ? तो आज जाकरके इन पक्षियों से कह देना कि हे पक्षियो ! हे पंथियो ! तुम निश्चय पंथ से मोक्ष जाओगे या व्यवहार पंथ से मोक्ष जाओगे ? जब तक पक्षी के दो पंख नहीं होते हैं, तब तक गगन में गमन नहीं होता है। ऐसे-ही जब तक निश्चय और व्यवहार, दोनों धर्म नहीं होते हैं, तब तक सिद्धशिला पर गमन नहीं होता है। दाँया पंख कटेगा तो पक्षी टपकेगा और बाँया पंख कटेगा, तो पक्षी टपकेगा।

ऐसे ही यदि निश्चय को छोड़ दोगे तो संसार में रुलोगे और यदि व्यवहार को छोड़ दोगे तो संसार में रुलोगे। जिनागम में पंथ नहीं है। ये अज्ञानियों के अहंकार के पंथ हैं। जिनागम में कोई पंथ नहीं है, पथ है। 'सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः'। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनों की एकता मोक्षमार्ग है। नय मोक्षमार्ग नहीं है। नय तो वस्तु को समझने की शैली है। निश्चयनय धर्म नहीं है, व्यवहारनय धर्म नहीं है। निश्चय-व्यवहार रत्नत्रय धर्म है। अभी तो बहुत सारे लोगों को वस्तुस्वरूप पता ही नहीं है। वे तो केवल हल्ला करना जानते हैं कि तुम कौन हो ? हम व्यवहार वाले हैं। बोले, तुम कौन हो ? हम निश्चय वाले हैं। अरे! तुम दोनों पागल हो। अभी तक आपके पास व्यवहार धर्म ही नहीं है।

अच्छा बताओ, आपके पास व्यवहार धर्म है क्या ? सोच रहे हैं क्या बोलूँ। अच्छा, मैं ही सरल किये देता हूँ। दो धर्म हैं। एक निश्चय धर्म और दूसरा व्यवहार धर्म। अब बताओ, आपके पास कौन-सा धर्म है? जितने ज्ञानी यहाँ बैठे हैं, वास्तव में इनके पास न तो निश्चय धर्म है और न व्यवहार धर्म है। मात्र ये विवाद करते हैं। समयसार जी ग्रंथ में गाथा नम्बर सात नोट कर लो। जो दर्शन, ज्ञान, चारित्र का भेदरूप से पालन करते हैं, वो व्यवहार धर्म है। आपके पास ज्ञानी ! अट्ठाईस मूलगुण हैं क्या ? यदि नहीं हैं, तो व्यवहार धर्म भी नहीं है। और ज्ञानियो ! जो अभेद रत्नत्रय में लीनता है, वो निश्चय धर्म है। इसलिए हे श्रावको ! तुम बेचारों के पास एक भी धर्म नहीं है, तो फिर क्यों विवाद करते हो ? जो निश्चय-व्यवहार में लीन हैं, उन योगियों की वन्दना करो और अपने बंध दूर करो। आज समझ में आया, ज्ञानी ! इतने दिन से कहाँ थे ? न तो आप निश्चय धर्म में हो और न आप व्यवहार धर्म में हो। निश्चय-व्यवहार धर्म के मानने वालों को मानते हो, इसलिये आप धर्मात्मा हो, उपासक हो। रत्नत्रय धर्म है और रत्नत्रय धर्म ज्ञानी निर्ग्रन्थ तपोधन के पास है पूर्ण रूप से। एकदेशरूप से देशव्रती श्रावक के पास है और सम्यग्दृष्टि श्रावक के पास उपचार से है। उपचार में और व्यवहार में बहुत अन्तर है।

हे ज्ञानी ! उपचार और व्यवहार का भेद है। लेकिन व्यवहारनय भी दो प्रकार का है। ज्ञानी बोले कि महाराज ! भाषा थोड़ी सरल करो। अच्छा, अभी समझाये देता हूँ। आज सुबह तुम दूध लेने गये थे कि नहीं ? हाँ, गये थे। तो अपने बेटे की माँ से बाल्टी कौन-सी लेकर गया था ? दूध की बाल्टी अलग से लेकर गया था कि नहीं ? दूध की बाल्टी में दूध लेकर आया कि नहीं? कौन-सा प्रदेश है जहाँ दूध की बाल्टियाँ बनती हों ? उसका नाम तो बताओ। इन माताओं के घर में तेल की बर्नी अलग है, घी की बर्नी अलग है। अब इन ज्ञानियों से पूछो कि तेल, घी से बर्नियाँ कौन से प्रदेश में बनने लगीं। क्या ऐसा नहीं बोलते हो? और क्या आपका काम ऐसे नहीं चलता? भैया ! ऐसे ही चलता है ? भो ज्ञानी ! दूध की बाल्टियाँ नहीं होती हैं, घी की बर्नी नहीं होती, तेल

की बर्नी नहीं होती, लेकिन जिसमें दूध भरा जाता है, उसको कह दिया जाता है कि ये दूध की बाल्टी है। जिसमें घी/तेल भरा जाता है, उसको कह दिया जाता है कि ये घी/तेल की बर्नी है। इसका नाम उपचार है।

सद्भूत व्यवहारनय, असद्भूत व्यवहारनय—ये व्यवहारनय के मुख्य दो भेद हैं। जो निश्चय को भेद करके देखता है, निश्चय में भेद करता है, शुद्ध-द्रव्य, शुद्ध-गुण, शुद्ध-पर्याय में भेद करे, वो शुद्ध सद्भूत व्यवहारनय है। अशुद्ध गुण, अशुद्ध पर्याय, अशुद्ध-द्रव्य में भेद करे, वो अशुद्ध व्यवहारनय है। जो उपचार का कथन करे, वो असद्भूत व्यवहारनय है। अब सोचो कि कितना अध्ययन करना होगा ? इसलिये ध्यान दो, इन विकल्पों में मत जाओ कि मैं व्यवहार वाला, मैं निश्चय वाला। तुम ऐसा कहो कि निश्चय-व्यवहार धर्म को माननेवाले, पालनेवाले उन योगीश्वरों का मैं भक्त हूँ, इसलिये मैं समयसार उपासक हूँ। अहो श्रावको ! समयसार उपासको ! तुम तो मुनियों की जय बोलो।

हमने सुना है कि तुम दिगम्बर जैन हो, ऐसा है क्या ? आप लोग कौन से जैन हो ? दिगम्बर जैन हो। अच्छा, ये बताओ कि तुम कहाँ से दिगम्बर हो ? जो दिगम्बर मुनि को, निर्ग्रन्थ मुनि को अपनी श्रद्धा से नहीं देख पा रहे हैं, उन ज्ञानियों से कहना कि तुम दिगम्बर जैन कहाँ से हो ? तुम इन दिगम्बर मुनियों की बलिहारी जाओ कि जो बाईस परीषह को सहन करते हों, निर्ग्रन्थ धर्म का पालन करते हों, उनकी कृपा से तुम कपड़े पहनकर भी दिगम्बर कहला रहे हो। धन्य हो तुम्हारी महिमा। यदि ये दिगम्बर ऋषिराज न होते, तो तुम दिगम्बर कैसे कहलाते ? और फिर भी तुम आनन्द के साथ कहते हो कि मैं दिगम्बर जैन हूँ, अहो जैनियो ! अम्बर धारियो ! फिर भी तुम कहते हो कि मैं दिगम्बर जैन हूँ। ये उपचार कथन है। बोले, दिगम्बर गुरु हमारे हैं, मैं उनको मानता हूँ, इसलिये मैं भी दिगम्बर हूँ। अहो ! धन्य हो। अब समयसार की भाषा में सुनो।

घृतकुम्भाभिधानेऽपि कुम्भो घृतमयो न चेत्।
जीवो वर्णादिमज्जीवजल्पनेऽपि न तन्मयः ॥ 40॥ अ.अ.क. ॥

ये घी का घड़ा है, ऐसा कहने पर भी कुम्भ घृतमय नहीं होता। ऐसे ही जीव के वर्णादि हैं, ऐसा कहने पर भी तन्मय नहीं होता है। ये देह का वर्ण है, ये आत्मा का धर्म नहीं है। आओ, तो निश्चय और व्यवहार सम्यक्त्व के दो भेद किये हैं—वीतराग सम्यक्त्व और सराग सम्यक्त्व।

व्यवहार सम्यक्त्व कैसा होता है ? सुनो ध्यान से। सम्यग्दृष्टि जीव निःशंक और निर्भय होता है, सात भय से रहित होता है। पहला भय इह लोक भय। मेरा कुछ हो न जाये लोक में। मेरा क्या होगा ? नाई की दुकान पर गये हो और उससे पूछ रहे हो कि कितने काले हैं, कितने सफेद हो गये हैं? नाई को बार-बार परेशान कर रहे हो, तो वह कहता है, अरे ! जरा ठहर जाओ, अभी सब नीचे

गिरते हैं। कुछ लोग ऐसे होते हैं कि जीवन भर काम तो करते हैं, पर शंकित रहते हैं कि अब क्या होगा, अब क्या होगा ? नहीं, भय नहीं करना। दूसरा भय परलोक भय। अब मेरा परलोक में क्या होगा ? अरे भैया! जो होगा, सो देख लेना। क्योंकि जो है, सो है। तीसरा भय आश्रित भय। अरे! कुछ हो न जाये ? नहीं, इससे निडर रहो। चौथा भय है वेदना भय। पीड़ा न हो जाये ? मुझे कष्ट न हो जाये ? पाँचवाँ भय है मरण भय। मेरी मृत्यु न हो जाये। अरे भैया ! तेरे डरने से बच जायेगा क्या ? जब आयुकर्म आयेगा तो कोई बचनेवाला नहीं है। इतना जीवन में याद रखना—धीर की भी मृत्यु होती है, अधीर की भी मृत्यु होती है, जब दोनों की मृत्यु सुनिश्चित है, तो फिर धैर्य के साथ मृत्यु को प्राप्त होओ। डरना नहीं आज से। मरना तो बहुत अच्छा है। सड़ा गला शरीर लेकर जीना अच्छी बात है क्या ? मर जायेगा तो फिर नया शरीर मिलेगा, इसलिये मरना तो बहुत अच्छा है। छठवाँ भय है अत्राण भय। मेरा कोई रक्षक नहीं है। और अन्त में अगुप्ति भय। मेरा कोई गुप्त स्थान नहीं है, मेरा कोई रक्षक नहीं है। ये सात भय नहीं होना चाहिये। सम्यग्दृष्टि जीव की चर्चा चल रही है, अपने-अपने में घटित करना, किसी से मत पूछना कि मैं सम्यग्दृष्टि हूँ कि नहीं। अपने आप में चिंतवन करना। देव, शास्त्र, गुरु पर श्रद्धा है क्या ? सच्चे देव पर विश्वास है ? सच्चे गुरु पर विश्वास है ? सच्चे शास्त्र पर विश्वास है ? यदि सात भय से रहित हो, सप्त व्यसन से रहित हो, आठ अंगों का पालन कर रहे हो, तो माँ जिनवाणी कहेगी कि बेटे ! तू व्यवहार सम्यग्दृष्टि है। तीन मूढ़ता से रहित होना चाहिये। हिंसा से रहित धर्म, अठारह दोषों से रहित देव, निर्ग्रन्थ गुरु, वीतरागी जिनेन्द्र के वचन/प्रवचन, इन पर जिसको श्रद्धान है, उसका नाम व्यवहार सम्यक्त्व है।

डर लगने लगा क्या ? सप्त भय, सप्त व्यसन से रहित होता है सम्यग्दृष्टि जीव। जुआ खेलना पहला व्यसन। पापों का महापाप है सप्त व्यसन। पाण्डवों से पूछो, जुआ का उनके जीवन पर क्या असर पड़ा ? धन हारे, धरती हारे, जेवर हारे, यहाँ तक हुआ कि अपना विवेक खो गये और अपनी पत्नी को भी दाँव पर लगा गये। परिणाम क्या निकला ? जो राज्य का अधिकारी था, वह अब वनों में भटक रहा है। किसके कारण ? जुआ । लाटरी, हार जीत की बाजी सब जुआ है। धर्मराज युधिष्ठिर सारे लोक में प्रसिद्ध हुये, लेकिन वो भी बदनामी को प्राप्त हुये जुये के कारण। अब सोचो, जुआ खेलना अच्छी बात है क्या ? माँस, मदिरा। माँस का सेवन नहीं करना, मदिरा का पान नहीं करना। ध्यान दो, आप माँस सीधे-सीधे तो नहीं खाते हो, लेकिन यदि मर्यादा के बाद का मसाला है, भोजन है, वो सब माँस तुल्य है। पुराने अचार, पापड़ अरे! ये स्वादिष्ट व्यंजन नहीं हैं। मर्यादा के बाहर की सभी भोज्यसामग्री, मसाला आदि माँस तुल्य है। चातुर्मास में तीन दिन की मर्यादा का आटा होता है। इसके बाद सब माँस हो जाता है। फ्रिज में रखकर आप कहते हो कि अभी सामग्री खराब नहीं हुई है। अरे भाई ! फ्रिज में रखने से कोई मर्यादा नहीं बढ़ जाती। फ्रिज में

रखा सामान मर्यादा के बाहर भी सुन्दर अवश्य दिखता है, लेकिन आगम के अनुसार उसकी मर्यादा तो भंग हो चुकी है। जितने त्यागी, व्रती हैं, ध्यान रखें—फ्रिज में रखे १५ दिन के भोजन यदि आप कर रहे हो तो आप सब माँस का सेवन कर रहे हो। भैया ! बुरा नहीं मानना। ये पंचमकाल है, इतना कठोर बोलना बहुत जरूरी है, नहीं तो सुधर नहीं रहे। नरक के द्वार देखे हैं आपने ? नरक के चार द्वार हैं। किन-किन को नरक नहीं जाना है, बताओ जरा ? नरकत्व चत्तार द्वाराणि। **नरक का प्रथम द्वार संथार यानि अचार, मुरब्बा।** अभी अचार बनायेंगे और उसे साल भर खायेंगे। उसमें इल्ली, कीड़े पड़ जायेंगे और स्वाद से खायेंगे और बोलते हैं 'महाराज ! हम जैन हैं, जैन। हम माँस नहीं खाते हैं।' पुराने से पुराना अचार खाते हो, धिक्कार हो। **दूसरा नरक का द्वार है मदिरा, शराब।** चाहे वो ठंडी हो या गरम हो, चाहे फ्रूट हो, सब मदिरा है। ध्यान रखो, वैसे तो अपन लोग इनका सेवन करते नहीं हैं, लेकिन फिर भी नियम लेना अच्छी बात है। जिस द्रव्य में, जिस रस का स्वाद बिगड़ चुका है, चाहे वो अनार का रस भी क्यों न हो, यदि उसका स्वाद खराब हो चुका है, तो वो भी शराब ही है। जितने रस हैं, जो बाटलों में भरे हुये हैं, वो सब मदिरा हैं। कितने लोग हैं जो उस व्यक्ति के साथ भोजन नहीं करेंगे जो मदिरा का पान करता हो ? बहुत अच्छी बात है। कोकाकोला, धिक्कार हो। काली होती है न कोकाकोला ? जिनको नरकों में जाना हो, वे ही पी पायेंगे बेचारे। जो सच्चा जैनी होगा, क्षत्रिय होगा, ब्राह्मण होगा, इनका सेवन कर ही नहीं सकता है। **तीसरा नरक का द्वार है हिंसा।** जिससे शरीर का नाश होता है, ऐसे काम नहीं करना। शिकार, जानवर का वध करना खेलकूद में। आप शिकार तो नहीं करते हो, लेकिन मालूम जाल बिखेरना बंद कहाँ किया है ? आप भोजन तो करते हो और जूठन फेंक कर चले गये, अब उसी थाली में मक्खी, चींटी आकर मर रही हैं कि नहीं ? अरे ज्ञानी ! ये तूने क्या किया ? हमारे बुजुर्ग क्या करते थे मालूम ? ऐसा नहीं था कि उनके पास खाने को नहीं था, इसलिये ऐसा करते थे। नहीं, ज्ञानी ! उनके पास धर्म था। भोजन करने के बाद थाली धोकर पी जाते थे। और ये अज्ञानी कहेंगे कि ये कैसा थाली पी रहा है ? ये थाली नहीं पी रहा है, ये जूठन छोड़ करके नहीं जा रहा है, ये जाल बिछा करके नहीं जा रहा है। **चौथा है चोरी।** दूसरे की वस्तु का हरण करना, बिना पूछे किसी की सामग्री को उठाना, ये चोरी है। **पाँचवाँ स्त्री सेवन।** पर रमणी रमण, पर स्त्री सेवन। ज्ञानी ! कम-से-कम तुम रावण-जैसा ही नियम ले लो। रावण से बड़े पापी तो नहीं होंगे न आप लोग ? रावण का एक बड़ा नियम था कि जो स्त्री मुझे नहीं चाहेगी मैं उससे बलात्कार नहीं करूँगा। कितने लोग हैं जो कम-से-कम रावण-जैसा ये नियम तो ले ही सकते हैं ? सुनो ध्यान से, केवल एक नियम लेने से भविष्य का तीर्थंकर बनने वाला है वो रावण। इन सात व्यसनों का जिसका त्याग होता है, वो सम्यग्दृष्टि है। इसलिये अपनी धारणा से हटा देना, क्योंकि कुछ लोगों

का कहना है कि सम्यग्दृष्टि व्यसन कर सकता है। आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी इस बात को किंचित् भी स्वीकार नहीं करते हैं। सम्यग्दृष्टि सात व्यसन का सेवन नहीं कर सकता है। चरणानुयोग में शिथिलता नहीं बरतना, कथन उच्च से उच्च ही करना। कितना बड़ा बाँध बाँधा जाता है, लेकिन फिर भी पानी अपने आप रिस जाता है। शिथलाचार अपने आप बढ़ता है। इस शिथलाचार का व्याख्यान बिल्कुल भी नहीं होना चाहिए। मृदुलता का कोई व्याख्यान नहीं होना चाहिये, उत्कृष्ट संयम का व्याख्यान होना चाहिए। **सातवाँ नरक का द्वार है रात्रिभोजन।** हे निशाचरो ! छोड़ो रात्रि में भोजन करना। देखो ! मैं नहीं कह रहा हूँ। निशा यानि रात्रि और चर यानि चरना। जो रात्रि में चरे, वे सब निशाचर। आप नहीं हो, जो रात्रि में चरें वे हैं और यदि आप भी रात्रि में चर रहे हो तो आप भी हो। जो रात्रि में चरें, वे सब निशाचर। बुरा तो नहीं लग रहा है ? यदि बुरा लग रहा है तो आज से ही छोड़ दो। जो व्यक्ति रात्रि में अन्न के ग्रास को खाता है, वो माँस के ग्रास को खाता है। वैदिक पुराणों में भी लिखा है–

दिन का नाथ सूर्य के अस्त होते ही पानी रक्त हो जाता है और अन्न माँस का पिण्ड हो जाता है। जो रात्रि में पानी पीता है, वो खून पीता है और जो रात्रि में रोटी खाता है, वो माँस का टुकड़ा खाता है। इसलिये जिनका माँस और खून का त्याग है, वो रात्रि में न पानी पियें और न भोजन करें। यही तो सत्यार्थ मार्ग है।

अट्ट गुणो समग्गो । नि:शंकित, नि:कांक्षित, निर्विचिकित्सा, अमूढ़दृष्टि, उपगूहन, स्थितिकरण, प्रभावना, वात्सल्य ये सम्यक्त्व के आठ अंग हैं। इन आठ अंगों का जो पालन करता है और पंचपरमेष्ठी की भक्ति करता है, वही सम्यग्दृष्टि है।

"आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्"। आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

सम्यग्दृष्टि को दु:ख कहाँ ?

णियसुद्धप्पणुरत्तो, बहिरप्पावत्थवज्जिओ णाणी।
जिण-मुणि-धम्मं मण्णदि, गददुक्खो होदि सद्दिट्ठी ॥ 6 ॥

अन्वयार्थ—(णाणि) आत्मज्ञानी **(णियसुद्धप्पणुरत्तो)** निज शुद्ध आत्मा में अनुरक्त रहता है, **(बहिरप्पावत्थवज्जिओ)** बहिरात्मा की दशा से रहित होता है, **(जिण-मुणि-धम्मं)** जिनेन्द्रदेव, मुनि और धर्म को, **(मण्णदि)** मानता है, ऐसा **(सद्दिट्ठी)** सम्यग्दृष्टि, **(गददुक्खो)** दु:खों से रहित **(होदि)** होता है।

सम्यग्दृष्टि चवालीस दोषों से रहित होता है

मद-मूढ-मणायदणं, संकादि-वसण भयमदीयारं।
जेसिं चउवालेसे, ण संति ते होंति सद्दिट्ठी ॥ 7॥

अन्वयार्थ—(जेसिं) जिनके, **(मद-मूढ-मणायदणं)** मद, मूढ़ता और अनायतन, **(संकादिवसणभयम्)** शंकादि दोष, व्यसन और भय, **(अदीयारं)** अतिचार, **(चउवालेसे)** ये चौवालीस दोष, **(ण)** नहीं, **(संति)** होते हैं, **(ते)** वे, **(सद्दिट्ठी)** सम्यग्दृष्टि, **(होंति)** होते हैं।

भव्य बन्धुओ ! अन्तिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेश की पीयूष देशना जिनेन्द्रवाणी मनीषियो ! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो श्री वीतराग श्रमण संस्कृति। आत्मा का परम शुद्ध गुण यदि कोई है तो उसका नाम श्रद्धा गुण है। परम शत्रु यदि कोई है, तो उसका नाम तत्त्वों के प्रति विपरीत श्रद्धा है। अरि कोई है तो मिथ्यात्व है और मित्र कोई है तो उसका नाम सम्यक्त्व है। जीवन में यदि कोई सबकुछ चाहता हो तो उसे प्रेम से दे देना, लेकिन इतना ध्यान रखना, अपनी श्रद्धा को किसी को मत दे देना। द्रव्य कोई छीनता हो तो वो साथ जाने वाला नहीं है, इसलिए धन कोई छीनता हो तो उसे दे देना। ज्ञानी ! शरीर भी कोई छीनने वाला आ जाये तो जो नष्ट होने वाला ही है, उसे क्यों बचाना ? लेकिन श्रद्धा को नष्ट मत होने देना। इस खोटे काल में कोई वस्तु यदि आपके पास है तो वो सच्चा श्रद्धान है। उत्कृष्ट तपस्या आप कर नहीं सकते हो, लम्बे समय तक ध्यान लगा नहीं सकते हो, पर श्रद्धा को ज्ञानी ! जीवनपर्यन्त रख सकते हो। अनन्त भव भी धारण करना पड़े, पर अनन्त भवों में यों कह देना, हे प्रभु ! दास का दास बनना पसन्द है, पर जिनेन्द्र प्रभु के चरणों से दूर होना पसन्द नहीं है। यदि कोई यूँ कहे कि चलो, आप मेरे यहाँ चलो, मैं आपको एक अरब का पैकेज दूँगा, आप वहीं रहना, पर वहाँ मन्दिर नहीं है, गुरु नहीं मिलेंगे, जिनवाणी सुनने को नहीं

मिलेगी, लेकिन एक अरब का पैकेज आपको मिलेगा। हे ज्ञानी ! वे कोटि-कोटि टुकड़े श्रेष्ठ हैं या तीनलोक के नाथ के चरण श्रेष्ठ हैं ? ऐसे प्रदेश में विचरण मत करना, ऐसे क्षेत्र में मत जाना जहाँ जिनदेव, जिनवाणी, निर्ग्रन्थ देव के दर्शन न हों। भैया ! आप तो ये मानना कि एक क्षण भी इनसे दूर मत होना, क्योंकि पता नहीं श्वास कब रुक जाये ? और यदि श्वास रुक गयी, तो कब पर्याय शांत हो जाये ? और शांति भंग हो गयी। एक क्षण को भी पंचपरमेष्ठी से दूर मत होना। कोटि-कोटि द्रव्य के लाभ को यों ही छोड़ देना और कह देना, भैया ! पुद्गल के टुकड़े तो मुझे सर्वत्र मिल जायेंगे, लेकिन प्रभु के चरण ढाईद्वीप में ही मिलेंगे।

ज्ञानियो ! अरिहंत की प्रतिमायें तो ढाईद्वीप के बाहर भी मिल सकती हैं, पर निर्ग्रन्थ के चरण तो पन्द्रह कर्मभूमि में ही मिलेंगे। नन्दीश्वर द्वीप आठवाँ द्वीप है और ढाईद्वीप के बाहर है। जिनविम्ब तो अन्य जगह भी मिल जायेंगे, पर जिनमुद्राधारी निर्ग्रन्थ इन पन्द्रह कर्मभूमि में ही मिलेंगे, इसमें कोई शंका मत करना। साक्षात् निर्ग्रन्थों के चरणों में जो विशुद्धि बनती है, वो अलग ही होती है। निर्ग्रन्थ योगी के चरणों में परिणामों में जो विशुद्धि आती है, वो अलग ही होती है। भैया ! कैसेट भी आप सुन लेते हो, टी.वी. पर प्रवचन भी आप सुन लेते हो, पर सामने बैठकर परिणामों में जो विशुद्धि आती है, वो कैसेट और टी.वी. में नहीं आती है। क्योंकि चित्रों में चित्र पौद्गलिक ही दिखाई देंगे, जबकि यहाँ साक्षात् परिणामों का परिणामों से मिलन होता है तो परिणति की विशुद्धि है। पुद्गल के टुकड़ों के राग में परमात्मा को मत भूल जाना। उन युवाओं से भी मेरा कहना है, भैया ! जहाँ भी जाना, पढ़-लिख कहीं भी जाओ, लेकिन धर्म को लेकर जाना, धर्म को भूलकर मत जाना। विदेशों में भी जाओ तो ऐसा काम करना जैसे पूर्व के सेठ लोगों ने किया है। सिंहल द्वीप, रतन द्वीप में वो व्यापार करने जाया करते थे, ज्ञानी ! श्री कमाने अवश्य जाते थे, पर श्री जी को लेकर जाते थे, श्री जी को भूलकर नहीं जाते थे। वहाँ पर भी उन्होंने जिनशासन की ध्वजा को लहराया। आज भी विदेशों में मन्दिर हैं। तीन सौ दिगम्बर जैन मन्दिरों में पाकिस्तान में ताले पड़े हुये हैं, और ज्ञानियो ! अभी वहाँ अरिहन्त प्रतिमायें भी हैं, शासन ने वहाँ सुरक्षा रखी है, लगता है ये भारत में जो जिनशासन, नमोऽस्तु शासन लहरा रहा है, विश्वास मानना, एक ऐसा समय था जो विश्व का धर्म था, उसका नाम जैनधर्म था। यदि करुणा, अहिंसा के नाम पर, प्राणीदया के नाम पर प्राणीमात्र से मैत्रीभाव की बात की जायेगी, तो विश्वधर्म बनने का अधिकार यदि किसी को जायेगा तो ज्ञानी ! जिनशासन को ही जायेगा। जिसमें करुणा की, दया की बात निरपेक्ष भाव से की गयी है। अपने स्वार्थों के पीछे पर का वध कर देना, अपने स्वार्थों के पीछे पर को बदनाम कर देना, ये जिनशासन का सूत्र किंचित् भी नहीं है। अन्य दर्शनों के लोगों ने कह दिया कि प्राणों की रक्षा के लिये कठिन समय में जीवों का भक्षण कर सकते हो, पर जिनशासन कहता है 'नहीं। प्राणों

की रक्षा के राग में प्राणियों का घात नहीं करना। णमोकार मंत्र को पढ़ कर सल्लेखना से मरण कर लेना, लेकिन पर के पिंड को खाकर निज को जीवित रखना, इसका नाम धर्म नहीं है।

जहाँ पर अचार, मुरब्बा को हिंसा कहा जाता हो, वहाँ ज्ञानी ! दूसरे के रक्त और माँस के पिण्ड का सेवन करना अहिंसा कैसे हो सकती है ? सम्यग्दृष्टि जीव का पहला लक्षण प्रशम, उपशम भाव है। भैया ! इस अखण्ड समाज से ही नहीं, पूरे विश्व से कह देना कि कम-से-कम अनाचार की वस्तुओं का सामूहिक प्रचार न किया जाये, इसको संविधान न बनाया जाये। अच्छी मिठाइयाँ भले ही तुम खिला देना, लेकिन चटपटा अचार अपने बेटे की शादी में किसी को मत परोसना। ये मेरा पूरी समाज से कहना है कि जो अभक्ष्य द्रव्य हैं, उनका उपयोग सामूहिक नहीं होना चाहिए। यदि कोई बाहर से आपके यहाँ भोजन करने आये तो उसको लगना चाहिए कि मैं जैनसमाज में भोजन करने गया था, वहाँ कुछ अलग था। एक बात पूछूँ ? क्या ऐसा कर पाओगे आप लोग ? ज्ञानी ! न गढ़ंत खिलाना, न अभक्ष्य खिलाना, जो कि जैन की पहचान होना चाहिये। मैं बहुत अच्छे से कह रहा हूँ। तू कितने ही सुन्दर पेंट-शर्ट पहन लेना, टाई लगाकर घूमना, लेकिन जब तू विदेश जायेगा तो तेरी कोई कीमत नहीं है, क्योंकि तेरे से सुन्दर पेंट, शर्ट, टाई वाले वहाँ पर हैं, लेकिन यदि तू धोती-दुपट्टा ओढ़ कर वहाँ चला गया, तो तू वहाँ दिखेगा कि कोई जैन श्रावक आया है। बैण्ड-बाजे की प्रभावना, ढोल-ढमाके की प्रभावना जगत् में बहुत होती आई है, होती जायेगी, लेकिन ध्रुव सत्य समझना, यदि आपको जिनशासन की प्रभावना ही करना है तो। ज्ञानी ! शाम को छः बज रहे थे और तूने उसके पहले साढ़े पाँच बजे अपना टिफिन खोल कर भोजन करना प्रारम्भ कर दिया। कर रहा भोजन है, वहाँ बैण्ड बजाने की आवश्यकता नहीं है, बेनर लगाने की आवश्यकता नहीं है, आप अन्थउ करने लग गये, वहाँ जो हजार लोग आपको देखेंगे तो अपने आप समझ में आ जायेगा कि ये जैन श्रावक है, ये अहिंसा का पालन करने वाला है, इसका रात्रि भोजन का त्याग है, तब प्रभावना अपने आप हो जायेगी। लेकिन किसी जैनबंधु को अजैन ने अपने घर बुलाया और कहा कि आपके अंथउ की व्यवस्था हमारे यहाँ है और आप कहो कि नहीं, भैया! अपन को तो सब चलता है। तो हे अभागे ! तूने पूरे जिनशासन को लजा कर रख दिया। कम-से-कम परघर जाओ तो अपने कुल की आन, बान, शान का ख्याल रखो। जिस कुल में तुम जन्मे हो, उस कुल में निशाचर नहीं होते, उस कुल में श्रावक होते हैं और श्रावक रात्रिभोजन नहीं करता, श्रावक निशाचर नहीं होता है। जो रात्रि में चरें, वे सब निशाचर हैं। बुरा लग रहा है क्या ? **जो है, सो है।**

सम्यग्दृष्टि जीव को यदि सम्यक्त्व होगा, तो सम्यक्त्वाचरण होगा कि नहीं होगा? पण्डित जी! सम्यक्त्व तो है, पर सम्यक्त्वाचरण नहीं है, तो वो सम्यक्त्व कैसा ? सम्यग्दृष्टि जीव को

सम्यक्त्वाचरण होता है, स्वरूपाचरण नहीं होता है। आचार्यभगवान् कुन्दकुन्द स्वामी ने 'चारित्र पाहुड' में लिखा है कि सम्यग्दृष्टि जीव का सम्यक्त्वाचरण चारित्र है और यदि वो सप्त व्यसन का सेवन करता रहे, अभक्ष्य का सेवन करता रहे और वो सम्यग्दृष्टि बना रहे, ये हो ही नहीं सकता है। सुनो ध्यान से, जिसको कोई न गुटके, उसे गुटके। समझो मैं क्या कह रहा हूँ ? तम्बाकू, जर्दा, गुटका जो खाये, वो सम्यग्दृष्टि कैसा ? इतना ढीला सम्यक्त्व नहीं है कि कुछ भी करते रहो और कहो कि मैं सम्यग्दृष्टि हूँ। सम्यक्दृष्टि तो बहुत ऊँची वस्तु है। जैन भी तभी कहलाओगे, जब रात्रि भोजन का त्याग होना, पानी छान के पियेगा, नित्य देवदर्शन करेगा। ये ही तो जैनी के चिह्न हैं। वे कहाँ गयी बुन्देलखण्ड की सूक्तियाँ—**कनक कलेवा छन्ना, ये जैनी के चिह्ना ।** अहो। ये जैनी के चिह्न हैं। अपना आटा लेकर जाता है। कनक यानि आटा और कलेवा (नाश्ता) लेकर जायेगा और ज्ञानी छन्ना लेकर जायेगा। लाखों की बोलियाँ भले ही मत लगाना, लेकिन जेब में एक छन्ना अवश्य रखना।

नाक पोंछने के लिए जेब में रूमाल तो रखता है। उससे नाक भी पोंछता है और जेब में रख लेता है, धिक्कार हो। पसीना पोंछने के लिये तो तेरे पास रूमाल है, उसी से नाक भी पोंछ लेता है और फिर उसी को जेब में रख लेता है, कितनी पवित्र वस्तु है ? अहो ! तुझे शर्म नहीं लगती है ? बालों को सजाने के लिये जेब में कंघी रखने में तुझे शर्म नहीं लगती है। अरे ज्ञानियो ! जैसे तुम अपनी जेब में रूमाल रखते हो, कंघा रखते हो, ऐसे-ही एक छन्ना और रख लिया करो और जहाँ पानी पीना हो तो छान कर पिया करो, तो नमोऽस्तु शासन जयवंत होगा। और सुनो, यदि सागर में कोई मेहमान आये, ये शृंगार सामग्री का डिब्बियाँ तो दुनियाँ बाँटती है, इससे कुछ नहीं होता है। अब तुम यदि बुलौआ में कुछ बाँटना चाहो तो पानी का छन्ना ही बाँट देना और कहना 'हे ज्ञानी ! पानी छान कर पीना।' यदि दामाद भी तुम्हारे घर में आये, उन्हें तुम पसीना पोछने के लिए रूमाल देते हो, तो साथ में पानी छानने के लिए छन्ना भी दिया करो उसको। देखो, ध्रुव सत्य है कि आचरण ही धर्म की रक्षा कर पायेगा, आचरण ही समाज को सुरक्षित कर पायेगा, आचरण ही संस्कृति को सुरक्षित रख पायेगा। और यदि आचरण ही समाप्त हो गया, तो फिर बाहर के भवन, बाहर के शिखर, बाहर के बैण्ड कोई काम में नहीं आयेंगे। भीतर का आचरण पवित्र होना चाहिये। सम्यग्दृष्टि जीव का प्रथम गुण है प्रशम और प्रशम का तात्पर्य है उपशम भाव। जिसके क्षण-क्षण में नाक पर कषाय की ज्वाला नाचती हो, वहाँ सम्यक्त्व कहाँ है ? धैर्य होना चाहिये, अधीर नहीं होना चाहिये। सुनो ध्यान से, निर्णय करने के पहले विचार करना चाहिये और बोलने के पहले सोचना चाहिये। बिना विचारे, बिना चिंतवन किये कुछ भी बोल दिया तो—

बिना विचारे जो करे, सो पाछे पछताय।
काम बिगाड़े आपना, जग में होत हँसाय॥

कहने के पहले चिंतवन करना और करने के पहले भी सोचना। देखो, भैया ! भरत भगवान् हो गये, बाहुबली भगवान् हो गये, महान् हो गये, लेकिन फिर भी बदनाम तो हुये हैं। हे स्वामी ! आप भगवान् हो गये, इसलिये में आपकी वन्दना करता हूँ, पर आप बदनाम हुये, ये भी इतिहास बोलता है। जब भी इतिहास उठाया जायेगा तो पता चलेगा कि सगे भाई-भाई आपस में लड़े थे, बिना विचारे। भरत तो ज्येष्ठ थे, कम-से-कम वही मान लेते। वो नहीं मान पाये और चक्र चला बैठे। तो बाहुबली ही मान लेते और भैया को न पटकते। पर भैया को घुमा दिया। आज युवा बोलते हैं कि महाराज ! मुझसे क्या बोलते हो ? जब भरत-बाहुबली आपस में लड़ गये, तो मैं क्या हूँ ? भैया ! ध्यान रखो, लड़ने को मैं नहीं पूजता हूँ, उनकी वीतरागता की पूजा है। लड़ाई की पूजा नहीं है, युद्ध की पूजा नहीं है, ध्यान रखना। निर्वाण तभी मिला, जब द्वंद्व बंद हो गया। प्रशम भाव।

माँ । घर में बहू से काँच का ग्लास फूट जाये तो क्या बोलोगी, परीक्षा करना। हे माँ ! जिसे तू बहू बोल रही हो, वो किसी की बेटी है कि नहीं ? अपनी बेटी से 'माँ' कहलवा पाना कोई कठिन नहीं है, लेकिन बहू से 'माँ' कहलवाने की ताकत यदि तुम्हारे अन्दर है, तो तू सच्ची 'माँ' है। वो किसी की बेटी है कि नहीं ? तेरी बेटी किसी की बहू बनेगी कि नहीं ? जब ग्लास फूट गया था, तब विश्वास रखना, वो तो टूट ही गया, वो जुड़नेवाला नहीं है क्योंकि ग्लास तो काँच का था, लेकिन तेरा हृदय तो काँच का नहीं था, हृदय माँ का था, तो कम-से-कम इतना ही पूछ ले कि—बेटी ! काँच लग तो नहीं गया ? यदि ऐसा पूछ लेती तो, विश्वास रखना, बहू तेरे चरण छूती और कहती, 'माँ' ! क्षमा करो, मुझ से भूल हो गयी ।' और यदि तुम झुंझला गयी, तो ग्लास भी गया, प्रेम भी गया और मालूम चला कि जो रोटी खाने को मिलती, वो भी गयी।

सम्यग्दृष्टि जीव का पहला गुण है **प्रशम** यानि उपशम भाव। यथार्थ मानना, आप सबके पास इतना तो बराबर है कि आप प्रेम से जीवन जी सकते हो और यदि कोई योगी घर में आ जाये तो उसे भी आहार करा सकते हो। फिर ये हाय-हाय क्यों ? भैया ! ये धन भी किस काम में आयेगा जब हम ही धरती पर नहीं बचेंगे ? उतना ही कमाना, जितनी सत्सम्पत्ति सत्रूप काम में लग सके। अधिक कमा कर रख लिया और अहंकार कहीं आ गया और अहंकार के काल में हृदयघात हो गया यानि आत्मा निकल जायेगा और जो तेरे द्वारा कमाया हुआ द्रव्य है वो पापी, भोगी आकर के सेवन करेंगे। आप विकल्प मत करो। जब पिता जी थे, तब उनके मन में एक ही विकल्प रहता था। पिता का स्वभाव ऐसा होता ही है कि मेरे बेटे का क्या होगा ? मेरे बाद मेरे बेटे का क्या होगा ? पता नहीं घर का क्या करेगा ? हे पिता जी ! आप इतने ज्ञानी होकर भी इतना क्यों टेंशन ले रहे हो ? जब आपके पिता जी चले गये और आप अच्छे से रह रहे हो, कि नहीं रह

रहे हो ? ऐसे ही जब तुम भी चले जाओगे, तो बेटे भी अपने भाग्य से जी लेंगे, तुम भगवान् को देखो, अपने बेटे के भाग्य को मत देखो। अहो! जितने पिता यहाँ बैठे हैं, वे सब ध्यान से सुनना, अब तुम्हारा भगवान् को देखने का समय है, बेटे के भाग्य को देखने का समय नहीं है। भगवान् को देखो, बेटे के भाग्य को मत देखो। यदि बेटे का पुण्य होगा तो सब कमा लेगा और यदि उसका पुण्य नहीं होगा तो तुम कमा कर भी जाओगे तो सब बर्बाद कर देगा।

पूत सपूत तो का धन संचय और पूत कपूत तो का धन संचय।

भैया ! सच बताना—पिता जी के जाने के बाद भी अच्छे से रहते हो न ? सब भैया साथ में वात्सल्य से रहते हैं न ? भैया! जब तुम अच्छे से रह पा रहे हो, तो विश्वास रखना, बेटों को अच्छे संस्कार देना, तो वो भी अच्छे से रहेंगे। टेंशन मत लेना कि मेरे बाद क्या होगा। भैया पण्डित जी ! क्या आपके पिता भी पण्डित थे ? नहीं न ? जब पण्डित का पुत्र भी पण्डित नहीं हो सकता है, चक्रवर्ती का पिता कभी चक्रवर्ती नहीं होता और चक्रवर्ती का बेटा कभी चक्रवर्ती नहीं होता, ज्ञानी! प्रत्येक जीव का पुण्य स्वतंत्र होता है। इसलिये आज से रोना बंद करो कि मेरे बाद क्या होगा ? **जो होना है, वही होगा।** अरे ज्ञानी ! सुन, मना किसी को नहीं पाओगे, मर ही जाओगे, कर कुछ भी नहीं पाओगे। राग ही कर पाओगे, रख किसी को नहीं पाओगे, राख ही हो जाओगे। समझ में आ गया न ? राग ही कर पाओगे, रख किसी को नहीं पाओगे, राख हो जाओगे। ये सब किससे बोल रहे हो ? अपने आप से बोलो। ये ध्रुव सत्य है। राग सत्य पर आवरण कर देता है। जब राग हटने लगता है, तब सत्य दिखाई देना प्रारम्भ हो जाता है। इसमें कोई शंका नहीं करना।

हे मेघ ! आप सूर्य को ढँक ही पाओगे, पर सूर्य का नाश नहीं कर पाओगे। हे मेघ ! तुम बरस लो, आच्छादित हो जाओ। काली घटा से सूर्य को ढका तो जा सकता है, लेकिन सूर्य को मिटाया नहीं जा सकता है। ऐसे-ही सत्य को ढका तो जा सकता है, पर सत्य का नाश नहीं किया जा सकता है। सत्य तो सत्य ही रहेगा। यदि कोई चाहे कि किसी के पुण्य-पाप को मैं रोक सकूँ, तो ज्ञानी ! कोई ताकत नहीं है। कोई किसी के पुण्य-पाप को रोक नहीं सकता है। विश्वास रखना, यदि तेरा पुण्य है, तो श्मशान पर भी तुझे फूलमालायें मिलेंगी और जिसका पाप का उदय होता है, तो स्वयं के भवन में भी तलवार चलते दिखाई देती है। पाण्डवों से पूछो, कौरवों से पूछो, ये युद्ध किसके साथ हुआ था ? भाई का भाई के साथ हुआ था। यदि कोई कहे कि मैं आपको देख लूँगा, तो कब देखेगा ? अभी सामने तो खड़ा हूँ, अभी देख ले। क्या पूर्व दिशा में उदित सूर्य को कोई

मुट्ठी में बाँध पायेगा ? ऐसे-ही किसी के उदित पुण्य को तुम क्या मुट्ठी में बाँध पाओगे ? न रात्रि के अंधियारे को मुट्ठी में बाँध सकते हो, न ही उदित सूर्य को मुट्ठी में बाँध सकते हो, यही सत्य है।

अपन को लगता अवश्य है कि मैं कमा रहा हूँ, पर ध्रुव सत्य है कि पूर्व के पुण्य का उदय साथ दे रहा है, इसलिये कमाई हो रही है। यदि कमाने से ही द्रव्य मिलता होता, तो आटो चलाने वाले, टेम्पो या रिक्शा वालों से जाकर पूछो जो तुमसे ज्यादा मेहनत करते हैं। यदि पुण्य होता है तो जरा सा हाथ लगाओ तो धन बरसता है और जब पाप का उदय आता है तो जो कमा कर रखा था वो भी चला जाता है। मैं आगम को अनुभव के साथ बोल रहा हूँ, मैंने अनुभव किया है। **सब के दिन एक-से नहीं होते।** मैंने सबकुछ देखा है। मैंने ऐसे लोगों को भी देखा है जिनके द्वार पर हाथी झूमा करते थे, उन्हीं के द्वारे पर आज श्वान भी नहीं बैठते। ऐसे लोगों को भी देखा है जिनके पीछे हजारों लोग रहते थे, पर आज एक आदमी भी उनके साथ दिखाई नहीं दे रहा है। ऐसे लोगों को भी देखा है, जिनके साथ एक आदमी भी नहीं था, लेकिन उनके पीछे आज हजारों लोग हैं। हे रावण! हे लंकेश ! एक या दो नहीं, अठारह अक्षौहिणी सेना का स्वामी, 'एक लख पूत सवा लख नाती, ता रावण के घर दिया न बाती' कहाँ गये ? राम जंगल गये, तब वे मात्र तीन थे और जब वे लौटे, तो कितनों को लेकर आये ? और रावण, अठारह अक्षौहिणी सेना का स्वामी, सब एक-एक करके नष्ट हो गये। मैंने तो अनुभव किया है, आपने भी अनुभव किया होगा—विद्या, शक्ति, बाहुबल, धनबल, तनबल तभी देता है साथ, जब होता है पुण्य का बल। धीमान् हो, श्रीमान् हो, काम नहीं बनेगा, जब तक नहीं हो पुण्यवान्। धीमान्, श्रीमान् की पूजा भी तभी होती है, जब होता है पुण्यवान्। साथ में पुण्यवान् भी होकर चलना, श्री को, धी को कमाने के साथ श्री जी की पूजा भी करते रहोगे तो पुण्यवान् भी हो जाओगे।

समझो, सत्य को भी समझो। सत्य को '**भी**' नहीं समझो, सत्य को '**ही**' समझो। यही सत्य है भैया ! हाथ में रखा ग्रास भी छोड़ना पड़ता है, क्या करो ? देने वाला दे रहा है, लेने वाला लेना चाहता है, पर ज्ञानी ! बालचन्द आ गया बीच में, अब बताओ कि ग्रास में बाल आ गया तो कहाँ गया लेना-देना ? ऐसा भी समय आता है कि हाथ का भी छूट जाता है। अरे ! हाथ का छूट जाये तो छूट जाये, कम-से-कम मुँह का न छूटे। हाथ में बाल आया तो मुँह का भी निकालना पड़ता है। **सबके दिन एक-से नहीं होते।** यदि किसी के मन में वैराग्य के भाव आ रहे हों तो ये भीड़ को देखकर वैराग्य मत ले लेना। ध्यान दो, महिनों-महिनों क्या, वर्ष-के-वर्ष निकल जायें, जब मुझे अपना कमण्डलु स्वयं को पकड़ने नहीं मिलता और फिर ऐसे भी दिन आते हैं कि कोई कमण्डलु पकड़नेवाला नहीं मिलता। कमण्डलु पकड़ने को नहीं मिलता और फिर कभी कमण्डलु पकड़ने

वाला नहीं मिलता। सब दिन एक से नहीं होते। भैया ! यही मुख, यही चेहरा, जिसको देखकरके भोंरे मंडराते थे, आज मक्खियाँ भिन-भिना रही हैं। सबके दिन एक-से नहीं होते। मक्खियाँ कहाँ भिन-भिनाती हैं ? आप सब जानते हो। इसलिए भैया ! चेहरे पर मक्खियाँ भिन-भिनाने के पहले भेदविज्ञान कर लेना, ताकि मक्खियाँ न भिन-भिनाने पायें। सल्लेखना करके, समाधि करके शिवत्व का मार्ग बना लेना।

प्रशम पहला लक्षण है। इसलिए आज से उपशम भाव पर दृष्टिपात करना। कषाय के निमित्त मिलने पर भी कषाय नहीं करना। लौकिक काम के बनाने के राग में आत्मिक कार्य को मत भूल जाना। ज्ञानी ! लौकिक काम के बनाने के राग में निज के कार्य को मत भूल जाना। एक बात पूछूँ आपसे ? तेरी इच्छा से सम्पत्ति मिली है या तेरे पुण्य से सम्पत्ति मिली है ? पुण्य से मिली है। ध्रुव सत्य है। ये सब अपने-अपने क्षयोपशम से मिलता है। चार मुनिराज, चार आचार्यभगवन् एक-जैसे सभी मूलगुणों का पालन कर रहे हैं, परन्तु किसी का यश फैल रहा है और किसी का कोई नाम नहीं ले रहा है। हे वीतरागी तपोधन ! आप विकल्प मत करना। आप तो निर्ग्रन्थ योगी हो, विपाकविचय धर्म्यध्यान करो। आपके पुण्य का द्रव्य इतना ही था कि निर्ग्रन्थ योगी तो बन गये, पर यश का द्रव्य नहीं था, जो नहीं फैल रहा है। आप किसी के यश को देख कर रोओ मत। साम्यभाव रखो, कर्म का क्षय करो, धर्म की वृद्धि करो, तुम तो भगवान् बनो। क्यों तुम यश के पीछे रो रहे हो ? सम्यक् सोच आना चाहिये। चकरी देखी आपने ? दीपावली पर बच्चे जो चलाते हैं। चकरी कब तक चलती है, मालूम है आपको ? जब तक उसमें बारूद है, तब तक ही चलती है और जैसे ही बारूद खत्म हुई, तब चकरी रुक जाती है। हे ज्ञानी ! तुम भी घूम लो, घूम लो, चल लो, चल लो। तभी तक चल पाओगे जब तक बारूद पुण्य का भरा है और पुण्य का बारूद नष्ट हुआ, तो चकरी की भांति एक कोने में पड़ा दिखाई देता है। ये ध्रुव सत्य है। ये मत सोचना कि मैं जैनकुल में जन्मा हूँ, जैन मुनि हूँ, इसलिये बोल रहा हूँ। पर ये ध्रुव सत्य है। सभी सम्प्रदायों के ग्रन्थ का अध्ययन किया है मैंने। इस देश में जितने दर्शन हैं, सभी को मैंने पढ़ा है और सबको पढ़ने के बाद निर्णय लिया है कि ध्रुव सत्य को कहने वाला, वस्तुस्वभाव को कहने वाला कोई दर्शन है तो उसका नाम जैनदर्शन है। अध्ययन करो। जब तक दूसरे को जानोगे नहीं, तो पहचानोगे कैसे ? समझो, जब तक चकरी में बारूद है, तभी तक वो घूम पायेगी। इसलिए आज से ज्ञानियो ! किसी की सम्पत्ति को देखकर झुलसना मत। किसी के पुण्य को देखकर झुलसना मत और आज से घर के झगड़े बंद हो जाना चाहिए। यदि आप उपदेश सुन रहे हो तो घर-घर में बदलाव आना चाहिये। यदि घर में बदलाव न भी आ पाये, लेकिन यदि भावों में बदलाव आ जायेगा, तो घर में बदलाव स्वयमेव आ जायेगा।

संवेग भाव, संसार से व शरीर से। धर्म— धर्मात्मा को देखकर हर्षित होना, इसका नाम संवेग है। धर्मात्मा को देखकर कुम्हलाना नहीं, प्रसन्न होना। जैसे सूर्य के उदय होने पर सूर्यमुखी खिल जाता है, ऐसे-ही। धर्मात्मा तो वास्तव में वही होता है जो कोई भी धर्मात्मा किसी भी संघ का हो ये नहीं देखता। जिनके पास पिच्छि कमण्डलु दिखता है, जिनलिंग दिखता है और नमोऽस्तु शासन जयवंत होता है। तुम्हारी परिणति तुम जानो, मुझे तो नमस्कार करने मात्र से पुण्य का लाभ मिलता है। भैया ! मैं तो सब मुनियों से मिलता हूँ, पर 'मिलता' किसी से नहीं हूँ। इस देश में जितने भी संघ हैं, मुनिराज हैं, मैं तो सबसे मिलता हूँ, पर 'मिलता' किसी से नहीं हूँ। समझ रहे हैं आप ? अरिहंत मुद्रा है, तो आओ, महाराज ! पधारो। लेकिन मैं अपने स्वभाव में ही रहूँगा, आप अपने स्वभाव में रहोगे। मैं देह से मिलता हूँ, धर्म से मिलता हूँ, पर आपके स्वभाव से मैं मिल ही नहीं सकता। योगियों से भी ज्यादा नहीं मिलता। ज्यादा मिलेंगे तो राग-द्वेष दिखेगा, अवगुण दिखेंगे। नहीं, अल्प समय मिलो और आप अपने रास्ते हम अपने रास्ते। **देखो, जानो, जाने दो।** सूत्र याद रखना। बस, अब कोई व्यक्ति अन्तिम श्वास भर रहा था, उसे देखो, जानो और जाने दो। रोने की जरूरत नहीं है। ज्यादा-से-ज्यादा उसे अन्तिम समय में णमोकार मंत्र सुना दो, सल्लेखना करा दो, सेवा कर दो, लेकिन रोने की जरूरत नहीं है। वो तो जानेवाला ही है। देखो, जानो और जाने दो। सारे जगत् को अपने जैसा बना पाओगे क्या ? जिसकी ऐसी धारणा है कि मैं अपने जैसा बना लूँगा, उससे बड़ा पागल तो कोई है ही नहीं। अपने बेटे को अपने जैसा वो पिता नहीं बना पाया।

अनुकम्पा। प्राणीमात्र पर दया। जो व्यसन करेगा, मांस रक्त आदि का सेवन करेगा, वो किसी पर दया कर ही नहीं पायेगा। भैया ! सुनो ध्यान से। जितने व्रती हैं, ध्यान रखना। ऐसी कोई स्थिति जीवन में कभी घटित हो जाये, परिवार के लोग तो रागी हैं, वो अपना काम करते हैं, लेकिन आपको अपने धर्म का ध्यान रखना है। सबसे बोल कर रखना कि मेरे शरीर में यदि कोई ऐसी पीड़ा हो जाये जिससे बचने की सम्भावना कम हो और कोई कहने लग जाये कि रक्त चढ़ा दो, तो कह देना भैया ! मेरी समाधि करा देना, निर्ग्रन्थ गुरु के चरणों में मेरी सल्लेखना करा देना, लेकिन दूसरे के शरीर के रक्त को मेरे शरीर में मत डाल देना। मैंने अणुव्रत धारण किये हैं, जैनशासन में रक्त-माँस के सेवन को किसी भी प्रकार से स्वीकार नहीं किया है। यदि कोई कहे कि बच जाओगे, तो पालन कर लेना, भैया ! जिसके लिए मैंने व्रत लिये थे, वो ही तो हो रहा है। मैंने व्रत सल्लेखना के लिये ही तो लिया था, जीने के लिये थोड़े-ही नियम लिया था। सल्लेखना के लिये है। इसलिए ध्यान रखो, मेरे नियम व्रत को भंग मत करना, इतनी मेरे ऊपर करुणा कर देना। सभी अपने-अपने घर में बोल देना। अन्त समय में हास्पिटल मत ले जाना। यदि ले जा सको तो निर्ग्रन्थ गुरु के चरणों में ले जाना।

आस्तिक्य। सात तत्त्वों पर दृढ़ श्रद्धान होना, पंचास्तिकाय पर दृढ़ श्रद्धान होना, नौ पदार्थों पर दृढ़ श्रद्धान होना, ये सम्यक्त्व के लक्षण हैं। प्रशम, संवेग, अनुकम्पा, आस्तिक्य ये गुण होना अनिवार्य है। खोजो स्वयं के अन्दर, दूसरे के अन्दर नहीं। तत्त्व में ही लीनता आ जाये तो कुतत्त्व का कोई भान ही नहीं होगा। जैसा यहाँ समय निकलता है, ऐसा ही समय यदि चौबीस घण्टे निकलने लग जाये, तो अब मोक्ष की भी बात करने की जरूरत नहीं है, वो तो अपने आप मिल जायेगा। **णियसुद्धप्पणुरत्तो णाणी।** निश्चय से सम्यग्दृष्टि जीव निज शुद्धात्मा में लीन होता है, जीव ही तो ज्ञानी होगा, कोई पुद्गल थोड़े-ही ज्ञानी होगा। जो सम्यग्दृष्टि जीव है, वो निज शुद्धात्मा में लीन होकर के **बहिरप्पावत्थवज्जिदो** बहिरात्म दशा को छोड़ देता है, आत्मज्ञानी होता हुआ **जिण मुणि-धम्मं** जिनदेव, जिनमुनि और जिनधर्म को स्वीकार करता है, मानता है, **'सद्दिट्ठी'** ऐसा जीव सम्यग्दृष्टि होता हुआ **गद दुक्खो** उसके दुःख समाप्त हो जाते हैं और चवालीस दोषों से रहित सम्यक्त्व का पालन करता है। **'मदमूढमणायदणं'** आठ मद (ज्ञान का मद, पूजा का मद, कुल का मद, जाति का मद, बल का मद, ऋद्धि का मद, तपस्या का मद, शरीर का मद अर्थात् मैं सुन्दर शरीर वाला हूँ) ये कोई शाश्वत नहीं है। ये आठ मद नहीं करना चाहिये। देवमूढ़ता, गुरु मूढ़ता, पाखण्ड मूढ़ता (अदेव में देवबुद्धि, कुदेव में देवबुद्धि, कुगुरु में गुरुबुद्धि, अगुरु में गुरुबुद्धि। घिनोची पूजो, मूसर पूजो, कुआँ पूजो, दुकान पूजो) तीन मूढ़ताओं से रहित होता है, ताले के भी पैर पड़ लेता है। बताओ, ये ताला कौन-सा देवता है ? लोक मूढ़ता। दीवाली के दिन सोने को तिलक, चाँदी को तिलक, बही को तिलक। ये नव देवताओं में से ये कौन-से देवता हैं? बताओ, कैसी मूढ़ता में जी रहा है ? अरिहन्त देव, निर्ग्रन्थ देव को देखने में तुझे पाप पड़ता है और ऊखली मूसर पूज रहा है, उसमें पाप नहीं लगता उसे। अहो, धन्य हो। कैसा ज्ञानीजीव है ? और फिर लोक की तो लीला ही कुछऔर है। ज्ञानी ! तीन मूढ़ताओं से रहित, अनायतन कुदेव, कुशास्त्र और कुगुरु और उनके उपासक, ये छः प्रकार का अनायतन, शंकादि आठ दोषशंका, कांक्षा, विचिकित्सा, अन्य दृष्टि प्रशंसा, उपगूहण, अस्थितिकरण, अवात्सल्य, अप्रभावना, इनसे रहित होना चाहिए। सात व्यसन, सात भय, पाँच अतिचार (व्रतों के अतिचार) ये चवालीस दोष सम्यग्दृष्टि जीव में नहीं होते हैं।

"आत्मस्वभावम् परभाव भिन्नम्" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

77 गुणों सहित सम्यग्दृष्टि श्रावक

उहयगुण-वसण-भय-मल-वेरग्गादीयार-भक्तिविग्घं वा।
एदे सत्तत्तरिया, दंसण-सावय-गुणा भणिदा ॥8॥

अन्वयार्थ—(उहयगुण) दोनों गुण **(वसण-भय-मल-वेरग्गादीयार)** सात व्यसन, भय, मल दोष से रहित, वैराग्ययुक्त, अतिचार रहित **(वा)** और **(भक्तिविग्घं)** निर्विघ्न भक्ति **(एदे)** ये **(सत्तत्तरिया)** सतत्तर **(दंसण-सावय-गुणा)** सम्यग्दृष्टि श्रावक के गुण **(भणिदा)** कहे गये हैं।

मुक्ति सुख के पात्र कौन ?

देव-गुरु-समय-भत्ता, संसार-सरीर-भोग-परिचत्ता।
रयणत्तय-संजुत्ता, ते मणुया सिवसुहं पत्ता॥9॥

अन्वयार्थ—(जो) (देव-गुरु-समय-भत्ता) देव गुरु शास्त्र के भक्त होते हैं (संसार-सरीर-भोग) संसार, शरीर व भोगों के (परिचत्ता) परित्यागी होते हैं (ते) वे (मणुया) मनुष्य (सिवसुहं) शिवसुख को (पत्ता) प्राप्त करते हैं।

भव्य बन्धुओ!

अन्तिम तीर्थेश भगवान् वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना, जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमण संस्कृति। आचार्यप्रवर भगवान् कुन्दकुन्द स्वामी ग्रंथराज रयणसार जी में श्रमण और श्रावक उभय धर्मों की व्याख्या करते हुए समझा रहे हैं—संयम, कभी संयम में नहीं होता है, संयम तो साधक की आत्मा में होता है। मोक्षमार्ग जो है वह गली-गलियारे का मार्ग नहीं है, पर्वत की चोटियों का मार्ग नहीं है। आत्मा के विशुद्ध परिणामों का जो मार्ग है, उसका नाम मोक्षमार्ग है। धर्म की खोज करना हो तो जगत् में सारे स्थानों से स्वयं को दूर कर लेना। सच्चा भावलिंगी श्रमण और सच्चा श्रावक जहाँ दिख रहा हो, वहीं धर्म है। "न धर्मो धार्मिकैर्बिना" — धर्मात्मा के बिना धर्म होता नहीं है। एक जीव भी नरक के नारकी तक को शान्ति प्रदान करने की सामर्थ्य रखता है। फूल प्रारम्भ में फूल नहीं होता है, उसकी कली होती है। जब संघात में शक्ति होती है, तब तक किसी को मालूम नहीं होता है, लेकिन जब विकास होता है, तो वही एक पुष्प पूरे क्षेत्र को सुगंधित कर देता है। ऐसे ही जिस

जीव ने कली के रूप में तीर्थंकरप्रकृति का बंध किया होता है, उस संघात में शक्ति है, और जब वही जीव उदित होता है, तो जन्म लेते ही नरक के नारकियों तक को एक क्षण के लिए शान्ति मिल जाती है। जिस जीव ने पूर्व में तपस्या करके संघात किया है, वही पुष्पित होता है। जो शक्ति तीर्थंकर ऋषभदेव के पास थी, वही शक्ति आपके पास भी है। जो पानी की वाष्प रेलगाड़ी को चला रही थी, क्या गिलास में रखे पानी में वह सामर्थ्य नहीं है? गिलास के पानी में भी वह सामर्थ्य है, परन्तु अग्नि पर रखा नहीं है। जो सामर्थ्य तीर्थंकर में है, वही आप सभी में है। अन्तर इतना है कि एक ने अपनी आत्मा को ध्यान की अग्नि पर वाष्पित किया है, इसलिए ऊपर जा रहा है और दूसरे ने नाली में बहाया है, सो नीचे की ओर जा रहा है। सामर्थ्य सबके पास है। सामर्थ्य की न्यूनता नहीं है, विधि की न्यूनता है।

बटलोई की पेंदी को देखना और बटलोई के अंदर होने वाली क्रिया को देखना। उन दोनों में महान् अंतर है। पात्र में क्रिया नहीं है, पात्र के भीतर क्रिया है। खीर बटलोई में बनती है, परन्तु बटलोई खायी नहीं जाती है, खायी तो खीर जाती है। कुछ लोग समयसार का स्वाध्याय करते हैं, परन्तु निर्ग्रंथ योगी समयसार को जिया करते हैं।

आचार्यभगवान् कुन्दकुन्द स्वामी सम्यग्दृष्टि श्रावक के गुणों का वर्णन कर रहे हैं। सम्यग्दृष्टि श्रावक के सतत्तर गुण कहे गये हैं। ज्ञानी! श्रावक के आठ मूलगुणों में मद्य, मांस, मधु इन तीन मकारों का, पाँच उदम्बरों बड़, पीपल, पाकर, ऊमर और कटुम्बर (अंजीर) फलों को खाने का त्याग कहा गया है। उदम्बर फल में अनंत जीवराशि होती है। उदम्बर फल वे कहे जाते हैं जिनमें फूल लगे बिना ही फल आते हैं। उनका कोई नियत ऋतु /काल नहीं होता है।

आचार्य समन्तभद्र ने आठ मूलगुणों में तीन मकार मद्य-माँस-मधु तथा उदम्बरों के स्थान पर पाँच अणुव्रतों को लिया है। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य एवं परिग्रह परिमाण। पं0 आशाधर जी ने तीन मकार, पाँच उदम्बरों को एक, रात्रिभोजन त्याग, पंचपरमेष्ठी को नमस्कार, जीवदया और पानी छानना, इनको आठ मूलगुणों के रूप में कहा है।

आचार्यभगवान् कुन्दकुन्द स्वामी ने 'रयणसार' जी में श्रावक के बारह गुणों में पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत का वर्णन किया है। सम्यग्दृष्टि जीव सात प्रकार के भयों से रहित होता है। उसे इहलोक, परलोक, वेदना, मरण, आकस्मिक, अरक्षा तथा अगुप्ति भय नहीं होता है। वह विचार करता है कि मैंने पूर्व में जैसे कर्म किये हैं, उनके उदय में आने पर फल भोगना पड़ेगा। मेरे यश कर्म का उदय है तो संसार में अपयश मिलने वाला नहीं है। मेरे अयश कर्म का उदय है तो मैं कितना भी प्रचार-प्रसार करता रहूँ, परन्तु नाम, ख्याति, यश की

प्राप्ति होना संभव नहीं है। वर्तमान के कर्मोदय में मैं जैसा करूँगा, वह परलोक में वैसी स्थिति को दिलायेगा। जब शरीर में कष्ट होता है तो वह विचार करता है कि मेरे असाता कर्म का उदय है। अत: शरीर में जो वेदना हो रही है, उसको उदासीन भाव से सहन करता है। वह जानता है कि जब तक मेरी आयु शेष है, तब तक मेरा मरण नहीं होगा। कोई भी मेरी मृत्यु नहीं करा सकता। मेरे आयुकर्म के निषेकों का क्षय भी मेरे द्वारा ही होगा, अन्य कोई मेरे आयुकर्म के निषेकों का क्षय नहीं कर सकता। ज्ञानी! कहा भी है कि वीर एक बार मरता है, कायर प्रतिदिन/प्रतिक्षण मरता है। इसलिए उसके मन में आकस्मिक भय तथा अरक्षा आदि का भय नहीं होता है।

सम्यग्दृष्टि श्रावक सातों प्रकार के व्यसन (जुआ खेलना, मांस खाना, मदिरा पीना, शिकार करना, वेश्यागमन, चोरी तथा परस्त्री सेवन) से विलग रहता है। जो-जो हिंसा के कारण हैं, उनसे परे रहता है। पच्चीस प्रकार के जो मलदोष कहे गये हैं, उनसे अपने को सदैव अलग रखता है। आठ प्रकार के दोषों (शंका, कांक्षा, विचिकित्सा, मूढ़दृष्टि, अनुपगूहन, अस्थितिकरण, अवात्सल्य, अप्रभावना) से रहित होता है। वह जिनेन्द्र भगवान् के वचनों में किसी प्रकार की शंका नहीं करता है। वह धार्मिक कार्य पूजा-पाठादि में भी भोगों की आकांक्षा नहीं करता है। जो लौकिक मूढ़तायें (बटइया, कुलदेवता, पेड़ आदि की पूजा) नहीं करता है, वह देवमूढ़ता, गुरुमूढ़ता तथा लौकिक मूढ़ताओं को छोड़ देता है। वह हमेशा देव-शास्त्र-गुरु, सहधर्मी के प्रति वात्सल्यभाव रखता है। उनको मार्ग से विचलित होते देखकर समझाकर पुन: मार्ग पर स्थापित करता है। आठ प्रकार के मद (ज्ञान, पूजा, कुल, जाति, बल, ऋद्धि, तप, रूप का मद) कभी नहीं करता है। सम्यग्दृष्टि श्रावक हमेशा सोचता है कि ये सब पूर्वकृत पुण्योदय से प्राप्त हुए हैं। यह सब जीवों को उनके कर्मानुसार प्राप्त होते हैं। यह गर्व करने, घमण्ड करने का विषय नहीं है। वह कुगुरु, कुदेव, कुधर्म का सेवन नहीं करता है। इन तीनों को जो मानने वाले हैं, उनकी भी प्रशंसा, सेवा नहीं करता है।

सम्यग्दृष्टि श्रावक आठ गुणों से युक्त होता है। निशंकित, नि:कांक्षित, निर्विचिकित्सा, अमूढ़दृष्टि, उपगूहन, स्थितिकरण, वात्सल्य एवं प्रभावना। वह प्रतिक्षण विचार करता है कि मैं अपना कल्याण कैसे करूँ? संसारसागर से कैसे हटूँ? अपना कल्याण करते-करते पर का भी कल्याण कैसे करूँ? वह हमेशा बारह भावनाओं का चिन्तन करता है। बारह भावनायें वैराग्य उपजाने में माता के समान हैं। जैसे माता संतान को जन्म देकर उसका सही पालन-पोषण करती है, वैसे-ही बारह भावनायें वैराग्य उत्पन्न करके उसको निरन्तर पालन करती रहती हैं।

नवीं गाथा में आचार्यभगवान् कुन्दकुन्द स्वामी कह रहे हैं कि कौन शिवसुख को प्राप्त करते हैं? जो देव-शास्त्र-गुरु के भक्त होते हैं अर्थात् मन-वचन-काय से श्रद्धा ही नहीं रखते बल्कि तदनुसार आचरण भी करते हैं, संसार-शरीर-भोगों के प्रति उदासीन होते हैं, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र रूप रत्नत्रय से युक्त होते हैं, वे ध्यान व तप के द्वारा निर्वाण को प्राप्त होते हैं निर्ग्रंथ दिगम्बर मुद्रा धारण करके। आचार्यभगवान् ने कहा भी है कि सम्यग्दृष्टि का पुण्य नियम से बंध का कारण नहीं होता है। मिथ्यादृष्टि का द्रव्य नियम से बन्ध का कारण होता है।

"आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

॥ भगवान् महावीर स्वामी की जय ॥

❖ ❖ ❖

सम्यग्दर्शन के बिना दीर्घ संसार

दाणं-पूया-सीलं, उववासं बहुविहं पि खवणं पि।
सम्मजुदं मोक्खसुहं, सम्मविणा दीह संसारं॥10॥

अन्वयार्थ—(सम्मजुदं) सम्यग्दर्शन से युक्त **(दाणं-पूजा-सीलं)** दान, पूजा, शील **(बहुविहं पि)** अनेक प्रकार के **(उववासं)** उपवास **(खवणं पि)** कर्मक्षय के कारणभूत व्रत भी **(मोक्खसुहं)** मोक्षसुख के कारण हैं और **(सम्मविणा)** सम्यग्दर्शन के बिना ये ही, **(दीह-संसारं)** दीर्घ संसार के कारणभूत हैं।

श्रावक व मुनिधर्म में मुख्य क्या?

दाणं-पूया-मुक्खं, सावयधम्मे ण सावया तेण विणा।
झाणाज्झयणं मुक्खं, जइधम्मे तं विणा तहा सो वि ॥11॥

अन्वयार्थ—(सावयधम्मे) श्रावकधर्म में (दाणं-पूया) दान और पूजा (मुक्खं) मुख्य हैं (तेण) उसके (विणा) बिना (सावया) श्रावक (ण) नहीं होता है। (झाणाज्झयणं) ध्यान और अध्ययन (जइधम्मे) यति धर्म में (मुक्खं) मुख्य हैं (तं विणा) उस ध्यान और अध्ययन के बिना (सो वि) वह मुनिधर्म भी (तहा) वैसा ही व्यर्थ है।

बहिरात्मा की परिणति पतंगे के समान

दाण ण धम्म ण चाग ण, भोग ण बहिरप्प जो पयंगो सो।
लोह-कसायग्गि-मुहे पडिदो मरियो ण संदेहो ॥12॥

अन्वयार्थ—(जो) जो श्रावक **(दाणं)** दान **(ण)** नहीं देता **(धम्म ण)** धर्म पालन नहीं करता **(चाग ण)** त्याग नहीं करता, **(भोग ण)** न्यायपूर्वक भोग नहीं करता **(सो)** वह **(बहिरप्प)** बहिरात्मा **(पयंगो)** पतंगा है **(लोह-कसायग्गि-मुहे)** लोभकषाय रूपी अग्नि के मुख में **(पडिदो)** पड़ा हुआ **(मरियो)** मर जाता है **(संदेहो)** इसमें संदेह **(ण)** नहीं है।

भव्य बन्धुओ!

अन्तिम तीर्थेश भगवान् वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना, जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमण संस्कृति। आचार्यप्रवर भगवान् कुन्दकुन्द स्वामी

ग्रंथराज 'रयणसार' जी में श्रमण और श्रावक उभय धर्मों की व्याख्या करते हुए कह रहे हैं कि दान करना, पूजन करना ये श्रावक का मुख्य धर्म है और ध्यान करना, अध्ययन करना ये यति का मुख्य धर्म है।

जब ये जीव अशुभ से बचने के लिए, घर की सीढ़ी से उतरकर मन्दिर की सीढ़ी पर चढ़ता है बुद्धिपूर्वक, ऐसे-ही जीव अशुभोपयोग से हटकर शुभोपयोग में लीन होता है। शुभोपयोग की सत्ता में शुद्धोपयोग होता नहीं। एक समय में एक वस्तु दो पर्याय रूप में होती नहीं है।

"एकस्मिन् द्रव्ये क्रम भाविनः परिणामाः पर्यायाः आत्मानि हर्षविषादादिवत्" —पण्डित जी! अपने चेहरे पर एकसाथ हर्ष परिणाम और विषाद परिणाम दिखा सकते हैं क्या? नहीं हो सकता है। एक ही द्रव्य में जो क्रमभावी परिणाम है, उसका नाम पर्याय है। कैसे? जब आत्मा में हर्ष परिणाम होंगे, उस समय विषाद परिणाम नहीं होंगे और जब विषाद परिणाम होंगे, उस समय हर्ष परिणाम नहीं होंगे। पर आत्मा वही आत्मा होगी। ज्ञानी! इसी तरह एक समय में जब शुभोपयोग होगा, उस समय अशुभोपयोग नहीं होगा। शुभ-अशुभ में कोई भी एक होगा, उस समय शुद्धोपयोग भी नहीं होगा।

शुभोपयोग का व्यय होगा, तभी शुद्धोपयोग प्रकट होगा। ज्ञानियो! तुम एकसाथ हँस-रो नहीं सकते हो, जोर-से व धीरे-से एकसाथ बोल नहीं सकते हो। तो जब विभाव पर्याय तेरी युगपत् नहीं हो रही है, तो स्वभाव पर्याय में विभाग पर्याय कैसे? माँ! रोटी बनाना जानती हो क्या? लोई रोटी है, कि पूड़ी है, कि परांठा है? लोई में सब है। सबका (तीनों का) स्वाद एकसाथ दे सकती हो क्या एक लोई से ? पर विभाव नहीं होना चाहिए। ये संभव नहीं है। ज्ञानी! द्रव्यदृष्टि से, सत्दृष्टि से रोटी, पूड़ी, परांठा तीनों अवस्थायें हैं, पर जब पर्याय की प्रत्यासत्ति में आयेगा, तब एक ही होगा। यदि परांठा बन गया, तो पूड़ी बननेवाली नहीं, पूड़ी बन गई तो परांठा नहीं बननेवाला और रोटी बन गई तो दोनों ही नहीं बनेंगे। हे ज्ञानी! जिस काल में पूड़ी बनी होगी, उस काल में परांठा व रोटी का अभाव होगा। जिस समय रोटी बनेगी, तब पूड़ी व परांठे का अभाव होगा। ऐसे-ही जब शुद्धोपयोग होगा, तो शुभ व अशुभ दोनों का अभाव होगा। ये ही वस्तुस्वभाव है।

कुछ ज्ञानी सोचते हैं कि शुभ उपयोग में शुद्ध उपयोग हो जायेगा। अब दृष्टांत से दृाष्टांत पर आइये। टमाटर, ककड़ी, मटर, खरबूजा आदि सामग्री एकसाथ रखी है। पर जिसको खरबूजा ही खाना है, उसको क्या दिखता है? मात्र खरबूजा, सब कुछ होने के उपरान्त भी। वह ज्ञाता सबका है, दृष्टा सबका है, परन्तु भोक्ता खरबूजे मात्र का है। ज्ञानी! शेष सभी में हेय दृष्टि,

अपेक्षा दृष्टि और उपादेय दृष्टि में मात्र खरबूजा। बाजार में सारी सामग्री दिखने पर भी नहीं देख रहा है, उसकी दृष्टि में उसका लक्ष्य है मात्र खरबूजा।

हे ज्ञानी! जब खरबूजे के प्रति राग होता है तो मात्र खरबूजा ही दिखता है। ऐसे-ही जब खरबूजे पर दृष्टि लेकर चलता है तो बाजार में सबकुछ होने पर भी तू सबसे भिन्न करके खरीदता किसको है? खरबूजे को। ऐसे-ही तत्त्वज्ञानी जीवद्रव्य उपयोग में जब शुद्धोपयोग को उपादेयभूत मानता है, तब शुभ-अशुभ इन पर उपेक्षा भाव रखता है और शुद्ध पर दृष्टि रखता है, तभी शुद्धोपयोग को प्राप्त कर पायेगा। जब तक प्राप्ति के भाव ही नहीं लायेगा, तो प्राप्त क्या कर पायेगा? "भज अरिहन्तं" "भज अरिहन्तम्" कहने से शुद्धोपयोग हो जायेगा क्या? ज्ञानी! जैसे तू अरिहन्त की आराधना कर रहा था। पहले आपको शुद्धोपयोग की भावना भाना पड़ेगी, तभी शुद्धोपयोग में प्रवेश कर पायेगा।

हे ज्ञानी! यदि तुझे सोने के आभूषण चाहिए, तो स्वर्ण धातु ही खरीदेगा कि लौह धातु खरीदेगा? स्वर्ण आभूषण चाहिए तो सोना ही खरीदना पड़ेगा। शुद्धोपयोग चाहिए है तो शुद्धोपयोग की भावना शुभोपयोग में ही बनाना पड़ेगी।

कई विद्वान् मानते हैं कि बिना शुभोपयोग के शुद्धोपयोग नहीं होता है। भो मुमुक्षु! प्रथम गुणस्थान से ही शुद्धोपयोग होता है। अब कहाँ गया आपका शुभोपयोग? कुछ लोग एकान्त से प्रथम गुणस्थान में शुभोपयोग मानते नहीं हैं। पर प्रथम गुणस्थान में भी शुभोपयोग होता है। उपचार से भद्र परिणाम, भद्र ध्यान। जो जीव प्रथम गुणस्थान में बैठा हुआ है, उसने जैनेश्वरी दीक्षा ली, सीधे सप्तम गुणस्थान में जा रहा है। वह सप्तम गुणस्थान में शुद्धोपयोग में लीन हो रहा है। तो प्रथम अशुभोपयोग की पर्याय का नाश हुआ है और शुद्धोपयोग में प्रवेश हुआ है, ये करणानुयोग है।

ज्ञानी! जहाँ यूँ कहा जाता है कि प्रथम गुणस्थान में शुभोपयोग नहीं होता है, उसकी दृष्टि दूसरी है। कुमति, कुश्रुत ज्ञान अशुभ ही हैं। इस दृष्टि से, 'उपयोगो लक्षणम्' की दृष्टि से उपयोग शुभ नहीं है। परन्तु परिणामों की दृष्टि से मिथ्यादृष्टि जीव का शुभोपयोग का परिणमन असुर पर्याय में ले जाता है, सम्यग्दृष्टि जीव का शुभोपयोग का परिणमन सुर पर्याय में ले जाता है। बिना शुभोपयोग के देवायु का आस्रव नहीं होता है। असुर भी बनेगा तो शुभोपयोग से, सुर भी बनेगा तो शुभोपयोग से। कैसे? जो जीव मिथ्यात्व के साथ शुभोपयोग कर रहा है, द्रव्य क्रिया, वह असुर बनेगा। जो सम्यक् के साथ पुण्यक्रिया कर रहा है शुभ की, वह सुर बनेगा। इसलिए भैया! बहुत संभलकर क्रिया करना, रहना। सम्यग्दर्शन से सहित जीव दान-पूजा आदि कर रहा

है, अनेक प्रकार के व्रत-नियम-संयम का पालन कर रहा है, वह उसके कर्मक्षय के कारण हैं। वह अनुक्रम से मोक्ष दिलाने वाले हैं। आचार्य भगवान् कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि का पुण्य संसारबंध का कारण नहीं है और मिथ्यादृष्टि का पुण्य भी संसार बढ़ाने का कारण है।

ज्ञानी! श्रावक को प्रतिदिन पंचपरमेष्ठी की आराधना-पूजा करना चाहिए। दान देना उसका कर्त्तव्य है। आचार्यभगवन्त कहते हैं कि जो जीव दान नहीं देता है, वह हिंसक है। श्रमण का मुख्य कार्य ध्यान और अध्ययन है। श्रमण का कार्य श्रावकों के कार्य में संलग्न होना नहीं है। कोई मुनि बनकर यह सोचता है कि मैं तो मुनि बन गया, अब किसी भी प्रकार के धार्मिक कार्यों के आरंभ, परिग्रह इत्यादि में लगा हूँ तो भी मेरा संसार संकुचित हो जायेगा, मैं मुक्ति को प्राप्त कर लूँगा। हे ज्ञानी! जिसका कार्य होता है, वही उसको शोभा देता है। राजसभा में गणिका नृत्य करे तो शोभा को प्राप्त होती है। उसी राजसभा में महारानी नृत्य करे तो क्या शोभा को प्राप्त होगी? जो दिगम्बर मुद्रा को धारण करके ज्ञान, अध्ययन, तप, ध्यान में लीन नहीं होता है, उसका जिनमुद्रा का धारण करना व्यर्थ है। जैसे कोई जीव चंदन की लकड़ी से भोजन बना रहा हो, रत्न से कौआ उड़ा रहा हो, इसी तरह संसारिक कार्यों में मन्दिर बनवाने, मठ बनवाने आदि में श्रमण लीन हो, तो वह उसकी ही श्रेणी में आयेगा।

ज्ञानी! इसी तरह जो श्रावक अपने करने योग्य कार्य नहीं करता है, जो श्रावक के धर्म कहे गये हैं उनका पालन नहीं करता है, जो दान नहीं करता है, उसकी लोभकषाय अत्यन्त तीव्र है। ऐसा श्रावक बहिरात्मा की श्रेणी में आता है। जिस तरह पतंगा दीपक की लौ में जलकर भस्म हो जाता है, उसी तरह लोभी व्यक्ति भी कषाय की तीव्र ज्वाला में जलकर मरण को प्राप्त होता है। एक कहावत भी है—चमड़ी जाये तो जाये, पर दमड़ी ना जाय। जब तक जीव की लोभकषाय नहीं छूटती है, तो द्रव्य का त्याग करके भी उसका पुनः पुनः स्मरण करता रहता है। अतः दान करके हमेशा भूल जाओ। त्याग करके हमेशा भूल जाओ। जैसे नित्य शरीरकर्म करके भूल जाते हो।

"आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

पूजा-दान-धर्म को करने वाले सम्यग्दृष्टि हैं

जिण-पूया मुणि-दाणं, करेइ जो देदि सत्तिरूवेण।
सम्माइट्ठी सावय-धम्मी सो होदि मोक्ख-मग्ग-रदो॥ 13॥

अन्वयार्थ—(जो) जो **(सत्ति रूवेण)** शक्ति के अनुसार **(जिण-पूजा करेइ)** जिनदेव की पूजा करता है **(मुणि-दाणं देइ)** मुनियों को दान देता है **(सो)** वह **(सम्माइट्ठी)** सम्यग्दृष्टि **(धम्मी)** धर्मात्मा **(सावय)** श्रावक **(मोक्ख-मग्ग-रदो)** मोक्षमार्ग में रत है।

पूजा व दान का फल

पूय फलेण तिलोक्के, सुरपुज्जो हवदि सुद्धमणो।
दाणफलेण तिलोए, सारसुहं भुंजदे णियदं ॥ 14॥

अन्वयार्थ—(सुद्धमणो) शुद्ध मन वाला श्रावक **(णियदं)** निश्चय से **(पूयफलेण)** पूजा के फल से **(तिलोक्के)** तीनों लोक में **(सुरपुज्जो)** देवों से पूज्य **(हवदि)** होता है **(दाण फलेण)** दान के फल से **(तिलोए)** तीनलोक में **(सारसुहं)** सारभूत सुखों को **(भुंजदे)** भोगता है।

जिनमुद्रा में विचार कैसा ?

दाणं भोयणमेत्तं, दिण्णदि धण्णो हवेदि सायारो।
पत्ता पत्तविसेसं, सद्दंसणे किं वियारेण ॥ 15॥

अन्वयार्थ—यदि **(सायारो)** श्रावक **(भोयणमेत्तं)** भोजनमात्र **(दाणं)** दान **(दिण्णदि)** देता है—तो वह **(धण्णो)** धन्य **(हवेदि)** हो जाता है **(सद्दंसणे)** जिनलिंग को देखकर **(पत्तापत्तविसेसं)** पात्रापात्र विशेष के **(वियारेण)** विचार से-विकल्प करने से **(किं)** क्या लाभ है ?

भव्य बन्धुओ।

अंतिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना जिनेन्द्रवाणी जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमण संस्कृति। आचार्यप्रवर भगवान् कुन्दकुन्द स्वामी की दिव्य, अलौकिक सिद्धहस्त लेखनी जयवंत हो। भारत की भूमि पर ऐसा महान् योगी हुआ जिसने समयसार ग्रंथ का लेखन किया। सारे विश्व के लिये ब्रह्मविद्या को उद्घाटित करने वाला कोई योगी हुआ है इस युग में, तो वह आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी हैं। जिन्होंने वस्तुस्वरूप की व्याख्या करके वह अलौकिक ज्ञान दिया है जिसको सदियाँ-सदियाँ ही क्या, पूरा काल नहीं भूल पायेगा। जब अंतस् में बैठकर चिंतन

किया करते होंगे, उस समय कुन्दकुन्द की अनुभूति कुन्दकुन्द ही जानें। भगवत्ता के स्वरूप को प्रकट करने की कोई प्रज्ञा थी तो आचार्य कुन्दकुन्द के अंतस् में थी। "कण-कण स्वतंत्र है" इस बात की घोषणा करने वाला कोई योगी था तो आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी। उन्होंने अध्यात्म को ही इतना गहरा नहीं लिखा, जब चरणानुयोग की गहराई में प्रवेश किया, तो सारे विश्व को हिला दिया है।

वे कुन्दकुन्द देव कह रहे हैं कि जिसे जिनेन्द्र की मुद्रा (अरिहंत लिंग) स्वप्न में भी नहीं रुचता है, वह अनंत भवों को धारण करता है। जिस जीव की भवितव्यता पवित्र है, जिसकी होनहार निर्मल है, जिसका संसार अल्प है, उस जीव को स्वप्न में भी अरिहंतों एवं निर्ग्रंथों की भक्ति दिखाई देती है। जिसकी होनहार पवित्र है, किसी से पूछने मत जाना, जिसका संसार अल्प बचा हुआ है, उसे स्वप्न में भी पंच-परमेष्ठी के दर्शन होते हैं। जिसका संसार अभी दीर्घ है, उसे स्वप्न भी पाँच पाप करने के आते हैं। कुन्दकुन्द स्वामी 'अष्ट पाहुड' में लिखते हैं—जिनेन्द्र की मुद्रा की यदि स्वप्न में भी अवहेलना होते दिख गई आपसे, समझ लेना कि मेरा संसार बहुत लंबा है। अंतरंग हेतु, बहिरंग हेतु, ये सारे हेतु उपादान की योग्यता की ओर इंगित करते हैं। घर में शालि ध ाान्य होने के बाद भी जिसको बाजरा और कोदों खाने के भाव आ रहे हैं, जिनवाणी कह रही है, कि इसकी भवितव्यता गरीबी की निश्चित हो चुकी है। सिर में तेल की बोतल ढारे, फिर भी बाल खड़े होने लग गए हैं तो समझ लेना कि तेरे पुण्य ने भी हाथ खड़े कर दिए हैं। हाथ के नाखून जो लाल दिखते थे, वे सफेद दिखने लग जाएँ कि समझ लेना कि समझ ठीक नहीं है। वृक्ष पर फल पहले नहीं आता, पुष्प पहले आता है। पुष्प आते ही किसान मुस्कुराने लगता है कि फल आने का समय आ गया है। ज्ञानियो ! पुण्य के पुष्प भी पहले आते हैं और पाप के पुष्प भी पहले आते हैं। बेटे की दाढ़ी-मूँछ दिखने लग गई तो पिता समझ लेता है कि बेटा युवा हो चुका है। ज्ञानी! निहारना, जिस समय तुम्हारे मन में पंच-परमेष्ठी की निंदा के भाव आने लग जायें तो समझ लेना कि मेरी दुर्गति का समय नजदीक आ चुका है। जिस समय पंचपरमेष्ठी के चरणों में बैठने के भाव आने लग जायें, समझ लेना मेरा तीव्र पुण्य का उदय आ चुका है। ऐसे लोग भी हैं, जीवन में पाप किए हों, परंतु अंतिम समय आते-आते उनके भाव भगवान् की ओर हो जाते हैं। आयुबंध के काल में जिसके प्रशस्त परिणाम होते हैं, मृत्यु के काल में उसके नियम से प्रशस्त परिणाम होते हैं और आयुबंध जिसने खोटा कर लिया है, जीवन भर धर्म करेगा और मरण का समय आयेगा तब कोई कहेगा कि णमोकार सुनाऊँ, तो कहेगा कि हल्ला मत करो।

"यथा गति, तथा मति"

जैसी गति का बंध होता है, अंतिम समय में वैसे परिणाम जीव के हो जाते हैं। सुनो, पुण्य की सत्ता के काल में पाप का बंध मत कर लेना। ज्ञानियो! जितना तीव्र पाप का बंध जीव करता है, यह पुण्य के उदय के काल में करता है।

जब लबालब वेग होता है पानी का, तो न मार्ग दिखता है, न नाला दिखता है। मात्र पानी ही पानी दिखता है। ज्ञानी ! जो भी बहता है, ऐसे काल में ही बह जाता है। जब बाढ़ आती है, तो सब बह जाते हैं। जब पुण्य की बाढ़ आती है तो जीव उस समय न पापकर्म समझता है, न पुण्यकर्म समझता है और ऐसे काल में बह जाता है। सम्हल कर रहना, पाप के काल को पचाना सरल है। पापोदय के काल में तो कम-से-कम परमात्मा दिखने लगते हैं, लेकिन पुण्य के काल में परमात्मा भी नहीं दिखते हैं। काम बनने लग जाए, तो मैंने किया और सबसे सस्ता भगवान्। काम बिगड़ने लग जाए तो भगवान् ने किया। हे ज्ञानी-अज्ञानी ! तू क्यों जगत् का कर्त्ता बनता है ? जो हुआ है, वह जीव के निज के पुण्य—पाप के संयोग से हुआ है। सौधर्म इन्द्र कहे, कि मैं न होता तो भगवान का समवसरण कौन लगाता? अरे ज्ञानी ! अनंत भव्यों के भाग्य न होते तो भगवान् ही कैसे आते ? भाव भक्तों के थे, तभी तेरे भाव समवसरण लगाने के हुए। सौधर्म इन्द्र कहे कि मेरे आदेश से ही तो समवसरण बना है। अरे ज्ञानी ! तू तो अपना पुण्य समझ, जो तू उस काल में सौधर्म इन्द्र बना जिस काल में तीर्थंकर होते हैं। निहारना, वस्तुस्वरूप को निहारना। अंतिम श्वास का ध्यान रखना। ज्ञानियो। सारे विश्व के दर्शन जीवन जीना सिखाते हैं, एकमात्र जैनदर्शन ऐसा है जो मरने की कला भी सिखाता है, उसका नाम समाधि-मरण है। ज्ञानी! सुनो, ये जगत् के रागी लोग तो कहेंगे मेरे पिताजी। परंतु अंदर से याद रखना कि चलती बिरियाँ है। अब बाहर की दुनियाँ के विकल्प से खाली होकर, मात्र निजभवन में भगवान् हों और आत्मभवन में आत्मदेव हों, तीसरे को प्रवेश मत देना। यदि आपको विश्वास न हो तो उस माँ से पूछना जो सोले का भोजन करती हो। माँ ! सोले का भोजन बनाया हो तो चौके में लकीर खींचती है। 'ए भैया ! इते न आइयो' सोले का है।' हे माँ ! सोले के भोजन के चौके में किसी को आप प्रवेश नहीं करने देती हो। जैसे सोले के चौके में किसी को प्रवेश नहीं देते हो कि मेरा सोले का भोजन बिगड़ जाएगा, ऐसे हे वृद्धो! एक लकीर खींच दो अपने हृदय के आंगन में, अपने हृदय के चौके में एक चौक पूर दो और उस चौक के सामने खड़े होकर कह देना, हे भैया ! अब इसके अंदर प्रवेश नहीं करना। ये मेरा समाधि का चौक पुर चुका है। अब अशुभ भावों को यहाँ प्रवेश नहीं देना। भाव मेरे सोले के हो चुके हैं। रसोई घर में तो पुद्गल के टुकड़े खायेगा, रोटियाँ खायेगा और हृदय के चौक में ज्ञानी स्वात्मानुभूति का आनंद लूटेगा। इसलिए ध्यान रखना, चौक पूर देना, लकीर खींच देना। माँ ! जितना तू भोजन का सोला करती है, उतना भावों का सोला करना भी शुरू कर दो। भोजन के सोले के राग में भावों

का सोला समाप्त मत कर देना। घर-घर में सोले का भोजन होना चाहिए। बस, पड़गाहन करना पड़ेगा, द्वारे-द्वारे पर। 'भो स्वामिन् ! नमोऽस्तु-नमोऽस्तु' सुनाई पड़ेगा। हर घर में नमोऽस्तु शासन जयवंत होगा। फिर किसी की आँख से आँसू नहीं गिरेगा कि मेरा चौका खाली गया।

सुनो ध्यान से, मति को सुधारो। श्रीमति को नहीं, मति को सुधारो। गति सुधारना है तो मति को सुधारो। गति के हाथ में गति नहीं है मति के हाथ में गति है। जितने च्युत हुए हैं, जितने भ्रष्ट हुए हैं, जितने पतित हुए हैं, वे गति से नहीं हुए हैं, मति से हुए हैं। देह भ्रष्ट नहीं होती है, भ्रष्ट होती है तो मति होती है। किसी को बदलना हो तो मति बदलने का प्रयास करना। आज ही अपनी मति को बदल देना। विश्वास रखना, मति बदलते ही सुख प्रारंभ होता है, मति बदलते ही दु:ख प्रारंभ होता है। एक व्यक्ति को किसी से एक हजार रुपये लेना हो, वह दे नहीं रहा है, तो संक्लेशता होती है कि नहीं होती है ? एक क्षण में मैं तेरा दु:ख दूर कर सकता हूँ। उसको लिखकर दे देना कि मैंने हजार रुपये तुझे दान में दिए। संकट समाप्त। जब तक परवस्तु में निजवस्तु का राग बैठा हुआ है, तब तक दु:ख है और परवस्तु में परवस्तु का राग हट जाए, उसी क्षण से सुख प्रारंभ हो जाए। दिगम्बर मुनि प्रमुदित क्यों मिलते हैं ? जिसके पास फटे कपड़े होते हैं, वे रोते देखे जाते हैं और जिनके पास एक धागा भी नहीं है, वे मुस्कुराते मिलते हैं। आश्चर्य है। इनको तो ज्यादा रोना चाहिए है। उस गरीब के पास कुछ तो है, इनके पास तो कुछ भी नहीं है। पर ध्रुव सत्य है, जब तक कुछ भी रहेगा, तब तक रोना ही पड़ेगा और जिस दिन सबकुछ छूट जायेगा, उस दिन मुस्कुराहट-ही-मुस्कुराहट आयेगी। जब सुनने में इतना आनंद आता है, तो करने में कितना आनंद आयेगा ? एक बार तो करके देखो। बहुत आनंद है, घना आनंद है।

"घनाघन आनंदस्वरूपोऽहम्"

ज्ञानी ! भगवान् कुन्दकुन्द स्वामी कह रहे हैं—मति को सुधारो। जगत् का प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र है। आप किसी के सुख-दु:ख के कर्त्ता नहीं हो। यह अवश्य है कि दूसरों के सुख-दु:ख के राग में निज को दु:खी अवश्य कर सकते हो। जितने दु:खी माता-पिता हैं, यह ध्रुव सत्य है, वे अपने कारण नहीं हैं, पर के कारण हैं। कोई बेटी से दु:खी है, कोई बेटा से दु:खी है। हे माता, हे पिता ! कर्तव्य का निर्वाह करना तो सीखो, परंतु कर्त्ता बनना मत सीखो। क्या तेरा जीवन परतंत्रता में ही जायेगा ? एक क्षण निज स्वतंत्रता का तो वेदन करो। आगम की विधि को नहीं मानते हो, इसलिये दु:खी हो। आगम की विधि सुनो। जितने पिता बैठे हैं, ध्यान से सुनो—"भगवन् जिनसेन स्वामी कहते हैं महापुराण में—कि बेटी के घर में मेहमान बनकर जाना चाहते हो, तो सुनो। सच बताना, साथ रहने वाले का सम्मान अधिक होता है कि मेहमान का सत्कार अधिक होता है? जो

प्रज्ञाविहीन पिता बन गए, उन्हें जीवन की अंतिम श्वासों में रोना पड़ता है। प्रज्ञावंत पुरुष जो पिता बनते हैं, वो जीवन के अंतिम समय में मुस्कुरा कर जाते हैं, सल्लेखना करके जाते हैं। पिता की मृत्यु हो जाए तो पंच मिलकर पगड़ी बांध देते हैं। अपने जीते जी पद नहीं छोड़ पाए आचार्य, तो शिष्य-मण्डली झगड़ती है, कि मैं आचार्य, मैं आचार्य। यदि गुरु अपने देखते-देखते तिलक करके चला जाता, तो शिष्यों में विकल्प न होता। ऐसे ही ध्यान रखना, जितने पिता बैठे हैं, समाज पगड़ी बांधती है, यह समाजव्यवस्था है, पर आगमव्यवस्था जो है, उसे ध्यान से सुनो। समाज को बुलाकर अपने जीते जी बेटों को पगड़ी बांध देना। कह देना, बेटो! आपस में झगड़ना नहीं। अपना हिस्सा मैं रख रहा हूँ, बाकी आप अपना-अपना रखो। झगड़ने का प्रश्न नहीं। फिर यह नहीं कह पायेंगे कि छोटे भैया, बड़े भैया मेरा हिस्सा दो। सुना, उसकी विधि सुनो—जैसे ही बेटे की शादी होती है, उसके पहले आपको बेटे का भवन अलग से तैयार कर देना चाहिए और अलग नहीं करना। बेटा कहे पिताजी! मुझे अलग कर दो, तो इसका तात्पर्य समझो कि बेटा कहीं-न-कहीं तुम्हारी प्रवृत्ति से खुश नहीं है। बहू यदि कहे माँ! मुझे अलग होना है, तो सासू यदि विवेकी है, तो उसे समझ जाना चाहिए कि मेरी प्रवृत्ति से वह खुश नहीं है। लड़ाई मत करना, पहले वस्तुस्वरूप समझना। समय बर्बाद करना, घर का माहौल खराब करना, अशुभ वर्गणा फैला देना और घर का माहौल रोगमय कर देना, जो-जो घर में क्लेश करते हैं, वे सब नारकी लोग हैं। सुनो, आगम बोल रहा है, ज्ञानी ! मोराजी से कोई भी व्यक्ति गुजरे और यहाँ बाहुबली जिनालय पर एक भक्त घंटी बजाता है और जिसको मालूम नहीं है कि मोराजी भवन मात्र है कि मंदिर भी है। वह घंटी की आवाज सुनते ही उसे मालूम हो जाता है कि यहाँ मुनष्य रहते हैं, कि देव रहते हैं, कि नारकी रहते हैं?

"न रति, इति नारकी"

जिस घर में प्रेम न हो, वात्सल्य न हो और दिगम्बर मुनि के चरण न पड़ते हों वह घर नरक है और जो नरक में रहे, वह नारकी।

'न रति, इति नारकी'

रति यानि प्रेम, वात्सल्य। जिसके अंतरंग में प्रेम/वात्सल्य न हो, उसका नाम है नारकी और वह जहाँ रहता हो, उसका नाम है नरक। जिस घर से किल-किल की आवाजें सुनाई पड़ें, समझ लेना कि नरक भवन है। भैया! कोई यूँ कहे कि महाराज! सबको नारकी क्यों बोलते हो ? घर में जो सदैव क्लेश करता दिख जाए, समझ लेना कि यह नरक का आया हुआ नारकी है, सो बेचारे के संस्कार पड़े हैं, छूट नहीं रहे हैं। उसको भी अच्छे भावों से देख लेना। भैया! तू नरक से आया है, लेकिन नारकी के साथ जो लड़ेगा वह भी नारकी है।

"परस्परोदीरित दुःखाः"

एक नारकी दूसरे नारकी को दुःख देता है। यानी जो लड़ रहा है, वह भी नारकी। कम से कम तुम तो देवपर्याय से आए हो, तो वह लड़ने लग जाए तो तुम शांति से बैठ जाओ। तुम शांति से सुन रहे हो, इसका तात्पर्य है कि तुम देवगति से आए हो या देव बनने वाले हो। मंद कषाय, भद्रपरिणाम। ज्ञानी! जिसकी वाणी पर लगाम न हो, जिसका वाणी पर ही संयम न हो, भंड वचन बोलता हो, पूरे देश, समाज, घर में क्लेश फैला दिया हो, वही नारकी है। लेकिन, महाराज! सभी थोड़ी ही नरक से निकलकर आते हैं ? भैया! ठीक कह रहे हो। पहले पूरी बात तो सुनो। घर की आटे की चक्की होती है। जब चक्की चलाते-चलाते डण्डा छूट भी जाए, तब भी एकाध चक्कर लग जाता है कि नहीं ? बस, समझो कुछ लोग नरक से निकलकर आते हैं तो संस्कारवश यहाँ पर लड़ते रहते हैं। लेकिन सभी तो नरक से नहीं आए ? हाँ, ठीक है। लेकिन आपको मालूम होना चाहिए कि भारतीय सेना में कोई सैनिक बनने जाए, तो प्रेक्टिस करता है कि नहीं करता है ? सुनो, कुछ लोग वे हैं जो नरक से निकल कर आए हैं, वे चक्की के पाट के समान हैं और कुछ लोग वे हैं जो अभी अभ्यास कर रहे हैं, बेचारों को नरक जाना है, वहाँ भर्ती होना है। अब ज्ञानी ! यदि तुम देव हो, देव बनकर आए हो अथवा देव बनना है, तो सम्यक् परिणति रखेगा, मनुष्य है तो स्वभाव मार्दव रखेगा। जब भी कोई निर्ग्रंथ मुनि दिख जाए, ये बाद में पूछना कि कौन-से संघ के हैं, बाद में पूछना कि कितने ज्ञानी हैं। पहले जाकर नमोऽस्तु करना, चर्या करवाना। जब पाषाण की प्रतिमा में हम भगवान् को देख सकते हैं, तो निर्ग्रंथ मुनि में तुम साँचे मुनि को पहले देखो। मिट्टी का पुतला भी दिख जाए अरिहंत मुद्रा में, तो पहले उसकी वंदना करना। ज्ञानी! यदि एक गाय भी तुम्हारे घर में बंधी हो और यदि तू उसे समय पर भोजन-पानी नहीं देता है, तो तुझे कर्म का बंध होगा कि नहीं ? और निर्ग्रंथ तपोधन तेरे द्वारे से निकल रहे हों और तू कहे कि मैं तो आहार नहीं दूँगा और विशुद्धसागर बोल दें कि भैया! मात्र मेरे ही संघ को आहार देना, दूसरे को देना ही नहीं। तो भैया! जब श्रावक को बंध हो सकता है, राजा श्रेणिक से पूछो, कि कुणिक का जीव मुनिराज था। उनके लिए अंतराय अज्ञान में डलवाया, तब इतना फल भोगना पड़ा, और तुम जान कर बोलोगे तो भैया! तुम्हारी कौन-सी गति होगी ?

ऐसा लगता है कि आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी के काल में भी ऐसे लोग उत्पन्न हो चुके होंगे, तभी तो लिखा अथवा उन्हें मालूम होगा कि ऐसा भी समय आयेगा कि लोग अंतरंग में कलुषित परिणाम रखेंगे, मैं-मैं करेंगे। बस, जिन्हें अगली पर्याय में वही प्राप्त करना है, वे ही मैं-मैं करें।

"दाणं भोयण मेत्तां'' हे श्रावक ! तेरे द्वार पर निर्ग्रंथ मुनि आ जायें, तो मुनि के वेष को मत देखना। तू यों निहारना कि जब भी सिद्ध बनेंगे, तो कौन-सी मुद्रा से बनेंगे ? ज्ञानी ! कोई घोड़े की

पर्याय नहीं होगी, कोई हाथी की पर्याय नहीं होगी, कोई अन्य पर्याय नहीं होगी। यह निर्ग्रंथ पर्याय ही होगी। जब तेरे द्वार पर निर्ग्रंथ मुनि खड़े दिख जायें तो निहारना, हे स्वामी ! आज तो मैं आपके कर-पात्र में ग्रास रख पाऊँगा, लेकिन जब आप सिद्ध बन जाओगे तो हाथ ही जोड़ पाऊँगा, आहार दे नहीं पाऊँगा। हे भविष्य के सिद्ध परमेश्वर ! आपको नमोऽस्तु।

ज्ञानी ! इन मुनियों के बीच में रहता हूँ। जब प्रायश्चित आदि देता हूँ, तब गुरु हूँ, बाकी समय ये भी भावी भगवान्, निर्ग्रंथ तपोधन हैं, भविष्य के सिद्ध भगवान् हैं। इसलिये किसी मुनि की अवहेलना मत करना।

"भोयणमेत्तं दिण्णदि।" अरे श्रावक! तू तो भोजन मात्र दे रहा है।

"धण्णो हवेदि सायारो।" हे श्रावक ! तूने मुनि के हाथ पर ग्रास रखा, तू तो धन्य हो गया। यह तो कलेवा है, कलेवा। महाराज ! आप मेरे घर से यह कलेवा ले जाओ, आपकी सिद्धशिला की यात्रा मंगलमय हो। श्रावक के लिए कह रहे हैं। श्रावक धन्य हो गया।

"पत्तापत्त विसेसं"—अब तुम यह विकल्प मत पालो कि ये सच्चे हैं कि झूठे हैं। तुम तो दान देकर धन्य हो गए। महाराज की परिणति महाराज जानें। यदि उनके भाव अच्छे नहीं हैं, तो नरक/निगोद उन्हें जाना पड़ेगा। यदि दिगम्बर मुनि पिच्छि-कमण्डलु, जिनवाणी के अतिरिक्त सुई के बराबर भी परिग्रह रखता है, तो वह निगोद का पात्र होता है। यह तुम्हें नहीं सोचना, यह उन्हें सोचना है जो निर्ग्रंथ योगी हैं। भो धरती के देवता ! हमने तो आपकी पर्याय को देखा है, परिणामों को तुम देखो और भगवान् देखें। इतना सीखना, ज्यादा मत सीखना, श्रद्धा मत तोड़ना। पंचमकाल है, वैसे भी कितनी-सी श्रद्धा है भैया। मैं प्रशंसा नहीं कर पाऊँगा, तो मैं निंदा करके अपनी जीभ को खराब भी नहीं करूँगा। "जो है, सो है"। किस-किस को देखोगे, किस-किस को रोओगे। "आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं।" देखो, जानो, जाने दो।

जहाँ परिणाम लगें तो भो स्वामी! नमोऽस्तु। विपरीतता दिखे तो मध्यस्थ। लेकिन अपने मुख से हम अरिहंत वेष की निंदा नहीं करेंगे। मैं तो सभी से मिल लेता हूँ, पर मिलता किसी से भी नहीं हूँ। जगत् है जगत्। किसके बारे में क्या-क्या सोचोगे ? कुन्दकुन्द स्वामी कह रहे हैं—"सद्दंसणे किं वियारेणा" इसलिए पात्र-अपात्र के विषय में, जिनलिंग को देखकर के यह मत सोचना कि कौन पात्र है, कौन अपात्र है। ऐसा विकल्प करने से क्या लाभ ? तुम तो दान देकर धन्य हो जाओ। कुपात्र को दान मत देना, अपात्र को दान मत देना।

"आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं", आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

सुपात्र दान से स्वर्ग/मोक्ष की प्राप्ति

दिण्णदि सुपत्तदाणं, विसेसदो होदि भोगसग्गमही।
णिव्वाणसुहं कमसो, णिद्दिट्ठं जिणवरिंदेहिं ॥ 16॥

अन्वयार्थ—यदि **(सुपत्तदाणं)** सुपात्र दान **(दिण्णदि)** दिया जाता है तो **(विसेसदो)** विशेष रूप से **(भोगसग्गमही)** भोगभूमि और स्वर्ग **(होदि)** प्राप्त होता है **(कमसो)** और क्रमशः **(णिव्वाणसुहं)** निर्वाणसुख मिलता है **(जिणवरिंदेहिं)** जिनेन्द्रों ने ऐसा **(णिद्दिट्ठं)** कहा है।

सुपात्र-दान का उत्तम फल

खेत्तविसेसे काले, ववि सुवीयं फलं जहा विउलं।
होइ तहा तं जाणह पत्तविसेसेसु दाणफलं ॥ 17॥

अन्वयार्थ—**(जहा)** जैसे **(खेत्तविसेसे)** विशेष-उत्तमक्षेत्र में **(काले)** उपयुक्त काल में **(ववि)** बोया हुआ **(सुवीयं)** उत्तम बीज **(विउलं)** विपुल **(फलं)** फलवाला **(होइ)** होता है **(तहा)** उसी प्रकार **(पत्तविसेसेसु)** विशेषउत्तम पात्रों को दिए **(तं)** उस **(दाणफलं)** दान के फल को **(जाणह)** जानो।

अंतिम तीर्थेश भगवान् वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना जिनेन्द्रवाणी जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमण संस्कृति।

आचार्यप्रवर भगवान् कुन्दकुन्द स्वामी ग्रंथराज रयणसार जी में श्रमण और श्रावक इन दोनों की व्याख्या करते हुए समझा रहे हैं। वह देहरी परम धन्य है जिस पर योगी के चरण पड़ते हैं। वह श्रावक प्रबल पुण्यात्मा जीव है, जिसके द्वार पर रत्नत्रयधारी योगी खड़े हों। धरती के देवता, जिनलिंगधारी, श्रमण। जो किसी से 'दे दो' शब्द का प्रयोग नहीं करते। जिन्होंने 'दे दो' शब्द का ही विसर्जन कर दिया हो। सबसे कठिन कोई व्रत है तो वह है किसी से कुछ नहीं माँगना। सारे जगत् के संप्रदायों में सब छोड़ने के उपरांत भी माँगने की परम्परा है। राज्य पद को छोड़कर भी कोई भिन्न लिंग को धारण करके साधु के रूप में आ गया हो, लेकिन तब भी वस्त्र तो माँगेगा, बर्तन में भी माँगता ही है। दिगम्बर मुनि हाथ में ही क्यों आहार लेते हैं ? कोई रूढ़ि नहीं है। जिस मुद्रा को तीर्थंकर जैसे क्षत्रिय पुरुषों ने धारण किया हो। यह दरिद्रियों की मुद्रा नहीं है। यह तीर्थंकर भगवंतों की मुद्रा है, अरिहंतों की मुद्रा है और इस मुद्रा में कोई चाँदी का कटोरा लेकर माँगे, तो शोभा देगा

क्या ? यदि चाँदी का कटोरा लेकर माँगते हैं तो दरिद्री का वेष दिखाई देता है और सोने के बर्तन रखते हैं तो राग दिखाई देता है। दिगम्बर मुनि को ऐसी कोई वस्तु नहीं रखनी चाहिए जिसे देखकर किसी को चुराने के भाव आ जायें। पिच्छि-कमण्डलु किसी के काम नहीं आते, इसलिए दिगम्बर मुनि इनको ही रखते हैं।

महाराज न चाँदी का रखें, न सोने का। मेरे घर में आओ, मैं दे दूँगा, आप ले लेना। ओ-हो-हो! तू जब गिलास से पानी पीता है तो मुख में डालता है और तेरे जूठे बर्तनों में भोजन करें तीर्थंकर की मुद्राधारी? इसलिए तेरे बर्तनों में भोजन नहीं करना है। ध्यान रखना, जिन पात्रों से आप मुख में रखकर पानी पी चुके हो, ऐसे पात्रों से कभी साधु को आहार मत देना। यदि साधु स्वयं बर्तन रखे तो परिग्रह की वृद्धि होती है, रक्षा के भाव आयेंगे, फिर बर्तन ढोने को वाहन भी चाहिए पड़ेगा। झोपड़ी छोड़कर आए थे और वाहनों में घूमना प्रारंभ हो गया। जैन योगी किसी भी पात्र (बर्तन) को स्वीकार नहीं करता। दिगम्बर मुनि का 'कर' ही पात्र है। ये करपात्री हैं और खड़े होकर आहार लेते हैं।

ज्ञानी ! धन के राग में तन को अस्वस्थ मत कर लेना। सामंजस्य बिठाइये। रात्री में भोजन कर रहे हो खड़े-खड़े घूम-घूम करके, पता नहीं कितने जीवों की टाँगे चबा रहे हो। दिखाई दे रहा है क्या ?

वे निर्ग्रंथ तपोधन, जिन्होंने माँगने का त्याग किया है। भैया! जिनको जीवन में कभी स्वप्न में भी जैन साधु बनने के भाव आ रहे हों, तो घर की देहरी से पैर बाहर बाद में रखना, पहले चौका लगाओ, आहार देना सीखो, तो आहार लेना भी सीख लोगे। जब तुम आहार देना नहीं सीखे हो, तो आहार लेना क्या सीखोगे ? उससे सब काम करवाना, उसको समझ में आना चाहिए कि चौका लगाने में कितना श्रम होता है। अब तू साधु बनेगा तो नाटक नहीं करेगा। जिनके बाल-बच्चे होते हैं, वे झुक कर चलते हैं और जिनके संतान नहीं होती, उनका जीवन अलग ढंग का होता है। जो मुनि संघ में रहता है, उसका जीवन अलग ढँग का रहता है। जो एकल-विहारी होता है, उसका स्वच्छंदी जीवन होता है, मृगचारी जीवन रहता है। समाज का विश्वास भी उस पर रहता है जो परिवार सहित रहता है। जिसका परिवार नहीं है, उस पर कोई विश्वास नहीं करता। जब श्रमण यतिसंघ में रहता है, समुदाय में रहता है, उस साधु पर भी लोगों को विश्वास रहता है। बड़े गहरे-गहरे रहस्य हैं चरणानुयोग के। कुल-परम्परा, वंश-परम्परा देखकर ही आप शादी करते हो अपने बेटा-बेटी की। ऐसे ही, ज्ञानी ! दीक्षा लेनी हो तो गुरु-कुल की परम्परा, वंश-परम्परा देखकर ही दीक्षा लेना। मालूम, यहाँ पर भी वंश होता है। दस प्रकार की वैय्यावृत्ति है और दस प्रकार की वैय्यावृत्ति में, कुल शब्द का प्रयोग है।

दस प्रकार के साधु होते हैं।

आचार्य—जो शिक्षा-दीक्षा देते हैं। शिक्षा-दीक्षा देने का अधिकार आचार्य परमेष्ठी को है।

उपाध्याय—जो संघ के अध्यापक होते हैं। कोई गृहस्थ नहीं, मुनि महाराज। पाठक जिनको कहते हैं। उपाध्याय परमेष्ठी का कार्य है संघ के योगियों को अध्ययन-अध्यापन करवाना। वे डाँटेंगे नहीं, प्रायश्चित नहीं देंगे, मात्रमुनि संघ के लिए चारों अनुयोगों की विद्या सिखलायेंगे। परंतु ध्यान रखना, उपाध्याय वही होते हैं, जो मुनिसंघ में रहकर मुनियों को पढ़ाते हैं। अकेला-साधु उपाध्याय बनकर घूमे तो वह किसको पढ़ा रहा है, वह किस बात का उपाध्याय ? जिनवाणी की सेवा, आचार्य की सेवा, पूरे जिनशासन की सेवा। क्योंकि आचार्य पंचाचार का पालन करवा रहे हैं। उनके माध्यम से पूरे जिन शासन की रक्षा हो रही है।

साधु—चिर दीक्षित मुनि, साधु।

शैक्ष्य—जो मुनि अभिनव दीक्षित हैं। अध्ययन कार्य में लगा हुआ है, वह शैक्ष्य है।

ग्लान—कोई अस्वस्थ हैं, रोगी हैं,वे ग्लान कहलाते हैं। किसी अस्वस्थ मुनि को देखकर ग्लानि मत करना, सेवा करना। भैया जो स्वस्थ हैं, जिनको दुनियाँ पूज रही है, उनके पीछे तो दुनियाँ घूम रही है। जिनके पास कोई न हो, उनके पास तुम चले जाना। कारण समझना। भैया! बाहर का भाव भिन्न है, भीतर का भाव भिन्न है। हो सकता है कि कोई वृद्ध मुनिराज बैठे हुए हैं, कोई प्रभाव नहीं है उनका, वे भीतर के प्रभाव में लीन हों, सच्चे वीतराग भाव में लीन हों और अपन ने देखा कि इनके पास कोई भीड़ नहीं है, तो चलो अपन चलते हैं, आगे निकल चलते हैं। नहीं-नहीं। भगवान् अरिहंत की विशाल प्रतिमा को देखकर उनकी तो पूजा करना, लेकिन कोई छोटी प्रतिमा विराजमान हो तो उनको नमोऽस्तु करना मत भूल जाना, क्योंकि वह भी अरिहंत की ही प्रतिमा है। माँ! आपके चार बेटे हों, चारों एक-जैसे हैं क्या ? लेकिन माँ! आपके हैं कि नहीं ? कोई अधिक कमाता है, कोई कम कमाता है, लेकिन बेटे तो तेरे ही हैं। माँ! चारों में से एक भी अस्वस्थ होगा तो तू उसकी देखभाल करेगी कि नहीं करेगी ? ऐसे ही हे श्रावको ! ये निर्ग्रंथ तपोधन जब आपके सामने हों, आप इनके जनक-जननी बन जाना। माता-पिता बनकर इनकी सेवा करना। ये तुम्हारे बेटे हैं। जन्मजात जैसा स्वरूप होता है, **"यथाजात स्वरूपोऽहम्"।** ठीक है, अपना-अपना क्षयोपशम है, अपने-अपने क्षयोपशम के अनुसार प्रवृत्ति कर रहे हैं, लेकिन तब भी उपेक्षा के स्थान नहीं हैं। माता-पिता ही छोड़ देंगे तो संतान जियेगी कैसे ? श्रावक ही छोड़ देंगे तो श्रमणों की रक्षा करेगा कौन ? श्रमणों की रक्षा नहीं होगी तो श्रमणसंस्कृति जीवंत बचेगी कहाँ ? तीर्थंकरसंस्कृति नहीं है ये, ध्यान रखना। संतसंस्कृति नहीं है ये, ये श्रमणसंस्कृति है। श्रमण यानि मुनि। मुनियों की रक्षा ही

श्रमण संस्कृति की रक्षा है, जैनत्व की रक्षा है, दिगम्बरत्व की रक्षा है। दिगम्बरत्व की रक्षा नहीं कर सके, तो जैनशासन की रक्षा नहीं है।

णाणा जीवा णाण कम्मं, णाणाविहं हवे लद्धी।
तम्हा वयणविवादं सगपरसमएहिं वज्जिज्जो ॥१५६॥ (नियमसार)

नाना जीव हैं, नाना कर्म हैं। अपने घर में भी कम बुद्धि वाले बालक हो जाते हैं। बड़े-बड़े श्रीमंतों के घर में अर्द्धविक्षिप्त संतान होते देखी गई है। तो क्या माता-पिता उस बच्चे का ध्यान नहीं रखेंगे ? रखेंगे। जब आचार्य आचार्यपद देते हैं अपने शिष्य को तो एक ही शब्द बोलते हैं, (भगवती आराधना) बेटे ! वत्स ! जैसे जिनशासन की हमने रक्षा की है, वैसे ही आप करना और योग्यता को देखकर दीक्षा देना और कदाचित् कोई मुमुक्षु, कम बुद्धि वाला भी आ गया हो, उसका बालकवत् पालन करना, उसे हीनभावना से मत देखना। भैया ! कोटि-कोटि मुद्रायें किसी के हाथ में दे देना इतनी महत्व की बात नहीं है, जितना किसी हीन को हीन नहीं देखना, वह महत्व की बात है। जगत् में सबसे बड़ा कोई क्लेश, सबसे बड़ा कोई दुःख है, उसका नाम हीनभावना है। अपना साता का उदय चल रहा है, इसलिए समझ नहीं आता अपन को। चार रोटी तेरे बेटे की माँ ने परोसीं और तीन रोटी तूने अलग कर दीं तो असर नहीं पड़ेगा, लेकिन भैया! जिसने बनाई थीं, उससे पूछना कि स्वामी! चूल्हे में अंगुलियाँ जलाई थीं, तब बनी हैं और आपने छाँटकर एकमात्र खाई है और तीन फेंक दी हैं। तो ये तुम्हारा साता का उदय चल रहा है। जिसने बनाई हैं, उससे पूछो ? मैं ब्रह्मचारियों को समझाता रहता हूँ कि यह नाटक मत करना, भरी थाली छोड़कर मत आना। जितना आवश्यक हो, उतना परसवाना। भरी थाली छोड़कर नहीं आना। श्रावक से पूछना, उसको कितना धक्का लगता है? हिंसा का भी पाप पड़ेगा और अंतराय कर्म का बंध होगा। हिंसा का दोष इसलिए कि इतना द्रव्य फिकेगा, जीव उत्पन्न होंगे, मरेंगे। और अंतराय का बंध इसलिए, क्योंकि आपने द्रव्य को बर्बाद किया है जो किसी और के काम आता। अब तेरे जूठे को कौन ग्रहण करेगा ? इसीलिए दिगम्बर मुनि हाथ में आहार लेते हैं, कदाचित् अंतराय भी आ गया, तो इतना ही खराब होगा। हे श्रावको ! आप भी देख कर देना, एकदम से बहुत अधिक मत पटकना। कदाचित् वह द्रव्य अपथ्यभूत हुआ तो अब वे (साधु) धर्मसंकट में फँस जायेंगे कि छोड़ता हूँ तो दोष लगता है और ग्रहण करता हूँ तो अपथ्यभूत है।

ज्ञानी ! मैं आपसे कह रहा था कि कोई आपका सगा आपसे कहे कि दीक्षा लेना है तो कहना कि पहले चौका लगा लो, इसके उपरांत प्रेम से बिठालना और कहना मेरे भैया! मेरा आपसे प्रश्न है ? मैं आपके संयम में विघ्न नहीं डालूँगा, कि आप मुनि मत बनो। आप तो बनो। पर मेरी छोटी-सी एक बात है। आप तो बनकर चले जाओगे, लेकिन मेरे मन में एक टीस रहेगी, उसको

आप निकाल दो। आपको मेरे घर में ऐसी कौन-सी परेशानी है, जो आप मुनि बन रहे हो ? बोलो, क्या हमारे घर में कोई सम्पत्ति की कमी है ? अगर वह यों कहे—नहीं तात् ! नहीं माँ! मैं इसलिए साधु नहीं बन रहा हूँ कि घर में कमी है। मुझे संसार-शरीर-भोगों से विरक्ति हुई है इसलिए त्यागी बन रहा हूँ। बस मैं यही सुनना चाहता था। मेरे बेटे इतना ध्यान रखना, इस घर में कोई कमी नहीं है, यह दरिद्री की देहरी नहीं है, यह जैन श्रावक के कुल की देहरी है। मेरे कानों में यह शब्द नहीं आना चाहिए कि तुमने कहीं कुछ माँगा है। पहले माँगने का त्याग यहाँ करके जाओ, फिर कपड़ों का त्याग वहाँ कर लेना। क्योंकि माँगना जो है वह हमारे कुल को भी लजाना है और जिनशासन को भी लजाना है। जो कुछ करना हो, आप अभी मुझे बताओ। जैन साधु का हाथ माँगने के लिए नीचे हो तो तीर्थंकर अरिहंत की मुद्रा का अपमान है। हे ज्ञानियो ! यदि आपको किसी से कुछ माँगना हो तो अरिहंत की मुद्रा छोड़ दो और नहीं छोड़ना चाहते तो भीख मत माँगना कभी जीवन में। जिनमुद्रा का ध्वज गिरने मत देना।

ज्ञानियो ! जीवन दे देना, भूखे रहकर समाधि कर लेना श्रेष्ठ है, परंतु मिथ्यात्व की आराधना करके लड्डू-पेड़े खाना श्रेष्ठ नहीं है। यश के पीछे ख्याति के पीछे अरिहंत-मुद्रा का अपयश मत करवाना। विशुद्धसागर आए सागर में चातुर्मास करने, बोलें, अध्यक्ष जी! व्यवस्थाएँ कैसी हैं ? प्रचार-प्रसार कैसा करोगे ? सत्य यह है कि महाराज! कर भी दूँगा, पर अब विचार बदल गए। प्रश्न करो, क्यों ? बोले, मैं तो दिगम्बर मुनि को लेकर आया था, दिगम्बर मुनि को मैं देखना चाहता था, जो अपनी चर्या में लीन हों, आचरण में लीन हों। प्रचारक तो नेता होता है, अभिनेता होता है। जैन योगी तो आचार में लीन होता है। मुझे मालूम नहीं था कि आप जिनरूप को धारण करके भी नेता/अभिनेता पना नहीं छोड़ पाए हो, इसलिए में छला गया। यह प्रचार-प्रसार की मुद्रा नहीं है, यह पूज्य मुद्रा है। इसलिए जैनमुनि बनने के पहले माँगने का त्याग करना।

दिगम्बर मुनि के बाईस परीषहों में एक 'अयाचक' परीषह होता है।

माँगन मरण समान है, मत माँगो कोई भीख।
माँगन से मरना भला, यही सद्गुरु की सीख॥

गण—मुनियों का जो समूह है, वह गण है।

संघ—ऋषि, मुनि, यति और अनगार—यह चार प्रकार का संघ होता है। अथवा मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका—यह चार प्रकार का संघ होता है।

मनोज्ञ—जो साधु जिनशासन की प्रभावना में उद्यत हो सर्वसम्मत हो, जिसको सब मानते हों, ऐसे साधु का नाम है मनोज्ञ।

तपस्वी—मासोपवास आदि अनुष्ठान करने वाले साधु तपस्वी हैं।

कुल—दीक्षाचार्य के शिष्यसमुदाय को कुल कहते हैं।

ये दस प्रकार के साधु हैं और दस प्रकार के साधु की वैय्यावृत्य करना यह दस प्रकार की वैय्यावृत्य है।

भर्तृहरी, आचार्य शुभचंद्र स्वामी (जिन्होंने 'ज्ञानार्णव' ग्रंथ लिखा) के सगे भाई थे। उन्होंने 'वैराग्य शतक' में लिखा—

"कदा स्वयंभू भविष्यामि पाणिपात्र दिगम्बराः"

हे स्वयंभू ! वह दिन कब आयेगा जब मैं भी वस्त्र उतारकर पाणिपात्र में आहार ग्रहण करूँ? यानि सारे विश्व में सर्वोच्च कोई योगी है, तो उसका नाम है—पाणिपात्र दिगम्बर योगी।

हे श्रावक! निर्ग्रंथ योगी आपके घर में पधारें तो माँ बन जाना, पिता बन जाना। बेटे को माँ डाँट-डाँट कर खिलाती है, पर ध्यान रखती है कि गलत न खा ले।

'दिण्णदि सुपत्तदाणं'—जो सुपात्र को दान देता है।

'विसेसदो होदि भोगसग्गमही'—उस जीव को अनेक प्रकार की भोगभूमि और सुख प्राप्त होता है। भैया! यदि आपको संसार के सुख ही चाहिए, तो सुपात्रों को दान दो। भैया! सत्य है, जितना आदमी देता है, उतना आता है। कुए का पानी निकालो तो स्वच्छ है, अन्यथा सड़ना ही है उसको। जिनके घर में संपत्ति बढ़ जाए, तो खूब दान करो। यदि लाभांतराय कर्म का क्षयोपशम है, तो समाप्त होने वाला नहीं है। धन का दान और विद्या का दान, ये तो उलीचो भर-भरके।

सरस्वती के भण्डार की, बड़ी अपूरब बात।
ज्यों खर्चे त्यों-त्यों बढ़े, बिन खर्चे घट जात॥

सही बताऊँ, हम आपको प्रवचन नहीं दे रहे, आप हमें प्रवचन सिखा रहे हो। दूसरों को पढ़ाओगे तो स्वयं पढ़ना पड़ेगा कि नहीं पढ़ना पड़ेगा? इतना आप लोग सुनने न बैठो, तो इतना चिंतवन बनेगा क्या ? आपका बड़ा उपकार है हमारे ऊपर जो इतना चिंतवन बनवा रहे हो।

'णिव्वाणसुहं कमसो'—और क्रम से निर्वाणसुख को प्राप्त होता है।

'णिद्दिट्ठं जिणवरिंदेहिं'—ऐसा भगवान जिनेन्द्रदेव ने कहा है। जो पात्र को दान देता है, वह भोगभूमि, स्वर्ग एवं क्रम से मोक्ष को प्राप्त करता है। कैसे ?

'खेत्तविसेसे काले ववित सुवीयं'—जैसे जितनी सुंदर उर्वरा भूमि होगी, उतना अच्छा बीज अंकुरित होता है

'विउलं फलं'—विपुल धन्य—धान्य उत्पन्न होता है ऐसे ही

"तं जाणह पत्तविसेसेसु दाणफलं"

सुपात्र को दान दोगे तो उत्तम फल मिलेगा। कुपात्र को दान दोगे तो कुभोगभूमि जाओगे, तो पता कितने बड़े कान होंगे? एक कान बिछा लोगे और एक कान ओढ़ लोगे। ऐसा बनना है क्या? तो कुलिंगियों को दान दो। ज्ञानी! ध्यान रखना, सुपात्र को दान दोगे, सम्यग्दृष्टि देगा तो नियम से स्वर्ग जाएगा और मिथ्यादृष्टि देगा तो भोगभूमि जायेगा। ज्ञानी ! आहार दे नहीं पाओ तो देख लेना, देख न पाओ तो अनुमोदना कर लेना, लेकिन कभी भी जिनलिंग के प्रति अशुभ भाव नहीं लाना।

"**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं**", आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

सात क्षेत्रों में दिये गये दान का फल

इह णिय-सुवित्त-वीयं, जो ववदि जिणुत्त-सत्त-खेत्तेसु।
सो तिहुवण-रज्ज फलं, भुंजदि कल्लाण-पंचफलं ॥ 18॥

अन्वयार्थ—(जो) जो पुरुष **(जिणुत्त)** जिनेन्द्रदेव द्वारा कहे गये **(सत्त-खेत्तेसु)** सप्त क्षेत्रों में **(णिय-सुवित्त वीयं)** अपने नीतिपूर्वक श्रेष्ठ धनरूपी बीज को **(ववदि)** बोता है **(सो)** वह **(इह)** इसलोक में **(तिहुवण-रज्ज-फलं)** तीन भुवनों के राज्य रूपी फल को और **(कल्लाण पंचफलं)** पंचकल्याणक रूप फल को **(भुंजदि)** भोगता है।

संसारिक सुख भी सुपात्र दान के बिना नहीं

मादु-पिदु-पुत्त-मित्तं, कलत्त-धण-धण्ण-वत्थु-वाहण-विहवं।
संसार-सार-सोक्खं, सव्वं जाणह सुपत्त-दाणफलं॥ 19॥

अन्वयार्थ—(मादु-पिदु-पुत्त-मित्तं) माता-पिता-पुत्र-मित्र **(कलत्तं)** स्त्री **(धण)** गाय-भैंस आदि पशु **(धण्ण)** धान्य अनाज **(वत्थु)** मकान **(वाहण)** वाहन **(विहवं)** संपत्ति आभूषण आदि वैभव **(संसार-सार-सोक्खं)** संसार के उत्तमोत्तम सुख ये **(सव्वं)** सब **(सुपत्त-दाणफलं)** सुपात्र को दिये दान का फल **(जाणह)** जानो।

सुपात्र दान से चक्रवर्ती का वैभव

सत्तंगरज्ज-णवणिहि-भंडार सडंगबल-चउद्दस रयणं।
छण्णवदि सहस्सित्थी, विहवं जाणह सुपत्त-दाणफलं ॥ 20॥

अन्वयार्थ—(सत्तंग-रज्ज) सप्तांग राज्य **(णवणिहि)** नवनिधी **(भंडार)** कोष **(सडंगबल)** छह प्रकार की सेना **(चउद्दसरयणं)** चौदह रत्न **(छण्णवदि सहस्सित्थी)** छियानवें हजार स्त्रियाँ और **(विहवं)** यह सब **(सुपत्त दाणफलं)** सुपात्र दान का फल **(जाणह)** जानो।

भव्य बंधुओ!

अंतिम तीर्थेश भगवान् वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना, जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञशासन नमोऽस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति। आचार्यप्रवर भगवान् कुन्दकुन्द स्वामी ग्रंथराज

रयणसार जी में श्रमण और श्रावक उभय धर्मों का व्याख्यान करते हुए समझा रहे हैं— राग की सत्ता में जो धन का अर्जन किया है, कम-से-कम इतना ध्यान रखना, जो कमाने में आपने पाप किया है, उसके व्यय में तो पाप नहीं करना।

भो ज्ञानी ! धन के कमाने में तो तूने पाप किया ही है, कम-से-कम व्यय करने में तो विवेक रखना। एक ओर कमाने में असत्याचरण किया, आर्त्त-रौद्र ध्यान किया। जो पाप प्रवृत्ति पूर्वक कमाया है, उसे पुण्य में भी तो लगा सकता था। अर्जन करने में पाप किया और उस द्रव्य का उपभोग भी तूने किया तो अभक्ष्य के सेवन में किया, अनाचार प्रवृत्ति में किया। तुझे मालूम नहीं था कि पापास्रव कितना विशाल हो रहा है। जब द्रव्य कमा रहे थे, उस समय आपने अपने देह का ध्यान नहीं दिया, खून पसीना एक कर दिया। जब इतनी मेहनत से कमाया है, तो कुछ सदुपयोग तो कर लेते। दान देने के भाव आए, परंतु वहाँ पर भी कृष्ण और नील लेश्या खड़ी हो गई। मैं सबकुछ लुटाने को तैयार हूँ, परंतु मेरा नाम होना चाहिए और नाम के राग में इतना लीन हो गया कि जहाँ दान देने गया था उसपर भी ध्यान नहीं दिया कि, ये दान किसमें जाएगा ? मेरे द्रव्य से कहीं लोग बॉटल तो नहीं पी रहे हैं ? जिनके घर में फूटी कौड़ी नहीं थी, वे महलों में रह रहे हैं, आपने दान इसलिए नहीं दिया था। आपने दान इसलिए दिया था कि इससे जिनशासन की प्रभावना हो। रागियों के घर बनाने के लिए दान नहीं दिया था। रागियों की विषयों की वृद्धि के लिए दान नहीं दिया था। राग की हानि हो, इसलिए दान दिया था। जिससे मिथ्यात्व की वृद्धि हो, अनाचार की वृद्धि हो, ऐसे स्थान पर दान देना तो दूर, खड़ा होना भी पाप है।

आचार्यभगवान् कह रहे हैं कि निर्ग्रंथ योगी को भी यदि आप दान दे रहे हो तो उस मुनि को भी आप निहार लो। जब मुनि को निहारने की बात कर रहे हैं, तो संसार के लोग जो झोली फैलाए घूम रहे हैं, उन्हें भी निहार लेना कि मेरे द्रव्य से ये निजद्रव्य का सेवन करके दिनभर सो रहे हैं, टी॰ वी॰ देख रहे हैं, मोबाइल फोन चल रहे हैं, ऐसा दिया गया तेरा दान भी कुपात्रभूत हो गया। जब द्रव्य बढ़ जाए और लगे कि इस द्रव्य का क्या करूँ ? तो अपने हाथ से अरिहंत की प्रतिमा विराजमान कर देना। लेकिन श्री जी की स्थापना भी विवेक से करना। विवेक को तुम लेकर गए थे उसने तीन लाख दिलवाए हैं, वे दो लाख कहाँ जायेंगे ? तीर्थंकर जिनेन्द्र की प्रतिमा को लेने जाने वाले प्रतिष्ठाचार्य भी कमीशन ले लेते हैं। जो कमीशन लिया है, उससे श्री जी आयेंगे कि उस ज्ञानी के पंचेन्द्रिय विषय सेवन होंगे ? जो विषय सेवन में जा रहा है, वह द्रव्य तो पाप में चला गया। द्रव्य देना तो ऐसे स्थान पर देना जिससे जिनशासन, वीतरागशासन की ध्वजा फहराती रहे। तूने पाप से कमाया हो और पाप में ही चला गया, तो ज्ञानी ! तेरी पर्याय भी गई, द्रव्य भी गया, सबकुछ गया। जिस विद्वान् को लेकर जाओ, उससे स्पष्ट पूछ लेना, पण्डित जी ! आपको कितना चाहिए है, हम देने को तैयार हैं। लेकिन श्री जी को लेने के बाद मेरे भाव विकृत न हो जायें। मैं भावों की विशुद्धि के लिए अरिहंत की प्रतिमा स्थापित कर रहा हूँ, भावों की अशुद्धि के लिए नहीं कर रहा हूँ।

जीवन में ध्यान रखना, किसी विद्वान् को भी बुलाना तो विद्वान् को ही बुलाना, दामाद को नहीं बुलाना। क्योंकि जब दामाद आपकी कन्या देख जाता है, उस समय तो कहता है कि बहुत अच्छा, सब बढ़िया है, कुछ (दहेज) नहीं चाहिए मुझे। और जिस दिन निश्चित हो गया, तो कैसे सताता है? एक-एक ग्रास पर एक-एक थाली नोट चाहिए उसको। यह दामादवृत्ति है, जो दम ले रहा है। ऐसे-ही प्रतिष्ठाचार्य, त्यागी-व्रती, विद्वान् किसी को भी बुला लो। आपने पूछा, पंडित जी! कितना न्यौछावर देना पड़ेगा ? उस समय पंडित जी क्या बोलेंगे—नहीं, हम तो कुछ लेते ही नहीं हैं। जैसे ही मंच पर आ गए, फिर देखो क्या नाटक होते हैं। मैंने विद्वान् बुलाया था, दामाद नहीं बुलाया था। व्यापार की दृष्टि से आप प्रतिष्ठा कार्य करते हो तो पहले ही स्पष्ट बोल दो, जिससे हमारी समाज को टेंशन न हो। और धर्म की दृष्टि से करने आए हो तो फिर भीख माँगने की आवश्यकता नहीं है। ये बिना कमाने वालों को पता नहीं होता है, कि कमाया कैसे जाता है ? और खर्चों पर खर्च करवा देते हैं। जो योगी, जो त्यागी समाज के धन का व्यर्थ में व्यय करवाता है, उसे तीव्र अंतराय कर्म का आस्रव-बंध होता है। क्यों? द्रव्य किसी पात्र के उदर में जाता तो वह धर्म्य ध्यान करता। यदि श्रावक वह द्रव्य तीर्थभूमि में लगाता, अरिहंत की प्रतिमा में लगाता, तो कोटि-कोटि जीव वन्दना करते और सम्यक्त्व प्राप्त करके निर्वाण को प्राप्त करते, श्रावक का वह द्रव्य निर्वाण का हेतु बनता। जिनवाणी में लगाता तो अज्ञान का विनाश होता। आपने क्या किया? ढोल-धमाके में इतना नष्ट करवा दिया। बाजे बजाने वाले माँसाहारियों के घर में गया है, उस द्रव्य का प्रयोग क्या होगा ? जिनशासन की प्रभावना के लिए जब सौधर्म इन्द्र, स्वर्ग से आकर, प्रभु के चरणों में नाच सकता है, देव ऐरावत हाथी बनकर आ सकते हैं, तो हमारे युवा भी दिव्यघोष में जाकर जिनशासन की प्रभावना कर सकते हैं। हम माँसाहारियों को द्रव्य देकर उनकी अभक्ष्य सेवन की पुष्टि क्यों करें? जो हो चुका है, उसकी आलोचना कर लेना और भविष्य में नहीं करेंगे, इस पर विचार कर लेना।

ज्ञानियो ! अपने ही हाथ से हम अरिहंत की अवहेलना कर लेते हैं। यदि नगर में कोई बड़ा कार्यक्रम होना हो तो सूचना देने के लिए आपने भगवान् की बड़ी-बड़ी फोटो पेपर में छपवा दीं, वे पेपर नालियों में पड़े मिलते हैं। हमारे यहाँ तीर्थंकर के चित्रों को ऐसे धूमिल नहीं किया जाता है। विवेक से काम करोगे तो समझ में आयेगा। अवहेलना की है कि नहीं ? प्रभावना का अर्थ यह अंध प्रभावना नहीं है, प्रभावना का अर्थ है जिनशासन की रक्षा करना। हमारे द्वारा जिनशासन का घात हो जाए, यह प्रभावना कैसी ? जब तक बाँस नहीं कटेंगे, तक तक कागज कहाँ से आएगा ? मैं मानता हूँ कि बिना सावद्य के जिनशासन की प्रभावना नहीं हो सकती है। हे योगियो ! जिसके निमित्त से कोई सारभूत घटित नहीं होता है, मात्र मानकषाय ही आती है, ऐसे पत्र-पत्रिकाओं से

मात्र समाज के द्रव्य से समाज को कषाय ही परोसी जाती है। अरे ज्ञानियो ! यह समाज के द्रव्य को तुम नष्ट कर रहे हो। तीर्थंकर जो बनते हैं, जैनागम में लिखा है, वे तीव्रतम, घोर-घोर, दया परिणामों से बनते हैं और उनकी भावना क्या रहती है—

सम्पूजकानां प्रतिपालकानां, यतीन्द्र सामान्य तपोधनानां ।
देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञः, करोतु शांतिं भगवान् जिनेन्द्रः ॥

प्राणीमात्र के प्रति घोर करुणा दृष्टि होती है, ऐसा जीव तीर्थंकरप्रकृति का बंध करता है। हर जीव के प्रति उनकी कल्याण दृष्टि होती है। क्या तीर्थंकर भगवान् के द्वारा जगत्कल्याण का चिंतवन करने से जगत्कल्याण होता है ? जगत् का कल्याण तो स्व उपादान की योग्यता से होगा, लेकिन कल्याण की भावना भाने वाले के पंचकल्याणक होते हैं कि नहीं ? भैया, इसलिए भावना तो आज से भाना प्रारंभ कर देना। स्व की उपादान प्रवृत्ति को सम्हालना, यह स्व सापेक्ष है और पर को सम्हालना पर सापेक्ष है। भैया! द्रव्य बढ़ जाए, इसका तात्पर्य यह नहीं है कि कुछ भी करने लग जाओ। जिनालय में जाकर दान तो करना, लेकिन पता कर लेना कि इसका क्या होगा ? श्री जी के पूजन अभिषेक आदि में लगेगा कि मंदिर में रागियों के लिए पंखे में लगेगा? तीनलोक के नाथ के चरणों में आकर, अरिहंत के चरणों में आकर भी पाप में लग रहा है। जिनका पाप का द्रव्य होगा, वे मन्दिरों में पंखे ही लगवायेंगे। एकाध घंटे आराधना करता है, वहाँ भी उसको सुख चाहिए। स्पर्श इन्द्रिय का भोग भोग रहा है। वस्तुस्वरूप समझो, आस्रव की धारा और निरास्रव की धारा पर चर्चा करो। घर में धन बढ़ जाए तो उसे ख्याति-पूजा, लाभ के राग में यों ही व्यय मत कर देना। अब दान देना बंद मत कर देना। दान तीर्थ है। यदि तीर्थंकर ऋषभदेव ने धर्मतीर्थ चलाया है, तो राजा श्रेयांश ने दानतीर्थ चलाया है। दान तो देना, लेकिन कुन्दकुन्द स्वामी कह रहे हैं—पात्र को देखकर देना कि इसका प्रयोग क्या हो रहा है ?

जीव जो पुण्य पूर्वभव से कमा कर लाया है, उसे आजीविका में भी लगा रहा है, तो ऐसी आजीविका करना जिसमें अल्पहिंसा होती है। जिसने ईंट के भट्टे लगाए हों, जिसने हलवाई की दुकान की हो, कीटनाशक औषधियाँ बेचता हो, आटाचक्की लगाई हो, कुछ दिन तो दिखता है कि फलित हो रहा है, परंतु जितना पुण्य था, जल्दी निकल गया और कुछ दिन बाद मालूम चला कि कुछ नहीं बचा है। आप जाकर देख लो, जिन-जिन की मील लगी थीं, सब बंद हो गई हैं। दस-बीस साल से आगे पाप की कमाई चलती नहीं है। जो आज महक रहे हैं और समाज के द्रव्य को खाकर चहक रहे हैं कि मैं तो ज्ञानी हूँ, त्यागी हूँ। ज्ञानी! सुनो, अगरबत्ती को जलते देख कर आओ। अगरबत्ती जलती है, सुगंध बराबर देती है, लेकिन उसके नीचे देखकर आओ क्या हो रहा है ? ऐसे-ही जो बिना साधना किए आश्रमों में पड़े-पड़े खा रहे हैं, आनंद लूट रहे हैं ज्ञानी! धर्म

के नाम पर समाज का खाओगे, तो विश्वास रखना नरक ही जाओगे। अगरबत्ती को देखकर आओ। जितना मसाला भरा है, उतनी सुगंध तो आएगी-ही-आएगी, लेकिन नीचे राख हो रही है। ऐसे ही हे ज्ञानी ! पुण्य को राख मत कर लेना। यदि आपके अंदर किंचित् भी दया है, तो ऐसे जीवों को एकांत में समझा दिया करो। वे समझें या न समझें पर आप तो अपना कर्तव्य करो। कार्तिकेय स्वामी के पिता ने घोर पाप कर लिया। अपनी बेटी को ही अपनी पत्नी बना लिया। कार्तिकेय ने पूछा—माँ, किसी ने समझाया नहीं क्या ? तो माँ ! ने कहा! बेटे-संसार तो ऐसा है-"जी के राज में रहियो, ऊकी वैसी कहियो। ऊँट बिलैया लै गई, हाँजूहाँ जू कहियो।"

ज्ञानी ! कब तक हाँजूहाँ जू कहोगे ? सत्य तो सत्य होगा। बेटे। मंत्री, संत्री ये तो सब राजा के अनुसार चलते हैं। निर्ग्रंथ तपोधन ने कहा था, राजन! माँ, बहन, बेटी छोड़कर राज्य में सबकुछ राजा का होता है। राजा ने मुनिराज को अनादर करके भगा दिया था। सत्य समझाने जाओगे तो तुम्हारा अनादर भी होगा। मुझे तुम्हारा अनादर भी स्वीकार है। जिनवाणी के प्रचार के लिए मुझे मेरा सम्मान नहीं चाहिए, परंतु जिनवाणी का अपमान नहीं देख पायेंगे। इस देह का क्या सम्मान? यह तो चर्म-चादर है। सब एक दिन अग्नि पर रखे जायेंगे। जब इसे जलाना ही है, तो जब तक इसके साथ अपन बैठे हुए हैं, तब तक जिनवाणी को जलते नहीं देख पायेंगे। जिनवाणी तो जो है, सो है।

दान तो देना, परंतु विवेक का ध्यान रखना। आपने पैसा पाप करके कमाया है, परंतु उससे पुण्य कमाने का भी आपके पास माध्यम है। इस बात को आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी ने बड़े अच्छे से लिखा है।

जो गृहस्थी के कार्य में आपने पाँच-पाप संग्रहीत किए हैं, वह कैसे दूर होंगे? जैसे किसी का वस्त्र रुधिर से गंदा हो जाए, तो वह रुधिर से साफ नहीं होगा। पाप की कमाई पाप में लगाओगे तो पुण्य नहीं मिलेगा। खून से भीगे वस्त्र को साफ करना चाहते हो तो पानी चाहिए। ऐसे ही गृहस्थी में किए गए पापों को धोने के लिए कोई पानी है तो वह अतिथियों के चरणों की पूजा है। परंतु अतिथि की पहचान कर लेना।

ज्ञानी ! दान को इन सात क्षेत्रों में लगाना, क्योंकि यही उत्तम भूमि के समान है। उत्तम भूमि में डाला गया बीज अनन्तगुणा हो जाता है।

जिनबिम्बं जिनागारं जिनयात्रा महोत्सवं।
जिनतीर्थं जिनागमं जिनायतनानि सप्तधा॥

हे ज्ञानी! यदि तू संसारिक सुख/वैभव को ही चाहता है, तो वह भी सुपात्र दान के बिना मिलने वाला नहीं है। संसार में माता-पिता, भाई, मित्र, पत्नी आदि का सुख भी अच्छे पात्र को दान

देने से ही मिलता है। यहाँ तक कि गाय, हाथी, घोड़ा आदि पशु, भवन, वाहन, संपत्ति आदि का सुख भी उत्तम पात्र को दिये गये दान का ही फल है।

ज्ञानी ! दान जिन्होंने सर्वोत्तम पात्र को (निर्ग्रंथ तपोधन को) दिया, उन्होंने चक्रवर्ती पद को प्राप्त किया। बिना सुपात्र दान के उच्च पद मिलने वाले नहीं हैं। जीवन में मेहनत से कमाया धन हमेशा पात्र को देखकर ही देना। ऐसा नहीं कि कोई भी आ गया तो दे दिया। कुपात्र को दिया गया दान! ज्ञानी तेरे लिए कुगति का ही कारण बनेगा।

"आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं", आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

सकल सुखों की प्राप्ति सुपात्र-दान का फल

सुकुल-सुरूव-सुलक्खण-सुमदि-सुसिक्खा-सुसील-सुगुण सुचरितं।
सयलं सुहाणुभवणं, विहवं जाणह सुपत्तदाणफलं॥ 21॥

अन्वयार्थ—(सुकुल) उत्तमकुल **(सुरूव)** उत्तम रूप **(सुलक्खण)** उत्तम लक्षण **(सुमदि)** उत्तम बुद्धि **(सुसिक्खा)** उत्तम शिक्षा **(सुसील)** उत्तम स्वभाव **(सुगुण)** उत्तम गुण **(सुचरितं)** उत्तम चारित्र **(सयलं)** सकल **(सुहाणुभवणं)** सुखों का अनुभव और **(विहवं)** वैभव-यह सब **(सुपत्तदाणफलं)** सुपात्र-दान का फल **(जाणह)** जानो।

आहारदान के बाद बचे शेषान्न का महत्व

जो मुणिभुत्तवसेसं, भुञ्जइ सो भुञ्जदे जिणुद्दिट्ठं।
संसार सार सोक्खं, कमसो णिव्वाणवर सोक्खं॥ 22॥

अन्वयार्थ—(जो) जो भव्य जीव **(मुणिभुत्तवसेसं)** मुनि के आहार के पश्चात् अवशिष्ट अन्न को प्रसाद मानकर **(भुञ्जइ)** खाता है **(सो)** वह **(संसार सार सोक्खं)** संसार के सारभूत सुखों को और **(कमसो)** क्रमशः **(णिव्वाणवर सोक्खं)** मोक्ष के उत्तम सुख को **(भुञ्जए)** भोगता है—ऐसा **(जिणुद्दिट्ठं)** जिनेन्द्रदेव ने कहा है।

आहारदान में विवेक

सीदुण्ह-वाय-पिउलं, सिलेसिम्मं तह परिसमं वाहिं।
काय किलेसुववासं, जाणिज्चा दिण्णदे दाणं ॥23॥

अन्वयार्थ—(सीदुण्ह) शीत या उष्णकाल **(वाय-पिउलं, सिले सिम्मं)** मुनि की वात-पित्त या कफ प्रधान प्रकृति **(परिसमं)** परिश्रम **(तह)** तथा **(वाहिं)** व्याधि **(कायकिलेसं)** कायक्लेश तप और **(उववासं)** उपवास **(जाणिज्चा)** जानकर **(दाणं)** दान **(दिण्णदे)** दिया जाता है।

अंतिम तीर्थेश भगवान् वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना, जिनेन्द्रवाणी जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञशासन, नमोऽस्तु शासन जयवन्त हो। जयवन्त हो वीतराग श्रमणसंस्कृति। आचार्यप्रवर कुन्दकुन्द स्वामी ग्रन्थराज रयणसार में श्रावक और श्रमण दोनों धर्मों की व्याख्या करते हुए समझा रहे हैं।

भैया ! जीवन में सरलता तो होनी चाहिए। सरलता ही आनंद है। बच्चे के साथ बच्चा बनो, बूढ़े के साथ बूढ़े बनो, ज्ञानी के साथ ज्ञानी बनो, अपने आप में सरल रहो, जीवन कितना-सा?

प्रोफेसर के साथ प्रोफेसर एवं विद्यार्थी के साथ विद्यार्थी बनो। बहुत सारे लोग मेरे पास आए, महाराज ! थोड़े बदल जाओ ! नहीं, भैया ! जैसे हैं, वैसे ही रहने दो। जीवन में सरलता होना चाहिए, लेकिन साधना में कठोरता होना चाहिए, स्वभाव में सरलता होना चाहिए। ज्ञानियो ! जीवन में इतना ध्यान रखना कि जितने सम्यक्त्व वर्धक साधन मिलें, उन्हें कभी नहीं छोड़ना। अधिक-से-अधिक फल की प्राप्ति होती है। अंधघोटक न्याय का ध्यान रखना। एक बार एक धनहीन पुरुष के पास जीवनयापन का एकमात्र साधन घोड़ा था। कर्मोदय से घोड़े के नेत्रों की ज्योति एकाएक मंद होती गई, वह वैद्य के यहाँ गया। पर नियोग ऐसा बना कि वैद्य जी बाहर गये हुए थे। वैद्य के पुत्र से घोड़े के स्वामी ने कहा—वत्स ! मेरे घोड़े के नेत्रों में अंजनशलाका लगा दो। वह कहता है कि मुझे ज्ञान नहीं है। धनहीन पुरुष अवश्य था, परन्तु प्रज्ञाहीन नहीं था। उसने कहा—एक-एक शलाका लगा दो, कोई-न-कोई शलाका कार्यकारी हो सकती है। फिर वह एक-एक अंजन लगाता गया-लगाता गया और एक ऐसी शलाका अंजन की फँस गई कि घोड़े की ज्योति वापस आ गई। यह है 'अंध घोटक न्याय'। हजारों मंदिर हैं, हजारों प्रतिमाएँ हैं, सभी की वंदना करना, क्या पता कौन-सी प्रतिमा देखकर तेरी भीतर की आँख खुल जाए और सम्यग्दर्शन हो जाए। ऐसा नहीं करना कि मानस्तंभ के दर्शन करके धीरे से खिसक गए। मानस्तंभ के भी करना, ऊपर बाहुवली स्वामी के भी करना, चंदाप्रभुस्वामी, आदिनाथ स्वामी, नेमिनाथ स्वामी के भी करना, पता नहीं कौन-से नाथ तेरे अंदर के नाथ को जगा दें ?

पूजा, तीर्थयात्रा, तीर्थभूमि, अतिशय भूमि, सिद्धभूमि, पंचकल्याणक भूमि की वंदना करने जाना, धन को लगाना।

पात्रदत्ति—उत्तम, मध्यम, जघन्य इन तीनों पात्रों को दान देना, यह पात्रदत्ति है।

दयादत्ति—कोई दीन-हीन दरिद्र है, उसको दया करके भोजन आदि करा देना, यह दयादत्ति है।

समदत्ति—इस पर ध्यान दो। जैनसमाज को बहुत ध्यान देने की आवश्यकता है इस पर। भैया ! इस बात को भूल जाओ कि दिगम्बरों के पास पैसा नहीं है। हम लोग गरीब नहीं हैं। देश में जैनियों में सर्वाधिक कोई समाज है तो दिगम्बर जैन समाज है। इतना सीख लो कि समदत्ति क्या कह रही है ? कोई नेता आ जाए तो ले जाए, डाका डल जाए तो डल जाए, कीड़े लग जाएँ, लेकिन भैया ! सुनो, वह भाषा निकल जाना चाहिए कि लोग कहें श्वानवृत्ति। मैंने देखा आँखों से और आपने भी देखा होगा। कौवा भोजन करता है तो काँव-काँव करके सबको इकट्ठा कर लेता है। श्वान यदि चार रोटी उठा लेगा, खाते नहीं बनेंगी तो गड्डा करके गाड़ देता है। बाद में

उखाड़ता है। उसको इतना याद रहता है। बहुत तेज क्षयोपशम होता है। चोरों को ढूँढ़ने के लिये उसीका तो प्रयोग करते हो आप। भैया ! समदत्ति कह रही है कि श्वानवृत्ति नहीं रखना। यदि हमारी समाज का कोई गरीब परिवार है और वह भीख माँगने जाए दूसरे के द्वार पर, यह जैनसमाज की हँसी नहीं होनी चाहिए। उसको अपने समान कर देना, बराबर कर लेना, इसका नाम है समदत्ति। कम-से-कम तुम कुछ दे न पाओ तो गरीब परिवारों को एक दिन समय ही दे दो, उनके सुख-दु:ख को पूछ ही लो, तो भैया ! आधा दु:ख तो दूर वैसे ही हो जाता है। आज दु:खियों के दु:ख सुननेवाले नहीं हैं। धन देने वाले मिल जायेंगे, पर दु:ख सुनने वाले नहीं मिलेंगे। अपने साधर्मी को अपने बराबर कर लेना, इसका नाम है समदत्ति। और अंतिम है—अनुवयदत्ति। अनुवयदत्ति का तात्पर्य है न तेरा, न मेरा, सारा झूठा झमेला। सब छोड़कर चले जाना, दिगम्बर मुनि बन जाना। ये सात स्थान हैं, इन सात क्षेत्रों में दान देना चाहिए। जो सात स्थानों में दान देगा, तो सात परम स्थानों की प्राप्ति होती है।

सज्जाति: सद्गृहस्थ च पारिब्राजम सुरेन्द्रता।
साम्राज्यं परंमार्हन्त्थं परं निर्वाणमित्यपि।।

सज्जातित्व—पहला परम स्थान, उच्च कुल की प्राप्ति होती है। दूसरा **सद्गृहस्थत्व,** अपने गृहस्थाचार का पवित्र पालन करना। तीसरा स्थान जब सद्गृहस्थ हो गया तो **प्रवज्या।** देखो, मार्ग यह है, गृहस्थी में मरना अच्छी बात नहीं है। गृहस्थ धर्म का पालन करने के उपरांत **प्रावज्यत्व** यानि दीक्षा लेना। जैनेश्वरी दीक्षा, वीर दीक्षा, निर्वाण दीक्षा को प्राप्त होना, यह तीसरा परम स्थान है। प्रावज्यत्व का फल **स्वर्गत्व** होगा, स्वर्ग में इन्द्र बनेगा। देखो ! पात्रदान का फल तो देखो। सुरेन्द्र हुआ, वहाँ से च्युत हुआ, साम्राज्य, **चक्रवर्तित्व** पद को प्राप्त किया और फिर मुनि बनकर अरिहंत पद को प्राप्त करेगा। अगला परमस्थान **अरिहंत** पद है। अंतिम परम स्थान का नाम अशरीरी सिद्ध परमात्मा है। जो सात क्षेत्रों में दान देता है, वह सात परम स्थानों को प्राप्त होता है।

माँ ! 'भक्ते सुन्दर रूपं।' दूसरे के कलेवर को चिपकाकर कोई सुन्दर नहीं होता। ये पावडर, ये क्रीम। हे ज्ञानियो ! यदि पर के कलेवर को चिपकाने से सुन्दर बनते होते, तो पता नहीं कितने सुन्दर हो गए होते। काला कलूटा आदमी अच्छे से अच्छा क्रीम-पावडर भी लगा ले तो विदूषक (जोकर) सा लगता है, लोग हँसते हैं। हे ज्ञानी ! सुनो,

'कोयला होय न ऊजरो, सौ मन साबुन लगाओ'

आप तो सौ मन साबुन लगा देना और कोयले को साफ करके दिखा देना। ज्ञानी ! कोयला काला ही रहेगा। ऐसे ही आप ये दूसरे के कलेवर को लपेट कर बैठ भी गए तो तुम गोरे नहीं हो

जाओगे। सबको पता है कि तुम मायाचारी करके आए हो। यदि सुन्दर रूप चाहिए है तो समंतभद्र स्वामी कह रहे हैं कि जो भक्ति करता है, उसे सुन्दर रूप मिलता है। जितने असुन्दर रूप वाले हैं, बेचारे भगवान से दूर भागे होंगे। यदि सुन्दर रूप चाहिए है, तो भगवान् की भक्ति करो। जो तपस्वियों का कीर्तन करता है, स्तुति करता है, उसकी ख्याति अपने-आप फैल जाती है। तीर्थ की वंदना करो तो बाद में फल मिलता है और निर्ग्रंथों की वंदना करो तो तुरंत फल मिलता है। साधु के चरणों में आते ही यश फैल जाता है। यह आगम का वचन है। यदि यश भी चाहिए तो गुरुओं की भक्ति करो।

सुकुल-श्रेष्ठ कुल, सुरूव-श्रेष्ठ गुण/रूप, सुलक्षण श्रेष्ठ, सुमदि-श्रेष्ठ बुद्धि, उत्तम शिक्षा, सुशील, उत्तम स्वभाव, सुगुण, श्रेष्ठ चारित्र, सकल सुखों का अनुभव, वैभव। जो सुपात्र को दान देता है, उसे ये सब फल मिलते हैं। जिस घर में मुनि के आहार हुए, वह पूरी भोजनशाला, पूरा भोजन अमृततुल्य हो गया है। मुनि आहार के बाद अवशेष सामग्री का जो सेवन करता है, वह स्वर्गसुख और निर्वाणसुख को प्राप्त होता है। कैसे आहार देना ? जब मुनिराज चौके में पहुँचे तो माँ बन जाना-ध्यान रखना। ठण्ड का मौसम चल रहा है, आप कह रहे हैं महाराज ! ठण्डाई ले लो। नहीं, विवेक से कार्य करना। गर्मी का मौसम है, महाराज ! उकाली ले लो। नहीं, विवेक से कार्य करना। ध्यान रखना कि मौसम कौन-सा है। वात की वृद्धि न हो जाए, पित्त न भड़क जाए, कफ न हो जाए, इसका ध्यान रखें। वही द्रव्य दें जो उनके स्वाध्याय व तप में वृद्धि करे। ऐसा मत करना कि हमें तो यही सामग्री देनी है। यह भी ध्यान रखना कि कौन से साधु की शीत प्रकृति है, किसकी कफ प्रकृति है, किसकी वात प्रकृति है, किसकी पित्त प्रकृति है। तदनुसार आहार देना।

किसान भी विवेकी होता है। जिस दिन बैल से अधिक काम लेता है, उस दिन उसको गुड़ खिलाता है। यानि उसको भी उसके अनुसार भोजन देता है। ये मुनिराज आज विहार करके आ रहे हैं तो उनको आज कैसा आहार देना, इसका ध्यान रखना। रोग-व्याधि है तो औषधि देना, परंतु हल्ला करके नहीं, दबा कर दो दवाई। कोई विशेष तपस्या/कायक्लेश किए हैं, उपवास करके आए हैं और आपने ठण्डा पानी चला दिया। एक महाराज की समाधि हो गई सोनागिर में। आठ उपवास किए महाराज ने, तो उपवास के बाद जो पारणा होती है, वह बहुत विवेक से करवानी पड़ती है। किसी ने ठण्डा चला दिया तो उनके शीत बैठ गया और समाधि हो गई दूसरे दिन। उपवास करना सरल है, पारणा करना कठिन है। अच्छे से पारणा करवाना। ऐसे विचार कर दान देना। ठण्डे के ऊपर गर्म, गर्म के ऊपर ठण्डा नहीं चलाना।

"आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं", आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

आहारदान के लिए देय वस्तु में विवेक

हिय-मिय-मण्णं पाणं, णिरवज्जोसहिं णिराउलं ठाणं।
सयणासण मुवयरणं, जाणिज्जा देदि मोक्ख मग्ग-रदो॥ 24॥

अन्वयार्थ—(मोक्खमग्गरदो) मोक्षमार्ग में अनुरक्त व्यक्ति **(हियमियं)** हित और मित **(अण्णं)** अन्न **(पाणं)** पान **(णिरवज्जो सहिं)** निर्दोष औषधि **(णिराउलं)** निराकुल **(ठाणं)** स्थान **(सयणासणमुवयरणं)** शयनोपकरण और आसनोपकरण **(जाणिज्चा)** आवश्यकता जानकर **(देदि)** देता है।

मुनियों की वैयावृत्त्य कैसे करें ?

अणयाराणं वेज्जावच्चं, कुज्जा जहेह जाणिज्चा।
गब्भब्भमेव मादा-पिदुच्च णिच्चं तहा णिरालसया॥ 25॥

अन्वयार्थ—(जहेह) जैसे इस लोक में **(मादा-पिदुच्च)** माता और पिता **(गब्भब्भमेव)** गर्भ-स्थित शिशु का सावधानी से पालन करते हैं **(तहा)** उसी प्रकार **(अणयाराणं)** मुनियों की **(जाणिज्चा)** प्रकृति आदि जानकर **(णिच्चं)** सदा **(णिरालसया)** आलस्य-रहित होकर **(वेज्जावच्चं)** वैय्यावृत्त्य **(कुज्जा)** करनी चाहिए।

दाता के भाव की अपेक्षा दान के फल में भिन्नता

सप्पुरिसाणं दाणं, कप्पतरूणं फलाण सोहा वा।
लोहीणं दाणं जदि, विमाण सोहा सवं जाणे॥ 26॥

अन्वयार्थ—(सप्पुरिसाणं) सत्पुरुषों/सम्यग्दृष्टि का **(दाणं)** दान **(कप्पतरूणं)** कल्पवृक्ष के **(फलाण)** फलों की **(सोहा)** शोभा **(वा)** समान होता है **(लोहीणं)** लोभी पुरुषों का **(जइ)** जो **(दाणं)** दान है वह **(विमाण सवं)** अर्थी के शव की **(सोहा)** शोभा के समान है **(जाणे)** ऐसा जानो।

भव्य बंधुओ !

अंतिम तीर्थेश भगवान् वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं, तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना, जिनेन्द्रवाणी जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति। आचार्यप्रवर भगवान् कुन्दकुन्द स्वामी रयणसार जी ग्रंथ में उस परमतत्त्व की प्राप्ति के पुरुषार्थ में लगे परम योगीश्वरों की चर्चा कर रहे हैं, वे निर्ग्रंथ तपोधन,

जिन्होंने जगत् की समस्त असाम्यताओं और विषमताओं से स्वयं को उदास कर लिया हो। कंचन, काँच, कामिनी, लोष्ठ इनके प्रति साम्यदृष्टि हो, इसका नाम श्रमण है। समकित भाव है तो मोक्षमार्गी है और समकित भाव का अभाव है तो दीर्घ संसारी है। यह ही सत्यार्थ मार्ग है। और समकित तभी आयेगा, जब साम्यभाव होगा। और साभ्यभाव की प्राप्ति का मार्ग क्या है? एकत्व-विभक्त चिद्रूप पर जिसकी दृष्टि है, उसको नियम से साम्यभाव आयेगा। यदि साम्यभाव का अभाव है, तो ध्रुव सत्य है कि एकत्व-विभक्त पर दृष्टि गई ही नहीं है। आत्मा का जो सत्यार्थ मार्ग है, वह एकत्व-विभक्त भाव है।

एकत्व-विभक्त शब्द पर ध्यान दो। अभिनव-अभिनव शब्द महसूस हो रहा है क्या ? नया शब्द लग रहा है क्या ? आत्मा का जो शुद्ध स्वभाव है, आत्मा का जो ध्रुव स्वभाव है, जिसके बल पर योगी जीवन जी रहा है, उसका नाम है एकत्व-विभक्त स्वभाव। संपूर्ण निर्ग्रंथ दशा इसी तत्त्व पर आलंबित है। यदि इस शब्द के अर्थ के बोध से शून्य हो गया तो सम्पूर्ण निर्ग्रंथ दशा शून्य हो गई। ज्ञानी ! एरण्ड का वृक्ष मोटा है, पर खोखला है। जिस जीव की एकत्व-विभक्त चिद्रूप पर दृष्टि नहीं है, उसकी सारी-की-सारी साधना एरण्ड के वृक्ष के समान है। ऊपर से मोटा दिख रहा है, अंदर खोखला है। जब निर्ग्रंथ तपोधन हमारे सामने से निकलते हैं, उस समय चिंतन करना, भो धरती के देवता ! एकत्व-विभक्त चिद्रूप पर दृष्टिपात करने वाले! जगत् के लोग लोक के बीच में जीते हैं और आप एकत्व-विभक्त चिद्रूप पर जीते हो। सम्पूर्ण द्वादशांग का जो सार है, उसका नाम एकत्व-विभक्त भाव है। जब भी किसी के मुनिराज बनने के भाव हों, बस एक ही बात कहना, भैया ! पिच्छि कमण्डलु वाले मुनिराज बनने के साथ-साथ एकत्व विभक्त स्वरूप की प्राप्ति वाला मुनि बनना।

"शुद्धोऽहम् बुद्धोऽहम्" यह शब्द कहना सरल है, परंतु "एकत्व-विभक्त स्वरूपोऽहम्" पर दृष्टि डालना अत्यंत कठिन है। एकत्व-विभक्त पर दृष्टि जिसकी जा चुकी है, वह नियम से शुद्ध-बुद्ध हो जायेगा। इस विश्व में, इस लोक में सबसे श्रेष्ठ कोई है, सुन्दर है, उसका नाम एकत्व-विभक्त है।

ज्ञानी ! यदि तू अकेला कमरे में बैठा है तो झगड़ा होगा क्या ? छोटे-से बच्चे को भी लेकर बैठेगा, टेंशन तो होगा। कहीं-न-कहीं दृष्टि तो जायेगी। जो साथ में किसी को लेकर जायेगा, वह निर्विकल्प रह नहीं पायेगा। इसलिए मुनि बनने का भाव हो तो साथ में मित्र को लेकर मत जाना, अन्यथा आचार्य ने तुम्हारे मित्र मुनि को डाँट दिया तो तू पहले मुँह बनायेगा। मित्र बनाकर मुनि मत बनना, अमित्र बनाकर मुनि मत बनना। मैत्रीभाव रखकर मुनि बनना। जगत् के प्राणीमात्र के प्रति साम्यभाव रखना।

एयत्तणिच्छयगदो समओ सव्वत्थ सुन्दरो लोए।
बंध कहा एयत्ते तेण विसंवादिणी होई ॥३ स. सार॥

भैया! विश्वास रखना, जो भी श्रोता यहाँ सुनने आ रहे हैं, उन्हें समझ में आए या न आए, मात्र एकत्व-विभक्त की बात सुनने आ रहे हैं। एक भैया कह रहा था शाम को वैय्यावृत्ति के समय, महाराज ! हम लोगों के शरीर तो इतई धरे रह जात, आत्मा कहाँ घूमती है, पता नहीं चलता। एक घंटे तक वह शरीर धरा रह जाता है। और यह मैं अकेला नहीं कह रहा हूँ, यह सबके मन बोल रहे हैं। इससे यह ध्वनित होता है कि एक भी श्रोता यहाँ चुटकुले सुनने नहीं आता। चुटकुले सुनने आते होते तो दूसरे ही दिन इनका आना बंद हो ही जाना चाहिए था। मात्र जिनवाणी सुनने आ रहे हैं और अंदर का गद्गद् भाव आता है। कुन्दकुन्द देव क्या कह रहे हैं—

जो एकत्व-विभक्त स्वरूप है, लोक में वही सुन्दर है। जहाँ-जहाँ संपर्क बढ़ेगा, जहाँ-जहाँ संयोग बढ़ेगा, वहाँ-वहाँ शांति भंग होगी। मिलन का आनंद तो है, मिलने में अच्छा तो लगता है सबके साथ, लेकिन मिलने के बाद थकान होती है, इस बात को स्वीकारिये पहले। ज्ञानी ! संयोग के बाद वियोग होता है, तो आँसू टपकते हैं। जिसका किसी से मिलन ही न हो, तो वह न थकेगा, न रोयेगा, न हँसेगा। वह कैसा होगा ? जैसा होगा, वैसा ही होगा। मिलन करना छोड़ो, निज में मिलना सीखो। मिलन में कष्ट है। जो-जो मिल चुके हैं, उनसे पूछना कि क्या हुआ है ? भैया ! बेटे की माँ से मिल गया। भैया ! जब तू अपनी माँ के साथ था, तो याद करो, (20 वर्ष पीछे चले जाओ जरा) आँगन में फुदकता था। माँ देखकर मुस्कुराती थी, आनंदित होती थी। जब तू बेटे की माँ से मिल लिया, ज्ञानी ! सुखाभास में लीन तो हुआ, परंतु पश्चाताप भी हुआ है। ध्रुव सत्य यह है। जो-जो मिल गए हैं, वे निज से बिछुड़ गए हैं। बहुत दूर चले गए हैं एकत्व-विभक्त दशा से। उस एकत्व-विभक्त दशा को समझो, है क्या वस्तु ?

एकत्व—मैं एक हूँ, सारे विश्व से मैं एक हूँ, एकत्व है, मैं एक हूँ। सोचो, जिन मुनियों की चर्चा यहाँ चल रही है, वे मुनिराज क्या हैं ? भरी गृहस्थी से निकलकर आए हों, भरपूर परिवार से निकलकर आए हों और धन-वैभव के साथ जिए हों, वे नग्न होकर यहाँ क्या कर रहे हैं ? यहाँ क्या रखा हुआ है ? ये छोटे-छोटे बच्चे सफेद धोती-दुपट्टा पहने घूम रहे हैं, इनको शर्म नहीं लगती है। अभी खाते-पीते घर में मस्त रहते। कुछ तो है। भाई ! यदि भीड़-भाड़ को देखकर आए हो, तो रागी हो। आए क्यों हो ? ऐसा मत सोचना कि यहाँ भीड़ लगी है तो आनंद है, चलो चलते हैं। ऐसा भी मत सोचना कि घर में झगड़े होते थे, झंझट से बचेंगे, चलो चलते हैं। यदि इन

दो कारणों से आया है जीव, तो मोक्षमार्ग में नियम से असफल हो जायेगा। जो एकत्व-विभक्त चिद्रूप को निहारने के लिए आया है, वह नियम से मोक्षमार्ग में सफल होगा।

महाराज ! न आप से प्रयोजन, न आप्त से प्रयोजन। प्रयोजन किसी से है तो आत्मद्रव्य से है। भूतार्थ है, यही सत्यार्थ है। "एकत्व", मैं एक हूँ। इस देश ने, राष्ट्र ने, समाज ने, परिवार ने तुझे सुन्दर खिलौना बना कर रखा है। जब तेरा जन्म हुआ तो माँ मुस्कुरा रही थी देख-देखकर, तो माँ तुझसे खेल रही थी। विश्वास मानो, वे माँ उदास हो गईं जो माँ बनने की नहीं बचीं। रोना ही पड़ेगा, क्या करूँ ? जब तुम्हारे पास ताकत थी तो चूहे के लालों/बच्चों को पिंजड़े में रख कर बाहर छोड़ा था। उनके माता-पिता को बाहर निकाला था, वे लाल रो रहे थे। वे कराहनायें तुम्हें लग गई, कर्मबंध हुए हैं। हरे वृक्ष कटवा दिए, और तो क्या, स्वयं के लालों को पेट में ही कटवा कर फिकवा दिए। वे गोदें भरें कैसे ? श्वास निकलने के पहले प्रायश्चित लेकर जाना यदि पंचेन्द्रिय जीवों का घात किया हो तो। ज्ञानी! विश्वास रखना, जिस घर में किसी की मृत्यु हो जाए तो बारह दिन का सूतक, तेरहवें दिन शुद्धि। जिस घर में कोई आत्मघात कर ले, तो ये नए-नए सुधारकों की बातों में मत आना कि केवल परिवार को छह महीने का सूतक लगता है। कुटुम्ब को भी छह महीने का सूतक लगेगा। जिसके घर में आत्महत्या हो गई हो, उसके यहाँ छह महीने का सूतक लगता है और जिसके घर में अपने ही बेटों के टुकड़े किए गए हों, भ्रूणहत्या की गई हो, उसके घर में जीवनपर्यंत का सूतक लगेगा। ऐसी श्राविका किसी साधु के हाथ पर ग्रास नहीं रखे, जिसने भ्रूणहत्या करवाई हो या फिर पहले प्रायश्चित ले लेना।

आप लोग जैनदर्शन को मानते हैं क्या ? जैनदर्शन सत्य है क्या ? यदि सत्य है, तो अपने माता-पिता से कह देना, हे तात् ! यह सत्य है कि आपके निमित्त से मैं आपके कुल में जन्मा हूँ, पर ध्रुव सत्य है कि मैं अपने पुण्य से तेरे घर में आया हूँ, तेरे पुण्य से नहीं आया हूँ। तेरा पुण्य यह है कि मेरे-जैसा सुन्दर बेटा तेरे घर में आया, पर मेरा पुण्य यह है कि तेरे-जैसा पुण्यात्मा धर्मात्मा पिता मुझे मिला है। एक दूसरे का पुण्य है। पर तुम मेरे कर्त्ता नहीं हो और मैं तुम्हारा कर्त्ता नहीं हूँ। प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र है। बेटा स्वयं अपना पुण्य लेकर आता है। बेटे का जन्म हुआ तो माँ के आँचल में दुग्ध की धारा किसने भरी ? उसका पुण्य न होता तो आँचल में दुग्ध कैसे आया ? पुण्य नहीं होता है, तो माँ के आँचल का दुग्ध सूख जाता है। यहाँ तक कि माँ की मृत्यु हो जाती है।

यदि जैनदर्शन सत्य है, तो इस बात पर ध्यान दो कि जो-जो जन्म लेंगे, अपने भाग्य से लेंगे। एक चिड़िया का बच्चा भी जब चोंच मिलती है, उसको भी खाने को दाना मिलता है। तुम्हारे बेटे जब जन्म लेंगे, विश्वास मानो, टेंशन मत पालो कि कौन खिलायेगा ? उनको छोड़ देना उनके भाग्य पर, लेकिन पेट में टुकड़े मत करवाना। तुम किसके कर्त्ता हो, किसके भोक्ता हो ? नियम

ले लो, कायोत्सर्ग कर लो कि, जो भी संतान आयेगी उसे नष्ट नहीं करेंगे, सनातन धर्म की रक्षा के लिए उसे मुनि बना देंगे। घोर पाप नहीं करना। शरीर से धुँआ निकले, उससे पहले इस पाप का प्रायश्चित लेकर जाना। कुंती ने कुवाँरी माँ बनने पर भी हिंसा नहीं की, यह वह देश है। एक पाप तो हो ही गया, पर दूसरा पाप क्यों करें। इतिहास साक्षी है कि हे कुंती ! आप राजमाता तो बन गईं, पर इस अपयश को नहीं मिटा पाई कि आपने अपने उदर के रक्त को बाहर निकाला था।

धन्यवाद किसी को देना हो तो राजा श्रेणिक को देना। भविष्य का तीर्थंकर ऐसे ही नहीं बनेगा, जिसको साक्षात् मालूम था कि मेरी पत्नी चेलनी के गर्भ में मेरा शत्रु बैठा हुआ है। जब कुणिक चेलनी के गर्भ में आया, तो चेलनी के भाव होते हैं कि मैं अपने पति के वक्षस्थल से लग कर रक्त पी लूँ। जिस माँ के उदर में साधुपुरुष बैठा हुआ है, उस माँ के भाव होते हैं सम्मेदशिखर की वंदना करूँ, सोनागिर जी, कुण्डलपुर आदि की वंदना करूँ, निर्ग्रंथ मुनियों को आहार दूँ, ऐसे भाव होते हैं। जिस माँ के उदर में पापी बैठा है, तो कोई मिर्च खाती है, कोई मिट्टी खाती है। रावण जब गर्भ में आया तो केकसी को दोहला हुआ, कि नंगी तलवार में चेहरा देखूँ। अब समझ लो कि कैसा बेटा बैठा हुआ है। आचार्य विमलसागर जी जब अपनी माँ के गर्भ में आए, उनकी माँ को दोहला हुआ सोनागिर की वंदना का। देखो उस जीव का पुण्य। माँ सोनागिर की वंदना करने आई और बेटे का जन्म ही सोनागिर में हुआ। जीवन के अधिकांश क्षण उन्होंने सोनागिर में निकाले। यह जीव का नियोग है।

कुणिक जब गर्भ में आया तो चेलनी सूखने लगी। इतने खोटे मेरे परिणाम हो रहे हैं, कैसे कहूँ पति से ? श्रेणिक पूछता है, हे प्रिये ! आपको क्या हो गया है ? मन में तनाव किस बात का है ? अश्रुपात करते हुए कहती है—स्वामी ! पता नहीं मुझ अभागिन को क्या हो गया, कि मेरे ऐसे भाव हो रहे हैं कि अपने स्वामी के वक्षस्थल से लगकर रक्त का पान करूँ। एक क्षण को श्रेणिक सोचता है कि ये अवश्य ही कोई मेरा अहित करने वाला जीव है। आज का श्रेणिक होता तो गर्भपात करवा देता। पर श्रेणिक क्या कहता है ? देवी ! यह अपने कर्म का विपाक है। हम दोनों के संयोग से यह संतान आई है। अपन संतान का नाश नहीं करेंगे। बेटे को जन्म दिया, और देखो जब जन्म के उपरांत उस कुणिक के फोड़ा हो गया तो अपने मुख से सहलाया और वही कुणिक जब बड़ा हो गया तो श्रेणिक को कारागृह में डलवा दिया। एक दिन अपने बेटे के साथ भोजन कर रहा था श्रेणिक। उसके बेटे ने उसकी थाली में लघुशंका कर दी और उसी थाली का भोजन श्रेणिक ने कर लिया। धीरे से कहता है चेलनी से—माँ ! क्या जगत् में कोई ऐसा पिता होगा, जिसको अपने बेटे के प्रति इतना दुलार हो, कि थाली में लघुशंका करने पर भी ग्लानि नहीं आई। चेलनी फफक-फफक कर रोने लगी, बेटे ! तुझे क्या मालूम ? जब तू छोटा था तो तेरे पिता, मेरे

पति श्रेणिक ने तेरे फोड़े को मुख में रखकर सहलाया था और तूने क्या किया ? अपने पिता को जेल में डाल दिया है। कुणिक पश्चाताप करता है, कहता है, कि मैं पिता को निकाल कर लाता हूँ। पहुँचता है जेल की ओर, पर ज्ञानी ! "यथा गति तथा मति।" जैसे-ही कुणिक हथौड़ा लेकर गया बंधन तोड़ने के लिए–

"प्रक्षीण पुण्यं विनश्यति विचारणं"

जिस जीव का पुण्य क्षीण हो जाता है, उसके पवित्र विचार भी नष्ट हो जाते हैं। भैया ! तभी तक हम तुझे समझा पायेंगे, जब तक तेरा पुण्य है। जिसका पुण्य नहीं है, तो अच्छी बात भी चुभेगी। अच्छे विचार भी ऐसे लगेंगे जैसे उसे मार रहे हों।

ध्रुव सत्य है कि आप किसी का उपकार भी तभी कर पाओगे जब सामने वाले का पुण्योदय होगा। आप आहार देते कि नहीं मुनिराज को ? आप इस बात को भूल जाओ कि मैं देता हूँ। ज्ञानी! तुम देने के ही पात्र हो, खिलाने के पात्र नहीं हो। सुबह भाव से चौका लगाया है। भो स्वामी! पधारो, भो स्वामी ! पधारो। चौका लगाया, कुँए से पानी भरकर लाया, कितनी मेहनत की है। और जैसे ही ग्रास हाथ पर रखा, तू हाथ पर ही रख पायेगा, भीतर भेज नहीं पायेगा। कर्म का विपाक तीव्र है तो हाथ में रखा ग्रास भी क्या, मुख में गया ग्रास भी बाहर आ जाता है। तू रखने का कर्त्ता तो हो सकता है, लेकिन खिलाने का कर्त्ता नहीं है। जब कर्म का विपाक आता है तो अंतरायों की झड़ी लगती है। भैया ! कितना ही समझदार पहुँचे आहार करवाने, नहीं होता है। आपकी प्रज्ञा, आपकी समझ आपके लिए है, परंतु पर के कर में तुम्हारी समझ क्या करेगी ?

देखो, कुणिक मारने नहीं गया था, निकालने गया था। पर नरक आयु का जिसने बंध कर लिया हो, उस श्रेणिक के मन में क्या भाव आया–"अभी तक तो जेल में डाला था, आज तो हथौड़ा लेकर आ गया। इसके हाथ से मरने की अपेक्षा स्वयं मर जाना श्रेष्ठ है। ऐसा विचार कर सिर पटक-पटक कर आत्महत्या कर ली। "आत्मघाती महापापी"। ध्यान रखना, जीवन में कितने ही कष्ट आ जायें, कभी मरने के भाव नहीं लाना, आत्महत्या करने के परिणाम मत लाना। इतना सबकुछ होने के बाद भी श्रेणिक भविष्य का तीर्थंकर होगा, क्यों ? उस जीव ने इतना पुण्य का संचय किया है, अरिहंत की देशना सुनी है। इसमें कोई शंका नहीं है, कि जो विशुद्धि तत्त्व सुनने में आती है, वह जगत् में कहीं आती नहीं है। जिनवाणी हृदय से वही सुन पायेगा, जो भावी भगवान् होगा। श्रद्धा से श्रुत का पान वही कर पायेगा, जो भावी भगवान् होगा। विश्वास रखना, समय किसी का कितना भी लग जाए, ये सब भावी भगवान् बैठे हुए हैं। इन सभी श्रोताओं का कभी तिरस्कार मत करना। जितना सम्मान ऊपर विराजे बाहुवली स्वामी का करते हो, उतना ही सम्मान

श्रावकों का रखना। वे बने बनाए भगवान् हैं, ये बनने वाले भगवान् हैं। इसलिए गर्भस्थ शिशु के प्रति भी अशुभ भाव मत लाना।

ज्ञानी ! मनुष्य कितना सुन्दर खिलौना है। जब जन्म हुआ तो माँ खेली, पिता खेला। थोड़ा बड़ा हुआ तो मित्रमण्डली खेलने लग गई। युवा हुआ तो दूसरे की बालिका आकर क्रीड़ा करने लग गई। इतना सुन्दर खिलौना था। और कुछ दिन बाद बच्चे का खिलौना हो गया, स्वयं के बेटे ही खेलने लग गए। वृद्ध हो गया तो नाती खेलने लग गए। कैसा खिलौना ? कम-से-कम प्लास्टिक का होता, टूट जाता, तो बिक ही जाता। पर तू ऐसा खिलौना है कि जब तक साजा है, तो दुनियाँ खेल रही है और जैसे-ही टूटा, तो घूरे पर भी नहीं फेंकते, जलाकर ही आते हैं। ऐसा खिलौना है।

इसलिए एकत्व-विभक्त स्वरूप पर ध्यान दो। मैं एक चिद्रूप हूँ, यह एकत्व भाव और मैं पर से पृथक् हूँ, भिन्न हूँ, यह विभक्त भाव है। इसलिए एकत्व-विभक्त भाव ही आत्मा का शुद्ध भाव है। जहाँ दो मिलेंगे, वहाँ विसंवाद तो होगा। अनेक में होकर भी एक होकर रहो। यह नाक अलग है, कान अलग हैं, मुख अलग है। इन अनेक के बीच होकर भी एक होकर रहो। ऐसे-ही नाना रागियों के बीच रहकर भी अपने को एक स्वीकारो। भीड़ में रहकर भिड़ना मत सीखो, भीड़ में रहकर भी एकत्व को पहिचानो। पन्ना में हीरे निकलते हैं, आप सबको पता है। परन्तु ऐसा नहीं है कि रखे हैं सो उठा लो। गहरा खोदना पड़ता है, पत्थरों को बीनना पड़ता है, छानना पड़ता है, धोना पड़ता है। पर जिसको हीरा निकालने की विधि आती है वो हीरा ही उठाता है, मिट्टी को छाँट लेता है। ऐसे-ही दुनियाँ के बीच में, इन मिट्टी के पिण्डों के बीच में भी, निज आत्म-हीरे को निहारना, बाकी के मिट्टी के पिण्ड को छोड़ देना। यही एकत्व-विभक्त स्वरूप है। मात्र दिगम्बर मुनि इसलिए बनना पड़ता है। जो ऐसे तत्त्व में लीन हैं, उसके प्रति सम्मान सहज उत्पन्न होता है। हाथ जुड़ जाते हैं, भो स्वामिन् ! नमोऽस्तु । कुन्दकुन्द भगवन् कह रहे हैं—हे श्रावको ! ऐसे योगी की जब तुम चर्या करवाते हो, तो उनका कितना ध्यान रखा करो। क्योंकि बेटे का ध्यान रखोगे आप, तो मात्र एक परिवार या एक वंश को सुरक्षित रखोगे, एक वंश का दीप है बेटा। यदि एक निर्ग्रंथ योगी को सुरक्षित रख लिया, तो जिनशासन का दीप है मुनि, वह जिनशासन को उज्जवल करेगा। एक मुनि श्रेष्ठ हो गया, तो पूरे विश्व में, ब्रह्माण्ड में जिनशासन जयवंत होता है। पूरी समाज मुस्कुराती है, मुनि संघ मुस्कुराते हैं। ज्ञानी ! सामान्य रागियों को मुस्कुराहट आ जाए तो सहज है, सरल है। लेकिन योगी को देखकर योगी को मुस्कुराहट आ जाए, यह बहुत कठिन है। निर्ग्रंथ को देखकर, वीतरागी श्रमण को देखकर निर्ग्रंथ को भी आनन्द आता है।

आचार्य भगवान् कुन्दकुन्द स्वामी कह रहे हैं—हे योगी ! आप तो साधना में लीन हो। जिनको देह से भी ममत्व समाप्त हो चुका है, ऐसे निर्ग्रंथों के प्रति हे श्रावको ! तुम उनकी माँ हो, क्योंकि इन्होंने तो बुद्धिपूर्वक जन्म देने वाली माँ को छोड़ दिया है। अब ये किसके सहारे हैं ? आपके ही सहारे हैं। तो कैसे पालन करें आप इनका ?

हिय मिय मण्णं पाणं—हितकारी हो, सीमित हो, ऐसा अन्न इनको दें। ऐसा पाणं, पान यानि पेय दें।

णिरवज्जोसहिं—जो निर्दोष हो, ऐसी औषधि भी दें, यदि कोई रोगी है तो।

णिराउलं ठाणं—यदि आप इनको ठहराना चाहते हो तो निराकुल स्थान पर ठहराना। जहाँ मच्छर, मक्खी हों, बहु जीव हों, जहाँ आयुधशाला हो, जहाँ व्यायामशाला हो, जहाँ मदिरालय हो, वेश्यालय हो, नाट्यशाला हो, स्त्रियाँ आती-जाती हों, बहुत पुरुषों का गमनागमन हो, बच्चे खेलते हों, ऐसे स्थान पर साधुओं को नहीं ठहराना। देखो ! सागर में जो प्रवृत्ति इस समय चल रही है, माँ इसे अपनी प्रशंसा मत समझना, ऐसा देश की सभी मातायें, बहनें प्रारम्भ कर दें। समय पर आना, समय पर जाना। जब सामूहिक लोग साधु के पास आ रहे—जा रहे, तभी आना-जाना। असमय में साधुओं के पास कभी नहीं जाना। हे पुरुषो! यही तुम्हारे साथ है। आर्यिका संघ रुका हुआ है तो आप महिलाओं की ड्यूटी लगाओ, आप अपनी मर्यादा में रहो। माताजी के पास मात्र उपदेश सुनने जाओ, प्रवचन सुनने जाओ। उनकी वैय्यावृत्ति में, जो पुरुष को उचित है, आहार आदि दो, शेष काम महिलाओं को सोंपो। समलिंग की सेवा समलिंगी करें, असमलिंग की सेवा विषमलिंगी न करे। ऐसी भक्ति करो जिससे तुम्हारा भगवान् बदनाम न हो। वह भक्ति भी भक्ति नहीं है जिससे तुम्हारा भगवान् बदनाम हो जाए। सुबह से आ गए, उनको सामायिक करना है, स्वाध्याय करना है, प्रतिक्रमण करना है, 24 घण्टे तुम महाराज के पास जाओगे तो लोग कहेंगे कि क्या है ?

श्रमणों का काम है अपना काम करना, न कि दुकान लगाना। ये साधु अपनी साधना कब करेंगे ? अपना-अपना स्वाध्याय करो। इससे श्रावकों को यह तो लगता है कि महाराज समय नहीं देते हैं, लेकिन मन फिर भी मुस्कुराता है कि समय भले नहीं देते, क्योंकि समय को समय देते हैं, इसलिए आपको समय नहीं मिलता और समय को समय नहीं दूँगा तो आपको समय मिलेगा।

सयणासण—जो पाटा चर्र-मर्र करता हो, उस पर साधु को मत बिठालना। उससे उनकी सामायिक भंग होगी और कहीं उसमें खटमल हो गए, तो वे सामायिक करेंगे तो खटमल काटेंगे, कष्ट होगा। यानि पाटे भी स्थिर हों, चौके भी स्थिर हों। माँ। आपने चौके में चौकी रखी और वह हिल रही है, तो कोई जीव उसके नीचे आकर मर सकता है कि नहीं ? अथवा साधु बैठा और गिर गया, तो निर्ग्रंथ मुद्रा की असादना हो जायेगी। कहीं गिर गए तो, इसलिए पहले देख लेना।

शयनोपकरण यानि चटाई है, पाटा है, निष्छिद्र होना चाहिए। इतनी भी भक्ति मत करना, एक भक्त के मन में आया कि भगवान् का पंचामृत अभिषेक तो अपन रोज करते हैं, महाराज कब-कब मिलते हैं, चलो महाराज का पंचामृत अभिषेक करें। पौष का महीना। जैसे-ही महाराज सामायिक में बैठे, भर-भरके घड़े, दूध, दही आदि का अभिषेक प्रारम्भ कर दिया। मुनिराज की शाम को ही समाधि हो गई। भैया! थोड़ा विवेक से भक्ति करना। मुरैना में मुनिराज पधारे, ठण्ड का मौसम। एक श्रावक के मन में आ गई कि महाराज को ठण्ड न लगे। महाराज घास में पाटे पर बैठे थे। वह गुरसी (अंगीठी) अन्दर रखकर आ गया। वह गुरसी की आग घास में लग गई। घास में ऐसी आग लगी कि सुबह महाराज के मात्र हड्डी-पंजर मिले। इसलिए भैया! जो भी करो, भक्ति करो, आराधना करो, लेकिन तनिक विवेक रखो।

अब हमें तो आहार देना ही है। महाराज को पचास लोग घेरकर खड़े हो गए। अब महाराज घुटें तो घुट ही जायें। न व्यवस्था बनाना, न व्यवस्था भंग करना। बस, व्यवस्थित रहना। यह विवेक नाम का गुण है। शयनाशन एवं अन्य वही उपकरण देना जो मोक्षमार्ग में सहयोगी हों।

अणयाराणं वेज्जावच्चं—अनगारों (मुनियों) की वैय्यावृत्ति करो। कैसे ? इसे जान लो **जाणिच्चा गब्भब्भमेव मादा**—माँ गर्भस्थ शिशु को कैसे पालती है ? ठण्डा नहीं खाती है, गर्म नहीं खाती है। पेट में शिशु है तो पैर भी रखती है तो सम्भाल-सम्भाल कर रखती है। हे श्रावको! जब तुम्हारे घर में मुनिराज पधारें, तो उस गर्भवती माँ के समान इन मुनिराजों का पालन करना। हे मेरी माँ ! तुम अपने शिशु के समान पालन करना। कुन्दकुन्द स्वामी की करुणा तो देखो। 'समयसार' लिखा तो कितना गहन लिखा और श्रावकाचार लिखा तो कितना गहन लिखा। ये शब्द किसी श्रावकाचार में नहीं हैं।

मादा-पिदुच्च णिच्चं तहा णिरालसया : जैसे माता-पिता निरालस्य होकर बालक का पालन करते हैं, ऐसे-ही ज्ञानी ! आलस्य रहित होकर मुनियों की सेवा/वैय्यावृत्ति करो।

सप्पुरिसाणं दाणं कप्पतरूणं फलाण सोहा वा—सत्पुरुषों को दान कल्पवृक्ष के समान फल देता है और लोभी दान करे तो जैसे शवयात्रा के लिए विमान बनाया जाता है, उसकी शोभा जैसी होती है, वैसी ही लोभी के दान की शोभा होती है। इसलिए दान तो दिया ही है, लोभ नहीं करना। जो है, सो है।

"आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं", आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

लोभी को पात्र—अपात्र का विचार नहीं

जस-कित्ति-पुण्ण-लाहे, दह सुबहुगं-पि जत्थ तत्थेव।
सम्मादि सुगुण भायण, पत्त-विसेसं ण जाणंति ॥27॥

अन्वयार्थ—(लोभी पुरुष) (जस) यश **(कित्ति)** कीर्ति **(और) (पुण्णलाहे)** पुण्यलाभ प्राप्ति के लिए **(जत्थ तत्थेव)** यत्र-तत्र **(पात्र की अपेक्षा न कर)** कुपात्र पात्र में **(सुबहुगंपि)** बहुत भी **(देइ)** दान देता है, वह **(सम्मादि-सुगुण-भायण)** सम्यक्त्व आदि उत्तम गुणों के भाजन /आधार /स्वामी **(पत्त विसेसं)** सुपात्र /पात्र विशेष **(ण)** नहीं **(जाणेति)** जानते हैं।

कामना-कृत दान निरर्थक

जंतं-मंतं-तंतं परिचरिदं, पक्खवाद पिय-वयणं।
पडुच्च पंचम-याले भरहे दाणं ण किं पि मोक्खस्स॥28॥

अन्वयार्थ: **(भरहे)** भरतक्षेत्र में **(पंचम-याले)** पंचमकाल में **(जंतं-मंतं-तंतं)** यंत्र मंत्र तंत्र **(परिचरिदं)** परिचर्या /सेवा **(पक्खवाद)** पक्षपात **(पिय-वयणं)** प्रियवचन **(पडुच्च)** प्रतीति / विश्वास के लिए - दिया हुआ **(किं पि)** कोई भी **(दाणं)** दान **(मोक्खस्स)** मोक्ष का कारण नहीं है।

दानी के दरिद्रता, लोभी के ऐश्वर्य क्यों?

दाणीणं दारिद्दं लोहीणं किं हवदि मह-इसरियं।
उहयाणं पुव्वज्जिद कम्मफलं जाव होदि थिरं॥29॥

अन्वयार्थ—(दाणीणं) दानी जीवों के **(दारिद्दं)** दरिद्रता **(लोहीणं)** लोभी जीवों के **(मह-इसरियं)** महा-ऐश्वर्य **(किं)** क्यों **(हवदि)** होता है **(उहयाणं)** दोनों के **(पुव्वज्जिद कम्मफलं)** पूर्वोपार्जित कर्मफल **(जाव)** जब तक **(थिरं)** स्थिर **(उदय में) (होइ)** रहता है।

भव्य बन्धुओ!

अन्तिम तीर्थेश भगवान् वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना, जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमण संस्कृति। आचार्यप्रवर भगवान् कुन्दकुन्द स्वामी की अलौकिक सिद्धहस्त लेखनी जयवन्त हो।

आचार्यभगवान् पंचमकाल (कलिकाल) की महिमा बताते हुए कह रहे हैं कि जो लोभी जीव होता है, वह अपने लाभ के लिए कभी पात्र-कुपात्र का विचार नहीं करता है। उसकी दृष्टि में लाभ की ही प्रमुखता रहती है। वह अपने लाभ के लिए कहीं भी माथा टेकने को तैयार रहता है। अपने मनोरथ के पूर्ण होने की लालसा में किसी भी कुपात्र को दान दे देता है। वह यह विचार भी नहीं करता है कि पात्र का निर्णय किस गुण के आधार पर किया जाए।

व्यक्ति दान करता है तो अपने संसारिक मनोरथों को पूर्ण करने के लिए करता है। वह दान में भी व्यापारिक दृष्टिकोण रखता है। मेरी दुकान अच्छी चलेगी तो मैं इतना दान कर दूँगा। समस्त धार्मिक क्रियाओं के पीछे लौकिक कामना ही रखता है। आचार्यभगवान् कह रहे हैं कि मंत्र-तंत्र-यंत्र की सिद्धि हेतु पक्षपातपूर्वक दिया गया दान मोक्ष का कारण नहीं है। लोग संसार में यह पाते हैं कि लोभी व्यक्ति के पास अपार सम्पदा है। दानी व्यक्ति संपदाहीन या कम संपदा वाला देखा जाता है। वे यह विचार नहीं करते हैं कि वर्तमान में जो दिख रहा है, वह पूर्वकृत कर्मोदय के कारण है। जो धन रहते हुए दान नहीं करता है, वह अपने पुण्य को भोग करके उसको क्षीण कर रहा है। दानी व्यक्ति सीमित धन में अपने पुण्य को बढ़ा रहा है।

तेरा पुत्र तुझको घर से निकालने लग जाए तो क्या सोचना? बेटा! तेरा भी दोष नहीं है। राजा श्रेणिक से पूछना। बेटे ने जेल में डाल दिया। भूत को देखो तो बेटे ने जेल में नहीं डाला। जो आपने पूर्वभव में निर्ग्रंथ मुनि को आहार में अंतराय डाला था, वही कर्म उदय में आया है। वही मुनि का जीव बेटा बनकर आया है। राजा श्रेणिक ने इतना सबकुछ सुना, लेकिन अन्तिम समय आया तो जेल में सिर पटक कर आत्मघात कर लिया, क्योंकि नरक आयु का बंध हो चुका था। जिस जीव के संयम धारण करने के परिणाम न हों, समझ लेना कि मनुष्य या तिर्यंच या नारकी इन तीन में से किसी एक का बंध हो चुका है। जिसका इन तीन आयुओं में से किसी आयु का बंध हो चुका हो, वह जीव देशव्रत भी धारण नहीं कर सकता, महाव्रत तो दूर की बात है। देव आयु का जिसने बंध किया हो, वह संयम धारण कर सकता है अथवा जिसने किसी भी आयु का बंध न किया हो वह संयम धारण कर सकता है। संयम तो दूर है, जिस जीव ने नरक आयु का बंध कर लिया है, वह दिगम्बर मुनि के हाथ पर ग्रास भी नहीं रख सकता है। खड़ा-खड़ा देखता रहेगा, पर देने के परिणाम नहीं होंगे। जंगल की घटना याद करो। दो ने आहार दिए, एक खड़ा-खड़ा देखता रहा। लड्डू की व्यवस्था तो बना दी थी, परन्तु अपने हाथ से लड्डू नहीं दिया था। भैया! खूब चौके लगाओ, लेकिन किसी से यह मत कहना कि आप बंद कर दो क्योंकि मुझे लगाना है। उसका भाग्य, आपका भाग्य होगा तो साधु पहुँच जायेंगे। सब व्यवस्थाएँ बनाना, लेकिन चौके के लिए किसी पर पाबंदी मत लगाना। भैया! किस जीव

का कौन-सा कर्म कब उदय में आ जाए। राजा श्रेणिक से पूछो। वीतरागी निर्ग्रंथ तपोधन मासोपवासी थे और सेठ के गृहस्थ अवस्था के मित्र थे। श्रेणिक के मन में आया कि इन महाराज की पारणा तो मेरे घर में होना चाहिए। सारे नगर में मना कर दिया कि कोई चौका नहीं लगायेगा। जिस दिन मुनिराज आए, उसी दिन उसके हाथी ने बंधन तोड़ दिया, तो हाथी को वश करने में लग गया, महाराज को आहार नहीं करवा पाया। अगले महीने का उपवास (दो महीने का उपवास) करके जब फिर आए मुनिराज, तो कोई नगर में चौका नहीं था और श्रेणिक राजकार्य में व्यस्त हो गया था। तीसरे महीने फिर आए मुनिराज, तो नगर में आग लग गई, आग बुझवाने में राजा लग गया। तीन महीने के उपवास के बाद शरीर कृश हो गया। जैसे-ही वापस लौट रहे थे, नवप्रसूता गाय ने धक्का मार दिया, तो मुनिराज जमीन पर गिर गए। जमीन पर गिरे, अभी तक कुछ भी नहीं बिगड़ा था। किसी भी मुनि को कष्ट हो, पीड़ा हो, तो वैय्यावृत्ति तो करना, पर ऐसा मत कहना ओहो! महाराज को बड़ा कष्ट है। हे ज्ञानी! आत्मस्थ योगी को तुम देह में क्यों लगा रहे हो? कभी यह मत पूछना, 'महाराज! स्वास्थ्य कैसा है?' सबसे पहले यह पूछना—"भो भगवन्त! आपका रत्नत्रय कैसा है? शरीर कभी स्वस्थ हो नहीं सकता। अंगुल-अंगुल में छियानवे-छियानवे रोग हैं। इस पुद्गल पिण्ड के स्वास्थ्य की मत पूछो। यदि पूछ सको तो पूछना, हे भगवन्। आपकी आत्मा का स्वास्थ्य कैसा है? रत्नत्रय धर्म कैसा है? कदाचित् महाराज धर्म से दूर भी हो रहे होंगे तो उन्हें भी लगेगा कि धन्य हो तू श्रावक, तूने मेरे शरीर की चर्चा नहीं की, तूने रत्नत्रय धर्म की चर्चा की है। मैं मुनियों के पास उनका शरीर मात्र देखने नहीं जाता हूँ। मैं मुनियों के दर्शन करने इसलिए जाता हूँ क्योंकि उनके पास रत्नत्रय धर्म होता है।

भैया! शरीर देखना हो तो जगत् में बहुत सारे शरीरधारी हैं। हीरे-जवाहरात की दुकान पर जो उस दुकान का स्वामी बैठा हुआ है, सत्य बताना, क्या उसका चेहरा देखने जाते हो? उसका चेहरा देखने कोई नहीं जाता है, वह परमात्मा नहीं है, लेकिन उनका चेहरा देखे बिना काम चलता भी तो नहीं है। यदि उससे माल खरीदने जाना हो तो उससे बात तो करनी ही पड़ती है। ज्ञानी! जवाहरात की दुकान पर जौहरी से मिलने नहीं जाना पड़ता है, परन्तु जौहरी से मिलना पड़ता है, क्योंकि उससे रत्न खरीदना है। ऐसे-ही निर्ग्रंथ मुनि के शरीर को देखने नहीं जाता है, परन्तु निर्ग्रंथ मुनि का शरीर भी देखना पड़ता है, क्योंकि उसमें रत्नत्रय धर्म रखा है। रत्नत्रय धर्म को जानने के लिए जाता है। जौहरी से नहीं पूछना पड़ता 'क्यों, तुम्हारी दुकान की ईंटें कैसे लगीं, तुम्हारे दुकान का फर्श /मार्बल कैसा है?' सीधे पूछते हो, कितने कैरेट का है? और कितनी कीमत है? ऐसे-ही निर्ग्रंथ श्रमणों के पास जाना। यह रत्नत्रय की दुकान है। इसमें

आत्मद्रव्य जौहरी है और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र रत्न हैं। धीरे से पूछ लेना—'भो ज्ञानी! कितनी कैरेट का है रत्नत्रय धर्म और कैसे मिलेगा मुझे मार्ग? बता दो।' आज से ध्यान रखना, किसी मुनि से मत पूछना कि महाराज! तुम्हारा पुद्गल कैसा है? यही पूछना कि भो स्वामिन्! आपका रत्नत्रय कैसा है? और पुद्गल यदि अस्वस्थ दिखे तो उपचार आप कर देना, निर्दोष औषधि से।

वस्तुस्वरूप समझो। तीन महीने हो गए, महाराज को आहार नहीं मिले। और जैसे-ही जमीन पर गिरे, एक श्रावक पहुँच गया, महाराज! आपको कितना कष्ट है। राजा कितना अभागा है, जो न आहार देता है, न देने देता है। बस, जैसे-ही कान में शब्द पड़े, महाराज के भाव बिगड़ गए। अरे! श्रेणिक आहार नहीं देने देता मुझे। मेरी साधना का कोई फल होगा, तो मैं इसका बदला लूँगा। बस, वहीं काम बिगड़ गया। ब्रह्मचारियो! ध्यान रखना, निर्ग्रंथ जैनेश्वरी दीक्षा लेने के भाव बनें कभी जीवन में, तो इतना ध्यान रखना, कि यदि कोई तुझे पुष्पमाला चढ़ाने आ जाए, श्रीफल चढ़ाने आ जाए, उस पर प्रसन्न मत हो जाना और निंदा करे, उस पर नाराज़ मत हो जाना। दोनों को समान दृष्टि से देखना।

"अर्घावतारन असि प्रहारन में सदा समता धरन"
किं काहदि वणवासो कायकिलेसो विचित्त उववासो।
अज्झयणमोण पहुदी समदारहियस्स समणस्स॥124 नियमसार॥

हे योगीश्वर! कितने ही ग्रंथों को कण्ठ में धारण कर लो, सरस्वती को सिद्ध कर लो, जीवनपर्यंत का मौन रख लो, वनवास में रहने लग जाओ, काय-क्लेश कर लो, महीने-महीने के उपवास करो, परन्तु इनकी शोभा तभी है, जब समता है। और यदि समता नहीं है, तो सब व्यर्थ है। रागियों का शृंगार तो वस्त्राभूषण होते हैं और साधु का शृंगार कोई है तो उसका नाम समता है। यथार्थ मानो आपको देखकर बालक भी न झिझके। वीरनंदी स्वामी ने 'आचारसार' ग्रंथ में निर्ग्रंथ मुनि की अति सुन्दर परिभाषा बनाई है—

जिनकी मुद्रा को देखकर बच्चे को भी डर न लगे, उसका नाम जैनमुनि है। कारण पूछो, क्यों? ज्ञानी! जब बचपन में घर में हंगामा करता था, तो माँ क्या कहती थी? अरे! शांत हो जा, नहीं तो बाबा उठाकर ले जायेगा। यानि बाबा से कितना डर लगता है। इसलिए जैनदर्शन में बाबा नहीं होता, जैनदर्शन में श्रमण, महाराज, निर्ग्रंथ, तपोधन, धरती के देवता होते हैं। ज्ञानी! श्रमण को देखकर किसी को डर नहीं लगता। कभी माँ ने नहीं कहा कि शांत हो जा, महाराज उठा ले जायेंगे? क्योंकि विश्व में सर्वाधिक विश्वास की कोई दशा है तो निर्ग्रंथ दशा है। यह निर्ग्रंथ मुद्रा है। कोई कपड़े, झोले, जेब नहीं है, तो उठाकर किसमें ले जायेंगे?

ज्ञानी! बेटा भी तुझे घर से निकालने लग जाए तो कह देना, 'बेटा! तेरा दोष नहीं है, मेरा ही कोई कर्म उदय आया होगा, तू निमित्त मात्र है।' प्रेम से चाबी देकर चले जाना और तुम्हारे परिणाम ज्यादा अच्छे हों तो उसके पैर भी छू लेना। क्या जाता है? जीवद्रव्य है। सुनो, बेटे के पैर कब छूना? बेटे! मैं धोखे में था। आज तूने सत्य का ज्ञान मुझे दिया है। ये दिन न आता तो तेरे राग में मेरा कुमरण हो जाता। तूने आज कितना अच्छा किया। मैं इस भ्रम में था कि तू मेरा है। तूने आज सत्य का ज्ञान दे दिया। आज से तू मेरा गुरु बन गया है। आज से तेरा राग और दुनियाँ के राग को छोड़कर निर्ग्रंथ गुरु के चरणों में जाकर जैनेश्वरी दीक्षा धारण करूँगा। दीक्षा लेकर वीरगति को प्राप्त करूँगा, निर्वाण को प्राप्त करूँगा। बेटे! तूने कितना अच्छा किया।

"आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्", आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

॥ भगवान् महावीर स्वामी की जय ॥

❖ ❖ ❖

सुख-दुःख कब?

धण-धण्णादि-समिद्धे, सुहं जहा होदि सव्वजीवाणं
मुणि-दाणादिसमिद्धे, सुहं तहा तं विणा दुक्खं ॥30॥

अन्वयार्थ—(जहा) जैसे **(धण-धण्णादि-समिद्धे)** धन-धान्यादि की समृद्धि से **(सव्वजीवाणं)** समस्त जीवों को **(सुहं)** सुख **(होदि)** होता है **(तहा)** उसी प्रकार **(मुणिदाणादिसमिद्धे)** मुनि-दान आदि की समृद्धि से **(सुहं)** सुख होता है **(तं विणा)** उसके बिना **(दुक्खं)** दुःख होता है।

पात्र-अपात्र का विवेक आवश्यक

पत्तविणा दाणं च सुपुत्त विणा बहुधणं महाखेत्तं।
चित्त विणा वय-गुण चारित्तं णिक्कारणं जाणे ॥31॥

अन्वयार्थ—(पत्त विणा) सुपात्र के बिना **(दाणं)** दान **(च)** और **(सुपुत्तविणा)** सुशील पुत्र के बिना **(बहुधणं)** बहुत धन और **(महाखेत्तं)** महाक्षेत्र-यानि जमीन जायदाद **(चित्त विणा)** भावों के बिना **(वय-गुण चारित्रं)** व्रत, गुण और चारित्र **(णिक्कारणं)** निष्फल **(जाणे)** जानो।

निर्माल्य द्रव्य के भोग का दुष्परिणाम

जिण्णुद्धार-पदिट्ठा-जिणपूया-तित्थवंदण वसेस-धणं।
जो भुञ्जदि सो भुञ्जदि, जिणदिट्ठं णरयगदिदुक्खं ॥32॥

अन्वयार्थ—(जो) जो व्यक्ति **(जिण्णुद्धार)** जीर्णोद्धार **(पत्तिट्ठा)** प्रतिष्ठा **(जिणपूया)** जिनपूजा **(तित्थवंदण)** तीर्थयात्रा के **(वसेसधणं)** अवशिष्ट धन को **(भुञ्जइ)** भोगता है **(सो)** वह **(णरयगदिदुक्खं)** नरकगति के दुःख को **(भुञ्जइ)** भोगता है **(जिणदिट्ठं)** ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है।

पूजा दान आदि के द्रव्य के अपहरण का परिणाम

पुत्त-कलत्त-विदूरो, दारिद्दो पंगुमूकबहिरंधो।
चांडालाइ-कुजादो, पूयादाणादि दव्वहरो ॥33॥

अन्वयार्थ—(पूयादाणादि) पूजा, दान आदि के **(दव्वहरो)** द्रव्य का अपहरण करने वाला **(पुत्तकलत्तविदूरो)** पुत्र-स्त्री रहित **(दारिद्दो)** दरिद्री **(पंगुमूकबहिरं धो)** लंगड़ा, गूंगा, बहरा, अंधा और **(चांडालाइ कुजादो)** चाण्डाल आदि कुजाति में उत्पन्न होता है।

भव्य बन्धुओ!

अन्तिम तीर्थेश भगवान् वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना, जिनेन्द्र वाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवंत हो! जयवंत हो वीतराग श्रमण संस्कृति।

आचार्यप्रवर भगवान् कुन्दकुन्द स्वामी रयणसार जी ग्रंथ में श्रमण-श्रावक उभय धर्मों का व्याख्यान करते हुए समझा रहे हैं—वे वीतरागी तपोधन, धरती के देवता, जिनकी दृष्टि निज पर टिकी हुई है, पर से भिन्न, निजत्व की लीनता को जिन्होंने सर्वस्व स्वीकार किया है, ऐसे वीतरागी तपोधन, पल-पल, श्वास-श्वास जिनकी निज की ओर है। उपसर्गकर्त्ता, और उपसर्गहर्त्ता, दोनों पर साम्यदृष्टि है, वही जैन है, वही जिन है। उपसर्गकर्त्ता, और उपसर्गहर्त्ता पर साम्यदृष्टि नहीं है, वह न जैन है, न जिन है। जैन भी नहीं है, जिन भी नहीं है। उपसर्गहर्त्ता मेरा सुकृत का उदय है। उपसर्गकर्त्ता, मेरा दुष्कृत का उदय है। इस बेचारे ने क्या किया है? यह तो निमित्त मात्र है। जो जैन होता है, वही जिन हो पाता है। जो जैन ही नहीं होता है, वह जिन हो ही नहीं सकता है। जिसको कर्मसिद्धान्त पर विश्वास है, जिसको विपाकविचय धर्म्यध्यान है, वही तो जैन है। जो विपाकविचय धर्म्य ध्यान में लीन हो लेता है और सम्यक्त्व को सिद्ध कर चुका है, वह देशजिन है। हे सम्यग्दृष्टि श्रावक! तेरी महिमा का क्या व्याख्यान करूँ? अपनी सत्ता को स्वीकारो, अपनी शक्ति को स्वीकारो। गरीब के बेटे बनकर मत बैठो, अपने आप को दरिद्री मत स्वीकारो। तुम दरिद्री नहीं हो।

पिता की मृत्यु हो गई, बेटा भीख माँगने लगा और हर व्यक्ति यही कहता कि इसको डाल दो, दे दो। अहो आश्चर्य! बाहर की सम्पत्ति के अभाव में लोगों की भाषा की सम्पत्ति भी विकृत हो जाती है। गरीब आदमी वृद्ध ही क्यों न हो, बच्चा भी दरिद्री की भाषा में ही बोलता है—'ए बूढ़े!' कोई आपको बूढ़ा भी बोले तो दुःखी मत होना। भीतर की गर्मी भी कम हो जाती है तो शरीर भी ठण्डा हो जाता है। व्यक्ति मरनेवाला है, इस बात का पता भी शरीर की गर्मी से चल जाता है कि शरीर ठण्डा होने लगा है, यानि ठण्डा होनेवाला है। जिसका पुण्य ठण्डा हो चुका होता है, उसके सारे काम ठण्डे हो जाते हैं। कई दर्शनों में परम्परा है कि 8-9 दिनों तक पूजे जाते हैं जो देवी देवता और अन्तिम दिन पानी में ठण्डे कर दिये जाते हैं। ठण्डे हो गये, यानि

झाँकी समाप्त। ज्ञानी! तन ठण्डा हो गया, झाँकी समाप्त। यह किसको दिखा रहा है, मैं अमुक हूँ, नेता हूँ, मैं क्षत्रिय हूँ, मैं वैश्य हूँ, मैं ब्राह्मण हूँ? यह अहम् किस बात पर कर रहा था? ठण्डा हुआ, झाँकी समाप्त। कितनी ही सुन्दर, लाखों की प्रतिमा रखी जाए, अन्तिम दिन क्या होता है? तालाब में जाकर समाप्त। मुमुक्षु! आयुकर्म समाप्त हुआ, तो जीवन की झाँकी समाप्त हो गई। अब कौन देखने आएगा कि तूने इतना बड़ा काम किया था? जब पुण्य ठण्डा हो जाता है, तो बच्चों की भाषा भी बूढ़ों के प्रति ठण्डी निकलती है। यथार्थ मानना, पुण्य की गर्मी जब तक है, हजारों लोग तेरा साथ देंगे और जिस दिन पुण्य की गर्मी ठण्डी हो गई, कोई साथ देने नहीं आयेगा। मित्रों को संभालने की टेंशन मत लो। जिसके द्वारा सबका संचालन होता है, उसको ही पकड़ो। सिंह बनो, श्वान मत बनो। सिंह लाठी को नहीं, लाठीवान् को पकड़ता है। श्वान लाठी को पकड़ता है। सिंह बनो। आप बोलोगे कि सब साथ दे रहे हैं, लेकिन बताओ कौन साथ दे रहा है? पुण्य साथ दे रहा है, तो उसे ही पकड़ कर रखो। श्वास-श्वास में ऐसा काम करो जिससे पुण्य का संचय हो, पाप का क्षय हो। परन्तु दृष्टि में यही रखो कि पुण्य-पाप दोनों का क्षय हो। संसार का सुख चाहिए, तो पाप क्षय करके पुण्य इकट्ठा करना पड़ेगा। पुण्य की मधुरता भी मोक्ष नहीं दे पायेगी। पुण्य की मधुरता में पंचेन्द्रिय की भोगसामग्री प्राप्त होती है। पंचेन्द्रिय की भोगसामग्री में लिप्त हो गया, तो फल नरक ही होगा। जैन बनो, जिन बनो। अपने आप को दरिद्री मत मानो।

बेटा भीख माँग रहा था, सत्य बताऊँ ज्ञानी? यदि आपने किसी को चांदी का कटोरा देकर उसमें खीर डाली है, तो जितना उसे चांदी के कटोरे का आनंद नहीं आयेगा और तेरे द्वारा डाली गयी खीर में आनंद नहीं आयेगा, उतना कष्ट 'दे दो' शब्द में आयेगा। दे दो-दे दो, डाल दो-डाल दो। साधुओं को भी आहार दो तो ऐसे शब्दों का प्रयोग मत किया करो। ये भिखारी नहीं हैं, ये श्रमण हैं। 'डाल दो' कभी मत बोलना। प्रत्याख्यान कर दो इस शब्द का। एक क्षण को गरीब का हृदय तो बना लो। जितना तुम देते नहीं हो, उतना उसका सम्मान छीन लेते हो। एक रोटी का टुकड़ा दे भी दिया तो कहते हो, 'चल जा। कल से नहीं आना।' काश! ऐसा कभी तेरे साथ होता। आज अनुभव करके देख। मेरा पुण्य काम कर रहा था, सो मैं गरीब नहीं बना हूँ। असम्मान किसका हो रहा है? पर हे जीव! यदि कोई असम्मान भी करे तो उसे अपना असम्मान मत स्वीकार करना, क्योंकि जो अपमान हो रहा है यह पाप प्रकृति का हो रहा है। भगवानात्मा का कोई असम्मान नहीं होता है और सम्मान भी करने लग जाए कोई, हजार मालाएँ पहना दें, तो मुस्कुराने मत लग जाना, क्योंकि ये तेरा सम्मान नहीं है, ज्ञानी! यह पुण्यप्रकृति का सम्मान चल रहा है। यदि पुण्यप्रकृति नष्ट हो गई, तो तू देख लेना कल क्या होगा?

बेटा गरीब था, पर उसके पिता की जब मृत्यु हुई थी तो एक सम्पन्न व्यक्ति को बोलकर गये थे कि बेटा जब समझदार हो जाए, इस दीवार में मैंने रत्न रखे हुए हैं, उसको खोलकर दे देना। परन्तु इसके पहले तो बेटा चारों तरफ से गरीबी की अनुभूति ले रहा था। देखा, जब 18 वर्ष का युवा हो चुका है, चारों तरफ की ठोकरें खा चुका है। बुलाया उस सम्पन्न व्यक्ति ने, भैया! तू भीख क्यों माँगता है? बेचारा फूट-फूट कर रो पड़ता है। इतना ध्यान रखना, पुण्यात्मा जीव द्वारा किसी पुण्यक्षीण को बेटा कहने मात्र से उसके आधे कष्ट दूर हो जाते हैं। तुम्हारा जाता क्या है? गरीब से अच्छे से बोल भी नहीं सकते हो क्या? जैसे ही कहा—'बेटा! तू करोड़पति है', वह रोकर कहता है, 'दादा! दुनियाँ हँसी करे तो सहन हो जाती है, पर आपके द्वारा की गई हँसी सहन नहीं होती है। मेरे पिता नहीं हैं, मैं आपको ही पितातुल्य मानता हूँ, आपके चरण स्पर्श करता हूँ, लेकिन इस गरीब को जीने दो-जीने दो, पर हँसी तो मत करो मेरी। 'नहीं, बेटे! हँसी नहीं कर रहा हूँ। बेटा! तू करोड़पति है।' तो थोड़ा गंभीर होता है वह युवा, 'मैं कैसे करोड़पति हूँ?' वह व्यक्ति अपने साथ ले जाता है। जैसे-ही दीवार खोदी, रत्न टपकने लगे। धीरे-से कहता है—दादा! इतने दिन आपने मुझे भीख मँगवाई है, जब आपको मालूम था कि मेरे पिताजी ये देकर गये हैं? बेटा! यदि मैं उस समय खोलकर दे देता तुझे, तो तू संभाल नहीं पाता, काँच मानता। आज तू समझदार हो गया है।

भैया! दूसरा दिन क्या, शाम नहीं हुई, नगर के विशेष कार्यक्रमों में फीता काटने उस युवा को बुलाना शुरू हो गया। भैया! बेटा गरीब था क्या ? न बेटा गरीब था, न बेटा गरीब है। जब तक बेटे को अपने घर की दीवार के मोतियों का बोध नहीं था, तब तक बेटा गरीब है और दीवार के मोती पता चल गए, तब बेटा गरीब बचा कहाँ है? अहो मुमुक्षुओ! तुम दरिद्री नहीं हो, गरीब नहीं हो। तेरी मोह की दीवार के भीतर रत्नत्रय के मोती भरे हुए हैं, उसको तोड़कर देख, तू भगवानात्मा है। कब तक इन मुनियों की वन्दना करते रहोगे? तुम सब मुनिराज हो, कपड़े उतारकर फेंक दो। जब पितातुल्य व्यक्ति के बताने से वह युवा मुस्कुरा गया, तुमको तो गुरु बता रहे हैं, 'बेटा! मुस्कुराओ, तेरे अंदर भगवान् बैठा हुआ है।' अहो! सम्यक्त्व की महिमा तो देखो, एक क्षण पहले मिथ्यादृष्टि कहला रहा था और सम्यक्त्व प्रकट होते ही 'जिन' संज्ञा प्राप्त हो गई। देशजिन, जिनवर, जिनवृषभ। विद्वानों को वैभव बताना चाहिए हमारे विद्यार्थियों को, आप लोगों को। इन लोगों ने छुपा कर रखा, आपसे भीख मँगवा रहे हैं। 'जिन' संज्ञा प्रारम्भ हो जाती है। चतुर्थ गुणस्थान से क्या, द्वितीय गुणस्थान से ही। और एक आचार्य भगवान् की अपेक्षा से चतुर्थ गुणस्थान से देशजिन। जिसने मिथ्यात्व को जीत लिया है, वह देशजिन हो गया। हे

जैनियो! तुम गरीब नहीं हो। वह जिनअनुभूति, जिनत्व की दृष्टि से, जो जिनेन्द्र सिद्ध भगवन्तों में है, वही चेतनत्व दृष्टि से तेरी भगवानात्मा में है। अपने आप को हीन मत समझो। निज की विभुत्व शक्ति पर दृष्टिपात करो। समयसार जी ग्रंथ में आत्मा की 47 शक्तियों का वर्णन है। इन 47 शक्तियों में एक विभुत्व शक्ति है। तू अपनी विभुत्व शक्ति को भूल रहा है। मैं जिन हूँ। छठवें गुणस्थान अथवा पाँचवें गुणस्थान तक 'देशजिन'। छठवें गुणस्थान से 12वें गुणस्थान के पहले तक 'जिन', बारहवें गुणस्थान में 'जिनवर' और तेरहवें गुणस्थान में 'जिनवृषभ'।

दूसरी दृष्टि से छठवें गुणस्थान तक देशजिन, सातवें से बारहवें तक जिन, तेरहवें में जिनवर और 14वें गुणस्थान में तीर्थंकर भगवान्, जिनवृषभ। जो जिनवरों में सर्वश्रेष्ठ हैं, वे जिनवृषभ। जिसको श्वासप्रमाण काल भी वीतराग सर्वज्ञ प्रभु के प्रति श्रद्धा हो गई, तो वह 'जिन' बन गया। भवन की नींव रखते ही शान्ति मिलती है कि नहीं, कि चलो, अब मंजिल तो खड़ी हो ही जाएगी? जिसने सम्यक्त्व प्राप्त कर लिया है, मिथ्यात्व की भूमि को छोड़ दिया है, विश्वास रखना, उसका मोक्ष मुट्ठी में आ चुका है। जैसे धन इकट्ठा होता जाए, सामान खरीदते जाना और मंजिल खड़ी करते जाना। सम्यक्त्व हो गया, जैसे शक्ति मिलती जाये, देशव्रत धारण करना, महाव्रत धारण करना और महाव्रत धारण करके पण्डित मरण करना और पण्डित मरण का फल पण्डित-पण्डित मरण हो ही जायेगा।

ज्ञानी! तुम जिन हो। सम्यग्दृष्टि जीव देशजिन है। जिसने मिथ्यात्व को जीत लिया है, अभक्ष्य के सेवन पर नियंत्रण किया है, अपनी इन्द्रिय को जीत रहा है। दृढ़संकल्प शक्ति है, तो कोई हिला नहीं सकता है। जिसकी संकल्पशक्ति ढीली है, उसे कोई बचा नहीं सकता है। आवश्यक नहीं कि आप पूरा पालन कर पायें, पर इतना तो है कि मोक्षमार्ग का स्वरूप क्या है, इतना जानकर के, आज का उपदेश देशनालब्धि का काम करेगा। किसी-न-किसी भव में ये संस्कार तेरे काम आयेंगे। वहाँ तू श्रावक ही नहीं, तू तो महामुनि बन जायेगा। सुनते जाओ, सुनने मात्र से त्याग की भावना बढ़ती है।

बाली नाम के मुनिराज हुए हैं। रावण ने जब कैलाश को हिलाना प्रारम्भ किया, तो मुनिराज ने अँगूठा दबा दिया। इतना बल कहाँ से आ गया? ये मुनिराज कौन थे? पहले भव में मृग (हिरण) थे। जंगल में एक वीतरागी तपोधन मुनिराज अपने कण्ठ से जिनवाणी का पाठ करते थे तो संगीतप्रेमी हिरण आकर खड़ा हो जाता। हिरण जब जिनवाणी सुन रहा था। धवला जी, षट्खण्डागम जी की पहली पुस्तक में लिखा हुआ है, जो जीव श्रद्धापूर्वक, शुद्धिपूर्वक,

अरिहंत के उपदेश (श्रुत) को सुनता है, वह असंख्यात् गुणश्रेणी कर्म की निर्जरा करता है। उस मृग ने मुनिराज का पाठ सुनते-सुनते ऐसे पुण्य का बंध किया और इतने कर्मों की निर्जरा की कि अगले ही भव में वह बाली हुआ। बाली मुनिराज होकर इतना बल मिला कि कैलाश पर्वत पर स्थित 72 जिनालयों की रक्षा में कितना बड़ा उपक्रम किया, अपने पैर का अँगूठा दबा दिया, इतने में बेचारा रावण रो पड़ा। रावण का नाम 'रावण' नहीं था। पर वहाँ जब बाली मुनिराज ने अँगूठा दबाया, तो वह रोने लग गया, इसलिए उसका नाम 'रावण' हो गया। इसलिए जिनवाणी को, तत्त्व को प्रीतिपूर्वक सुनना। आप भी कभी प्रवचन करो तो ज्ञानी बनकर कभी मत करना। भव्यों का कल्याण हो, ऐसा विचार कर प्रवचन करना। वक्ता बनकर मत बैठना, श्रोता बनकर बैठना। जो तुम दूसरे को सुना रहे हो, वह स्वयं को भी सुनाना। विश्वास मानना, जो विशुद्धि सामायिक में आती है, मुझे तो वैसी-ही विशुद्धि इस मंच पर आती है।

आचार्य भगवान् ने 'आचारसार' ग्रंथ में उल्लेख किया है—साधुपुरुषों को साधुपुरुषों से ही संवाद करना चाहिए। आचार्यों को दीक्षितों से ही बात करना चाहिए, अदीक्षितों से बात नहीं करनी चाहिए। ज्ञानी! हुआ कुछ नहीं है, अपने को कर्मनिर्जरा करनी है कि नहीं? विश्वास करो, भोजन जल्दी वही पकता है जिस पर ढक्कन होता है। जितना ढक्कन (मुख) बंद रखोगे, उतनी वाष्प बनेगी, उतनी ऊर्जा संचित होगी, उतना जल्दी गमन होगा।

जो जैन है, वह जिन हो सकता है। जो जैन ही नहीं है, वह जिन नहीं हो सकता है। सतानेवाला दूसरा हो सकता है, पर दूसरा तेरे कर्म का कर्ता नहीं है। जो सताने आया है, वह कर्म नहीं है, वह कर्मोदय का कार्य दिखाने आया है। परन्तु कर्म तूने किया था, उसका उदय है, इसलिए उपसर्ग करने वाले को, उपसर्ग हरने वाले को, दोनों को साम्य भाव से देखता है, उसका नाम जैन है, वही जिन बनता है।

आचार्यभगवान् कुन्दकुन्द स्वामी कह रहे हैं—**धणधण्णादिसमिद्धे**—जैसे धन-धान्यादि से समृद्ध होने पर **'सुहं जहा होदि सव्व जीवाणं'**—संसार के सभी जीवों को सुख की अनुभूति होती है। परन्तु यथार्थ मानो, धन-सम्पत्ति से युक्त जीव को भी एक क्षण को सुख मिलता है। जब घर में दिगम्बर मुनि पधार जाते हैं, आप लोग तो अनुभव करते हो, हम लोग भी स्वयं वेदन करते हैं इस बात का कि श्रावक के यहाँ जैसे ही पड़गाहन होता है, उसका चेहरा खिल जाता है। बीमार व्यक्ति भी निरोगता का अनुभव करता है। गरीब भी है, जिस दिन उसके घर में साधु के आहार हो जायें, उस दिन पूरे मोहल्ले के लोग उसके यहाँ पहुँचते हैं, वह भी

अपने-आप में महाअमीरी का अनुभव करता है। जिसके घर में निर्ग्रंथ तपोधन पधार गए, उससे बड़ा भाग्यवान् जगत् में कोई नहीं है। **मुणिदाणादि समिद्धे, सुहं तहा तं विणा दुक्खं**—जो मुनि को दान देता है, वह सुखी होता है। जो दान नहीं देता है, वह दु:खी होता है।

पत्त विणा दाणं—पात्र के बिना दान और **सुपुत्त विणा बहुधणं।** भैया! इतना तूने कमाया, किसके लिए? यदि घर में सुपुत्र नहीं है तो पिता का चेहरा देखो। बेचारा रोता रहता है कि यह सम्पत्ति किसके लिए? सुपुत्र है तो सम्पत्ति भी शोभा देती है। विशाल खेत हैं, धन है, सम्पत्ति है, परन्तु संतान न हो तो बेचारे की सम्पत्ति कोई काम की नहीं है, व्यवहार से। ऐसे-ही वैराग्य है नहीं, परिणाम हैं नहीं, बड़े-बड़े नियम ले रहा है, तो वैराग्य से रहित चारित्र, चित्त की विशुद्धि बिना चारित्र, सब व्यर्थ है, ऐसे-ही सुपात्र के बिना दिया गया दान भी व्यर्थ है।

"आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्"। आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

॥ भगवान् महावीर स्वामी की जय ॥

❖ ❖ ❖

पूजा, दान के द्रव्य का अपहरण — बीमारियों का घर

इच्छिदफलं ण लब्भदि, जदि लब्भइ सो ण-भुञ्जदे णियदं।
वाहीणमायरो सो, पूयादाणादि दव्वहरो ॥34॥

अन्वयार्थ—(पूयादाणादिव्वहरो) पूजा-दानादि के द्रव्य का अपहरण करने वाला **(इच्छिदफलं)** इच्छित फल को **(ण लब्भदि)** प्राप्त नहीं करता है **(जदि)** यदि **(लब्भइ)** प्राप्त करता है-तो **(सो)** वह **(ण भुञ्जदे)** उसको भोग नहीं पाता **(णियदं)** यह निश्चित है **(सो)** वह **(वाहीणमायरो)** व्याधियों का घर बन जाता है।

धर्म-द्रव्य के अपहरण से विकलांग

गदहत्थपादणासिय-कण्णउरंगुल विहीणदिट्ठीए।
जो तिव्व दुक्खमूलो-पूयादाणादि दव्वहरो ॥35॥

अन्वयार्थ—(जो) जो **(पूयादाणाइदव्वहरो)** पूजा, दान आदि के द्रव्य का अपहरण करनेवाला है—वह **(गयहत्थ-पाद-णासिय-कण्ण-उरंगुल)** हाथ, पैर, नाक, कान, छाती और अंगुली से हीन **(विहीणदिट्ठीए)** दृष्टिहीन और **(तिव्वदुक्खमूलो)** तीव्र दु:ख को प्राप्त होता है।

पूजा-दानादि धर्मकार्यों में अन्तराय का फल

खय-कुट्ठ-मूल-सूला, लूय-भयंदर जलोय रक्खिसिरो।
सीदुण्हवाहिरादि, पूयादाणंतरायकम्मफलं ॥36॥

अन्वयार्थ—(खय-कुट्ठ-मूल-सूला) क्षय, कुष्ठ, मूल, शूल **(लूय-भयंदर-जलोयरक्खिसिरो)** लूता **(एक वातिक रोग)** अथवा मकड़ा का फेरना, भगंदर, जलोदर, नेत्ररोग, सिर के रोग **(सीदुण्हवा हिरादि)** शीतोष्ण से होने वाली सन्निपात आदि व्याधियाँ—ये सब **(पूयादाणंतरायकम्मफलं)** पूजा, दान, आदि में अन्तराय डालने के कर्मफल हैं।

भव्य बन्धुओ!

अन्तिम तीर्थेश भगवान् वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना, जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति। आचार्यभगवान् कुन्दकुन्द स्वामी ने तीर्थंकर वर्द्धमान की दिव्यदेशना को आत्मसात करके वस्तुतत्त्व की प्ररूपणा की है। जहाँ

द्रव्यदृष्टि है, वहाँ द्रव्यदृष्टि नहीं है। 'द्रव्य' के अर्थ को समझो। आत्मद्रव्य दृष्टि है, वहाँ धनद्रव्यदृष्टि नहीं है और जहाँ धन पर दृष्टि है, वहाँ आत्मद्रव्य पर दृष्टि नहीं है। आत्मधर्म और बहिर्द्रव्य, इनमें महान् अंतर है। धर्म की व्याख्या, धर्म का स्वरूप बहुत भिन्न है। जो लोक की समझ है, वह धर्म नहीं है। धर्म तो धर्म है। द्रव्यदृष्टि के राग में द्रव्य की दृष्टि खो रहा है। धर्म करने भी चला, वहाँ पर भी व्यापार करने पहुँच गया। अहो आश्चर्य! ये पुद्गल के टुकड़े इतने महान् हो गए कि तीनलोक के नाथ के चरणों में आकर भी हम धन को ही देख पाए, धर्म को नहीं देख पाए। प्रभु के पादमूल में पहुँचकर हमने व्यापार किया कि हे नाथ! अमुक कार्य की सिद्धि हो जाए तो मैं ऐसा विधान करूँगा। विश्वास रखो, यदि भगवान् की भक्ति / आराधना करते हो, तो कार्य की सिद्धि स्वयमेव हो जाती, लेकिन तीनलोक के नाथ के चरणों में आकर तूने भगवान् के साथ भी व्यापार करना नहीं छोड़ा। वीतरागी तो वीतरागी हैं। वीतरागी वित्तरागी नहीं हैं। चाहे आप कोटि-कोटि द्रव्य का द्रव्य चढ़ा दो, चाहे सूखे हाथ जोड़कर चले जाओ। भगवान् को न आपके द्रव्य से प्रयोजन है, न सूखे हाथों से प्रयोजन है। परन्तु ध्रुव सत्य यह है, यदि आपके घर में सम्पत्ति प्राप्त हुई है तो निर्लोभ होकर उसको छोड़ देना। कालकूट ज़हर, यह सबसे खोटा ज़हर है। अजगर यदि फुंफकार मारता है तो मात्र शरीर का नाश होगा। सिंह ने यदि पकड़ लिया, तो वर्तमान पर्याय का नाश होगा। परन्तु जिसको लोभ ने पकड़ लिया है, उसके भव-भव का नाश होगा। उन योगियों को निहारना जो अजगर के मुख में बैठे थे। अजगर सोच रहा है कि मेरा ग्रास बन रहा है, परन्तु तपोधन निजस्वभाव में लीन हैं। तीर्थंकर पार्श्वनाथ स्वामी से पूछना। पूर्व पर्याय में, अजगर ने मुनि के जीव को सीधा मुख में रख लिया। हे अजगर! तू जिसे निगल रहा है, वह देह मात्र है, धर्म नहीं है। परन्तु जो तीर्थ के द्रव्य को खाता है, वह धर्म को ही निगल रहा है। अजगर द्वारा निगले गए मुनिराज का भविष्य खोटा नहीं हुआ। वे मुनिराज तो तीर्थंकर पार्श्वनाथ हो गए। धन के राग में धर्म को मत बेच देना, ईमान को मत बेच देना। धन के राग में अपनी माँ का शील भंग मत कर देना। जो व्यक्ति दान बोलकर दान को देता नहीं है, तो स्वयं की माँ के साथ व्यभिचार करने में जो पाप का बंध होता है, वही जिनेन्द्र के द्रव्य को हड़पने वाले को बंध होता है।

जो यहाँ नहीं आये हैं, उनके कानों तक यह जरूर भेज देना, यदि दया, करुणा है तो। खासकर उन लोगों के पास जो तीर्थों के ट्रस्टी हैं, मंदिरों के व्यवस्थापक हैं। जरूर भेज देना। भैया! मंच, माला यह सबकुछ नहीं है। मोक्षमार्ग की प्राप्ति होना, जैनकुल में जन्म लेना, कितना आपने तपश्चरण किया होगा? जहाँ आप जन्मे हो, उस कुल की प्राप्ति आपकी पूर्व-भव की तपस्या का बोध करवा रही है। 'सुभाषित-रत्न-संदोह' नाम के ग्रंथ में लिखा है, जिसकी माँ

धर्मात्मा हो, पिता धर्मात्मा हो, पत्नी धर्मात्मा हो, जिसके पुत्र-पुत्री धर्मात्मा हों, जिस घर में सुबह से णमोकार गूँजता हो, यह घर पूर्वभव के तपस्वियों का समुदाय आकर मिल गया है, जो धर्ममय जीवन व्यतीत कर रहे हैं। और जिसके घर में प्रतिदिन धन के नाम पर झगड़ा होता हो, टुकड़ों के पीछे लड़ते हों, ये सब मालूम कौन हैं? गाय-बैल को घास डालो, उसके सामने कितनी ही हरी घास पड़ी होगी, परन्तु वह दूसरे की घास में मुख मारता है। अपने धन को सामने रखे होने पर भी, जिसकी आँख दूसरे के धन पर जा रही है, वे पूर्वभव के बैरी तिर्यंच आकर इकट्ठे हो गए हैं, जो दूसरे की घास में मुख मार रहे हैं। सामने सबकुछ है। अपने भाग्य को देखो, भगवान् को देखो, दूसरे से दृष्टि हटा लो।

निर्माल्य का द्रव्य खाना कालकूट ज़हर है। मन्दिर का काम था तो मुस्कुरा गया, अवश्य करूँगा। जाना जबलपुर था स्वयं के काम से और जैसे-ही मन्दिर का काम मिल गया, तो मुस्कुरा गया। वहाँ किसी ठेले पर इसने पान भी खाया, उसका भी खर्च डाल दिया। अब तो अच्छा भोजन करना है। यदि दूध भी पीया है, उसका खर्च डाल दिया। हे ज्ञानी! यदि तू घर में होता तो उपवास करता क्या? आकर बिल पकड़ा दिया—लो, हम मन्दिर के काम से गए थे। हे ज्ञानी! तू इस कर्म को करके कहाँ जाएगा? क्या बात है, कुछ क्षेत्रों में ट्रस्टीगण ऐसे बैठे हुए हैं जैसे काला नाग बैठा हो, वो हटना पसंद नहीं करते। बोले—क्यों? हमारी इज्जत दाँव पर है। कोई इनाम, यश, ख्याति मिल रही है? ज्ञानी! एक घूँट पानी माली के हाथ का पी लिया तुमने, तो घोर बंध होगा। मन्दिर का बागवान देव-शास्त्र-गुरु की सेवा के लिए लगाया है, यह ट्रस्टियों की सेवा के लिए नहीं लगा है। यदि आपने उससे अपना स्वयं का काम करवाया है तो वह निर्माल्य का सेवन हो गया। तत्त्व को जाना नहीं, समझा नहीं। इन बेचारे श्रावकों का दोष नहीं, बताने वालों का दोष है, बताया क्यों नहीं है? इतना घोर पाप का बंध निर्माल्य सेवन में हो रहा है। मन्दिर के काम से गया था और हजारों काम अपने करके लाया है। मन्दिर के लिए छड़ें चाहिए तो ट्रक में लादेगा, अपना पूरा सामान लाद लायेगा और कहेगा लो, भैया! यह ट्रांसपोर्ट का पैसा दो। यदि जिनालय के काम में आ रहे फावड़ा आदि उपकरण भी हैं, उसको भी यदि तुमने अपने घर के काम में लगाया है, तो तीव्र पाप का बंध होना है। उस दिन तड़पना, जब अंगुलियों से टपकेगा, सर्वांग से टपकेगा, तब पता चलेगा कि टपक क्या रहा है? यह कुष्ठ नहीं टपक रहा है, जिनेन्द्र के द्रव्य का हरण किया था वह नीचे टपक रहा है।

यदि सूर्यग्रहण-चंद्रग्रहण पड़े, तो कोई परमात्मा संकट में नहीं है। तिलोयपण्णत्ति, त्रिलोकसार ग्रंथ के अनुसार, राहु-केतु विमान जब सामने आ जाते हैं, उस समय क्रमशः सूर्यग्रहण व चंद्रग्रहण पड़ता है। परन्तु प्राकृतिक प्रकोप है। ऐसे समय में सिद्धांतशास्त्रों का पाठन-पठन

नहीं होता, पूजन-भक्ति करो, सामान्य ग्रंथों को पढ़ो। वह प्राकृतिक प्रकोप जब होता है तो गर्भिणी माँ से बुजुर्ग माताएँ कहती हैं—बेटी! अभी बाहर मत निकलना, अंदर बैठो। प्रकृति का प्रकोप गर्भस्थ शिशु पर पड़ सकता है। एक समय था जब कोई शूद्र पुरुष निकल गया, किसी उच्च वर्ण की मटकी को छू लिया हो तो वह पानी नहीं पीता था। कोई हत्यारा पुरुष तुझे पानी पिलाये, तो क्या आप पीना पसंद करोगे? हे माँ! जैसे सूर्य-चंद्र ग्रहण से अपने शरीर की रक्षा कर रही हो। पापी की छाया पड़ा पानी नहीं पीते हो। निर्माल्य का द्रव्य किसी ने खाया हो उसकी छाया भी पड़ जाए, ऐसे उस छाया पड़े पानी को मत पी लेना।

चंदा का, तीर्थभूमि का आहार दिगम्बर मुनि को परिपूर्ण निषेध है। ऐसा नहीं करना कि कमेटी की तरफ से दूध आता है, सब चौकों में बाँट दिया जाता है। अब उस कमेटी से पूछना—द्रव्य कहाँ से आता है? बोले कि गोलक के पैसों से आता है। हे ज्ञानी! मुनियों का आहार चंदे का नहीं होता है, व्यक्तिगत द्रव्य से होता है। जिस गरीब ने मन्दिर में दान दिया है, वह अरिहंत की प्रतिमा और जिनालय की रक्षा के लिए दिया है, किसी के मुख में रखने के लिए नहीं दिया है। महाराज के चातुर्मास हेतु निमन्त्रण करने गए थे, ये सब मन्दिर से लेकर चढ़ा दिए थे। ज्ञानी! एक जिनलिंगी मुनि की आराधना करने के लिए तू इतना दरिद्री हो गया कि पूजा के द्रव्य से ही पूजा कर रहा है। आश्रम के खेत के फल घर में लेकर मत आना। हाँ, लेकर आ सकते हो, लेकिन जितना द्रव्य आप बाजार में देते हो उतना द्रव्य आप मन्दिर में दे देना। हाँ, अपनी दुकानें किराये पर दे रखी हैं और मन्दिर की दुकानों पर कब्जा जमाए हुए हैं। और कहता है, महाराज! दुनियाँ तो पाप का खाती है, मैं तो पुण्य का खाता हूँ, मन्दिर का खाता हूँ। ज्ञानी! जो दूसरे पाप करके कमा कर लाए थे, उसको ही मन्दिर में डाला था, उसको तू खा रहा है, तू कहाँ जाएगा? बल्कि यह होना चाहिए कि जिनालय की गोलक से पुजारी और माली को भी द्रव्य नहीं देना चाहिए, उनकी व्यवस्था अलग से होनी चाहिए। यदि कोई पण्डित कहीं विधान करवाने जाए तो उसे समिति से पूछ लेना चाहिए, भैया! यह जो आप हमें द्रव्य दे रहे हो, यह मन्दिर की गोलक का है या समाज ने अलग से व्यवस्था बनाई है? समाज अलग से व्यवस्था बनाये तो स्वीकार कर लेना। यदि मन्दिर की गोलक से हो, तो वह द्रव्य अलग कर देना। दान कर देना। मैं इतना दरिद्री नहीं हूँ कि गरीबों के दान से मैं अपना पेट भरूँगा। क्योंकि ऐसा नहीं चलता कि सिद्धांत में समझौता हो जाए। गाथा आप सबके पास है, कोई यह न बोलने लग जाए कि महाराज अपने मन से बोलते रहते हैं। भैया! ध्यान रखो, जो जिनमन्दिरों के कोषाध्यक्ष हों, वह यदि दान के द्रव्य से व्यापार कर रहे हैं, तो जरूरी नहीं है तू उसको वापस कर पायेगा। उसके पहले तेरी पर्याय ही पूरी हो गई तो फिर क्या होगा? मैं तो सभी विद्वानों से

कहता हूँ कि वर्ष में कई नगरों में प्रवचन करने जाते हो आप, विद्वानो! दस दिन के प्रवचन में एक दिन का प्रवचन निर्माल्य पर अवश्य दिया करो। क्योंकि ये परम्परा इतनी बढ़ चुकी है कि लोग उसको कुछ समझ ही नहीं रहे हैं। गाथा में पहला शब्द है-जीर्णोद्धार। तीर्थ के जीर्णोद्धार के लिए चंदा वसूल करने के बदले प्रतिशत लेते हैं। अहो आश्चर्य! इसको कोई दूसरा काम नहीं मिला। तीनलोक के नाथ के तीर्थ के नाम से अपना घर चला रहा है। तीर्थ पर करुणा थी तो अपने घर का दान दे देते। लेकिन तीर्थ के नाम पर एक-एक पैसा इकट्ठा करके, अपने पेट में ले जाना, यह घोर पापबंध का कारण है। इस लोभ ने और राग ने धर्म की परिभाषाएँ बदल दीं। ज्ञानी! नौकरी भी करना हो तो तीर्थ के नाम पर नौकरी मत करना, सेवा करो। और यदि आपने किसी को रखा है तो आप समिति की तरफ से इतना दो कि वह चोरी न कर पाए, उसका ईमान गड़बड़ न हो पाए। यही नहीं, कमेटी के लोग भी चोरी करते पकड़े गए हैं। मालूम चला सीमेण्ट की 40 बोरियाँ आयीं, उसमें 15 अध्यक्ष के घर पहुँच गयीं। भैया! एक खाली बोरी भी तुम्हारे घर गई है तो वह भी भोगना पड़ेगा। आपके चेहरे बनाने से क्या गाथा का अर्थ बदल दूँ? यदि विशुद्धसागर गाथा का अर्थ बदलते हैं तो इनसे बड़ा पापी जगत् में कोई नहीं होगा। जिनवाणी के शब्दों का अर्थ बदलकर प्रेषित करना समाज को छलना हो जाएगा। फिर मैं विशुद्धसागर मुनि आचार्य नहीं कहलाऊँगा, डाकू बन जाऊँगा। जो मुनि जिनवाणी के एक भी अक्षर को अपने मन का बोलता है, वह शुद्ध डाका डालता है। असमाधि हो जाएगी। जीर्णोद्धार के नाम से पैसा इकट्ठा किया और मन्दिर का जीर्णोद्धार वर्षों तक चल रहा है। जिसके घर में खाने को दाना नहीं था, उसकी बड़ी-बड़ी बिल्डिंगें बन चुकी हैं, यह द्रव्य कहाँ से आया तेरे घर में? राग और लोभ दोनों बैठे हुए हैं।

यह ऐसा काल चल रहा है जहाँ पाखण्डियों की संख्या बढ़ रही है और धर्म के नाम पर लोगों को छला जा रहा है। जीर्णोद्धार के नाम पर धन इकट्ठा करना। (पदिट्ठा) पंचकल्याणक प्रतिष्ठा में एक लाख लगा दो तो 3-4 लाख तो अपने आप आ जायेंगे वापस। भैया! भगवान् की प्रतिष्ठा करना, लेकिन प्रतिष्ठा के लिए नहीं करना। आत्मकल्याण की प्रतिष्ठा के लिए भगवान् की प्रतिष्ठा करना। जब तक पंचकल्याणक नहीं हुए थे, तब तक समाज में एकता थी। जैसे-ही रथ की फेरी फिरी, टुकड़े-टुकड़े हो गये समाज के। हुआ क्या? इसके पहले श्री नहीं थी, अब श्री दिखने लग गई। 'श्री और श्रीमति'। या तो श्री पर मति जाए या श्रीमति पर मति जाए। चाहे महाभारत हो, चाहे रामायण हो। एक 'श्रीमति' पर हुई है, दूसरी 'श्री' पर हुई है। जब भी जीव की दुर्गति होगी तो दो के कारण ही होगी—'श्री' और 'श्रीमति'।

पंचकल्याणक प्रतिष्ठा, वेदी प्रतिष्ठा, जिनबिम्ब प्रतिष्ठा। इनका नाम लेकर धन इकट्ठा किया। जिनपूजा—भगवान् की पूजन के नाम से धन इकट्ठा किया और उस धन का उपयोग दूसरे काम में किया, अपने उदर के लिए किया।

तित्थवंदण—तीर्थवंदना के लिए, भैया! बस कर रहा हूँ और किराया रख दिया। ज्ञानी! तीर्थवंदन कराना ही था तो गरीबों को अपने द्रव्य से करवाते अथवा सामर्थ्य नहीं थी तो उतना ही किराया लेते जितना वास्तव में था। दूना लिया और लाभ कमाया। जीर्णोद्धार, प्रतिष्ठा, जिनपूजा, तीर्थवंदना, इनमें जो धन इकट्ठा हुआ, जो अवशेष धन बचा, उस द्रव्य को जो भोग करता है तो कुन्दकुन्द स्वामी कह रहे हैं—वह नरकगति के दु:ख को प्राप्त करेगा।

यदि नरक न जाना हो तो कहीं बड़े-बड़े भण्डारे चल रहे हों तो धीरे से पूछ लेना, 'यह द्रव्य किसका है?' यदि मन्दिर के द्रव्य से ज्योंनार चल रही है, तो सेवन कर मत लेना। यदि कभी ऐसा तीर्थक्षेत्र का भोजन किया हो तो उतना द्रव्य दान कर देना। ज्ञानी! सुनो, जो व्यक्ति निर्माल्य के एक दाने को भी खाता है, वह 60 हजार वर्ष तक विष्टा में कीड़ा होता है। ऐसा श्रवणबेलगोल पर्वत के ऊपर लिखा हुआ है।

वे पुत्र, स्त्री आदि से रहित दरिद्री होते हैं। मूक, बधिर, अंधे, पंगु होते हैं। चाण्डालादि कुजाति में जन्म लेते हैं, जो पूजा-दानादि के द्रव्य का हरण करते हैं। सुनो, सेठ के घर में गृहचैत्यालय था और एक व्यक्ति से कह दिया, कि इसकी रक्षा करना। बहुमूल्य छत्र, चमर, रत्नजड़ित सामग्री थी। उस पापी ने सब बेचकर खा लिया। जब सेठ वापस आया तो वह व्यक्ति भयवशात् एक शिला के नीचे छिप गया, उसकी मृत्यु हो गई। अकृतपुण्य नाम का जीव हुआ, जिसके जन्म लेते ही पिता की मृत्यु हो गई। करोड़पति परिवार में जन्मा, जन्मते ही सारा धन नष्ट हो गया। ऐसी संतान भी जन्म लेती हैं, जिसके आते ही पूरा घर बर्बाद हो जाता है। पूर्वभव का पापी आया है, जिसने अरिहंत के द्रव्य का हरण किया था। देव-शास्त्र-गुरु के नाम से पैसा इकट्ठा किया और उस द्रव्य से अपना पेट भर रहा है। ब्रह्मचारी! तुम तीर्थ बनाकर रहोगे, भोजन करोगे, तो भोजन कहाँ से करोगे? तुम कमाने जाते नहीं हो, तो खाते कहाँ से हो? जो मन्दिर के, संस्था के नाम से दान आ रहा है, वही खा रहे हो। ज्ञानी! ऐसा नहीं होता है कि सामान्य श्रावक को पाप लगे और तुम्हें न लगे। जो पाप सामान्य श्रावक को लगेगा, वही पाप आचार्य, मुनि और ब्रह्मचारी को लगेगा। 'मूलाचार' में क्यों निषेध कर दिया कि हे महाराज! चंदे का आहार मत करना। शुद्ध चर्या तो तभी पल सकती है कि श्रावक के चौकों में आहार को जाओ। जहाँ स्वयं का चौका लेकर जाओगे, वहाँ चर्या का पालन हो ही नहीं सकता है। एक शुद्धि के चक्कर में दूसरी महाअशुद्धि हो गई। साधु बनना, परन्तु भाग्य के साथ चलना।

व्यवस्थित रहना, व्यवस्था लेकर नहीं चलना। "दे दो" शब्द बड़ा कष्टदायी है। बाण का घाव भर सकता है, "दे दो" शब्द का घाव नहीं भर सकता। जिसने माँगा, उसी दिन छोटा हो गया। लोग छोटी-मोटी बातों को पाप ही नहीं मान रहे।

क्या कह रहे हैं? जो जिनपूजा के द्रव्य को हरण करेगा, वह इच्छित फल का प्राप्त नहीं होगा। कदाचित्, इच्छित वस्तु अन्य पुण्य से मिल भी जाए, तो भोग नहीं पायेगा। पति बना बैठा है, घर में बच्चे अच्छे-अच्छे पकवान खा रहे हैं और स्वयं पड़ा-पड़ा देख रहा है, मूँग की दाल का पानी पी रहा है। बस, ऐसा कहीं मिल जाये, तो कहना—प्रत्यक्षं किं प्रमाणं। जो पहले खाया था, उसे आज बेचारा भोग रहा है। नाक में, गाल में, कण्ठ में, सब जगह छेद-ही-छेद हो गए। भैया! ये जितने ज्यादा मोटे हो रहे हैं और फिर अंग-भंग कराये जा रहे हैं, यह सब पूजा-दान के द्रव्य को खाने का फल है। अब 'जो है, सो है।' भैया! जिनको भी मुनिराज बनना हो, समाधि ा ले लेना, लेकिन तीर्थभूमि का, ट्रस्ट का दाना सेवन मत करना।

ज्ञानी! तुम्हारा कर्त्तव्य बनता है, सम्मेदशिखर की वंदना करने जाते हो, तीन वंदना करोगे तो कम-से-कम चार दिन लेकर जाओ। तीन दिन आप वंदना करो, एक दिन चौका लगाओ। वहाँ के मुनिराजों को आहार करवाओ। शाश्वत् भूमि में आहारदान करोगे, तो कितना पुण्य का बंध होगा? अपने धर्म का आप पालन करो तो साधुओं को भी दोष न लगे। जब जंगल में आहार दिये मुनिराज को श्रीराम ने, तो आप तो शाश्वत् तीर्थक्षेत्र पर जाते हो। लेकिन आप क्या करते हो? वंदना करके भगते हो। भगने का नहीं, आराम से जाओ और वहाँ के योगियों को भी चर्या करवाओ। यदि ऐसा हो गया तो कभी शिकायत नहीं मिलेगी कि महाराज जी ऐसे घूम रहे थे। हम अपना धर्म भूल जाते हैं और अंगुली उठाते हैं कि महाराज ऐसा कर रहे थे।

हाथ कट जाते हैं, पैर टूट जाते हैं, काना होता है, अंगुलि भंग हो गई, नेत्रों की ज्योति निकल जाती है, नाक कट गई, कान कट गया, तीव्र दुःख का मूल है। जो भगवान् के दान का और पूजा की द्रव्य का हरण करता है, वह अंधा, लंगड़ा, कोढ़ी, दरिद्री, लूला, बहरा होता है। यदि ऐसा नहीं बनना हो, तो कभी अरिहंत के द्रव्य का हरण नहीं करना। हे महाराज! अरिहंत के द्रव्य का हरण नहीं करूँगा, धर्मशाला-पाठशाला का तो खा सकता हूँ न? कितने समझदार हैं। बोले—पाठशाला के नाम पर करोड़ों का फण्ड है, अब देना ही नहीं चाह रहा, कुछ बात है। भैया! सुनो, आँख बंद हो जाएगी तो कैसे वापस करेगा? आँखें बन्द होंगी तो क्या लेकर जाओगे? बड़े-बड़े लोग क्या लेकर गए जो तुम लेकर जा पाओगे? जितना कमा कर रखा है, क्या पूरा भोग पाओगे? दूसरे फल भोगेंगे। तुम पाप का फल भोगोगे।

हम निर्माल्य तो नहीं खायेंगे, लेकिन कोई पूजा कर रहा है तो कहेंगे, कि थोड़ी-थोड़ी चढ़ाओ द्रव्य, क्योंकि माली के घर में तो जाना है। हे भैया! इसे भगवान् नहीं दिख रहे, उसे माली का घर दिख रहा है। भैया! ऐसा विघ्न कर मत देना। क्षय रोग, कुष्ठ रोग, मूल, शूल, भगंदर, वात आदि का रोग, मकड़ी का उभरना, जलोदर, नेत्ररोग, शीत-उष्ण की बाधायें, सन्निपात ये सारे-के-सारे रोगी होते हैं, मालूम है कौन? जिन्होंने पूजा और दान में अंतराय डाला है। लोकोक्ति है कि कोई दे रहा है, कोई ले रहा है, शुक्राचार्य यूँ ही अपनी आँखें फोड़ रहे हैं। किसी के दान में अंतराय मत डालना, पूजन में अंतराय मत डालना, क्योंकि बहुत पाप का बंध होता है।

"**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।**" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

॥ भगवान् महावीर स्वामी की जय ॥

❖ ❖ ❖

धर्मकार्यों में विघ्न डालने का फल

णरय-तिरियाइ-दुगदि-दारिद्द-वियलंग-हाणि-दुक्खाणि।
देव-गुरु-सत्थ-वंदण-सुद-भेद-सज्झय-विघण-फलं ॥37॥

अन्वयार्थ—(णरय) नरक **(तिरियाइ)** तिर्यंच आदि **(दुगदि)** दुर्गति **(दारिद्द)** दरिद्रता **(वियलंग)** विकलांग **(हाणि)** हानि **(व्यापारादि कार्यों में) (दुक्खाणि)** और दु:ख, ये सब **(देव-गुरु-सत्थवंदण)** देववंदना, गुरुवंदना, शास्त्रवंदना **(सुद-भेद-सज्झय-विघण-फलं)** श्रुतभेद, स्वाध्याय में विघ्न का फल है।

पंचमकाल में विशुद्धि की हीनता

सम्म-विसोही-तव-गुण-चारित्त-सण्णाण-दाण-परिहीणं।
भरहे दुस्सम-याले, मणुयाणं, जायदे णियदं ॥38॥

अन्वयार्थ—इस **(भरहे)** भरतक्षेत्र में **(दुस्सम याले)** दु:खमा पंचमकाल में **(मणुयाणं)** मनुष्यों के **(सम्म-विसोही)** सम्यक्त्व की विशुद्धि **(तव-गुण-चारित्त-सण्णाण-दाण-परिहीणं)** तप, गुण, चारित्र, सम्यग्ज्ञान, दान में परिहीनता **(णियदं)** निश्चित ही **(जायदे)** होती है।

दुर्गति का पात्र कौन?

णहि दाणं णहि पूया णहि सीलं णहि गुणं ण चारित्तं।
जे जइ णा भणिदा ते णेरइया होंति कुमाणुसा तिरिया॥ 39॥

अन्वयार्थ—(जे) जो मनुष्य **(णहि)** न ही **(दाणं)** दान देते हैं **(णहि)** न ही **(पूया)** पूजा करते हैं **(णहि)** न ही **(सीलं)** शील पालते हैं **(णहि)** न ही **(गुण)** मूलगुण धारण करते हैं और **(ण)** न **(चारित्तं)** चारित्र पालन करते हैं **(ते)** वे मनुष्य **(णेरइया)** नारकी **(कुमाणुसा)** कुमानुष और **(तिरिया)** तिर्यंच **(होंति)** होते हैं ऐसा **(जइ णा)** जिनदेव ने **(भणिदा)** कहा है।

भव्य बन्धुओ!

अन्तिम तीर्थेश भगवान् वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना, जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञशासन, नमोस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति। आचार्यभगवान् कुन्दकुन्द स्वामी ग्रंथराज रयणसार जी में श्रमण और श्रावक उभय धर्मों का व्याख्यान कर रहे हैं। वे धरती के देवता

वीतरागी तपोधन, जो कारण समयसार हैं, कार्य समयसार की प्राप्ति पर उनका लक्ष्य है। शत्रु-मित्र में साम्यदृष्टि यदि कहीं देखने को मिलती है तो एकमात्र अर्हंत वीतरागी दिगम्बर मुनि की मुद्रा में है। जो सुखों की तरह दु:ख को भी सुख मानते हों, इससे बड़ी समता जगत् में कहीं नहीं होती। जो विपत्तियों के दिनों में भी मुस्कुराना जानते हैं, वे विपत्तियों को भी विपत्ति में डालना जानते हैं। विपत्तियाँ भी उन्हीं के घर में आती हैं जिनके हृदय में रोना आता है। जिनके हृदय में रोना नहीं आता, उनके घर में कभी विपत्तियों का सामना होता ही नहीं है। जो तटस्थ पुरुष साता-असाता कर्म की प्रकृतियों को कर्म की प्रकृति मानता है, उसे आत्मा की प्रकृति नहीं मानता है, वही उपसर्ग के दिन में भी उत्सर्ग को प्राप्त होता है।

अवंति देश की विशाल नगरी उज्जयिनी में धर्मपरायण सम्राट श्रीवर्मा शासन कर रहा था। श्रीवर्मा सम्राट प्रजा का पालन पुत्रवत् कर रहा था। जिसके शासन में प्रजा दु:खी होती है, वह राजा नरक का अधिकारी होता है। अनुशासित होना, तभी अनुशासन का पालन करा पाओगे और जिसका जीवन अनुशासित नहीं है, वह अनुशासन का पालन भी नहीं करवा सकता है। अनुशासन का ज्ञान होना बहुत सरल है, परन्तु अनुशासन का पालन करना बहुत कठिन है। जो शासन को चलाना चाहता है, उसे आत्मानुशासन को समझना पड़ेगा। उनके शासन भंग हो जाते हैं, जो अनुशासन चलाना चाहते हैं और आत्मानुशासन से शून्य होते हैं। राजा श्रीवर्मा जब प्रात:काल अपने महल के झरोखे से बाहर निहारता है प्रात: की बेला में मंगलगान के साथ अनेक श्रावक-श्राविकाएँ मार्ग से गमन करते दिखते हैं। सम्राट पूछता है मंत्रियों से, "मंत्रिवर! यह प्रभात की बेला में श्रावकगण किस ओर जा रहे हैं?" ध्रुव सत्य है, चंदन को अग्नि में डाला जाए, तब भी वह अपनी सुगंध नहीं छोड़ता। चंदन को छीला जाए, तब भी सुगंध ही देता है। मल को सिंहासन पर भी रख दोगे, वह दुर्गंध ही देता है। यही सज्जन-दुर्जन की पहचान है। जिसमें जो होता है, वह वही तो देता है, इसमें आश्चर्य क्या है? बलि, प्रहलाद, नमुचि, बृहस्पति, ये मंत्रि ऐसे थे जैसे कालिया नाग हो। भीतर क्या है, यह किसी से मत पूछो? मटके का मुख खोलने पर पता चल जाएगा कि धूपघट है या मलघट है।

आ. जिनसेन स्वामी ने 'महापुराण' में उल्लेख किया है कि तीर्थंकर के समवसरण में चारों दिशाओं में धूपघट रखे होते हैं। आचार्य वीरसेन स्वामी ने 'धवला' जी में कथन किया कि तीर्थंकर के समवसरण में चारों दिशाओं में धूपघट होते हैं। उन घटों से सुगंधित धूप निकलती रहती है। ज्ञानियो! धूपघट का मुख खोलने पर सुगन्ध निकलती है और मलघट का मुख खोलने पर दुर्गंध ही निकलेगी। सम्यग्दृष्टि कौन है? मिथ्यादृष्टि कौन है? उसके भावों को नहीं पहचान पाओगे, लेकिन भाषा को तो पहचान ही पाओगे। सम्यग्दृष्टि की भाषा धूपघट के मुख

के तुल्य होती है। मिथ्यादृष्टि की भाषा मलघट के मुख के तुल्य होती है। राजा ने मंत्रियों से पूछा—मंत्रिवर! ये श्रावक कहाँ जा रहे हैं? स्वामी! उद्यान में नग्न साधु आए हैं। उनके पास भीड़ जा रही है। सम्राट श्रीवर्मा कहता है कि निर्ग्रंथों की वंदना करने मुझे भी जाना है। नहीं स्वामी! वे लोग कुछ भी जानते नहीं हैं, निरे मूर्ख होते हैं, उनके पास जाने से क्या लाभ? नहीं मंत्री! आपको निर्ग्रंथों के प्रति आस्था-श्रद्धा नहीं, तो विकल्प नहीं है।

जिस जीव को दिगम्बर मुद्रा स्वप्न में भी रुचिकर नहीं लगती हो, वह दीर्घसंसारी है। जागते-जागते मुनिनिन्दा करना तो घोर पापबंध का कारण है, जिसने स्वप्न में भी दिगम्बर मुनि की निन्दा कर दी हो, वह भी दीर्घसंसारी है। ज्ञानियो! भक्ति न बने तो घर में बैठ जाना, लेकिन जीभ हिलाकर वीतरागी श्रमणों की निंदा मत कर देना। इस भूमितल पर निस्पृह कोई योगी है, साधुपने को प्राप्त है, सज्जनपने को प्राप्त है, उसका नाम वीतरागी दिगम्बर-श्रमण है। जिनकी अवनि ही शैय्या हो, भुजा ही तकिया हो, खुला गगन ही जिनकी चादर है, ऐसे श्रमणों के बारे में जिह्वा हिलाकर सत्तर कोड़ा-कोड़ी सागर संसारस्थिति का बंध मत करो। जिन्हें सत्तर कोड़ा-कोड़ी सागर संसारस्थिति का बंध करना हो, वे केवली, श्रुत, संघ, देव का अवर्णवाद करें। जिन्हें संसार से डर लगता है, वे श्रमणों की वंदना न कर पायें तो बदनाम न करें। संसार में भटकने की इच्छा है तो वंदना न करें, बदनाम करें।

"सप्ततिर्मोहनीयस्य" ॥15/8 त. सूत्र॥

मोहनीय कर्म की स्थिति सत्तर कोड़ा-कोड़ी सागर प्रमाण है। मोहनीय कर्म का आस्रव केवली, श्रुत, संघ, देव के अवर्णवाद से होता है। कभी स्वप्न में भी दिगम्बर मुनि के प्रति अशुभ भाव आ गए हों तो आज भोजन के पहले, सोने के पहले प्रायश्चित ले लेना। समय मत निकालना, क्योंकि कर्मबंध समय नहीं देखता। बैंक में आपका पैसा जमा है, आप कुछ भी करते रहो तो भी पैसा बढ़ता है। कर्मबंध भी कुछ नहीं देखता, वह तो बंधता है। सम्राट जब चल दिया तो मंत्री आखिर करें क्या ? वे भी पीछे से चल दिए उद्यान की ओर। आचार्यों के आठ विशेष गुणों में दूरदर्शिता नाम का एक गुण होता है। सामान्य जीव नहीं, श्रमणाचार्य हों, दिगम्बराचार्य हों और सात सौ मुनियों को लेकर चलते हों तो वे विद्या की न्यूनता से विचरण नहीं कर रहे थे। प्रज्ञा की प्रधानता से विचरण कर रहे थे। वे निर्ग्रंथ मुनीश्वर अपने निमित्तज्ञान से जान लेते थे कि कहीं उपसर्ग की स्थिति बन सकती है, अतः योगियों को आदेशित करते हैं। धन्य हों वे गुरु, धन्य हों वे शिष्य, जो गुरु के एक वाक्य को सुनकर मौन हो गए।

अंतेवासिन्। जो गुरु की आज्ञा के अन्त में चलते हों, उसका नाम है अंतेवासिन्। शिष्यों को बैठाकर आदेशित कर दिया कि चाहे सम्राट आए, चाहे श्रावक आए, कोई मुनि मुखर नहीं होगा। आशीर्वचन भी नहीं बोलेंगे। आशीर्वाद भी नहीं देंगे। गुरुआज्ञा में क्यों, क्या, कुछ नहीं। 'क्यों?' शब्द आ गया तो अभी शिष्यता ही नहीं आई, अभी बहुत कमी है। यह भी नहीं पूछा शिष्यों ने कि स्वामी! ऐसे अचानक आज्ञा क्यों? हे शिष्यो! आप सभी के लिए यह आदेश है कि आपको मौनव्रत का पालन करना है। धन्य हों वे योगीश्वर। नहीं तो मंत्री-संत्री, राजा दिख जाएँ। यह तो अच्छा है कि कैमरे नहीं चलते थे उस समय, नहीं तो मालूम चलता कि लोटा खाली हो चुका है, श्रावक देख रहा है कैमरे की ओर, साधु बेचारे खाली अंजुली लिए हैं। जब फोटो खिंच जाएगा, तब देखेंगे महाराज की अंजुली खाली है कि भरी है। और यदि योगी को भी भाव आ गया कि थोड़ा फोटो खिंचवा लें। हे स्वामी! ये फोटो तो इस देह की कागज पर आ भी जाएगी, लेकिन सीमंधर स्वामी के कैवल्य में वह फोटो भी खिंच चुकी है, जो तुम्हारे परिणाम पर्याय में हैं, परिणति में नहीं हैं। मोक्षमार्ग चित्रों का मार्ग नहीं है, मोक्षमार्ग चारित्र का मार्ग है। जितने आज चित्त बिगड़ रहे हैं, यह श्रमणों के भी भाव बिगड़ रहे हैं, इन चित्रों के राग में चारित्र खोखला हो रहा है। पुतलों के राग में। मेरे गुरु का पुतला, मेरे शिष्य का पुतला। इन चित्रों के राग में चारित्र फिसल रहे हैं। नहीं आया किसी मुनि के मन में कि सम्राट आया है, तो कम-से-कम हाथ उठा देते। हाथ भी नहीं उठाया। परन्तु गुणग्राह्ता निहारिये श्रीवर्मा सम्राट की। वह सोचता है कि धन्य हो इन निस्पृही श्रमणों के लिए, कि मेरे आने पर भी इन्होंने आँखों की पलकों को ऊपर नहीं किया।

आप होते तो क्या कहते? कैसे महाराज हैं? इतनी दूर से आए चलकर, आँख उठाकर भी नहीं देखा। भैया! तुम श्रमणों की वन्दना करने आए थे कि स्वयं को दिखाने आए थे? तुम्हारी तो वन्दना करते ही कर्मनिर्जरा हो रही थी। वे साधना में लीन थे, रहने दो। बतियाने में आनंद नहीं होता जो मौन में आनंद होता है। विश्वास रखना, जो बोला जाता है, वह अंश होता है। जो अवाच्य है, वह प्रमाण है। प्रमाण अनंत होता है। प्रमाण पूज्य है, नय पूज्य नहीं होता है। जो शब्दभूत होता है, वह नय होता है और जो अवाच्य होता है, वह प्रमाण होता है। जो आँखों से देखा था, वह अवाच्य (प्रमाण) का आनंद था। इसलिए ज्ञानियो! योगी न भी बोलें, तुम योगी के सर्वांग से सुन लेना। जिनके वचनों का विसर्जन हो गया है, निर्ग्रंथों का शरीर ही तत्त्व का उपदेश देता है। सिद्धक्षेत्र, तीर्थों की वंदना करने जाते हो, यह कानों के नहीं आँखों के प्रवचन सुनने जाते हो। चर्या ही चारित्र का उपदेश देती है।

राजा जैसे-ही वापस हुआ, वे चारों मंत्री कहते हैं—देखो स्वामी! हमने कहा था कि इन अज्ञानियों से कुछ भी नहीं बनता। मूर्खता को छिपाने का सुन्दर साधन है, मौन। तब भी राजा शांत होकर सुनता है, क्योंकि वह समझ गया था कि इन चारों की मति तो दुर्मति है। मार्ग में चले जा रहे थे, परन्तु चलते-चलते पथ में वीतरागी तपोधन श्रुतसागर महाराज चर्या से आ रहे थे। नहीं था मालूम गुरु का आदेश। जैसे-ही श्रुतसागर मुनिराज सामने से आते दिखाई दिए, बलि मंत्री कहता है—राजन्, राजन्! सामने देखो, यह बैल के समान चला आ रहा है। "तक्रं पीतोयम्"—यह तक्र पीकर आ रहा है। वाग्मी न्यायाचार्य श्रुतसागर महाराज ने स्याद्वाद की उतंग तरंगों से उन चारों मंत्रियों के मुख को बंद कर दिया, राजन्! ऐसा महसूस होता है जैसे आपके मंत्रियों को पीलिया रोग हो गया हो। "तक्रं पीतोयम्" कि "तक्रं धवलोयम्" ? न्यायशास्त्र में छलविद्या भी होती है जब छलिया सामने आ जाए तो उसके सामने प्रयोग करने के लिए। महाराज! मट्ठा पीला होता है या सफेद होता है?

"श्रीमत् परम गंभीर स्याद्वादामोघ-लाञ्छनम्"

स्याद्वाद रूपी महा अमोघ अस्त्र जहाँ पर है, ऐसे स्याद्वाद के अस्त्र के माध्यम से चारों मंत्रियों के मुख को बंद कर दिया और जिनशासन की ध्वजा फहराने लगी। राजा के होने के कारण मंत्री ऊपर से मुस्कुराते रहे, लेकिन अपनी पराजय को देखकर प्रतिशोध की भावना लेकरके, जैसे बुण्देलखण्ड की गुरसी, ऊपर से दिख रही राख, अंदर झुलस रही आग। ऐसे-ही मायाचारी लोग होते हैं। ऊपर-ऊपर नमोऽस्तु-नमोऽस्तु स्वामी! और अन्दर में झुलस रही ईर्ष्या की आग है। उन मंत्रियों ने क्या किया? हाँ, राजन्! साधु ज्ञानी हैं। और अंदर में सोच रहे थे कि हमारा अपमान हो गया। घर पहुँचकर चारों ने निर्णय कर लिया कि कुछ भी हो, अपमान का बदला लेना चाहिए।

भैया! इतना ध्यान रखना, आग में शरीर चला जाए तो वर्तमान की पर्याय मात्र झुलसेगी, परन्तु ईर्ष्या में परिणाम चले गए तो भव-भव झुलस जायेंगे। गुरसी का अंगारा कहीं ईर्ष्या के रूप में अंदर चला गया तो भीतर-ही-भीतर तुझे राख कर देगा। हुआ क्या है आज तक, किया क्या है आज तक? अपने पुण्य, अपने भाग्य को नहीं देख पाए, ईर्ष्या भाव हो गए तो दूसरे के भाग्य को देखकर झुलसते रहे। इस भू-मण्डल पर, इस वसुधा पर ऐसा कौन-सा वीर हुआ है, जिसने पूर्व दिशा में उगते सूर्य को अपनी मुट्ठी में बांधा हो? उगते सूर्य को कोई मुट्ठी में नहीं बांध पाएगा। किसी के बिखरते पुण्य को तुम मुट्ठी में नहीं बांध पाओगे। परन्तु क्या करें? दुनियाँ को मालूम होता है कि जलने पर अंत में राख ही होता है, इसलिए जलन छोड़ो। प्रकाशित होना सीखो। प्रकाश में दुनियाँ प्रसन्न होती है। जलनेवाला तो राख होने से पहले दुर्गंध छोड़ जाता है।

दीपक जल रहा था, बुझने लगा तो गंध छोड़ने लगा। ऐसे-ही जिन जीवों के बुझने के दिन आ जाते हैं, उन्हीं के हृदय से गंध निकलना प्रारंभ हो जाती है। जिनके पुण्य बुझने लगते हैं, उनको परमेष्ठी में दुर्गंध दिखती है और देश में, समाज में, राष्ट्र में दुर्गंध फैलाकर चल देते हैं। जब दीपक बुझने को होता है, तो उसकी लौ बढ़ने लगती है और जिनके पुण्य बुझने को होते हैं, उनकी अहंकार की लौ बढ़ने लगती है। वस्तुस्वरूप को समझना, अपने लिए समझना, अपने होकर समझना। बलि, बृहस्पति, प्रह्लाद, नमुचि नहीं बनना।

श्रुतसागर महाराज चर्या से लौटकर गुरुदेव के चरणों में पहुँच गए, भो स्वामी! नमोऽस्तु। संघ की चर्या जैसे ही कानों में पहुँची, स्वामी! क्षमा करना। मुझे नहीं था मालूम आपका आदेश। शिष्य की भाषा सुनो—नहीं कहा, गुरुदेव! आपका शिष्य मंत्री को परास्त करके आ गया। यह गर्वीली भाषा का प्रयोग, चकार, मकार की भाषा का प्रयोग निर्ग्रंथों के मुख से नहीं होता।

"वाणी मधुर मृदु गंभीरा"

इस पंक्ति को याद रखना। जब भी मुनि बनने के भाव आयें, तो पहले इस पंक्ति को दोहरा लेना। दिगम्बर मुनि के शब्द मात्र मृदु, मधुर, गंभीर और मोक्षमार्ग का उपदेश देने वाले होते हैं। शेष काल में मौन होता है। दिगम्बरों के शब्द दौलतराम जी को भी सुनाई पड़ रहे थे. ..... "जिनके वचन मुखचंद्र तैं अमृत झरैं"। लोक में कहा जाता है कि चंद्रमा से अमृत टपकता है। शरद चंद्रमा के समान जिनका चारित्र पवित्र है, ऐसे वीतरागी श्रमण का मुख ही चंद्र है, उस चंद्र से जिनवाणी बरसती है। मुनियों के मुख से तो मात्र मोक्षमार्ग के शब्द निकलने चाहिए। दिगम्बर मुनि बनने के साथ ही पाँच समितियों की बात होती है। तेरह प्रकार के चारित्र का आरोपण होता है। उसमें भाषासमिति भी है। श्रमण किसी के लिए कभी श्वान, कूकर, सूकर, गधा, इन शब्दों का प्रयोग नहीं करते। आचार्यपरमेष्ठी को भी किसी श्रावक को डाँटने का आदेश आगम में नहीं है। मात्र अपने दीक्षित शिष्यों को ही समझाने का आदेश है। शेष लोगों से तो मौन रहने का आदेश है। इसलिए जिनवाणी कुछ है, मनवाणी कुछ है। जिनवाणी इतना मात्र बोलती है कि—हे योगीश्वर! जब आपको निगोदिया में भगवान् दिखाई देता है, तो इन जीवों में तुम्हें भगवान् क्यों नहीं दिख रहा है? कालिया नाग, अजगर, सिंह जैसे प्राणी भी आ जायें, भक्षण भी कर जायें, परन्तु तुम उनके प्रति आँख उठाकर तिरछा मत देखना। क्योंकि अहिंसा महाव्रत उन जीवों का नहीं था, अहिंसा महाव्रत आपका था। मेरी भाषा सुनकर किसी को आक्रोश आ गया और दो पुरुषों में झगड़ा हो गया, तो मेरा अहिंसा महाव्रत भी गया। इसलिए त्यागियों को मंच पर जिनवाणी मात्र बोलना चाहिए।

गुरुचरणों में पहुँचकर श्रुतसागर महाराज ने दोनों हाथों में पिच्छि लेकरके "भाले संस्थापये" भाल पर स्थापित करके, नमोऽस्तु निवेदित करके कहा—भो स्वामी! अपराध क्षमा करो। मुझे आपकी आज्ञा का ज्ञान नहीं था। मुझसे दोष हो गया है। मैंने मंत्रियों से चर्चा की है और शास्त्रार्थ में उनको पराजित किया है। गुरुमुख से निकल पड़ा—हे वत्स! इन सात सौ शिष्यों पर घोर उपसर्ग की संभावना है, ये सात सौ मुनि मारे जायेंगे आज तेरे बोलने से। 'नाथ! उपाय क्या है?' यह नहीं कहा कि स्वामी! उपाय करो। स्वामी! ऐसा कोई आशीर्वाद दो कि मेरे निमित्त से मुनियों पर उपसर्ग न आए। मुझे आदेश दो। गुरु की गंभीरता और शिष्य की लघुता। रागी-गुरु संघ का पालन कभी नहीं कर पाएगा और वात्सल्यशून्य कभी संघ को बुला नहीं पाएगा। निग्रह-अनुग्रह, ये गुरु के दो गुण हैं। गुरु को वैद्य, राजा और आचार्य होना चाहिए। एक पिता एक माता, ये दो मिलकर तो संतान को पाल पाते हैं, परन्तु जिनके अंदर माँ और पिता दोनों होते हैं, वे हजारों योगियों को अपने साथ रख पाते हैं। संयम का अवधारण करायें तो माँ बनकर करायें और संयम का पालन करायें तो पिता बनकर करायें। सोच रहे थे कि बेटा! तुझे अकेला कैसे छोड़ूँ? तो सात सौ जा रहे थे। वत्स! वहीं जाओ जहाँ शास्त्रार्थ हुआ था। वहाँ आपको कायोत्सर्ग करना है आज। गुरु ने कह दिया कि ऐसा करना है, सच्चा शिष्य मुड़कर नहीं देखता। जो गुरुआदेश है, बस वही पालन करना है। विश्वास रखना, उसी शिष्य की समाधि हो पाएगी जो गुरुआज्ञा में चल पाएगा। जो गुरुआज्ञा भंग करता है, उसका नियम से कुमरण होता है। यह वट्टकेर स्वामी का 'मूलाचार' में कथन है—"जे गुरु परिणीया" जो गुरु के प्रतिकूल चलते हैं, समल क्रियाएँ करते हैं, छुपकर कुशील क्रियाएँ करते हैं, वे असमाधिपूर्वक मरण करते हैं।

श्रुतसागर मुनिराज ने किया पूरे संघ को नमोऽस्तु और उस स्थान पर पहुँच गए जहाँ शास्त्रार्थ हुआ था और कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़े हो गए। क्या करूँ? हे कुमति! तू कभी किसी की सहायक नहीं हुई। माँ! आपके घर में दस चूल्हे रखे गए हैं, वे किसी ने नहीं रखवाये। हे कुमति! तू ऐसी मचली कि एक घर में दस चूल्हे रखवा दिए। एक थाली के खाने वाले भाइयों को तूने थाली के टुकड़े करवा दिए।

धन्य हों श्रुतसागर मुनिराज। जाकर खड़े हो गए, परन्तु चारों मंत्रियों की कुमति ने अपना काम किया और वे चल दिए नंगी तलवारें लेकर कि आज हम उनका काम करके आयेंगे और जैसे-ही मार्ग में चले, श्रुतसागर मुनिराज खड़े मिल गए। अरे! शेष संघ ने तो मेरा कुछ नहीं किया, अपमान तो मेरा इसी ने किया है। यह यहीं मिल गया, अब उनको छोड़ो, अपन इसी का काम करेंगे। परन्तु मूर्ख मित्र की अपेक्षा से ज्ञानी शत्रु अधिक श्रेष्ठ होता है। प्रतिशोध की

भावना से तो आए थे, परन्तु इतना विवेक था कि यतिहत्या कौन करे। बलि कहता है कि चारों का ही तो अपमान हुआ है, चारों मिलकर उपसर्ग करते हैं। आपको मालूम होना चाहिए, कि जिसका कोई नहीं होता है उसके लिये धम्मं सरणं पव्वज्जामि। वहाँ देव ने आकर चारों को किलित कर दिया, प्रातः भेद खुलने पर चारों को देश से निकाल दिया। चारों ने हस्तिनागपुर में पहुँचकर मंत्री पद प्राप्त करके वहाँ पुनः संघ पर उपसर्ग किया तब महामुनि विष्णु कुमार ने उपसर्ग दूर किया। संक्षेप में समझना कि—धर्म और धर्मात्मा के प्रति किया गया द्रोह दुःखकारी ही होता है। संकट के दिनों में किसी के घर मत जाना, क्योंकि वे दवाई नहीं देंगे, नमक छिड़कें‌गे। मात्र निजगृह, जिनगृह दो ही जगह जाना। विपत्ति के काल में सगा भी साथ नहीं देता है। किसी के घर मत जाना। "धम्मं सरणं पव्वज्जामि" .....धर्म की शरण में चले जाना।

"**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।**" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

॥ भगवान् महावीर स्वामी की जय ॥

❖ ❖ ❖

हेयोपादेय से रहित जीव मिथ्यादृष्टि है

ण वि जाणदि कज्जमकज्जं सेयमसेयं पुण्णपावं हि।
तच्चमतच्चं धम्ममधम्मं सो सम्मउम्मुक्को॥ 40॥

अन्वयार्थ—जो **(कज्जमकज्जं)** कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य **(सेयमसेयं)** श्रेय और अश्रेय **(पुण्णपावं)** पुण्य और पाप **(तच्चमतच्चं)** तत्त्व और अतत्त्व **(धम्ममधम्मं)** धर्म और अधर्म को **(हि)** निश्चय से **(ण वि)** नहीं **(जाणदि)** जानता है **(सो)** वह **(सम्मउम्मुक्को)** सम्यक्त्व से रहित है।

हेयोपादेय रहित जीव के सम्यक्त्व कहाँ ?

ण वि जाणदि जोग्गमजोग्गं णिच्चमणिच्चं हेयमुवादेयं।
सच्चमसच्चं भव्वमभव्वं सो सम्मउम्मुक्को॥ 41॥

अन्वयार्थ—जो **(जोग्गमजोग्गं)** योग्य-अयोग्य **(णिच्चमणिच्चं)** नित्य-अनित्य **(हेयमुवादेयं)** हेय-उपादेय **(सच्चमसच्चं)** सत्य-असत्य **(भव्वमभव्वं)** भव्य-अभव्य को **(णवि)** नहीं **(जाणदि)** जानता है **(सो)** वह **(सम्मउम्मुक्को)** सम्यक्त्व से रहित है।

लौकिकजनों की संगति योग्य नहीं

लोइयजणसंगादो, होइमहामुहरकुडिलदुब्भावो।
लोइयसंगं तम्हा, जोइवि तिविहेण मुच्चाहो॥42॥

अन्वयार्थ—मनुष्य **(लोइयजणसंगादो)** लौकिकजनों की संगति से **(महामुहरकुडिलदुब्भावो)** अत्यंत वाचाल, कुटिल और दुर्भावनायुक्त **(होइ)** हो जाता है **(तम्हा)** इसलिए **(जोइवि)** देखभाल कर **(लोइयसंगं)** लौकिकजनों की संगति को **(तिविहेण)** मन-वचन-काय से **(मुच्चाहो)** छोड़ देना चाहिए।

भव्य बन्धुओ!

अन्तिम तीर्थेश भगवान् वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना, जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति।

आचार्यभगवान् कुन्दकुन्द स्वामी ग्रंथराज रयणसार जी में श्रमण और श्रावक दोनों के धर्मों का व्याख्यान कर रहे हैं। समयसार और समयसारोपासक, इन दोनों के धर्मों की व्याख्या

कर रहे हैं। वीतराग दिगम्बर रत्नत्रय गुण से मण्डित, भेदाभेद धर्म के पालक निर्ग्रंथ तपोधन ही समयसार हैं। ऐसे समयसारभूत श्रमणों का जो आराधक है, वह श्रावक समयसारोपासक है। 'पुरुषार्थसिद्धिउपाय' ग्रंथ में यति को समयसार कहा है और श्रावक के लिए समयसारोपासक कहा है। अहो श्रावको! आप धन्य हैं। यदि आपके गुरु समयसारभूत हैं, तो आप समयसारोपासक हैं। ऐसे समयसारोपासकों के लिए समयसारभूत होने के लिए यह रयणसार ग्रंथ है।

अपनी विभुत्व शक्ति पर ध्यान रखना। किसी सम्राट से कहा कि मैं आपसे कम नहीं हूँ, किसी सेठ से कहा कि मैं आपसे कम नहीं हूँ और कषाय के उद्रेक में आकर आपने अपने भैया से भी बोल दिया कि मैं आपसे कम नहीं हूँ। राजा से कहना कि मैं आपसे कम नहीं हूँ, तो यह कोई बड़ी बात नहीं है, सेठ से कहना भी बहुत बड़ी बात नहीं है। भैया से बोलना कि भैया! जिस पिता के आप बेटे हो, उसी पिता का मैं बेटा हूँ, मैं आपसे कम नहीं हूँ। यह कहना कोई बहुत बड़ी बात नहीं है। कहना है तो सिद्ध भगवान् से कहो कि हे स्वामी! मैं आपसे कम नहीं हूँ। आप बने सिद्ध हो, मैं बननेवाला सिद्ध हूँ। इस शब्द का जब प्रयोग करता है, 'मैं आपसे कम नहीं हूँ' उस काल में शक्ति का संचार होता है कि मैं भी कुछ हूँ। तो मैं रागियों से स्पर्धा क्यों करूँ? द्वेषियों से स्पर्धा क्यों करूँ? स्पर्धा करना ही है तो अशरीरी सिद्ध भगवान् से करो कि हे स्वामी! मैं आपसे कम नहीं हूँ। "अंतर यही ऊपरी जान वे विराग यहाँ राग वितान", मेरी ध्रुव आत्मा में और परमात्मा की आत्मा में इतना ही अंतर है कि वे कर्मरहित हैं, हम कर्मसहित हैं। मेघपटल हट जायें, मेघों में सूर्य छिपा है, कर्म के अंदर मेरा भावी भगवान् छुपा है। हे मेघ! सूर्य को आच्छादित तो कर सकते हो, परन्तु सूर्य का नाश नहीं कर सकते हो। कर्मों में कोई ताकत नहीं है जो मेरी भगवानात्मा का नाश कर सकें। मेघ छटेंगे, सूर्य प्रकट होगा। कर्म हटेंगे, निज केवली भगवान् प्रकट होगा। बस, आवश्यकता है वायु के चलने की। हवा चले तो बादल छँटें। चारित्र की हवा चलना चाहिए। भेदविज्ञान की हवा चलना चाहिए। पंचपरमेष्ठी के चरणों की श्रद्धा की हवा चलना चाहिए। स्वात्मानुभूति की हवा चलेगी तो मोह के बादल हट जायेंगे। तो निज का प्रभु प्रकट हो जायेगा।

भगवान् बनना बिल्कुल भी कठिन नहीं है। सबसे सरल कुछ है तो भगवान् बनना है। भगवान् बनने के लिए न क्रोध करना पड़ता है, न मायाचारी करना पड़ती है, न लोभ करना पड़ता है, न अहंकार करना पड़ता है। भगवान् बनने के लिए न व्यापार करना पड़ता है, न दुकान खोलनी पड़ती है, न मकान बनाना पड़ता है, न छल-कपट करना पड़ता है, न हिंसा करनी पड़ती है, न झूठ बोलना पड़ता है, न चोरी या कुशील करना पड़ता है, न परिग्रह का

संचय करना पड़ता है। बस, कुछ नहीं करना पड़ता है और जो कुछ नहीं करता है, वही भगवान् बनता है। भगवान् बनना अत्यंत सरल है। नरक जाने के लिए तो पाँच पाप करने पड़ते हैं। सबसे ज्यादा करना पड़ता है नरक जाने के लिए। बेचारों को बहुत परिग्रह जोड़ना पड़ता है, छल-कपट करना पड़ता है, जिनवाणी के विपरीत बोलना पड़ता है, जिनवाणी के विपरीत चलना पड़ता है, तब कहीं जाकर उसको नरक जाने का सौभाग्य मिलता है।

परन्तु, ज्ञानियो! वह सौभाग्य कैसा होता है? चोखे में खोटा मिलाया था। शुद्ध देशी घी में आलू मिलाये थे। उसका परिणाम गर्म कढ़ाई में चुरना पड़ेगा भजिए जैसे। तब मालूम चलेगा कि नरक जाने के लिए क्या करना पड़ा था। बड़े प्रेम से, प्रीतिपूर्वक गुटखा खाना और प्रेम से अच्छी सिगरेट-बीड़ी पीना, क्योंकि नरक का तांबा पीने का सौभाग्य तुमको तभी तो मिल पायेगा। संडसी से मुख फाड़-फाड़कर जब तांबा पिलाया जाएगा, तब याद आयेगा कि खाया था गुटखा, तम्बाकू। सम्यक्त्व छोड़कर विषयों में लीन हुए थे, उसकी अनुभूति अब करो। परांगनाओं में अंग को लिपटाया था। लोहे की गर्म पुतलियाँ खड़ी हुई हैं, सेवन करो परस्त्री का। तब समझ में आएगा कि हाय-हाय मैंने क्या किया था।

आस्रव-बंध के काल में विवेक खो गया। जब विवेक आया, तब तक उदय आ चुका था। अब तो भोगना ही पड़ेगा। चाहे रोकर भोगो, चाहे हँसकर भोगो। जो है, सो है। जीवन में किया क्या? न पूजा की, न दान दिया, न शील का पालन किया, न उपवास किए। इसे तुमने जड़ की क्रिया कह करके निज आत्मा की वंचना की है। अब जब नरक पहुँच गया, तो लगता है हाय-हाय मैंने क्या किया था? निश्चय धर्म को समझ नहीं पाया, व्यवहार धर्म को कर नहीं पाया, परिणाम यह हुआ कि नरक के द्वार पर आना पड़ गया। वस्तुस्वभाव को समझना, वस्तुतत्त्व को समझना। नरक जाने के लिए बहुत-कुछ करना पड़ता है, परन्तु भगवान् बनने के लिए कुछ भी नहीं करना पड़ता। विश्वास रखना। करना सरल है, कुछ नहीं करना कठिन है। जैनेश्वरी दीक्षा इसके लिए ही लेना पड़ती है, ताकि जीवन में कुछ न करना पड़े।

करने-करने के पुरुषार्थ अनंत बार किए हैं, नहीं करने का पुरुषार्थ एक बार भी कर लेता तो आज इस खोटे कलिकाल का मुनि न बनना पड़ता। भगवान् महावीर के साथ अपन भी सिद्धालय में बैठे होते। क्या करूँ? विपाक के काल में विवेक जग रहा है। कर्म करने के काल में विवेक जग जाता तो विपाक का काल क्यों देखना पड़ता? जब कर्म का उदय आता है, तब लगता है कि हाय मैंने क्या किया? कर्मोदय के काल में जो विवेक आया है, उस विवेक से कह देना कि तू कर्मबंध के काल में आ जाता तो उदयकाल का चेहरा क्यों देखना पड़ता?

एक घटना है। सुन्दर गोरा युवा 21 वर्ष का, उसको पुलिस पकड़कर ले गई, अधिकारी के सामने खड़ा कर दिया। जिसके शरीर पर डण्डे पड़ना चाहिए थे, वह अधिकारी क्या बोलता है— भैया! इतना सुन्दर तूने चेहरा प्राप्त किया है, तेरे गाल पर चांटा मारने में मुझे शर्म आ रही है, परन्तु इतने सुन्दर शरीर को प्राप्त करके इतना असुंदर कार्य तूने कर कैसे लिया? ज्ञानी! जितने विश्व में सिद्ध हुए हैं, हो रहे हैं, वे सब हाथी या सिंह के आकार में नहीं हुए। जितने सिद्ध हुए हैं, वे पुरुषाकार में हुए हैं। हे पुरुषो! इतना सुन्दर आकार तुमने प्राप्त किया है। जिस शरीर से सिद्ध बना जाता है, उस आकार से तुम नारकी बनने जाओगे तो तुमको शर्म नहीं आयगी क्या? कर्म भी कहते हैं कि सिद्धों के आकार को कैसे लगूँ? पर क्या करूँ? इसने कर्म ऐसे किए हैं सो मुझे बंधना पड़ रहा है। क्योंकि कर्मों में तो इच्छा होती नहीं है, इच्छा तो आत्मा के अंदर है। आत्मा जैसी इच्छा करेगी, कर्म का आस्रव-बंध वैसा होगा। देखो, हर प्रकार से सिद्ध बनना ही सरल है। यदि सिद्ध बनेगा, ईषु गति से जाएगा, ऋजुगति से जाएगा और यदि नरक जाएगा तो मोड़ लेने पड़ेंगे। सिद्ध बनने के लिए सीधा जाना पड़ता है। गोल-गोल मोड़ेदार नरकों में वे ही जाते हैं जिनके परिणाम गोल-गोल मोड़ेदार होते हैं। जिनके परिणाम हैं गोल-गोल, वे सब नरक में जायेंगे। जैसे जलेबी में रस भरा हुआ है और रस में तुम चिपक रहे हो। ऐसे-ही जिसके परिणामों में विषय-कषायों का रस टपक रहा है और वक्र परिणति है, ऐसे जीव की ही नरक जाने की गति है। सिद्ध बनने के लिए कुछ भी नहीं करना पड़ता। "अकर्त्तृत्व स्वरूपोऽहम्" — अकर्त्तृत्व स्वरूप पर दृष्टि है, वह भावी सिद्ध है। कर्त्तृत्व दृष्टि है तो भावी नारकी है। जितने घर, परिवार, समाज, राष्ट्र, विश्व में दु:खी हैं, दु:ख का हेतु है कर्त्ताबुद्धि। मैंने किया-मैंने किया। तूने क्या किया? नरक का द्वार ही खोला है, औरकुछ नहीं किया। किसी के कर्म को आप बदल पाओगे क्या? किसी के पुण्य-पाप को मिटा पाओगे क्या? किसी का पुण्य नहीं बदलता, किसी का पाप नहीं बदलता। परन्तु पर के राग में स्वयं पापी अवश्य हो जाता है। विश्वास रखना, जितने पापी हुए, हो रहे, होंगे, सब पर के राग में होंगे। रावण को किसने मार दिया? तेरे ब्रह्मचर्य का घात किसने कर दिया? तेरी युवावस्था को किसने हर लिया? तेरी शान्ति को कौन छीन ले गया? मैं स्वतन्त्र आत्मा हूँ, मैं स्वतन्त्र द्रव्य हूँ। मुझे स्वतन्त्र परिणति का बोध हो जाए तो किसका सिर दर्द कर रहा, किसका पैर दर्द कर रहा? मैं पर से भिन्न हूँ। कोई विकल्प नहीं है। जहाँ राग है, तो जब बेटे का सिर दर्द करता है तो पिता का पेट दर्द करने लगता है। आखिर में आप घर में क्यों बैठे हो? परिवार क्यों बसाया है? प्रश्न कीजिए स्वयं से। एक क्षण की पर के राग की परिणति ने तेरी पूरी पर्याय को नष्ट कर दिया।

अखण्ड ध्रुव भगवानात्मा के स्वरूप पर लक्ष्य ही नहीं गया। लक्ष्य तो दूर था, महाराज! कभी सोचा भी नहीं था कि मेरी आत्मा भी भगवान् है। किसी ने सोचने को बोल भी दिया तो उसको पीटकर भगाने को तैयार हो गए थे। पर ध्रुव सत्य यह है कि जब वस्तुस्वरूप का बोध होता है, तब समझ में आता है कि हाय मैंने क्या किया? एक का राग दूसरे के द्वेष में बदल गया। पर हे रागी! जिससे राग किए हैं, वह भी तेरी स्ववस्तु नहीं है और जिससे द्वेष किए हैं, वह भी स्ववस्तु नहीं है। बंध तेरा दोनों में है, तू तो दोनों में गिर गया। जैसे 'पर' तेरे नहीं हैं, विश्वास रखना, वैसे ही निजसंबंधी भी तेरे नहीं हैं। हे ज्ञानी! देह से धुँआ निकले, इससे पहले कषाय का धुँआ निकाल देना। क्योंकि जिससे तुम राग किए हो, वह भी साथ नहीं जा पायेगा और जिससे द्वेष किए हो, वह भी तेरे साथ नहीं जायेगा। परन्तु राग-द्वेष करके जो कर्म का बंध किया है, उसे लेकर अवश्य जायेगा। जिससे स्वार्थ की सिद्धि होती है, वे मेरे हो लेते हैं और जिससे स्वार्थ की सिद्धि समाप्त हो जाती है, वे पराये हो जाते हैं, पर होते दोनों पराये ही हैं।

भैया! दो पुत्रों ने जन्म लिया। ब्राह्मणपुत्र थे। परन्तु जन्म होते ही एक पुत्र को शूद्र ले गया तो शूद्र के कुल में पलना प्रारम्भ हो गया और दूसरा पुत्र ब्राह्मण के घर में पलने लगा। जो ब्राह्मणकुल में पला, वह मदिरा को देखना भी पाप कहता है, स्पर्श करना तो दूर की बात है। जो शूद्रकुल में पला है, वह मदिरापान क्या, मदिरा स्नान में पुण्य मानता है। लोग कह रहे हैं कि यह शूद्रपुत्र है और वह ब्राह्मण पुत्र है। प्रवृत्ति को देखकर पुत्र में भेद है, परन्तु उत्पत्ति को देखो तो पुत्रों में अभेद है। दोनों पुत्र ब्राह्मणपुत्र ही हैं, परन्तु प्रवृत्ति की दृष्टि से पुत्र में भेद हो गया। ज्ञानी! ध्यान दो। राग भी कषाय का पुत्र है, द्वेष भी कषाय का पुत्र है, परन्तु प्रवृत्ति में भेद है, उत्पत्ति में भेद नहीं है। राग भी बंध का कारण है, द्वेष भी बंध का कारण है। बंध से बचना है तो द्वेष करना पहले छोड़ो, राग करना भी छोड़ो। पुण्य तो पुण्य है और पाप ही पाप है, परन्तु बंध दृष्टि से देखेगा तो दोनों बंधक हैं। अन्तर इतना है कि एक स्वर्ग भेज रहा है, दूसरा नरक भेज रहा है, पर मोक्ष दोनों नहीं भेज रहे हैं। यदि मोक्ष जाने की बात कह रहे हो, तो राग-द्वेष दोनों से बचिए। बंधत्व दृष्टि से पुण्य-पाप में समदृष्टि लाइए। अशुभ से बचने के लिए पुण्य बराबर करना, परन्तु पुण्य में लीन होने के लिए पुण्य नहीं करना। अशुभ से बचने के लिए शुभ करना, पाप से बचने के लिए पुण्य करना, नहीं-तो नरक में चले जाओगे। नरक जाने की अपेक्षा स्वर्ग जाना अच्छा है। धूप में जलने की अपेक्षा वृक्ष की छाया में खड़े होना अच्छा है। लेकिन दृष्टि यही रखना कि महल कब मिले। वृक्ष की छाया में मग्न मत हो जाना। पाप के पंक से बचने के लिए पुण्य अवश्य करना, परन्तु दृष्टि यही रखना कि वह दिन कब आए जब शुद्धोपयोग के महल में बैठ जाऊँ। दृष्टि को कभी भ्रमित मत कर देना। भैया! विश्वास रखना,

जितना महत्वपूर्ण चलना है, उससे कहीं अधिक महत्वपूर्ण लक्ष्य बनाना है। भैया! आप यहाँ प्रवचनसभा में आए हो तो कौन लेकर आया है? क्रियावती शक्ति लेकर आयी है, तो वह क्रियावती शक्ति जिनालय की जगह वेश्यालय जाता तो वहाँ भी लेकर जाती। क्रियावती शक्ति तो आप जहाँ जाते वहाँ लेकर जाती। वाहन लेकर आया है तो वह तो तटस्थ खड़ा है। वाहन चला कैसे है? जितने बहाने लोग बनाते हैं तत्त्व में, सब बहाने मिटने वाले हैं। यह सारे तो निमित्त मात्र हो गए हैं। यदि आप कहो कि धर्मद्रव्य लेकर आया है, तो वह तो जबरदस्ती करता नहीं है। बोलो, आपको लेकर कौन आ गया यहाँ पर? इसलिए क्रियावती शक्ति का एकांत भी पुरुषार्थहीन करता है। धर्मद्रव्य की निमित्ताधीन दृष्टि, यह पुरुषार्थहीन कर रही है। ज्ञानी! जो तेरे अंदर बैठा था लक्ष्य, उपयोग, वह तेरा पुरुषार्थ था। हे पुरुष! क्रियावती शक्ति की एकांतता लेकर नहीं आई तुझे। हे पुरुष! धर्मद्रव्य प्रेरित करके लेकर नहीं आया तुझे। वह तो उदासीन था। वाहन भी लेकर नहीं आया तुझे। वह तो जहाँ चलाते, चल देता। लेकिन आपका जो लक्ष्य बना था, वह आपको घर से जिनालय और इस प्रवचनसभा में लेकर आया है। यह लक्ष्य लेकर आया है और लक्ष्य किसने बनाया है? ज्ञान-दर्शन गुण ने बनाया है। ज्ञान-दर्शन गुण था कहाँ? उसका नाम आत्मा है। ध्यान दो, नरक भेजेगी तो आत्मा भेजेगी और स्वर्ग भेजेगी तो आत्मा ही भेजेगी, निगोद भेजेगी तो आत्मा भेजेगी, सिद्ध बनायेगी तो आत्मा ही बनायेगी।

पराधीन दृष्टि को छोड़ो, निज के उपादान की बात करो। दोष मत दो पर को। दोष तेरा ही है। ज्ञान-दर्शन का विपर्यास मत करो तो विपरीत गति नहीं हो सकती। ज्ञान-दर्शन यदि पवित्र है, तो परिणति पवित्र होगी और गति नियम से पवित्र होगी। जो यूँ कहते हैं कि मैं तो कुछ नहीं करता हूँ, वह तो पुद्गल का परिणमन चल रहा है, वह तो क्रियावती शक्ति कर रही है। यह मिथ्या भाषण बंद करो, वस्तुस्वरूप समझो। क्रियावती शक्ति अपना काम करती है, परन्तु लक्ष्य के साथ करती है। अभूतपूर्व ग्रंथ 'समयसार' के प्रति लोगों का चिंतन कैसा जाता है?

भैया! सुनो, एक जीव निमित्त बनता है, परन्तु कल्याण कोटि-कोटि जीवों का होता है। जब भगवान् वर्द्धमान स्वामी की दिव्यध्वनि खिर जाती है, तो बारह सभाओं के श्रोता राजा श्रेणिक को कोटि-कोटि धन्यवाद देते हैं, प्रशंसा करते हैं। हे राजन्! आप धन्य हो, क्योंकि जो मेरी प्रज्ञा में प्रश्न नहीं उत्पन्न हुए, वे आपके अंतरंग में उत्पन्न हो गए। और आपके प्रश्नों के माध्यम से हमारी शंकाओं का समाधान हो गया। लक्ष्य एक का है, लेकिन कोटि-कोटि जीवों की शंकाओं के समाधान होते हैं। जो भी तत्त्व को श्रद्धापूर्वक सुन रहा है, वह नियम से भव्य है, भावी भगवान् है। ये सब भावी भगवान् हैं। इनमें से किसी का अपमान मत कर देना।

मेरे मित्रो! जब जगत् में सारे लोगों से दूरियाँ बढ़ जाती हैं, माता-पिता भी दुत्कार देते हैं, तो कहीं नहीं जाता, मित्र के पास जाता है। मेरे मित्रो! जो बात जननी से छुपाई जा सकती है, जनक से छुपाई जा सकती है, उस बात को मित्र से बोल दिया जाता है। अमितगति स्वामी तो कह रहे हैं—"सत्त्वेषु मैत्री", जगत् में जितने प्राणी हैं, वे सब मेरे मित्र हैं। मेरे मित्रो! सुनो, कागज के टुकड़े पर जीवद्रव्य लिखे होने पर आप विनय करते हो और तेरे घर में, परिवार में जो जीवद्रव्य हैं, जो चेतन हैं, जब कागज के टुकड़े का स्पर्श करके आप स्वयं को धन्य मानते हो, कागज के टुकड़े पर पैर पड़ने पर जो परिणाम तुम्हारे हुए हैं कि मुझे प्रायश्चित दे दो, स्वामी! मेरा जीवद्रव्य लिखे कागज पर पैर पड़ गया है, ऐसे-ही कहीं क्रोध के आवेग में आकर बेटे की माँ को तूने पैर लगा दिया हो, तो उसका प्रायश्चित ले लेना। वह तेरी पत्नी बाद में बनी है, वह जीवद्रव्य त्रैकालिक है। उसका अविनय करके तूने घोर पाप का बंध किया है। उससे क्षमा माँगना। यह वह दर्शन नहीं है कि गाय की हिंसा तो हुई सागर नगर में और स्नान को प्रायश्चित करने गया गंगा में। पीटा किसी को और क्षमा माँग रहा बाहुबलि भगवान् से। जाकर देवी के पैर छूना, हे देवी! मुझे क्षमा करना, तू भी भावी भगवान् है। कर पाओगे ऐसा? यदि नहीं कर पाओगे तो स्वयं को सम्यग्दृष्टि कहना बंद करो। यदि कर पाओगे तो फिर विचार करना। जितने उपसर्ग हुए हैं, सब संबंधियों के द्वारा हुए हैं। राग में भरकर, सम्बन्धी को सम्बन्धी मानकर कुछ भी कर लिया। वही उदय में आकर शत्रु बन गया है। यदि विश्वास न हो तो सुकौशल, सुकमाल मुनिराज से पूछो। माँ के जीव ने पेट फाड़ा और भाभी के जीव ने पैर काटा। भैया! आवेग में आकर किसी को लात मत मार देना। मुनिराज बन गए, ध्यानस्थ खड़े हुए हैं। देखो संस्कार। वही भाभी का जीव अपने बच्चों को लेकर पहुँच गया। जो पैर मारा था, उसी पैर को काटना प्रारम्भ हो गया। दुनियाँ कहेगी सियालनी खा रही है, परन्तु कर्मसिद्धान्त कहेगा, "कार्य-लिङ्ग ही कारणम्"। ये जो सियालनी भख रही है, यह कारण नहीं है, यह कार्य है। कारण वह था कि तुमने पैर मारा था भाभी को, वही उदय में आ गया है। ज्ञानी! गुस्सा आए तो स्थान छोड़ देना, किसी पर हाथ मत उठाना अन्यथा अनर्थ हो जाएगा। अकौआ की पर्याय में जब महावीर हो सकते हैं, तो मेरे पुत्र की पर्याय में भी भावी सिद्ध हो सकते हैं। उसका भी अनादर मत कीजिए।

यथार्थ मानिए, जितने यहाँ मुनिराज बैठे हैं, त्यागी बैठे हैं, मैं एक सीमा में इनको समझाता हूँ। मैं मुनि हूँ तो ये भी मुनिराज हैं। इनका अपमान भी मैं करूँगा तो वही बंध होगा जो श्रीपाल को हुआ था। इसलिए मुनि को भी मुनि के बारे में कुछ बोलने को सोचना पड़ेगा। सामान्य गृहस्थ जब मुनि का अविनय कर दे, तो कुष्ठ रोग हो जायेगा। और मुनि ही मुनि का अपमान

कर दे तो उनकी क्या गति होगी? इसलिए संभलकर रहना, कर्मसिद्धान्त के यहाँ घूस नहीं चलती। तुम कहते हो कि इतना पैसा ले लो और हमारे बेटे का एडमिशन कर लो अपने कॉलेज में। भैया! यह जिनशासन, नमोऽस्तु शासन है। दुनियाँ के शासन पर तो कालीपट्टी हो सकती है, परन्तु जिनशासन पर कालीपट्टी नहीं है। यह घूस का मार्ग नहीं है, यह गवाही का मार्ग नहीं है। यह आत्मविशुद्धि का मार्ग है। आत्मविशुद्धि में किसी की सिफारिश नहीं चलती।

पात्र शुद्धि—पात्र शुद्धि अर्थात् जिसका शरीर निरोग है, कुल-जाति शुद्ध है, जिसके भाव विशुद्ध हों, वह दीक्षा का पात्र है।

कुन्दकुन्द स्वामी जो कह रहे हैं, उस पर लक्ष्य बनाकर चलना। विवेकहीन जीवन कभी नहीं जीना। संसार में कोई सबसे बड़ा शत्रु है तो विवेकहीनता है। सुनने में विवेक लगाना, सोचने में विवेक लगाना, करने में विवेक लगाना। विवेकहीन कार्य कभी मत कर देना। जिन्होंने विवेकहीन कार्य किए हैं, उनको रोना पड़ गया है। इसलिए आचार्य महाराज लिख रहे हैं कि सम्यग्दृष्टि वही होता है, जो विवेकशील होता है। जिसके पास विवेक नहीं है, वह सम्यग्दृष्टि नहीं है। समकित को पाना है तो विवेक को बुलाकर लाना। भैया! जो क्षण अभी तुम्हारे चल रहे हैं, वे ही तुम्हारे हैं, बाकी एक भी तुम्हारा नहीं है। जितने रागियों को तुमने आयु के निषेक दिए हैं, वे सब नष्ट हो चुके हैं। जितने निज को दे रहे हो, वे ही आपके हैं। हे भगवन्! वह प्रशस्त निदान भी स्वीकार है। जितने जीव यहाँ विराजे हैं, वे सब आपके समवसरण में विराजें। सब सिद्धालय में पहुँच जायें (निगोदिया बनकर नहीं, सिद्ध बनकर)। परन्तु शंका मत करना। यदि श्रद्धापूर्वक सुन रहे हो तो ऐसा दिन भी आएगा। मिलकर भाव करो कि अपन सब मिलकर सिद्ध बनें। विश्वास मानो! यदि कोई बाजार में टमाटर खरीदने गया है तो उसे सेवफल की आवाज सुनाई नहीं पड़ती। भो ज्ञानी! जिसे भगवान् बनना होता है, वही भगवान् की वाणी सुनने आ पाता है और जिसे संसार में ही रुलना है, वह कभी आने का मन नहीं बना पाता है।

इन तीनों गाथाओं में जो रहस्य भरा है, वह अलौकिक है। श्रमण, श्रावक इन दोनों को समझने का है। जो कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य को नहीं जानता, सेवनीय-असेवनीय को नहीं जानता, पुण्य क्या है और पाप क्या है? इनको नहीं जानता। तत्त्व-अतत्त्व, धर्म-अधर्म का जिसे विवेक नहीं है, वह सम्यक्त्व से रहित है। नाम मात्र सुनकर कभी प्रभावित नहीं होना। धर्म कह दिया तो धर्म नहीं हो गया। समझना, धर्म वास्तव में है क्या?

क्या योग्य है, क्या अयोग्य है, क्या नित्य है, क्या अनित्य है, क्या हेय है, क्या उपादेय है, क्या सत्य है, क्या असत्य है? और कौन भव्य है, कौन अभव्य है? जो इनको नहीं जानता, वह सम्यक्त्व से रहित है।

ध्यान रखना, निर्ग्रंथ योगी बनना हो तो लौकिकजनों की संगति करना आज से ही छोड़ देना। अग्नि के पास बैठोगे तो कपड़ा जलेगा। लौकिकजनों के बीच में रहोगे तो कलंक का टीका लगेगा। त्यागियों को त्यागियों के बीच में रहना चाहिए, रागियों के बीच में नहीं रहना चाहिए। लौकिक संगति के लिए आचार्य महाराज निषेध कर रहे हैं। क्योंकि लौकिकजनों की संगति से अत्यंत वाचाल, कुटिल और दुर्भावनायुक्त हो जाता है। जनसम्पर्क साधुता के लिए हलाहल/ज़हर है। जितना जनसम्पर्क से दूर रहोगे, उतनी साधना अच्छी करोगे। जितना जनसम्पर्क बढ़ाओगे, उतनी साधना भंग होगी। इसलिए देखभाल कर जैसे पाँच पापों को छोड़ा, ऐसे-ही हे मुनिराज! लौकिकजनों की संगति को भी मन-वचन-कर्म से छोड़ दो। घर के लोगों को छोड़कर आए और यहाँ लोगों से चिपक गए, तो राग का अभाव कहाँ किया? स्थानान्तरण किया है। यदि निर्ग्रंथ बनकर रहना था, तो साँप बनकर रहते। जिनागम में (धवला जी की पहली पुस्तक में) जैनमुनि को साँप लिखा है। क्योंकि साँप कभी अपना घर नहीं बनाता। दीमक वामी बनाती है, उसमें साँप रहता है। ऐसे-ही दिगम्बर मुनि अपना भवन नहीं बनाता। साँप से तात्पर्य निष्पृह होते हैं, ऐसा जानना चाहिए।

"आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

॥ भगवान् महावीर स्वामी की जय ॥

❖ ❖ ❖

सम्यक्त्वरहित जीव कौन?

उग्गो तिव्वो दुट्ठो दुब्भावो दुस्सुदो दुरालावो।
दुम्मदरदो विरुद्धो, सो जीवो सम्मउम्मुक्को ॥43॥

अन्वयार्थ—जो **(उग्गो)** उग्र **(तिव्वो)** तीव्र **(दुट्ठो)** दुष्ट **(दुब्भावो)** दुर्भावनायुक्त **(दुस्सुदो)** मिथ्या शास्त्रों का श्रवण करने वाला **(दुरालावो)** दुष्टभावी **(दुम्मदरदो)** मिथ्यामद में अनुरक्त और **(विरुद्धो)** आत्मधर्म के विरुद्ध है **(सो जीवो)** वह जीव **(सम्मउम्मुक्को)** सम्यक्त्व रहित है।

क्षुद्रस्वभावी व दुर्भावनायुक्त जीव सम्यक्त्वहीन हैं

खुद्दो रुद्दो रुट्ठो, अणिट्ठ पिसुणो सगव्वियोसूयो।
गायण-जायण-भंडण-दुस्सणसीलो दु सम्मउम्मुक्को॥ 44॥

अन्वयार्थ—(खुद्दो) क्षुद्र **(रुद्दो)** रौद्र **(रुट्ठो)** रुष्ट **(अणिट्ठ)** दूसरों का अनिष्ट चाहने या करने वाले **(पिसुणो)** चुगलखोर **(सगव्वियो)** अभिमानी **(असूयो)** असहिष्णु /ईर्ष्यालु **(गायण)** गायक **(जायण)** याचक **(भंडण)** कलह करने वाले /गाली देने वाले **(दु)** और **(दुस्सणसीलो)** दूसरों को दोष लगाने वाले—ये सब **(सम्मउम्मुक्को)** सम्यक्त्व रहित होते हैं।

जिनधर्म-विनाशक जीवों के स्वभाव

बाणर-गद्दह-साण-गय, बग्घ-बराह-कराह।
मक्खि-जलूय सहाव णर, जिणवर धम्म विणास॥ 45॥

अन्वयार्थ—(बाणर) बन्दर **(गद्दह)** गधा **(साण)** कुत्ता **(गय)** हाथी **(बग्घ)** बाघ (बराह) सुअर **(कराह)** कच्छप **(मक्खि)** मक्खी **(जलूय सहाव)** जोंक के स्वभाव वाले **(णर)** मनुष्य **(जिणवरधम्म)** जिनेन्द्रदेव के धर्म का **(विणास)** विनाश करने वाले होते हैं।

भव्य बन्धुओ!

अन्तिम तीर्थेश भगवान् वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना, जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति। आचार्यभगवान् कुन्दकुन्द स्वामी रयणसार जी ग्रंथ में श्रमण और श्रावक धर्म का व्याख्यान करते हुए कह रहे हैं कि आत्मा का बोध तो

ज्ञान से होता है, परन्तु आत्मा का शोध चारित्र से होता है। चारित्रविहीन पुरुष की आत्मा का कभी आत्मशोध नहीं हो सकता है। ज्ञान प्रसिद्धि का साधन तो है, बोध का साधन तो है, लेकिन आत्मप्रसिद्धि का साधन, आत्मविशुद्धि का साधन यदि कोई है तो उसका नाम सम्यक्चारित्र है। चारित्रविहीन का ज्ञान जो है, वह मुख की खुजली खुजलाने के समान है। विधवा नारी का शृंगार किसके लिए? पतिविहीन नारी का शृंगार उसके व्यभिचार का प्रतीक है। जैसे विधवा नारी का शृंगार शोभाविहीन होता है, वैसे-ही चारित्रहीन का ज्ञान विधवा स्त्री के आभूषण के तुल्य है। आचार्य भगवान् सोमदेव सूरि ने यह बात कही है—"संयमाय श्रुतं धत्ते" संयम के लिए श्रुत की आराधना करना चाहिए, श्रुत की आराधना के लिए अपने संयम में दोष नहीं लगाना चाहिए। चारित्र की विशुद्धि के लिए ज्ञान होना चाहिए, परन्तु ज्ञान के राग में चारित्र का नाश नहीं होना चाहिए। यदि छिपकली घूम रही है और आपको ज्ञान का लोभ है, वह कीड़ों को खा रही है रात में और आप फिर भी बल्ब बंद नहीं कर रहे हो कि मुझे अध्ययन करना है, तो तेरा अध्ययन हिंसाकर्म है। जिस दिन कीड़े गिर रहे हों तो उस दिन स्वाध्याय बंद कर देना। तत्त्वचिंतन कर लेना, णमोकार का पाठ कर लेना। णमोकार की माला फेरना भी स्वाध्याय है। स्वाध्याय का उद्देश्य अहिंसा की सिद्धि के लिए है। ज्ञान का उद्देश्य चारित्र की सिद्धि है। जिसके ज्ञान की आराधना में परिणाम कलुषित होते हों, जीवों की हिंसा हो रही हो, ऐसा ज्ञान विधवा का शृंगार है।

सती स्त्री होगी तो पति के वियोग होने पर छींट की साड़ी भी नहीं पहनती है। विधवा का वर्णन किया है पाण्डव पुराण में, नदी की उपमा दी है। पतिविहीन माँ! अपने आप को दु:खी मत कहो। संयोग जितना था, उतना पूर्ण हो गया। अब ये कहो कि आप दु:खी नहीं हुए हो, आप स्वतन्त्र हुए हो। पति का संयोग था, आप शील का पालन करना चाहते थे, पराधीन दशा थी। पति का वियोग हो गया है, अब तुम शील के पालन में स्वतन्त्र हो चुकी हो, तुम्हारा पुण्योदय है। सम्यक् सोचो। जैसे नदी की बाढ़ में सफेद फैन बहता है, ऐसे-ही विधवा नारी के शरीर पर तो सफेद साड़ी ही शोभा देती है। जैसे विधवा स्त्री के शरीर पर सफेद साड़ी शोभा देती है, ऐसे-ही ज्ञानी के ज्ञान पर उज्जवल चारित्र शोभा देता है। स्वाध्याय का उद्देश्य था चारित्र की विशुद्धि।

सुनो भैया! परिणाम निर्मल रखना है तो भोजनशुद्धि, भाषाशुद्धि, देहशुद्धि इन तीनों शुद्धियों पर ध्यान रखना पड़ेगा। भोजनशुद्धि समझ गए, भाषाशुद्धि समझ गए, लेकिन देहशुद्धि से तात्पर्य अपने स्वजातीय वंश में विवाह होना चाहिए। दूसरों की बेटियों को पकड़कर अपने यहाँ नहीं लाना चाहिए, यह है पिण्डशुद्धि। अपने वंश-परम्परा में सम्बन्ध होंगे तो वहाँ नमोऽस्तु

शासन जयवंत रहेगा। दूसरों में सम्बन्ध हो जायेंगे तो खिचड़ी पकना है। माँ कहेगी—'बेटा! अमुक बटैया पर पानी ढार आओ', पिता कहेगा—'बेटा! भगवान् का अभिषेक कर आओ'। बेटा कहेगा, मुझे कुछ नहीं करना। उस घर में युद्ध होना है। जिस घर में माँ भी अरिहंतभक्त हो, पिता भी अरिहंतभक्त हो, तो बेटा तो अपने आप अरिहंत को जयवंत करेगा। सनातन धर्म को आगे लेकर चलना है तो देहशुद्धि पर ध्यान रखना पड़ेगा। यदि तुम जिनशासन को कुछ भी नहीं दे सकते, तो कम-से-कम एक सुसंस्कारित बेटा-बेटी तो देकर जाओ। यदि णमोकार का पाठ करने वाला पुत्र-पुत्री भी मिल गया, तो जिनशासन अपने आप आगे चलेगा।

ज्ञानी! द्रव्यशुद्धि नहीं है तो विश्वास रखना, भावशुद्धि नहीं होगी। भावशुद्धि का साधन है द्रव्यशुद्धि। जितना द्रव्य शुद्ध होगा, उतनी उमंग होगी। भगवान् के पूजन का द्रव्य भी जितना उज्जवल होगा, उत्कृष्ट होगा, उतना पूजन करने में आनंद आयेगा। कोई टूटे-घुने द्रव्य लेकर आ जाए, जैसा द्रव्य होगा वैसा चढ़ानेवाले का चेहरा होगा। पवित्र-उत्कृष्ट द्रव्य होना चाहिए। भगवान् के पूजन में लोभ नहीं करना। तेरे कमाने से द्रव्य नहीं मिला। यदि कमाने से मिलता तो नगर में ऑटो वाले, रिक्शेवाले घूम रहे हैं, तुमसे ज्यादा श्रम करते हैं, बेचारे दिनभर कमाते हैं, पर कितना-सा आता है? अपना भाग्य समझो। इसलिए इस जिह्वा से बोलो तो जिनवाणी बोलो, चिंतन करो तो जिनवाणी का करो, मंथन करो तो जिनवाणी का करो, कानों से सुनो तो जिनवाणी सुनो। बाकी 'दोषवादे च मौनम्'।

सम्यग्दृष्टि जीव पर-नारी के लिए नपुंसक होता है। सम्यग्दृष्टि जीव पर की निंदा करने के लिए मूक होता है, पर की निंदा सुनने पर बहरा होता है। सम्यग्दृष्टि जीव पाप में गमन करने के लिए लंगड़ा-लूला होता है, परदोष देखने के लिए अंधा होता है। अब करो पहचान अपनी। अपने यहाँ जब वेदीशुद्धि, वेदीप्रतिष्ठा होती है, तो प्रतिष्ठाचार्य वेदी के ऊपर कपूर जला देता है। उस भूमि पर किसी प्रकार की अशुद्धि हो, शिल्पकार ने बनाते समय पैर रखे हों, कहीं थूक भी दिया हो, तो अग्नि से शुद्धि करते हैं। क्योंकि हम तीनलोक के नाथ को अशुद्ध स्थान पर कैसे विराजमान कर सकते हैं? जैसे वेदी पर पाषाण के भगवान् को विराजमान करने के लिए वेदीशुद्धि करते हैं, अग्निशुद्धिपूर्वक, तो जो जिनवाणी कहने जायें, वे पहले अपने मुख को शुद्ध कर लें। जिनका अभक्ष्य का त्याग न हो, वे पहले अभक्ष्यों का त्याग करें। जो अशुद्ध मुख से जिनवाणी बोलेंगे, वे नरक-निगोद को जायेंगे। दीक्षा लेने के बाद आगम में विधान है कि किसी मुनि से तुरन्त उपदेश नहीं कराया जाता। उत्कृष्ट विधि तो यह है कि उस मुनि को बारह वर्ष तक गुरुचरणों में बैठकर श्रुत का अध्ययन करना चाहिए। उसके उपरान्त उसकी मुखशुद्धि कराना

और फिर उससे प्रवचन करवाना। वर्तमान में दीक्षा के बाद मुखशुद्धि तुरन्त वहीं करा दी जाती है। आचार्य भगवन्त विद्यासागर जी ने 'जैनगीता' में लिखा है—

था श्रीवीर ने सद्उपदेश मुझे सुनाया,
पर धिक्कार मुझे, मैंने सुना ना,
मानो सुना भी, पर गुना ना।

सुना तो अनेक बार है, गुना ना, भूल गए थे। ध्रुव सत्य यह है कि जब उपादान में योग्यता नहीं होती, तो तीर्थंकर की देशना भी कार्यकारी नहीं होती। मारीचि से पूछो, जब तेरा उपादान गड़बड़ था, तो ऋषभदेव की वाणी भी कल्याण नहीं कर पाई। उपादान निर्मल हुआ, तो सिंह की पर्याय में दो मुनियों का उपदेश तुझे श्रावक बना गया। तुम तो श्रावक हो, अब श्रावक बनकर ही रहना, सिंह मत बन जाना। ज्ञान प्राप्ति के लिए सदैव सजग रहना। गुरु का आशीर्वाद, शिष्य का अभ्यास और श्रद्धा, ये तीन तेरे पास मिल जायें तो नियम से विद्या छम-छम नाचेगी। प्रमाद नहीं करना। श्रुत जहाँ मिले, उसे ले लेना। आर्यसमाजी लोगों से मैंने अध्ययन किया, ब्राह्मण विद्वानों से मैंने अध्ययन किया। अनेक पण्डितों से पढ़ा है, भिलाई में, रायपुर में, बीना में। जिसने एक अक्षर भी दिया, उसका उपकार नहीं भूलना।

अक्षरस्यापि चैकस्य पदार्थस्य पदस्य वा।
दातारं विस्मरन् पापी किं पुनर्धर्मदेशिनम्॥ (हरिवंशपुराण)

जिसने एक पद, एक अक्षर का भी ज्ञान दिया हो, उसे जो भूल जाए, वह पापी है। फिर जिसने शिक्षा-दीक्षा दी हो, उस गुरु को जो भूल जाए, वह महापापी है। उपकारी के उपकार को कभी मत भूलना। अपन थे क्या? गुरु ने कितनी मेहनत की है। माता-पिता यदि मेहनत करें तो लगता है कि इसका नाम होगा, कमाकर खिलायेगा। शिष्य-गुरु का सम्बन्ध तो चिड़िया-पक्षी जैसा है। चिड़िया पाल-पोस कर बड़ा ही कर पाती है, फिर तो उड़ जाता है। गुरु ने शिक्षा-दीक्षा दी, अब जाओ, तुम अपना काम करो, हम अपना काम कर रहे हैं। कुछ नहीं चाहिए।

आचार्यभगवान् कुन्दकुन्द स्वामी कह रहे हैं कि—हे योगी! हे श्रमण! हे श्रावक! जैसे धरषेण स्वामी ने जिनवाणी की रक्षा की पुष्पदंत-भूतबलि स्वामी को बुलाकर, ऐसे-ही आप जिनवाणी की रक्षा करना।

सुनो, आचार्य महाराज क्या कह रहे हैं?—लोक की संस्कृति से दूर रहना। उल्टा हो रहा है, हम साधुओं से दूर रह लेते हैं। एकलविहार कर लेते हैं और श्रावकों को बैठालते हैं, जो

संयमभ्रष्ट होने का मुख्य कारण है। फिर अकेले भाग रहे हैं मृगचारी बनकरके। मृग जो होता है, वह चौकड़ी भरता है अकेला। ऐसे ही जो गुरु को छोड़कर अकेला भटकता है मुनि, उसको आगम कहता है मृगचारी। लौकिकजनों की संगति में मत जाना। जितना जनसम्पर्क बढ़ेगा, चित्त भ्रमित होगा। हर व्यक्ति के शरीर से गंध निकलती है, वर्गणाएँ निकलती हैं, वे प्रभावित करती हैं। क्रूरपरिणामी होगा, कमरे से उठकर चला भी जायेगा, तो भी आपको आभास होगा। साधु-साधक जिस कमरे में होंगे, वे चले भी जायेंगे, आपको लगेगा महाराज बैठे हैं। सिद्धभूमि की वंदना इसका प्रमाण है। वहाँ सिद्ध नहीं हैं। यथार्थ मानिए, जो परिणामों की विशुद्धि सम्मेदशिखर में होती है, वह कहीं नहीं लगती, क्योंकि अनंतानंत मुनियों ने वहाँ से सिद्धि प्राप्त की है। वे वर्गणाएँ वहाँ भरी हुई हैं। लौकिकजनों की संगति से दूर रहना। साधु कम होना अच्छा है, लेकिन अच्छे होना अच्छा है।

"आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

॥ भगवान् महावीर स्वामी की जय ॥

❖ ❖ ❖

रत्नत्रय में सम्यग्दर्शन की मुख्यता

सम्म विणा सण्णाणं, सच्चारित्तं ण होदि णियमेण।
तो रयणत्तय मज्झे, सम्मगुणुविकट्ठमिदि जिणुद्दिट्ठं ॥ 46 ॥

अन्वयार्थ—(सम्म विणा) सम्यग्दर्शन के बिना **(सण्णाणं)** सम्यग्ज्ञान और **(सच्चारित्तं)** सम्यक्चारित्र **(णियमेण)** नियम से **(ण)** नहीं **(होइ)** होते हैं **(तो)** इसलिए **(रयणत्तय मज्झे)** रत्नत्रय में **(सम्मगुणुविकट्ठं)** सम्यग्दर्शन गुण उत्कृष्ट है **(इदि)** यह **(जिणुद्दिट्ठं)** जिनेन्द्रदेव ने कहा है।

सम्यक्त्व की हानि कैसे?

कुतव कुलिंगि कुणाणी, कुवय कुसीले कुदंसण कुसत्थे।
कुणिमित्ते संथुय थुइ, पसंसणं सम्म-हादि होइ णियमं॥ 47 ॥

अन्वयार्थ—(कुतव) कुतप **(कुलिंगि)** कुलिंगि /मिथ्यावेष धारण करने वाले में **(कुणाणी)** मिथ्याज्ञानी में **(कुवय)** कुव्रत में **(कुसीले)** कुशील /मिथ्याशील में **(कुदंसण)** मिथ्यादर्शन में **(कुसत्थे)** कुशास्त्र में **(कुणिमित्ते)** मिथ्या निमित्तों में **(थुइ)** स्तुति **(संथुय)** संस्तुति तथा **(पसंसणं)** प्रशंसा करने से **(णियमं)** नियम से **(सम्म-हाणि)** सम्यक्त्व की हानि **(होइ)** होती है।

सबसे बड़ा कष्ट मिथ्यात्व

तणु-कुट्ठी कुलभंगं, कुणदि भंगं जहा मिच्छ-मप्पणो वि तहा।
दाणादि सुगुण भंगं, गदि मिच्छ-मेव हो कट्ठं॥ 48 ॥

अन्वयार्थ—(जहा) जैसे **(तणु-कुट्ठी)** शरीर का कोढ़ी व्यक्ति **(कुल भंगं कुणदि)** कुल का नाश करता है **(तहा)** उसी प्रकार **(मिच्छंवि)** मिथ्यात्व भी **(अप्पणो)** आत्मा के **(दाणाइ सुगुण भंगं)** दान आदि उत्तम गुणों का नाश करने वाला और **(गदि भंगं)** सद्गति का नाशक है **(हो)** अहो **(मिच्छमेव कट्ठं)** मिथ्यात्व ही कष्ट है।

भव्य बन्धुओ!

अन्तिम तीर्थेश भगवान् वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर

जिनेन्द्र की दिव्यदेशना पीयूषवाणी मनीषियो जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमण संस्कृति। आचार्य भगवान् कुन्दकुन्द स्वामी ने तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना को अपने अंतस् में ऐसे संजोकर रखा, गर्भस्थ शिशु को हे माँ! तू क्या संभाल पायेगी? जैसे कुन्दकुन्द भगवान् ने अपने अंतस् में जिनेन्द्र के सूत्रों को संजोया है। इस श्रमण संस्कृति को जीवंत रखने में महायोगियों का जो अभूतपूर्व योगदान है, उसे कभी भुलाया नहीं जा सकता। पूरे देश की समाज से कह देना कि नींव की ईंट को कभी भूल मत जाना। विशुद्धसागर को देखकर ही मत मुस्कुराना, कुन्दकुन्द भगवान् को भी निहारना। यदि वे न होते तो तुम आज ये प्रवचन सुन नहीं पाते। धरषेण जैसे महातपोधन, भद्रबाहु जैसे महायोगी, जिन्होंने प्रान्त से, देश से राग न करके अपने धर्म में अनुराग किया। उत्तर भारत को छोड़कर दक्षिण भारत की ओर चले गए। जाने का उद्देश्य मात्र मुनियों की चर्या के पालन का था। भैया! भूखे रह लेना, प्यासे सो जाना, लेकिन धर्म से रहित अमृत का पान मत कर लेना।

सम्यक्त्वसहित नरक का नारकी श्रेष्ठ है, सम्यक्त्व रहित स्वर्ग का देव श्रेष्ठ नहीं है। सम्यग्दृष्टि नारकी मोक्षमार्गी है और मिथ्यादृष्टि देव संसारमार्गी है। पहचान कैसे हो, कौन सम्यग्दृष्टि? कौन मिथ्यादृष्टि? इसकी पहचान बता रहे हैं आचार्य महाराज बहिर्चिह्नों से। देह की चेष्टाओं से व्यक्ति के मनोभावों का ज्ञान होता है और जीव की मनोभावों की प्रवृत्ति को देखकर जीव की श्रद्धा का बोध होता है। "जैसी आस्था होगी, वैसा आचरण होगा।" जिसकी आस्था विपरीत है, उसका आचरण भी विपरीत होगा। जिसका पुण्य का द्रव्य खोटा है, उसको द्रव्य लगाने का स्थान भी खोटा मिलेगा। एक जीव एक सिक्का भी कमाता है तो जिनेन्द्र के पूजन-अभिषेक में लगाता है और एक के पास कोटि-कोटि द्रव्य है, वह मिथ्यात्व के मन्दिर के शिखर बनवा रहा है। माणिक्यनंदि मुनिमहाराज ने 'परीक्षामुख सूत्र' में लिखा है–

साधनात्साध्य विज्ञानमनुमानम् ॥9 परी.मु.सू.॥

साधन से साध्य का ज्ञान होता है, यह अनुमानज्ञान है, न्यायशास्त्र कहता है। जो जीव इल्लीमार, किल्लीमार आदि दवाओं का व्यापार कर रहा है, अनुमान लगा लीजिए, यह सम्यग्दृष्टि है कि मिथ्यादृष्टि है? धर्म की पहचान, धर्म की प्रभावना ढोलक बजाना मात्र नहीं है। जिनशासन में तो व्यापारी के व्यापार से ही प्रभावना हो जाती है। आप अपनी दुकान पर पानी रखे थे, ग्राहक आता है– भैया! पानी पीना है। आप पानी छानकर पिलाते हो, तो वह समझ जाता है कि जैन हैं। हो गई धर्म की प्रभावना। पैसा ही तो चाहिए जिस व्यक्ति को हिंसाकर्म का व्यापार

करते हुए धन मिल रहा है, उसके पूर्व के पुण्य की क्या महिमा होगी? उस से कह देना कि हे ज्ञानी! तेरा इतना प्रबल पुण्य है कि हिंसा करने से पैसा आ रहा है। तू तो मिट्टी में हाथ लगायेगा तो भी पैसा आएगा। इसलिए हिंसाकर्म को छोड़ दे, अच्छा कर्म करना प्रारंभ कर दे। वह द्रव्य किस काम का? देखो! सम्यग्दृष्टि की पहचान चल रही है।

जिनसेन स्वामी ने लिखा है, उच्च कर्म की पहचान यज्ञोपवीत है। परन्तु जिसके खोटे व्यापार चल रहे हों, वह यज्ञोपवीत धारण करने का भी अधिकारी नहीं है। वह धारण करेगा भी क्यों? वह यज्ञोपवीत तो रत्नत्रय का प्रतीक था। अब तेरे पास सम्यक्त्व ही नहीं है, तो यज्ञोपवीत क्या धारण करेगा? व्यापार पर दृष्टि डालना कि यह व्यापार परिणाम है या परिणाम की पहचान है? लोग समझते हैं कि व्यापार भिन्न वस्तु है, धर्म भिन्न वस्तु है। यह धर्म का विनाश क्यों हो रहा है? न्यायशास्त्र नहीं पढ़ रहे हो, इसलिए उल्टी-सीधी बातें कर रहे हो। भैया! तू भगवान् का अभिषेक करके आया है, अरिहंत की पूजन करके आया है और कोई आपसे कहे, 'सेठ जी! आपका प्रबल पुण्य का उदय आया है, अमुक एजेन्सी आई है, आप सागर से हड्डियाँ भेजना।' क्या तैयार हो जाओगे? यदि सम्यग्दृष्टि है, जिनेन्द्रभक्त है, तो हड्डियों के व्यापार की एजेन्सी नहीं माँगेगा। यह व्यापार जो है, वह तेरे परिणामों की पहचान है। जिसके क्रूरपरिणाम होंगे, उसका व्यापार भी क्रूररूप होगा। जिसके परिणाम निर्मल होंगे, वह व्यापार भी पवित्र करेगा। जिसमें बहुहिंसा होती है, ऐसा व्यापार सम्यग्दृष्टि कर नहीं सकता।

हमारे बुजुर्गों ने पोटली टांगकर बंजी करना पसंद किया, परन्तु किसी विधर्मी के यहाँ काम करना पसंद नहीं किया। क्योंकि अपनी बंजी की पोटली लेकर जायेंगे तो जहाँ मन करेगा वहाँ बैठ जायेंगे, सामायिक कर लेंगे, समय पर अनथऊ कर लेंगे। वह पैसा किस काम का जो रात्रि में भोजन कराये? हे निशाचरो! ऐसा पैसा काम कब आयेगा? अंतरंग करुणा भरी है जिसके, वह हिंसाकर्म कर नहीं सकता। एक बालक के पिता को साँप ने काट लिया, परन्तु काटा कैसे? एक जैनी की दया देखो। एक दुकानदार के यहाँ सर्प निकला तो उसने मारकर जला दिया। दूसरा निकला तो जैन देख रहा था, उसे लगा कि इसे भी मार देंगे, तो उसे उठाकर बाहर छोड़ने गए, साँप काटता रहा, लेकिन बोले—तेरा स्वभाव काटना है, मेरा स्वभाव रक्षा करना है। साँप से कट गए, लेकिन साँप को मरने से बचा लिया। पुण्यात्मा जीव, जिसके हृदय में अहिंसा भरी हो, ज़हर ने भी अरिहंत के भक्त पर असर नहीं किया। आज भी विशुद्धि का ऐसा चमत्कार है।

विघ्नौघा प्रलयंयान्ति, शाकिनी-भूत-पन्नगाः।
विषो निर्विषतां याति, स्तूयमाने जिनेश्वरे ॥समाधिभक्ति॥

जो जिनेन्द्रदेव का स्मरण कर लेता है, उसकी जगत् की सारी विपदाएँ स्वतः शांत हो जाती हैं। भूखे रह लेना, भीख माँग लेना, लेकिन हिंसाकर्म का व्यापार मत करना। जितना पुण्य तुम्हारी सत्ता में होता है, वह शीघ्र क्षय को प्राप्त होता है। अशुभ कर्म करने से लाभ नहीं होता है, लाभांतराय कर्म के क्षयोपशम से लाभ होता है। ऐसे भी तो नगर में व्यापारी होंगे जो मात्र फोन पर बैठे रहते होंगे और करोड़ों कमाते होंगे और ऐसे भी व्यापारी होंगे जो दिन भर लगे रहते हैं, फिर भी मात्र सुबह-शाम की रोटी हो पाती है। लाभांतराय कर्म का जैसा क्षयोपशम होगा, वैसा द्रव्य मिलेगा। एक वह पुरुष है जो किंचित् भी नहीं कमाता है और स्वयं लोग आकर भेंट चढ़ा रहे हैं—लो स्वामी! लाभांतराय कर्म का क्षयोपशम है। चिरगाँव है झाँसी के पास। 'पुरुषार्थसिद्धिउयाप' की वाचना चल रही थी। गायत्री परिवार से बहुत सारे लोग रोज आते थे। एक भैया को मधुमक्खी पालन का परमिट मिल गया और लेकर आ गया। और देखो नियोग, पुरुषार्थसिद्धि ग्रंथ पर उसी दिन शहर में प्रवचन हुए। वह व्यक्ति, जो शासन की ओर से कागज लेकर आया था, उसने वहीं फाड़कर फेंक दिया। बोला—महाराज! आज का शुभ पुण्य का नियोग था मेरा, जो आज प्रवचन सुनने आ गया।

कुछ भी कहो, जिनवाणी का असर पड़ता है। कितने सारे लोगों की जीवनशैली बदली है। यदि धर्म के परिणाम और व्यापार के परिणाम को पृथक् मानते हो, तो फिर धर्म बचा कहाँ? व्यापार के अलावा आप हिंसा करते कहाँ हो? व्यापार के नाम से हिंसा तो हिंसा ही कहलायेगी। असत्य तो असत्य ही कहलायेगा। चोरी तो चोरी ही कहलायेगी। कुशील तो कुशील ही कहलायेगा। परिग्रह तो परिग्रह ही कहलायेगा। पापों में कोई साझेदारी होती नहीं है। बहुहिंसक काम मत करना। आप वर्तमान पर्याय के पुरुषार्थ से जैनकुल में जन्मे हो? हे मुमुक्षु! वर्तमान के किसी पुण्य से आप मनुष्य नहीं बने। जो तुम मनुष्य बने हो, यह भूत का पुण्य काम कर रहा है। जब भूत के पुण्य से तुम मनुष्य बने हो, तो भूत के पुण्य से तुमको खाने को भी मिल रहा है, तो व्यर्थ में क्यों जीवहिंसा के भाव करते हो? हे माँ! जिस माँ के द्वार पर लिखा हो ब्यूटीपार्लर, उस माँ से जाकर कह देना कि उज्जवल कुल में आकर नीचकुल के बंध का कार्य मत करो। आज ही बोर्ड हटा देना और यदि तुम्हारे घर में हो रहा है, तो तुम्हारे घर का सूतक-पातक कभी बंद नहीं होगा। जैसे जल में पड़ा तेल स्वयमेव ऊपर आता है, ऐसे-ही कितना भी छुपकर पुण्य करोगे, उसका फल अपने आप ऊपर दिखाई देगा, उसको कहने की

क्या आवश्यकता है? जितना छुपकर कार्य करोगे, उतना अच्छा होगा। माँ! गर्भ का शिशु जितना अधिक गर्भ में रहेगा, उतना मस्त होगा और जल्दी जन्म ले ले बच्चा, तो कमजोर होता है। दान को छुपाकर दो।

एक समय था, जिस गवाही को जैन ने दे दिया, वह अमर हो जाती थी। भैया! अपने कुल की आन-बान-शान का ध्यान रखो। जिस राज्य में जैन नहीं होता था, वह राज्य सूना कहलाता था। राजा लोग जैनियों को बुलाकर बसाया करते थे। जिस जीव का जैसा द्रव्य होगा, वैसे-ही स्थान पर लगेगा। व्यापार की परिणति भावों का बोध करा रही है। जिस बुण्देलखण्ड की माटी से जिनवाणी भेजी जाती थी, आज वह युग बदल गया। अपकर्ष नहीं हुआ, उत्कर्ष हुआ है। एक समय था, वर्णी जी का काल था, उस समय मात्र विद्वानों ने इस माटी से निकलना प्रारंभ किया था। आज वह काल ऊपर चला गया है, अब मुनिराज निकलना प्रारंभ हो गए हैं। गोम्मटेश्वर मस्तकाभिषेक में सर्वाधिक उत्तर भारत बुण्देलखण्ड के जन्मे साधु थे। जहाँ आपने धर्म का प्रतिनिधित्व किया है, उसे ही चलाना। तुम्हारी पहचान धन से नहीं, धर्म से है। इसलिए धन के पीछे धर्म मत छोड़ देना। जो पहचान हमारी है, उसे बनाकर रखना। व्यापार के राग में अंतरंग का व्यापार खोखला मत कर देना।

उग्रस्वभावी है जिसको शीघ्र क्रोध आता है। जो अंदर कषाय बांधकर चलता है, उसके पास अभी सम्यक्त्व नहीं है। भैया! किसी से तू-तू मैं-मैं हो गई हो तो क्षमा माँग लेना। अंतरंग में क्षमाभाव रख लेना। किसने देखा कल की पर्याय को? आप आगम पढ़ो। जिनके पीछे रामायण हो गई, कितने योद्धाओं का जीवन नष्ट हो गया। कर्म की विचित्रता देखो, रावण जब तीर्थंकर बनेगा तो वही सीता का जीव उनका प्रधान गणधर बनेगा। कौन शत्रु, कौन मित्र? मत सोचना कौन कैसा है? जिसे हम भिन्न मानते थे, वे अभिन्न मित्र बन गए और जिनको अभिन्न मित्र मानते थे, वे शत्रु बन गए। सबके दिन एकसे नहीं होते। कौन किसका है? जब तक आँख खुली है, वात्सल्य के साथ रहो। जब आँख बन्द होने लग जाए, तो निज आत्मा के साथ रहना। एक-दूसरे को देखना मत, मात्र अपने आपको देखना। नहीं तो यह पंचमकाल है, लोग दूसरों को देखते हैं। अपने परिणाम देखना। कल्याण स्वयं का करना है, कि दूसरों का करना है? विश्वास रखना, मित्र भी अमित्र हो जाते हैं, अमित्र भी मित्र हो जाते हैं। हर वस्तु का रंग बदलता है। आम का फल जो कुछ दिन पूर्व वृक्ष में हरा दिखता था, वह पीला दिख गया और कुछ दिन बाद जाओ तो दिखता ही नहीं है, वह तो टपक गया। भैया! हरे थे, पीले हो गए। टपकने के पहले कुछ कर लो। टपकने के पहले कुछ ऐसा करो कि लोग जय-जयकार करें, हाहाकार न करें।

भैया! बाहर की वस्तु पर तुम्हारा वश नहीं चलेगा। लेकिन जब तक हम शरीर में हैं, तब तक भावों पर पुरुषार्थ तो चल सकता है। भव सुधारने की भावना रखते हो यदि आप सब, तो भाव सुधारना प्रारंभ कर दो। न मैं रहूँगा, न तू रहेगा, कर्म लेकर चला जाएगा। जैसा कर्म करेगा, वैसा फल मिलेगा। उग्रस्वभावी, तीव्रस्वभावी, दुष्ट चेष्टा जिसकी हो, मरण कर लूँगा लेकिन छोड़ूँगा नहीं। धिक्कार हो तुझे। माला पहनाओ, सम्मान कर दो, पूरा घर अपने नाम लिखवा लो। ऐसे भी अहंकारी मिलेंगे जो पूरी सम्पत्ति छोड़ने को तैयार हैं, लेकिन मेरा नाम हो जाए, सम्मान हो जाए। नाम नहीं लिया तो दिया हुआ दान भी वापस लेने चले गए। नहीं, भैया! आपने नाम के लिए दान नहीं दिया, अपनी लोभकषाय को कम करने के लिए दान दिया है। कभी-कभी क्या होता है कि व्यक्ति अच्छा सोचना चाहता है, पर बुरा ही सोचता है। कभी-कभी तो लोग बोल भी देते हैं, क्या करूँ महाराज! जब-जब भगवान् को देखता हूँ, अशुभ भाव आते हैं, मुनि को देखने पर अशुभ भाव आते हैं। अब किसी से पूछने मत जाना, तेरी दुर्गति का बंध नियम से हो चुका है। जिसका दुर्गति का बंध हो चुका है, उसकी मति सम्यक् हो नहीं पाती है।

एक वह जीव है, सूर्यमुखी के समान है। सच्चा जैन वही है, जिसके परिणाम सूर्यमुखी के समान हैं। उल्लू होता है, जैसे-ही सूर्य उदित होता है, उसे दिखना बंद हो जाता है। जिस जीव को धर्म-धर्मात्मा को देखकर अंतरंग में ग्लानि लगने लग जाये, वह भविष्य का उल्लू है। चमगादड़ कैसे लटके रहते हैं-उल्टे। जिनको धर्म को देखकर उल्टी होती हो, वे उल्टे लटकने वाले जीव हैं। सच्चा जैन सूर्यमुखी फूल के समान होता है। जैसे-जैसे सूर्य चलता है, उसी ओर चलता है। ऐसे-ही धर्म-धर्मात्मा को देखकर जिसका मन खिल जाए और धर्मात्मा के पीछे-पीछे चले, उसका नाम सच्चा जैन है। कभी दुर्भावना मत लाना, सूर्यमुखी फूल बनकर रहना। योगियों के चरणों में बैठना, कुछ मत बोलना, चेहरा देखते रहना, क्यों? अशुभ चित्र देखकर चित्त चलायमान होता है, योगी का चित्र देखूँगा तो चित्त पवित्र होगा। चित्त पवित्र होगा तो चारित्र स्वयमेव पवित्र होगा। एक विशाल तीर्थ खड़ा कर देना सरल है, परन्तु अपने पड़ौसी से दुर्भावना नहीं रखना अत्यंत कठिन है। तीर्थ आपको न सताने जाएगा, न बचाने जाएगा, लेकिन पड़ौसी से सद्भावना है तो बचाने जरूर पहुँचेगा। दुर्भावना है तो अगली पर्याय में सताने जरूर पहुँच जायेगा। नहीं मानो तो पार्श्वनाथ से पूछो, सगा भैया बदला लेता रहा।

"मैत्री भाव जगत् में मेरा सब जीवों से नित्य रहे"

यह भगवान् को नहीं सुनाना, निज भगवान् को सुनाना है। भैया! जब इतनी पवित्र भावना भाते हो, तो अपने सगे भैया के प्रति अशुभ भाव क्यों लाते हो? वह भी तो जगत् के जीवों में एक जीव है। खोटी बातें मत सुनना। जो खोटी बातें सुनता है, वह सम्यग्दृष्टि नहीं है। दूसरे की

प्रशंसा सुनने में तो ऐसा लगता है मानो किसी ने शूल चुभा दिए हों। निंदा सुनाये तो ऐसा लगता है जैसे बच्चों के मुख में चॉकलेट घुलती है। भैया! दूसरे की निंदा सुनने से नीचगोत्र का बंध होता है, इसलिए निंदा नहीं सुनना। जीवन में निर्मल रहना चाहते हो तो किसी को समय मत दो, व्यस्त रहो। खाली रहोगे तो कोई-न-कोई आपके पास बैठेगा, अपनी सुनायेगा, स्वयं की गन्दगी आपके पास छोड़कर चला जायेगा। खाली नहीं रखना अपने आप को। जिनवाणी का दीप जला लो। स्वाध्याय करो, जिससे तुम्हारी आत्मा पवित्र हो जाए। जितने वृद्धों को सुखी होना है, वे अपनी युवा पर्याय देखना बंद कर दें। युवा पर्याय देखोगे अपनी, तो तुमको रोना पड़ेगा। तुम वृद्ध हो, वृद्ध पर्याय देखो और युवाओं के साथ रहना बंद करो। उनके जमाने में रहो, पर अपने जमाने के अनुसार चलो, अन्यथा रोना पड़ेगा। दाल-दलिया खाओ और बाटियाँ छोड़ो। सबके दिन एक-से नहीं होते। वे दिन गए, अब दाल-दलिया की बात करो। जीव को मरने के समय में न स्त्री की इच्छा सताती है, न अन्य कोई इच्छा सताती है। धन कमाने की शक्ति भी समाप्त हो जाती है। जीव को अन्तिम समय में कोई परेशान करता है तो उसका नाम है रसना इन्द्रिय। न चबा पाता है, खा पाता नहीं है और इच्छा रहती है, और इच्छा करते-करते चला गया तो मालूम चला कि उसी बाफले में कीड़ा हो गया। गति सुधारना है तो रसना पर नियन्त्रण आज से ही करना पड़ेगा।

आलसी, खोटे शास्त्र सुनने वाला, खोटी भाषा बोलने वाला, मिथ्यामद में लीन होने वाला, धर्म के विरुद्ध आचरण करता है, ऐसा जीव सम्यक्त्व से रहित है।

मात्र दोष देखना ही जिसकी प्रवृत्ति है, ऐसी क्षुद्र प्रवृत्ति वाला जीव। रौद्र परिणामी जीव, दूसरों का अनिष्ट करने वाला, चुगलखोर, जीव। याचक की प्रवृत्ति कभी मत डालना। जिनकी माँगने की प्रवृत्ति पड़ जाती है, वे न वंश देखते हैं, न कुल देखते हैं, कहीं भी माँगने खड़े हो जाते हैं। मुनि भी बन गए तो माँगने का तरीका बदल दोगे, परन्तु माँगोगे। वीर की संतान हो, वीर बनकर रहो। भगवान् की भक्ति करो आप, परन्तु संगीत से आजीविका मत करना। भगवान् के भजन गा-गा कर पेट भरे तो क्या किया? वह भक्ति के लिए थोड़े-ही गा रहा है, पेट भरने के लिए गा रहा है। दो भैया प्रेम से रहते थे, किसी ने जाकर भण्डाफोड़ करा दिया। किंचित् भी दया अंदर हो तो किसी के घर के वात्सल्य को समाप्त मत कराना। जो करता है, वह सम्यक्त्व से रहित है।

वानरवृत्ति। जैसे बंदर विशाल उद्यान को उजाड़ देता है, ऐसे-ही धर्मसभा में आकर भी जो सारे लोगों के चित्त को उजाड़कर रख दे, वह वानरस्वभावी व्यक्ति है।

किं मिष्टमन्नं खर शूकराणाम्, किं रत्नहारो मृग पक्षीणाम्।
अन्धस्थ दीपं वधिरस्य गीतं, मूर्खस्य किं शास्त्रकथा प्रसंगः॥

बढ़िया छप्पन प्रकार का भोजन बनाया, सूकर-गधे के आगे रख दिया, वह क्या करेगा? एक को घास दिखेगी और एक को मल दिखेगा। उनको तुम्हारे छप्पन प्रकार के भोजन से कोई प्रयोजन नहीं है। रत्नों का बढ़िया गजरा बनाया और एक मृग के गले में टांग दिया और एक पक्षी के गले में टांग दिया। एक दौड़ भरेगा, एक उड़ान भरेगा, टूट-टूटकर बिखर जायेंगे। जैसे इन जीवों के साथ यह करना कोई सार का नहीं है, ऐसे-ही अज्ञानियों से शास्त्र की बात करो, वे आपको कभी अच्छा नहीं कह पायेंगे, वे बुरा ही कहेंगे। इसलिए तत्त्व की बात भी करो तो व्यक्ति को देखकर करना। हर व्यक्ति को उपदेश मत देना। पक्षी ने बंदर को उपदेश दिया, उसने घोंसले तोड़ दिए। गधा क्यों लिखा? जैसे गधे की प्रवृत्ति घूरे पर लोटने की होती है, ऐसे ही जिसकी प्रवृत्ति गंदगी मचाने की हो, ऐसे लोग सम्यक्त्व से रहित हैं। श्वान—कितना ही कुछ रखा हो, उसे हड्डी को ही चबाना है। जिसकी प्रवृत्ति विषयों की तीव्रता में जा रही हो, वह सम्यक्त्व से रहित है। गज यानि हाथी, भरे सरोवर में स्नान किया और जैसे-ही बाहर आया, धूल डाल ली। दस दिन खूब उपवास किए और ग्यारहवें दिन वही मंगोड़ी-कचौड़ी-समोसा के ठेले पर पहुँच गए। धिक्कार! हे हाथी! तू यह क्या कर रहा है? खूब स्नान किया और धूल डाल रहा है। वह सम्यक्त्व से रहित है।

बाघ—जैसे बाघ लाल नेत्रों से युक्त क्रूर परिणामी जीव है, ऐसे-ही जो क्रूरपरिणामी मनुष्य है, वह कभी सम्यग्दृष्टि नहीं हो सकता है।

बराह—यानि सूअर। सूअर जो है, वह गंदी नालियों में घूमता रहता है, ऐसे-ही जिस व्यक्ति को मिथ्यात्व की गंदी नालियाँ ही पसंद हों, वह सूअर के समान है। यदि साक्षात् तीर्थंकर भी विराजे हों, तब भी मिथ्या देवी-देवताओं को ही पूज रहा है, वह सूअर तुल्य है।

कराह यानि कच्छप। कछुआ की पीठ इतनी कठोर होती है कि पत्थर भी पटक दो तो असर नहीं होता। ऐसे-ही कठोर हृदयी को कितनी भी जिनवाणी सुनाओ, उसे कुछ भी पसंद नहीं आता। ऐसे व्यक्ति कछुआ की पीठ के समान हैं।

मक्खी—रोज तो देखते हो आप। श्लेष्मा पड़ा है, मल पड़ा है, कफ पड़ा है, मक्खी उसमें चिपक रही है। ऐसा जो तीव्र लोभी जीव है, वह लोभ में प्राण दे सकता है, परन्तु तत्त्व पर श्रद्धान नहीं कर सकता है।

जलूय यानि जोंक—गाय के आँचल से लगती है, चाहती तो दूध पी सकती थी, लेकिन रक्त ही पीती है। ऐसे लोग भी होते हैं, धर्मसभा में आयेंगे, धर्मात्मा के पास बैठेंगे, वे चाहते तो कितने गुण लेकर चले जाते, परन्तु उन्हें अवगुण ही दिखते हैं, वे जोंक के समान हैं।

भगवान् कुन्दकुन्द स्वामी कह रहे हैं कि ये सभी लोग धर्म का विनाश करने वाले हैं, वे सम्यग्दृष्टि नहीं हो सकते हैं।

आचार्यभगवान् कह रहे हैं—हे ज्ञानियो! सम्यग्ज्ञान के बिना सम्यग्चारित्र नियम से नहीं होता है। सम्यग्दर्शन होगा तो सम्यग्ज्ञान होगा, सम्यक्चारित्र होगा। इसलिए रत्नत्रय के मध्य में कोई उत्तम है तो सम्यक्त्व है, भगवान् जिनेन्द्रदेव ने कहा है। इसलिए सम्यक्त्व को संभालो। सम्यक्त्व संभल गया तो ज्ञान भी सम्यग्ज्ञान और चारित्र सम्यक्चारित्र हो जायेगा। यही मोक्षमार्ग है, शेष संसारमार्ग है।

"**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।**" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

॥ भगवान् महावीर स्वामी की जय ॥

❖ ❖ ❖

सम्यग्दृष्टि ही धर्मज्ञ है

देव-गुरु-धम्म-गुण-चारित्त-तवायार-मोक्ख-गदिभेयं।
जिणवयण सुदिट्ठि विणा, दीसदि किं जाणदे सम्मं॥ 49॥

अन्वयार्थ—(देव-गुरु-धम्म-गुण-चारित्त-तवायार-मोक्ख-गइभेयं) देव-गुरु-धर्म-गुण-चारित्र-तपाचार-मोक्षगति का रहस्य **(जिणवयण)** जिनदेव के वचन **(सुदिट्ठिविणा)** सम्यग्दृष्टि बिना **(किं)** क्या **(सम्मं)** समीचीन रूप से **(दीसए-जाणए)** देखे-जाने जा सकते हैं? अर्थात् नहीं। सम्यग्दृष्टि के द्वारा ही सम्यक् प्रकारेण देखे जा सकते हैं व जाने जा सकते हैं।

मिथ्यादृष्टि की पहचान

एक्क खणं ण वि चिंतदि, मोक्ख-णिमित्तं णियप्प-सब्भावं।
अणिस विचिंतइ-पावं बहुलालावं मणे विचिंतेदि ॥50॥

अन्वयार्थ—[मिथ्यादृष्टि जीव] (मोक्ख-णिमित्तं) मुक्ति प्राप्ति में निमित्तभूत **(णियप्पसब्भावं)** अपने आत्मस्वभाव को **(एक्क खणं वि)** एक क्षण मात्र भी **(चिंतदि)** चिंतन **(ण)** नहीं करता है **(अणिसं)** निरन्तर /रात दिन **(पावं)** पाप का **(विचिंतदि)** चिंतन करता है और **(मणे)** मन में **(बहुला-लावं)** बहुत से दूसरों के प्रति **(विचिंतेदि)** सोचता रहता है।

साम्यभाव का घातक

मिच्छामदि मद-मोहासव-मत्तो बोल्लदे जहा-भुल्लो।
तेण ण जाणदि अप्पा, अप्पाणं सम्म-भावाणं॥ 51॥

अन्वयार्थ—(मिच्छामदि) मिथ्यादृष्टि जीव **(जहा भुल्लो)** भुलक्कड़ के समान **(मद-मोहासव-मत्तो बोल्लदि)** मद-मोह रूपी मदिरा से मस्त होकर व्यर्थ बोलता है **(तेण)** इसलिए वह **(अप्पा)** आत्मा और **(अप्पाणं)** आत्मा के **(सम्म-भावाणं)** साम्यभाव को **(ण)** नहीं **(जाणदि)** जानता है।

भव्य बन्धुओ!

अन्तिम तीर्थेश भगवान् वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना, जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु

शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमण संस्कृति। आचार्यभगवान् कुन्दकुन्द स्वामी ग्रंथराज रयणसार जी में श्रमण व श्रावक दोनों धर्मों का कथन कर रहे हैं। इस जीव के अंतस् में अशुभ उपयोग की धारा अनादिकाल से वर्तन करती रही, उसका फल दुर्गति का पात्र होता है। ऐसे मधुर रस का आस्वादन लिया इस जीव ने आर्त्त-रौद्रध्यान के क्षेत्र में। किंचित् भी विकल्प किसी जीव के प्रति इस मन में आया तो जहाँ भी यह जीव बैठा उसको वही-वही नजर आया कि मुझे किस प्रकार से उसका पतन करना चाहिए। पर ये विचार नहीं कर पाया बेचारा कि पतन उसका तभी होगा जब उसके पुण्य का पतन हो चुका होगा। जिसके पुण्य का पतन नहीं हुआ, अभी उसका विश्व में पतन करने वाला कोई है नहीं।

हम चाहें कि सारे विश्व का उत्थान हो जाये, तो सबके प्रति साम्यदृष्टि तो बनायी जा सकती है, परन्तु सबको समान सुखी नहीं बनाया जा सकता है। समान दृष्टि, यह आपकी परिणति है; परन्तु समान सुखी होना, यह आपकी परिणति का विषय नहीं है। उसके स्वयं के पुण्य का विषय है। भैया के पास गए कि मुझे भी मजदूरी पर लगा लो। भाई ने देखा कि मेरा छोटा भाई, आज मेरे यहाँ मजदूरी के लिए आया है, तो एक पोटली भरकर चने दे दिए। लेकिन क्या करें? ज्ञानियो! दूसरे की पोटली के चने मत देखो। तुमको पोटली भरकर दे भी दिए जायेंगे, परन्तु चादर में छेद था। माँ सोच रही है कि बेटा आज बहुतकुछ लेकर आया होगा। बेटा भी सोच रहा था कि भैया ने आज मुझे बहुत दिया है। लेकिन जब गाँठ खोली, उसमें मुट्ठी भर चने ही निकले। क्या करूँ? चर्मचक्षु कहेंगे कि चादर में छेद था, परन्तु प्रज्ञाचक्षु कहेगा कि यह चादर में छेद नहीं था, पुण्य में छेद था। चादर में छेद तभी हुआ है, जब पुण्य में छेद था। कोई किसी का पतन नहीं कराता।

ऐसा चिंतन करना कि कोई मेरा पतन कर रहा है अथवा करवा रहा है, यह भी तेरा पाप का ही उदय है। गरीबी के दिनों में गरीब को गरीबी का चिंतन आए, यह तीव्र पुण्य की गरीबी छाई है। दुकान न चले, खाली बैठा है, ज्ञानी! तू चाहता तो पाप के उदय में पुण्य का आस्रव कर लेता। दुकान चल ही नहीं रही, तो कम-से-कम तू ही चल लेता, मंदिर में बैठ जाता, यहाँ क्या कर रहा है? अपध्यान की जगह धर्म्यध्यान भी तो कर सकते थे। यह विचार भी तभी आएगा जब संसार की दीर्घता न्यून होगी। जिसका संसार दीर्घ है, उस जीव को प्रशस्त कार्य करने का भाव ही नहीं आयेगा। इसलिये ज्ञानी! किसी के पतन का भाव मत लाओ।

भगवान् शुभोपयोग नहीं दिलाते, भगवान् अशुभोपयोग नहीं दिलाते। भगवान् मेरे शुभोपयोग के कर्ता हो जायेंगे और भगवान् महावीर स्वामी आकर कहने लग जायें कि विशुद्धसागर जी! मैं न होता तो आपको शुभोपयोग नहीं बनता तो मैं उनको उसी दिन नमोऽस्तु करना बंद कर दूँगा।

क्योंकि वे यह कहने आए थे कि मैं न होता तो आपको शुभोपयोग न होता। हे वर्द्धमान! आप वर्द्धमान होते तो कहने नहीं आते और कहने आए हो तो वर्द्धमान नहीं बचे हो। और ज्ञानी! वर्द्धमान कहने आयेंगे नहीं, क्योंकि वीतरागी को किसी की प्रशंसा से प्रसन्नता नहीं होती, किसी की निंदा से वैर धारण नहीं करते। इसलिए प्रभु! अपने चित्त को पवित्र करने के लिए मैं आपकी आराधना करता हूँ।

आर्त्त-रौद्र ध्यान, ये दो ध्यान दुर्गति के साधन हैं। वस्तु दुर्गति का साधन नहीं, वस्तु सुगति का साधन नहीं, साधन का साधन हो सकती है। व्यक्ति दुर्गति का साधन नहीं, व्यक्ति सुगति का साधन नहीं। परन्तु यह निमित्ताधीन दृष्टि इस जीव की अनादि से चली आ रही है। इस दृष्टि पर जब तक निज का नियन्त्रण नहीं हुआ, दिगम्बर तपोधन बनकर भी बैठ जाओगे, परन्तु दिगम्बर नहीं रह पाओगे। तुम्हारी दृष्टि चली गई कि कोई मेरा पतन कर रहा है, कोई मेरा उत्थान कर रहा है, इसका तात्पर्य है कि अभी जिनागम के गूढ़ रहस्यों में प्रवेश नहीं हुआ। वस्तु और व्यक्ति दुर्गति का साधन नहीं हैं। वस्तु, व्यक्ति मेरी सुगति का साधन नहीं है। धर्म्यध्यान, शुक्लध्यान सुगति का साधन है और आर्त्त-रौद्र ध्यान दुर्गति का साधन है।

उपादान-उपादेय भाव परवस्तु में नहीं होता है। उपादान-उपादेय भाव स्ववस्तु में होता है। मिट्टी घट बनेगी, मिट्टी का घट बनेगा। घट जब बनेगा, मिट्टी का बनेगा, मिट्टी से बनेगा। उपादान मिट्टी है, उपादेय भी मिट्टी है। बना किससे? मिट्टी से। बना कौन? मिट्टी। ज्ञानी! कुम्भकार निमित्त है, चक्र निमित्त है, लेकिन उपादान-उपादेय भाव की दृष्टि से घट तो मिट्टी ही बनी है। स्वर्ग जायेगी तो मेरी आत्मा जाएगी। नरक जाएगी तो मेरी आत्मा जाएगी। परन्तु जब स्वर्ग-नरक जाएगी मेरी आत्मा, तो उसे भेजेगा कौन? न वर्द्धमान भेजने वाले हैं, न ऋषभदेव भेजने वाले हैं। न गुरु ले जायेंगे, न प्रभु ले जायेंगे। यदि ले जाने वाला जगत् में कोई है तो तेरा निज का परिणमन है।

रोष के साधन भिन्न हो सकते हैं, परन्तु रोष का अंतरंग साधन भिन्न नहीं है। अंतरंग साधन अभिन्न है। कषाय का अंतरंग साधन तेरे से भिन्न नहीं है। अंतरंग में दो साधन बैठे हुए हैं कषाय के। अंतरंग में भी बहिरंग साधन है और अंतरंग साधन है। कर्मप्रकृति है, वह अंतरंग में होते हुए बहिरंग साधन है। मेरा निज का रागभाव अंतरंग में अंतरंग साधन है। जिस द्रव्य को देखकर तुझे राग आया है, उस द्रव्य ने तुझे राग उत्पन्न कराया ही नहीं है। उस द्रव्य ने तुझे कहा ही नहीं है, कि मेरे ऊपर राग करो। वह तो कहना भी नहीं जानता है, क्योंकि वह तो जड़ है, अचेतन है। अचेतन ने चेतन को बुलाया कब है? हे रागी! तेरे अंतरंग में लोभकषाय का उत्पाद-व्यय चल रहा था। तेरे अंतरंग में परिग्रहसंज्ञा का उत्पाद-व्यय चल रहा था। वे दोनों

भिन्न-भिन्न थे, परन्तु फिर भी निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध से वस्तु राग की उत्पत्ति का साधन बन गयी। राग होते हुए भी जो रागी आत्मा है, वह राग से कथंचित् भिन्न है, कथंचित् अभिन्न है। राग स्वभाव नहीं है, इसलिए भिन्न है। राग विभाव-भाव है, इसलिए अभिन्न है।

जो जीव, श्रमण हो या श्रावक हो, जिसके श्रीमुख से निकल रहा हो कि मैं निरपराध हूँ, मैंने कुछ किया नहीं, मुझे सताने क्यों आ गए? हे जीव! यह वर्तमान की पर्याय का राग, वर्तमान की पर्याय की कषाय इस विषय को कहलारही है। सम्यग्दृष्टि भी ऐसा कह सकता है। लेकिन यदि यह कषाय तीव्रता में जा रही है। 'यह मुझे ऐसे क्यों सुना रहा है? आप उसे देखो।' हे योगीश्वर! मैं उसे देखूँ या न देखूँ, जो अभी नहीं थे, वह आपने और बुला लिए हैं। नए भी आते हैं, बिना सताए ही। रविषेण स्वामी लिखते हैं—

यं वीक्ष्य जायते कोपो दृष्टकारणवर्जितः। (पद्मपुराण)

जिसको मैंने देखा मात्र, पूर्व में देखा नहीं, गाड़ी में जा रहे थे और अचानक कोई व्यक्ति आकर खड़ा हो गया और कुपित होने लगा। बिना कारण के वर्तमान की पर्याय में कार्य दिखाई दे रहा है, परन्तु ध्रुव सत्य यह है कि कारण के अभाव में कार्य होता नहीं है। तो यह दिख तो रहा है (कारण बिना कार्य)? तो मैंने पहले ही कहा था कि आप जैन हो, चार्वाक नहीं हो। यदि आप कह रहे हो, कि मैंने कुछ किया नहीं, यह मेरे साथ हो रहा है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि तुम वर्तमान मात्र की पर्याय को देखते हो, भूत की पर्याय पर दृष्टि नहीं है। जिसका भूत की पर्याय, भविष्य की पर्याय पर दृष्टिपात नहीं है, जो रेल की पटरियों की ओर दौड़ रहे हैं, कुँओं की ओर झाँक रहे हैं, वे घोर मिथ्यादृष्टि लोग हैं। मिथ्यादृष्टि एक प्रकार का नहीं होता। मिथ्यादृष्टि भी दो प्रकार के होते हैं। एक सम्यक्त्व के अभाव के मिथ्यादृष्टि, दूसरे विवेकज्ञान की हीनता वाले मिथ्यादृष्टि। मैंने कुछ किया नहीं, ये मुझे सताने क्यों आ गए? हे ज्ञानी! आप कहाँ चले गए? उसका तो तीव्र पुण्योदय चल रहा है, उसे तो मैं छू नहीं पाऊँगा, परन्तु आपने यह कह दिया कि उसे छोड़ना मत तो तुमको कर्म छोड़ेगा नहीं, क्योंकि कर्म तो आ चुका है। तुमने राग किया है, तुमने द्वेष किया है।

राग-द्वेष द्वयी दीर्घ नेत्राकऽर्षण-कर्मणा।
अज्ञानात् सुचिरं जीवः, संसाराब्धौ भ्रमत्यसौ॥11 इष्टोपदेश॥

राग-द्वेष के कारण यह जीव चिरकाल से संसार में भ्रमण कर रहा है। 'राम ने यह क्या किया? सीता ने कुछ नहीं किया था।' यह दया बोलेगी, यह करुणा बोलेगी। लेकिन यह कर्मसिद्धांत नहीं बोलेगा। हे राम! आपने निर्दोष सीता को जंगल में छोड़ दिया। अब देखना,

निमित्त अन्य भी हो सकते हैं, उपादान गड़बड़ी कर चुका है। कोई नियम नहीं है, दूसरा भी निमित्त बनकर आ सकता है। यह मैं श्रीराम को इसलिए बीच में लाया हूँ, क्योंकि लोगों की मानसिकता है कि जिसके साथ हमने छल किया है, वही आता है कि दूसरा भी आ सकता है? माना कि किसी जीव ने किसी जीव की हिंसा की। हिंसा करने के उपरांत जिसकी हिंसा हुई थी उसने बैर बांध लिया। वह दुर्गति का पात्र हो गया। उसने उसको मारने के भाव कर लिए। जिसने हिंसा की थी, वह प्रायश्चित करके तपस्या करने बैठ गया। सिद्धालय में बैठ गया। अब तुम बैर निकालने किससे आओगे? पर तुमने जो बैरभाव किये थे, वह द्रव्य रखा हुआ है। अब उसे कोई दूसरा निमित्त मिलेगा। कैसे मिलेगा? सुनो—रक्त का शोधन हुआ नहीं, फोड़े पर बलात् तीक्ष्ण औषधि का प्रयोग करके उस फोड़े को वहाँ दबा दिया। परन्तु वहाँ की चर्म इतनी जल गई, वहाँ पुनः फोड़ा उत्पन्न होने की सामर्थ्य नष्ट हो गई, लेकिन अशुद्ध रक्त नष्ट नहीं हुआ था, तो दूसरी जगह फोड़ा हो ही जायेगा। ऐसे-ही जिस व्यक्ति ने तुम्हारे साथ अशुभ किया था, वह तो सिद्ध बन गया। वह फोड़ा तो मिट गया, लेकिन आपके अंदर की मवाद जो थी, दूषित रक्त था, वह निकल नहीं पाया, अब उदय में आएगा। वहाँ कोई दूसरा निमित्त खड़ा हो जाएगा।

काँच और काँटे ने कोई कुभाव नहीं किया। परन्तु काँच और काँटे से भी कर्म का उदय आ जाता है। श्रीराम ने सीता को जंगल में छुड़वा दिया। सेनापति कृतान्तवक्र लेकर चल दिया। तीर्थवंदना का नाम लेकर भेजा। वर्तमान की आँखें यह बोल रही हैं कि राम ने छल किया, जंगल में छुड़वा दिया। यह राम ने अच्छा नहीं किया। यदि सीता चार्वाक होती तो सीता ऐसा ही बोलती। लेकिन सीता सम्यग्दृष्टि थी, ज्ञानी थी, विवेकी थी। सीता ने यह नहीं कहा कि सेनापति! हमारे स्वामी ने अच्छा नहीं किया। जानकी ने यह कहा था कि यह मेरे कर्मों का दोष है। परन्तु स्वामी से यह कह देना कि जैसे लोकापवाद के डर से मुझे छोड़ दिया है, ऐसे वीतराग-धर्म को मत छोड़ देना। जानकी! संवेदनायें जो मिलती हैं वे वर्तमान की पर्याय की प्रत्यासक्ति को मिलती हैं। क्लेश मिलता है, वर्तमान की पर्याय की प्रत्यासक्ति को मिलता है। परन्तु हे सीते! सत्य बताना, इसमें दोष श्रीराम का था कि आपका था? प्रत्यक्ष की आँखें कहेंगी कि दोष राम का था, क्योंकि आप संवेदनायें दे रहे हो।

कार्यभ्रान्तेरणुभ्रान्तिः, कार्यलिङ्गं हि कारणम्।
उभयाभावतस्तत्स्थं गुणजातीतरच्च न ॥68 आ.मी.॥

कभी कार्य को देखकर कारण का ज्ञान होता है, कभी कारण को देखकर कार्य का ज्ञान होता है। सीता को जंगल छोड़ना यह कारण नहीं था, यह कार्य था। जब कार्य हुआ है, तो

इसका कारण पूर्व में अवश्य रहा होगा। हे सीते! राम तेरे 'कार्य' में सहकारी बने, तेरे 'कारण' में सहकारी नहीं बने। राम का स्वयं का भी कर्म का उदय था। उन्होंने भी पूर्व में कुछ किया होगा जो उन्हें अपने इष्ट का वियोग सहना पड़ा। परन्तु राम को सर्वथा दोष मत दे देना क्योंकि हे सीते! हम चार्वाक नहीं हैं, हम आत्मा को त्रैकालिक मानते हैं। आत्मा जब त्रैकाल्य में थी तो तू इतना भोला जीव नहीं था। याद करो, भूत में कुछ किया था कि नहीं किया था? जंगल में वीतरागी तपोधन विराजमान थे। उन मुनिराज की भगिनी आर्यिकामाता बन चुकी थीं। आर्यिका ने आकर इतना पूछ लिया था, 'भो स्वामी! आपका रत्नत्रय कुशल है।' ध्यान रखना चाहिए श्रमणों को, जब चतुर्थकाल में घटना घट सकती है, तो पंचमकाल में कितना संभल कर रहना चाहिए।

"यद्यपि शुद्धं, लोकविरुद्धं न करणीयं, न आचरणीयं"

यद्यपि आप शुद्ध हो, लेकिन जो लोक के विरुद्ध हैं, ऐसे कार्य आचरण में नहीं लाना चाहिए। आपके निमित्त से किसी के अशुभ भाव हुए हैं, तब आप उसके बंध में कारण हैं। 'मूलाचार' जी में मुनि के अस्नान गुण कहा है। कितना सुन्दर तर्क दिया है कि दिगम्बर मुनि राजपुत्र भी तो बनते हैं, सेठपुत्र भी तो मुनि बनते हैं और जब उनके चमकते शरीर दिखते हैं तो किसी नारी को अब्रह्म के भाव आ सकते हैं। इसलिए हे योगीश्वर! तुम इस शरीर को सजाना नहीं, जिससे शरीर के निमित्त से किसी के खोटे भाव आयें। जब किसी के खोटे भावों के निमित्त बनने का निषेध किया है तो इन ज्ञानियों को चाहिए कि ऐसी प्रवृत्ति न करें जिससे किसी तिर्यंच को, मनुष्य को, देव को तेरी प्रवृत्ति देखकर अशुभ भाव आ जायें। जब देव-शास्त्र-गुरु की आराधना सम्यक्त्व में साधन बन सकती है, ज्ञानी! यदि आप उसके विपरीत परिणमन करोगे तो किसी की अश्रद्धा का कारण भी बन सकती है।

सीता के जीव ने मुनिराज व आर्यिका को देखकर नगर में हल्ला कर दिया कि मैंने एक मुनिराज-आर्यिका को अकेले बात करते देखा है। आज तुम कह रहे कि राम ने अच्छा नहीं किया। कार्य दिख रहा है, कारण को खोजिए कि, जानकी! यह वर्तमान की पर्याय ने आपको नहीं भेजा। भूत की पर्याय के भूत के भावों से जो बंध किया था, वह वर्तमान में उदय में आया है। आपने एक निर्ग्रंथ मुनि का अपवाद किया था, उसका उदय आया, तो लोक में आपका अपवाद हो गया। इसलिए, यह मानसिकता निकाल देना कि मैंने कुछ नहीं किया। तूने वर्तमान की पर्याय में कुछ नहीं किया, तो क्या भूत में भी नहीं किया? कोई जीव, चाहे श्रमण हो चाहे श्रावक हो, यदि इस शब्द का प्रयोग करता है, तो वह सम्यग्दृष्टि नहीं हो सकता।

हे मुनीश्वर! सम्यक्त्व को देख लो। भूत में किया था, तो वर्तमान में अपवाद हो रहा है और वर्तमान में नहीं संभल पाए, तो भविष्य में क्या होगा? इस पर और ध्यान दो। भूत में किया

था तो वर्तमान में दिख रहा है और वर्तमान में क्या कर रहे हो, यह वर्द्धमान से मत पूछो, अपने भावों से ही पूछो। वर्द्धमान बताने नहीं आयेंगे और वर्द्धमान को सताने तुम जा भी नहीं पाओगे सिद्धशिला पर। लेकिन वर्तमान में द्रव्यकर्म दिखें या न दिखें, वे तो तुम्हारे ज्ञान का विषय नहीं बनते हैं, क्योंकि वह अवधिज्ञान का विषय बनता है। द्रव्यकर्म नहीं दिखते आपको, वे सूक्ष्म हैं, लेकिन भावकर्म की अनुभूति तो आपको होती है। मैं कैसे भाव कर रहा हूँ, यह मुझे तो अनुभव में आता है। द्रव्यकर्म दिखें या न दिखें, परन्तु करतूती का कर्म तो दिखता है।

जो-जो दीन-गरीब दिख रहे हैं, वे विकल्प मत करना, कोई तुम्हें सताने भी आ जाएँ, वर्तमान की पर्याय का कष्ट तुम्हें लगता है, लेकिन ध्रुव सत्य है, "कार्यलिङ्गः हि कारणम्।" हाँ, तीसरा पक्ष जो रखा हुआ है, वह यह है कि जो सताने आया है, वह न कहे कि तेरे कर्म का उदय है। तूने किसी को चाँटा मार दिया और कहे कि तेरे कर्म का उदय है, हे ज्ञानी! उसके कर्म का उदय हो या न हो, लेकिन तूने कर्म का बंध अवश्य किया है। अब देखो दूसरा पक्ष। चाँटा उसको क्यों लगा? यह उसका कर्म का उदय हो सकता है, लेकिन चाँटा मारनेवाले से किसने कहा कि इसके कर्म का उदय है? फिर तो हिंसा की प्रवृत्ति तीव्र हो जायेगी। कर्माधीन होना यानि जैन मिथ्यादृष्टि। ईश्वरवादी ने क्या किया? इस जीव को मारा, उस जीव को मारा और कह दिया कि मैंने क्या किया? ईश्वर की वस्तु, जो किया ईश्वर ने किया है। बिना ईश्वर के पत्ता भी नहीं हिलता है। जैन मिथ्यादृष्टि कहता है, मैंने क्या किया? यह उसका कर्म का उदय था, बिना कर्मोदय कुछ होता ही नहीं है।

हे ज्ञानी! कर्मसापेक्षता है, कर्मनिरपेक्षता नहीं है। जैन मिथ्यादृष्टि का व्याख्यान किया कुन्दकुन्द स्वामी ने। यदि सबकुछ कर्माधीन होगा, तो संयम नाम की वस्तु का अभाव हो जाएगा, अनाचार-व्यभिचार फैल जाएगा। अज्ञानी विद्वानों ने क्या किया? कि किसी ने बलात्कार-जैसा घोर पाप किया हो, वह कहेगा, कि मैंने कुछ नहीं किया, कर्म ने कर्म का सेवन किया है, मेरी आत्मा ने तो कुछ किया नहीं है। सुनो, संभलकर सुनना, जिनवाणी को समझ लेना कोई सरल बात नहीं है। कर्मोदय तो स्वीकार है, परन्तु कर्मोदय पर कार्य करना ही हो, यह नियम नहीं है। कर्मोदय पर भी कार्य करूँ या न करूँ, यह मेरा निज का पुरुषार्थ है। यदि कर्मोदय पर कार्य करना ही पड़ गया, तो जिनशासन में संयम नाम की वस्तु नहीं बचेगी। कर्मोदय के आने पर यदि कार्य करना ही पड़ेगा, तो चक्रवर्ती कभी मुनि नहीं बन सकता । उसका तीव्र पुण्योदय होता है, उसको भोगना ही पड़ेंगे। भोगवस्तु का मिलना पुण्योदय है, लेकिन वस्तु को भोगना या नहीं भोगना, यह मेरे पुरुषार्थ का विषय है। यदि पुरुषार्थ का परिणमन नहीं स्वीकारोगे, तो एकांत से दैव खड़ा हो जायेगा। दैव-एकांत मिथ्यात्व है।

बहुत सारे लोग भटके हुए हैं सिद्धांत में। बोले, 'मैंने क्या किया? वह तो कर्म का उदय आ गया।' नहीं। अभी पर्युषण आने वाले हैं, आप दस-दस उपवास करने वाले हो, क्या उस समय आपके क्षुधावेदनीय, असातावेदनीय कर्म का अभाव हो जायेगा? अभाव नहीं हो जाएगा, तुम्हारा उत्साह, तपस्या, वीर्यान्तराय कर्म का क्षयोपशम और आपका अंतरंग का संयम भाव जागृत होगा। तो जो भूख बैठी हुई है, असातावेदनीय से भूख लगती है, उसको तुम धक्का मार देते हो। इसलिए कर्मोदय के आने पर कार्य करना पड़े, यह जरूरी नहीं है। कर्मोदय पर कार्य वे ही करते हैं, जो कर्म से फिसल कर अपने पुरुषार्थ को गौण कर लेते हैं, उनको कर्म के अनुसार चलना पड़ता है। कर्मोदय कब कहना? जैसे सीता को वनवास हो गया। सीता ने राम को दोष नहीं दिया, अपने कर्मोदय को दोष दिया। ऐसे-ही कोई आप पर उपसर्ग करने आ जाए, उसे दोष मत देना, अपने कर्मोदय को दोष देना।

"आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

॥ भगवान् महावीर स्वामी की जय ॥

❖ ❖ ❖

उपशम भाव के कार्य

पुव्वट्ठिद खवदि कम्म, पविसदु णो देदि अहिणवं कम्मं।
इह-परलोय महप्पं, देदि तहा उवसमो भावो॥52॥

अन्वयार्थ—[भव्य जीवों का] (उवसमो भावो) उपशम भाव **(पुव्वट्ठिद कम्म)** पूर्व स्थित /पूर्वबद्ध कर्मों का **(खवदि)** क्षय करता है **(अहिणवं कम्मं)** अभिनव कर्मों को **(पविसदु णो देदि)** प्रवेश नहीं देता है **(तहा)** तथा (इह-परलोय) इस लोक व परलोक में (महप्पं) महत्व /माहात्म्य को **(देदि)** देता है।

समय का उपयोग

सम्मादिट्ठी कालं बोल्लदि वेरग्ग-णाण भावेहिं।
मिच्छाइट्ठी वांछा दुब्भावा-लस्स-कलहेहिं ॥53॥

अन्वयार्थ—(सम्माइट्ठी) सम्यग्दृष्टि **(कालं)** समय का **(वेरग्ग-णाण-भावेण)** वैराग्य और ज्ञान भाव से **(बोल्लइ)** बिताता है **(मिच्छाइट्ठी कालं)** मिथ्यादृष्टि का समय **(वांछा)** इच्छा /वांछा /तृष्णा **(दुब्भावा-लस्स)** दुर्भाव /अशुभ भाव व आलस्य तथा **(कलहेहिं)** कलह /झगड़े में बीतता है।

भव्य बन्धुओ!

अन्तिम तीर्थेश भगवान् वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति। आचार्यप्रवर भगवान् कुन्दकुन्द स्वामी रयणसार ग्रंथ में श्रमण और श्रावक दोनों धर्मों की व्याख्या कर रहे हैं। मित्र बनाना बहुत सरल है, परन्तु मित्रता को जीवित रखना बहुत कठिन है। जब तक नया मित्र नहीं था, तब तक नया तनाव नहीं था। नया मित्र बनते ही उस मित्रता की सुरक्षा के लिए संकल्प-विकल्पों का जन्म हो गया। विश्व में जितने शत्रु हुए हैं, वे अपरिचित नहीं हुए हैं। पहले शत्रु का जन्म नहीं होता, पहले परिचय का जन्म होता है और जितना बड़ा परिचय हो जाता है, उतने बड़े शत्रु का जन्म हो जाता है। शत्रुविहीन जीवन जीना है तो मैत्रीभाव जगत् के जीवों से बनाकर रखना, परन्तु मित्र किसी को मत बनाना। जब तक पुण्य तेरी सत्ता में है, श्री तेरी जेब में है, तब तक सारा विश्व तेरा मित्र दिखाई देगा। और जिस दिन श्री से विहीन हो गया, जगत् के लोग बदल जायेंगे।

जब तक वृक्ष में हरापन है, फल लगे हुए हैं, तब तक वृक्ष पर तोता भी बैठता है और फलविहीन सूखे वृक्ष से तोते भी उड़ जाते हैं। मुमुक्षु! ध्यान रखना, जब तक पुण्य का फल तेरे पास है, तब तक जगत् के तोते तेरे साथ हैं और जिस दिन पुण्य का फल सूख जायेगा, ये सारे तोते उड़ जायेंगे। निहारना वस्तुस्वरूप को, उस महाश्रमण तीर्थंकर जैसे जीव को शत्रुओं ने नहीं छोड़ा।

सुन्दर वस्तु का होना भी सुन्दर शत्रु को जन्म देना है। इसलिए श्रमणों से कहा जाता है, हे योगीश्वर! अपने पास कोई ऐसी सामग्री मत रखना जिससे किसी को माँगने अथवा चुराने का भाव आ जाए। माँगने का भाव हुआ और तेरी देने की इच्छा नहीं हुई, तो वही तेरा शत्रु हो जायेगा। नारायण—प्रतिनारायण के झगड़े का प्रारम्भ कहाँ से होता है? सुन्दरतम् वस्तुओं के नाम पर युद्ध हुआ है। हाथी के नाम पर युद्ध हुआ है। नारी के नाम पर युद्ध हुआ है। जिसको दे दिया वह मित्र हो गया, जिसको नहीं दिया वह शत्रु हो गया।

महाराजा अरविंद, मंत्री विश्वभूति। मंत्री ने अपनी ढलती उम्र को देखा, अंदर का गुरु जाग्रत हुआ—

"राज समाज महा अध कारन, बैर बढ़ावन हारा"

यदि किसी का जीवन सुखमय चल रहा हो, आनंदमय जीवन जी रहा हो, उसको दुःख में डालना चाहते हो, तो उसे कोई व्यवस्था सौंप दो। किसी संस्था का अध्यक्ष /मंत्री बना दो। जितनी साधना पहले करता था, उसमें भगवान् का चिंतवन करता था, अब मन्दिर की व्यवस्था का चिंतवन करता है। यह ध्रुव सत्य है—स्वात्मपद की सिद्धि चाहिए तो पद का विसर्जन करना पड़ता है।

मंत्री विश्वभूति सोचता है कि उम्र ढल चुकी है, कब पतझड़ हो जाएगा, प्राण-पखेरू उड़ जायेंगे, पता नहीं है और एक बार डाल से टूटा पत्ता पुनः डाल पर लगता नहीं है।

सदा न फूले केतकी, सदा न सावन होय।
सदा न यौवन थिर रहे, सदा न जीवित कोय॥

केतकी के पुष्प सदा नहीं फूलते, श्रावण का महीना वर्ष में एक बार ही आता है। यौवन की चमक जो आज है, वह कल नहीं मिलेगी। यौवन भी नष्ट हो जायेगा, इस रूप-लावण्य को नष्ट होते समय नहीं लगता है।

तत्त्व का चिंतवन करते हुए मंत्री राजा अरविंद के पास पहुँचता है, कहता है—'स्वामी! मैंने बहुत सेवा की है इस देह की और आपकी। हे नाथ! राज-सम्मान के बीच रहते-रहते आयु

की अन्तिम बेला तक पहुँच चुका हूँ। यह जीवन का अन्तिम पड़ाव है। और अन्तिम पड़ाव पर भी जीव नहीं चेता तो वह विषयों का कीड़ा है। ज्ञानियो! एक समय ऐसा आता है, जब मल का कीड़ा भी मल से उचटकर बाहर निकलने लगता है। हे रागी जीव! तू कैसा भोगों के मल का कीड़ा है कि भोग नष्ट होने लगे, भोगों को भोगने की शक्ति क्षीण होने लगी, तब भी भोगों के मल से निकलना पसंद नहीं कर रहा है।

'राजन्! मेरे जैनेश्वरी दीक्षा लेने के भाव हुए हैं। जब तक राग था, तब तक मैं आपका सेवक था।' राजा से अनुमति लेकर मंत्री श्रमणदीक्षा को प्राप्त हुआ। मनीषियो! जीवन में पूज्यता ज्येष्ठता से नहीं आती, पूज्यता श्रेष्ठता से आती है। ज्येष्ठ बनने की स्पर्धा करने से कुछ नहीं होता है। यदि स्पर्धा करना ही चाहते हो तो श्रेष्ठ बनने की करो। मैं बड़ा हूँ, मैं ज्येष्ठ हूँ, बंधुओ! बड़े बैठे रह जाते हैं और छोटे अन्तर्मुहूर्त में केवली बनकर निर्वाण को प्राप्त हो जाते हैं। चिरकाल के दीक्षित मुनिराज भी अहम् में डूबकर संसार में घूमते रहे। कोई एक अन्तर्मुहूर्त पूर्व दीक्षा लिए, दूसरे अन्तर्मुहुर्त में केवली हुए और तीसरे अन्तर्मुहूर्त में सिद्ध बन गए। ऐसे भी विशुद्ध परिणाम हुए जीव के। इसलिए निर्वाण प्राप्ति के लिए चिरकाल की दीक्षा की निश्चितता नहीं है। परिणामों की विशुद्धि निर्वाण का साधन है।

एक दिन राजा अरविंद निहारता है, कि ज्येष्ठ तो कमठ है, परन्तु श्रेष्ठता तो मरुभूति के अंदर है। ऐसा चिंतवन कर मंत्रीपद छोटे भैया मरुभूति को दे दिया। अब छोटे को मंत्री पद मिले और बड़ा शांत हो जाए, ऐसा हो नहीं सकता। अभी आप देख रहे थे कि लाडू चढ़ रहा था, दीपक जल रहे थे और देखते-देखते दीपों की अग्नि शांत हो गई। ज्यादा समय नहीं लगा बाहर की अग्नि को शांत होने में। ज्यादा देर नहीं लगती। परन्तु जिसको ईर्ष्या की ज्वाला जल रही है, उसको शांत होने में भव-भव लग जाते हैं। उसका परिणाम आप देखो, पार्श्वनाथ से ही तो अपने को पूछना है। भैया! जीवन में कुछ कर पाओ या न कर पाओ, घोर तपस्वी न बन पाओ, लेकिन ईर्ष्या की ज्वाला की भट्टी को निकालकर बाहर कर देना। वर्षों की तपस्या काम नहीं आएगी। वर्षों की कमाई को एक तीली जला सकती है कि नहीं? हजारों वर्षों की तपस्या की समाप्ति के लिए एक श्वास प्रमाण ईर्ष्या की आवश्यकता है। निज के पुरुष को देखो, निज के पुरुषार्थ को देखो, पर के पुरुषार्थ को देखकर ईर्ष्या मत करो।

कमठ को डाह हुआ। छोटे भाई से प्रतिशोध की भावना लेकर बैठ गया। राजा राज्यकार्यवश विदेश गया तो मंत्री का साथ जाना सहज है। नगर में कमठ स्वच्छंदी हो गया। भैया! जैनशासन कहता है कि स्वतन्त्र होना सीखना, स्वच्छंदी होना मत सीखना। इस जीव का सबसे बड़ा शत्रु है तो स्वच्छंद प्रवृत्ति है। अपने आप पर नियन्त्रण रखना बहुत आवश्यक है।

मंत्रवादी भी मंत्र सिद्ध करता है तो मंत्र को दबाने की सिद्धि पहले करता है। साधना को पचाना सरल नहीं है।

कमठ स्वच्छंदी हो गया। छोटे भाई की पत्नी अपने घर में स्नान कर रही थी। ये अपने मित्र के साथ वहाँ से निकल रहा था। उसकी खोटी दृष्टि भैया की पत्नी पर पड़ गई और कमठ को काम के नाग ने डस लिया। जैसे सर्प की उत्पत्ति अण्डे से होती है, ऐसे ही काम की उत्पत्ति मन-अण्डे से होती है। झुलस गया कमठ। बारिश हो तो छतरी काम में आती है, धूप हो तो छतरी काम में आती है, रोग हो तो औषधि काम में आयेगी, तपन लग जाये तो चंदन के छींटे काम में आ सकते हैं, परन्तु जिसे काम ने डस लिया हो, उसके लिए न छतरी काम में आती है, न चंदन के छींटे काम में आते हैं। तभी तक सभी ज्ञानी हैं, तभी तक त्यागी हैं, जब तक काम के नाग से नहीं डसे गए हैं। और जब डसे जाते हैं, तो पता नहीं चलता कि विवेक कहाँ गया? बुद्धि कहाँ पलायन कर गई? जगत् का प्रत्येक प्राणी समझदार है, कब तक? जब तक स्वयं रावण नहीं बना तब तक। कषाय के आवेग को नियंत्रित करना जो जानता है, उसका नाम ज्ञानी है।

वह कमठ मित्र से कहता है—हे मित्र! वसुंधरी (भाई की पत्नी) को मेरी स्त्री बना दो। मित्र कहता है—'भैया! ज्येष्ठ भाई लघु भाई का पितातुल्य होता है और छोटे भाई की पत्नी आपकी बेटी के समान है। बेटी के साथ व्यभिचार कैसा?' जिसको स्वदार-संतोष-व्रत भी नहीं है, उस पापी के पास कुछ भी नहीं है। धिक्कार हो उस जीव के लिए। एक पशु भी अपनी जाति से बाहर परजाति पर दृष्टि नहीं डालता है, परन्तु नर कैसा पापी जीव है, सब पर दृष्टि फेंकता है।

मित्र ने समझाया—'नहीं, मित्र! ऐसा नहीं हो सकता।' परन्तु क्या करें? कौवे को रात्रि में दिखता नहीं है, उल्लू को दिन में नहीं दिखता, परन्तु कामी को न दिन में दिखता है और न रात्रि में दिखता है।

विषयासक्त चित्तानां, गुणा को वा न नश्यति।
न मानुष्यं न वैदुष्यं, न अभिजात्यं न सत्यवाक् ॥ छत्र चूड़ामणि॥

जिसका चित्त विषयों में आसक्त हुआ है, तो ऐसा कौन-सा गुण है जो उसके पास बचे? न मनुष्यता रहती है, न देवत्व रहता है, न सत्यता रहती है। उस पापी कमठ ने क्या किया? मित्र को जोर देकर और मरुभूमि की पत्नी को फुसलाकर उसे अपनी स्त्री बना लिया और उसके शील को भंग कर दिया। इतना नियम ले लेना, अपनी स्त्री के अतिरिक्त जगत् की नारी मात्र के

लिए मैं माता, भगिनि और बेटी का भाव रक्खूँ। जितनी मातायें हैं, अपने पति को छोड़कर शेष पर पुत्रवत् दृष्टि रखें।

जब राजा अरविंद वापस आया, तो नगर में चर्चा सुनी कि कमठ ने ऐसा दुष्कर्म किया है। फिर भी देखो भैया का राग, मरुभूति कहता है—महाराज! मेरा बड़ा भैया है, क्षमा कर दो। परन्तु नीति कहती है—कालिया नाग ने अंगुली को डस लिया है, यदि आपको प्राणों की चिंता है, तो शीघ्र ही अंगुली को निकालकर फेंक दो, अन्यथा अंगुली के राग में तेरी मृत्यु हो जायेगी। यदि शासक की गद्दी पर बैठे हो, तो वहाँ चेहरा नहीं देखना चाहिए। राजा को चाहिए कि यदि उसकी बांयी भुजा भी दोष करती है तो उसे भी काटकर फेंक देना चाहिए, उसका भी राग नहीं करना चाहिए। राजा अरविंद समझाता है—हे मंत्रीवर! यदि आप भाई के राग में ऐसा कहते हो तो ध्यान रखना, आप कल शासन पर, देश पर नियन्त्रण नहीं कर पाओगे। भैया! कर्म के कलंक को मिटाना सरल है, परन्तु कलंक का कलंक कभी नहीं मिटता है। निष्कलंक जीवन ही जीवन है। जिसके जीवन में एक बार कलंक लग गया, उसका जीवन क्या है? जीना मात्र है, मृत्यु तो उसी दिन हो चुकी थी जिस दिन कलंक लगा था।

अरविंद राजा ने मंत्री के मोह को छोड़कर और कमठ को गधे पर बैठाकर, काला मुख करके, बाहर निकाल दिया। अपमानित होने पर उसने तपस्वियों के बीच जाकर तापस के व्रत ध ाारण कर लिए। घोर तपस्या में लीन हो गया। एक पाषाण की शिला हाथों में लेकर तपस्या करने लग गया। उसकी चारों ओर चर्चा फैल गई। जो अशुभ करके आते हैं, वे लोग बहुत आगे-आगे दौड़ते हैं। ये आप परीक्षा करना, क्योंकि उन्हें लगता है कि कितने जल्दी धुल जाऊँ मैं। लेकिन ऐसे धुलते हैं क्या? फिर देखो, हे राग! तुझे धिक्कार हो। जिससे तू राग कर रहा है, वह रागभूत वस्तु तुझसे राग करे या न करे, पर तू कैसा रागी है? कमठ तपस्वी का वेष धारण करके शिला लेकर खड़ा हो गया। लेकिन अंतरंग में भट्टी अभी बंद नहीं हुई, अभी झुलस ही रही है कि मरुभूति के कारण आज मुझे देशनिकाला मिला है।

मरुभूति कहता है राजा से—'स्वामी! मेरा भैया कमठ घोर तपस्या कर रहा है पर्वत के ऊपर। आपकी आज्ञा चाहिए है मुझे, मैं वंदन करने जाना चाहता हूँ।' देखो, एक हाथ से कैसे ताली बज रही है? पार्श्वनाथ के जीव मरुभूति ने क्या दोष किया था? कोई दोष तुम करो या न करो, परन्तु किसी से राग कर रहे हो तो यही तुम्हारा दोष है। कभी-कभी राग की महिमा कितनी विचित्र होती है। सामने वाला जीव राग-राग करता है। महारानी अमृतमती से

पूछो—यशोधर महाराज की महारानी। भैया! सुन्दरता या असुन्दरता कोई महत्त्व नहीं रखती। जिसका जिसमें राग लग जाए, राजा को छोड़कर के कुबड़े की लातें खा रही थी, धिक्कार हो। हे विषय-कषाय! तुझे धिक्कार हो।

राजा कहता है, 'भैया! मत जाओ।' परन्तु क्या करें? राग की महिमा है। वह भाई के पास चला गया। मरुभूति ने जैसे ही सिर टेककर नमस्कार किया, तो कमठ ने भैया के ऊपर शिला पटक दी। जैसे-ही शिला सिर पर गिरी, प्राण-पखेरू उड़ गए भैया के। आर्त्तध्यान से मरकर मरण किया और शालि नामक वन में हाथी हुआ मरुभूति का जीव। कहाँ मनुष्य पर्याय और कहाँ भाई के राग ने हाथी बना दिया। भैया! राग भला नहीं होता। भैया! रहना सबके साथ, सहयोग मानकर रहना, परन्तु यह स्वभाव नहीं है। जब भी दगा देगा, विश्वास रखना, सगा ही देगा। बाहर के लोगों को तेरे भीतर की कोई बात मालूम नहीं होती है। जितनी बातें मालूम होती हैं, भीतर के लोगों को मालूम होती हैं। बुण्देलखण्ड में कहते हैं—जब भी आँख फूटती है तो घर के कुरबे से फूटती है। रौद्रध्यान से मरकर कमठ कुर्कुट जाति का सर्प हुआ। देखो नियोग, राजा अरविंद चिंतवन में लीन हो गया, जब उसने सुना कि ऐसी घटना घट गई। दुष्ट ने अपनी दुष्टता को नहीं छोड़ा। भैया! सुनो। चाहे तपस्वी के वेष में आ जाए, चाहे योगी के वेष में आ जाए, परन्तु दुष्ट अपनी दुष्टता से भरा होता ही है। इसलिए साधु बनने के पहले, भेष बदलने के पहले भाव बदलना अनिवार्य है। तभी तो आचार्य देखते हैं कि चपेट का मारा आया है, कि पेट का मारा आया है?

उधर महाराज अरविंद को वैराग्य हुआ, मुनिदीक्षा ले लिए और मुनिराज के भाव हुए कि तीर्थराज सम्मेदशिखर की वन्दना करने जाएँ। वंदना के उद्देश्य से मुनिराज निकल पड़े। महापुरुष प्राणों की चिंता नहीं करते, महापुरुष प्रण की चिंता करते हैं। प्रण यानि प्रतिज्ञा। दिगम्बर मुनि रात्रि में विचरण नहीं करते। जब वे दिन में मौन रखते हैं अधिक-से-अधिक, तो रात्रि में क्यों बोलेंगे? जहाँ रात्रि हुई, वहीं विश्राम। न गमन का विकल्प, न भवन का विकल्प, न जंगल का विकल्प। यह भुजा उनका तकिया है, भूमि शैय्या है। ऐसे वीतरागी तपोधन नमोऽस्तु के पात्र हैं। कुछ भी हो, जैनियों के साधु को अजैनी जाने या न जाने, परिभाषा कर पाए या न कर पाए, परन्तु विश्वास दुनियाँ करती है।

वे राजा अरविंद जैसे-ही सूर्यास्त हुआ, उसी जंगल में रुक गए। नियोग देखो। मरुभूति का जीव जो हाथी बन गया था, वह उसी जंगल में मदोन्मत्त होकर विचरण कर रहा था। मुनिराज को देखकर, कुपित होकर, सामने आकर खड़ा हो गया। दिगम्बर मुनि रात्रि में मौन

रहते हैं, परन्तु किसी की सल्लेखना चल रही हो अथवा धर्म पर संकट आया हो तो वे असमय में भी बोल सकते हैं।

धर्मनाशे क्रियाध्वंसे, सुसिद्धान्तार्थविप्लवे।
अपृष्टैरपि वक्तव्यं, तत्त्वस्वरूपप्रकाशने॥5 ज्ञानार्णव।।

जहाँ धर्म का नाश होता हो, क्रियाओं का विप्लव होता हो, सिद्धांत का विप्लव होता हो, तो मुनि से कोई न भी पूछे, तो भी मुनि को बोलना चाहिए।

वह हाथी जीवों को कुचल रहा था। वे मुनिराज बोले—हे जीव! मैंने तुझे समझाया था कि भाई के राग में मत जाओ, परन्तु तुमने नहीं सुना, इसलिए यह तिर्यंच बनना पड़ा, अब तू यह क्या कर रहा है? जैसे-ही यह शब्द सुना हाथी ने, तो वह हाथी नहीं बचा, उसके अंदर से टप-टप संवेग भाव टपकने लगा। हाथी बार-बार सूँड़ उठाकर नमस्कार करने लगा। किसको दबाना है, किसको उठाना है, यह पशु भी जानता है। हाथी ने मुनिराज के चरणों में व्रत धारण कर लिए, अणुव्रती हो गया। अब आप प्रश्न करेंगे, महाराज! कैसे पालन करेगा? हाथी का विवेक देखो। अब वह वृक्ष नहीं तोड़ता था, सूखे पत्ते चबाने लग गया। संयम का पालन करना है तो दृढ़ता चाहिए। हाथी-जैसा जीव करवट बदलता है तो सूँड़ से फूँकता है कि कहीं कोई जीव समाप्त न हो जाए। जहाँ सूर्य की किरणें पड़ती थीं, अन्य पशु जहाँ निकल जाते थे, ऐसा प्रासुक पानी पीता था। प्रोषधोपवास करता था। संयम की साधना देखो, तिर्यंच होकर भी। यदि आत्मा का उपकार करना है तो शरीर का अपकार तो होता ही है। हाथी तपस्या करने लगा, तो शरीर क्षीण हो गया। जो शरीर का रागी है, वह क्या तपस्या करेगा? हाथी कमजोर हो गया। सरोवर में पानी पीने गया था, परन्तु दलदल में फँस गया। पापी कमठ का जीव कुर्कुट सर्प, उसने हाथी को देखा तो पूर्वभव का बैर याद आ गया। तो वह शरीर पर चढ़ गया और गण्डस्थल पर जाकर डस लिया। अन्तिम समय जानकर हाथी ने पंचपरमेष्ठी का स्मरण किया। सल्लेखनापूर्वक मरण करके स्वर्ग में देव हो गया। कुर्कुट सर्प पापकर्म के कारण पाँचवें नरक का नारकी हो गया। नरक से निकलकर कमठ का जीव अजगर हो गया। पार्श्वनाथ का जीव स्वर्ग से आकर विद्याधर राजा हुआ और वैराग्य को प्राप्त करके मुनिराज हुआ। वे जंगल में तपस्या कर रहे थे। वह अजगर मनुष्य की गंध सूँघकर जहाँ मुनिराज ध्यानस्थ थे वहाँ जाकर दूर से ही खींच लिया और मुख में मुनिराज को रख लिया। शरीर अजगर के मुख में है और आत्मा निज घर के अंदर है। हे अजगर! तू निगल रहा जिसे, वह निगलने लायक है। परन्तु जिसे निगलना चाहता था, वह अरस, अरूप, अगंध स्वरूपी भगवानात्मा, उसे तू क्या निगल पायेगा? अजगर निगल गया और मुनिराज निकल गए। जाकर ग्रैवेयक में देव हो गए और अजगर जाकर

नरक में नारकी हो गया। देवपर्याय से पुनः च्युत हुए तो यहाँ आकर वज्रनाभि चक्रवर्ती हुआ। देखो तपस्या का फल, अजगर के मुख में जाकर भी ध्यान किया, तो स्वर्ग में देव और फिर चक्रवर्ती हुआ। वज्रनाभि चक्रवर्ती एक दिन दरबार में बैठे हुए थे, वनपाल आया एक सहस्त्रदल कमल लेकर। राजा उस कमल को देखकर प्रसन्न हुआ और देखता है कि कमल के अंदर भौंरा मरा पड़ा है। चक्रवर्ती सोचता है—काष्ठ में भी छेद करने वाला भौंरा कमल की पंखुड़ी को नहीं छेद पाया। चक्रवर्ती को वैराग्य हो गया। चक्रवर्ती ने अपने पुत्रों को बुलाया। एक हजार पुत्र थे। पंक्तिबद्ध आ गए, 'क्या आज्ञा, पिताजी? अचानक आपने बुलाया।' 'मुझे वैराग्य हो गया है। इस राज्य को आप संभालो।' एक-एक पुत्र से पूछा। बेटे कहते हैं—हे तात्! जब विषय-भोग आग है, तो ऐसा कौन-सा पिता होगा जो अपने बेटे को आग में झोंकेगा? अब तो जो आपकी समझ, वही हमारी समझ। मुझे राज्यपद नहीं चाहिए। यदि आज का बेटा होता तो कहता कि जल्दी जाओ, मैं बैठूँ। सभी बेटों ने राज्य लेने से इंकार कर दिया। छः माह के पोते को तिलक किया और चक्रवर्ती ने एक हजार बेटों के साथ दीक्षा ले ली। वह कैसा दृश्य होगा, जहाँ एक हजार एक मुनिराजों का केशलुंचन हो रहा होगा।

जो उतार पाते हैं, वे ही तिर पाते हैं। जो पहनकर जाते हैं, वे डूब जाते हैं। जो मनुष्यपर्याय का आनंद निर्ग्रंथ दशा में है, वह अन्यत्र कहीं नहीं है, परन्तु वैराग्य होना चाहिए। मैं मुनि हूँ, इसलिए नहीं कह रहा हूँ। आनंद लूटता हूँ, इसलिए कह रहा हूँ। जो आनंद यहाँ है, वह कहीं नहीं है। वे मुनिराज ध्यान में विराजे थे। पूर्व भवों का बैरी वह अजगर नरक से निकलकर भील हुआ। जंगल में शिकार के लिए निकल पड़ा। मुनिराज को देखते ही उसके अंदर आक्रोश उत्पन्न हो गया। उसने धनुष-बाण उठाया और वीतरागी मुनिराज को तीर मार दिया। स्वर्ग में जाकर देव हुए और भील नारकी हुआ। वहाँ से आए तो आनंद नाम के सम्राट हुए पार्श्वनाथ के जीव। वह कमठ का जीव नरक से आकर सिंह हुआ। आनंद राजा को वैराग्य हुआ और जैनेश्वरी दीक्षा लेकर तपस्या में लीन हुए और जंगल में ध्यान कर रहे थे, तब उसी सिंह ने आकर भक्षण कर लिया। रक्त के फव्वारे निकल पड़े। परन्तु हे सिंह! तू पर्याय को ही छीन सकता है, लेकिन योगी के परिणामों को कोई नहीं डिगा सकता है। सुमेरू कंपित हो जाए, लेकिन योगी के परिणाम अचल रहते हैं। जगत् की सारी मुद्राएँ भंग हो जाती हैं, तब दिगम्बर मुद्रा का जन्म होता है।

ज्ञानी! सम्यग्दृष्टि जीव अपना पूरा समय रागरहित होकर व्यतीत करता है। वस्तुओं का उपयोग करते समय भी उनमें राग-द्वेष नहीं रखता है। अतः शुभ-अशुभ जो भी कर्म उदय में आते हैं, उनके प्रति समताभाव रखता है, जिससे अभिनव कर्मों के बन्ध से बचता है। विरागी

जीव पदार्थों को भोगते हुए भी नहीं भोगता है। मिथ्यादृष्टि जीव जितना कर्मबंध पदार्थों को भोगते हुए नहीं करता है, उससे कई गुणा कर्मबंध चिन्तन एवं इच्छा मात्र से करता है। वह अपना समय आलस्य में, प्रमाद में बिताता है। लोगों से कलह करके, परिणामों को संक्लेषित करके अभिनव-अभिनव कर्मों का बन्ध करता है। वह हमेशा ऐसे कार्य करता है जो संसार बढ़ाने में ही सहायक होते हैं। यहाँ तक कि धार्मिक कार्यों को भी इच्छा /वाँछा से ही करता है, जिससे वे कार्य भी संसार को संकुचित करने का कारण नहीं बनते हैं।

हे ज्ञानी! नरभव /पर्याय, जो अत्यन्त दुर्लभ है, इसका उपयोग संसार को संकुचित करने में करो, न कि विस्तृत करने में। ज्ञानियों! यहाँ संक्षेप में समझना कि संस्कार कहाँ तक जाते हैं। वह चाहे अच्छे हों अथवा बुरे हों।

"आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

॥ भगवान् महावीर स्वामी की जय ॥

❖ ❖ ❖

भरतक्षेत्र में अवसर्पिणी काल

अज्जवसप्पिणि भरहे, पउरा रुद्दट्ठझाणया दिट्ठा।
णट्ठा-दुट्ठा-कट्ठा, पापिट्ठा किण्ह-णील काओदा ॥54॥

अन्वयार्थ—(अज्जवसप्पिणि) आज /वर्तमान अवसर्पिणी काल में **(भरहे)** भरतक्षेत्र में **(रुद्दट्ठझाणया)** रौद्र और आर्त्तध्यान वाले **(णट्ठा)** नष्ट **(दुट्ठा)** दुष्ट **(कट्ठा)** दुःखी **(पापिट्ठ)** पापी **(किण्हणील-काओदा)** कृष्ण, नील और कापोत लेश्या वाले **(पउरा)** अधिक मनुष्य **(दिट्ठा)** देखे जाते हैं।

सम्यग्दृष्टि जीवों की दुर्लभता

अज्जवसप्पिणि भरहे, पंचमयाले मिच्छपुव्वया सुलहा।
सम्मत्तपुव्व सायारणयारा दुल्लहा होंति ॥55॥

अन्वयार्थ—(अज्जवसप्पिणि) आज /वर्तमान अवसर्पिणी काल में **(भरहे)** भरतक्षेत्र में **(पंचमयाले)** पंचमकाल में **(मिच्छपुव्वया)** मिथ्यादृष्टि जीव **(सुलहा)** सुलभ हैं, किन्तु **(सम्मत्तपुव्व)** सम्यग्दृष्टि **(सायारणयारा)** गृहस्थ और मुनि **(दुल्लहा)** दुर्लभ **(होंति)** हैं।

अवसर्पिणी काल में भी धर्म्यध्यान होता है

अज्जवसप्पिणि भरहे, धम्मज्झाणं पमादरहिदो त्ति।
होदि त्ति जिणुद्दिट्ठं, ण हु मण्णदि सो हु कुद्दिट्ठी ॥56॥

अन्वयार्थ—(अज्जवसप्पिणि) आज /वर्तमान अवसर्पिणी काल में **(भरहे)** भरतक्षेत्र में **(धम्मज्झाणं)** धर्म्यध्यान **(पमादरहिदो त्ति)** प्रमादरहित **(होदि)** होता है **(त्ति)** यह **(जिणुद्दिट्ठं)** जिनेन्द्रदेव ने कहा है जो ऐसा **(णहु)** नहीं **(मण्णदि)** मानता है **(सो)** वह **(हु)** निश्चय से **(कुद्दिट्ठी)** कुदृष्टि / मिथ्यादृष्टि है।

भव्य बन्धुओ!

अन्तिम तीर्थेश भगवान् वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना, जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति। आचार्यप्रवर भगवान् कुन्दकुन्द स्वामी ग्रंथराज समयसार जी में जिस वस्तुस्वभाव की व्याख्या कर रहे हैं, उसी वस्तुस्वभाव की प्राप्ति

का उपाय 'रयणसार' ग्रंथ में समझा रहे हैं। श्रमण धर्म, श्रावक धर्म दोनों धर्मों की चर्या का कथन कर रहे हैं। सत्यता यह है कि श्रमण-श्रावक धर्म के जो भेद किए हैं, ये जीव की शक्ति और प्रवृत्ति के कारण हैं। धर्म में कोई भेद नहीं होता है। धर्म के दो भेद किए – सागार और अनगार। यह जीव की शक्ति का व्याख्यान है, सामर्थ्य का व्याख्यान है। उपचार से धर्म के भेद कह दिए हैं। यथार्थ में धर्म तो अभेदवृत्ति है।

जो वस्तु का स्वभाव है, उसका नाम धर्म है। यदि वस्तु के स्वभाव का नाम धर्म है, तो करनेवाला धर्म क्या है? जो पुण्यभूत क्रिया है, पाप से निवृत्ति की क्रिया है, उसका नाम प्रवृत्तिभूत धर्म है। प्रवृत्तिभूत धर्म दो भेदरूप है। सम्पूर्ण पापों से जो निवृत्ति हो जाती है, स्वयं में पूर्ण प्रवृत्ति होती है, उसका नाम मुनिधर्म है। एकदेश रूप से पाप की निवृत्ति है, एकदेश रूप से व्रतों में प्रवृत्ति है, उसका नाम श्रावक धर्म है। अभेददृष्टि से देखेंगे तो आत्मस्वरूप की लीनता धर्म है। जो वस्तु का स्वभाव है वह धर्म है, तो कितनी परिभाषाएँ धर्म की बनाओगे आप? वस्तु तो अनंत हैं, अनंत वस्तुओं के अनंत धर्म हैं, वे सब धर्म मेरी आत्मा के धर्म हो जायेंगे। अनंत धर्म अनंत वस्तुओं में हैं, यदि उन सब धर्मों को मैं स्वीकार करूँगा, तो वे सारे धर्म मेरी आत्मा में चले जायेंगे, और आत्मा में संकर नाम का दोष हो जायेगा। फिर अनंत द्रव्यों के धर्म आत्मद्रव्य में जाने पर या तो जड़धर्म आत्मभूत हो जायेंगे या आत्मधर्म जड़भूत हो जायेगा। तो फिर हम कैसे मानें–**वत्थु सहावो धम्मो?**

यथार्थ में वस्तुस्वभावधर्म ही धर्म है। उस धर्म की प्राप्ति के लिए पाप की निवृत्ति और पुण्य की प्रवृत्तिरूप धर्म है। शेष द्रव्यों के धर्मों को जानना चाहिए, पहचानना चाहिए, मानना चाहिए, लेकिन निज द्रव्य के धर्म को प्राप्त करना चाहिए। वस्तुस्वभाव धर्म जो है, वह प्रत्येक द्रव्य में है। तो पर का धर्म क्या मेरे में आयेगा? नहीं आयेगा। निज द्रव्य का जो धर्म है–ज्ञान-दर्शन। वह एक जीवद्रव्य का स्वतन्त्र है। पर-जीवद्रव्य का धर्म भी मेरी आत्मा का ध र्म नहीं है। मेरी निज आत्मा का गुण ही मेरा धर्म है। मैं पर-आत्मा को निज-धर्म स्वीकार नहीं करता हूँ। अलौकिक व्यवस्था है वस्तु की। जैनदर्शन कह रहा है, इसलिए वस्तुव्यवस्था नहीं है। वस्तुव्यवस्था है, इसलिए जैनदर्शन कह रहा है। व्यवस्थित व्यवस्था है, अव्यवस्थित कोई वस्तु नहीं है। राग करेगा तो बंध होगा, यह व्यवस्थित व्यवस्था है। राग से हटेगा तो निर्बंध होगा, यह व्यवस्थित व्यवस्था है। दूध में नींबू निचोड़ेगा तो दूध फटेगा, यह व्यवस्थित व्यवस्था है। भेदविज्ञान की मथानी को लेकर निज का मंथन करेगा तो निज को भगवान् बनायेगा, यह व्यवस्थित व्यवस्था है। दूसरे पर दृष्टि मत डालना, दूसरे पर रोष मत करना, दूसरे में संतुष्ट भी मत होना। वस्तु व्यवस्था को निहारिये। यह जैनदर्शन की अलौकिक कथनशैली है।

ज्ञाता-दृष्टाभाव जो है आत्मा का, वह त्रैकालिक है, व्यवस्थित है। हम कुछ भी कर लें, कुछ भी सोच लें, लेकिन ज्ञाता-दृष्टा ही रह पाओगे और कुछ भी नहीं कर पाओगे। तू सोच सकता है, तू विचार कर सकता है, परन्तु ध्रुव सत्य है कि ज्ञाता-दृष्टा ही रह पायेगा। तेरे सगे तेरा साथ छोड़कर चले गए, उस समय आप थे कि नहीं? क्या कर रहे थे? तटस्थ होकर सुनना, वस्तुस्वरूप समझना है। लोगों ने क्या किया—यति धर्म की क्रिया, श्रावक धर्म की क्रिया, इस क्रिया को धर्म मान लिया है, जबकि यह तो धर्म की प्राप्ति का उपाय है। अभेददृष्टि से उपाय को भी हम धर्म कह देते हैं। माँ से कहा—माँ ! पानी दो, तो माँ कहती है—लो, बेटा! पानी। लेकिन माँ! जिसे तू पकड़ा रही है, वह पानी नहीं है। जो पानी है, वह हाथ में नहीं है। जहाँ से लोटा का अभाव होता है, वहाँ से पानी का प्रारम्भ होता है।

क्रिया 'धर्म' नहीं है, क्रिया के बिना 'धर्म' नहीं है। जहाँ से क्रिया प्रारम्भ होती है, वहाँ धर्म नहीं होता है। जहाँ से क्रिया का अभाव होता है, वहाँ से धर्म का प्रारम्भ होता है। हमारे वक्ता क्यों नहीं कह पाते इस बात को? उनका दोष नहीं है, श्रोताओं में पाचनशक्ति इतनी मंद हो चुकी है कि ऐसा कहेंगे तो तुम क्रियाएँ छोड़ बैठोगे। जबकि क्रियायें छुड़ाने के लिए कथन नहीं चल रहा है। लोटे को छुड़ाने का कथन नहीं चल रहा है। पानी को लोटे में लेकर पीना ही पड़ेगा। लेकिन लोटे को नहीं पिया जाता है, इतनी दृष्टि होना चाहिए। पानी ही तो पानी होता है, लोटा पानी नहीं होता है। धर्म ही तो धर्म होता है, क्रियायें धर्म नहीं होती हैं। पानी का पात्र क्रिया है। मुनिवेष बर्तन हैं, श्रावकवेष बर्तन है। हे अज्ञानी! बर्तन देखता रहेगा, लोटा देखता रहेगा, तो प्यास बुझा पायेगा क्या? यदि तुम वेष को ही भगवान् मान बैठे तो तुम भगवान् कभी बन नहीं पाओगे। वेष भगवान् नहीं है, भगवान् बनने का उपाय वेष है। लेकिन भेष बनाये बिना भाव लगते नहीं।

कितना गंभीर दर्शन है। लोटे की पर्त का अभाव जहाँ से होगा, वहाँ से पानी प्रारम्भ होगा। पानी में लोटा किंचित् भी नहीं है। यहाँ तक कि लोटे में पानी भी नहीं है। पानी आकाश में है। लोटा अपनी पर्तों से ढका हुआ आकार है। लोटा बर्तन का आकार है, वह पानी का आकार नहीं, है। पानी तो पानी में ही है। लोटा पानी नहीं है, पानी लोटा नहीं है फिर भी पानी माँगने पर माँ बेटे को लोटा पकड़ाती है। लेकिन बेटा समझदार होता है, कि इस लोहे के माध्यम से पानी पिऊँगा, इसलिए माँ ने लोटा पकड़ाया है। ऐसे-ही हे ज्ञानियो! मुनिमुद्रा, श्रावकमुद्रा यह लोटा है। इसमें भरा चैतन्य पिण्ड, ज्ञानघन स्वरूप जो है, वही आत्मा का धर्म है। इसलिए जगत् के द्रव्यों के धर्म को जानना, पहचानना, परन्तु निज के धर्म में लीन होना।

ज्ञायकस्वरूपोऽहम्, ज्ञाता-दृष्टा स्वरूपोऽहम्।

जब किसी की मृत्यु हो रही थी, तब भी मैं खड़ा था, मात्र देख रहा था, जान रहा था। जब किसी का जन्म हो रहा था, तब भी मैं खड़ा था, देख रहा था, जान रहा था, लेकिन कर कुछ नहीं रहा था। ध्रुव सत्य बोलना, कर क्या रहा था? देख ही पायेगा, जान ही पायेगा, लेकिन कर कुछ नहीं पायेगा। राग करेगा तो बंध करेगा, द्वेष करेगा तो बंध करेगा। परन्तु कर कुछ भी नहीं रहा है। आत्मा का त्रैकालिक धर्म है, उसका नाम है ज्ञाता-दृष्टा। कहीं भी जाना, जाकर उपस्थित ही हो पाओगे, लेकिन कर कुछ भी नहीं पाओगे। ये कर्त्तावादी कर-कर के मात्र कर्मबंध कर पाते हैं, मगर कर कुछ नहीं पाते हैं। अपने सगे पिता को नहीं बचा पाए तो तुम कैसे बेटे हो? विश्वास रखना, जिनके संतान नहीं हुई है, वे भी जायेंगे तो अकेले जायेंगे और जिनके संतानें हैं, वे भी तुझे देख ही पायेंगे, बचा नहीं पायेंगे। तुम अपने चेहरे को बचा नहीं पाए, अपने चेहरे को ठीक नहीं रख पाए। जिनके चेहरे सीधे थे, वे सीधे ही हैं और जिनके चेहरे टेढ़े थे, वे टेढ़े ही हैं। दर्पण ने किया क्या?

ज्ञानियो! ज्ञाता-दृष्टा बनकर रहो। दुनियाँ में जो हो रहा है, होने दो। मैं तो जो हूँ, सो हूँ। संसारातीत होना चाहते हो तो ऐसा सोचना और संसार में ही रहना चाहते हो तो जैसा तुम सोचते हो वैसा ही सोचना। 'समयसार' जी में अमृतचंद्रस्वामी ने रागियों को प्राचार्य लिखा है। पाँच पापों को कैसे करना पड़ता है? छल कैसे करना पड़ता है? इन सबमें ये सब गृहस्थ स्नातक हैं। जिस विषय में मैं पूर्ण अज्ञानी हूँ, उसमें ये सब प्राचार्य हैं। जगत् के प्रपंच के लिए प्राचार्य हैं और आत्महित के लिए शून्य हैं।

धर्म जो है, वह वस्तुस्वभाव है। निज-स्वभाव मेरा धर्म है, परस्वभाव पर का धर्म है। जब एक जीव का धर्म दूसरे जीव में नहीं होता, तो जड़ /अचेतन द्रव्यों का धर्म चेतनद्रव्य में कैसे हो जायेगा? कषाय की अनुभूति को आत्मा का आनंद मानना, यह घोर मिथ्यात्व है। कषाय की अनुभूति को ज्ञानी आनंद मानता रहा। कषाय की अनुभूति के आनंद के लिए लाखों रुपये खर्च करता है। यदि सिनेमा भवन में गया तो क्यों गया? आपके भवन में टीवी रखी है, क्यों रखी है? कषाय की अनुभूति के लिए। पैसे कमाने में पाप किया, अब पैसा गँवाने में पाप कर रहा है। फिर भी कहता है कि मैं तो बहुत समझदार हूँ यानि दुर्गति के लिए समझ का प्रयोग चल रहा है। जितनी अच्छी ऐसी समझ होगी, उतनी अच्छी दुर्गति होगी। रावण से पूछ लो? कैसी व्यवस्थित सेना एकत्रित की उसने। किस प्रकार से सीता का हरण किया उसने। कैसे पुष्पक विमान में ले गया और कैसे अशोक वाटिका में रखा। यह सब किसके लिए हो रहा था? ओ-हो? दुर्गति के लिए कितना विवेक लगाता है। दुर्गति के लिए कितना जतन करता है।

सम्यग्दृष्टि जीव कभी नहीं करता दुर्गति का जतन। जो कर रहा है अरिहंत की पूजा, उसके है सद्गति का जतन। जो कर रहा निर्ग्रंथ को दान, उसके है सद्गति का जतन। जो कर रहा जिनवाणी का पान, उसके है सद्गति का जतन। जो कर रहा तत्त्व का ध्यान, उसके है सद्गति का जतन और जो कर रहा दुर्ध्यान, उसके है दुर्गति का जतन। यह नहीं कह पायेंगे आप कि महाराज! अज्ञानता से हुआ है। ज्ञानी! जतनपूर्वक हुआ है। कितना समय दिया था आपको। शादी के पहले गोद भराई होती है। बेटा! अभी भी सोच लेना। उस समय भी नहीं संभला, करता रहा दुर्गति का यतन। पूरा 'मूलाचार', सम्पूर्ण आचारांग मात्र एक सूत्र पर है।

कधं चरे, कधं चिट्ठे कधमासे कधं सये।
कधं भुंजेज्ज भासिज्ज कधं पावं ण बज्झदि ॥1014॥

कैसे चलें, कैसे बैठें, कैसे बोलें, कैसे खायें, कैसे सोयें, जिससे पाप का बंध न हो? उत्तर दिया–

जदं चरे जदं चिट्ठे जदमासे जदं सये।
जदं भुंजेज्ज भासेज्ज एवं पावं ण बज्झइ ॥1015॥

यत्नपूर्वक चलो, यत्नपूर्वक बैठो, यत्नपूर्वक बोलो, यत्नपूर्वक खाओ, यत्नपूर्वक सोओ, जिससे पाप का बंध न हो।

बुण्देलखण्ड में कहते हैं, श्वान भी पूँछ हिलाकर बैठता है। बुजुर्ग कहते थे अपने बच्चों से, बेटा! यत्नपूर्वक बैठो, श्वान भी पूँछ हिलाकर बैठता है। इसलिए दिगम्बर मुनि के हाथ में पिच्छिका होती है, वे मार्जन करके बैठते हैं। हॉस्पिटल में जितने रोगी घूम रहे हैं, ये सब बिना यतन का जीवन जिए, इसलिए घूम रहे हैं। यत्नपूर्वक जीवन जियो तो कभी वैद्य से न मिलना पड़े। "ज्ञाता-दृष्टा स्वरूपोऽहम्" – देख ही पायेगा, जान ही पायेगा, लेकिन कर कुछ नहीं पायेगा। किस-किस के लिए रोओगे? क्या यह पर्याय रोने के लिए मिली है? आज से ही सुखमय जीवन जीना प्रारम्भ करो और जगत् का कर्त्तृत्वपना छोड़ दो। आयु के निषेक जितने शेष हैं, जगत्कर्त्तृत्व को छोड़कर आत्मकर्त्तत्व का यतन करना प्रारम्भ कर दो।

"जो संसार विषैं सुख होता, तीर्थंकर क्यों त्यागे"

जब संसार में सुख ही था, तो तीर्थंकर ने क्यों त्यागा? आपको तो सूखी रोटियाँ खाने को मिलती हैं, जबकि तीर्थंकर को तो स्वर्ग का भोजन मिलता था प्रतिदिन। तीर्थंकर जब तक गृहस्थ अवस्था में रहते हैं, कभी अपने माता-पिता के घर का भोजन नहीं करते। तीर्थंकर

भगवान के लिए सौधर्मइन्द्र प्रतिदिन नई ड्रेस लेकर आता है। लेकिन तब भी उनको समझ में आ गया, कि यह स्वर्ग की मिठाई मोक्ष की मिठाई नहीं है।

वर्तमान में भरतक्षेत्र में इस दुष्समकाल में जो प्रचुर जीव हैं, वे आर्त्तध्यानी और रौद्रध्यानी हैं अर्थात् इनकी संख्या प्रचुर है। सोचिए, कितनी समाज होती है नगर में, परन्तु मन्दिर कितने से आते हैं? तत्त्व कितने सुनते हैं? तो क्या तत्त्व सुनने मात्र से दुर्ध्यान दूर हो गए ? हृदय टटोलकर पूछ लो, पूरी पर्याय में मन्दिर आकर भी उन क्षणों में हमने क्या किया है? जिनेश्वर को देखने की जगह पर की ही पर्यायों को देखा है। हे ज्ञानी! बंध-अबाधाकाल यदि आ गया, तो जिसकी पर्यायों को देख रहा था और मरण हो गया तो उसी के शरीर में जाकर कीड़ा बनना पड़ जायेगा। दुनियाँ मुस्कुरायेगी कि मन्दिर में समाधि हो गई, परन्तु वह तो दूसरे के शरीर में कीड़ा बन गया। इसलिए संभल कर रहना।

रौद्रध्यानी, आर्त्तध्यानी सर्वाधिक हैं। नष्टबुद्धि, दुष्टबुद्धि, दु:खी प्राणी, पापी प्राणी। कृष्ण लेश्या, नील लेश्या और कापोत लेश्या ये तीन अशुभ लेश्यायें हैं। इन लेश्याओं से युक्त जीव प्रचुर देखे जा रहे हैं। इसलिए पंचमकाल की अवस्था को निहारके संभल-संभलकर निकल चलो। क्या जगत् को सुधार पाओगे? कोई किसी का सुधारक नहीं है। यह भूल सुधार लो अपनी कि मैं तुम्हारे सुधार का कर्त्ता हूँ। निमित्त तभी बन पाओगे, जब सुधरने वाले का उपादान निर्मल होगा। आप अपने दो बेटों को एक-सा नहीं बना पाए। एक गोरा हुआ, दूसरा काला हुआ, ऐसा क्यों हुआ? एक मुनि बन गया दूसरा संसारभोगों में लीन हो गया। इसलिए यह भाव छोड़ दो कि मैं जगत् का कर्त्ता हूँ। आप जगत् को बता ही पाओगे, बदल नहीं पाओगे। किसी को मत देखना, पर की सफाई करते-करते बहुत दिन बीत गए।

पंचमकाल में और-भी कुछ है? कुन्दकुन्द स्वामी इस ग्रंथ में कह रहे हैं—देखो भाई! श्रावकों की बात तो छोड़ दो, श्रमण की बात कर लो आप, साथ में। आज इस भरत क्षेत्र में, अवसर्पिणी काल में, पंचमकाल में बड़े सुलभ लोग हैं। कौन? मिथ्यादृष्टियों की प्राप्ति सुलभ है। और तो क्या कहें—सम्यक्त्वपूर्वक मुनि और श्रावक का मिलना दुर्लभ है। परन्तु इसका तात्पर्य अभाव मत मान लेना। सम्यग्दृष्टि श्रावक भी हैं, सम्यग्दृष्टि श्रमण भी हैं; परन्तु दुर्लभ हैं, बहुत कम हैं। परन्तु यह पहचान आपके हाथ में नहीं है कि कौन-कौन हैं?

आज भी अवसर्पिणी काल में, भरतक्षेत्र में धर्म्यध्यान प्रमादरहित होता है। कोई यह न मान ले कि धर्म तो बचा ही नहीं है। आर्त्त-रौद्र ध्यान की प्रचुरता है, परन्तु धर्म्यध्यान भी होता

है। ऐसा भगवान् जिनेन्द्रदेव ने कहा है। जो पंचमकाल में सच्चे वीतरागी साधु और सच्चे श्रावक नहीं मानता है, वह मिथ्यादृष्टि है। जिसको आज तक कोई मुनि न मिला हो, कोई श्रावक न मिला हो, पहला मिथ्यादृष्टि तो वही है। इसलिए अब बाहर की आँखों से खोजना बंद करो। भीतर का, स्वयं का निर्णय करो कि मेरी तत्त्वदृष्टि क्या है? जिनदेव, जिनवाणी, निर्ग्रंथ गुरु पर किंचित् भी अश्रद्धा भाव नहीं है, तत्त्वों पर श्रद्धान है, आत्मा की त्रैकालिक दशा को मानते हो, तो तुम व्यवहार सम्यग्दृष्टि हो।

"आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

॥ भगवान् महावीर स्वामी की जय ॥

❖ ❖ ❖

जो रुचे, सो करो

असुहादो णिरयाऊ, सुहभावादो दु सग्गसुहमाओ।
दुहसुहभावं जाणदु, जं ते रुच्चेद तं कुज्जा ॥57॥

अन्वयार्थ—(असुहादो) अशुभ भावों **(णिरयाऊ)** नरक आयु **(दु)** और **(सुहभावादो)** शुभ भावों से **(सग्गसुहमाओ)** स्वर्ग सुख और स्वर्ग आयु मिलती है, अतः **(दुहसुहभावं)** दु:ख-सुख भावों को **(जाणदु)** जानो और इनमें **(ते)** तुम्हें **(जं)** जो **(रुच्चेइ)** अच्छा लगे **(तं)** उसे **(कुज्जा)** करो।

अशुभ-भाव-रूप परिणाम

हिंसादिसु कोहादिसु, मिच्छाणाणेसु पक्खवाएसु।
मच्छरिदेसु मदेसु दुरहिणिवेसेसु असुहलेस्सेसु॥58॥

विकहादिसु, रुद्दट्टज्झाणेसु असुयगेसु दंडेसु।
सल्लेसु गारवेसु य, जो वट्टदि असुदभावो सो ॥59॥

अन्वयार्थ—(हिंसादिसु) हिंसादि में **(कोहादिसु)** क्रोधादि में **(मिच्छाणाणेसु)** मिथ्याज्ञान में **(पक्खवाएसु)** पक्षपात में **(मच्छरिदेसु)** मात्सर्य में **(मदेसु)** मदों में **(दुरहिणिवेसेसु)** दुरभिनिवेशों में **(असुहलेस्सेसु)** अशुभ लेश्याओं में **(विकहाइसु)** विकथाओं में **(रुद्दट्टज्झाणेसु)** आर्त्त-रौद्र ध्यानों में **(असुयगेसु)** ईर्ष्या में **(दंडेसु)** असंयमों में **(सल्लेसु)** शल्यों में **(य)** और **(गारवेसु)** मान बड़ाई में **(जो वट्टदि)** जो वर्तन होता है **(सो)** वह **(असुह भावो)** अशुभभाव है।

भव्य बन्धुओ!

अन्तिम तीर्थेश भगवान् वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना, जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमण संस्कृति। आचार्यप्रवर भगवान् कुन्दकुन्द स्वामी ग्रंथराज रयणसार जी में श्रमण-श्रावक उभय धर्मों की व्याख्या कर रहे हैं। अंतरंग की विशुद्धि का जब जागरण होता है, तब तत्त्व सुनने के भाव प्रकट होते हैं। अंतरंग की मलिनता का जब उपशमन होता है, तब जिनवाणी सुनने के परिणाम होते हैं। संसार का अंत होना जिसका निश्चित हो जाता है, उसको जिनवाणी सुनने के परिणाम होते हैं। जिसकी संसार की संतति अभी वृद्धिमान है, उस जीव को भगवान् की वाणी सुनने के परिणाम ही नहीं आते। स्वरूप

उपलब्धि के परिणाम तभी अंकुरित होते हैं अंतस् में, जब मिथ्यात्व के वृक्षों की जड़ें सड़ने लगती हैं, नष्ट होने लगती हैं। मिथ्यात्व की जड़ें जब तक विशालता को प्राप्त हैं, तब तक साक्षात् तीर्थेश विराजमान होने पर भी मारीचि के समान यह जीव निकल जायेगा। समवसरण में बैठ नहीं पायेगा।

जिसकी परिणति पवित्र है, उसकी गति पवित्र है और जिसकी भविष्य की गति पवित्र होनेवाली है, उसकी वर्तमान की परिणति नियम से पवित्र होगी। जिसकी भविष्य की गति दुर्गति है, उसकी वर्तमान की परिणति नियम से खोटी होगी। किसी से पृच्छना करने की आवश्यकता नहीं कि, हे स्वामी! मेरी गति क्या होगी? यदि पूछना चाहते हो तो आज पूछ लेना अपने परिणामों से। भगवान् कुन्दकुन्द स्वामी रयणसार जी ग्रंथ में कह रहे हैं—ज्ञानी! वर्तमान में सर्वज्ञ नहीं हैं, उनके पास तो नहीं पहुँच पाओगे कि हे स्वामी! मेरी भावी गति क्या होगी? लेकिन द्रव्य-आगम तुम्हारे सामने है; यह द्रव्य-आगम पढ़ने के लिए नहीं है; यह भाव-आगम को समझने के लिए है। भाव-आगम जैसा होगा, भावी भव तेरा वैसा होगा। उसको इन्द्र, नरेन्द्र, तीर्थंकर भी नहीं बदल पायेंगे। मेरा प्रभु, मेरा देव जो है, वह तीन प्रकार का है—इष्ट है, अबाधित है, अभिप्रेरित है। वह अरिहंतदेव हैं। मैं मात्र अपने चित्त को निर्मल करने उनके चरणों में आता हूँ। अपना कराने नहीं आता हूँ, उनका करने नहीं आता हूँ। मैं उन्हें कर्त्ता बनाने नहीं आता हूँ, मैं उनका कर्त्ता बनने नहीं आता हूँ—

न पूजयाऽर्थस्त्वयि वीतरागे, न निन्दया नाथ ! विवान्तवैरे।
तथापि ते पुण्य-गुण-स्मृतिर्नः, पुनातु चित्तं दुरिताञ्जनेभ्यः ॥57 स्व. स्तोत्र॥

जगत् के प्राणियों के चित्त पवित्र होते हैं, इसलिए हे प्रभु! आपके चरणों में आता हूँ। आप मेरे चित्त को पवित्र करते नहीं हो, आपके चरणों में चित्त पवित्र हो जाता है। जैसे परमात्मा की प्रतिमा चित्त को पवित्र करने में सहकारी साधन है, वैसे-ही अरिहंत की देशना हमारे परिणामों को प्रसन्न करने के लिए, चित्त को निर्मल करने के लिए सहकारी साधन है। भाव-आगम की प्राप्ति के लिए द्रव्य-आगम है। द्रव्य-आगम का अभ्यास करके भी भावों में विशुद्धि नहीं आई, तो मात्र द्रव्य-आगम है, उपयोग रहित। जो सुन रहे हो, जो मैं कह रहा हूँ, वह सब आपका ज्ञान नहीं है। जो आप जान रहे हो, वह आपका ज्ञान है। वह मेरे ज्ञान से नहीं जान रहे हो, अपने ही ज्ञान से जान रहे हो। यदि मेरे ज्ञान से आप जानने लग गए, यह निमित्त कथन तो हो जायेगा, परन्तु उपादान दृष्टि यही है—"मुकुर-मयूर"। मुकुर तो मुकुर है और मयूर ही मयूर है। मुकुर में

मयूर जाता नहीं। मुकुर यानि दर्पण। मुकुर में मयूर चला गया तो मयूर जड़ हो जायेगा अन्यथा मुकुर को चेतन होना पड़ जायेगा।

केवली के ज्ञान में जगत् का कोई द्रव्य प्रवेश करता नहीं। केवली का ज्ञान जगत् के द्रव्य में प्रवेश करता नहीं। प्रमेय में प्रमाता जाता नहीं। प्रमाता में प्रमेय जाता नहीं। प्रमाता तो प्रमाता ही रहता है। प्रमेय भी प्रमेय ही रहता है। फिर भी व्यवहार से प्रमाता को प्रमेय का ज्ञाता कहा जाता है। परन्तु प्रमाता भेद-प्रमेय का ज्ञाता है, अभेद-प्रमेय का ज्ञाता है। व्यवहार से भेद-प्रभेद का ज्ञाता है। निश्चय से निज प्रमाता निज प्रमेय का ही ज्ञाता है।

भगवान् ने आज तक किसी को जाना नहीं। भगवान् किसी को जानता नहीं। जो जाननेवाला होता है, वह भगवान् होता नहीं। जो जानता नहीं, वह भगवान् होता नहीं। जो जाननहार है, वह भगवान् है। जो जानना चाहता है, वह भगवान् होता नहीं। जो-जो जानने की इच्छा रखते हैं, वे सब छद्मस्थ होते हैं। परमात्मा में ईहा होती नहीं और ईहा वाले को परमात्मपना प्रकट होता नहीं। जो सर्वज्ञ है, वह आत्मज्ञ है। जो आत्मज्ञ है, वह सर्वज्ञ है। जो सर्वज्ञ है, वह सर्वज्ञ ही नहीं, आत्मज्ञ भी है। आत्मज्ञ ही सर्वज्ञ होता है। सर्वज्ञ कभी सर्वज्ञ होता नहीं। तत्त्व की गहराइयाँ निहारो, किसी ने ईश्वर को कर्त्ता बना लिया, तो किसी ने केवली के ज्ञान को कर्त्ता बना लिया; परन्तु कर्तृत्वदृष्टि से बाहर निकले नहीं। द्रव्य-मिथ्यात्व को छोड़ पाना अत्यंत सरल है, भाव-मिथ्यात्व से छूट पाना अत्यंत कठिन है। हमारे मुमुक्षु ज्ञानियों ने द्रव्य-मिथ्यात्व को छोड़ने की कोटि-कोटि चर्चाएँ कीं और भाव-मिथ्यात्व में उलझ गए। ईश्वरवादी कहता है कि पत्ता भी हिलेगा तो प्रभु की मर्जी से हिलेगा। हमारा मुमुक्षु कहता है महाराज! जो केवली के ज्ञान में झलका है, मैं वह ही करता हूँ। हे ज्ञानी! द्रव्य-मिथ्यात्व और भाव-मिथ्यात्व दोनों की एक-ही गति होती है। समंतभद्र जैसे योगी को सूक्ष्म मिथ्यात्व की चर्चा करनी पड़ गई। देवी-देवताओं को अपना कर्त्ता माने, वह तो स्थूल परसमयी है। जो अरिहंतदेव को भी अपना कर्त्ता मानता है, वह भी सूक्ष्म परसमयी है। "स्वतंत्रत: कर्त्ता:" पर दृष्टिपात करो। केवली के ज्ञान में झलका, इसलिए तेरा काम हो गया, तो केवली तो फिर यही देखता रहता कि किसका काम सुधारूँ, किसका काम बिगाड़ूँ?

हे प्रभु! तेरे से बड़ा अभागा जगत् में कौन होगा? कितनों को रुलाता है, कितनों को हँसाता है, तू तो महारागी है। रागी कभी वीतरागी भगवान् होता नहीं। वर्तमान के योगियों, आचार्यभगवंतों को समाज में शुद्ध तत्त्व की व्याख्या करने की आवश्यकता है, अन्यथा जिनवाणी खुलेगी ही नहीं, मनवाणी ही खुलती रहेगी और लोग बाहर में जीते रहेंगे। भैया! कुदेवों के मन्दिर तो नहीं जा रहा है तू, मुझे खुशी है, परन्तु मुनिसुव्रतनाथ को पूजने के लिए शनिवार को

जरूर जाता है। पार्श्वनाथ को रविवार को पूजने जरूर जाता है। ज्ञानी! क्या शनिवार के दिन ही मुनिसुव्रतनाथ में ज्यादा शक्ति बढ़ जाती है? क्या रविवार के दिन ही पार्श्वनाथ में ज्यादा शक्ति बढ़ जाती है? यह मान्यता भी भाव-मिथ्यात्व की ओर इंगित कर रही है। मैं नहीं चाहता ऐसी प्रभावना, जो हमारे भगवान् को कर्त्ता बना दे। वर्तमान में अरिहंत के भक्त अंगुलियों पर गिनने लायक हैं, भिखारियों की संख्या सर्वाधिक है। भक्त वह है, जो सुबह से अष्टद्रव्य का थाल सजाकर निष्काम भाव से मन्दिर आया है। प्रभु ! आप कुछ देते नहीं, प्रभु! आप कुछ लेते नहीं, परन्तु मेरी भक्ति में ताकत होती है कि आपकी भक्ति करने से मुझे सबकुछ मिल जाता है।

देवाधिदेव चरणे, परिचरणं सर्व-दुःख निर्हरणम्।
काम दुहिकामदाहिनि, परिचिनुयादादृतो नित्यम् ॥119 र.क.श्रा.॥

जितने दुःखिया जीव हैं, सब भगवान् की भक्ति में लीन हो जाना, लेकिन माँगना नहीं। भिखारी नहीं, भक्त बनकर जाना। जो देवाधिदेव के चरणों में आश्रय लेता है, उसके सभी दुःखों का क्षय हो जाता है। जिनके चरणों में सौ-सौ इन्द्र सिर टेकते हों और कोटि-कोटि देव जिसके चरणों में सिर टेकते हों, ऐसा इन्द्र भी प्रभु के चरणों में बैठा किंकर बनके। जिनके चरणों में सौधर्मेन्द्र किंकर बनकर आया हो, वे भी तीर्थंकर जब छः महीने अंजुलि लगाकर घूम रहे थे, तब वह इन्द्र कहाँ चला गया था? किसी को अवधिज्ञान से बता देता?

आपके इष्टदेवता अरिहंतदेव, अबाधित देवता अरिहंतदेव, जब वे बननेवाले अरिहंत देव निर्ग्रंथ अवस्था में घूम रहे थे, जिनका बेटा चक्रवर्ती हो, जिनका बेटा कामदेव हो, वे भी घूम रहे थे क्षुधावेदना में छः महीने। क्या हो गया था? कोई व्यंतर नहीं आ सका। महाराज! सब जायेंगे, विधि मिलेगी तो सब विधियाँ मिल जायेंगी, जब पुण्य होगा। तो मैं पुण्य को ही बढ़ाऊँ, इन देवों को क्यों पूजूँ?

ण य कोवि देदि लच्छी, ण कोवि जीवस्स कुणदि उवयारं।
उवयारं अवयारं कम्मं पि सुहासुहं कुणदि ॥319 का.अ.॥

कौन लक्ष्मी देता है? कौन उपकार करता है? कौन अपकार करता है? शुभ कर्म का उदय है तो शत्रु के घर में भी माला पड़ेगी और पुण्य का उदय नहीं है तो घर का भैया भी विभीषण बन जाएगा। इसलिए याद रखना, जगत् में किसी पर विश्वास नहीं करना। आपकी रक्षा न देव कर रहा, न देवी कर रही, न देवाधिदेव कर रहे। यदि कोई रक्षा कर रहा है, तो तेरे द्वारा उपार्जित पुण्य का द्रव्य तेरी रक्षा कर रहा है। निमित्त तभी सहकारी है जब उपादान प्रबल है। वह निमित्त

'निमित्त' ही नहीं होता है जो उपादान को प्रभावित न कर पाए। वही निमित्त 'निमित्त' होता है जो उपादान को जागृत कर दे।

हे ज्ञानियो! हमारे सर्वज्ञ को सर्वज्ञ रहने दो, सर्वज्ञ को कर्त्ता मत बनाओ। हमारे सर्वज्ञ को आत्मज्ञ रहने दो। जो सर्वज्ञ के ज्ञान से अपनी पर्यायों की उत्पत्ति मानते हैं, वे घोर मिथ्यादृष्टि हैं। सर्वज्ञ के ज्ञान से जो अपनी होनहार मानते हैं, वे महा मिथ्यादृष्टि हैं। भगवान् के जानने से नहीं होता। भगवान् के जानने से होने लग गया तो फिर ईश्वरवादी कहता है कि ईश्वर की कृपा से होता है और आप कहोगे कि केवली के ज्ञान से होता है। तुम दोनों में शब्द-वैषम्य है, अर्थ-वैषम्य नहीं है। अर्थ-समानाधिकरण हो रहा है।

आचार्य समंतभद्र स्वामी लिखते हैं—मुझे वर्द्धमान से राग नहीं, मुझे सुगत से द्वेष नहीं, परन्तु सत्यार्थ उपदेश के प्रति अनुराग अवश्य है। पुनः प्रश्न किया शिष्य ने, कि हे स्वामी! क्या आपके उपदेश से लोग असत्य को छोड़ पायेंगे? स्वामी! जब तीर्थंकर महावीर के रहते लोग नहीं सुधर पाए, तो आप आप्त की परीक्षा क्यों कर रहे हो?

समंतभद्र स्वामी कहते हैं 'युक्त्यनुशासन' में, कि हे शिष्य! मुझे मालूम है कि मेरे कहने से लोग सुधरने वाले नहीं हैं, परन्तु विधि का वर्णन करने मात्र से काम नहीं चलेगा, निषेध का भी वर्णन करना पड़ेगा।

सस्याद्विधि-निषेधात्मा स्वधर्म-परधर्मयोः।
समूर्तिर्बोधमूर्ति-त्वादमूर्तिश्च विपर्ययात् ॥8 स्व. सं.॥

मैंने आपको उपदेश दिया और ग्रन्थों में लिख दिया कि रात्रि में भोजन नहीं करना चाहिए। 'नहीं, ऐसा नहीं लिखा। दिन में भोजन करना चाहिए, ऐसा लिख दिया।' कोई तिकड़मबाज होगा, तो वह कहेगा कि आपके आचार्यों ने निषेध कहाँ किया है? आज संघों में न्याय के अध्ययन की परम्परा विच्छिन्न हो रही है। आचार्यों को चाहिए शिष्यों को न्याय पढ़ायें और न्याय जिस दिन शिष्य पढ़ लेंगे, तो समाज में अन्याय बंद हो जायेंगे। कहेंगे महाराज! देखो शास्त्र में लिखा है दिन में भोजन करना चाहिए, यह कहाँ लिखा है कि रात्रि में भोजन नहीं करना चाहिए? ऐसे लोगों को समझाना बड़ा कठिन है। हमारे आचार्यों ने कहा—ठीक, यदि ऐसी तुम्हारी दुर्बुद्धि दौड़ सकती है, तो अब मैं स्पष्ट ही लिखता हूँ। ज्ञानी!

नैवं वासरभुक्तेर्भवति हि रागोऽधिका रजनिभुक्तौ।
अन्नकवलस्य भुक्तोः भुक्ताविव मांस कवलस्य॥132 पु.सि.॥

जितना राग दिन के भोजन करने में नहीं होता है, उतना राग रात्रि के भोजन में होता है। जो रात्रि में अन्न के ग्रास को खाता है, वह माँस के ग्रास को खाता है। जब ऐसा कठोर वर्णन किया, अब कहो, निषेध किया कि नहीं किया? मैं यह सब क्यों कह रहा हूँ? कल को मैं लिखता कि—अरिहंतदेव को पूजना, तो तीसरा आकर कहता—महाराज! ये कहाँ लिखा है कि सग्रंथ को मत पूजना। इसलिए स्पष्ट लिखा—अरिहंत को ही पूजना, निर्ग्रंथ को ही पूजना, सरागी को नहीं पूजना। विधि और निषेध दोनों का वर्णन किया है। पंचमकाल है।

दूरदर्शी गुण होता है आचार्य का। आचार्यभगवान् कुन्दकुन्द स्वामी ने 2000 वर्ष पहले जान लिया था कि क्या होगा आगे चलकर। स्पष्ट लिख दिया—

ण वि सिज्झइ वत्थधरो जिणसासणे जइवि होइ तित्थयरो।
णग्गो विमोक्खमग्गो, सेसा उम्मग्गया सव्वे॥ 23 सु.पा.॥

जब निर्ग्रंथ पर विवाद होने लगा, तो सीधा 'नग्न' शब्द का प्रयोग किया कुन्दकुन्द स्वामी ने। नग्नता ही मोक्षमार्ग है, शेष सभी उन्मार्ग हैं। उन्मार्गियों की बात मानना घोर मिथ्यात्व है। मैं तो आचार्यभगवंतों का बहुत उपकार मानता हूँ। "धण्णा ते भयवंता"। ध्यान रखना, भगवान् सर्वज्ञ के ज्ञान में होने से वस्तु का परिणमन नहीं होता। वस्तु का परिणमन जो होता है, वह भगवान् के ज्ञान में झलकता है। मुकुर-मयूर-वत्। "कण-कण स्वतन्त्र है" — यह किसी व्यक्ति का सिद्धान्त मत समझना, यह वस्तुव्यवस्था है। क्या करूँ? एक ने कहना शुरू कर दिया, तुमने छोड़ना शुरू कर दिया, यही तुम्हारी अज्ञानता है।

"आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

॥भगवान् महावीर स्वामी की जय॥

❖ ❖ ❖

शुभभावरूप परिणाम

दव्वत्थिकाय छप्पण, तच्चपयत्थेसु सत्तणवगेसु।
बंधणमोक्खे तक्कारणरूवे वारसणुवेक्खे ॥60॥

रयणत्तयस्सरूवे अज्जाकम्मे दयादिसद्धम्मे।
इच्चेव माइगे जो, वट्टदि सो होदि सुहभावो ॥61॥

अन्वयार्थ—(छप्पण दव्वत्थिकाय) छः द्रव्य, पाँच अस्तिकाय **(सत्तणवगेसु तच्चपयत्थेसु)** सात तत्त्व, नौ पदार्थ **(बंधणमोक्खे)** बन्ध और मोक्ष **(तक्कारणरूवे)** उसके कारणरूप **(वारसणुवेक्खे)** बारह अनुप्रेक्षाओं **(रयणत्तयस्सरूवे)** रत्नत्रय-स्वरूप **(अज्जाकम्मे)** आर्य कर्म **(दयादिसद्धम्मे)** दया आदि सद्धर्म **(इच्चेव माइगे)** इत्यादि में **(जो वट्टदि)** जो वर्तन होता है **(सो)** वह **(सुहभावो)** शुभ भाव **(होदि)** होता है।

निर्णय स्वयं का

सम्मत्तगुणाइ सुगदि, मिच्छादो होदि दुग्गदीणियमा।
इदि जाण किमिह बहुणा, जं रुच्चदि तं कुज्जाहो ॥62॥

अन्वयार्थ—(सम्मत्तगुणाइ) सम्यक्त्व गुण से **(णियमा)** नियम से **(सुगदि)** सुगति और **(मिच्छादो)** मिथ्यात्व से **(दुग्गदि)** दुर्गति **(होदि)** होती है **(इदि)** यह **(जाण)** जान **(इह)** यहाँ **(बहुणा किं)** अधिक कहने से क्या **(जं)** जो **(रुच्चदि)** अच्छा लगे **(तं)** वह **(कुज्जाहो)** कर।

भव्य बन्धुओ!

अन्तिम तीर्थेश भगवान् वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना, जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति। आचार्यप्रवर भगवान् कुन्दकुन्द स्वामी ग्रंथराज रयणसार जी में श्रमण-श्रावक उभय धर्मों की व्याख्या कर रहे हैं। वस्तु में शब्द समानाधिकरण होने पर अर्थ-समानाधिकरण हो, यह आवश्यक नहीं है। वस्तुत्व-वस्तुत्व गुण प्रत्येक वस्तु का सादृश्य है, लेकिन निज गुण की दृष्टि से प्रत्येक वस्तु का वस्तुत्वपना स्वतंत्र है। अर्थपर्याय का परिणमन, व्यंजनपर्याय का परिणमन जीव और पुद्गल रूप द्रव्यों में

स्वभाव-विभावभूत है। शेष चार द्रव्यों में स्वभाव-स्वभाव ही है। द्रव्य का जो परिणमन है, उस परिणमन को न समझता हुआ जीव व्यर्थ की संक्लेशता में वर्तन करता है। असमानजाति पर्याय के राग में भविष्य के भगवान् को भूलना, यह कोई अच्छी बात नहीं है।

यदि किसी ने धक्का मार दिया, तो चार लोग उठाने आ जायेंगे, लेकिन हे ज्ञानी! भावों ने जो धक्का मारा है, उसे उठाने एक भी आदमी नहीं आयेगा। असमानजाति पर्याय को किसी ने छेड़ दिया तो अनेक लोग तेरे सहयोग के लिए खड़े हो जायेंगे। पर के द्वारा किए गए उपसर्ग को दूर करने के लिए देव भी आ जायेंगे, परन्तु तेरी आत्मा पर तेरी आत्मा के द्वारा किया गया जो उपसर्ग है, उसे देखने के लिए तेरा सगा भाई भी नहीं आयेगा। शरीर पर जितने उपसर्ग हुए, उनसे कभी दुर्गति नहीं हुई। चाहे देवकृत हो, चाहे मनुष्यकृत हो, चाहे तिर्यञ्च कृत हो, चाहे अचेतन द्वारा हो, यह चार प्रकार का उपसर्ग जो है, इन उपसर्गों के होने पर कभी आत्मा का अहित नहीं होता, परन्तु क्रोध-मान-माया-लोभ इन विकारी भावों को किसी दूसरे ने नहीं किया है। इन विकारी भावों को करनेवाला तू स्वयं है। बहिरंग उपसर्ग को देखकर कोटि-कोटि लोग कहेंगे कि अच्छा नहीं हुआ, परन्तु अंतरंग जो उपसर्ग चल रहा है, इस पर भी तो करुणा करो।

हे योगीश्वर! भक्तों की भीड़ आपके शरीर की रक्षा के भाव तो बना सकती है। लेकिन हे योगीश्वर! भक्तों के राग का जो उपसर्ग है, उसे भगवान् भी दूर करने नहीं आ पायेंगे। संभलकर सुनना, संभलकर समझना। भक्तों की भीड़ के राग का जो उपसर्ग है, इसे भगवान् भी दूर नहीं कर पायेंगे। इस उपसर्ग को दूर करनेवाला कोई है विश्व में, तो मात्र निज का भाव है। स्वभावोपलब्धि ही साधन है। सिरदर्द होने लग जाए तो वैद्य दवा दे सकता है, बेटा सिर दबा सकता है, परन्तु संक्लेशता होने लग जाए तो न वैद्य दवा दे पायेगा न बेटा दबा पायेगा। उसके लिए कोई वैद्य होगा तो निज का परिणाम ही होगा।

संक्लेशता से कैसे रक्षा हो? जितने भवन आपने स्थापित किये हैं, मकान में खिड़कियाँ भी हैं, गर्मी लगती है तो खिड़की खोल लेते हो और ठण्ड लगे तो खिड़की बंद कर लेते हो। ये मकान की खिड़कियाँ शरीर की मौसम से रक्षा करने वाली तो हैं, परन्तु तेरे मकान की खिड़कियाँ कुभावभावों की रक्षा करने वाली नहीं हैं। भवन से निर्वाण नहीं होता, पवित्र भावों से निर्वाण होता है। ध्यान रखना, भवनों के राग में तूने कितने प्रकार की भावनायें विकृत की हैं। इस मिट्टी का भवन मिट्टी पर रखा रह जायेगा और कुछ दिन बाद मिट्टी में ही मिल जायेगा। परन्तु हे चेतन! इस मिट्टी के भवन के राग में तूने अपने परिणामों को मिटाया है, इसका फल तुझे अवश्य भोगना पड़ेगा। वर्तमान का शरीर ही तो रख पाओगे आप भवन में। न भवन रहेगा,

न भवन में रहने वाला शरीर रहेगा, परन्तु भवन के राग में भावना विकृत करके जो कर्मास्रव किया है, उसका फल अगली पर्याय तक लेकर जायेगा।

स्वतन्त्र होकर चिंतवन करो, समझौते की कोई आवश्यकता नहीं है। असमानजाति पर्याय को तुम सुरक्षित रख पाओगे क्या? असमानजाति पर्याय से तात्पर्य हमारा शरीर है जो पौद्गलिक है। यानि स्पर्श, रस, गंध, वर्ण से युक्त है। जबकि आत्मा मेरी चेतन है। आप आत्मा के साथ जाओगे या शरीर के साथ जाओगे? आत्मा जायेगी या शरीर जायेगा? आत्मा जायेगी, शरीर नहीं जायेगा। इतना खिला-पिला रहे हो, कितनी बॉटलें तेल की लगा चुके हो, उसको लेकर नहीं जाओगे क्या? यथार्थ कहूँ, वैराग्य की बात समझाने की आवश्यकता नहीं है। परायी वस्तु समझ में आ जाए तो अभी वैराग्य होता है। परवस्तु का बोध नहीं है। यह शब्दब्रह्म भावब्रह्म बन जाए, तो आत्मबह्म प्रकट होने में देर नहीं लगेगी।

हे माँ! जब घर में किसी की नई साड़ी आती है तो आप सब निहारती हो—कैसा रंग है, कैसा कपड़ा है, कितना भाव है? ऐसे-ही हे माँ! अपने आप को निहारना कि कैसी परिणति चल रही है? कैसा रंग कौन-सी कषाय का भरा है। जब तक घर के सदस्य में भगवान् नहीं दिखेगा, तब तक भगवान की भक्ति द्रव्यक्रिया मात्र है। जब तक घर के सदस्य में भगवान् नहीं दिखता, तब तक सम्यक्त्व झलकता नहीं है। पर्यायदृष्टि से अपना संबंधी स्वीकारना, परन्तु द्रव्यदृष्टि से वह तेरा संबंधी नहीं है, जीवद्रव्य है।

जैसे पर की वस्तु 'पर' दिखती है, ऐसे-ही तुझे जिस दिन अपनी वस्तु 'पर' दिखने लगेगी, उस दिन समझना कि तुझे जैनत्व प्रकट हो गया है। जब तक निज की देह निज दिख रही है, तब तक जैनत्व भी प्रकट नहीं हुआ है। क्योंकि जैनत्व प्रकट हो जाता है, वह एकदेश जिन हो जाता है। धर्म गहरा है। धर्म के लिए क्रिया करना, धर्म के नाश के लिए क्रिया मत करना। धर्म मात्र उतना है, जितने में अकषायिक भाव है। और जहाँ काषायिक भाव का जन्म हुआ है, वह पाप ही है। जो आप मीठी भाषा बोलना जानते हो, 'क्या करूँ, महाराज! गृहस्थ हूँ।' भाव आते ही हैं। ज्ञानी! ये गृहस्थ होने से भाव नहीं आते हैं, ये कषाय से भाव आते हैं। यदि गृहस्थ होना और कषाय का आना आपने तथोत्पत्ति और अन्यथानुत्पत्ति लगा दिया तो, हे ज्ञानी! वीतरागता की अन्यथानुत्पत्ति ही रह जायेगी।

वैरागियों को वैराग्य होता है, कि रागियों को वैराग्य होता है? यदि गृहस्थ होने से राग बढ़ता है, तो बढ़ता ही रहेगा, तो वैराग्य किसको होगा? वैराग्य नहीं होगा, तो वीतरागी कौन

बनेगा? फिर सिद्ध कौन बनेगा? रागी को ही वैराग्य होता है, जो उसे चारित्रवान् बनाता है। चारित्र की पूर्णता वीतरागता को प्रकट कराती है। वीतरागता की पूर्णता अशरीरी सिद्ध परमात्मा बनाती है। इसलिए इस भाषा को बदल दीजिए कि गृहस्थ रहेंगे तो कुभाव रहेंगे। ज्ञानी! गृहस्थ रहेगा तो स्वभाव का चिंतन करेगा। गृहस्थ ही नहीं, प्रथम गुणस्थान में मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्व की मंदता में भावों की भद्रता को प्राप्त होता है। भद्र मिथ्यादृष्टि आसन्न भव्यजीव, वही देव-शास्त्र-गुरु के चरणों में पहुँचता है और प्रतिबोध को प्राप्त होकर सम्यक्त्व परिणति को प्राप्त होता है। वह सम्यग्दृष्टि जीव ही देशव्रती और महाव्रती बनता है। वही महाव्रती जीव यथाख्यात् चारित्र को प्राप्त होता है। संतुष्ट मत हो जाना कि मैं तो गृहस्थ हूँ तो मेरे तो भाव बिगड़ेंगे ही। नहीं, ज्ञानी! गृहस्थी में भाव नहीं बिगड़ते। जिसने प्रत्यक्ष अनुभव किया है, वह आपकी माया की भाषा को स्वीकार करेगा नहीं। सत्यता यह है कि गृहस्थी में ही भाव विशुद्ध होते हैं, तब मुनि बनने के परिणाम होते हैं। कीचड़ में कमल की नाल होती है, पर कमल कीचड़ में नहीं होता। ऐसे ही ज्ञानियो! जन्म राग में होता है, परन्तु मरण तेरा राग में न हो जाए, मरण तेरा वीतरागता में हो जाए, इसका नाम पंडित-पंडित मरण होता है।

हे मुमुक्षुओ! गृहस्थी में राग की कीचड़ तो होती है, लेकिन गृहस्थ कीचड़ में फँस जाएँ, यह कोई नियम नहीं होता है। गृहस्थ होना, गृहस्थी में रहना तेरा धर्म नहीं है, धर्म तो अपनी स्वजाति गुण-पर्याय को देखना है। इसलिए जीवन में यदि कुछ करना चाहते हो स्वयं के लिए, तो इन भवनों पर दृष्टि नहीं डालना, भव पर दृष्टि डालना, क्योंकि जितने आज तक नष्ट हुए हैं, नष्ट होंगे, नष्ट हो रहे हैं, वे कर्म-नोकर्म से अत्यन्त भिन्न जड़-भवनों के राग में चेतन अनुभूति से शून्य हो रहे हैं। शंका मत करना। तेरा और तेरे भाई का पृथकीकरण हुआ है तो तुम दोनों के शरीर जैसे थे वैसे आज भी हैं। परन्तु भवनों के अलग होने से दो भैया अलग-अलग रह रहे हैं। एक माँ के उदर से आए, एक भैया रोड के इस पार रह रहा है, दूसरा रोड के उस पार रह रहा है। वही गेहूँ का दाना था, वही कुएँ का पानी था; इस ईंट-चूने की दीवार के पीछे पानी गया, सो एक भैया का हो गया और दूसरी ईंट-चूने की दीवार के पीछे पानी गया, तो दूसरे भैया का हो गया।

इन बर्तनों के वर्तन ने पानी में भेद कर दिया, दोनों में भेद कर दिया। कुँए से तो पूछ लेते कि किसका पानी था? मृत्यु करना है तो कभी भी हो जायेगी। परन्तु सल्लेखना करनी है तो जो चर्या हो रही है, इसकी अनुभूति लेना पड़ेगी। जब भी तत्त्व की चर्चा होती है, तो आप कहते हो कि महाराज! यह तो मुनियों की बातें हैं। ज्ञानी! यह मुनियों की बातें नहीं हैं, यह गुनियों की बातें हैं। वे गुनने वाले चाहे श्रावक हों, चाहे मुनि हों। सल्लेखना करना है तो निर्णय दोनों को

यही लेना पड़ेगा। परिणामों की विशुद्धि बनाए बिना मिथ्यादृष्टि सम्यक्त्व को प्राप्त होता नहीं और परिणामों की विशुद्धि बनाए बिना सम्यग्दृष्टि, निर्ग्रंथ होता नहीं।

निर्ग्रंथ के लिए कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। साधु वही है, जिसे देखकर असाधु के भी साधु बनने के भाव आ जायें। असाधु के परिणाम भी एक क्षण को साधु हो जायें जिसको देखने मात्र से, वही साधु है। जब सिंह शिकार छोड़ सकता है, सिंह हाथ जोड़ सकता है, सिंह श्रावक बन सकता है जिसको देखकर, उससे बड़ा साधु क्या होगा? दो जुड़े हृदय टूटने लग जायें, इससे बड़ा असाधु जगत् में क्या होगा? ध्यान रखना, अखण्ड समाज को देखने की आँख बनाकर चलना। जब भी साधु बनो, समाज में खण्ड करने का विचार मत करना। प्राणीमात्र को अखण्ड निहारना, इसका नाम साधु है। योगी! योगी का अर्थ होता है जोड़ना और जो टूटे हृदयों को जोड़ दे, जोड़कर रखे, उसका नाम योगी है। जुड़े हृदयों को तोड़ने का विचार मत करना। पंचमकाल में कितनी-सी श्रद्धा है? देखो, इससे सुहावना समय आगे मिलनेवाला नहीं है, धीरे से निकल चलो।

हे ज्ञानियो! अशुभ भाव करोगे, अशुभ उपयोग करोगे, तो नरक आयु का बंध होगा। और शुभ भावों से स्वर्गसुख की प्राप्ति होगी और परम्परा से मोक्ष की प्राप्ति होगी। लेकिन सुख और दुःख इन दोनों के भावों को जानकर अब तुमको जैसा रुचे, वैसा करो। कुन्दकुन्द स्वामी ने कह दिया—अशुभ करोगे तो नरक जाओगे, शुभ करोगे तो स्वर्ग जाओगे। अब तुम्हें जैसा रुचे, वैसा करो। अब हमसे नहीं कह सकते कि समझाया नहीं था। बिटिया कितनी ही समझदार हो, परन्तु ससुराल जाए तो माता-पिता समझाते हैं। कोई यह न कहे कि समझाकर नहीं भेजा। खूब लड़ना सासू से—ऐसा मत समझाना। आचार्य भगवान् ने तीनों उपयोगों की चर्चा कर दी—शुभोपयोग से स्वर्ग, अशुभोपयोग से नरक, शुभ-अशुभ के माध्यम से मनुष्य। और शुभ-अशुभ का अभाव करके शुद्धोपयोग में जायेगा तो निर्वाण को प्राप्त करेगा। अब तुझे क्या अच्छा लगता है, बोल? इसका तात्पर्य यह मत कह देना कि मनमानी करो। ज्ञानी! मनमानी मत करो। फल दिखा दिया है, अब निर्णय करो।

"जैनीवृत्ति स्वेच्छाचार निरोधिनी" (छत्रचूड़ामणि)। इस भूमि पर जितने निर्ग्रंथ तपोधन विचरण कर रहे हैं—भो स्वामी! जैनीवृत्ति स्वतन्त्रता की वृत्ति तो है, परन्तु स्वच्छन्दता की वृत्ति नहीं है। यह वादीभसिंह सूरि लिख रहे हैं 'छत्रचूड़ामणि' ग्रंथ में। इसलिए कि आप स्वतन्त्र तो हो, स्वच्छंद नहीं हो। छूटे नहीं हो, आप आगम की मर्यादाओं से बंधे हुए हो। आपकी वाणी में स्वच्छंदता नहीं हो सकती, आपकी क्रिया में स्वच्छंदता नहीं हो सकती, आपके भावों में स्वच्छंदता नहीं हो सकती। और यदि स्वच्छंदता हो गई, तो हे स्वामी! ध्यान रखो, जैसे टूटी पतंग

डोर से, उसकी जो हालत होती है, वह तुम्हारी हालत हो जाएगी। तभी तक पतंग पवन में उड़ेगी, जब तक मंजा हाथ में है और मंजा कट गया तो बताओ पतंग का क्या होगा? या तो नाली में मिलेगी या झाड़ी में मिलेगी। हे योगीश्वर! आप समितियों से रहित होकर भाषण करोगे, समितियों से रहित होकर प्रवृत्ति करोगे, समितियों से रहित होकर चिंतवन करोगे, तो तुम्हारा मोक्षमार्ग का मंजा कट गया है। या तो नरक की नाली में मिलोगे या फिर तिर्यंच की झाड़ी में मिलोगे, लेकिन मोक्ष का महल मिलनेवाला नहीं है। संभलकर जीना। मुनि बनने के भाव कोई भी रखता हो, पहले सुन लेना। बनना, मात्र बनना नहीं, बनके जो रहे, वही बनना है। भैया! सुनो, निवृत्तिमार्ग जहाँ होगा, वहाँ प्रवृत्तिमार्ग होगा। परन्तु इसका दुरुपयोग मत कर लेना। अशुभ से निवृत्ति होगी तो शुभ में प्रवृत्ति होगी। इसका तात्पर्य यह मत समझना कि घर से निवृत्त होकर आए तो समाज में प्रवृत्ति मत करने लग जाना। समाज में रहना, लेकिन सामाजिक होकर मत रहना। यह मुनियों का मार्ग है, समाज में तो रहेंगे, परन्तु सामाजिक नहीं रहेंगे।

वे अशुभ परिणाम कौन-से हैं, इनको समझ लो और आज से करना बंद कर दो। हिंसा परिणाम अशुभभाव हैं। क्रोध-मान-माया-लोभ यह परिणाम अशुभ हैं। मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और पक्षपात। मेरे पक्ष के लोग, तेरे पक्ष के लोग, ऐसा भाव आया, तो अशुभ उपयोग बना। जिन-जिन को समाधि करनी हो तो आचार्यों के नाम पर क्या, चाचा और पिता के नाम पर भी नहीं लड़ना। जब आपके कर्म परिग्रह हैं, तो पर के कर्म तुझे निष्परिग्रही कैसे बना देंगे? पर के नोकर्म का राग छोड़ो।

आण्णाण मोहिदमदी मज्झमिणं भणदि पुग्गलं दव्वं।
बद्धमबद्धं च तहा जीवो बहुभावसंजुत्तो ॥23 स. सार॥

हे जीव! बद्ध-अबद्ध कर्म-नोकर्म जब तेरे निज का तेरा नहीं है। तेरी मति मोहित हो रही है, इसलिए तू पर को अपना मान रहा है। ध्रुव सत्य है, आज नहीं तो जब केवली बनोगे तब इसको तो स्वीकार करना ही पड़ेगा। महावीर का राग गौतम को केवली नहीं बना पाया, तो विशुद्धसागर का राग भी तेरी समाधि नहीं करा पायेगा, इसलिए इनका राग भी नहीं करना। वात्सल्य रखो, अनुराग रखो; राग किंचित् भी नहीं रखना। और शुद्धोपयोग में जाओगे तो अनुराग मार्ग यही है। यहाँ-वहाँ की बात करने में सार नहीं है। पक्षपात, मात्सर्य भाव, ईर्ष्या परिणाम, अहंकार और खोटे अभिप्राय, अशुभ लेश्याओं में, स्त्रीकथा, चोरकथा, राष्ट्रकथा, भोजनकथा, इन चारों कथाओं में उपयोग जा रहा है, (आज दूध नहीं मिला, आज खटाई थी, आज मिर्च ज्यादा पड़ी

थी, घी नहीं मिला) ऐसे परिणाम तुम्हारे आ रहे हैं, तो ये सब खोटे भाव हैं। इसमें उपयोग गया और वहीं आयुबंधकाल आ गया, तो उसी में कीड़ा बन गया। इसलिए इन विषमताओं से दूर रहना। वीतरागी तपोधन आहार के पश्चात् वहीं चौके में तुरन्त भोजन का प्रत्याख्यान करते हैं। अब भोजन की कोई चर्चा भी नहीं।

आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान, मनदण्ड, वचनदण्ड और कायदण्ड (मन-वचन-काय की अशुभ प्रवृत्ति करना यह दण्ड कहलाता है), माया-मिथ्या-निदान ये तीन शल्य, अहंकार/मान-बड़ाई, ऐसे परिणाम जिसके हैं, उसका नाम अशुभ उपयोग है। अब किसी से मत पूछना कौन-सा उपयोग चल रहा है?

"आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

॥ भगवान् महावीर स्वामी की जय ॥

❖ ❖ ❖

मोही जीव के भवतीर नहीं

मोह ण छिज्जदि अप्पा, दारुण कम्मं करेइ बहुवारं।
ण हु पावइ भव-तीरं, किं बहु-दुक्खं वहेदि मूढ़मदी॥63॥

अन्वयार्थ—(अप्पा) यह आत्मा **(मोह)** मोह को **(ण छिज्जदि)** नष्ट नहीं करता है **(दारुणकम्मं)** दारुणकर्म-व्रत उपवासादि **(बहुवारं)** अनेक बार **(करेइ)** करता है **(हु)** निश्चय से वह **(भव-तीरं)** संसारसमुद्र का किनारा **(ण पावदि)** नहीं पाता, फिर **(मूढ़मदी)** यह मूर्ख **(बहुदुक्खं)** अनेक दु:ख **(किं वहेदि)** क्यों उठाता है?

भव्य बन्धुओ!

अन्तिम तीर्थेश भगवान् वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना, जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति। आचार्यप्रवर भगवान् कुन्दकुन्द स्वामी ग्रंथराज रयणसार जी में श्रमण और श्रावक दोनों धर्मों की व्याख्या करते हुए समझा रहे हैं कि वस्तु में विकार नहीं है, वस्तु में अविकार नहीं है। जो वस्तु विकारभूत दिख रही है, वह वस्तु का परिणमन दिख रहा है, परन्तु जिस विकारदृष्टि से तू समझता है, वह विकार वस्तु नहीं है। निज विकारभूत वस्तु है। पर को विकृत करने का विकार वस्तु में नहीं है। जिन विषयों को हम समझ चुके हैं, उन्हें समझने की कोई आवश्यकता नहीं है। वही विषय, वही कषाय, वही राग-द्वेष, वही काम-क्रोध। नया कुछ किया कहाँ है? जीवन का नया दिन वह होगा जब यह जीव विषय-कषाय से रिक्त होकर निजस्वभावभूत जिनलिंग को प्राप्त करते हुए, जिन होने के पुरुषार्थ में जिस दिन लगेगा।

वस्तु निज विकार में विकारीभूत है, पर के परिणामों को विकृत करने का कोई गुण वस्तु में नहीं है। मोही जीव, मोह से मोहित हुआ अपने ही विज्ञानघन ज्ञान गुण को विकृत करके पर में विकार खोज रहा है, जबकि पर में विकार तेरा किंचित् भी नहीं है। भीतर विकार परिणाम न हों, तो बाहर का द्रव्य न मोह उत्पन्न कराता है, न राग उत्पन्न कराता है। बहुत सहजता में पूछ रहा हूँ, पाँच इन्द्रियों को आप घर में छोड़कर आए हो या साथ में लेकर आए हो? द्रव्येन्द्रियों-भावेन्द्रियों को लेकर आए हो या छोड़कर आए हो? यदि छोड़कर आए होते, तो आ भी कैसे पाते? प्रत्येक इन्द्रिय के दो-दो काम हैं। द्रव्येन्द्रिय-भावेन्द्रिय दोनों तुम्हारे साथ आई हैं। लेकिन वस्तुस्वरूप को निहारिये, उपयोग की धारा बदलकर आओ। जिस इन्द्रिय में विक्रिया होती है, वह इन्द्रिय भी तेरे साथ आई है।

भैया! मनुष्य के अंदर भी पंचमकाल में वैक्रियक शरीर है। विक्रिया दो प्रकार की होती है—पृथक् विक्रिया, अपृथक् विक्रिया। विक्रिया का तात्पर्य है फैलाव /वृद्धि। आपके शरीर में ऐसे अंग हैं जिनमें विक्रिया होती है। उस इन्द्रिय को भी आप साथ में लेकर आए हो, लेकिन वह इन्द्रिय भी विकार को प्राप्त नहीं हो रही है। बात क्या है? विकार्य तभी होता है, जब विकार होता है। विकार न हो, तो विकार्य कभी होता ही नहीं है। इन्द्रियों में विकार तभी आते हैं, जब भावों में विकार आ चुके होते हैं। भाव विकृत न हों, तो इन्द्रियों में भी विकार आते नहीं हैं। वस्तु आपके लिए विकार का कारण नहीं है, दृष्टि ही तेरी विकार का कारण है। निमित्तों को नाश करने की बात मत करना। जो-जो निमित्त हैं, वह निमित्त मात्र नहीं हैं, उपादान भी हैं। वे तीर्थेश परमेश्वर समवसरण में विराजे हैं। वे पर के लिए सम्यक्त्व के साधन हैं, धर्म के साधन हैं, परन्तु स्वयं धर्म ही हैं। जो आपके लिए अशुभ निमित्त बन रहा है, स्वयं में वह निमित्त अपने उपादान में शुभ ही है।

एक युवा श्रीजिनालय में प्रविष्ट हुआ। रविव्रत का उपवास किए एक कन्या अरिहंत के पादमूल में जाप कर रही है। विकृत भावों से युक्त अज्ञानी पहुँच गया और वह कहता है कि यह कन्या न होती तो मेरे भाव विकृत न होते। इस बाला के कारण मेरे में बुरे भाव आ गए। हे बाल! जिसे तू अपना अशुभ निमित्त बोल रहा है, उस कन्या को मालूम ही नहीं है कि मेरे इस नोकर्म को निहार कर कौन-सा पापी अपने भावकर्म को करके द्रव्यकर्म को बुला रहा है। मेरा नोकर्म उसके द्रव्यकर्म बुलाने में निमित्त है, जिसका भावकर्म विपरीत है। और जिसका भावकर्म प्रशस्त है, एक निर्ग्रंथ योगी कह रहा है, धन्य हो कन्या! इस बाल अवस्था में सात उपवास करके धर्म की साधना कर रही है। कन्या किसके लिए क्या निमित्त है? जो तेरे लिए निमित्त दिख रही थी, वह अपने स्व उपदान में विराजी है। अपने उपादान को छोड़कर जगत् में कोई द्रव्य है ही नहीं। विकार कन्या में नहीं था। विकार कन्या में होता तो वह माला क्यों फेरती? तेरी ओर देखती। हे पुरुष! तू कन्या को भगाने की चेष्टा मत कर। तू कन्या के घात की भावना करके कर्म का बंध मत कर। तू तो मात्र अपनी दृष्टि को बदल ले। भैया! विश्वास रखना, भरतक्षेत्र से विदेहक्षेत्र में इस तन को उठाकर रख देना सरल है, परन्तु दृष्टि को पलट लेना बहुत कठिन है। खुली आँखों की सीमा तो बहुत न्यून है, परन्तु बंद आँखों की सीमा असीम है। ये आँखें फोड़नेवाला दर्शन नहीं है, यह दृष्टि को मोड़नेवाला दर्शन है।

इन्द्रियों में पाप नहीं है। इन्द्रियाँ पाप करती नहीं हैं। इन्द्रियाँ तो चौबीस घण्टे तेरे साथ रहती हैं। वे इन्द्रियाँ कहती हैं कि मुझे दोष मत दो। जैसे तेरे पिता ने तुझे दस का नोट दिया है, वैसे-ही मैं तुझे मिला हूँ। अब तू चाहे तो दस रुपये का श्रीफल लेकर अरिहंत के पादमूल में

चढ़ा सकता है, तब तू अरिहंत का भक्त कहलायेगा और तू चाहे तो मदिरालय में जाकर बोतल खरीद सकता है। मैं तो तेरे हाथ में हूँ, मेरे लिए दोष मत देना। तू चाहे तो निर्ग्रंथ मुनि को आहार दे सकता है मेरा उपयोग करके और तू चाहे तो वैश्यालय जा सकता है। मुझे दोष मत देना। मैं तो कागज के नोट के समान हूँ। तेरे हाथ में हूँ, तू जैसा चाहे उपयोग कर। दस के नोट में पुण्य है या पाप? न पुण्य है न पाप। तो फिर इन्द्रियों में पुण्य-पाप कैसे दिखने लग गया तुझे? जैसे दस के नोट में पुण्य-पाप नहीं है, वैसे-ही इन्द्रियों में पुण्य नहीं है, पाप नहीं है। इन्द्रियाँ कर्ता-साधन नहीं हैं, इन्द्रियाँ करण-साधन हैं। आँख ने देखा, कि आँख से देखा? आँख से देखा। ज्ञानी! करण साधन हेतु अर्थ में जाता है।

कर्त्ता ने, कर्म को, करण से, संप्रदान के लिए, अपादान से, ने, सम्बन्ध-का, की, के, अधिकरण-में, पर, सम्बोधन-हे, भो, अरे। इतना तो पढ़े हो न? तो आइये फिर से। अधिकरण कर रहा है-ने, से, के द्वारा। यह करण-साधन बोल रहा है। आँख से देखा है।

हे ज्ञानी! अनादिकाल से तू मोह को छोड़ नहीं पा रहा है। मोह तो दूर, मोह के साधन जो हैं उनको भी छोड़ने का विचार तक नहीं करता है। यह भी नहीं सोचता है कि जब मोह ही मेरा नहीं है, तो मोह के साधन मेरे कैसे हो सकते हैं? तेरे संसार में भटकने का एकमात्र कारण तेरा मोह ही है। मोह तो राजा है, मन उसका मंत्री है एवं इन्द्रियाँ ही सैनिक का कार्य करती हैं। यदि इस भवसागर से पार होना चाहता है तो मोह को विगलित करने का प्रयास कर।

"आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

॥ भगवान् महावीर स्वामी की जय ॥

❖ ❖ ❖

मात्र भेष /लिंग से कल्याण नहीं

धरियउ बाहिर-लिंगं, परि-हरियउ बाहि-रक्ख-सोक्खं हि।
करियउ किरिया-कम्मं मरियउ जम्मियउ बहि-रप्प जीवो॥ 64॥

अन्वयार्थ—(बहि-रप्प जीवो) बहिरात्मा जीव **(बाहिर लिंगं)** बाह्य लिंग /बाह्य भेष मात्र को **(धरियउ)** धारण करके **(बाहि-रक्ख-सोक्खं)** इन्द्रियजन्य बाह्य सुख को **(हि)** भी **(परि-हरियउ)** छोड़कर **(किरिया-कम्मं)** क्रियाकाण्ड-व्रताचरण आदि **(करियउ)** करता हुआ **(जम्मियउ मरियउ)** जन्म-मरण करता रहता है।

मिथ्यात्व के नाश बिना मोक्ष नहीं

मोक्ख-णिमित्तं दुक्खं, वहेदि परलोय-दिट्ठि तणुदंडी।
मिच्छाभाव ण छिज्जदि, किं पावदि मोक्ख-सोक्खं हि॥ 65॥

अन्वयार्थ—(परलोय-दिट्ठि) परलोक पर दृष्टि रखनेवाला **(तणुदंडी)** शरीर को कृश करनेवाला /अनेक प्रकार के कायक्लेश करनेवाला बहिरात्मा जीव **(मोक्ख-णिमित्तं)** मुक्ति के निमित्त **(दुक्खं वहेइ)** दु:ख को सहन करता है; परन्तु **(मिच्छाभाव ण छिज्जइ)** मिथ्याभाव /मिथ्यात्व का नाश नहीं करता है तब वह **(किं)** क्या **(हि)** निश्चय से /वस्तुत: **(मोक्ख-सोक्खं)** मुक्तिसुख को **(पावइ)** प्राप्त कर सकता है? नहीं।

बामी को पीटने से क्या लाभ?

ण हु दंडदि कोहादिं, देहं दंडदि कहं खवदि कम्मं।
सप्पो किं मुवदि तहा, वम्मीए मारदे लोए॥66॥

अन्वयार्थ—बहिरात्मा जीव **(कोहादिं)** क्रोधादि अर्थात् क्रोध, मान, माया, लोभ, राग-द्वेषादि को **(ण हु दंडदि)** दण्डित नहीं करता **(देहं दंडदि)** शरीर को दण्डित करता है तो वह **(कहं)** किस प्रकार **(कम्मं खवदि)** कर्मों को क्षय करेगा **(तहा)** जैसे **(लोए)** लोक में **(वम्मीए)** बामी अर्थात् सांप के बिल को **(मारदे)** मारने पर **(किं)** क्या **(सप्पो मुवदि)** सांप मरता है?

भव्य बन्धुओ!

अन्तिम तीर्थेश भगवान् वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना, जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति। आचार्यप्रवर भगवान् कुन्दकुन्द स्वामी

ग्रंथराज रयणसार जी में श्रमण और श्रावक उभय धर्मों की व्याख्या करते हुए समझा रहे हैं, अंतरंग में परिणामों /भावों की विशुद्धि की सत्ता जहाँ है, वहाँ मोक्षमार्ग है। परिणामों की विशुद्धि का जहाँ अभाव है, वहाँ दीर्घसंसार है। देहधर्म साधन है, देहधर्म साध्य नहीं है। साध्य की सिद्धि के लिए शारीरिक साधना अनिवार्य है, परन्तु शारीरिक साधना मात्र मोक्षमार्ग की पूर्णता नहीं है। जब तक परिणामों में निर्मलता नहीं आ रही है, कोटि-कोटि बहिरंग साधना कर लेना, कोटि-कोटि पूजन-विधान कर लेना, परन्तु अंतरंग विशुद्धि के अभाव में आप चाहो कि उत्कृष्ट सुख को (स्वर्ग को) प्राप्त कर लूँ, तो उत्कृष्ट स्वर्ग भी मिलने वाला नहीं है।

स्वर्ग शब्द से संतुष्ट हो जाना, यह अज्ञानियों की पहली पहचान है। स्वर्ग का एक भेद नहीं है। चारनिकाय के देव हैं और चारनिकाय के देवों में देवदुर्गति भी होती है। भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिष देव बन गए और उनमें भी किल्विषक, आभियोग, अनीक जाति के देव हो गए, सौधर्म इन्द्र ने आदेश दिया कि आपको हाथी बनकर आना है तो हाथी बनकर खड़े हैं। जो सूर्य विमान दिख रहा है आपको, इसमें सिंह के आकार के, घोड़े के आकार के, बैल के आकार के देव जुते हैं। नाम को हैं देव और काम तिर्यंचों-जैसे चल रहे हैं। अनीक जाति के देव सेना का काम कर रहे हैं। आभियोग जाति के देव, जैसे नगर के कुछ नागरिक नगर की सीमा के बाहर भी रहते हैं, जिनका स्पर्श हो जाए तो आप स्नान करते हो। ऐसे ही स्वर्ग में देव होकर भी जो सीमा के बाहर रहते हैं, ऐसे देव कौन बनते हैं? ध्यान दो। जिन्होंने धर्मक्षेत्र में आकर भी परिणामों की विशुद्धि का हनन किया हो।

देह पर हुए उपसर्ग सहन भी कर लिए, परन्तु परिणामों को नहीं सम्हाल पाए। शीत-उष्णता को सारे प्राणी सहन करते हैं, लेकिन कर्म की निर्जरा कोई-कोई ही कर पाते हैं। निर्जरा करने के काल में भी जीव बंध कर लेता है। उपवास तूने किया और तेरा यश:कीर्ति नामकर्म का उदय नहीं था, सारे उपवास करने वालों का सम्मान हो रहा था और तुझे नहीं बुलाया गया। दस दिन तो तू भूखा रहा और ग्यारहवें दिन सम्मान के नाम पर तूने अपना अपमान समझ लिया। निर्जरा के स्थान पर कर्म का तीव्र बंध कर लिया। देखो, अपने सोच से आज मत सुनना, शौचधर्म के सोच से सुनना। उपवास किया है जिस जीव ने, आप सम्मानों के ढेर लगाते हो, परन्तु ध्रुव सत्य यह है कि उसकी दस दिन की साधना आपने ग्यारहवें दिन छीन ली। पाँच वाले का नाम पहले आ गया, दस वाले का बाद में आया। उस समय में आपको पता नहीं है, यह परिणामों की दशा जो है, वह अत्यंत विचित्र है। जो छींट के कपड़े हैं, इनमें चित्र बहुत कम हैं, परन्तु परिणामों के चित्रों की विचित्रता अनेक प्रकार की है। सबको सुधारने की बात तो कर रहे हो, मैं देश/समाज को सुधारकर रहूँगा। अरे ज्ञानी! जो सुधारने की बात कर रहा है, उसे ही सुधार दो, तो दुनियाँ को सुधारने की कोई आवश्यकता नहीं। क्या जगत् का ठेका लेकर बैठ गए हो? वस्तुस्वरूप समझो, विकल्प मत करो।

समकित भाव है तो कर्मनिर्जरा है और समकित भाव नहीं है तो कर्मनिर्जरा नहीं है। इसलिए कुन्दकुन्द भगवान् कह रहे हैं—हे जीव! जो जगत् को सुधारने की बात कहलवा रहा है, उसे एक बार तो देखो, वह है कौन? यदि उसे ही व्यवस्थित जान लिया सारे जगत् ने, तो सारे जगत् की व्यवस्था स्वयमेव बन गई। वस्तु अनवस्थित नहीं है, छहों द्रव्य व्यवस्थित हैं। छहों द्रव्यों के अंदर जो परिणमन चल रहा है, वह भी निज स्वभाव से व्यवस्थित है। परन्तु हे जीव! तेरे परिणामों की दशा ही अनवस्थित है। अहो, जगत् के कर्त्ताओ! आपने अपने आपको नहीं बनाया। पारिणामिक भाव की उत्पत्ति नहीं होती और छहों द्रव्यों में पारिणामिक भाव होता है। वस्तु का कभी जन्म नहीं हुआ, जन्म व्यक्ति का हुआ है। वस्तु, व्यक्ति का भेद समझ में आ जाएगा तो राग-द्वेष अभी नष्ट होता है। वस्तु में आपका राग नहीं है। वस्तु में आपका द्वेष नहीं है। अहो! निर्ग्रंथ तपोधन चौबीस घण्टे जीते किसमें हैं? व्यक्ति में जो जीएगा, वह तीनकाल में मुनि बनकर रह नहीं पाएगा और वस्तु में जो जीएगा, वह बाहर जा नहीं पाएगा।

जब तक आत्मा में मोह का छेद नष्ट नहीं होता, तब तक दारुण दुःख को प्राप्त होता है। सुनिए, यदि लेखनी देखते हो तो व्यक्ति दिखता है और पुद्गल देखते हो तो वस्तु दिखती है। लेखनी में वस्तुत्व गुण है। जो व्यक्ति को देखता है तो उसमें राग-द्वेष दिखाई देते हैं। यदि वस्तु को देखें तो भैया! सत्य बताना, यह द्रव्य किसका है? भैया, तेरी आत्मा को तेरी माँ ने जन्म दिया है या तेरे पिता ने जन्म दिया है? बालक के जनक भी हैं, जननी भी हैं, क्योंकि व्यक्ति है। उसमें अनेक लोगों का राग भरा हुआ है। जो व्यक्ति है, उसमें अनेक लोगों का द्वेष भी है। जो बिठाल रहे हैं, वे व्यक्ति को देख रहे हैं और जो भगा रहे हैं, वे व्यक्ति को देख रहे हैं। जो तटस्थ निहार रहा है, वह वस्तु को देख रहा है। वस्तु में किसी का राग-द्वेष नहीं होता।

वस्तु पर श्रद्धान करके सम्यग्दृष्टि होता है। ये जीवद्रव्य है, यह जीवपदार्थ है, यह जीवास्तिकाय है, जीवतत्त्व है। और "तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं।" जिन्होंने समझ लिया कि 'तत्त्वार्थ सूत्र' में जो "तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शन" लिखा है, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। नहीं भैया, वह सम्यग्दर्शन की 'व्याख्या' है। सम्यग्दर्शन तो यह है कि अपने घर के व्यक्तियों में तुम वस्तु देखना प्रारम्भ कर दो, इसका नाम सम्यक्त्व है। हे ज्ञानियो! तभी तक अब्रह्म है, तभी तक कुशील है, जब तक व्यक्ति को देखेगा। और वस्तु को देखेगा तो नारी नहीं है, नर नहीं है, नपुंसक नहीं है। "अस्तिपुरुष चिदात्मा", एकमात्र चैतन्य आत्मा है। मुनि बनकर वही रह पायेगा, जो व्यक्ति देखना बंद कर देगा। कोटि-कोटि जन्म की तपस्या एक पलड़े पर रख देना, फिर भी एक निमेष मात्र झलक आ गई वस्तु को देखने की, तो उस जीव की अर्द्धपुद्गल परावर्तन संसार की सीमा बंध गई। इससे अधिक संसार में नहीं भटकेगा।

माताओ ! बेटे को देखकर आँखें लाल मत करना। तुम उसके देह के निमित्त मात्र हो, उसकी आत्मा के तुम निमित्त मात्र भी नहीं हो। क्योंकि जो जन्म हुआ है आपकी व्यावहारिक दृष्टि से, रज-वीर्य के संयोग से उसके शरीर की उत्पत्ति तो हुई है, लेकिन आत्मा की उत्पत्ति का कर्त्ता वह स्वयं भी नहीं है। मैं अपना कर्त्ता नहीं हूँ। मैं राग-द्वेष का, प्रशम आदि भावों का कर्त्ता तो हो सकता हूँ, परन्तु जिसमें राग-द्वेष होते हैं, जिसमें वैराग्य होता है, जिसमें वीतरागता होती है, उसका कर्त्ता मैं भी नहीं हूँ। उसका कर्त्ता अरिहंत, सिद्ध भी नहीं हैं।

आप वस्त्रों में अवश्य बैठे हो, इस समय निर्ग्रंथ योगी की चिंतन की धारा को सुन रहे हो, कि मुनि बनकर करते क्या हैं चौबीस घण्टे। जो रसमलाई, बालूशाही, गुलाबजामुन में आनंद है, वे आनंद कुछ करके पा पाते हो। मुख चलाना पड़ता है, योग का स्पंदन करना पड़ता है, तब कहीं एक क्षण को आनंद आता है। परन्तु जो आप अनुभूतियाँ ले रहे हो, कुछ भी नहीं करना पड़ रहा है, तब भी आ रहा है, वह किसका आनंद है? वही अतीन्द्रिय आनंद है। इस अनुभूति में जो प्रवेश कर लेता है, उसे जगत् की सारी अनुभूतियाँ गौण नहीं, मिथ्या दिखाई देती हैं। कोटि-कोटि द्रव्य का व्यय कर लेना, दान दे देना, इन सबसे इन्द्रियों की चंचलता तो मिट सकती है, परन्तु जो शांत, स्वांत आनंद है, वह द्रव्य के दान से नहीं होता है, द्रव्य की अनुभूति से होता है। जो दिख रहा है, वह व्यक्ति है। जो वस्तु है, वह अचाक्षुष है। व्यक्ति चाक्षुष है, व्यक्ति में वर्तन है। वस्तु जो है, पर से अवर्तनशील है। व्यक्ति पर में परिणमनशील हो रहा है, परन्तु वस्तु पर से अपरिवर्तनशील है।

ज्ञानी! वस्तु तो वस्तु है। व्यक्ति तो व्यक्ति है। जितने बंध हो रहे हैं, व्यक्ति के कारण हो रहे हैं, वस्तु के कारण नहीं हो रहे हैं। व्यक्ति में पहचान है, व्यक्ति में लांछन है। वस्तु की कोई पहचान नहीं है। वो तो "जो है, सो है"। व्यक्ति आ जाए तो किसी घर में थाली बजती है। व्यक्ति चला जाए तो आँखों से नाली बहती है। यदि वस्तु को देखे, तो न थाली बजे न नाली बहे।

यह आत्मा जब तक मोह को नहीं छेदती, तब तक अनंत, कष्टतम कष्ट को भोगती है। भैया! जिन पर मोह है, वे तेरे पर मोही हैं नहीं। हे मोही! जगत् के पाँच द्रव्य निर्मोही हैं। और तू कैसा मूढ़ मोही है कि निर्मोहियों पर भी मोह कर रहा है? किसी भवन, भूखण्ड ने यह नहीं कहा कि "मैं तेरा हूँ।" जो पर को अपना स्वीकारे, वही महापागल है। जब तक मोह का छेद नष्ट नहीं हो रहा है, ज्ञानियो! वस्तु ने दु:ख नहीं दिया है। व्यक्ति को व्यक्ति के राग ने दु:ख दिया है। पर की नोकर्म की अवस्था को देखकर इन आँखों ने कितने पाप कर डाले। देखा तो क्या देखा? नोकर्म को ही तो देखा और नोकर्म को देखकर द्रव्यकर्म का बंध कर लिया और द्रव्यकर्म को बुलाकर अपने आप को नरक में पटक डाला। हे लंकेश! सीता के रूप की जगह उसके

स्वरूप को देख लेता तो लक्ष्मण के बाणों से मारा नहीं जाता। दुनियाँ कहती है कि लक्ष्मण के बाणों से लंकेश की मृत्यु हो गई। परन्तु ध्रुव सत्य है कि रावण को किसी ने नहीं मारा, वह तो रावण की देह को मारा था। लेकिन रावण तो उसी दिन मर चुका था जिस दिन काम के बाण ने उसे मारा था। इस बात को निकाल देना आज से, कि मुझे दु:ख देने वाला कोई भिन्न पुरुष है। तेरे अभिन्न आत्मा की विभाव परिणति ही तेरे दु:ख का कारण है। जितने यहाँ गरीब बैठे हैं, मैं एक मिनट में सबकी गरीबी दूर कर सकता हूँ। भैया! जिनके कपड़े फटे हैं, वे गरीब और जिनके कपड़े सुन्दर हैं, वे अमीर हैं। सब कपड़े उतारकर फेंक दो, तो सब समान हैं। परवस्तु तो पर है। व्यक्ति पर है। वस्तु को देख लो, व्यक्ति को हटा दो, तो सब समान हैं। स्वरूप-अस्तित्व की दृष्टि से हम भिन्न हैं, सादृश्य-अस्तित्व की दृष्टि से हम सब अभिन्न हैं।

ज्ञानी! कोई यह सोचे कि मैंने बाह्य रूप से मुनि, आर्यिका, क्षुल्लक आदि का वेश धारण कर लिया है तो मेरा उद्देश्य पूरा हो गया, मेरा मोक्षमार्ग पक्का हो गया। तो आचार्यभगवान् कह रहे हैं कि मात्र बाह्य वेश ही मोक्ष का कारण नहीं है। यह सत्य है कि इसके बिना मोक्षमार्ग बनता भी नहीं है। मात्र बाह्य वेश धारण करके कितना भी कठोर संयम धारण करो, व्रत नियमों का पालन करते रहो, लेकिन संसार छूटनेवाला नहीं है। आचार्यभगवान् कह रहे हैं कि जो सम्यग्दर्शन से शून्य है, वह बहिरात्मा है। उसके तप, जप, कायक्लेश आदि व्यर्थ हैं। वह दोनों तरफ से जा रहा है अर्थात् संयम, व्रतादि का पालन भी कर रहा है, वर्तमान के सुखों को भी छोड़ रहा है, पर जन्म-मरण से छुटकारा नहीं पा पा रहा है। अत: संसार से छूटने के लिए मिथ्यात्व को छोड़ना आवश्यक है।

अज्ञानी जीव को जब क्रोध आता है तो वह शरीर को दण्डित करता है। जब उसे काम-कषाय सताती है तो शरीर को दण्डित करता है। जब उसे राग, द्वेष, लोभ आता है तो शरीर को विभिन्न माध्यमों के द्वारा कष्ट देता है। ग्रीष्म की धूप में शरीर को तपाना, पंचाग्नि तप तपना आदि क्रियायें करता है। इन विभाव-भावों को उत्पन्न करने के जो कारण हैं, उनको दूर करने का उपाय करता नहीं है। उसकी तो वही स्थिति है कि सांप के बिल को नष्ट करके सोचता है कि मैंने सांप को नष्ट कर दिया। मात्र कायक्लेश करने से कर्मों का क्षय होना सम्भव नहीं है।

"आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

॥ भगवान् महावीर स्वामी की जय ॥

❖ ❖ ❖

संयमी कौन

उवसम-तव-भाव-जुदो, णाणी सो ताव संजदो होदि।
णाणी कसाय-वसगो, असंजदो होदि सो ताव॥67॥

अन्वयार्थ—जो **(णाणी)** ज्ञानी **(उवसम-तव-भाव-जुदो)** उपशम और तप-भाव से युक्त है **(सो)** वह **(ताव)** तब **(संजदो)** संयमी **(होदि)** है; **(णाणी)** ज्ञानी **(कसाय-वसगो)** जब कषाय के वश हो गया है **(ताव)** तब **(सो)** वह **(असंजदो)** असंयत **(होदि)** होता है।

मात्र ज्ञान कर्मक्षय का हेतु नहीं हो सकता

णाणी खवेदि कम्मं णाण-बलेणेदि बोल्लदे अण्णाणी।
वेज्जो भेसज्ज-महं, जाणे इदि णस्सदे वाही ॥68॥

अन्वयार्थ—(अण्णाणी) अज्ञानी **(इदि)** इस प्रकार **(बोल्लदे)** बोलता है कि **(णाणी)** ज्ञानी **(णाण बलेन)** ज्ञान के बल से **(कम्मं)** कर्मों को **(खवेदि)** क्षय करता है। **(अहं)** मैं **(भेसज्जं)** औषधि को **(जाणे)** जानता हूँ **(इदि)** इतना मात्र कहने से क्या **(वेज्जो)** वैद्य **(वाही)** व्याधि को **(णस्सदे)** नष्ट कर देता है? नहीं।

भव्य बन्धुओ!

अन्तिम तीर्थेश भगवान् वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना, जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति। आचार्यप्रवर भगवान् कुन्दकुन्द स्वामी ग्रंथराज रयणसार जी में श्रमण और श्रावक उभय धर्मों की व्याख्या करते हुए समझा रहे हैं कि—मोक्ष की कामना है अंतस् में, कर्मों को विगलित करने की भावना है, तो अंतरंग के कालुष्य को मिटाने की आवश्यकता है। कर्म कोई ऐसी वस्तु नहीं है जिसको हाथों से उठाकर फेंक दो। आत्मप्रदेश से कर्मप्रदेशों का संश्लेष सम्बन्ध है, इसका नाम बन्ध है। और बन्ध को हम एकत्व-विभक्त की दृष्टि से निहारते हैं तो भिन्नत्व देखते हैं। उपचरित असद्भूत व्यवहारनय से देखते हैं तो दोनों में अभिन्नत्व है। इस अभिन्नत्व को स्वीकारना पड़ेगा पहले। जो अभिन्नत्व को नहीं स्वीकारेगा, उसका लोक और परमार्थ दोनों नष्ट होते हैं। सजातीय-विजातीय उपचरित-असद्भूत-व्यवहारनय से देश, दुर्ग, राष्ट्र आपके हैं। विजातीय उपचरित-असद्भूत -व्यवहारनय से वस्त्र सोना-चाँदी-घर-मकान आपके हैं। सजातीय उपचरित-असद्भूत-व्यवहारनय से स्त्री-पुत्र आदि आपके हैं। लेकिन शुद्ध निश्चयनय से रागभाव भी तेरा नहीं है।

ये स्त्री-पुत्र-भवन तेरे कहाँ से हैं? परमशुद्ध निश्चयनय से कौन किसके हैं, इस भाव का भी अभाव है। आचार्य महाराज कह रहे हैं—मोह की जो दशा है, वह मद से भी महामदभूत है। मदिरा के मद को उतरने में देर नहीं लगती, लेकिन मोह के मद को उतारने के लिए कोटि-कोटि भव लग जाते हैं। तीर्थंकर-जैसी आत्मा को मोह के कारण दस-दस भव मुनिराज बनना पड़ गया, तो सामान्य जीव की क्या बात है? रस देना चाहें तो रस है और नीरस करना चाहें तो नीरस है। नीरसी भाव की ओर दृष्टि डालना है तो आपका नीरसपना भी है, सरसपना भी है।

मोह कोई भरता नहीं, मोह किसी में भरा नहीं। मोह उत्पन्न करने की सामर्थ्य इस आत्मा की अशुद्ध उपादान शक्ति है। और जहाँ मोह की, राग की धारा बढ़ेगी, विश्वास रखना, दूसरे पक्ष में द्वेष भी खड़ा होगा। यदि राग-द्वेष दोनों के मध्य में आप जी रहे हो, तो मोक्षमार्ग अभी बहुत दूर है। आचार्यभगवान् स्पष्ट कह रहे हैं—रत्नत्रय का मार्ग और संसार का मार्ग, इन दोनों में कोई समझौता नहीं है। समझौता जहाँ लोग कर लेते हैं, वे दोनों आनंदों से शून्य हो जाते हैं। मोक्षमार्ग और संसारमार्ग इन दोनों में अत्यंताभाव है, फिर भी दोनों में समझौता करके जीना चाहते हैं। जब-जब विश्व में अनेक दर्शनों ने जन्म लिया और समझौतावादी दर्शन हुए हैं, वे दोनों तरफ से पिटे हैं। जैनियों के बीच में एक यापनीय संघ हुआ। उस संघ ने भेष दिगम्बरों का धारण किया और सिद्धांत श्वेताम्बरों के बनाए। सो बेचारे कहीं के नहीं बचे, अंत में दिगम्बर ध र्म ही स्वीकार करना पड़ा। स्त्रीमुक्ति, केवलीभुक्ति यापनीय का भी सिद्धान्त था। शाकटायन नाम के जो साधु हुए, जिसने शाकटायन व्याकरण लिखा है, उस जीव ने स्त्रीमुक्ति, केवलीभुक्ति की तर्कसहित सिद्धि की है। आचार्य प्रभाचंद्र स्वामी ने आलौकिक ग्रंथ 'प्रमेयकमलमार्तण्ड' में स्त्रीमुक्ति और केवलीभुक्ति का ऐसा खण्डन किया है कि सोचना पड़ गया। हर सदी में एक महान् योगी हुआ और उसने हमारे धर्म और संस्कृति की रक्षा की है।

मोह के लिए मोक्षमार्ग में कोई स्थान नहीं है। मोक्षमार्गी के लिए मोह का कोई स्थान नहीं है। दोनों स्थितियाँ भिन्न हैं। अरिहंत के राग को राग कह दिया हो जिस दर्शन में, सिद्ध के राग को राग कह दिया हो जिस दर्शन में, आचार्य, उपाध्याय, साधु के राग को राग कह दिया हो जिस दर्शन में, अनुराग को भी राग कह दिया हो जिस दर्शन में, वहाँ विषय -राग को आत्मा के कल्याण का साधन कैसे बनायेंगे? किंचित् भी नहीं। वीतरागभाव की प्राप्ति चाहिए, तो मोहभाव का विसर्जन करना होगा। मोहभाव का विसर्जन होगा, तभी चारित्र की तथोत्पत्ति और मोहभाव का विसर्जन नहीं है, तो चारित्र की अन्यथानुत्पत्ति। इस विश्व में संकट का, क्लेश का कोई मुख्य बिन्दु है, उसका नाम राग है। जितने जीव बिलखे हैं लोक में आज तक, वे राग के पीछे बिलख रहे हैं।

जब तू सोलह वर्ष का था, तब तुझे माता-पिता मात्र के प्रति अनुरागभाव था। यहाँ तक कि तेरे घर में क्या हो रहा है, इसका भी तनाव तुझे नहीं था। अपनी भी इतनी चिंता नहीं थी। लेकिन जैसे ही आयु वृद्धि को प्राप्त हुई और आप सोच रहे थे कि सुख बढ़ेगा, हे ज्ञानी! सुख बढ़ा कि दु:ख बढ़ गया? बहुत सारे दु:ख तो तू बुद्धिपूर्वक लेने गया था। ये कहाँ के संकट आ गए? जिनको तूने जाना नहीं था, पहचाना नहीं था, एक दिन सम्बन्ध बिठ गया और दूसरे ही दिन ससुर साहब ऊपर चले गए तो तुझे वहाँ चेहरा बनाकर बैठना पड़ गया। ये क्या हो गया? जितने यहाँ जीव विराजते हैं, इस सद्भाव की सत्ता के साथ अभाव की सत्ता का भी चिंतन कर लीजिए, तो अभी सुख मिलता है आपको। दो दिन पहले मेरे पास कुछ भी नहीं था और एक दिन पहले, अभी आया और आज ही चला गया, तो रोना प्रारम्भ हो गया। ज्ञानी! उस दिन को निहारो जब कुछ भी नहीं था। हे ज्ञानी! दु:ख था कहाँ? यही जीव की अज्ञानदशा है।

जो वस्तु साथ थी नहीं, जो वस्तु साथ रहेगी नहीं, उसका तू कर्त्ता-भोक्ता बना हुआ था, इसलिए वेदना से व्यथित हो रहा है। जितने तेरे साथ रहते हैं, वे तेरे साथ जानेवाले हैं क्या? पर जितनों का साथ किया है, उन्होंने तेरे समय का ही नाश किया है। क्या भविष्य में धोखा देंगे, मैं नहीं जानता हूँ। परन्तु इतना अवश्य जानता हूँ कि आप किसी से मिले थे, दो बातें की थीं, वो जो समय था, आपके आयुकर्म के निषेक थे, उसको तूने दिए कि नहीं? ज्ञानावरणी कर्म का क्षयोपशम गया, वीर्यांतराय कर्म का क्षयोपशम भी गया। प्रत्येक इन्द्रिय का क्षयोपशम भी उस समय नष्ट हुआ है। काश ऐसे अमूल्य द्रव्य को तू तीर्थंकर के पादमूल में दे देता तो तेरी आत्मा का कल्याण हो जाता।

मोह की, राग की परिणति को देखो, अशुद्ध स्थान पर कितनी देर बैठे हो? दर्पण के सामने कितनी देर बैठे हो? जिन जघन्य स्थानों में तूने जीवन नष्ट किया है, उन जघन्य स्थानों की स्मृति भी आ गई तो आगम कहता है कि दुर्गति का पात्र हो जाएगा। मोह की विडम्बना से जब तक विडम्बित होते रहोगे, तब तक मोक्षमार्ग बहुत दूर है। जीवन जीना है, जीवन चलाना है, तो सबके साथ रहो, कोई बात नहीं; लेकिन सबको अपना मानकर चलना सबसे बड़ी अज्ञानता है। अपना मानकर रखने वाले कम होंगे, स्वयं को दूसरे का मनवाने वालों की संख्या अत्यधिक है। "मैं आपका हूँ।" आपको लगता है मैं मित्र बना रहा हूँ। विश्वास रखना, जितने मित्र बनाओगे, उतने ही तेरे शत्रु बन चुके हैं। एक मित्र था तो एक फोन करना पड़ता था। दस मित्र बनाओगे, तो दस बार तुमको फोन लगाना पड़ेगा। उसके लिए तुमको पैसा कमाना पड़ेगा।

ज्ञानी! पाप की तीव्रता बढ़ गई तो शत्रु बन गए कि मित्र बन गए? यदि किसी दिन भूल गए, तो जिसे तूने मित्र बनाया था वही जवाब देगा। जिनको शान्ति का जीवन जीना हो वे

अधिक मित्र न बनायें, अधिक परिचय न बढ़ायें। जितने परिचय बढ़ेंगे, उतने निज से अपरिचित होंगे। क्योंकि समय तो देना पड़ेगा, समय उतना ही आपके पास है। इसलिए आचार्य महाराज ने स्पष्ट कह दिया, हे मुनि! मोह को छोड़ दो। यदि आपने मोह छोड़े बिना योग धारण कर लिया, तो वर्तमान का सुख बुद्धिपूर्वक छोड़ा है और भविष्य के लिए तपस्या चल नहीं रही है, तो भविष्य का सुख भी गया। तू उभय लोक से अपनी वंचना कर बैठा। क्योंकि गृहस्थी का जो आनंद था, वह तूने स्वयं छोड़ा है और आगे साधना कर नहीं पा रहा है, मोह में लिप्त है, तो भविष्य का फल अच्छा होगा नहीं। क्योंकि यह मोक्षमार्ग है, इसमें पूर्ण शुद्ध सोलह ताव का ही चलता है। टांके वाला मार्ग मोक्षमार्ग में नहीं चलता।

यदि निज देह पर जरा-सी दृष्टि चली गई, तो कुन्दकुन्द स्वामी कहने लग गए—हे मुनिराज!

परमाणुममाणं वा मुच्छा देहादिएसु जस्स पुणो।
विज्जदि जदि सो सिद्धिं ण लहदि सव्वागमधरोवि॥ 239 प्र. सार॥

हे वीतरागी तपोधन! ये आगम का ज्ञान, ग्रंथों का कण्ठ में उतार लेना, द्वादशांग का पाठ अन्तर्मुहूर्त में कर लेना, यह सिद्धि का साधन नहीं है। इस विश्व में सबसे लघु कोई वस्तु है, उसका नाम परमाणु है। कर्म तो बहुत बड़ा है, जो कार्माणवर्गणाएँ हैं, वे तो सूक्ष्म हैं, लेकिन परमाणु सूक्ष्म-सूक्ष्म है। पुद्गल की सबसे छोटी कोई इकाई है, उसका नाम परमाणु है। हे योगीश्वर! परमाणु-प्रमाण भी इस देह में उपकरण आदि में मूर्च्छा है तो सिद्धि को प्राप्त नहीं कर पाओगे सारे आगम को धारण करने के बाद भी। शान्त बैठकर यह वेदन करने की आवश्यकता है, कि मेरा राग कितना हट रहा है। कुछ भी कहो, प्रभावना बढ़ी है, प्रभावना घटी है। जब आप मुनि बने, तो मुनि की रक्षा करना आपका धर्म है। बाहर के ढ़ोल-धमाके की रक्षा करना आपका धर्म नहीं है। वह तो हो जाए तो श्रावक की द्रव्य-प्रभावना है। "आत्मा प्रभावनीयो रत्नत्रय तेजसा"—आत्मा की प्रभावना रत्नत्रय के तेज से करना, इसका नाम तो प्रभावना है। और रत्नत्रय को छोड़कर कोई भी कार्य किया है, वह लोक के कल्याण के लिए कर रहे हो, परन्तु लोक-कल्याण होता नहीं है। सत्य को जीव सोच नहीं रहे हैं, समझ नहीं रहे हैं। लोक-कल्याण के लिए निकल पड़े। लोक कल्याण तुम्हारे हाथ में है कि लोगों के स्वयं के उपादान से है? वात-पित्त-कफजनित रोगों में तो वैद्य की गोलियाँ काम कर सकती हैं, परन्तु संक्लेश परिणामों में किसी वैद्य की गोलियाँ काम नहीं करती हैं। संक्लेशता की तीव्रता में भी व्यक्ति का अकालमरण होता है। जो अधिक तनाव, अधिक टेंशन में जीते हैं, वे बड़े ध्यान से सुनें। इसमें किसी वैद्य की गोलियाँ काम नहीं करेंगी। संक्लेश परिणामों से आयु का क्षय होता है, क्या कारण है? योगी पुरुष अपनी आयु को पूरा भोग लेते हैं,

क्योंकि साम्यभावों से जीते हैं। वे लोग जल्दी बूढ़े होते हैं जो तीव्र काम-क्रोध में लिप्त होते हैं। जो जीव संयमित जीवन जीते हैं, वे शरीर के वृद्ध होने पर भी उत्साहशक्ति को बूढ़ा नहीं होने देते हैं। और जिसकी उत्साहशक्ति भंग हो गई, वह सोलह वर्ष का किशोर भी अस्सी वर्ष के बूढ़े के सामने कुछ नहीं है।

उत्साहशक्ति भंग नहीं होनी चाहिए, चाहे तुम संसारमार्ग पर चलो, चाहे मोक्षमार्ग पर चलो। उसी दिन असफलता तेरे घर में आ जाएगी जिस दिन उत्साहशक्ति तेरे अंदर से चली जाएगी। उसी दिन सफलता तेरी मुट्ठी में आ जाएगी जिस दिन उत्साहशक्ति वृद्धि को प्राप्त होगी। भैया! एक किसान में कितनी उत्साहशक्ति होती है? मुट्ठी का दाना मिट्टी में फेंकता है। उसको यह नहीं दिखता कि मिट्टी में जा रहा है। उसको लहराती फसल और भरे बोरे दिखाई देते हैं। यह द्रव्यदृष्टि बोल रही है। एक किसान को इतना विवेक है कि मुट्ठी के दाने मिट्टी में फेंककर फसल देखता है। ऐसे-ही निर्ग्रंथ तपोधन विषयों की उस परिणति को फेंककर और चारित्र का बीज डालते हैं, तो उन्हें शिवत्व की फसल दिखाई देती है। तब निर्मल रत्नत्रय पालन करेगा। जिस योगी को मोक्ष आँखों से न दिखता हो, वह रत्नत्रय का निर्दोष पालन कर ही नहीं सकता। वही श्रमण उत्कृष्ट संयम का पालन कर पाता है जिसको मोक्ष की अनुभूति पर अनुभवन होता है और मोक्ष का फल दृष्टिगोचर होता है, मोक्ष पर विश्वास होता है। जिसको मोक्ष पर ही विश्वास नहीं है, वह क्या मोक्षमार्ग पर चलेगा?

छोटे सुख के आगे कोई बड़ा सुख होता है, तभी छोटा सुख छोड़ा जाता है। कोई व्यापारी पचास लाख तभी लगाता है, जब उसको करोड़ों दिखाई देते हैं। सत्यार्थ मोक्षमार्गी जो होता है, वह संसार तभी छोड़ पाता है, जब उसको मोक्ष का सुख दिखाई देता है। और कहीं मोक्षमार्ग में ही संसार का सुख दिखाई दे रहा हो तो वह नियम से जिनशासन की ध्वजा को नीचे ले जाता है। मोक्षमार्गी को संसार की लिप्तता कहाँ? और संसार की लिप्तता वाले को मोक्षमार्ग कहाँ? दोनों मार्ग भिन्न हैं। जो श्रावक हैं, त्यागी-व्रती हैं, वे घर में कुछ ज्यादा वैरागी-से दिखते हैं। जो त्यागी हैं, वे बाहर कुछ अधिक रागी-से दिखते हैं। यह दोष काल का भी कहना चाहिए। ऐसे त्यागी भी मिल जायेंगे जो साबुन न लगाते हों, नील, टिनोपॉल न डालते हों, परन्तु ऐसे रागी भी मिल जायेंगे जो ब्रह्मचारी होकर नील-टिनोपॉल डाल रहे हैं। और नील-टिनोपॉल डले वस्त्रों से जो भोजन कर रहा है, उसका सोला होता ही नहीं है। घोर हिंसक पुरुष है वह। प्रश्न करो, क्यों? 'श्रावकाचार संग्रह' में लिखा है कि नील की खेती होती है। उसे सड़ाकर (जिसमें त्रस जीव पड़ते हैं) नील बनाई जाती है। वह रंग (त्रस जीवों से बना) तुम्हारे वस्त्रों पर चढ़ रहा है। ज्ञानियो! छोड़ो इस राग को। भैया! यह चमक किसको दिखाने के लिए है ? तुम

तो ब्रह्मचारी हो ना? जिस शील का शृंगार हो चुका है, जिसका चारित्र का शृंगार हो चुका है, यह वस्त्रों की चमक किसके लिए?

ज्ञानियो! विश्वास रखना, जिसके भीतर चमक नहीं होती, वे व्यक्ति दूसरे की चमक को फीका करने के लिए चमक लाते हैं। जितने शृंगार करते हैं, दूसरे के शृंगार को हरने के लिए ही शृंगार किया जाता है। जैसे शिकारी जंगल में जाल फैलाकर पशुओं को पकड़ता है, ऐसे-ही शृंगार करके जो-जो आते हैं, वे एक-दूसरे के परिणामों की चिड़िया को पकड़-पकड़कर उनके शील के प्राण निकालते हैं। शृंगार की क्या आवश्यकता है? शृंगार तो घर मात्र में होता है। सिद्ध-भक्ति में पूज्यपाद स्वामी कह रहे हैं—माला वे पहनें, जिनका मन पाप के मल से मलिन है। परन्तु आपमें गन्धमाला नहीं, वनिता नहीं, क्योंकि आपके अन्दर समता की सुन्दरता बैठी हुई है। जिनका समता का शृंगार बीत चुका है, वे वनिता और शृंगार-आभूषणों से युक्त बैठते हैं। देखो बाहुबली स्वामी को। खड़े हो गए। कुछ भी नहीं है, फिर भी सबकुछ है। जहाँ शिवसुख है, वहाँ सबकुछ है। जहाँ शिवसुख ही नहीं, वह तो शव ही है। कम-से-कम इतना विवेक रख लो कि ये उल्टे-सीधे श्रृंगार करके श्री जिनालय में मत आना।

भैया! छोड़ तो जीव अपने उपादान से ही पाएगा, परन्तु इतना तो परम सत्य हो गया कि आज सोचना तो अवश्य पड़ जाएगा कि जिस विषय में चिंतन ही नहीं गया, इसमें भी हिंसा है। ज्ञानी वही होता है, जो संयम से युक्त होता है। ज्ञानी हमेशा ज्ञानभाव में जीता है, कषाय आदि के आने पर भी कर्मों की विचित्रता पर विचार करता है एवं सोचता है कि क्रोधादि कषाय ये मेरा स्वभाव नहीं है, यह तो विभाव ही है। पूर्व के कर्मों के उदय से जो शुभ-अशुभ भाव आते हैं, उनको ज्ञाता-दृष्टा बनकर निहारता है, उनमें संलग्न नहीं होता है। जो कषाय आदि आने पर उनमें कर्त्ताभाव लाता है, वह ज्ञानदशा से च्युत हो जाता है। अज्ञानी इन विभावभावों के उदय में लिप्त होकर अभिनव कर्मों का बन्ध करता है। कोई यह कहे कि मैंने ग्यारह अंगों और नौ पूर्वों का पाठ कर लिया है, मैं तो ज्ञानी हो गया हूँ, मोक्ष अब मेरी मुट्ठी में है। लेकिन ऐसा नहीं है, स्यात्। मात्र ज्ञान मोक्ष का हेतु नहीं है। कोई कहे कि मैंने बीमारी का ज्ञान कर लिया है, दवा का ज्ञान कर लिया है, अब तो मैं स्वस्थ हो जाऊँगा, तो यह त्रिकाल में सम्भव नहीं है। वह तब तक ठीक नहीं होगा, जब तक दवा का सेवन नहीं करेगा।

"आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

॥ भगवान् महावीर स्वामी की जय ॥

❖ ❖ ❖

मोक्षपथ का पथ्य

पुव्वं सेवदि मिच्छा-मल-सोहण-हेदु सम्म भेसज्जं।
पच्छा सेवदि कम्मा-मय-णासण चरिय-भेसज्जं ॥69॥

अन्वयार्थ—(पुव्वं) प्रथमतः **(मिच्छा मल-सोहण-हेदु)** मिथ्यात्वरूपी मल के शोधन के कारण **(सम्म-भेसज्जं)** सम्यक्त्वरूपी औषधि का **(सेवदि)** सेवन किया जाता है। **(पच्छा)** पश्चात् **(कम्मा-मय-णासण)** कर्मरूपी रोग का नाश करने के लिए **(चरिय भेसज्जं)** चारित्ररूपी औषधि का **(सेवइ)** सेवन किया जाता है।

ज्ञानी और अज्ञानी

अण्णाणीदो विसय-विरत्तादो होदि सय-सहस्स-गुणो।
णाणी कसाय विरदो विसयासत्तो जिणुद्दिट्ठं ॥70॥

अन्वयार्थ—(विसय-विरत्तादो) विषयों से विरक्त **(अण्णाणीदो)** अज्ञानी की अपेक्षा **(विसयासत्तो)** विषयों में आसक्त किन्तु **(कसाय विरदो)** कषाय से विरक्त **(णाणी)** ज्ञानी **(सय-सहस्स-गुणो)** लाख गुणा फल **(होइ)** प्राप्त करता है **(जिणुदिट्ठं)** ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है।

भव्य बन्धुओ!

अन्तिम तीर्थेश भगवान् वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना, जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति। आचार्यप्रवर भगवान् कुन्दकुन्द स्वामी ग्रंथराज रयणसार जी ग्रंथ में श्रमण और श्रावक दोनों के धर्मों की सहज व्याख्या कर रहे हैं। जब रागी के अंतस् में उपशम भाव का जन्म होता है, असंयम के प्रति वैराग्य के परिणाम आते हैं, तब संयम के परिणाम आते हैं। संयम के परिणामों को भावित होने पर भी संयम का होना मत स्वीकार लेना। संयम के परिणाम तो संयम पर श्रद्धा होने से भी हो सकते हैं, संयमियों की पूजा से भी हो सकते हैं। संयम के परिणाम तो लोक की पूजा से भी हो सकते हैं। परन्तु संयमपरिणाम होना और संयम के परिणाम होना, इनमें महान् अंतर है। जितना अंतर आकाश और पृथ्वी में है, उतना ही अंतर संयम और संयम के परिणाम में है। संयम की भावना होना भिन्न विषय है और संयम होना भिन्न विषय है। यही जीवों के भ्रम हैं।

संयम के भाव भावनाभूत और संयम के भाव परिणतिभूत, इन दोनों में जीव अंतर नहीं कर पाते हैं। वे द्रव्यसंयम को अथवा द्रव्यसंयमी की भक्ति को ही संयम मान बैठे हैं। संयम के भाव होते ही जो संयम भेष बना लेते हैं, वे जीवनभर संयमी बनकर रह नहीं पाते हैं। किंचित् कठिन है, परन्तु समझना बहुत सरल है। संयम की भावना होते ही संयम धारण कर लिया; परन्तु संयमी नहीं हो सका। इच्छा और पात्रता। इच्छा अनंतों की होती है, पात्रता गिनती के लोगों की होती है। बालु मिट्टी जहाँ की है, वहाँ के कुम्भकार को भी कलश बनाने के परिणाम हो रहे हैं, लेकिन बालू से घट नहीं बनता, घट तो काली, पीली, शुद्ध मिट्टी से ही बनेगा। ऐसे-ही संयम की इच्छा तो अनंतों को होती है, परन्तु संयम परिणति उपादान योग्यता वाले को ही होती है। भावना और परिणति में अंतर है।

संयमी जीवों को देखकर जो प्रशस्त परिणाम चल रहे हैं, यह आपकी भक्ति है और संयमी की भक्ति के आवेश में तूने संयम धारण कर लिया, परन्तु तू संयमी नहीं बना। मेरे स्वामी दीक्षा ले रहे हैं तो मुझे भी लेनी चाहिए। चार हजार सम्राटों ने तीर्थंकर ऋषभदेव के साथ जैनेश्वरी दीक्षा को स्वीकार कर लिया। मेरे स्वामी ऐसा कर रहे हैं, इसलिए मुझे भी करना चाहिए—यह संयम की भक्ति नहीं थी, यह स्वामी की भक्ति थी। यह वैराग्य नहीं था, यह स्वामी का राग था। स्वामी विषय-भोगों से विरक्त होकर जिनदीक्षा को प्राप्त हुए थे और सेवक तो स्वामी की भक्ति में कपड़े उतारकर बैठे थे। अंतर समझ में आ रहा है क्या? साथ में हो जाना और साधु हो जाना, इन दोनों में अंतर है। कपड़े उतारकर संघ में मिल जाना, यह संघ के साथ होना है और विषय-कषाय को उतारकर संघ में होना, यह साधु होना है। संघ में मत होना, साधु होना। साधु होकर संघ में ही रहना, एकलविहार मत करना। वट्टकेर स्वामी कहते हैं कि "मा मे सत्तूवि एगागी" इस खोटे पंचमकाल में, मेरा शत्रु भी क्यों न हो, लेकिन एकलविहारी नहीं हो। संयम की भावना और तद्रूप परिणति। भक्ति में आकर भक्ति का आनंद तो लूटना, लेकिन भक्ति के आवेश में आकर कपड़े उतारकर मत बैठना। भक्ति के आवेश में संयम धारण नहीं करना, भोगों की उदासता में संयम धारण कर लेना।

ज्ञानी! बारह वर्ष व्यतीत हो गए, परन्तु नारी का ध्यान नष्ट नहीं हुआ। भक्ति में संयम धारण नहीं करना, विरक्ति में संयम धारण करना। भक्ति-पूजन तो भगवान् की आराधना का मार्ग है। जैसे पानी छानकर पीते हो, ऐसे मन को छानकर जीना प्रारम्भ करो, तब पानी छानकर पीना सार्थक होगा। आपने परजीवों की रक्षा हेतु पानी छानने का उपक्रम तो कर लिया; लेकिन जब तक मन के अन्दर बैठे विषय-कषाय छनकर अलग नहीं होंगे, तब तक निज की रक्षा कहाँ हुई है? निज विशुद्ध-शुद्ध परिणति की रक्षा के लिए मन को छानकर रखना।

द्वैतभक्ति भगवान् की है। भक्ति में भगवान् की आराधना तो होती है, परन्तु ज्ञानियो! भक्ति में आत्मा की साधना नहीं होती है। भक्ति भगवान् की होती है। भक्ति से साधु नहीं बनता। भक्ति से देव बन सकता है, लेकिन भक्ति से भगवान् नहीं बन सकता, भक्ति से संयम नहीं आता है। द्वैतभक्ति से संयम नहीं आता है। एक ऐसा समय भी आया था कि, ऐसे लोग देश में हुए, जिन्होंने शुद्ध तत्त्व की व्याख्या की। सत्य तत्त्व की व्याख्या करते-करते इतने अंदर में लीन हो गए कि सुननेवालों ने उनको मिथ्यादृष्टि कह दिया। क्यों? सुननेवालों की क्षमता उतनी नहीं थी, उसका निर्णय नहीं कर पाए। महान् योगी कुन्दकुन्द स्वामी के ग्रंथों पर इतनी टीकाएँ नहीं हैं जितनी टीकाएँ सिद्धांतशास्त्रों पर हैं। जितनी सिद्धांत की प्ररूपणा हुई है, उतनी अध्यात्म की प्ररूपणा नहीं हुई। क्योंकि अध्यात्म की अवस्था को न प्राप्त करके अध्यात्म को समझने बैठ गए और संयम व चारित्र से च्युत होने लगे। उन्होंने चतुर्थ गुणस्थान में ही सम्पूर्ण गुणस्थानों की व्यवस्था बना ली, इसलिए अध्यात्म से लोग डरने लग गए। जबकि अध्यात्म तो वस्तुस्वरूप का गहरा निर्णय करने वाला ग्रंथ है। भक्ति से साधु नहीं बनते, ये शब्द पहले अंदर में ले जाओ, फिर सोचो कि बोल क्या रहे हैं आज महाराज। भक्ति से साधु नहीं बनते। प्रमाण आपके सामने है—चार हजार सम्राट। साधु का मार्ग पंचपरमेष्ठी की भक्ति नहीं है। साधुमार्ग पंच पापों की विरक्ति है। पंचपरमेष्ठी की भक्ति सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान का साधन है, परन्तु पंचपरमेष्ठी की भक्ति साधु का साधन नहीं है। साधु में पंचपरमेष्ठी की भक्ति होना अनिवार्य है। यदि पंचपरमेष्ठी की भक्ति साधु के अंदर नहीं है, तो साधु ही नहीं है। लेकिन पंचपरमेष्ठी की भक्ति मात्र साधु नहीं है, पाँच पापों से विरक्ति का नाम साधु है। यदि पंचपरमेष्ठी की भक्ति साधु हो गई, तो एक भक्त-श्रावक को भी आपको साधु कहना पड़ेगा, क्योंकि अद्वैतभक्ति तो बारहवें गुणस्थान तक चलती है और द्वैतभक्ति छठवें गुणस्थान तक चलती है। लेकिन प्रथम गुणस्थान की भक्ति मात्र पुण्यबंध के साथ-साथ निर्जरा का भी साधन है।

भक्ति साधु नहीं है, साधु के अन्दर भक्ति होती है। भक्ति अविरत सम्यग्दृष्टि जीव के अन्दर भी होती है और उस भक्ति से ही वह तीर्थंकरप्रकृति तक का बंध करता है। चतुर्थ गुणस्थान से आठवें गुणस्थान पर्यंत तीर्थंकरप्रकृति का बंध हो सकता है। कहीं आपको विशुद्धसागर अच्छे लग गए और आप उनके साथ लग गए और किसी ने पूछा कि तुम घर क्यों छोड़ आए? बोले, महाराज अच्छे लगे थे, इसलिए आ गए। अब दीक्षा लेना है कि नहीं? अब ये कोई भाव नहीं हैं। ये भक्ति में आये हो, विरक्ति में नहीं आए हो। जो विरक्ति में आता है, उसके अन्दर भक्ति भी होती है और विरक्ति भी होती है। परन्तु जिसके अन्दर भक्ति मात्र है, वहाँ विरक्ति हो भी सकती है और नहीं भी। भजनीय है, विकल्पनीय है। बहुत सारे जीव आचार्य/मुनि के राग में आकर संघ में आ जाते हैं; परन्तु बाद में जब साधना की कठिनाई महसूस होती है, तब समझ में आता

है कि मैं भक्ति में आया था कि विरक्ति में आया था? जैसे जल के अभाव में मछली तड़पती है, ऐसे-ही चारित्र के अभाव में सम्यग्दृष्टि तड़पता है। जब तक संयम धारण करने की तड़पन नहीं हो रही है, विश्वास रखना, अविरत सम्यग्दृष्टि भी नहीं है। अन्योक्ति, अतिश्योक्ति मत समझना।

संयम धारण कर सके या न कर सके, परन्तु संयम के प्रति छटपटाहट होती है सम्यग्दृष्टि जीव को। जिस जीव की दृष्टि में यह आ जाए कि मैं सम्यग्दृष्टि, सम्यग्ज्ञानी हूँ, परन्तु पंचमकाल में चारित्र तो हो ही नहीं सकता है, ऐसी भावना जिसके अन्दर है, वह न सम्यग्दृष्टि है, न सम्यग्ज्ञानी है। समकित वहीं होता है, जहाँ समता पर श्रद्धा होती है। समकित का अर्थ सम्यग्दर्शन और समता का अर्थ चारित्र (सामायिक) है। जिसकी चारित्र से श्रद्धा हट गई, विश्वास रखना, सम्यक्त्व तेरा गया। सम्यग्दृष्टि जीव को अपनी गलती तो महसूस होती है, परन्तु संयम पर अश्रद्धा नहीं होती। इतना संयम पालना कि कभी संयम के प्रति अश्रद्धा न हो जाए।

एक बालक ने क्षमता देखे बिना, समता देखे बिना उपवास ले लिया और उससे उपवास नहीं सधा, भूख की पीड़ा से पीड़ित होकर उसके मुख से निकल पड़ा 'यह तो भूखों मरने का विषय है, यह धर्म नहीं है।' ज्ञानी! तूने अपनी शक्ति देखे बिना व्रत ले लिया था तो व्रत पर ही अश्रद्धा हो गई। जिनागम में कहाँ लिखा है कि जबरदस्ती करो? जिनागम में यह लिखा है—

जं सक्कइ तं कीरइ, जं च ण सक्कइ तहेव सद्दहणं।
सद्दहमाणो जीवो पावइ अजरामरं ठाणं।।
कीजे शक्ति प्रमान, शक्ति बिना सरधा धरै।
'द्यानत' सरधावान, अजर-अमर पद भोगवै॥

ज्ञानियो! इतनी साधना करना जिससे मोक्षमार्ग पर अश्रद्धा न आ पाए, संयम पर अश्रद्धा न आ पाए। ऐसी साधना करना जैसे रोटी खाते हो। कुछ भी खा लो, लेकिन तब तक पेट नहीं भरता जब तक रोटी न खा लें। प्रतिदिन समय होता है तो उमंग आ जाती है कि चलो, अब भोजन करेंगे। जैसे भोजन के प्रति उमंग दौड़ती है, ऐसे-ही साधना के प्रति उमंग दौड़ती रहे, ऐसी साधना करना। और एक दिन तुमने दो की जगह पचास रोटियाँ खा लीं और पेट फूल गया, अब दूसरे दिन कोई कहे कि चलो भोजन करने, तो मुख बनाता है।

माँ! बालक को जन्म देना और बालक का पालन करना, यह भी बहुत बड़ी विद्या है। कितना खिलाना, कितना पिलाना, कितना सुलाना और कितना रुलाना, यह सब आप जानते हैं। बच्चा रोये नहीं, तब भी परेशानी है। ज्यादा रो लिया, तब भी परेशानी है। फिर यह तो मोक्षमार्ग

है। उमंग का अभाव न होने पाए। उत्साहशक्ति जागृत रहे, जीवंत रहे, वृद्धिमान रहे। संयम पलेगा और संयम आपको भी पालेगा।

ज्ञानियो! आपने धर्म को महान् नहीं बनाया, धर्म ने आपको महान् बना दिया है। हे वर्द्धमान! आपने सत्य, अहिंसा आदि धर्मों को महान् नहीं बनाया। आपकी आत्मा को इन धर्मों ने महान् बना दिया है। भैया! यथार्थ समझना, भीतर के नेत्र से देखने वालों की आँखें बहुत कमजोर हो गई हैं पंचमकाल में, बाहर के नेत्रों से देखनेवाले लोग ज्यादा हैं। इसलिए संयमियों को चाहिए कि वे ऐसी प्रवृत्ति न करें जिससे किसी की बाहर की आँखें दु:खित हों और भीतर की आँखों पर असर पड़े। यही निश्चय-व्यवहार नय है। बाहर की आँखों से देखने पर भीतर की आँखों पर असर पड़ता है। विश्वास न हो तो जब खूब गर्मी पड़ रही हो, पानी की एक बूँद लेना और कलाई पर रख लेना, तुझे शान्ति मिलेगी। ऐसे ही निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध हैं। किसी धर्मात्मा की बहिरंग परिणति निर्मल दिखती है तो अंदर की श्रद्धा की आँख भी मुस्कुरा जाती है। और बाहर की आँख ही अच्छा नहीं देख पा रही है तो अन्दर क्या श्रद्धा बचेगी? इसलिए यदि किंचित् भी जिनशासन पर श्रद्धा हो, यदि शरीर छोड़ना पड़ जाए तो विकल्प मत करना, परन्तु ऐसा काम मत करना जिससे कि दूसरे की श्रद्धा छूटने लग जायें। संयमी जीव को यह ध्यान रखने की आवश्यकता है। यह काम तभी रुक पाएगा, जब ऐसी कामना नहीं करेगा। जैसी कामना होती है, वैसा काम होता है। अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, अनाचार। कोई भी जीव पाप करेगा, पहले पाप नहीं करता है पहले पाप का विचार लाता है। फिर तद्रूप प्रवृत्ति के लिए सामग्री जुटाता है। फिर एकदेश करके देखता है। फिर लिप्त हुआ तो महानाचार कर बैठता है।

सभी मन्दिरों को विधर्मियों ने नष्ट नहीं किया। अपनी धारणा बन गई है कि जब औरंगजेब शासक बना, उसने सब मन्दिर नष्ट कर दिए। ज्ञानी! गली-गली में औरंगजेब घुसने नहीं गया था, तो मन्दिर नष्ट किसने किए? आज तो नहीं है औरंगजेब। हम उस जीव के प्रति भी रोष रखेंगे तो हमारी परिणति नियम से अशुद्ध होती है। ज्ञानी! सम्यग्दर्शन के बिना काय-क्लेश के दु:खों को सहन करने से प्रयोजन सिद्ध होने वाला नहीं है।

"आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

॥ भगवान् महावीर स्वामी की जय ॥

❖ ❖ ❖

वैराग्य के बिना भाव

विणओ भत्तिविहीणो, महिलाणं रोदणं विणा णेहं।
चागो वेरग्ग विणा, एदेदो वारिआ भणिदा॥71॥

अन्वयार्थ—(भत्तिविहीणो) भक्ति के बिना **(विणओ)** विनय **(णेहं विणा)** स्नेह के बिना **(महिलाणं)** महिलाओं का **(रोदणं)** रुदन और **(वेरग्ग विणा)** वैराग्य के बिना **(चागो)** त्याग **(एदेदो)** ये **(वारिआ)** प्रतिषिद्ध **(भणिदा)** कहे गये हैं।

भावशून्य क्रिया से अलाभ

सुहडो सूरत्त विणा, महिला सोहग्गरहिद परिसोहा।
वेरग्ग-णाण-संजम हीणा खवणा ण किं पि लब्भंते॥72॥

अन्वयार्थ—(सूरत्त विणा) शूरता के बिना **(सुहडो)** योद्धा **(सोहग्गरहिद)** सौभाग्यरहित **(महिला परिसोहा)** महिला की शोभा **(वेरग्ग-णाण संजम हीणा)** वैराग्य, ज्ञान और संयम से रहित **(खवणा)** क्षपक /मुनि **(किं पि)** कुछ भी **(ण)** नहीं **(लब्भंते)** प्राप्त करते।

अज्ञानी और विषयासक्त जीवों की दशा

वत्थु समग्गो मूढो, लोही लब्भदि फलं जहा पच्छा।
अण्णाणी जो विसया-सत्तो लहदि तहा चेवं॥73॥

अन्वयार्थ—(जहा) जैसे **(वत्थु-समग्गो)** समस्त पदार्थों से युक्त **(मूढ़ो)** अज्ञानी **(लोही)** लोभी **(फलं)** फल को **(पच्छा)** बाद में **(लब्भदि)** प्राप्त करता है **(तहा)** उसी प्रकार **(अण्णाणी)** अज्ञानी जो **(विसयासत्तो)** विषयों में आसक्त हैं **(चेवं लहदि)** पीछे ही फल पाता है।

भव्य बन्धुओ!

अन्तिम तीर्थेश भगवान् वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना, जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति। आचार्यभगवान् कुन्दकुन्द स्वामी ग्रंथराज रयणसार जी ग्रंथ में श्रमण और श्रावक दोनों धर्मों की व्याख्या करते हुए समझा रहे हैं कि—हे योगीश्वर! जिनलिंग यह तीर्थंकर की मुद्रा है, अरिहंत की मुद्रा है। जब जगत् की समस्त मुद्राओं

का विसर्जन हो जाता है, तब जिनमुद्रा का उद्घाटन होता है। जिन्होंने समस्त मुद्राओं को छोड़ दिया हो, वे परम वीतरागी तीर्थंकर भगवान् भी जिनमुद्रा को धारण करते हैं। जिस मुद्रा के सेवन से वे भगवत्ता को प्रकट किए हैं, ऐसी अरिहंत जिनेन्द्र की मुद्रा, यह दिगम्बर मुद्रा है। ऐसी मुद्रा को प्राप्त करके अर्हतता की सिद्धि का ही साधन बनाना, अन्य किसी मार्ग में इस मुद्रा का उपयोग मत करना। यदि जिनलिंग को प्राप्त करके इस जिनलिंग का दुरुपयोग किया है, तो ध्यान रखना, जो आज भ्रूणपरीक्षण की सोनोग्राफी मशीन है, उसका उद्देश्य निरीह /मूक अन्दर बैठे उन शिशुओं का घात करना नहीं था। इस मशीन का उद्देश्य इतना पवित्र था, पवित्र है कि उदर में बैठा शिशु भी निरोगी रहे। परन्तु पापी जीवों ने उसका क्या दुरुपयोग किया है? उस मशीन से लिंगपरीक्षण करके बच्चों के घात-जैसे खोटे कार्य कर दिए। जैसे सोनोग्राफी मशीन का दुरुपयोग हुआ है, ऐसे-ही अरिहंत लिंग, निर्ग्रंथ अवस्था को आत्मसाधना से हटकर दूसरे काम में लगा दिया, तो उसका उपयोग सोनोग्राफी की मशीन के समान दुरुपयोग कहलायेगा। अरिहंत मुद्रा को सोनोग्राफी की मशीन मत बना देना।

श्रावको! अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए निर्ग्रंथ मुद्रा को बिठालकर अपने स्वार्थों की पूर्ति में लगा मत देना। भूल हुई हो जीवन में तो उसका प्रायश्चित ले लेना। हे स्वामी! आप विराजमान हो जायेंगे तो ऐसा काम हो जाएगा। यदि समाज ने निर्ग्रंथ मुनि को बिठालकर अपने स्वार्थों की पूर्ति की है, तो विश्वास रखना, सोनोग्राफी मशीन के समान यह काम हुआ है। कितना कठिन लिखते हैं आचार्य महाराज। इससे कठिन शब्द क्या होगा ? हे ज्ञानी! सारे जगत् में मालूम है कि जब तू छोटा था तो माँ तुझे चुप कराने के लिए कहती थी—बेटा! चुप हो जा, नहीं-तो बाबा उठाकर ले जाएगा। तब से बाबा का भेष बदनाम हो गया। जिनको श्रमणदीक्षा के भाव होते हों, श्रमणदीक्षा ले चुके हों, उन सब जीवों से कह देना—भैया! ऐसा काल मत आने देना कि कोई ऐसा कहने लग जाए कि—महाराज आ जायेंगे, चुप हो जा।

एक सत्य घटना मैं बताऊँ। विदिशा में चातुर्मास चल रहा था। मैं कक्ष में स्वाध्याय कर रहा था। गुजरात से एक सेठ आया और भगवान के दर्शन करके नीचे-के-नीचे ही जाने लगा। उस समय विदिशा का एक श्रावक कहता है—भैया! महाराज जी विराजमान हैं, आप दर्शन कर लो। सेठ कहता है—भैया! आप अन्यथा मत मानना, मैं परम मुनिभक्त हूँ, लेकिन अभी मेरी ताकत नहीं है महाराज जी के दर्शन करने की। बोले क्यूँ? बहुत ऊँची सीढ़ी नहीं है, पहली मंजिल पर हैं, आप तो चलो। वह बोला—भैया! मैं सेठ हूँ, परन्तु दान लेने वालों को यह सोचना चाहिए कि मेरी भी गृहस्थी है। महाराज के पास जाऊँगा, जब तक दो-चार लाख जेब में नहीं होंगे तो कैसे दर्शन कर पाऊँगा? वह विदिशा का श्रावक कहता है—भैया! आप खाली जेब हो

कि नहीं? आप महाराज के दर्शन कर लो एक बार। ऊपर लेकर आया, उसने दर्शन किए और चला गया। जो दर्शन कराने लाया था, वह उनको छोड़कर मेरे पास आ गया। उसने सारा वृत्तान्त सुनाया। भैया! एक श्रावक मुनि के दर्शन किए बिना जा रहा था, क्योंकि उसकी मानसिकता यह बन चुकी थी कि महाराज से तभी मिलूँगा जब मेरी जेब में कुछ होगा। तब मुझे लगा कि अपन सोचते यह हैं कि प्रभावना बढ़ रही है। ज्ञानी! यह प्रभावना बढ़ नहीं रही है। ऐसे कितने ही गरीब होते हैं जो पास में जाने से घबराते हैं। यहाँ तक कि अमीर भी घबराते हैं। भैया! ऐसा मत करना। श्रद्धा-भक्ति से लोगों को आने दो। यदि हमारे समाज में धर्म न होता, समाज गरीब होती, तो आज समाज में प्राचीन विशाल मन्दिर दिखाई दे रहे हैं यह दिखते ही नहीं।

ज्ञानियो! जैसी संगति में बैठोगे, वैसा परिणमन होगा। सद्संगति में बैठना। सुबह से तो किसी का चेहरा देखना ही नहीं। प्रातःकाल उठते ही सुमंगलभूत अरिहंतदेव का मुख देखते हैं, वे कितने पुण्यात्मा जीव हैं। यदि सुमंगलभूत है, तो अरिहंत देव का मुखकमल है। यह परम्परा जैनदर्शन मात्र में है। जहाँ छोटा-सा बच्चा जन्मोपरांत पैंतालीस दिन का हुआ, सबसे पहले जिनालय लेकर जाया जाता है। माँ! इस परम्परा को नष्ट मत कर देना। उस समय बेटे को कहना—बेटे! आँख खोलकर देख ले। जब तक आँख खुली रहे, तो इनको देखते रहना और ऐसी भावना भाना कि हे प्रभु! जब आँख बन्द हो, तब भी आप मुझे दिख जाएँ। जिन दिखें और निज के दर्शन हो जाएँ। जो माँ अपने बेटे को रोज दर्शन करवाती है, ध्यान रखना, वह भगवान् बनने के संस्कार दे रही है। वे अभागी मातायें होंगी जो बच्चे को घर में छोड़कर मन्दिर आती होंगी। लेकिन तैयार करके लाना, मन्दिर में गड़बड़ी मत कराना। संस्कार दो, सप्त-व्यसनों के डिब्बों के सामने मत बैठाओ। तीर्थंकर अरिहंतदेव के चरणों में ले जाओ। इसलिए गली-गली में भगवान् अरिहंत का मन्दिर होना चाहिए। जहाँ से निकलो, वहाँ दर्शन हो जायें। बगीचे से निकलोगे, अन्दर प्रवेश न भी करो, तब भी पुष्पों की सुगन्ध तो बता ही देती है कि बगीचा है। मन्दिर के सामने से निकलोगे, धूप की सुगन्ध और घण्टी की आवाज बता देगी, कि यह श्री जिनालय है। और मन में भाव आ गया, धोखे से भी सिर झुक गया, विश्वास रखना, कर्म की निर्जरा होगी।

धन्य हो सीता के लिए, कि जब उन्होंने जंगल में मुनिराज को आहार दिए तो जटायु ऊपर से देख रहा था। जब महाराज के आहार हो गए, तो उस पात्र में आकर बैठ गया और उसके पंख स्वर्णमयी हो गए। यह गुरुभक्ति की अनुभूति देखो, स्वर्णमयी पंख हो गए। जैसे-ही मुनिराज उसकी ओर देखते हैं—हे जीव! तूने दण्डक राजा की पूर्व पर्याय में पाँच सौ मुनियों को घानी में पेला था, उसका परिणाम यह हुआ है। जटायु को जातिस्मरण हुआ और शान्ति से बैठ

गया, उपदेश सुनने लगा—अभक्ष्य खाना छोड़ दे। अब बेचारा पक्षी कैसे पालन करता? जानकी समझ गईं। हे महाराज! आप व्रत दे दो, इसका पालन मैं करवाऊँगी। जब सीता जटायु पक्षी के व्रत का पालन करवा सकती है तो, हे माँ! यदि तुम अपने बच्चे के व्रत का पालन नहीं करा पाई, तो तू माँ किस काम की? आप बच्चे को समय पर स्कूल के लिए तैयार कर सकती हो, तो आप मन्दिर के लिए भी तैयार कर सकती हो। मन्दिर-पर-मन्दिर बन रहे हैं, जड़ प्रतिमाएँ रखी जा रही हैं। इन जड़ प्रतिमाओं की रक्षा कब होगी? चेतन प्रतिमाएँ तैयार नहीं होंगी तो जड़ प्रतिमाओं का क्या होगा? सुनो, मन्दिर में कोई पाप नहीं करना।

अन्य क्षेत्रे कृतं पापं, धर्मक्षेत्रे विनश्यति।
धर्मक्षेत्रे कृतं पापं, वज्रलेपो भविष्यति॥

यदि तुमने अन्य क्षेत्र में पाप किया है तो पुण्यक्षेत्र में उसका विनाश कर सकते हो और यदि पुण्यक्षेत्र में पाप कर बैठे, तो उसे समाप्त करने कहाँ जाओगे?

अन्य लिङ्गे कृतं पापं, जिनलिङ्गे विनश्यति।
जिनलिङ्गे कृतं पापं, वज्र लेपो भविष्यति॥

श्रमण से कह रहे हैं, हे दिगम्बर तपोधन! जगत् में किसी भेष में पाप हो जाए तो निर्ग्रंथ दीक्षा लेकर उसको समाप्त किया जा सकता है। यदि जिनलिंग में ही तुमने पाप कर डाला, तो उसको धोने के लिए तुम कौन-सा लिंग धारण करने जाओगे? देह तो देवालय है, आत्मदेव ही जिनदेव है। जब तक देह-देवालय में निवास करना, तब तक कोई पाप नहीं करना और देह देवालय जब दूर हो जाए, तो तुम्हें जो सूझे वह कर लेना। मन्दिर में जो देव हैं, वे तो पाषाण की प्रतिमाएँ हैं। बननेवाला सच्चा देव तो आत्मदेव ही देव है।

मल रहिओ, णाणमओ, णिवसइ सिद्धीए जारिसो सिद्धो।
तारिसओ देहत्थो, परमो बंभो मुणेयव्वो ॥26 तत्त्वसार॥

मलरहित, ज्ञानमयी, जैसा परमात्मा सिद्धालय में विराजा है, वैसा परमब्रह्म इस देह-देवालय में विराजा है। बने हुए देव के दर्शन करोगे तो स्वर्ग के देव ही बन पाओगे। देह-देवालय में विराजे ब्रह्म के दर्शन कर लोगे तो आप ही परमब्रह्म बन जाओगे। दो काम करना, एक तो मन्दिर की सम्पत्ति में राग मत करना और अपने घर में तुमने जमीन में गाड़कर रखा हो तो बच्चों को जरूर बता देना। देखो, मैं सच-सच बता रहा हूँ, फिर यह मत कहना कि हमें कोई बतानेवाला नहीं मिला। सबसे कह देना। मुझे आपकी सम्पत्ति नहीं चाहिए है, परन्तु मुझे आपकी आत्मा पर करुणा है। बिना बताए ऊपर चले गए, तो आगम में उल्लेख है कि पिता ने राज्य का खजाना

किसी को नहीं बताया और मरण कर गया और खजाने के राग में अगंधन सर्प हो गया। सर्प हुआ और कोई भी आए खजाने में तो उसको काटने दौड़ता था। ऐसे-ही तुमने जमीन में कहीं गाड़ दिया और नहीं तुम किसी को न बता पाए और उसके राग में आर्त्तध्यान से मरण हो गया, तो कालिया नाग बन गया। इसलिए जाने के पहले कुछ लेकर मत जाना, सब बताकर चले जाना।

सपेरे की टोकरी में कुण्डली मारकर उन्हें ही बैठना पड़ता है जो पहले जीवितकाल में अपने हृदय में राग की कुण्डली बनाए बैठे थे। जिनके अंतस् में लोभकषाय तीव्र बैठी है, उन जीवों की कुछ निश्चित पर्यायें हैं। तीव्र राग में गया तो था, तो कालिया नाग बने या वनस्पतिकाय बने। वनस्पतिकाय क्यों बने? इसमें तीव्र परिग्रह संज्ञा होती है। यदि किसी जीव के घर धन गड़ा हुआ है और उसके द्वार के बाहर वृक्ष हो, तो उसकी जड़ें उस धन की ओर जाती हैं और धन को लपेट लेती हैं। उनके अन्दर परिग्रहसंज्ञा है। किसी बेटे के द्वार पर नीम बनकर न खड़ा होना पड़ जाए। आज तटस्थ होकर भोजन की थाली पर जाना। भैया! विश्वास रखना, चाहे वह लौकी की साग हो, चाहे अमरूद हो, चाहे सेवफल हो, चाहे नाशपाती हो, जो तेरी थाली में लगकर आए हैं, वे तेरे भूत के बंधु हैं। जिनका तूने पूर्व में उपकार किया था, वे आर्त्त-रौद्रध्यान से मर गए और वनस्पतिकाय हुए हैं। वे ही तेरा ऋण चुकाने भोजनसामग्री बनकर आए हैं। इनको भी दया से सेवन किया कर। वनस्पति को जीव मानते कि नहीं? मानते हो न? इसलिए कम-से-कम सेवन करो। और न करो तो और अच्छा ही है। नहीं चलता तो कम-से-कम सेवन करो। राग की तीव्रता में सेवन करोगे तो कर्म का बंध भी तीव्र होगा। दाने-दाने का तेरा सम्बन्ध है। केवली नहीं है आज आपके सामने, नहीं-तो सबकी खोल-खोल कर बता देते, कि ये ऐसा। किसी व्यक्ति को देखकर एकदम राग उमड़ता है। जब किसी मुनि को देखकर भी गहरा भाव उत्पन्न हो तो ज्ञानी! पूर्व का कोई सम्बन्ध तेरा स्पर्श कर रहा है।

प्रबंधन मुनिराज ध्यानस्थ बैठे हुए थे। सम्राट पहुँचता है, सभी मुनियों को नमस्कार किया और प्रबन्धन मुनिराज को देखकर विशेष नमस्कार किया और हट ही नहीं रहा था मन। तो उनके गुरु से जाकर पूछता है, क्या कारण है कि इन मुनिराज को देखकर मेरा बार-बार राग उमड़ रहा है? तो वर्द्धमान नाम के मुनिराज, अपने अवधिज्ञान से, उनके पूर्व भव की व्याख्या करने लग गए। यह पूर्व भव का आपका ही सम्बन्धी है और इस कारण से आपको बार-बार राग उमड़ रहा है।

वह मेंढ़क सेठानी की गोद में बार-बार क्यों उचक रहा था? क्योंकि पूर्व भव में पति था। मरण करके मेंढ़क हो गया था। सामायिक करते-करते सेठानी सोच रही थी कि अंधेरा न हो जाए। सेठ जी नियम लेकर बैठे थे कि जब तक दीप जलेगा तब तक सामायिक करूँगा। परन्तु

धन्य हो, प्राण का वियोग हो गया, परन्तु सामायिक नहीं छोड़ी। भले ही आर्त्त-ध्यान से मरकर मेंढ़क बन गए, परन्तु धर्म के संस्कार तब भी अपना काम किए, कि मेंढ़क तीर्थंकर के समवसरण में जाने को चल दिया। धर्म कभी विफल जाता नहीं। जीवन में एक बार जिसने संयम धारण किया हो और कहीं उसका टूट भी जाए, तब भी किसी-न-किसी पर्याय में उसका टूटा संयम भी संस्कार के काम में आयेगा।

भैया! आजकल किराये पर मृत्यु के अवसर पर रोनेवाले मिलते हैं। मरनेवाले के प्रति उनका कोई स्नेह-प्रेम नहीं रहता है। जिस तरह बिना स्नेह के मरनेवाले के प्रति रोना व्यर्थ है, उसी तरह निर्ग्रंथ वेश धारण करने के पश्चात् यदि वैराग्य नहीं है तो वेश धारण करना व्यर्थ है। गुरु की खूब सेवा करते रहो, परन्तु उनके प्रति विनय नहीं है तो सेवा व्यर्थ है। कर्ण की विनय, सेवाभक्ति गुरु के प्रति देखो। कीड़ा काटता रहा, पर उसने अपनी जंघा से गुरु का सिर नहीं हटाया। गुरु के प्रति विनय ऐसी होनी चाहिए कि जिसमें कोई प्रश्नचिह्न न हो। गुरु अंकपनाचार्य के कथन पर कि जहाँ मन्त्रियों से शास्त्रार्थ हुआ था वहीं जाकर सामायिक करो, श्रुतसागर महाराज ने कहा—'जैसी आज्ञा।' कोई प्रश्न नहीं, कोई झिझक नहीं कि क्या हो सकता है?

यदि तुमने कोई दान दिया है और बार-बार उसकी चर्चा कर रहे हो तो अन्दर से तुम्हारा लोभ छूटा नहीं है। किसी वस्तु का त्याग करने के बाद भी बार-बार स्मरण आ रही है तो अन्दर से उसके प्रति राग कम नहीं हुआ है। जैसे विधवा स्त्री को श्रृंगार करना शोभा नहीं देता है, वैसे-ही निर्ग्रंथ भी वैराग व संयम के बिना शोभा को प्राप्त नहीं होता है। उसका निर्ग्रंथ वेश निरर्थक है, मात्र वेश ही है। उससे कल्याण होनेवाला नहीं है।

"आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

॥ भगवान् महावीर स्वामी की जय ॥

❖ ❖ ❖

फल को कौन प्राप्त करता है?

वत्थुसमग्गो णाणी, सुपत्त दाणी फलं जहा लहदि।
णाण समग्गो विसयपरिचत्तो लहदि तहा चेव॥74॥

अन्वयार्थ—(जहा) जैसे **(वत्थुसमग्गो)** समस्त पदार्थों से युक्त **(सुपत्तदाणी)** सुपात्रों को दान देने वाला **(णाणी)** ज्ञानी **(फलं)** फल **(लहदि)** पाता है **(तहा)** वैसे **(चेव)** ही **(विसयपरिचत्तो)** विषयों का त्यागी **(णाणसमग्गो)** ज्ञान से युक्त ज्ञानी **(लहइ)** फल पाता है।

समकित, ज्ञान, वैराग्य औषधि

भू महिला - कणयादि -लोहाहि विसहरं कहं पि हवे।
सम्मत्त-णाण-वेरग्गोसहमंतेण जिणुद्दिट्ठं॥75॥

अन्वयार्थ—(भू) जमीन **(महिला)** स्त्री **(कणयादि)** स्वर्ण आदि के **(लोहाहिविसहरं)** लोभरूपी सर्प और विषधर सर्प को **(कहं पि हवे)** चाहे वह सर्प कैसा ही हो **(सम्मत्तणाणवेरग्गोसहमंतेण)** सम्यक्त्व, ज्ञान, वैराग्य रूपी ओषधि और मंत्र से वश में किया जा सकता है, **(जिणुद्दिट्ठं)** ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है।

मुनिदीक्षा के पूर्व दस मुण्डन आवश्यक

पुव्वं जो पंचिंदिय, तणु-मण-वचि-हत्थ-पाय-मुंडाओ।
पच्छा सिर मुंडाओ, सिवगइपहणायगो होदि॥76॥

अन्वयार्थ—(जो) जो **(पुव्वं)** पहले **(पंचिंदिय, तणु-मण-वचि-हत्थ-पाय-मुंडाओ)** पाँचों इन्द्रियों, शरीर, मन, वचन, हाथ, पैरों को मूंडता है, वश में करता है **(पच्छा)** पश्चात् **(सिर मुंडाओ)** सिर मुंडाता है, केशलुंचन करता है—वह **(सिवगइपहणायगो)** मोक्षमार्ग का नेता **(होदि)** होता है।

भव्य बन्धुओ!

अन्तिम तीर्थेश भगवान् वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना, जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोस्तु शासन जयवंत हो, जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति। आचार्यभगवान् कुन्दकुन्द स्वामी रयणसार जी ग्रंथ में श्रमण-श्रावक धर्मों की व्याख्या कर रहे हैं। वे श्रमण धन्य हैं, जिन्होंने संसार, शरीर, भोगों से विरक्त होकर निज आत्मरमणी से रमण करने के परिणाम किए हैं। वे श्रावक धन्य हैं,

जो ऐसे योगियों की भक्ति में लवलीन हैं। एक साधना करके कर्म की निर्जरा कर रहा है, दूसरा साधना में सहयोगी बनकर कर्म की निर्जरा कर रहा है। यह संयम की महिमा है कि संयम में कभी परिणाम बूढ़े नहीं होते, देह बूढ़ी हो सकती है। परन्तु जिसकी उत्साहशक्ति जवान है, उसकी देह का बूढ़ापन चारित्र के लिए कोई हानिकारक नहीं होता।

कुन्दकुन्द स्वामी कह रहे हैं—जैसे कोई दरिद्रीजीव मणि-मुक्ताओं को देखकर उठाने दौड़ता है, वे तो जड़रत्न हैं, परन्तु सम्यग्दृष्टि जीव रत्नत्रयधारी को देखकर दौड़ पड़ता है कि कहीं ये तपोधन हमारे यहाँ से बाहर चले न जाएँ। यह सम्यग्दृष्टि जीव की पहली पहचान है। धर्म-धर्मात्मा को देखकर जिसका चित्त आह्लादित होता है, यही संवेग भाव है। आपके अंदर धर्म है या नहीं है, इन भावों को हम अपने भावों से नहीं पहचान पायेंगे। परन्तु आपके अंदर धर्म है या नहीं, यह आपकी भाव-भंगिमा से अवश्य पहचान पायेंगे। जिसके चेहरे की भंगिमा न बदली हो धर्मात्मा को देखकर भी, समझ लेना उसके अन्दर धर्म की शून्यता है। टपका जानते आप? आम के वृक्ष से टपका टपके और तेरे मुख में लार न टपके। एक टपका को देखकर बालक का चेहरा बदल जाता है तो भगवानात्मा को देखकर जिसके चेहरे पर प्रसन्नता न आए तो सम्यग्दृष्टि कैसा? सम्यक्त्व की पहचान, चित्त का आह्लाद चेहरे पर आता है।

जब जगत् के सारे उपकरण फेल हो जाते हैं कि किसके मन में क्या है, तब चेहरा ही उपकरण बनकर आता है। भीतर के भाव चेहरे पर नज़र आते हैं। किसी से पृच्छना मत करना कि इसकी परिणति कैसी चल रही है। चेहरा कह देगा, इसकी चेहरे की गति इसकी परिणति बता रही है। पुरुष कामी है, क्रोधी है, मानी है, लोभी है, रागी-द्वेषी है, यह चेहरे पर लिखकर आ जाता है। कितना भौतिकविज्ञान ने विकास कर लिया कि भीतर के यन्त्रों को भी फोटो पर देख लेता है। वह भी देखना आना चाहिए। ई.सी.जी. की मशीन होती है, एक लम्बा-लम्बा कागज निकलता चला जाता है और किसी व्यापारी से पूछना—बताओ इसमें क्या है? जिस व्यक्ति (डॉक्टर) को उस विषय में ज्ञान होगा, वह जान लेता है कि इसका हृदय क्या बोल रहा है। इसके हृदय में क्या रोग, क्या पीड़ा है। जैसे ई.सी.जी. के कागज को विशेषज्ञ पढ़ना जानता है, ऐसे-ही जीव के चेहरे को पढ़कर अन्दर की सारी बात जाननेवाले जगत् में जीव हैं। सम्यक्त्व भी चेहरे पर झलक जाएगा, मिथ्यात्व भी चेहरे पर झलक जाएगा कि भावों की परिणति क्या चल रही है। यदि जीव के अंतरंग के भावों को समझने की धारा है, तो जीव का चेहरा है।

किसी इंसान से ही मत पूछना, चेहरे की पहचान करना तो श्वान भी जानता है। वह नादिया बैल आता है, वह भी तुम्हारा चेहरा पढ़ लेता है। एक वृषभ आपके चेहरे को पढ़ लेता

है, मुट्ठी के द्रव्य को पहचान लेता है, तो हे ज्ञानी! तू तो इंसान है। जीव की परिणति की गति को समझना है तो जीव के चेहरे को समझना सीखो। दृष्टि के बाद दृष्टि जा रही है, तो बात कुछ और है। एक सहज दृष्टि चली जाए, तो सामान्य था। देखने के बाद पुनः तुमने वस्तु को देखा है, इसका तात्पर्य है कि बात कुछ और है। जब जीव को कोई वस्तु-विशेष रुचिकर होती है, उस पर पुनः पुनः दृष्टि फेंकता है। जिसको प्राप्त करना चाहता है, उसी पर आँख जाती है। जिसको भगवत्ता चाहिए है, वह भगवान् को निहारेगा। जिसको नरक जाना है, वह बहुआरंभ-परिग्रह को ही देखेगा। आज किसी से कुछ नहीं पूछना है। स्वयं को खोजना।

बाजार विशाल है। बाजार में सोना भी बिकता है, चांदी भी बिकती है। उसकी कीमत बहुत होती है। परन्तु जब सुबह व्यक्ति थैला लटकाकर जाता है तो न सोने की दुकान पर आँख फेंकता है, न चांदी की दुकान पर आँख फेंकता है, अपितु ठेलेवाले को देखता है। आदमी पहचान लेगा कि यह खरीदना क्या चाहता है? ऐसे-ही, तीनलोक के नाथ के मन्दिर में आकर भी आदमी की आँख से पहचान लोगे कि यह आया क्यों है? अरिहंत के जिनालय में आकर, निर्ग्रंथ के चरणों में बैठकर, वीतराग जिनेन्द्र की वाणी को सुनते हुए भी, आँख पढ़ लेना, आँख पकड़ लेना, यह आँख बार-बार कहाँ जा रही है? यह यहाँ देव-शास्त्र-गुरु को भजने नहीं आया है, कोई दूसरे ही काम से आया है। आँखों से जिनवाणी पढ़ना जानते हो तो आँखों से आँखें पढ़ना भी सीखो। नयनों से जिनवाणी पढ़ोगे तो अन्दर के छल से बच जाओगे और नयनों से नयन पढ़ लोगे तो बहिरंग के छल से बच जाओगे, पर के छल से निज को बचा पाओगे। आँखों में टपकता अमृत है, आँखों में टपकता जहर है। वात्सल्य झलकेगा तो नयनों से झलकेगा और कषाय भी टपकेगी तो नयनों से टपकेगी। संभालो नयनों को। इनमें आकर्षण भी है, इनमें शोषण भी है, इनमें पोषण भी है। माँ जब अपने लाल को जब देखती है, तो बिना दूध पिलाये, बिना पेड़ा खिलाये बेटा मुस्कुरा जाता है। माँ जब अपने बेटे को स्नेह का पेड़ा खिलाती है, तो रोता बेटा मुस्कुरा जाता है। उस बेटे के लिए जननी बनकर तू अमृत बन गई थी और वहीं तू अपने सौत के बेटे को देखती है तो खेलता बेटा सहम जाता है। उस समय आँखें क्या हो गयीं?

भीतर का भेद बाहर की आँखों में टपकता है। निर्ग्रंथ मुनि बनने के जिनके परिणाम हों, वे संभलकर सुनना। जो आँखें बेटे के प्रति जा रही थीं, वे आँखें विश्व के प्रति चली जायें, तो तुम मुनि बन जाना। यदि बेटे और विश्व के प्रति भेद करें, तब तक तुम घर में रहना। माँदृष्टि न आ पाए, तो महात्मादृष्टि कहाँ से आएगी? राग से, पाप से जब माँ एक-दो को जन्म दे आँचल में दूध ला लेती है, तो ज्ञानी! न राग से, न पाप से, जो विश्व की माँ बनता हो, उसका नाम महात्मा है। उसका सर्वांग दुग्धमय होता है, उसका नाम तीर्थंकर परमात्मा है।

चेहरे में सफेदी आना चाहिए। यह तो किसान भी जानता है—अरे भैया! क्यों लाल हो रहा है। रक्त तो लाल था ही, जैसे-ही कुपित होता है तो रक्त की लालिमा चेहरे पर झलकना प्रारम्भ हो जाती है। और जितना शान्त होगा, रक्त का लाल रंग भी धवलता को प्राप्त होगा। ज्ञानियो! रक्त ही शरीर में लाल रहे, रक्त ही रक्त रहे, परिणाम रक्त न हों, परिणाम धवल शुक्ल हों, तभी शुक्ललेश्या की परिणति बनेगी। और शुक्ललेश्या की परिणति जिसकी बन पाएगी, वही शुक्लध्यान के योग्य पुरुषार्थ कर सकेगा। आज /सम्प्रति (वर्तमान काल) में शुक्लध्यान नहीं है, लेकिन शुक्लध्यान की प्राप्ति के योग्य आत्मा आज भी है। जब किसान ने बीज बोया था, चने को बोया गया था, अंकुरण होते ही उस अंकुर में क्या-क्या है? उस अंकुर में भजिया है, बूंदी के लड्डू भी हैं, उसमें बुण्देलखण्ड की कढ़ी, लपटा भी है, लेकिन ज्ञानी! कहीं जीभ को चलाकर अंकुर को चबा मत लेना, उसमें कुछ नहीं मिलेगा। परन्तु उस अंकुर में सबकुछ है। थोड़ा रुक जाओ, समय दे दो, समय आएगा, काल पकेगा, अंकुर हो पौधा होगा, पुष्पित होगा, फलित होगा, उसमें दाने भी आयेंगे, तेरे घर जब आयेंगे तो तू इन सबका स्वाद ले पाएगा।

इस पंचमकाल में भी शुक्लध्यान की योग्यता से सहित यह आत्मा है। कैवल्य की योग्यता से युक्त भी यह द्रव्य है। अशरीरी सिद्धत्व शक्ति से युक्त यह द्रव्य है। लेकिन इसको चबा मत डालना, इसको उगने दो। आज के भद्र परिणाम ही कल का भगवान् बनायेंगे। जब-जब इन योगियों को देखता हूँ तो लगता है कि इस खोटे काल में भी आप बीज को अंकुरित कर चुके हो। यह बीज-अंकुर न्याय है। कारण है, तो कार्य है। कार्य है, तो कारण है। कारणोपलब्धि सिद्धि। जैनन्याय-दर्शन की बहुत कमी आ रही है समाज में, उस पर जोर दो। देह चली जाएगी, देही दूसरी देह को प्राप्त कर लेगा। लेकिन जब तक देह है, तब तक इस दिगम्बर जैनसमाज को कुछ देकर जाओ।

जैनन्याय-दर्शन की कमी आ रही है। कोई आपसे पूछे कि सत्यार्थ-धर्म क्या है? तो आप कहोगे कि वीतराग धर्म ही सत्यार्थ धर्म है, देखो, ये हमारे शास्त्रों में लिखा है। भैया! तुम्हारे शास्त्र मानने वाले मात्र तुम ही हो। सारा जगत् तुम्हारे शास्त्र नहीं मानता। हमारे शास्त्रों को सारा जगत् मान लेता तो दूसरे शास्त्र ही न लिखे जाते। क्योंकि मेरा शास्त्र ही सत्य है, यह तो हम श्रद्धा-भक्ति से बोलते हैं कि हमारे भगवान तीनलोक के नाथ हैं। परन्तु तीनलोक के नाथ को भी तीनलोक के जीव मानने वाले नहीं थे। यदि मानते होते तो आज कोई मिथ्यादृष्टि जीव न होता। तीनलोक के नाथ को तीन लोक में वे ही जीव मान पाते हैं जिनकी त्रिलोकीनाथ बनने की योग्यता होती है। मुनिराज बनकर इस अहंकार में मत डूब जाना कि मुझे तो सारा विश्व पूजता है। इस भ्रम को छोड़ देना। तीर्थंकर महावीर के होने पर भी सारे विश्व में महावीर को मानने

वाले नहीं थे तो तुमको माननेवाले कहाँ से हो गए? यदि दूसरे को माननेवाला कोई बैठा है इसका तात्पर्य है कि वह तुमको माननेवाला नहीं है। योगियों को भ्रम हो जाता है कि मैं ही सबकुछ हूँ। तुम सबकुछ होते तो दूसरे के पास लोग क्यों गए होते? आप 'सबकुछ' कहना बन्द करो।

आप तो यह कहो—मैं शिवसुख-भोक्ता बननेवाला हूँ। जब तक 'सबकुछ' पर दृष्टि रहेगी, तब तक 'शिवसुख' मिलनेवाला नहीं है। जिसकी शिवसुख पर दृष्टि है, वह अपने आप में सबकुछ है। जगत् की पूज्यता मुझे पूज्य नहीं बनाती, मेरे गुणों की पूज्यता मुझे पूज्य बनाती है। यदि गुण मेरे अन्दर हैं, तो जगत् का पूज्य स्वयमेव हो जाता है। जो यह सोच रहा है कि कितने लोगों ने वंदना की है, तो लोगों की वंदना की प्रमाणिकता आपके संयम की प्रमाणिकता नहीं है। आपके संयम की प्रमाणिकता आपकी वंदना की प्रमाणिकता हो सकती है। लोगों की भीड़ को अपनी पूज्यता का प्रमाणपत्र मत समझ लेना। अपने अंतरंग में गुणों की भीड़ देखकर अपनी पूज्यता की प्रमाणिकता दे देना। भीड़ तो डमरूवाला भी बुला सकता है। भीड़ तो सिनेमा हॉल में भी लग सकती है। भीड़ कोई आपकी गुणता की प्रमाणिकता नहीं है। जिनशासन में भीड़ की पूजा नहीं है, जिनशासन में गुणों की पूजा है।

ण वि देहो वंदिज्जइ ण वि य कुलो ण वि य जाइसंजुत्तो।
को वंदमि गुण हीणो ण हु समणो णेव सावओ होइ॥27 दंसण पाहुड़॥

कुन्दकुन्द स्वामी कह रहे हैं—गुणहीन चाहे श्रमण हो चाहे श्रावक हो, इन दोनों की जिनशासन में वन्दना नहीं है। यह मत पूछना आज से किसी से, कि बताओ, मैं धर्मात्मा हूँ कि नहीं? स्वयं शान्ति से बैठकर अनुभव कर लेना कि मेरी कषाय-परिणति कैसी चल रही है। आपके लिए प्रमाणपत्र धर्मात्मा का देगा तो शरीर की कोई क्रिया को देखकर देगा और तू अपने आप को प्रमाणपत्र देगा तो परिणामों को देखकर देगा। भैया ! बहुत सारे काले लोग भी इतना पाउडर लगा लेते हैं कि दूर से टॉर्च मारो तो सफेद दिखें। कपड़े खरीदने जाना तो दिन में जाना और ऐसे समय में जाना जब बिजली चली जाए। ये कपड़े की दुकान वाले इतने अज्ञानी नहीं हैं कि दिन भर बिजली का बिल चुकायेंगे। किसी की आँखों में कुछ झोंकने के लिए ही बिजली जलाते हैं। जैसे बिजली के प्रकाश में वस्त्रालय में वस्त्र चमकते हैं, ऐसे-ही काले लोगों पर तुम पाउडर चिपका दो और प्रकाश फेंको तो वह भी चमकने लग जायेंगे। परन्तु ध्यान रखो, यह कब तक? जब वह मूसलाधार पानी में खड़ा हो आंगन में, तब उसका चेहरा देखना। तब मालूम चलेगा कि यह गोरा चेहरा था कि काला चेहरा था। ऐसे ही, माया का पाउडर जिसके हृदय में चमक रहा हो, तब तक पुरुष की पहचान नहीं होती है। जब माया का पाउडर जिनवाणी के

पानी से धुल जाए, फिर देखना, कि जीव की परिणति क्या है? इसलिए किसी से मत पूछना—मैं धर्माता हूँ कि नहीं। तू स्वयं जान लेना—मैं धर्मात्मा हूँ कि नहीं। जिनशासन में, न वय की पूजा है, न लिंग की पूजा है। जिनशासन में गुणों की पूजा है। वय बचपन की हो जाए तो तनाव नहीं है, परन्तु परिणति बचपन की नहीं होनी चाहिए। "गुणेषु क्रियताम् प्रियता"—गुणों में ही प्रेम होता है। हे ज्ञानी! गाय को घर में इसलिए बांधा गया है कि उसकी घण्टियाँ अच्छी लगती हैं गले में? गाय की घण्टियाँ अच्छी लगती हैं तो वे घण्टियाँ तू अपने गले में टांग ले? गाय की घण्टियों की वजह से तू गाय को नहीं रखता है। किसान भी गाय को घास डालता है, उसकी सेवा करता है। ज्ञानी! गाय की सेवा उसके गले की घण्टियों के लिए नहीं, उसके आँचल में भरे दुग्ध के लिए हो रही है। ऐसे-ही हे मुनिराजो! आपकी सेवा आपके दिगम्बर भेष को नहीं हो रही है, यह रत्नत्रय धर्म की पूजा हो रही है। भावों की विशुद्धि की पूजा हो रही है। गाथाओं में कह दिया है—यह सिर मुड़ाकर बैठने की आवश्यकता नहीं है। मैं स्वयं भी मुनि बना हूँ, लेकिन इस भेष के लिए मुनि नहीं बना हूँ, भावों की आराधना के लिए मुनि बना हूँ। निर्ग्रंथ मुनि के रत्नत्रय भावों को जो एक बार वन्दना कर लेता है, उसके भव-भव में बंध स्वयमेव टूट जाते हैं। निर्ग्रंथ मुनि के परिणामों को जिसने नमस्कार कर लिया है, विश्वास रखना, उसके चारित्रमोहनीय कर्म के शैल चकनाचूर हो गए हैं। जब भी मुनि बनने का अवसर मिलेगा तो मुनिभावों की वन्दना मान से मुनि नहीं बन पाएगा।

चारित्रमोहनीय कर्म की क्षपणा करने का कोई स्थान है, तो निर्ग्रंथों की भक्ति, इनके भावों की आराधना है। जिसने निर्ग्रंथों की अवहेलना की है, दीक्षामंच पर भी पहुँच जाए, तो भाव बिगड़ जाएँ और वहाँ से भी उतर आये। भैया! हाथ में आए पिच्छि-कमण्डलु चले जाते हैं। वीतरागी तपोधन बनने के भाव हों तो दो बातें अपने हृदय से आज ही निकाल देना। जैसे गोभी का कीड़ा मस्तिष्क में गया, कीड़ा मस्तिष्क को काटता है, उसकी शल्यक्रिया भी नहीं हो रही, क्योंकि ऐसे स्थान पर गया है कि शल्यक्रिया हुई तो पूर्ण निशल्य हो जाए। ऐसे-ही ध्यान रखना, निर्ग्रंथों के प्रति अश्रद्धा का कीड़ा चारित्र के गुण को खोखला कर देता है और हाथ में आई पिच्छि-कमण्डलु भी छूट जाता है। जिनकी परिणति वे जानें। जिस कटोरे में रत्नत्रय भरा हो, उसे सम्मान से देखना चाहिए। निर्ग्रंथ मुनि को स्वयं के प्रति ही सम्मान होना चाहिए। निजनाथ से मिलना है तो जिननाथ की बात सुनो। जिननाथ ने कहा है कि—हे योगीश्वर! जैसे पर तेरी पर्याय का सम्मान करते हैं, उससे कोटि-कोटि गुणा तुझे अपने परिणामों का सम्मान करना चाहिए। निज के रत्नत्रय भावों को संभालकर रखना ही निज परिणामों का सम्मान है। जो जिननाथ की बात नहीं मानता, वह निजनाथ को कभी प्राप्त कर नहीं पाएगा। पर्याय छिल

रही हो, भिद रही हो, उसका तनाव मत करना लेकिन जिननाथ की बात को कभी झूठा कहने का प्रयास मत करना। हम नहीं चल पा रहे हैं आगम के अनुसार, इस बात का तनाव मत करना, परन्तु आगम कहने के लिए चूक मत करना।

अरिहंत की गद्दी पर प्रवचन करने आना तो ऐसी वाणी बोलना कि अबाल-वृद्ध सभी का मुनि के प्रति सम्मान बढ़े। पिच्छिधारियों के प्रति अपमान की भाषा जीवन में कभी मत बोलना। क्या पता कितने भव इनके अवशेष हों? अभी तुम्हारे सामने हैं, अभी अवसर है, हाथ पर ग्रास रख लो। जब सिद्धशिला पर पहुँच जायेंगे तो हाथ ही जोड़ पाओगे, ग्रास नहीं रख पाओगे। पानी की बूंद से कीचड़ भी होती है, पानी की बूंद से वाष्प भी बनती है। जो कीचड़ होती है, वह अनेक लोगों को मलिन कर देती है और स्वयं पानी अपने अस्तित्व को कीचड़ रूप में निहार लेता है। वाष्पित होता है तो आकाश में जाता है और कितने लोगों के सूखे कण्ठों को गीला करता है, सूखी भूमि को हरी-भरी कर देता है। निहारो, जीव के परिणाम और पुण्य की दशा कीचड़ भी कर देती है और परमात्मा भी बना देती है। पुण्य की सत्ता में ही नरक जा पाएगा। क्षीण-पुण्यों को नरक जाने का सौभाग्य है ही नहीं।

जो मुनिदीक्षा लेने का विचार कर रहे हैं, उनको सबसे पहले पाँचों इन्द्रियों को वश में करना चाहिए। जब एक-एक इन्द्रिय के वशीभूत होने पर जीव के प्राण चले जाते हैं, तो जहाँ पाँचों इन्द्रिय हैं, वहाँ बहुत सावधानी की आवश्यकता है।

अलि-पतंगा-मृग-मीन-गज याके एक ही आंच। जैसे—अलि यानि भौंरा घ्राण इन्द्रिय अर्थात् फूलों की सुगन्ध के कारण कमल पुष्प में बंद होकर मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। पतंगा नेत्र-इन्द्रिय के वशीभूत होकर, हिरण सुन्दर संगीत सुनने के कारण, मछली रसना के लिए एवं हाथी स्पर्शन इन्द्रिय के वशीभूत होकर हथिनी को पाने के प्रयास में दु:ख को प्राप्त होता है।

जो मनुष्य दीक्षा को धारण करना चाह रहा है, उसके तो पाँचों इन्द्रिय हैं। अत: सर्वप्रथम शरीर-मन-वचन-हाथ-पांव आदि को वश में करना चाहिए। क्योंकि कहा गया है—"जैनेश्वरी दीक्षा स्वेछाचार विरोधनी"। निर्ग्रंथ मुनि स्वेच्छाचार, से रहित होता है। वह स्वच्छन्दी नहीं होता है। जो इन्द्रिय आदि को वश में न कर मात्र केशलुंचन करता है, वह वेशमात्र से ही मुनि हो सकता है। वह निर्वाण को कभी प्राप्त नहीं हो सकता है। वह चित्रमुनि ही है।

"आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

॥ भगवान् महावीर स्वामी की जय ॥

❖ ❖ ❖

भक्ति बिना सब शून्य

पदिभत्ति-विहीण सदी, भिच्चो जिण-समय-भत्तिहीण जण्णो।
गुरुभत्ति-हीण सिस्सो, दुग्गदि-मग्गाणु-लग्गओ णियदं॥77॥

अन्वयार्थ—(पदिभत्ति-विहीण) स्वामीभक्ति से रहित **(सदी)** सती और **(भिच्चो)** भृत्य **(जिण-समय-भत्तिहीण)** जिनेन्द्रदेव, जिनागम की भक्ति से रहित **(जण्णो)** जैन **(गुरुभक्ति-हीण सिस्सो)** गुरुभक्ति से रहित शिष्य ये **(णियदं)** नियम से **(दुग्गदि)** दुर्गति के **(मग्गाणु-लग्गओ)** मार्ग में संलग्न हैं।

गुरुभक्ति रहित शिष्य का चारित्र निष्फल है

गुरुभत्ति-विहीणाणं सिस्साणं सव्व-संग-विरदाणं।
ऊसर-खेत्ते ववदिं सुवीय-समं जाण-सव्वणुट्ठाणं॥78॥

अन्वयार्थ—(सव्व-संग-विरदाणं) सब परिग्रहों से रहित किन्तु **(गुरुभत्ति-विहीणाणं)** गुरुभक्ति से विहीन **(सिस्साणं)** शिष्यों के **(सव्वणुट्ठाणं)** सभी अनुष्ठान, जप-तप-व्रत आदि **(ऊसर खेत्ते)** ऊसर भूमि में **(ववदिं)** बोये गये **(सुवीय समं)** उत्तम बीज के समान **(जाण)** जानो।

अनुष्ठान निष्फल है

रज्जं पहाण हीणं, पदिहीणं देस-गाम-रट्ठ बलं।
गुरुभक्ति-हीण सिस्साणुट्ठाणं णस्सदे सव्वं॥79॥

अन्वयार्थ—(पहाण हीणं) प्रधान से हीन **(रज्जं)** राज्य **(पदिहीणं)** स्वामी से विहीन देश और **(गुरुभक्तिहीण)** गुरुभक्ति से विहीन **(सिस्सा)** शिष्य के **(सव्वं)** सभी **(अणुट्ठाणं)** अनुष्ठान **(णस्सदे)** नाश को प्राप्त हो जाते हैं।

भव्य बन्धुओ!

अन्तिम तीर्थेश भगवान् वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना, जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति। आचार्यभगवान् कुन्दकुन्द स्वामी रयणसार जी ग्रंथ में श्रमण-श्रावक उभय धर्मों की व्याख्या कर रहे हैं। ज्ञानी! तू श्री शान्तिनाथ विधान क्यों कर रहा है? बोले, भगवन्! शादी नहीं हो रही है, इसलिए हम शान्तिविधान करे ले रहे हैं। अधर्म के लिए धर्म कर रहा है। विश्व में सर्वाधिक संख्या अधर्म के लिए धर्म करने वालों की है। धर्म के लिए

धर्म करेगा, वहाँ किंचित् भी अधर्म नहीं है। अधर्म के लिए धर्म कर रहा है। णमोकार भी पढ़ रहा है तो दुकान के ताले के पैर पड़कर पढ़ रहा है। ठीक है, एक अपेक्षा से बहुत अच्छा कर रहा है, कम-से-कम भगवान् का नाम तो ले रहा है। लेकिन सत्यता की बात करोगे, तो सत्य बताना, दुकान खोल रहा है, कह रहा है—हे भगवान्! अच्छा दिन निकले। यानि हमारी झूठ ऐसी चले कि कोई पकड़ न पाए। देखो, छोड़ न पाएँ, यह विषय भिन्न है, लेकिन ज्ञान भी तो होना चाहिए कि वस्तुव्यवस्था क्या है? देखो, यह वस्तुस्वभाव की व्याख्या है। आप जो कह रहे हो व्यवहार में, करो, लेकिन यह तो स्वीकार करना ही पड़ेगा, कि यह वस्तुधर्म नहीं है।

भैया! हर श्वान को कोई रोटी नहीं खिलाता, परन्तु जिसके द्वार पर बैठकर जो पूँछ हिलाकर जरा आवाज निकालता है तो उसके प्रति भी थोड़ा राग आ जाता है। जिस भूमि पर कभी फूल फेंके जाते थे, आज कोई धूल डालनेवाला नहीं है। एक खोपड़ी पड़ी थी श्मशान घाट पर, किसी व्यक्ति की ठोकर लग गई। खोपड़ी से आवाज निकली—ज्ञानी! मत ठोकर मार, जरा देखकर चल, "सबके दिन एक-से नहीं होते।" कभी यह सिंहासन पर रहता था, आज पैरों की ठोकरें खा रहा है। जिसके लिए दुनियाँ की खोपड़ियाँ झुका करती थीं, आज वह पैरों की ठोकरें खा रही है। राख भी कह रही है कि मैं उसकी राख हूँ जिससे दुनियाँ राग करती थी। हंस चला गया, राख पड़ी है। कोई किसी का नहीं होता। "होता वही है, जो होता है।" इसलिए सबके साथ रहो, प्रेम-वात्सल्य के साथ रहो, परन्तु जीवन में कौन किसका है? पुण्य की श्वास है, तो श्वास देखने भी लोग आ जायेंगे। जिसकी पुण्य की श्वास पहले निकल गई और श्वास बाद में निकली, तो कोई देखने भी नहीं आएगा।

संयमी भेष बनाने के पहले भावों को संयमित करना आवश्यक है। भाव-अहिंसा जिसकी समाप्त हो चुकी है, उसकी द्रव्य-अहिंसा मोक्ष नहीं भेज पाएगी। इसलिए ग्रंथ पर ध्यान दो। निहारो ग्रंथ को, समझो निर्ग्रंथ को। यह भावों के निर्ग्रंथ की चर्चा चल रही है। यदि मेरे मन में यह भाव आता है कि ये सारे जीव मेरे भक्त बनकर रहें, तो आगम कहेगा कि अभी तुम्हारी भाव-अहिंसा का पालन नहीं है। इसलिए नहीं है, क्योंकि तुम एक परिवार को छोड़कर आए हो और हजारों भक्तों के परिवार में उलझ गए। हे ज्ञानी! इनको कहाँ संभालकर रखेगा? निर्बंध होने आया था, भक्तों के बन्धन में पड़कर आत्मा को नीचे ढकेल दिया।

जिन-जिन को सरस्वती सिद्ध करना हो वे सब मौन ले लो और जिनवाणी का अध्ययन करो। कम बोलोगे तो अच्छा बोलोगे। कुन्दकुन्द स्वामी कह रहे हैं—गुरु बनाना तो जानकर बनाना और जिसे गुरु बनाया है, उसे फिर मिटाना नहीं। बनाने के पहले पूर्ण परीक्षा करना चाहिए।। मेरा स्वामी जब तक नहीं आया, पानी नहीं पीऊँगी और मालूम पड़ा कि कुबड़े के पास चली गई, लात खा रही है। अपने नाम के आगे लिखे सती, और सोच रही है कि यह

परमेश्वरो कब मर जाए तो मैं कुबड़े के साथ भाग जाऊँ। मांग भरी है, हल्दी चढ़ी है, मेंहदी रची है और दृष्टि किसी दूसरे से लगी है, यह ढ़ोंग किस बात के? पति की भक्ति से विहीन सती और जिनेन्द्रदेव के शासन की भक्ति से रहित शिष्य। मुनि बनकर घूमने लग गए और जिनवाणी का ज्ञान भी नहीं और श्रद्धान् भी नहीं। जो मुनि एकलविहार करें, तो ध्रुव सत्य है कि उनको जिनवाणी में कोई श्रद्धा नहीं है। जिनवाणी पर श्रद्धा होगी तो कभी एकलविहार के भाव नहीं आ सकते हैं। जिसे गुरु बनाया था, पहले सोचना चाहिए था। गुरु से पट नहीं रही है, ध्रुव सत्य है कि कहीं-न-कहीं तेरा 'गुरू' खड़ा है। जिसका अहंकार का गुरू खड़ा हो जाता है, वह गुरु से दूर हो जाता है। और जिसके अन्दर गुरु का गुरू विराजा होता है, तो विनय झलकती है। वह शिष्य कभी गुरु से दूर हो नहीं सकता है। गुरु कितनी ही दूर रहें, परन्तु शिष्य को गुरु से दूर नहीं होना चाहिए। शिष्य! तू ध्यान रख, तू पतंग है। जब तक मंजा है, तब तक गगन में पतंग उड़ रही है। जब मंजा टूटा, तो पतंग का क्या होगा? पतंग का पतन ही होगा। झाड़ी में उलझ कर गिरेगी यह। मैं स्वयं अनुभव कर रहा हूँ कि जो शिष्य गुरु के आशीष तले जी रहे हैं, वे गगन में उड़ रहे हैं और जो गुरु से टूट गए हैं, वे पतंग की भांति झाड़ी में उलझ गए हैं। गुरुकृपा जब होती है, तो सब विद्यायें अपने आप झलकती हैं। गुरु जैसा कहेंगे, वैसा चलोगे, तो तुम पिच्छिधारी ही नहीं, भगवान् बन जाओगे। और गुरु ने जैसा कहा, तुम उल्टे चलने लग गए, तो ज्ञानी! इंसान भी नहीं रह पाओगे। जितने यहाँ पिता बैठे हैं, आपसे मैं कुछ नहीं माँगता हूँ। बस, इतना कर देना कि आपकी संतान धर्मसभा में आगे बैठने के योग्य बन जाए।

जब आचार्य विरागसागर जी कमरे में बिठालकर पढ़ाते थे मुझे, और मुझे कुछ याद नहीं होता था। क्या करें? सबके दिन एक-से नहीं होते। हे भगवान्! ऐसे गरीबी के दिन किसी के न आयें, जैसे हमने देखे। आप समझो गरीबी किस बात की? स्लेट पर लिख-लिखकर याद करता था। तब भी याद कुछ भी नहीं होता था। परन्तु इतना याद था कि गुरुचरणों की भक्ति नहीं छोड़ना चाहिए। जो गुरु कह रहे हैं, वह सत्य है। उसमें मैंने जीवन में कभी किम् और क्या नहीं कहा। जब भी तुम शिष्य बनो, तो बटलोई का ठक्कन बनकर मत जीना। जी सको तो बटलोई की पेंदी बनकर जीना। जब गुरु पर फूल बरसते थे, तब तो तुम गुरु के साथ थे और गुरु पर शूल बरस गए, तो तुम छोड़कर भाग गए। ऐसे शिष्य नहीं बनना। अग्नि कितनी ही जलती रहे, लेकिन पेंदी कभी छोड़कर नहीं भागती है।

यहाँ क्या कह रहे हैं? सुनो—जैसे पति की भक्ति से रहित सती बनकर बैठ जाए, तो कौन सती कहेगा? ऐसे ही जिनेन्द्र की वाणी की भक्ति को छोड़कर, जिनदेव के शास्त्रों की भक्ति से विहीन शिष्य नियम से दुर्गति को प्राप्त होता है। सारे परिग्रह छोड़ दिये हों, उत्कृष्ट संयम का पालन करता हो, बड़ी-बड़ी तपस्या करता हो, लेकिन गुरु की वाणी पर विश्वास न करता हो

और गुरु के मुख लगता हो, गुरु को जवाब देता हो और गुरु की अविनय करता हो, उसे शिष्य कौन कहेगा? ऊसर भूमि में उत्तम धान्य बो देना, तो धान्य के बीज ही नष्ट होंगे। ऐसे-ही कितना ही घोर तपस्वी शिष्य क्यों न हो, यदि गुरुआज्ञा के विहीन चलता है, तो उसकी सारी तपस्या ऊसर भूमि में डाले गए बीज के समान है। गुरु को जवाब देकर तुम्हें लगता है कि मैं बहुत महान् बन गया। जिस दिन जवाब देने के भाव आ गए, उसी दिन तू नीचे गिर गया। एक व्यक्ति बोले, अब तो आप आचार्य बन गए हो, अब आज्ञा की क्या आवश्यकता? मैंने कहा, ज्ञानी! आचार्य का अर्थ यह नहीं कि गुरु-आज्ञा का उल्लंघन करने लगो। आचार्य का अर्थ है आचरण का पालन करना। जब मैं उनकी आज्ञा में रहूँगा, तभी तो मेरे शिष्य मेरी आज्ञा में रह पायेंगे।

जैसे ऊसर भूमि में डाला गया बीज व्यर्थ जाता है, ऐसे-ही गुरुआज्ञा से विहीन शिष्य की सारी तपस्या, ज्ञान ऊसर भूमि में डाले गए बीज के समान है।

प्रधान /राजा से विहीन राज्य (जिस देश, समाज, परिवार का मुखिया नहीं है) उसका नियम से पतन होता है। ऐसे-ही संघ का मुखिया गया, उसका पतन होता है। निर्ग्रंथ आचार्य को भी अपनी समाधि से पूर्व संघ संभालने हेतु आचार्य बनाने का आदेश आगम देता है। एक योग्य शिष्य को अधिष्ठित करो, अन्यथा इन बेचारे शिष्यों का क्या होगा? पिताविहीन संतान की जो दुर्दशा होती है, भैया! आप समझते हो, गुरुविहीन शिष्य की वही दुर्दशा होती है। विमलसागर जैसे महान् योगी, महावीर कीर्ति जी की समाधि का समाचार सुनते ही उनकी आँख से आँसू टपक गया। लोग कहने लगे, महाराज! आप महान योगी, निमित्तज्ञानी, आपके आँखों से आँसू टपकना शोभा नहीं देता। बोले, मैं जानता हूँ, लेकिन क्या करूँ? आचार्य महावीरकीर्ति महाराज भले हमसे दूर रहते थे, परन्तु मुझे मालूम था कि मेरे सिर पर किसी का आशीष है। अब मैं हजार शिष्यों का गुरु तो बन जाऊँगा, परन्तु एक गुरु का शिष्य कैसे कहलाऊँगा? गुरु का हाथ रहता है तो अपने-आप ताकत आती है। जिनदेव, जिनवाणी, गुरु को मत छोड़ देना और गुरु को मानना, परन्तु गुरु की भी मानना।

जैसे राजा से रहित देश /राष्ट्र नष्ट हो जाते हैं, ऐसे-ही गुरु की भक्ति से विहीन शिष्यों का समस्त अनुष्ठान नष्ट हो जाता है।

"आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

॥ भगवान् महावीर स्वामी की जय ॥

❖ ❖ ❖

कारण बिना कार्य नहीं

सम्माण विणा रुइ भत्ति-विणा-दाणं दया विणा धम्मो।
गुरुभत्ति विणा तव-गुण-चारित्तं णिप्फलं जाण॥80॥

अन्वयार्थ—(सम्माण) सम्मान भाव के **(विणा)** बिना **(रुइ)** रुचि /प्रेम **(भत्ति-विणा-दाणं)** भक्ति के बिना दान **(दया विणा धम्मो)** दया के बिना धर्म तथा **(गुरुभत्ति विणा)** गुरुभक्ति के बिना **(तव-गुण-चारित्रं)** तप-गुण-चारित्र को **(णिप्फलं जाण)** निष्फल जानो।

हेय - उपादेय?

हीणा-दाण-वियार-विहीणादो बाहिरक्ख सोक्खं हि।
किं तजियं किं भजियं, किं मोक्खं ण दिट्ठं जिणुद्दिट्ठं॥81॥

अन्वयार्थ—(जिणुद्दिट्ठं) जिनेन्द्रदेव ने कहा [यह जीव] **(हीणा-दाण-वियार-विहीणादो)** निन्द्य और ग्राह्य के विचार से विहीन होने से **(हि)** निश्चय से **(बाहि-रक्ख सोक्खं)** बाह्य इन्द्रियसुख को ही सुख मानता है **(किं तजियं)** त्यागने योग्य क्या है? **(किं भजियं)** उपादेय क्या है? **(किं मोक्खं)** मोक्ष क्या है? उसे **(ण दिट्ठं)** नहीं देखता /जानता।

बाह्यतप महात्म्य

काय-किलेसुववासं दुद्धर-तव-यरण-कारणं जाण।
तं णिय-सुद्धप्प-रुई, परिपुण्णं चेदि कम्म-णिम्मूलं॥82॥

अन्वयार्थ—(काय-किलेसुववासं) कायक्लेश व उपवास **(दुद्धर-तव-यरण-कारणं)** कठोर तपश्चरण के कारण **(जाण)** जानो **(तं)** वे ही काय-क्लेश व उपवास **(णिय-सुद्धप्प-रुई)** अपने शुद्ध आत्मा की रुचि होने पर **(परिपुण्णं)** समस्त **(कम्म-णिम्मूलं)** कर्मों के क्षय के कारण होते हैं (चेदि) ऐसा जानो।

भव्य बन्धुओ!

अन्तिम तीर्थेश भगवान् वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना, जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति। आचार्यभगवान् कुन्दकुन्द स्वामी ग्रंथराज रयणसार जी में श्रमण और श्रावक, उभय धर्मों की व्याख्या करते हुए समझा रहे हैं—अंतरंग के परिणामों

की विशुद्धि का जब अगाध समुद्र उद्वेलित होता है, तब सारे जगत के प्राणियों के प्रति साम्यभाव का जन्म होता है। भावों की विशुद्धि की वृद्धि जब तक नहीं है, तब तक सारे जगत् के प्रति द्वैतदृष्टि नजर आती है। द्वैतदृष्टि का अभाव तभी सम्भव है, जब अंतरंग में विशुद्धि का प्रादुर्भाव होगा। भिन्नता-भाव दिखाई देता है, एकत्वभाव से दृष्टि हट रही है तो इसका कोई दूसरा हेतु मत खोजना, एकमात्र स्वयं के परिणामों की विशुद्धि का अभाव खोजना।

जब यह जीव द्वैतदृष्टि के लिए दूसरे द्वैत को ही देखता है तो अशुद्धि में अशुद्धि की ही वृद्धि होती है। जब द्वैत को द्वैत से ही देखता है। द्वैत यानि दो। राग-द्वेष दो हैं। राग-द्वेष दो को देखने के लिए और पुनः देखता है कि अमुक व्यक्ति के कारण मेरे में राग-द्वेष हुआ है। पुनः तूने दो देखे। एक बार भूल की, तो राग-द्वेष को उत्पन्न किया। पुनः भूल की कि उस राग-द्वेष की उत्पत्ति का कारण तू स्वयं को नहीं, दूसरे को मान रहा है कि मेरे अंतरंग में दोष हुआ है तो अमुक व्यक्ति के निमित्त से हुआ है। ज्ञानी! ध्रुव सत्य की बात कर। जिसे देखकर तुझे राग या द्वेष हो रहा है, वह राग या द्वेष उसमें नहीं है, तेरी विशुद्धि के अभाव में है। जैसे-जैसे व्यक्ति तटस्थ होता चला जाएगा, जैसे-जैसे विशुद्ध होता चला जाएगा, वैसे-वैसे राग-द्वेष स्वयमेव न्यून होते चले जायेंगे। राग कहाँ है? द्वेष कहाँ है? द्वैत में राग है, द्वैत में द्वेष है।

एक क्षण को अपना हाथ अपनी नाक के पास ले जाओ और देखो नाक से श्वास आ रही है कि नहीं आ रही है? अज्ञानी जीव ने श्वास निरोध की शिक्षा दे डाली। श्वास खींचने की शिक्षा दे दी, श्वास छोड़ने की शिक्षा दे दी। घण्टों-घण्टों बैठा दिया कि श्वास को देखो, श्वास को देखो। ज्ञानी! श्वास मंद नहीं करना है। कषाय मंद कर लोगे तो श्वासें स्वतः मंद हो जायेंगी। श्वास के लिए प्राणायाम चल रहा है, ध्यान चल रहा है। ध्यान तेरा श्वास पर है। न निज पर है, न परमात्मा पर है। कितने सारे लोग इस भ्रम से भ्रमित हो चुके हैं, कि श्वास का निग्रह करना है। ज्ञानियो! श्वास का निग्रह नहीं करना है, कषाय का निग्रह करना है। श्वास को वश नहीं करना है, आँख को वश नहीं करना है। वश करना है तो आत्मा को करना है। आत्मा वश हो गई, तो श्वास भी वश है, आँख भी वश है। आँख उठ रही है तो आत्मा के राग से उठ रही है और श्वास लम्बी हो रही है तो आत्मा के राग-द्वेष से हो रही है। मैं श्वास नहीं हूँ, मैं आँख नहीं हूँ। वेदन करके सुनना है। मरकर नहीं सुनना है, जीते-जीते सुनना है। यदि मैं श्वास हो गया, मैं आँख हो गया, तो सिद्धों के श्वास भी हो जाएगी और आँख भी हो जाएगी, जबकि सिद्धों में श्वास भी नहीं है, आँख भी नहीं है। वहाँ तो क्षायिक केवलज्ञान-नेत्र है। मैं श्वास नहीं हूँ, मैं आँख नहीं हूँ। अंतरंग में चिंतवन करो। श्वास जो है, विकार की सूचना है। आँख जो है, विकार की सूचना है। श्वास-आँख से रहित जो हूँ, वह मैं हूँ, वह अविकारी ध्रुव आत्मा है।

ज्ञायक स्वरूपोऽहम् — ज्ञायक स्वरूपोऽहम्।
ब्रह्मानंद स्वरूपोऽहम् — ब्रह्मानंद स्वरूपोऽहम्।
परमानंद स्वरूपोऽहम् — परमानंद स्वरूपोऽहम्।

पुनः हाथ ले जाओ नाक के ऊपर, श्वास कैसी है? जो जगत् में भ्रम चल रहा है, जिसमें पूरा राष्ट्र भ्रमित हो रहा है और जैनयोगी/जैनाचार्य इस ओर दृष्टि नहीं डाल रहे हैं, कि पूरा विश्व मिथ्यात्व में डूब जाएगा। ध्यान की मुख्य विद्या जो है, वह जैन-आगम है। निर्वाण की मुख्य साधना है, उसका नाम ध्यान है। आज लक्ष्य क्रियाओं में इतना उलझ चुका है कि जैनदर्शन में ध्यान की विधि शून्य हो रही है। ज्ञानी! जब भी निर्वाण होगा, तो ध्यान से ही होगा। कोई विपश्यना की ओर दौड़ रहे हैं, कोई प्राणायाम की ओर दौड़ रहे हैं, कोई हँस रहा है, तो कोई रो रहा है। थक गया तो कहता है ध्यान लग गया। नाच-गान ध्यान होने लग गया तो परमब्रह्म का ध्यान क्या होगा? नाच-गान ध्यान नहीं है और ध्यान में नाच-गान नहीं है। परमब्रह्म की लीनता का नाम ध्यान है। स्वांत अनुभूति की लीनता का नाम ध्यान है। पंचपरमेष्ठी में एकाग्रचित होना ध्यान है। आपने हँसने-गाने को ध्यान मान लिया है। तबले बज रहे हैं, नाच हो रहा है, संगीत चल रहा है और कहता है कि ध्यान करने गया था। यदि राग-रंग ध्यान हो गया, तो निर्वाण का साधन राग-रंग हो जाएगा। जो ध्यान की प्रौढ़ विधि जैनागम में है, उस पर किसी की दृष्टि नहीं है। आज हमारे युवा यह कहते हैं, महाराज! अपने यहाँ ध्यान नहीं है क्या? ज्ञानी! जैनदर्शन का प्रारम्भ ही ध्यान से होता है। जीवन का प्रारम्भ ध्यान है और अंत ध्यान है। संसार में भटकेगा तो ध्यान से भटकेगा और मोक्ष जाएगा तो ध्यान से जाएगा। जो आर्त्त-रौद्र ध्यान करेगा, तो संसार में भ्रमण करेगा। धर्म्यध्यान-शुक्लध्यान करेगा, तो निर्वाण को प्राप्त करेगा।

शरीर भगवान् के पादमूल में है और नेत्र का पलक बंद होते ही किसी नारी का चेहरा दिख रहा है या किसी नर का चेहरा दिख रहा है, ज्ञानी! यह ध्यान नहीं है क्या? ध्यान ही है, तभी तो झलका है। बिना ध्यान के किसी का चेहरा दिख नहीं सकता था। परन्तु कौन-सा ध्यान था? जो नरक ले जाने वाला था। जिसकी आँखों के सामने जगत् की नारियाँ झलकने लग जायें, जगत् के नर झलकने लग जायें, वीभत्स चित्र दिखने लग जाए, समझ लेना मेरी दुर्गति निश्चित है। जिसके आँख बन्द करते ही तीर्थंकर का बिम्ब दिखने लग जाए, उसकी सुगति निश्चित है। परन्तु दिखेंगे तभी, जब चित्त शान्त होगा। कोटि-कोटि साधना करने का उद्देश्य चित्त शान्त करना है। यदि चित्त शान्त नहीं हुआ, सारे विश्व में घूम लेना, तो कहीं भी सुख का वेदन नहीं होगा। यदि चित्त शान्त है तो स्वयं के घर में ही सुख प्रारम्भ हो जाएगा। तीर्थभूमि पर भी गया और चित्त शान्त नहीं हुआ, तो चित्र भगवान् का नहीं देखेगा। चित्त कहीं और है तो

चित्र भगवान् का नहीं देखेगा। चित्त कहीं और है तो चित्र किसी और का ही देखेगा। सम्पूर्ण साधना, सम्पूर्ण पुरुषार्थ को चित्त की शान्ति में लगा दो। यदि चित्त शान्त नहीं कर सका, तो चारित्र नियम से भ्रष्ट होगा। चित्तशान्ति के लिए सारी साधना है। सुख कहीं नहीं है और सुख खोजने का पुरुषार्थ भी नहीं करना आज से। चित्त शांत है, तो जगत् में शांति मिलेगी और चित्त शांत नहीं है, तो जगत् में कोई ऐसा प्रदेश नहीं है जहाँ शान्ति रखी हो और कोई आपको भेंट कर दे। चित्त की शान्ति किसी से माँगने भी मत जाना। जिससे माँगने जाओगे वह स्वयं भूखा बैठा हुआ है।

एक सज्जन शान्ति की खोज में निकल पड़े, और शान्ति की खोज करते-करते एक ऐसे प्रदेश में पहुँचे, जहाँ पर एक देव खड़ा हुआ था। हे देव! मैं धन नहीं माँगता हूँ, स्त्री-पुत्र नहीं माँगता हूँ, मुझे शान्ति मात्र चाहिए। यथार्थ मानिए, हर पुरुष के जीवन में एक ऐसा दिन आता है जब सब सामग्री से ऊब जाता है, तब उसे मालूम चलता है कि अक्षय कुछ और है। जहाँ-जहाँ शान्ति खोजोगे, जिन-जिन से खोजोगे, वे कुछ नहीं दे पायेंगे, क्योंकि जो बोलेंगे वह शब्द होगा और शब्द जो है वह पौद्गलिक है, वह शांति क्या देगा? शब्द से जो कहा जाता है, वह सत्य नहीं है। जो सत्य है, उसके लिए कोई शब्द नहीं है। वह विद्या जैनदर्शन में ही है। जहाँ रस्सी नहीं बांधी जाती, जहाँ ताले नहीं डाले जाते, तब भी चित्त को शांत किया जाता है, उसका नाम आत्मचारित्र होता है। भगवन्! शान्ति चाहिए। ज्ञानी! देव क्या, देवाधिदेव के पास भी चले जाओगे, तब भी शान्ति नहीं मिलेगी। देवाधिदेव की शान्ति तेरे लिए नहीं है। यदि वे तेरे लिए शान्ति देने आ गए, तो उनकी शान्ति भंग हो गई। जब उनकी शान्ति भंग हो गई, तो फिर तुझे क्या देने आयेंगे? जब भी कुछ करने का भाव आयेगा, नियम से शान्ति भंग करके ही आयेगा।

भगवान् बनने का भाव भी आएगा, तब भी शान्ति भंग होगी। भगवान् बनने के भाव से भगवान् नहीं बनेगा। जब शांत हो जाएगा, तो भगवान् बन ही जाएगा। हाथ में लकड़ी ले लेना और चूल्हे में अग्नि जल रही है, उस अग्नि को कुरेदना। जो अग्नि राख हो रही थी, तू लकड़ी से कुरेदेगा, पूछा कि क्यों कुरेद रहा है? बोला—इसे शान्त करना चाहता हूँ। विश्वास रखना, वह अग्नि भड़क जाएगी। जो चित्त की शान्ति के लिए भगवान् बनने की रट लगाए बैठा है, वह भगवान् बन नहीं पाएगा। जो भगवान् बनने के भाव से भी भिन्न हो चुका है, वही भगवान् बन पाएगा। जब भगवान् बनने का भाव भगवान् बनने नहीं देता, तो जगत् के प्रपंचों का भाव तुझे भगवान् कहाँ से बनायेगा? ये करना है, वो करना है। अभी करना अवशेष है, उसका तिरना अभी अवशेष है। करने की दृष्टि जिसकी है, संसार में मरने की दृष्टि उसी की है। जिसको अभी संसार में बहुत काल तक मरना है। बहुत बार मरेंगे, तभी बहुत बार जन्म ले पायेंगे, तभी

बहुतकुछ कर पायेंगे। जिनको कुछ भी नहीं करना है, उनको बहुत शीघ्र जन्म-मरण से रहित होना है। आज से करना छोड़ो। तिरना है तो करना छोड़ो और मरना है तो खूब करो। श्वासें उन्हीं की लम्बी चलती हैं, जिनके भाव विकृत होते हैं। जिनके भाव शान्त होते हैं, उनकी श्वासें स्वयमेव शान्त हो जाती हैं। यही ध्यान है।

सारे विश्व में कथन द्रव्य-पर्याय का ही होता है, लेकिन दृष्टि विपरीत होती है, इसलिए वस्तु-व्यवस्था उल्टी प्रतिपादित हो जाती है। शुरू-शुरू में आपको लगता होगा कि यह ग्रंथ तो मात्र दान-पूजा, आहार आदि की बात कर रहा है, लेकिन आपको मालूम होना चाहिए कि जब नींव बनती है तो कंकड़-पत्थर नजर आते हैं। फिर दीवार खड़ी होकर ऊपर तक पहुँच जाती है, जब कंगूरे बनकर दिखाई देते हैं, तब मालूम चलता है कि भवन कैसा है।

वह पुरुष देव के पास खड़ा है, कहता है मुझे शान्ति चाहिए। देव निहारता है कि यह शान्ति की भीख माँगने आया है, इसको शान्ति चाहिए है। ध्रुव सत्य है, जब कुटते-पिटते हो घर में, तब मालूम चलता है कि शान्ति होती क्या है? तब कहते हैं, भैया! भले महाराज। कम-से-कम कुटना-पिटना तो नहीं पड़ता। भैया! यह कबूतरवृत्ति छोड़ो। भले ही सोने के कटोरे में काजू-किशमिश की खीर रखी हो, परन्तु तोता पिंजरे में है, जरा भी खुला दिख जाए, तो उड़ जाएगा। लेकिन कबूतर एक खिड़की में आकर बैठ जायेगा। एक बार तो वहीं खाएगा, वहीं जाएगा। ज्ञानी! कबूतर जैसा गंदा जीव तुमको नहीं मिलेगा। वह गुटर-गूं, गुटर-गूं करता रहेगा। कहीं बिल्ली भी आ गई तो आँख बंद कर लेगा। अरे ! आँखें बन्द कर लेने से बिल्ली से बच जाएगा क्या? ज्ञानियो! कबूतरवृत्ति छोड़ो। कबूतर इतना मंदबुद्धि जीव है, आलसी। जो मंद बुद्धि हैं, बुद्धिविहीन हैं, वे कापोत लेश्या में जी रहे हैं। जिसकी बुद्धि काम न कर रही हो, चित्त चितकबरा हो रहा हो, उसका नाम कापोत लेश्या में बैठा जीव है।

ज्ञानी को यदि माला पहनने का शौक हो, तिलक लगवाने का शौक हो, तो पूरी सम्पत्ति छोड़ने को तैयार हो जाएगा कि जरा-सा मेरा सम्मान कर देना, तो समझ लेना तेरी कापोत लेश्या चल रही है। किसी से पूछने मत जाना कि मैं क्या हूँ? आप स्वयं जानते हैं कि आप क्या हो। श्वेत वर्ण सभी का देखकर शुक्ललेश्या मत मान लेना। शरीर का श्वेतपना तो एकेन्द्रिय जीव के भी होता है। एकेन्द्रिय जीव के छहों लेश्याएँ होती हैं, द्रव्य लेश्याएँ। सफेद वृक्ष भी आपको मिल जायेंगे, लाल वृक्ष भी मिल जाएगा। मिट्टी लाल, पीली, काली भी होती है, सफेद भी होती है। रंग-बिरंगे पत्थर भी मिल जायेंगे। ज्ञानी! शरीर के सफेद होने से कोई मोक्ष नहीं मिलता है। जब तक परिणामों की सफेदी नहीं आएगी, तब तक शरीर की सफेदी मोक्ष का कारण नहीं है। शरीर का काला-गोरापन न बन्ध का कारण है, न मोक्ष का कारण है। परिणामों की सफेदी

मोक्ष का कारण है और परिणामों का कालापन बन्ध का कारण है। इसलिये शरीर चमकाने का त्याग कर दो आज से। जितना पुरुषार्थ देह को चमकाने में करते हो, उतना पुरुषार्थ परिणति को चमकाने में कर लेते तो पंचमकाल में क्यों आना पड़ता?

हे देव! मुझे शान्ति चाहिए है। देव देखता है, कि इस पुरुष को उत्तर सीधा नहीं देना चाहिए, प्रयोग में देना चाहिए। उस देव ने अपनी विक्रिया से एक मगर का रूप बना लिया। रूप बनाने के पहले देव उस पुरुष से कहता है—आपको शान्ति चाहिए है तो जाओ, नगर के तालाब में एक बड़ा मगर है, उसके पास शान्ति है, वह आपको दे देगा। जब तक पुरुष पहुँचा, देव विक्रिया से मगर बन चुका था, तालाब के किनारे पर आकर बैठ गया। जैसे-ही व्यक्ति पहुँचा, कहता है—'हे मगर देव!' (अब मगर में देव दिख गए।) जब आदमी स्वार्थी होता है, तो दुनियाँ को स्वार्थी कह लेता है। विश्वास रखना, जब-जब व्यक्ति के अन्दर इच्छा का जन्म होगा, तब-तब परिणमन नीचा हो जाएगा। इच्छा होते ही चित्त नीचे जाता है और चित्त नीचे जाते ही चारित्र नीचे जाता है। तभी आप श्रेष्ठ हो, तभी तक आप ज्येष्ठ हो, जब तक आपके चित्त में कुछ लेने की इच्छा नहीं हुई है। जीवन में इस मस्तक को केवल अरिहंत के चरणों तक ही रखना है तो किसी चुनाव में खड़ा मत हो जाना, नहीं तो कसाई के द्वारे पर भी हाथ जोड़ने जाना पड़ता है। जिस दिन तू नेता बनकर आ जाएगा, तो कहीं-न-कहीं तुझे जीवों के वध की भी अनुमोदना करनी पड़ती है।

राज समाज महा अघकारण, बैर बढ़ावनहारा।
वेश्या सम लक्ष्मी अति चंचल, याका कौन पत्यारा॥

जिनको अपने बैरी बनाना हो, तो राज और समाज में घुस जाओ, अपने आप बैरी बन जायेंगे। धन्य हों वे वीतरागी तपोधन, जिन्होंने उस नगरनार के समान धन पर हाथ लगाना भी पाप समझा हो। वीतरागी तपोधन का धन तो मात्र तपस्या ही है। भैया! जो तुम्हारे घर में धन रखा है, उसको देखते तो रहना, परन्तु इसे अपना मान मत बैठना। यह मान भंग करायेगी और मान बढ़ायेगी, लेकिन भगवान् नहीं बनने देगी। पुण्य का उदय है, उसे देखते चलो।

आचार्यभगवान् कह रहे हैं कि सम्मान /आदर के बिना रुचि /प्रेम होता नहीं है। बोले कि हमारी बहुत प्रीति है, लेकिन घर में आ जायें तो पानी को भी नहीं पूछ रहा है, अब कैसे कहें कि प्रीति है? प्रीति होगी, तो तद्रूप लक्षण झलकेगा कि नहीं? जिसमें रुचि होती है, उसका सम्मान भी दिखाई देता है। दान दे रहा है और भक्ति नहीं है, तो क्या तेरा दान? जिसमें दया नहीं हो, तो ध र्म कैसा? ऐसे-ही गुरुभक्ति के बिना तपस्या, गुण, चारित्र को निष्फल जानो। गुरु की भक्ति में शिष्य का मन नहीं है, तो निश्चय जानो कि उसका मन ख्याति, लाभ, पूजा आदि में लगा हुआ है। उसे लौकिक सुखों को प्राप्त करने की तृष्णा है।

यदि हेय उपादेय कर्त्तव्य का ज्ञान नहीं है, विवेक नहीं है, तो शास्त्र पढ़ना व्यर्थ है। उसकी समस्त क्रियाएँ निष्फल हैं, सारहीन हैं। यदि वह इन्द्रियसुख को ही सुख मान रहा है, मोक्षसुख को जान ही नहीं रहा है, तो वह हेय-उपादेय का विचार कैसे कर पायेगा? कायक्लेश, तप आदि भी शुद्ध आत्मा की रुचि होने पर ही कार्यकारी होते हैं, कर्मों के क्षय का कारण होते हैं। अगर बाह्य दृष्टि है, तो वे भी संसारवृद्धि के कारण होते हैं।

"आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

॥ भगवान् महावीर स्वामी की जय ॥

❖ ❖ ❖

मात्र बाह्य लिंग कर्मक्षय के हेतु नहीं

कम्म ण खवेदि जो परबंह ण जाणदि सम्म-उम्मुक्को।
अत्थ ण तत्थ ण जीवो, लिंगं घेत्तूण किं करेदि॥83॥

अन्वयार्थ—(जो) जो **(परबंह)** आत्मा परमात्मा को **(ण जाणदि)** नहीं जानता है **(सम्म उम्मुक्को)** वह सम्यक्त्व से रहित है **(कम्मं)** कर्मों का **(ण खवेदि)** क्षय नहीं करता **(जीवो)** ऐसा जीव **(अत्थ-ण, तत्थ-ण)** न यहाँ का है न वहाँ का **(लिंगं)** मात्र लिंग को **(घेत्तूण)** ग्रहण करके **(किं)** क्या **(करेइ)** करता है?

आत्मज्ञान बिना बाह्य लिंग क्या कर सकता है?

अप्पाणं पि ण पेच्छदि, ण मुणदि ण वि सद्दहदि ण भावेदि।
बहु-दुक्ख-भार मूलं लिंगं घेत्तूण किं करेदि॥84॥

अन्वयार्थ—जो साधु **(अप्पाणं)** आत्मा को **(पि ण पेच्छदि)** भी नहीं देखता है **(न मुणदि)** न उसका मनन करता है **(ण वि सद्दहदि)** न ही आत्मा की श्रद्धा करता है **(भावेदि)** न ही आत्मा की भावना ही करता है, वह **(बहु-दुक्ख-भार-मूलं)** अत्यन्त/बहुल दु:ख के भार के कारण **(लिंगं घेत्तूण)** बाह्य भेष मात्र धारण करके **(किं करेदि)** क्या करता है?

आत्मा की भावना बिना दु:ख ही है

जाव ण जाणदि अप्पा, अप्पाणं दुक्ख-मप्पणो ताव।
तेण अणंत-सुहाणं, अप्पाणं भावए जोई ॥85॥

अन्वयार्थ—(जाव) जब तक **(अप्पा)** आत्मा **(अप्पाणं)** आत्मा को **(ण)** नहीं **(जाणदि)** जानता **(ताव)** तब तक **(अप्पणो)** आत्मा को **(दुक्खं)** दु:ख है **(तेण)** इसलिये **(जोई)** योगी **(अणंत-सुहाणं)** अनंत सुखस्वभावी **(अप्पाणं)** आत्मा की **(भावए)** भावना करे।

भव्य बन्धुओ!

अन्तिम तीर्थेश भगवान् वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना, जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति। आचार्यप्रवर भगवान् कुन्दकुन्द स्वामी ग्रंथराज रयणसार जी में श्रमण और श्रावक उभय धर्मों की व्याख्या कर रहे हैं—अंतस् में अंतरंग विशुद्धि का सागर जब हिलोरें लेता है, उस काल में जीव के विकारभावों का उपशमन होना

प्रारम्भ हो जाता है। हर वस्तु पवित्र नजर आती है, हर व्यक्ति पवित्र नजर आता है जब दृष्टि में पवित्रता आ जाती है। जब तक दृष्टि निर्मल नहीं है, तब तक परमात्मा में भी परमात्मपना नजर नहीं आता है। भगवान् में भगवत्ता भी तभी नजर आती है, जब दृष्टि स्वच्छ होती है। जिस जीव को पीलिया रोग है, उसे सफेद चूने से पुती दीवार भी पीली नजर आती है। वह दीवार को सफेद करने का पुरुषार्थ करता है। लेकिन वह कितना ही प्रयास कर ले, परन्तु दीवार को सफेद कर नहीं पाएगा, क्योंकि दीवार में पीलापन नहीं है, तेरी दृष्टि में दोष है। बहुत अच्छा होता यदि अपने पीलिया रोग को ठीक कर लेता।

ज्ञानियो! जिस भी व्यक्ति पर दृष्टिपात करोगे, यदि आपके भावों में विकृति चल रही है, तो हर व्यक्ति के अंदर अशुभ-ही-अशुभ नजर आयेगा। आपका मित्र ही क्यों न हो, जब आपका चित्त विक्षिप्त है, उस समय मित्र में भी मित्रपना दृष्टिगोचर नहीं होता। और चित्त पवित्र होता है तो कालिया नाग में भी भगवानात्मा नजर आती है। एक बचा रहा है, दूसरा प्रहार कर रहा है, परन्तु दोनों पर साम्यदृष्टि रहती है जब चित्त विशुद्ध होता है। वस्तु को सुधारने की किंचित् भी आवश्यकता नहीं है। व्यक्ति को सुधारने की किंचित् भी आवश्यकता नहीं है। क्योंकि दोनों परसापेक्ष हैं, जबकि चित्त की विशुद्धि स्व-सापेक्ष है। दूसरे को सुधारने जाने के लिए चलना पड़ेगा, बोलना पड़ेगा, बाहर पुरुषार्थ करने पड़ेंगे, लेकिन स्वयं के चित्त को पवित्र करने के लिए कहीं नहीं जाना है। एक स्थान पर बैठे-बैठे आप अपने आप को शुद्ध कर सकते हैं। भ्रमण की आवश्यकता नहीं है, गमन की आवश्यकता नहीं है। मात्र दृष्टि जो पर में घूम रही थी, उसे निज में स्थित करने की आवश्यकता है। जितने महापुरुष, परमयोगीश्वर हुए, आज तक वे किसी को समझाने नहीं गए। यहाँ तक कि किसी से समझने भी नहीं गए। वस्तुस्वरूप किसी से समझ में आता नहीं। जब अन्दर का मोह विगलित होने लगता है, तो वस्तुस्वरूप स्वयं समझ में आने लगता है। राम अपने मृतक भाई लक्ष्मण के शरीर को छः महीने तब कन्धे पर लिए क्यों घूमते रहे? वहीं सेनापति कृतांतवक्र का जीव, जो देव हुआ था वह, समझाने आता है। कभी बालू पेलता है, कभी पानी को मथता है। राम पूछते हैं—भैया! क्या कर रहे हो? 'मैं तेल निकाल रहा हूँ।' बालू से भी कभी तेल निकलता है क्या? 'हाँ, बालू से तेल नहीं निकलता है, परन्तु मृत व्यक्ति भोजन अवश्य करता है। कौन है मरा? लक्ष्मण को उठाकर चल दिए।

ज्ञानी! बलभद्र और नारायण का यह नियोग है। विश्व में भ्रातप्रेम कहीं होता है तो बलभद्र-नारायण जैसा कहीं नहीं होता। जंगल में राम को जाना था, कि लक्ष्मण को जाना था? जंगल तो राम के लिए था, परन्तु लक्ष्मण साथ में हो लिए। लक्ष्मण की मृत्यु हुई तो राम छः महीने लिए घूमते रहे। बड़े-बड़े समझानेवाले धुरंधर पहुँच गए, परन्तु किसी का संबोधन

कार्यकारी नहीं हुआ। कषाय का काल पूरा हो गया तो स्वयं अन्दर का गुरु जाग गया, बात समझ में आ गई। जब तक मोह का पर्दा स्वयं के मस्तिष्क पर आवृत है, भगवान् भी आ जायें, तो समझा नहीं पायेंगे। कितनें सारे लोगों के पेट में, कण्ठ में नली पड़ी दिखाई देती है, फिर भी ऐसे अभागे लोग देखने को मिल जायेंगे, जो गुटखा /तम्बाकू खाते मिलेंगे। सिगरेट-बीड़ी पीते मिलेंगे। उनको मालूम भी रहता है कि ऐसा करने से ऐसा हो सकता है और सामने दिखाई भी दे रहा है।

क्यों भैया! जिनवाणी सत्य है? चार गतियाँ आप मानते हो? मानते हैं। चार गतियाँ मानते हो, आपको नारकी व देव दिखाई नहीं दे रहे, परन्तु मनुष्य व तिर्यंच तो दिखाई दे रहे हैं। मनुष्य व तिर्यंचों में ही, एक लोकपूजा को प्राप्त हो रहा है और दूसरा लोक में दर-दर की ठोकरें खा रहा है। कितना महान अंतर ? एक भवन में बैठा हुआ है और दूसरा भवन में झाड़ू लगा रहा है। एक स्वामी, दूसरा नौकर कहला रहा है।

कोगुणः खलु धर्मेण मा पृच्छैवं कदाचन।
शिवकावाहकान् दृष्ट्वा तस्यांचारूढ़भूपतिम् ॥7/4 कुरल काव्य॥

'कुरलकाव्य' में एलाचार्य कहते हैं– मेरे से मत पूछिए कि धर्म का फल क्या है और पाप का फल क्या है? सामने देखो–एक पुरुष पालकी कन्धे पर ढो रहा है और दूसरा पुरुष पालकी में बैठा हुआ है।

जो पालकी ढो रहा है, वह भी किसी माँ का बेटा है और जो पालकी में बैठा है, वह भी किसी माँ का बेटा है। यही पुण्य और पाप का परिणाम है। इसलिए वर्तमान की पर्याय में इतने मस्त मत हो जाना, मिले द्रव्य का केवल उपभोग ही मत कर डालना। इसका सम्यक् उपयोग भी कर लेना। प्राप्त सामग्री में बहुत कुछ निहित है। इस नरदेह में बहुतकुछ निहित है। इस नरदेह के माध्यम से तुम नारकी भी बन सकते हो, देव भी बन सकते हो, पशु और मनुष्य भी बन सकते हो और अशरीरी सिद्ध भगवान् भी बन सकते हो। देह आपसे कुछ भी नहीं माँगती है।

यह तो रागियों का, व्यवहारियों का कहना है कि शरीर नौकर है, कोई कहता है कि शरीर स्वामी है। ये सब व्यर्थ की भाषाएँ हैं। शरीर तटस्थ है, यह कुछ भी आपसे चाहता नहीं है। आप इससे जो चाहो वह करवा सकते हो, अभी यह आपको प्राप्त है। कैसे-कैसे जगत् में लोग हुए हैं, उन्होंने शरीर को गाली दे दी। इस शरीर ने क्या किया है भाई? शरीर का क्या दोष है भाई? शरीर को कभी गाली मत देना। देह को अशुभ मत कहना। क्या गन्ने की गांठ को देखा है? यदि गन्ने की गांठ को मुख में रखेगा तो रोएगा-ही-रोएगा और उस गांठ को गाली

देगा। अरे ज्ञानी! उस गांठ को भूमि में बो दो, तो नवीन गन्ना-ही-गन्ना मिलेगा। इसलिए जिनशासन में योगी को निर्ग्रंथ कहा जाता है। इन्होंने गांठ का भी सम्यक् उपयोग किया है। इस देह को चारित्र की भूमि में डाल दीजिए तो शिवत्व के फल मिलेंगे। देह को दोष मत देना। देह न मिली होती तो तू भोग कैसे भोग पाता? संसार की अनुभूति कैसे ले पाता? देह न होती तो निर्ग्रंथ मुनि कैसे बन पाता? तिर्यंच-देव-नारकी के शरीर से मुनि नहीं बना जा सकता। यदि मुनि बनने का कोई शरीर है, उसका नाम नरदेह है।

यह भी एक मिथ्यात्व है, कि मनमानी क्रिया करो और देह की परिणति का नाम दे दो और देह को दोष दे दो। शरीर को दोष देने से आप निर्दोष नहीं हो जाओगे। देह का दोष नहीं है, दोष तेरी परिणति का है। देह ने आज तक कोई पाप किया ही नहीं है। शरीर पाप कराता ही नहीं है। शरीर पाप कराता होता तो ये मुनि बनकर कैसे बैठ गए? जिनके पास दर्शन नहीं है, जिनके पास चिंतवन नहीं है, तो एक ने कहा हौवा, तो दूसरा भी कहता है हौवा। यदि शरीर न होता, इन्द्रियाँ न होतीं, तो आज आप जिनवाणी कैसे सुन पाते? इसलिये शरीर को दोष मत देना, इन्द्रियों को दोष मत देना। ज्ञानी! दोष देने वाला ही दोषी है और दोष से रहित रहनेवाला ही निर्दोष है। देह न दोषी है, देह न निर्दोषी है। वह तो कहती है कि मैं तटस्थ हूँ।

कर्म-नोकर्म वर्गणाओं का पिण्ड आपको प्राप्त हुआ है। आप जैसा उपयोग करना चाहो, कर लीजिए। सम्यक् उपयोग करोगे तो सुगति को प्राप्त हो जाओगे। असम्यक् उपयोग करोगे तो दुर्गति को प्राप्त हो जाओगे। मैं तो तटस्थ हूँ। ये शरीर की वर्गणाएँ कह रही हैं, हे मुमुक्षु! तेरे-जैसे पागल मुझे अनंतानंत मिलते हैं। मैंने तेरे-जैसे कई पागलों के साथ रह लिया है। तू छूटा तो मैं दूसरे से चिपक जाता हूँ। तू मेरा जैसा उपयोग कर लेता है, एक नरक जाता है, दूसरा सिद्धालय जाता है, तो कोई तिर्यंच और मनुष्य बनता है। परन्तु मैं अपने आप में मस्त रहता हूँ, क्योंकि मेरा काम है कि यदि तुम राग करो तो मैं बँधूँ।जब तक तेरी आयु अवशेष है, तब तक तेरे साथ हूँ और जब तू जायेगा तो ये वर्गणाएँ किसी और में चिपक जायेंगी।

किसी के शरीर को देखकर ग्लानि मत करना। जिस शरीर से आप ग्लानि कर रहे हो, अगली पर्याय में वे ही शरीर की वर्गणाएँ तुझे मिल गईं तो क्या करोगे? मत करो ग्लानि किसी से। मल से भी मन को मलिन मत करो। सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा वही होता है, जो मल से भी मन को मलिन नहीं करता है। जिसका मल को देखकर मन मलिन होता हो, उसका मन ही मल है। जिसको जगत् के जीव बुरे लगते हों, जगत् की सामग्रियाँ बुरी लगती हों, विश्वास रखना, उसका मन ही मलिन है। जिसका मन मल होता है, उसे जगत् का द्रव्य मल लगता है। जिसका मन पवित्र होता है, उसको निगोदिया में भी अशरीरी भगवान् दिखाई देता है। इसलिए मल को साफ

करने, साबुन लगाने मत जाओ। साफ कर सकते हो तो अपने मन को साफ कर लो। पर की सफाई में पूरी पर्याय नष्ट कर दी है। निज की सफाई कर लेता तो पर की सफाई करने की आवश्यकता क्या थी?

धिक्कार हो उन जीवों को, जो जगत् की आँखों को साफ करने के लिए आए हैं। धन्य है उन जीवों को, जो निज की आँख को साफ कर रहे हैं। भैया! दूसरे की आँख साफ करके तुझे कभी अच्छा नहीं दिख पाएगा। अच्छा देखना चाहते हो तो निज की आँख साफ करो। जगत् में अनंतानंत अज्ञानी /मूढ़ प्राणी हैं, जो दूसरे की आँख के कीचड़ को साफ कर रहे हैं, जबकि यदि अपनी आँख साफ हो जाती तो आत्मा का दिखना प्रारम्भ हो जाता। आयुकर्म के कितने दुर्लभ निषेक, आपने कहाँ नष्ट किए हैं? कुन्दकुन्द स्वामी कह रहे हैं—हे योगीश्वर! जिनलिंग को धारण करके कर्म की क्षपणा करने चले थे, परन्तु परमब्रह्म को नहीं निहार सके तो तेरी पूरी शरीर की साधना व्यर्थ गई। परमब्रह्म को नहीं जान पाए और देश, राष्ट्र, समाज के हित की बात करते रहे, निज के हित पर दृष्टि ही नहीं गई।

आद हिदं कादव्वं जदि सक्कदे परहिदं च कादव्वं।
आदहिद परहिदादो आवहिदं सुट्ठु कादव्वं॥

आत्महित करना चाहिए। यदि सामर्थ्य हो तो पर का हित करना चाहिए। परन्तु ध्यान रखना, परहित व आत्महित में उत्कृष्ट कोई है, तो आत्महित ही सर्वश्रेष्ठ है।

यह भी एक तनाव है कि अमुक व्यक्ति कैसे सुधरे। तेरे ज्ञान में परज्ञेय बनकर बैठा हुआ है। उस परज्ञेय में जब तेरा ज्ञान जा रहा है, उस काल में तू निज से दूर है। स्वयं के देह के बारे में सोचने से जब आत्मा निज से भिन्न हो जाता है, परमात्मा के बारे में सोचने से आत्मा निज से भिन्न हो जाता है, तो परआत्माओं के बारे में सोचने से आत्मा निज में कैसे रह सकता है? परमात्मा के बारे में सोचना भी परभाव है, धर्मात्मा के बारे में सोचना भी परभाव है, निज आत्मा के बारे में सोचना भी परभाव है। सोचना ही परभाव है। जब शौच आ जाता, तो सोच न आता। वे ही नहीं सोचते हैं, जहाँ शौच नहीं होता है। ये वस्तुस्वरूप है। यह आलौकिक क्रिया है, जिसमें आज तक आपने प्रवेश नहीं किया। जिसका आज तक अनुभव नहीं किया, उस पर भी चिन्तन करो। जो भावातीत है, जो भवातीत है, वही भाव निज भाव है। निजभाव ही निजभाव है, सोचना निजभाव नहीं है, यह तो परभाव है। कर्मसापेक्ष भाव होते हैं। भाव का तात्पर्य पदार्थ, भाव का तात्पर्य परिणाम।

योगी से कह रहे हैं—हे मुनीश्वर! कर्म की क्षपणा नहीं कर पाओगे यदि परमब्रह्म को नहीं जानते हो। भैया! ब्रह्मा भिन्न वस्तु है, ब्रह्म भिन्न वस्तु है। यहाँ ब्रह्मा की नहीं, ब्रह्म की

व्याख्या चल रही है। काल्पनिक ब्रह्मा की चर्चा नहीं है, यह शाश्वत ब्रह्म की चर्चा है। मैं ब्रह्मा से मिलने की बात नहीं कर रहा हूँ, ब्रह्म को निहारने की बात कर रहा हूँ। ज्ञानी! भगवान् से मिलना कठिन नहीं है। मैं भगवान् से मिलने के लिए आपसे नहीं कह रहा हूँ, निज भगवान् को निहारने के लिए कह रहा हूँ। ध्यान रखना, श्रमण दीक्षा, श्रमण साधना, जिनशासन की साधना परमात्मा से मिलने के लिए किंचित् भी नहीं है। जिनशासन की साधना परमात्मा को प्रकट करने की है। भगवान् से मिलना नहीं है, भगवान् बनना है। भगवान् से मिलानेवाले तो बहुत सारे लोग हैं, लेकिन भगवान् बनानेवाला जगत् में कोई नहीं है, मात्र मेरी निजआत्मा है। भगवान् बनना है तो भगवान् से मिलना नहीं है, अपितु जिन-जिन से मिल चुके हो, उनसे दूर हो जाओ, यही भगवान् है। कर्म-नोकर्म पिण्डों से मिले हो, द्रव्यकर्म, भावकर्म से से मिले हो। इन कर्मपिण्डों से बिछुड़ जाओ, इसी का नाम भगवान् है। घर से चलकर आप यहाँ तक आये हैं, मुनियों को देखकर मुनिपने की अनुभूति न हो तो आना निरर्थक है।

असत्य पर चलनेवाले जगत् में कोटि-कोटि हैं, परन्तु असत्य को माननेवाला एक भी नहीं है। भैया! सुन। तूने एक कन्या को अपने बेटे की माँ बनाया है। यह तूने राग के वश किया है, कि सत्य के वश किया है? राग के वश किया है। हे ज्ञानी! क्या तुझे यह शोभा देता था, किसी एक कन्या का शील नष्ट हो गया है। ज्ञानी! क्या तुझे शोभा देता था कि तेरा स्वयं का शील भी नष्ट हुआ है? क्या तेरा मन इस बात के लिए गवाही दे रहा है कि तूने अच्छा किया है?

हे माँ! जो रोटी आपने बनाई है और उसकी मर्यादा माना कि छः घण्टे है, और छः घण्टा एक मिनिट हो चुका है, और तू रोटी खा रही है, तो क्या तूने गलत नहीं किया? किया है। क्या रोटी अभक्ष्य नहीं हुई? हो गई। तुम उसे खा रहे हो तो अच्छा कर रहे हो या बुरा कर रहे हो? सत्य को माननेवाले कोटि-कोटि जीव हैं, लेकिन सत्य पर चलनेवाले अत्यन्त दुर्लभ हैं। असत्य पर चलनेवाले जीव कोटि-कोटि हैं, परन्तु असत्य को असत्य माननेवाले अत्यन्त दुर्लभ हैं। सामायिक का समय चार बजे है और आप चार बजकर दस मिनट पर बैठे हो तो आपने अच्छा किया क्या? व्यक्ति कितना ही पाप करता होगा, लेकिन उसका भी मन कहेगा कि मैं ठीक नहीं कर रहा हूँ।

आचार्यभगवान् कह रहे हैं कि जो आत्मा परमात्मा को नहीं जानता, नहीं मानता, वह सम्यक्त्व से रहित है। वह उभय पद से भ्रष्ट है। उसने संसार के सुख छोड़े, संयम, तप कर रहा है, परन्तु सम्यक्त्व से हीन होने के कारण कर्मों का क्षय नहीं हो रहा है। ऐसा जीव न यहाँ का है, न वहाँ का है। वह न तो निर्ग्रन्थ साधु है और न गृहस्थ ही है। सिर्फ बाह्य वेश धारण करने से कर्म का क्षय नहीं होता है। जो दर्शन से भ्रष्ट है, वह ज्ञान और चारित्र से भी भ्रष्ट है। उसका

कल्याण सम्भव नहीं है। ऐसे जीव अन्य मनुष्यों को भी भ्रष्ट कर देते हैं। ऐसे जीव उपलनाव के समान हैं जो खुद भी डूबते हैं तथा बैठनेवाले को भी डुबा देते हैं।

जो मुनि वेष धारण करके भी अपनी आत्मा के स्वरूप का विचार नहीं करता, निज स्वरूप में लीन होने का प्रयास नहीं करता, आत्मा का श्रद्धान ही नहीं करता है, तो वह अपने आप की वंचना कर रहा है। ऐसा जीव नरक के दु:खों को भोगने का उपाय कर रहा है। स्वात्म भावना से रहित मुनि संसारसागर में भ्रमण करने का मार्ग ही प्रशस्त कर रहा है। वह चिरकाल तक रत्नत्रय /मोक्षमार्ग को प्राप्त नहीं कर पाता है। उसको कभी यह लगता ही नहीं है कि आत्मा अनंतसुख स्वभावी है। जब वह महसूस ही नहीं करता है, तो निज स्वरूप में लीन कैसे हो?

"**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।**" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

॥ भगवान् महावीर स्वामी की जय ॥

❖ ❖ ❖

सम्यक्त्व से निर्वाण प्राप्ति

णिय-तच्चुव-लद्धि विणा, सम्मत्तुवलद्धि णत्थि णियमेण।
सम्मत्तुव-लद्धि विणा, णिव्वाणं णत्थि णियमेण॥86॥

अन्वयार्थ—(णिय-तच्चुव-लद्धि विणा) निज आत्मतत्त्व की उपलब्धि के बिना **(णियमेण)** नियम से **(सम्मत्तुवलद्धि)** सम्यक्त्व की प्राप्ति **(णत्थि)** नहीं होती **(सम्मत्तुव-लद्धि विणा)** सम्यक्त्व की प्राप्ति के बिना **(णियमेण)** नियम से **(णिव्वाणं)** निर्वाण **(णत्थि)** नहीं है।

ज्ञानविहीन तप की शोभा नहीं

साल-विहीणो-राओ, दाण-दया-धम्म रहिय गिहि सोहा।
णाण-विहीण तवोविय, जीव विणा देह सोहं ण॥87॥

अन्वयार्थ—(साल-विहीणो-राओ) दुर्ग के बिना राजा की **(दाण-दया-धम्म रहिय)** दान, दया, धर्म से विहीन **(गिहि सोहा)** गृहस्थ की शोभा **(य)** और **(जीव विणा)** जीव के बिना **(देह सोहं)** शरीर की शोभा **(ण)** नहीं है, वैसे ही **(णाण विहीण)** ज्ञान विहीन **(तवो वि)** तप की भी शोभा नहीं है।

साधु के पास परिग्रह दुःख का कारण

मक्खी सिलिम्मि पडिदो, मुवदि जहा तह परिग्गहे पडिदो।
लोही मूढो खवणो, काय-किलेसेसु अण्णाणी॥88॥

अन्वयार्थ—(जहा) जैसे **(मक्खी)** मक्खी **(सिलिम्मि)** श्लेष्मा में **(पडिदो)** गिरी हुई **(मुवदि)** मर जाती है **(तह)** वैसे ही **(परिग्गहे पडिउ)** परिग्रह में पड़ा हुआ **(लोही)** लोभी **(मूढो)** मूर्ख **(अण्णाणी)** अज्ञानी **(खवणो)** साधु **(काय-किलेसेसु)** काय-क्लेश में मरता है।

भव्य बन्धुओ!

अन्तिम तीर्थेश भगवान् वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना, जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति। आचार्यप्रवर भगवान् कुन्दकुन्द स्वामी ग्रंथराज रयणसार जी में श्रमण और श्रावक उभय धर्मों की व्याख्या करते हुए समझा रहे हैं कि—मैं सुन्दर हूँ, मैं असुंदर हूँ, यह बात वस्तु कभी नहीं कहती है, यह द्रव्य कभी कहता नहीं है। मनोज्ञता-अमनोज्ञता जो है, यह वस्तु के स्वयं के व्याख्यान का विषय नहीं है।

मनोज्ञता-अमनोज्ञता यह भिन्न पुरुषों के राग की पहचान है। जिसकी इच्छाओं की पूर्ति जिससे हो रही है, वह वस्तु उसके लिए मनोज्ञ दृष्टिगोचर होती है और जिसकी आकांक्षा जिसमें नहीं है, वह वस्तु उसके लिए अमनोज्ञ दृष्टिगोचर हो रही है। परन्तु वस्तु तो अपने वस्तुत्व गुण से युक्त है। निज के वस्तुत्व में कभी परभावरूप परिणमन होता नहीं है। प्रमेयत्व गुण से युक्त है।

जगत् का प्रत्येक द्रव्य ज्ञान का विषय तो है, परन्तु ज्ञाता को प्रेरित नहीं करता। जिस ओर ज्ञाता की दृष्टि है, उस ओर वस्तु वैसी दिखाई देती है। यह तो कुएं में झाँककर आवाज करने के तुल्य है। कुएं में झाँककर जो आवाज करता है, जैसी ध्वनि तू करेगा, वैसी प्रतिध्वनि होती है। वस्तु के प्रति जैसी दृष्टि होती है, वस्तु की वैसी झलक होती है। परन्तु वस्तु वैसी नहीं है। वस्तु तो जैसी है, वैसी है। दोष द्रव्य का नहीं है, दोष तेरी दृष्टि का है। कौन-सी वस्तु मनोज्ञ है, कौन-सी वस्तु अमनोज्ञ है, यह वस्तु से मत पूछो। वस्तु का वस्तुत्व गुण कह रहा है, कि मैं तो अपने स्वरूप में हूँ। वैरागी जीव प्रत्येक वस्तु को देखकर वैराग्य को उत्पन्न कर रहा है। वैरागी जीव छहों द्रव्यों के वस्तुत्व गुण को निहार रहा है और रागी जीव छहों द्रव्यों से राग को ग्रहण कर रहा है।

वीतरागी तपोधन, श्रमण, जिनके शरीर पर वसूले चलाये जा रहे हों, वे वस्तुत्व गुण को निहार रहे हैं। ये मुझे नहीं छील रहा है, वस्तुत्व गुण का परिणमन ही ऐसा है। अहो ज्ञानी! जगत् में होने वाले वस्तुत्व गुण के परिणमन को तूने अनेक बार अपने ज्ञान का विषय बनाया है। अपने शरीर पर होने वाले उपसर्ग को ज्ञेय बनाकर निहार लेता तो हे ज्ञाता! तू भगवान हो जाता। उपयोग को उपयोग नहीं समझा। उपयोग का उपयोग तूने अनुपयोग में लगा दिया। उपयोग का उपयोग उपयोग में ही लगाता तो तू कहीं भटकनेवाला नहीं था। किसी बाह्य द्रव्य ने आज तक तुझे श्रीफल अर्पित नहीं किया। भो ज्ञानी! तेरी माया की भाषा यहाँ स्वीकार नहीं की जाएगी, कि तू कहने लग जाए, क्या करूँ महाराज ! गृहस्थी है, उसमें रहना पड़ता है।

हे मुमुक्षु! आज तक जगत् की किसी वस्तु ने तुझसे यह नहीं कहा, "आओ, मेरा सेवन करो"। कैसे बेचारे भाग्यहीन लोग हैं, वस्तु कभी कहती नहीं कि मेरे पास आओ लेकिन तू वस्तु के पास जाता है। वस्तु ने कभी नहीं कहा मेरा सेवन करो। सड़ा भी खाया है, गला भी खाया है। जो गले में अटक रहा था, उसे भी खाया है। जीना ही तो है, प्रासुक द्रव्य से भी जी सकता है। और जीते ही हैं, निर्ग्रंथ मुनि जी रहे हैं कि नहीं जी रहे हैं? जीवन जीने के लिए जगत् के बहुत सारे द्रव्यों का सेवन आवश्यक नहीं है। नरक में जाने के लिए सारी सामग्री खानी पड़ती है। जिनको बहुत खाने के भाव होते हों, अनेक बार खाने के भाव होते हों, तो ध्रुव सत्य है कि आप पुण्यक्षीण पुरुष हो। पुण्यपुरुष अनेक बार नहीं खाता और पुण्यपुरुष अनेक वस्तु को भी

नहीं खाता। सर्वभक्षी जीव जगत् में हैं, उसका नाम है चींटी। मिश्री से लेकर माँस तक खाती है चींटी। ये जीव था कौन? जिसने नरदेह को प्राप्त करके भी नरत्व को नहीं समझा, संयम को नहीं जान सका। जिसने सारे जगत् की चिमटी ली है, वह ही बना है चींटी। तीव्र कषायी जीव, जिसको चिपक जाए चींटी, प्राण दे देगी, परन्तु छोड़ती नहीं है। ये तीव्र कषायी जीव होते हैं जो कृष्ण लेश्या के अंशों में मरण करते हैं। ऐसे नराधम पुरुष चींटी-जैसी पर्याय में जाते हैं। जिसको हर वस्तु में प्रीति है।

ज्ञानियो! जब तक विवेक जागृत है, बुद्धि काम कर रही है, तब तक निर्णय कर लेना। पता नहीं यह मस्तिष्क कब विक्षिप्त हो जाए? कब विवेक भाग जाए? जब तक विवेक काम कर रहा है, तब तक विभाव का विवेक कर लेना, सम्यक् निर्णय ले लेना। मालूम नहीं कब विवेक क्षीण हो जाए। वे महान् पुण्यात्मा जीव हैं, जो अन्तिम श्वासों तक विवेक के साथ जी लेते हैं, अन्तिम श्वासों तक संयम का पालन कर लेते हैं। ये दीर्घ पुण्यात्मा जीव हैं। क्षीण पुण्य पर विवेक काम नहीं करता। सम्यक् बात को भी असम्यक् सोचने का भाव आने लग जाए, बस, समझ लेना कि मेरे पाप का उदय आ चुका है।

हे ज्ञानियो! फूल झड़ने लगते हैं, फल आने लगते हैं। जैसे-जैसे फल बढ़ता है, फूल झड़ता है। सबसे बड़ा कोई पुष्प होता है तो केले का होता है। जैसे-जैसे अंदर छोटी-छोटी कदली लगने लगती है, फूल झड़ने लगता है। जब कर्म का फल आने लगता है, तब पुण्य के फूल झड़ने लगते हैं। ज्ञानी! जब तेरे मोक्ष का फल लगेगा, तो पुण्य-पाप दोनों के फूल झड़ जायेंगे। संभलकर रहने की आवश्यकता जितनी है, संभलकर विचारने की आवश्यकता उससे कहीं अधिक है। जिनके विचार संभले होते हैं, उनके आचार संभल पायेंगे। जिनके विचार ही नहीं संभले हैं, उनके आचार कभी नहीं संभल पायेंगे। विचार संभालिये और अपनी स्वतन्त्र सत्ता का वेदन कीजिए। जो अपनी स्वतन्त्र सत्ता को नहीं समझ पा रहे हैं, वे पाखण्ड में उलझकर, पर के भावों में लीन होकर निज की स्वतन्त्र सत्ता के विवेक को खो देते हैं। स्वतन्त्र वस्तुत्व गुण पर विचार कीजिए। मेरा अस्तित्व स्वतन्त्र है, मेरा वस्तुत्व स्वतन्त्र है, मेरा प्रमेयत्व स्वतन्त्र है, मेरा चेतनत्व स्वतन्त्र है, मेरा ज्ञायकभाव स्वतन्त्र है, मेरा अगुरु-लघुत्व स्वतन्त्र है। मेरे सभी निज के गुण स्वतन्त्र हैं।

दूसरे के विचारों को सुनना इसका काम है, परन्तु निर्णय लेना यह कर्ण इन्द्रिय का काम नहीं है। निर्णय लेना विवेक का काम है। जो तत्त्व का निर्णय अरिहंत देव ने किया है, उसका निर्णय करके जीवन जीना। संसार में कितने पाखण्डी लोग घूम रहे हैं, सबकी बातें मानने को तैयार हो जाओगे तो आपकी जीवन की गति क्या होगी? सारे जगत् की बातें स्वीकार नहीं हैं।

जगत् जो भी बोलता है, सत् से हटकर नहीं बोलता, परन्तु सत्य नहीं बोलता। जो महावीर को गाली देगा, वह भी सत् को दे रहा है, परन्तु गाली देना उसका सत्य नहीं है। अवस्तु में भी वस्तु की दृष्टि डालकर कर्म का बंध कर लेता है। देखो—कैसे। पंक्ति नाम की कौन-सी वस्तु है? पंक्ति नाम की कोई वस्तु दिखाई नहीं देती, परन्तु सारे लोग पंक्तिबद्ध बैठे हुए हैं। अनेक लोगों का समूह जहाँ एक ओर खड़ा हो गया है, उसे आप पंक्ति कह रहे हो, लेकिन उसको खोजने जाओ, कौन-सी वस्तु है? एक-एक पुरुष हट जाए तो कहाँ गई पंक्ति? पंक्ति संज्ञा आपने कौन-सी वस्तु को दी है। जैनदर्शन की व्याख्या अलग है और जैनदर्शन की क्रियाओं की व्याख्या अलग है। ज्ञानी! जैसे पंक्ति नाम की स्वतन्त्र वस्तु नहीं है। अपने निजी विचारों को ही कहना प्रारम्भ कर देता है, उसका नाम पंथ बना लिया है, लेकिन पंथ नाम की वस्तु नहीं है।

यदि कोई वस्तु है, वह छः द्रव्य हैं, नो पदार्थ हैं, त्रैकाल्य हैं, षट् लेश्या हैं, यह वस्तु है। वस्तु में निजी विचार मिला देना, इसका नाम खोटे पंथ हैं। जो वस्तुस्वभाव की व्याख्या है, वह अरिहंत का सिद्धान्त है। अरिहंत के सिद्धान्त में जीना सीखो, यह पंक्ति में लगकर किसी की पंक्ति को मत बढ़ाइए। किसी की पंक्ति को मत मिटाइए, ज्ञानी! मोक्षपथ पर चलिए। मोक्षपथ जो है, उसका नाम ही "सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः"। आश्चर्य तब होता है जब पढ़े-लिखे लोग अपनी बुद्धि का व्यापार धन के टुकड़ों के लिए कर देते हैं। इनसे बड़ा अज्ञानी कौन होगा? दूसरे की बुद्धि से चलना, इससे बड़ा पागलपन जगत् में दूसरा नहीं होता। यह प्रज्ञा आपको मिली क्यों है? अपनी प्रज्ञा का प्रयोग करो और सत्य का निर्णय करो। जो अरिहंत देव ने कहा है, वही ध्रुवसत्य है। सत्य-सत्य कहना सत्य नहीं होता है, वस्तुस्वरूप की सत्ता ही सत्य है।

तीर्थंकर महावीर भी महावीर स्वामी तब बन पाए थे जब वे महावीर को भूल चुके थे। जब तक महावीर के अंदर महावीर गूंजता रहा, तब तक महावीर मुनिराज बनकर घूमते रहे और जिस दिन महावीर, महावीर को भूल गए थे उस दिन महावीर बन गए। कर्मशत्रु को जीतकरके सिद्धालय में बैठ चुके थे। जब तक "मैं महावीर हूँ", तब तक महावीर नहीं थे। सत्य को कहने में किसी को मत छोड़ना।

हे वर्द्धमान! जब तक पाँच नाम गूँजते रहे, तब तक अशरीरी नहीं बन पाए। जब अशरीरी बनने गए थे, तो एक नाम भी नहीं था। जो था, वही था। वो कौन था? संसार की आँख की पहचान के लिए नाम हैं, संसार की पर्याय की पहचान के लिए नाम है। अशरीरी का कोई नाम नहीं है, सत्य का कोई नाम नहीं है। सत्य का जीवन जीना चाहते हो तो नाम लेना भूल जाना। असत्य के नामों के पीछे यह सत्य को भूल रहा है। जब तीर्थंकर वर्द्धमान का भी जन्म हुआ था

तो गर्भ में नाम क्या था? जब तू माँ के उदर से जमीन पर आया था, तब भी तेरा नाम नहीं था। जो नाम रखा गया है, वह सत्य है या असत्य है? जब पर्याय ही सत्य नहीं है, तो नाम कैसे सत्य हो गया? जब पर्याय ही छूट जाएगी, तो नाम भी छूट जाएगा। परन्तु इस पर्याय के नाम के राग में कितने खण्ड खड़े कर लिए? कितनों के खण्ड मिटा दिए? परन्तु तुझे मालूम होना चाहिए कि जिन खण्डों में रहने वाला देह है, वह ही खण्डित हो जाएगा, तो खण्ड देखने कौन आएगा? जो कभी खण्डित नहीं होगा, उसमें अपना विवेक लगा दो।

हे योगीश्वर! तत्त्वज्ञान चला गया, तो जीवन में कुछ नहीं बचा। आत्मतत्त्व का निर्णय हुए बिना सम्यग्दर्शन होता नहीं और सम्यग्दर्शन हुए बिना चारित्र सम्यक् होता नहीं, और सम्यक्चारित्र हुए बिना निर्वाण मार्ग खुलता नहीं। अभी भी स्वतन्त्रता का बोध नहीं है। कोई आम्नाय कल्याण नहीं करेगी। आत्मतत्त्व का निर्णय ही कल्याण करायेगा।

भैया! पैसे की दृष्टि धनदृष्टि है, धर्म की दृष्टि आकिंचन्य दृष्टि है। आकिंचन्य में द्रव्य (धन) नहीं दिखता है, द्रव्य (आत्मा) दिखता है। भैया! अपने भवन पर बैठो तो धनपति बनकर ही बैठना, परन्तु पंचपरमेष्ठी के चरणों में बैठो तो मात्र श्रावक बनकर ही बैठना। एवंभूत नय से बैठना। वहाँ मत देखना कौन क्या है? तीर्थंकर के समवसरण में बारह सभाएँ होती हैं और उसमें तिर्यंच भी होते हैं, देव भी होते हैं, मनुष्य भी होते हैं, लेकिन वे सब जब तीर्थंकर के समवसरण में होते हैं तो मात्र श्रोता होते हैं। देह भिन्नत्व है, चेतनत्व अभिन्नत्व है। सादृश अस्तित्व, स्वरूप अस्तित्व। धर्मात्माओं ने धर्म की भाषा बोलना भी छोड़ दिया है। मान-सम्मान की भाषा तो अनादि से हम प्रयोग करते आए हैं, उनके बारे में क्या बात करना है? जिससे यह विशुद्धसागर का शरीर बना है, उस रत्नत्रय की बात कीजिए। हो यह रहा है कि हम शरीरों को महिमामण्डित कर रहे हैं। विश्वास रखना, शरीर किसी का पूज्य होता नहीं, परन्तु शरीर में पूज्य रत्नत्रयधारी आत्मा विराजमान है इसलिए शरीर पूज्य है। यह चर्म का पिण्ड पूज्य है क्या?

स्वभावतोऽशुचौ काये, रत्नत्रय पवित्रिते।
निर्जुगुप्सा गुण प्रीति-र्मता निर्विचिकित्सिता॥13 र.क.श्रा.॥

शरीर तो स्वभाव से अशुचि है, वह रत्नत्रय से पवित्र होता है। उस रत्नत्रय की तो बात करो, कि शरीर की ही बात करते रहोगे? इस देह को छोड़ने के लिए ही तो मैंने रत्नत्रय धारण किया है। और तुम देह की प्रशंसा में लगे हुए हो। ज्ञानियो! ध्यान दो, योगियों के शरीर की प्रशंसा मत किया करो, योगियों की साधना की प्रशंसा किया करो। यह शरीर तो नोकर्म-कर्म वर्गणाओं का पिण्ड है। इस शरीर को मत निहारिये, इसमें बैठी अशरीरी भगवानात्मा को निहारिये। वह कैसे पवित्र होगी? जिसने खोटे काल में आकर भी रत्नत्रय धर्म को स्वीकार किया है।

विश्वास रखना, तत्त्व पर बोलने वाले जो हैं, वे भी तत्त्व से च्युत हो गए। जो आज अपने पास ग्रंथ हैं, समंतभद्र, कुन्दकुन्द आदि आचार्यों के ही तो हैं। धन्य हों वे पहले उन योगियों को नमस्कार करो। हे स्वामी! मैं आपकी वन्दना इसलिए नहीं कर रहा हूँ कि आपने ग्रंथ लिखे हैं। आपकी वन्दना इसलिए कर रहा हूँ कि ऐसे आप निर्ग्रंथ थे कि ग्रंथ लिखने की सामर्थ्य होने पर भी आप पंथ बनाकर नहीं गए, इसलिए आपको नमस्कार हो। समंतभद्र स्वामी का कोई पंथ दिखाई नहीं देता। कुन्दकुन्द स्वामी का कोई पंथ दिखाई नहीं देता। पुष्पदंत-भूतबलि, धरषेणस्वामी का, यतिवृषभ स्वामी का कोई पंथ दिखाई नहीं देता। आचार्यभगवन् कुन्दकुन्द स्वामी का नाम तो गणधर स्वामी के बाद लिया जाता है। ऐसे मंगलोत्तम शरणभूत योगी ने अपना कोई पंथ नहीं बनाया। जिसको सत्य का बोध हो जाता है, वह अपना कोई पंथ नहीं बनाता। जिसको अहंकार का बोध होता है, वह नियम से अपना पंथ बनाकर जाता है। जितने पंथ बनाते हैं, वे सब मिथ्यादृष्टि लोग होते हैं। एक पंथ है उसका नाम श्रमणसंस्कृति है, तीर्थंकर परम्परा है। सम्यग्दृष्टि जीव उसी परम्परा में अपना जीवन चलाता है। तीर्थंकर भगवान् ने भी अपना कोई पंथ नहीं चलाया। तीर्थंकर संस्कृति नाम की कोई संस्कृति नहीं है। संस्कृति है, उसका नाम श्रमणसंस्कृति है। श्रमणसंस्कृति में चौबीस तीर्थंकर होते हैं, अनादि से होते आए हैं।

आत्मतत्त्व को जाने बिना सम्यक्त्व की प्राप्ति होती नहीं है। इस जड़ शरीर में आत्म-बुद्धि होना, इसको अपना मानना, सम्यक्त्व के उत्पन्न होने में सबसे बाधक कारण है। अनादिकाल से यह जीव शरीर में अपनत्व बुद्धि, ममत्व बुद्धि रखता है, जिससे निज आत्मस्वरूप को पहचान नहीं पाता है। उसे लगता ही नहीं कि इस देह में विराजा देही भिन्न है। सम्यक्त्व की प्राप्ति के बिना सम्यक्ज्ञान, सम्यग्चारित्र होता नहीं है, अतः मोक्षमार्ग बनता ही नहीं है। बिना सम्यक्त्व के निर्वाण की प्राप्ति असंभव है। जैसे राजा किले के बिना शोभा को प्राप्त नहीं होता है, वैसे-ही गृहस्थ दान, दया आदि के बिना शोभा को प्राप्त नहीं होता है। गृहस्थ के मुख्य धर्म दान, पूजादि कहे गये हैं। जो ज्ञानरहित होकर तप करता है, उसका तप व्यर्थ होता है, जैसे लक्ष्यहीन जीव भटकता रहता है। 'छहढाला' में दौलतराम जी कहते हैं—

ज्ञान समान न आन, जगत में सुख को कारण।
इह परमामृत जन्म-जरा-मृतु रोग निवारण॥
तातै जिनवर कथित तत्त्व अभ्यास करीजै।
संशय विभ्रम मोह त्याग, आपौ लख लीजै॥

जो निर्ग्रंथ साधु बाह्य परिग्रह का त्याग कर चुका है, पर उसने मिथ्यात्व को नहीं छोड़ा है, तो उसके तप, संयम, व्रत आदि व्यर्थ हैं। जो साधु बाह्य परिग्रह को रखे हैं, वह दु:ख का ही कारण है। जिस मुनि को पिच्छि, कमंडलु, शास्त्र के प्रति ममत्व भाव है, वे भी परिग्रह की श्रेणी में आते हैं। जिस तरह से श्लेष्मा (थूक) में गिरी हुई मक्खी मृत्यु को प्राप्त हो जाती है, उसी तरह से परिग्रहों में रत साधु कायक्लेश को सहन करते हुए भी दु:ख को ही प्राप्त होता है। परिग्रह जमा करने वाला साधु आर्त्तध्यान से मृत्यु को प्राप्त कर नीच गति में ही जाता है। संसार-सागर से तिर नहीं पाता है।

"आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

॥ भगवान् महावीर स्वामी की जय ॥

❖ ❖ ❖

ज्ञानाभ्यास कर्मक्षय का हेतु

णाणब्भास विहीणो सपरं तच्चं ण जाणदे किं पि।
झाणं तस्स ण होदि हु, ताव ण कम्मं खवेदि ण हु मोक्खं॥89॥

अन्वयार्थ—(णाणब्भास विहीणो) ज्ञानाभ्यास से रहित जीव **(स-परं तच्चं)** स्व-पर तत्त्व को **(किं पि)** कुछ भी **(ण)** नहीं **(जाणदे)** जानता **(तस्स)** उसके **(हु)** निश्चय से **(झाणं)** ध्यान **(ण होदि)** नहीं होता **(ताव)** तब तक **(कम्मं)** कर्मों का **(ण खवेदि)** क्षय नहीं करता **(ण हु मोक्खं)** न ही मोक्ष होता है।

अध्ययन ही ध्यान है

अज्झयण-मेव झाणं, पंचेंदिय-णिग्गहं कसायं पि।
तत्तो पंचम-याले पवयण-सारब्भासमेव कुज्जाहो॥90॥

अन्वयार्थ—(अज्झयण-मेव झाणं) अध्ययन ही ध्यान है **(पंचेंदिय-णिग्गहं)** पंचेन्द्रियों का निग्रह **(कसायं पि)** कषाय निग्रह /शमन भी होता है **(तत्तो)** इसलिए **(पंचम-याले)** वर्त्तमान पंचमकाल में **(पवयण-सारब्भासमेव)** प्रवचनसार जिनागम का अभ्यास **(कुज्जाहो)** करना चाहिये।

सम्यक् ज्ञान ही धर्म्यध्यान

पावारंभ-णिवित्ती पुण्णारंभे पउत्तिकरणं पि।
णाणं धम्मज्झाणं जिणभणिदं सव्वजीवाणं ॥91॥

अन्वयार्थ—(सव्वजीवाणं) सब जीवों के लिए **(पावारंभ-णिवित्ती)** पापारंभ से निवृत्ति और **(पुण्णारंभे)** पुण्य कार्यों में **(पउत्तिकरणं पि)** प्रवृत्ति कराने का हेतु भी **(णाणं)** ज्ञान ही है, अतः ज्ञान को ही **(धम्मज्झाणं)** धर्म्यध्यान **(जिणभणिदं)** जिनेन्द्रदेव ने कहा है।

भव्य बन्धुओ!

अन्तिम तीर्थेश भगवान् वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना, जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति। आचार्यप्रवर भगवन् कुन्दकुन्द स्वामी ग्रंथराज रयणसार जी ग्रंथ में श्रमण और श्रावक उभय धर्मों की व्याख्या करते हुए समझा रहे हैं कि—हे योगी! स्वानुभूति की अनुभूति का वेदन करना है तो श्रुत की गोद में पहुँचना पड़ेगा। तत्त्व का निर्णय, सत्य का निर्णय यह पर कानों का विषय नहीं है। सत्य का निर्णय, तत्त्व का

निर्णय लोकपरम्परा का विषय नहीं है, देश-परम्परा का विषय नहीं है, कुल-परम्परा का विषय नहीं है, पंथ-परम्परा का विषय नहीं है। सत्य का निर्णय, तत्त्व का निर्णय यह जिनआगम का विषय है। आपकी परम्परा में क्या होता है, वह आगम नहीं हो जाता है। आपके कुल में क्या होता है? यह जिनवाणी नहीं हो जाती है। परम्परा में मूसल को भी लोग पूज लेते हैं, उखरी भी पूज लेते हैं, और-तो-और बैल और गाय भी पूजे जाते हैं। यह लोकपरम्परा है। पीपल आदि वृक्षों की भी लोग पूजा कर लेते हैं। तो क्या वह सत्य है, तत्त्व है?

ज्ञानी! लोक में कस्तूरी को पवित्र कहा जाता है, लेकिन कस्तूरी मृग की नाभि में होती है, वह हिंसक द्रव्य है, जैविक द्रव्य है, उसको हम कैसे धर्म स्वीकार कर लें? लोकमान्यताओं में मधु (शहद) को पवित्र मानते हैं। जहाँ बड़े-बड़े यज्ञ होते हैं, चिन्नामृत डाला जा रहा है, जो पवित्र कहा जा रहा है। सात गाँव जलने में जो हिंसा होती है, वह एक बूंद शहद के सेवन में होती है। ऐसे अपवित्र द्रव्य को, जिसमें कोटि-कोटि जीवों का हनन होता है, उसे हम पवित्र कैसे कहें? लोक की पवित्रता को हम सत्य की पवित्रता नहीं कह पायेंगे। लोक में गोबर के लीपने को पवित्र कहा जाता है। जिसे लोक में पवित्र कहा जाता है, उसे दिगम्बर योगी हिंसा कहते हैं। उस गोबर पर पैर रखने को हिंसा कहते हैं। मल है, उसमें सम्मूर्च्छन जीव उत्पन्न होते हैं, उस पर पैर कैसे रख सकते हैं? लोक व्यवस्था को सत्य व्यवस्था कहना, यह पहला मिथ्यात्व है। इसे आगम की भाषा में कहें तो लोकमूढ़ता है।

प्रयोजनभूत जो तत्त्व हैं, सम्यग्दर्शन में सहकारी हैं, वे सात तत्त्व हैं। आचार्य पूज्यपाद स्वामी 'सर्वार्थसिद्धि' ग्रंथ में लिखते हैं कि जगत् के जीवों ने जितना लोकमूढ़ताओं में सत्य को स्वीकार किया है, वह मोक्षमार्ग में अप्रकृतभूत होने से अप्रयोजनभूत है। कभी-कभी क्या होता है कि इतना गहरा तत्त्वनिर्णय जीव को नहीं हुआ तो लोक व्यवस्था, कुल व्यवस्था, परम्परा व्यवस्था को ही मान लेते हैं कि यह भगवान् की वाणी है। जबकि यह भगवान् की वाणी नहीं है। भगवान् की वाणी में छह द्रव्यों की प्ररूपणा हुई है, उन छह द्रव्यों का उपयोग आप क्या कर रहे हो? यह आपके ज्ञान की विपरीतता है। वस्तुव्यवस्था तो परम पवित्र है; परन्तु व्यक्ति के परिणामों की व्यवस्था पवित्र नहीं है। व्यक्ति के परिणामों की पवित्रता है, तो वस्तु निर्मल है। एक छुरी से कसाई हिंसा कर रहा है और एक छुरी से पुजारी पूजन की द्रव्य बना रहा है। छुरी में क्या दोष था? एक डॉक्टर उसी छुरी से शल्यक्रिया करके जीवों को स्वास्थ्य-लाभ दे रहा है। छुरी में पाप नहीं था, उपकरण में पाप नहीं था। पाप-पुण्य कहीं है, तो जीव की परिणति में है। परिणति को पवित्र नहीं किया और पर को दोष देता रहा। पहला दोष तो पाप किया और फिर दूसरे को दोष दिया, मायाचारी भी की।

लोकव्यवस्था, सत्य व्यवस्था नहीं है। लोकव्यवस्था तत्त्वव्यवस्था नहीं है। यह हो सकता है कि किसी वस्तु को आपने जाना नहीं है, पहचाना नहीं है, उसको अपने ज्ञान की न्यूनता तो कहिए, परन्तु वस्तु का अभाव नहीं कर सकते हो। जिस व्यक्ति को दूध से घृत निकालने की विद्या नहीं मालूम है, तो यह उसके तद्विषयक ज्ञान की न्यूनता है; परन्तु वस्तु (घृत) का अभाव नहीं है। लोक में मिथ्यात्व किसे मान लिया है? जो मेरे अनुसार नहीं है, उसे मिथ्या कह दिया। जो मेरे अनुसार है, उस मिथ्यात्व को भी सम्यक्त्व बना लिया। किसी व्यक्ति को तपेदिक रोग हो गया, वैद्य ने कह दिया कि आपको मात्र जौ की रोटी खाना है और उसने खाना भी प्रारम्भ कर दिया। कुछ दिन बाद उसके मित्र ने उसे अपने घर में आमन्त्रित किया, उसने बादाम का हलवा बनाया, अच्छी-अच्छी सामग्री बनवाईं। वह अस्वस्थ व्यक्ति कहता है कि कुछ भी तो नहीं बना तुम्हारे घर में। बोले, क्यों? ये सब स्वास्थ्य को बिगाड़ने वाली सामग्रियाँ बनाकर रखीं हैं आपने। जबकि उस व्यक्ति ने तो सबकुछ अच्छा ही बनाकर रखा था। वह बोला—जौं की रोटियाँ कहाँ हैं? ऐसे-ही जगत् में क्या हुआ, सुनो—जिस व्यक्ति के अंदर स्वयं तो रोग हो गया मिथ्यात्व का और विपरीत तत्त्व को तत्त्व कहना प्रारम्भ कर दिया, अब सम्यक् तत्त्व उसके सामने आ जाए, तो उसे मिथ्यात्व कह देता है और अपने मिथ्यात्व को सम्यक्त्व कहता है। ऐसे लोग जगत् में अनंत हो चुके हैं। जो विद्या जिनागम में नहीं है, उसे अपने महत्व में आकर जिनागम कह देना और अरिहंत की देशना को मिथ्या कह देना, यह पहली मिथ्यादृष्टि की पहचान है। आगम अगाध है।

कोई वक्ता कोई बात कहे तो तुरन्त ना मत कहना, शान्ति से सुन लेना और यह कहना, "मुझे प्रमाण चाहिए"। क्योंकि ध्यान दो, वर्तमान में ऐसी भी परीक्षा प्रारंभ हो चुकी है कि विद्यार्थियों से कहा जाता है कि पुस्तक खोलकर खोज लीजिए और नकल करके लिखिए। तब भी फेल होते हैं, ऐसा क्यों? पुस्तक खोलकर वही तो लिख पाएगा, जिसने अध्ययन किया होगा। जिसने अध्ययन नहीं किया, तो नकल क्या कर पाएगा? समय निश्चित है। ऐसे-ही कोई यह कहने लग जाए, तो यह है आगम, लेकिन आगम में तुम खोज नहीं पाओगे, क्योंकि तुमने आगम को पढ़ा ही नहीं है। जितनी बार पढ़ोगे, उतनी बार आपको नया महसूस होगा। गुरु पढ़ा रहे थे और आप बाहर की बातें लिख रहे थे। आगे चलकर किसी ने प्रश्न कर दिया, "ऐसा है, कि नहीं?" तो कहता है कि मेरे गुरु ने यह नहीं पढ़ाया। इसमें गुरु का दोष नहीं, तेरा दोष है। मन से सुनता जब गुरु समझा रहे थे, तो समझ में आता। लिखने पर विषय लिखा तो जाता है, परन्तु समझ में नहीं आता। समझोगे तो लिखा नहीं जाएगा, समझ में आएगा। हे अज्ञानी! अपनी गलती को गुरु पर मत थोप। ऐसे भी चेले हैं भैया! जो उपयोग कहीं ले गए, मस्तिष्क लगाया

नहीं और कहने लगे कि हमारे गुरु ने पढ़ाया नहीं है। ज्ञानी! गुरु को दोष मत दो। गुरू ने तो पढ़ाया था, परन्तु तुम उस समय मन से वहाँ थे नहीं। शरीर वहाँ था, परन्तु उपयोग नहीं था। पुस्तक दे दी तब भी फेल हो गए। नकल के लिए भी थोड़ी अक्ल तो होनी चाहिए।

हे ज्ञानी! उपयोग तो एक समय में एक ही होता है, चाहे भगवान् का नाम ले लो, चाहे जिनवाणी सुन लो। उपयोग की धारा को देखो कि पूरा ग्रंथ पढ़ लिया, लेकिन एक शब्द भी पता नहीं चला कि इसमें था क्या? सब ग्रंथ पढ़ने के बाद भी निर्ग्रंथत्व का बोध नहीं हो रहा है। तत्त्व, तत्त्व है, सत्य, सत्य है। जो गाथाओं को याद करेगा उसे ग्रंथ का विषय याद रहेगा और सीधा ग्रंथ पढ़ लेता तो उसे यह तो याद रहेगा कि मैंने अमुक ग्रंथ का अध्ययन किया है, परन्तु विषय को बता नहीं पाएगा। जिन शासन में ज्ञान किसे कहा है?

जेणं तच्चं विबुज्झेज्ज, जेणंचित्त णिरूज्झदि।
जेण अत्ता विसुज्झेज्ज तं णाणं जिणसासणे ॥267 मूलाचार॥

'मूलाचार' में वट्टकेर स्वामी लिखते हैं—जिनेन्द्र के शासन में वही ज्ञान, 'ज्ञान' है, जिससे तत्त्व का बोध हो, जिससे चित्त का निरोध हो, जिससे आत्मा की विशुद्धि हो। जिससे तत्त्व का बोध न हो, चित्त का निरोध न हो, आत्मा में विशुद्धि न बढ़े, उस ज्ञान को जिनेन्द्र के शासन में ज्ञान नहीं कहा। कोई यूँ कहे कि आप मुझे 'ज्ञानी' नहीं मानते, मैं तो कितने शास्त्रों का ज्ञाता हूँ। ज्ञानी! ज्ञानीपुरुष के अंतस् में विशुद्धि होती है। ज्ञानीपुरुष के चेहरे पर पवित्रता झलकती है। ज्ञानी तमतमाता नहीं दिखता है, ज्ञानी शीतल होता है। पानी से भरा मटका भी आर्द्र दिखाई देता है। जिसकी आत्मा में भेदविज्ञान भर चुका है, विश्वास रखना उसकी वाणी में, उसकी वृत्ति में ज्ञान टपकता है। ज्ञानी की भाषा और अज्ञानी की भाषा उसका परिचय दे देती है। शास्त्रीय संगीत और एक ग्रामीण आकर संगीत करने लग जाए, आप समझ जायेंगे कि कौन संगीतकार संगीतशास्त्र का ज्ञाता है और कौन कामचलाऊ है। प्रवृत्ति देखकर व्यक्ति का बोध होता है। राजा श्रेणिक की अनुभूति को निहारो—वे मार्ग को देखकर समझ लेते हैं कि इस मार्ग से कानी हथिनी निकल चुकी है। लोगों ने पूछा, आपने कैसे जाना? देखो यह तो माना कि पैरों से जान लिया कि हाथी के पैर हैं, परन्तु यह कैसे जाना कि हथिनी थी और कानी थी?

"साधनात्साध्यविज्ञानमनुमानम्" ॥9 प.मु.सू.॥

साधन से साध्य का ज्ञान अनुमान होता है। एक ओर की झाड़ियाँ टूटी हुई हैं, हाथी होता तो उसकी लघुशंका एक जगह भरी मिलती। परन्तु हथिनी निकली है, वह जब लघुशंका कर रही थी, तो चलते-चलते की है। इससे अनुमान लगा लिया कि हाथी नहीं निकला है, हथिनी

निकली है। वह कानी थी; क्योंकि एक तरफ के पेड़ टूटे पड़े हैं। बस, ज्ञानी! वे कानी हथिनी के तुल्य हैं जो एक नय को छोड़कर एक नय को पकड़े हुए हैं; जिन्होंने एक नय के पौधों को तोड़ दिया है। निश्चय नय, व्यवहार नय ये दो नयन हैं हमारे। जिसके दोनों नयन खुले होते हैं, उसका मोक्षमार्ग अविराम चलता है। जिसका एक नयन फूट गया है, वह एक ओर की वृक्षावलि तोड़ देता है। इसलिए, वस्तुस्वरूप को समझने के लिए आगम के रहस्यों को समझना पड़ता है। किसी व्यक्ति के बारे में अशुभ बोलने से पहले अशुभ सोच लेना और अशुभ सोचने के पहले उसका ज्ञान कर लेना, कि यह ऐसा है कि नहीं है?

द्रव्य मिथ्यात्व से हटाने वाले लोग तो मिल जाते हैं, परन्तु भाव मिथ्यात्व से हटाने वाले लोग नहीं मिलते हैं। जिनको जो पसंद होता है, उसको सत्य कहते हैं। ज्ञानी! किसी की पसंद सत्य नहीं होती है। सत्य तो सत्य ही होता है। आज निर्णय कर लो, कहीं अपन नरक में पहुँच गए, तिर्यंच बन गए, फिर विवेक जगा या नहीं जगा? ज्ञानियो! ऐसा काम करना कि न नरक जाना पड़े, न तिर्यंच बनना पड़े। सम्यग्दृष्टि जीव की कभी दुर्गति होती नहीं, अशुभ आयु का बंध होता नहीं। जिसने सम्यक्त्व की आराधना कर ली, वह पूर्ण आयु का भोक्ता होगा। व्रती नहीं, अव्रती हो तो भी सम्यक्त्व की इतनी महिमा है। संयम धारण करने के लिए घर छोड़ना पड़ता है, विषयभोग छोड़ने पड़ते हैं, लेकिन श्रद्धान करने के लिए न घर छोड़ना है, न विषय छोड़ने हैं, मात्र मिथ्यात्व को छोड़ना है। जबकि घर छोड़ना, विषय कषाय छोड़ना सरल है, परन्तु अन्दर का विपरीत श्रद्धान छोड़ पाना बहुत कठिन है।

ज्ञानी! अंतरंग को सुधारो, बहिरंग क्रिया से भव नहीं सुधरता। बहिरंग की क्रिया से वर्तमान में तिलक तो लग जाएगा, परन्तु भविष्य की पर्याय के लिए कर्म का तिलक लेकर ही जाएगा। मायाचारी की साधना कर भी ली इस जीव ने, तो बाहर के तिलक तो लग जायेंगे, गले में मालाएँ पड़ जायेंगी, पूजा हो जाएगी, लेकिन कर्म का कलंक धुलने वाला नहीं है जब तक अंतरंग साधना नहीं है, तब तक। यदि किंचित् भी निजात्मा पर करुणा हो, तो बहिरंग में जैसे हो, अंतरंग में भी वैसी प्रवृत्ति करो। लोकव्यवहार चलाने के लिए अपनी आत्मा की विडम्बना मत कर लेना। लोकमर्यादा के राग में तेरी आत्मा तो अमर्यादित गति को चली गई। जो-जो छुपकर पाप कर रहे हैं, आगम का अवर्णवाद कर रहे हैं, तो लोक को तो छल पायेंगे, परन्तु तुमको मालूम है और स्वयंभू को मालूम है कि तुम कैसे हो? इसलिए कषाय के आवेग में जिनवाणी के विपरीत कथन मत करो। जिनवाणी को जिनवाणी ही रहने दो। कम ज्ञानी होकर रह लेना, परन्तु विपरीत ज्ञानी मत हो जाना। अल्पज्ञानी यदि निर्मोही है, तो मोक्ष जा सकता है। बहु ज्ञानी यदि मोही है, तो नियम से संसार में ही डोलेगा।

अज्ञानान्मोहतो बन्धो नाज्ञानाद्वीत मोहतः।
ज्ञानस्तोकाच्च मोक्षः स्यादमोहान्मोहितोऽन्यथा॥९४आ.मी.॥

समंभद्रस्वामी कहते हैं—जो मोहरहित अल्पज्ञानी है, वह निर्बंधक है। बहुत ज्ञान होने पर भी यदि मोहसहित है, वह बंधक है। अल्प ज्ञान हो, लेकिन निर्णय सत्य हो। बहुत बड़े ज्ञानी की उपाधि से मण्डित होकरके भी दुर्गति के भाजक मत बन जाना। अल्प ज्ञानी होकरके भी निर्मोही ज्ञान है तो तुम्हारा सम्यक् मार्ग है। बहुत डिग्रियों से युक्त होना कोई ज्ञान की पहचान नहीं है। अनुभव ही ज्ञान की पहचान है। किसी की डिग्री को देखकर पागल मत हो जाना, उसको पास में बैठाकर उसका बोध कर लेना। डिग्री को देखकर लोग ठगे गए। एक प्रश्न करूँ आपसे—आचार्यभगवन् विद्यासागर जी कितनी डिग्रियों से युक्त हैं? नवमी कक्षा पढ़ा जीव, आज बड़े-बड़े डिग्रीधारी लोग उन पर डॉक्ट्रेट कर रहे हैं। ज्ञानी! डिग्रियाँ ज्ञान नहीं होती हैं, श्रुताभ्यास ज्ञान होता है। अभ्यास नहीं है तो डिग्री क्या करेगी? ठीक है, किसी को ठगने के लिए काम में आ जाएगी, परन्तु ध्रुव सत्य है कि कोई ठगा भी नहीं जाता है। ठगा वही जाता है, जो स्वयं मायाचारी करता है।

भैया! जिसको सीखना होता है, एक घण्टे में सीख लेता है। योगी न भी बोले, परन्तु जिसमें सुनने की क्षमता है, वह योगी को देखने मात्र से, बिना योगी के वचन बोले ही, मोक्षमार्ग का उपदेश सुन लेता है। ग्रंथों का बोध निर्ग्रंथों से लेने मत जाना। निर्ग्रंथता का बोध निर्ग्रंथ से लेने जाना। कैसे चर्या करना? कैसे क्रिया करना? कैसे वस्तुस्वरूप की प्राप्ति का लक्ष्य बनाना? यह निर्ग्रंथ मुनि से ही प्राप्त हो सकता है। इसीलिए आचार्यभगवन् कुन्दकुन्द स्वामी बार-बार कह रहे हैं कि श्रुत का अभ्यास करो।

मकान एक बार बनाया जाता है, उसमें नालियाँ भी एक बार बना ली जाती हैं। लेकिन मकान की नालियाँ कितनी बार साफ करनी पड़ती हैं? मकान की नालियाँ प्रतिदिन साफ करनी होंगी। यदि नहीं करोगे, तो तेरे घर में दुर्गंध छा जाएगी और कीचड़ फैल जाएगी। जैसे मकान का स्वामी प्रतिदिन नालियों को साफ करता है, ऐसे ही निर्ग्रंथ योगी के संयम का भवन तो एक दिन बन गया उसकी सफाई के लिए प्रतिदिन चार-चार बार स्वाध्याय करता है, प्रतिक्रमण करता है, प्रायश्चित लेता है, कि कहीं मेरे इस भवन में विषयकषाय की दुर्गंध न फैल जाए। प्रत्यक्ष में निहारो, जिन ज्ञानियों ने जीवन में कभी ग्रंथ न उठाया हो, वे जिनवाणी सुनने बैठे हैं और सबके चेहरे शांत हैं। मन जब कहीं शांत नहीं होता है, तो तत्त्व-उपदेश में होता है।

ज्ञानी! ज्ञान का अभ्यास करना चाहिए। मात्र ग्रन्थों के पढ़ने से कुछ नहीं होने वाला है। पढ़ने के साथ गुनना भी चाहिए। बिना ज्ञान का अभ्यास किए जीव स्व और पर तत्त्व की

पहचान नहीं कर सकता है। जब स्व और पर में भेद नहीं कर पायेगा, तो कर्मों का क्षय कैसे करेगा? बिना स्व-पर की पहचान के ध्यान भी संभव नहीं है। दौलतराम जी कहते हैं—"ज्ञान समान न आन जगत् में सुख को कारण"। कुए से जितना पानी निकालते हो, उतना पानी कुआँ में आ-जाता है। उसी तरह से जितना ज्ञानाभ्यास करते जाओगे, ज्ञान बढ़ता जायेगा। ज्ञान से, अध्ययन से, पंच-इन्द्रियों का निग्रह होता है, कषाय का शमन होता है। आचार्यभगवन् कह रहे हैं कि पुण्य में प्रवृत्ति ज्ञान से ही होती है; पाप से निवृत्ति भी ज्ञान से होती है। अतः ज्ञान को धर्मध्यान भी कहा गया है।

"**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।**" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

॥ भगवान् महावीर स्वामी की जय ॥

❖ ❖ ❖

"श्रुतज्ञान के बिना सम्यक् तप नहीं"

सुदणाणब्भासं जो ण कुणदि सम्मं ण होदि तवयरणं।
कुव्वंतो मूढमदी, संसार सुहाणुरत्तो सो ।। 92।।

अन्वयार्थ—(जो) जो **(सुदणाणब्भासं)** श्रुतज्ञान का अभ्यास **(ण कुणदि)** नहीं करता है, उसके **(तवयरणं)** तपश्चरण **(सम्मं)** सम्यक् **(ण होदि)** नहीं होता है। **(कुव्वंतो)** श्रुतज्ञान का अभ्यास किये बिना तपश्चरण करने वाला **(सो मूढमदी)** वह अज्ञानी **(संसार सुहाणुरत्तो)** संसारिक सुखों में अनुरक्त है।

"मुनि तत्त्व-विचार में लीन रहते हैं"

तच्चवियारणसीलो, मोक्खपहाराहणासहाव जुदो।
अणवरयं धम्मकहापसंगओ होदि मुणिराओ ।। 93 ।।

अन्वयार्थ—(मुणिराओ) मुनिराज **(तच्च वियारण-सीलो)** तत्त्व की विचारणा करने वाले **(मोक्खपहाराहणा सहाव जुदो)** मोक्ष-पथ की आराधना के स्वभाव वाले और **(अणवरयं)** निरन्तर **(धम्म-कहापसंगओ)** धर्म-कथाओं के परिचायक **(होदि)** होते हैं।

।। देशना ।।

ज्ञानियो! अन्तिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना, जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति ।

आचार्य प्रवर कुन्दकुन्द स्वामी ग्रन्थराज रयणसार जी में श्रमण और श्रावक इन दोनों धर्मों की व्याख्या करते हुये समझा रहे हैं।

ज्ञानी! ध्यान दो। मैं त्रयकालिक हूँ, या तात्कालिक हूँ? जो ज्ञायकभाव है, वह त्रयकालिक है और जो रागादिक भाव है वह तात्कालिक है। हे योगी! आत्मभाव पर दृष्टिपात करो।

हे श्रमण! सम्यक् ज्ञान के बगैर किया गया तपश्चरण व्यर्थ ही है। ज्ञानी! पहले ज्ञान, फिर ध्यान। पहले जाना ही नहीं, तो ध्यान करेगा किसका? ज्ञानी! जो तपश्चरण है वह ज्ञान से शून्य नहीं है। ज्ञान में किंचित् भी विकार है, विपरीतपना है, तो कितना ही तपश्चरण कर लेना, परन्तु वह मुक्ति का साधन नहीं है।

"बिन जानन तैं दोष-गुणन को कैसे तजिये गहिये"

हे ज्ञानी! पहले श्रद्धान, फिर सम्यक् ज्ञान तदुपरान्त सम्यक् तपश्चरण। जब तक दोषों को जानेगा नहीं, गुणों को जानेगा नहीं, तो फिर किसे ग्रहण करोगे और किसे त्याग करोगे? ज्ञान मध्य-दीप है, जो दर्शन एवं चारित्र दोनों को परिपुष्ट करता है। ज्ञानी! जिसका ज्ञान निर्मल है, उसका ही चारित्र निर्मल हो सकता है। प्रमाण और नय से ज्ञान होता है।

"मति श्रुतावधि मनःपर्यय-केवलानि ज्ञानम्" (त.सू.)

आचार्यभगवन् उमास्वामी महाराज ने ज्ञान के पाँच भेद कहे हैं- मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यय ज्ञान और केवलज्ञान। ज्ञानी! समझो, मति का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है—

"इन्द्रियैर्मनसा च यथा स्वमर्थो मन्यते अनया मनुते मननमात्रं वा मतिः"

इन्द्रिय और मन के द्वारा यथायोग्य पदार्थ जिसके द्वारा मनन किये जाते हैं, जो मनन करता है या मनन मात्र 'मति' कहलाता है। श्रुत का व्युत्पत्ति लभ्य अर्थ है- **"तदावरण कर्मक्षयोपशमे सति निरूप्यमाणं श्रूयते अनेन श्रणोति श्रवणमात्रं वा श्रुतम्"** श्रुतज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम होने पर निरूप्यमान पदार्थ जिसके द्वारा सुना जाता है, जो सुनता है या सुनना मात्र 'श्रुत' कहलाता है।

मतिज्ञान इन्द्रिय और मन के निमित्त से होता है और जो श्रुतज्ञान है वह मतिज्ञानपूर्वक होता है। ज्ञान ही सुख का कारण है और अज्ञान ही दुःख का कारण है। ज्ञानी! समझो शब्द ज्ञान, आत्म ज्ञान। हेय-उपादेय-उपेक्षा। योग-उपयोग-संयोग। ज्ञेय-ज्ञाता-ज्ञान। ज्ञान के फल पर दृष्टिपात करो।

आचार्यभगवन्त कह रहे हैं कि आत्मज्ञान का साधन शास्त्रज्ञान है। ज्ञानाभ्यास से विहीन मनुष्य स्व-पर तत्त्व से अनभिज्ञ रहता है। पापप्रवृति से निवृत्ति और पुण्यकार्य में प्रवृत्ति का मूलभूत कारण ज्ञान ही है। ज्ञान रहित साधक विवेक से शून्य रहता है। आचार्यभगवान् सकल-कीर्ति महाराज ने कहा है कि—

ज्ञान हीनो न जानाति, धर्मं पापं गुण गुणम्।
हेयाहेयं विवेकं च, जात्यन्ध इव हस्तिनम्।। 32।।

-हे भव्य! ज्ञान से विहीन जीव धर्म, पाप-पुण्य, गुण-अवगुण के एवं हेय-उपादेय के विवेक से रहित होता है, जैसे जन्मान्ध व्यक्ति हाथी से अनभिज्ञ रहता है।

जो निर्मल गुणों का भंडार है, जिसके माध्यम से निर्मल गुण प्रकट होते हैं, स्व-पर का भेद-विज्ञान होता है, विवेक-बुद्धि जागृत होती है, श्रमणगण जिसका नित्यप्रति सेवन करते हैं एवं निरन्तर अभ्यास करते हैं, जो समस्त तत्त्वों को प्रकाशित करने के लिए दीपक के समान है, पाप

रूपी बेल को जड़ से उखाड़ने के लिए जो प्रलयकालीन पवन के समान है, पुण्य का तीर्थ है। जिनेन्द्र भगवान् ने जिसको अपनी दिव्यध्वनि में कहा है, गणधरों द्वारा गुंथित किया गया है, मन रूपी हाथी को जो अंकुश लगाता है। ऐसे सम्यक्-ज्ञान का निरंतर अभ्यास करना चाहिए।

इसी ग्रंथ में भगवान् कुन्दकुन्द देव कह रहे हैं कि शास्त्रों का अध्ययन ही ध्यान है। इसी से पंचेन्द्रियों का निग्रह और कषायों का भी निग्रह होता है, इसलिए इस पंचमकाल में प्रवचनसार अर्थात् जिनागम का ही अभ्यास करना चाहिये।

''सम्यक् ज्ञानं प्रमाणम्। ''

ज्ञानी! सम्यक्-ज्ञान ही प्रमाण है। सम्यक्-ज्ञान ही मोक्षमार्ग में कार्यकारी है। सम्यक्-श्रद्धान ही सम्यक्-ज्ञान को प्रमाणित करता है। ज्ञान प्रत्यक्ष और परोक्षभूत है।

ज्ञानियो! निहारो, जितने भी कर्मातीत हुए हैं, कर्मातीत होंगे और कर्मातीत हो रहे हैं, यह श्रुत की ही महिमा है। जो भव्य-आत्मा श्रुत को श्रवण करता है, श्रुत का पारायण करता है, श्रुत का प्रचार-प्रसार करता है, समझ लेना उस भव्य का संसार अल्प रह गया है। जिनेन्द्र की वाणी को सुनने के परिणाम हो जायें, विश्वास मानना, यदि भव्य है तो उसे भविष्य में नियम से भगवान् बनना है। उस भव्य की भवावलियाँ न्यून हैं।

''आगम चक्खू साहू''

ज्ञानी! साधु का नेत्र आगम है। परम वीतरागी तपोधन निर्ग्रन्थ योगी, धरती के देवता निरन्तर जिनागम में लवलीन रहते हैं। जिनागम के पारायण से भाव एवं भाषा परिमार्जित होते हैं। आचार्य-भगवान् जिनसेन स्वामी ने 'हरिवंश पुराण' में लिखा है कि-

''शास्त्र व्यसनमन्येषां व्यसनानां हि बाधकम्'' अर्थात् शास्त्र स्वाध्याय के व्यसन से अन्य समस्त व्यसन छूट जाते हैं।

ज्ञानी! साधक का ध्यान उसका अध्ययन है। अध्ययन द्वारा ही वह सम्यक्त्व के विषय में जानकारी प्राप्त करता है। शास्त्रों की सीप से सम्यक्त्व के मुक्ताफल (मोती) मिलते हैं। तन्मयता बढ़ती है और ज्ञानसम्पन्न होने से स्व-पर का बोध होता है। हे श्रमण! इस प्रकार ध्यान द्वारा जो परिणामों की विशुद्धि होती है, वही शास्त्र-स्वाध्याय से सिद्ध होती है।

जग सुहित कर सब अहितहर, श्रुति सुखद सब संशय हरैं।
भ्रमरोग-हर जिनके वचन, मुख-चन्द्र तैं अमृत झरैं।।(छहढाला)

ज्ञानी! जो वीतरागी श्रमणों के वचन हैं, वे जगत् के प्राणियों के लिये हितकर हैं, उपकारी हैं तथा अहित का हरण करने वाले हैं। जिनेन्द्र के वचन सब संशय को विनष्ट करने वाले हैं। वीतरागी भगवन्तों के श्रीमुख से खिरते वचन ऐसे प्रतीत होते हैं मानो चन्द्र से अमृत ही झर रहा हो।

ज्ञानी! श्रुतज्ञान यानि जिनागम का अभ्यास नित्य करना चाहिए। ज्ञान के बिना सम्यक् तपश्चरण भी सम्भव नहीं है। ''सुदणाणब्भासं ण कुणदि'' जो श्रुतज्ञान का अभ्यास नहीं करता है ''कुव्वंतो सो मूढमदी'' कुतप करने वाला अज्ञानी है, मिथ्यादृष्टि है ''संसार सुहाणुरत्तो'' सांसारिक सुखों में लिप्त है। ज्ञानी! ज्ञान का अभ्यास करने वाला, सुव्रतों का धारक ही सुतप करता है। अज्ञानी का तप संसार का ही कारण है।

जो मुनिभगवंत तत्त्वों के चिंतन में निरन्तर लीन रहते हैं। ''मुणिराओ तच्चवियारण-सीलो'' मुनिराज तत्त्व की विचारणा करने वाले होते हैं एवं 'मोक्खपहाराहणासहाव जुदो'' मोक्ष- पथ की आराधना के स्वभाव वाले और ''अणवरयं धम्म-कहायसंगओ होदि'' वह श्रमण, मोक्षपथ के अनुगामी, निरन्तर धर्मकथाओं के परिचायक होते हैं।

ज्ञानी! पंचमकाल में स्वाध्याय ही परमसुख का साधन है, परम तप है। नेत्र और मन ही चित्त को भ्रमित करते हैं। इन्हें श्रुत के पारायण में लगा दो तो साधना भी निर्मल होगी और चित्त भी स्थिर होगा। श्रुत के अभ्यास से कैवल्य ज्योति प्रकट होगी।

जयवंत हों तत्त्व के चिंतन में लवलीन परम योगीश्वर। निर्ग्रंथ मुनीश्वर जयवंत हों। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति, श्रमण परम्परा।

"आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

॥ भगवान् महावीर स्वामी की जय ॥

❖ ❖ ❖

"मुनि की धर्ममय प्रवृत्ति"

विकहादिविप्पमुक्को, आहाकम्मादि विरहिदो णाणी।
धम्मुद्देसण कुसलो, अणुपेहाभावणा जुदो जोई।। 94।।

अन्वयार्थ—(जोई) योगी **(विकहादिविप्पमुक्को)** विकथा आदि से पूर्णत: मुक्त होता है **(आहाकम्मादि विरहिदो)** अध:कर्म आदि से रहित होता है **(णाणी)** सम्यक्-ज्ञानी होता है **(धम्मुद्देसण कुसलो)** धर्मोपदेश देने में कुशल होता है, और **(अणुपेहाभावणा जुदो)** बारह अनुप्रेक्षाओं के चिन्तन में निरत रहता है।

"मुनि का स्वरूप"

णिंदावंचणदूरो, परिसह-उवसग्ग-दुक्खसहमाणो।
सुहझाणज्झयणरदो, गदसंगो होदि मुनिराओ ।। 95 ।।

अन्वयार्थ—(मुणिराओ) मुनिराज **(णिंदावंचणदूरो)** निंदा और वंचना से दूर रहते हैं **(परिसह-उवसग्ग-दुक्खसहमाणो)** परीषह, उपसर्ग और दु:खों को सहन करते हैं **(सुहझाणज्झयणरदो)** शुभ ध्यान और अध्ययन में निरत रहते हैं **(गदसंगो)** अन्त: व बाह्य परिग्रह से रहित (होदि) होते हैं।

"निर्मल स्वभाव वाला मुनि-योगी"

अवियप्पो णिद्दंदो, णिम्मोहो णिक्कलंकओ णियदो।
णिम्मल सहावजुदो, जोई सो होदि मुणिराओ।। 96।।

अन्वयार्थ—जो **(अवियप्पो)** विकल्प रहित **(णिद्दंदो)** निर्द्वन्द्व **(निम्मोहो)** मोह रहित **(णिक्कलंकओ)** निष्कलंक **(णियदो)** नियत **(णिम्मलसहावजुदो)** निर्मल स्वभाव वाला **(जोई)** योगी होता है **(सो)** वह **(मुणिराओ)** मुनिराज **(होदि)** होता है।

।। देशना ।।

अन्तिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना, जिनेन्द्रवाणी मनीषियो जगत्कल्याणी है।

यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवंत हो, जयवंत हो। वीतराग श्रमणसंस्कृति ।

आचार्य प्रवर कुन्दकुन्द स्वामी ग्रन्थराज रयणसार जी में श्रमण और श्रावक इन दोनों धर्मों की व्याख्या करते हुये समझा रहे हैं।

ज्ञानियो! "जैनीवृति स्वेच्छाचार निरोधनी"। दिगम्बर योगी, वीतरागी तपोधन, धरती के देवता, मुनिराजों की धर्ममय अलौकिक प्रवृत्ति होती है। जयवंत हों धरती के देवता वीतरागी तपोधन, दिगम्बर श्रमण।

ज्ञानी! धरती के देवता दिगम्बर मुनि स्व दोषों की निंदा करते हैं, परन्तु पर की निंदा स्वप्न में भी नहीं करते हैं। तप करते हुए परीषह-उपसर्गों को समतापूर्वक सहन करते हैं। दिगम्बर मुनि ध्यान-अध्ययन में निरन्तर निरत रहते हैं एवं अंतरंग-बाह्य परिग्रह से विरक्त रहते हैं।

वीतरागी श्रमण ज्ञानोपकरण एवं संयमोपकरण मात्र को धारण करते हैं। ज्ञान उपकरण अर्थात् स्वाध्याय के लिए शास्त्र और शास्त्र आदि लिखने के लिए लेखनी। संयम-उपकरण अर्थात् शारीरिक शुद्धि हेतु कमण्डलु, मार्जण हेतु पिच्छिका। मुनिराज साधना के काल में निरन्तर जाग्रत रहते हैं। दिगम्बर श्रमण समत्व भाव में स्थापित रहते हैं। ज्ञानियो! समत्व भाव ही श्रमण का आभूषण है, समता भाव ही श्रमणों की पहिचान है, चिह्न है। नग्न मुद्रा और पिच्छि-कमण्डलु बाह्य चिह्न हैं। वीतरागी मुनि विश्वमैत्री के विशिष्ट सूत्र विश्व के प्राणियों को प्रदान करते हैं।

हे प्रभो! गतियाँ अनन्त प्राप्त कीं, लेकिन एक बार भी सुगति प्राप्त नहीं हुई। सुगति प्राप्त हो गई होती तो आज पंचमकाल में न होते। इसमें शंका नहीं करना। बहुत बड़ी बात ये है कि ऐसे खोटे काल में अपनी बात सुनने को मिल रही है। श्री का मिलना इतना महान् नहीं है, श्री जी की वाणी मिलना महान् है। सारे जगत् की भूमि के गड्ढों का समतलीकरण कर लेना सरल है। यदि किसी की जमीन के सामने गड्ढा होता है तो वह तुरन्त भरकरके सम कर लेता है। ऐसे-ही हमारे भावों में जो कषायों के गड्ढे पड़ रहे हैं, ये समकरण हो जायें। यदि भवन के सामने के गड्ढे में गिर भी गये, तो मात्र शरीर की हड्डियाँ ही टूटेंगीं, लेकिन यदि कषाय के गड्ढे में गिर गये तो भगवान्-आत्मा की दुर्गति हो जायेगी।

हे ज्ञानी! एक शरीर के साथ रहने के लिये भवन बनाया है, उस भवन को कितने अच्छे से बनाकर रखा है। चैतन्य भवन में त्रैकालिक रहना है। भैया! विश्वास रखना, जिस भवन में आप रह रहे हो, उस भवन से तो आपको जाना पड़ेगा। अब चाहे आपको अच्छा लगे या बुरा। जो है, सो है। इस भवन से तो जाना पड़ेगा। इस भवन में बहुत समय तक नहीं रह पाओगे। जन्म तो झुपड़िया में हुआ था और मरण के लिये खण्ड-पर-खण्ड बना रहा है। बेटे से पूछना, मेरे लाल! तू इतना तो बता दे, मैंने तेरे लिये मकान-पर मकान बना दिये, इसमें से कौनसा कोना होगा जिसमें तू मेरे शरीर का अंतिम संस्कार करा देगा? बेटा कहेगा कि मुझे इसमें रहना है, इसको मरघट मत बनाओ।

जितनी जल्दी-से जल्दी बने, इसे ले जाओ। भवन बनाये तो जा सकते हैं, पर विश्वास रखना, जिस भवन को तूने स्थापित किया है, उस भवन में तेरा बेटा तेरे संस्कार के लिये एक खूँट भी नहीं देगा।

भगवत् कुन्दकुन्द स्वामी कह रहे हैं-हे नाथ! सुख में, दु:ख में। ध्यान दो, सुखोदय भी होता है तो कर्मोदय से होता है और दु:खोदय भी होता है तो कर्मोदय से होता है। संसार में कर्म मेरी आत्मा का धर्म नहीं होता है। इसलिये सुख भी मेरी आत्मा का धर्म नहीं है, दु:ख भी मेरी आत्मा का धर्म नहीं है। आत्मधर्म जो है, वह आत्मा का धर्म ही है। इन्द्रियसुख भी मेरी आत्मा का धर्म नहीं है। बस, यह निर्णय जिस दिन हो जायेगा, उस दिन ज्ञानी! जगत् में आपको कहीं भी जाने की आवश्यकता नहीं होगी। घर में ही आपको वैराग्य हो जायेगा। वैराग्य जब भी होता है, तो घर में ही होता है। वैराग्य मंदिर में नहीं होता है। मंदिर में तो भक्ति होती है। घर में वैराग्य होगा, तभी तो वन में जायेगा। वन में वैराग्य होगा तो क्या घर आयेगा? जो वस्तु राग में लीन कर रही थी, वही वस्तु दूसरे क्षण वैराग्य में कारण बन जाती है। क्या सोच रहे हो? चाहे वन में हो, चाहे भवन में हो, लेकिन बनना है तो निज में ही जाना होगा। जिस जीव की दृष्टि है कि मैं जंगल में जाकर ध्यान करूँगा, भवन में बैठकर ध्यान करूँगा, तो अभी तुम धर्म से दूर हो। ग्राम और अरण्य में जिसकी दृष्टि चल रही हो, वह आत्मधर्म से शून्य है। एक ज्ञानी बोलता है, कि मुझे आत्मा का कल्याण करना है। मैंने पूछा-कैसे करोगे? तो बोला-आत्मा का ध्यान करूँगा। मैंने कहा-करो। तो बोला-महाराज श्री अभी मैं 'ध्यान-केन्द्र' बनबाऊँगा, उसमें बैठकर ध्यान करूँगा। अरे मुमुक्षु! कहाँ भ्रम में पड़ा है? कब ध्यानकेन्द्र बनेगा? कब तू बना पायेगा? कहीं तू ही मिट गया तो ध्यान करने कौन आयेगा? ज्ञानी! जहाँ बैठ जाओ, वही ध्यानकेन्द्र है। बेचारा ध्यानकेन्द्र बना रहा है और केन्द्र में नहीं है। केन्द्र में चला जा, तो केन्द्र बनाने की कोई आवश्यकता नहीं है। ज्ञानी! तू कह रहा है कि मैं तो भवन बनाकर ध्यान करूँगा। हे ज्ञानी! तू ध्यान न करता, भक्ति ही कर लेता। लेकिन भवन बनाने बैठ गया तो कोटि-कोटि जीव मारेगा।

हे श्रमण! भवन बनाकर ध्यान करने मत जाना। बैठ जाना, उसे ही ध्यानकेन्द्र बना लेना। बहुत अच्छा हुआ कि हमारे वीतरागी तपोधन जंगलों में चले गये, पर्वतों पर चले गये, सरिताओं के किनारे बैठ गये, खण्डहरों में बैठ गये। ध्यान दो, जो आँख को सुन्दर लगे, वो आँख को सुन्दर करता नहीं। जो आँख को सुन्दर करता है, वह आँख को सुन्दर लगता नहीं। अक्ष यानि आत्मा, अक्ष यानि आँख , अक्ष यानि इन्द्रिय। जो अक्ष (आत्मा) को अच्छा लगे, वह अक्ष (आत्मा) को अच्छा करता नहीं। अक्ष(आँख) को तो नारी दिखती है, नारी अक्ष (आत्मा) को अच्छा करती नहीं। जो-जो आँख को अच्छा लगे, वह आत्मा को अच्छा करता नहीं। जो आत्मा को अच्छा करता है, वह आँख को अच्छा लगता नहीं। आत्मा को निहारना है, कि आँख को निहारना है?

आँख किसे देखेगी? रूप को ही तो देखेगी। रूप को देख-देख कर स्वरूप को ही खो दिया। हे लंकेश! तू जानकी के रूप की जगह स्वरूप को देख लेता तो जानकी में तुझे सिद्ध भगवान् दिखाई देते। तूने जानकी के रूप को देख लिया तो तेरी जान चली गई। रावण को किसने मारा? मरे रावण को मारा है, कि जीवित रावण को मारा है? हे लंकेश! लक्ष्मण के बाणों से देह विदीर्ण हुई है, पर तेरी मृत्यु तो उसी दिन हो चुकी थी जब तूने सीता के रूप को देखा था। ज्ञानियो! तुम लंकेश के बारे में बहुत बात किया करते हो, लेकिन अब अपने मन के रावण से मिल लेना। यदि किसी नारी पर तेरी दृष्टि जा चुकी है, तो तेरा शील तो मर चुका है। जो बचा है, वह देह का कवच है।

हे श्रमणो! छोड़ो पुर का राग। पुर किसी का हुआ नहीं। ये समझो कि तेरा स्थाई निवास-स्थान कहाँ है? निश्चित पता क्या है? निश्चित मुकाम क्या है? ध्रुवधाम ज्ञायकभाव, परमपारणामिक भाव ही मेरी आत्मा का ध्रुव / निश्चित मुकाम है। शेष सब वारे-वारे की व्यवस्था है। जहाँ से तुम्हें हिलना नहीं हो, डुलना नहीं हो, वहाँ हम नहीं जा रहे हैं। जहाँ से भगना पड़ेगा, वहाँ बार-बार जा रहे हैं। हे राग! धिक्कार हो।

भैया! राग कैसा होता है? जिसका राग तेरे अंदर है, वह राग भी सत्य नहीं है। जिस राग पर तू राग कर रहा है, उसका किसी और पर है। जिस दिन तेरा राग फीका पड़ जायेगा, उस दिन तेरा जीवन फीका पड़ जायेगा। यशोधर महाराज की रानी की कब याद है ? हे कषाय, हे वासना! तेरा कोई निश्चित स्थान नहीं है। पवित्र कुल को अपवित्र कर दे, पवित्र बेटे को तू किस दिन धूल में मिला दे, निश्चित नहीं है। हम जगत् को सुधारने चल देते हैं। अपने बिगड़े परिणामों को मोड़ लो, तो जगत् सुधरे या न सुधरे, तेरी गति नियम से सुधर जायेगी। क्या किया? जो घुड़साल में कुबड़ा पुरुष रहता था, महारानी की दृष्टि उस पर थी। सम्राट विश्राम में है, निद्रा नहीं आई, रानी निहार रही है कि ये कब सो जाये और मैं कुबड़े के पास पहुँच जाऊँ। बहाने की नींद में था सम्राट और निहार रहा था रजाई के अंदर से। भवन का द्वार खोलकर रानी बाहर पहुँच गई। सम्राट का नौकर कुबड़ा महारानी को लातों से पीट रहा है। एक क्षण राजा को लगा कि मैं अपना घात कर लूँ या फिर इसका घात कर दूँ। पर धैर्य कहता है कि नहीं, शूर पुरुष नारी पर वार नहीं करते, शूर पुरुष यति पर वार नहीं करते, शूर पुरूष ब्राह्मण व गाय की हत्या नहीं करते। देखो जगत् की लीला। जिस महारानी के लिये मैं मरा जाता था, वह मुझसे प्रेम नहीं करती। राजा ने तलवार को तो रख दिया, चिन्तन की धारा प्रारम्भ हो चुकी है। हाय-हाय! क्या है काम? क्या है भोग? मेरे-जैसे सुन्दर राजा के होने पर भी और राज्य की विभूति होने पर भी जो राजमहिषी कहलाती है, तब भी कुबड़े की लातें खा रही है। मैंने जिसे कभी तू कह कर नहीं पुकारा हो, कुबड़ा आज उसे पीट रहा है।

बात क्या थी? वो यूँ कह रहा था कि विलंब से क्यों आयी हो? रानी कह रही थी- स्वामी-स्वामी! जब रानी स्वामी-स्वामी कह रही थी, तब राजा का खून खौल रहा था कि इस कुबड़े को स्वामी कह रही है और मेरे साथ कितना दगा कर रही है। भैया! सुनो ध्यान से। भ्रम का जीवन मत जीते रहना। कोई किसी का होता नहीं है। कौन किसकी सेवा करता है? घर भी बसाया है, यथार्थ मानिये, सेवा के लिये नहीं बसाया है। वासना वश में नहीं थी, सो सेवा कर रहा है। कुबड़े की इच्छा पूर्ण करके रानी पुनः भवन में प्रवेश कर गई। राजा खिन्न होकर बैठा हुआ है। मायावी भाषा में रानी कहती है-स्वामी। निद्रा नहीं आ रही है क्या? सम्राट सोचता है कि इसके बारे में कुछ कहता हूँ तो कलंक किसको लगेगा? मुझे ही लगेगा कि ये राजा की महारानी कैसी है? राजा चुप रहता है और विचार करके नारी मात्र से विरक्त हो गया।

हे साधक! जो विषयों में आसक्त हो चुका है, उसके अन्दर न मनुष्यता दिखाई देती है, न सत्यता दिखाई देती है, न देवत्व दिखाई देता है, न धर्म दिखता है। ज्ञानियो! उल्लू को दिन में नहीं दिखता, कौए को रात्रि में नहीं दिखता। कामी को न दिन में दिखता है, न रात्रि में दिखता है। ग्रीष्म की तपन पड़ रही हो, इस तपन से बचने के लिये लोग छतरी लगा लेते हैं। दाह ज्वर हो रहा है तो चंदन के छींटे लगा लेते हो। लेकिन जिसको काम का ज्वर चढ़ा है, उसे न छतरी काम में आती है, न चंदन का उपचार काम में आता है।

हे ज्ञानी! तेरा वैदुष्य, तेरा पाण्डित्य, तेरा विवेक तभी तक है, जब तक काम के विषधर ने तुझे नहीं काटा है। जिसे तुम सुख मान रहे हो, जिसके द्वारा सुख मान रहे हो, वह तब तक है जब तक एक दूसरे की बात एक दूसरे को मालूम नहीं है। बेटा! तू अपने मन की बात माँ को बता देगा तो माँ तुझे बेटा कहना बंद कर देगी। मुमुक्षु! जैसा तू विद्वान् बनकर यहाँ बैठा है, वैसा तू है नहीं। जो भाव यहाँ हैं, वे भाव पूरे भव में हो जायें, तो तू ही तो भगवान् है। दूसरा भगवान् कौन है? जो भाव यहाँ हैं, ऐसे भाव भव में हो जायें, तो भगवान् खोजने की जरूरत नहीं है, मैं ही भगवान् हूँ।

कितने नवयुवक कहते हैं, महाराज! मन करता है कि मैं भी संयम धारण करूँ, लेकिन ये कामनायें, वासनायें वश में नहीं हैं। यदि तेरे ऐसे भाव आ रहे हैं तब तू किसी-न-किसी भव में बन जायेगा। पाप हो जाये, परन्तु पाप में मग्न मत हो जाना, पाप को पाप की कहते रहना, तो नियम से तू कभी-न-कभी पवित्र हो जायेगा। यदि पाप को पाप नहीं कह पाया, पाप को सुख के कारण व पुण्य का फल कह रहा है, तो तू अज्ञानी है। हे ज्ञानी! पुण्य का फल पापलीनता नहीं है। 'पुनाति आत्मानं इति पुण्यं।' जो आत्मा को पवित्र करे, उसका नाम पुण्य है। जो आत्मा की पुण्य से रक्षा करे, पुण्य न करने दे, उसका नाम पाप है। मुमुक्षु! पुण्य का भोग पाप में मत कर बैठना। जो आत्मा की पाप से रक्षा करे, वह पुण्य है। यह परिभाषा 'सर्वार्थसिद्धि' में दी गई है। पूज्यपाद

स्वामी कहते हैं- कितना सुन्दर है पाप? चारों ओर से बाड़ी डाल देता है कि पुण्य प्रवेश न कर पाये। यदि पुण्य प्रवेश कर जायेगा तो परमात्मा हो जायेगा, फिर मेरा साथ कौन देगा? तुम कितने भोले हो जो पाप की बातों में आ जाते हो। माँ की बात नहीं मान सकता, पिता की बात नहीं मान सकता, गुरु की बात नहीं मान सकता, प्रभू की बात नहीं मान सकता, परन्तु पापों की बात बड़े प्रेम से मान लेता है। मेरे देखते-देखते तू गडढ़े में गिर जाये, ये अच्छी बात नहीं है।

हे मुने! संयोग भी होता है, वियोग भी होता है। संयोग में फूलना जानते हो, वियोग में कूलना जानते हो। ये दोनों तेरी आत्मा के धर्म नहीं हैं। संयोग होते ही वियोग को क्यों नहीं देख लेते हो? संयोग होते ही वियोग होता है। अपने बेटे की माँ लेने के लिये किसी के घर गया था, उस समय तुझे ज्ञान हो जाना चाहिये था कि—'इस घर से इसका वियोग हो रहा है, तभी तो मेरा इसके साथ संयोग हो रहा है। एक साथ दो काम हो रहे थे कि नहीं? समय एक था, काम दो थे। भैया! जिस दिन बेटे की माँ को लेने गया था, वह संयोग का दिन था कि वियोग का दिन था? दोनों थे। जो वरण करके ले जा रहा है, वह संयोग कर रहा है और जो अर्पण कर रहा है, वह वियोग कर रहा है। परन्तु हे अज्ञानी ज्ञानियो! दोनों काम शाश्वत नहीं हैं। जिसके साथ संयोग हुआ है, उसका भी वियोग होगा। जिसका वियोग हुआ है, उसका भी संयोग होगा।

'आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं'। जो तू लेकर आया है, किसी से वियोग करा कर लाया कि नहीं? जैनदर्शन के अनुसार जो जैसा कर्म करता है, उसे वैसा फल मिलता है। ज्ञानी! तू किसी की कन्या को लेकर आया है, उसकी माँ रो रही है। तू वियोग करा कर लाया, तुझे कर्म का बन्ध होगा कि नहीं? उसका फल तुमको मिलेगा कि नहीं? मिलेगा। हे देवि! सुनो। जैसे-ही तेरे कदम घर में पड़े, उस बेचारे लड़के को उसकी माँ से छुड़ा लिया, तुझे पाप का बन्ध होगा कि नहीं? बंध तो होगा ही। बंध से छूटें कैसे? 'तपसा निर्जरा च' तप से बंध रुकेगा, बंधे कर्म निर्झरित होंगे।

हे ज्ञानी! घर तो मधुमक्खियों का स्थान है। छत्ते से एक मक्खी टूटी, तो सब गिरती हैं, यहाँ-वहाँ पूरे शरीर में चिपक जाती हैं। ऐसे-ही घर में एक यहाँ से बोल रहा है, दूसरा वहाँ से बोल रहा है। दोनों हाथ से कमाते हो, लेकिन एक हाथ से शान्ति से नहीं खा पाते हो। धन्य हों धरती के देवता, जो एक हाथ से भी नहीं कमाते हैं और दोनों हाथ से खाते हैं।

हे ज्ञानी! अब आयेगा तो दो जीवों का कल्याण होगा और देर से आयेगा तो तीन-चार जीवों का कल्याण होगा। आओ या न आओ, लेकिन भावना तो रखना। स्वर्ग के देव हर समय यही कहते हैं कि मैं एक बार मनुष्य तो बन जाऊँ, मुझे तो मुनि बनना ही है। 'पद्म पुराण' में आया है कि श्रीराम का जीव अपनी सभा में हर समय देवों से यही कहता था कि मनुष्य श्रेष्ठ है। मैं यहाँ से

च्युत होते ही मनुष्य बनके शीघ्र मुनि बन जाऊँगा। जैसे-ही मनुष्य बने, वैदेही के राग में विदेही को ही भूल गये। किन्तु राग की महिमा सुन्दर है। जो ये सब दिख रहा है, वह राग की अनुकम्पा है। राग नहीं हो तो कोई दिखाई नहीं देता, सब अशरीरी हो गये होते। राग की बड़ी कृपा है।

परमब्रह्म परमेश्वर! निजब्रह्म को आपने सिद्ध किया है, इसलिये आप ही परमब्रह्म हो। हे अर्द्धनारीश्वर! आपने आधे अरि/कर्मों का नाश कर लिया है। नमोऽस्तु शासन में विराजे हैं। सत्यशासननायक! सारे विश्व में देह के धर्म को स्वीकार करने वाले कोटि-कोटि जीव हैं। द्रव्यदृष्टि को स्वीकार करने वाला एक महावीर का शासन है। इसलिये हे प्रभु! आपके शासन में सत्य की प्ररूपणा है। इसलिये विश्व में सत्य किसी का शासन है तो आपका ही है। सत्य को समझना बहुत जरूरी है। भैया! चल नहीं पाओ, वो चरणों की कमजोरी हो सकती है, पर स्वीकार नहीं कर पाओ, यह श्रद्धा की कमजोरी है। चल नहीं पाओ, तो विकल्प नहीं करना, पर स्वीकार नहीं कर पाओ तो विकल्प जरूर करना। श्रद्धा में कमी मत लाना। मुनि बनने के लिये घर छोड़ना पड़ता है। त्यागी बनने के लिये बहुतकुछ त्याग करना पड़ता है। लेकिन श्रद्धान करने के लिये तुझको कुछ भी नहीं छोड़ना पड़ता है। श्रद्धा में कमी मत करना। पंचमकाल के कोटि-कोटि मुनि बना पाओ या नहीं, लेकिन पंचमकाल में कोटि-कोटि जीवों की श्रद्धा को जीवन्त रखना। इतनी करुणा करना। श्रद्धा बहुत बड़ी वस्तु है, आस्था बहुत बड़ी वस्तु है। जब मैं भी सिद्ध बनूँगा, तो श्रद्धा से ही सिद्ध बनूँगा, अश्रद्धा से नहीं बनूँगा।

अपनी कमजोरी को कमजोरी स्वीकार कर लेना। अपनी कमजोरी जैसा दुनियाँ को मत मान लेना। मेरा ज्ञान कमजोर हो सकता है, अकलंक का ज्ञान कमजोर हो सकता था, परन्तु अकलंक प्रभु का ज्ञान कमजोर नहीं था। ये अकलंक शासन है। 'सहस्रनाम' में कितने शासनों के नाम लिखे हुये हैं? सहस्रनाम, महापुराण, मूलाचार, अष्टपाहुड आदि ग्रन्थों में कितने प्रकार के जिनशासन के नाम लिखे हैं? ये जिनशासन के पर्यायवाची नामों का वर्णन है। जैसे भगवान् के सहस्र नाम ले रहे हैं, एक ही भगवान् के। हे प्रभू! आप शंकर हो, आप विष्णु हो, महेश हो। ये किसके नाम हैं? तीर्थंकर के नाम हैं। इसी प्रकार से शासन के भी नाम हैं। हे प्रभू! आप अकलंक हो। कर्मकलंक आपके हट चुके हैं, इसलिये आप अकलंक हो। ज्ञानी! यहाँ तो कोई अकलंक दिखाई नहीं देता। जब तक सिद्ध नहीं बन जायेंगे, तब तक सारे कलंकी हैं। जो सिद्ध बनता है, वही अकलंक है। मैं भी कलंकी हूँ, आप भी कलंकी हो। जब मैं अरिहन्त भगवान् को निष्कलंक नहीं कह पा रहा हूँ, तो तुझे कैसे कह दूँ? निष्कलंक कहलाने की आकांक्षा रखते हो तो तप करके कर्म हटा दो, तो निष्कलंक सिद्ध बन जाओगे। ब्रह्माण्ड में कोई निष्कलंक जीव है तो उसका नाम है सिद्ध भगवान्।

तू किसको कलंकी कहता है? जब तक कर्मकलंक लगे हैं, तब तक सभी कलंकी हैं। निष्कलंक तो मात्र सिद्ध भगवान् हैं।

आठ कर्म में पुण्य आयेगा कि नहीं? ठीक है, तब तक रख लेना जब तक पाप न निकल जाये। लेकिन परमात्मा तब बनेगा, जब पुण्य भी निकल जायेगा। हे नाथ! मुनियों के ईश! भगवान् भी मुनीश हैं। अंधकार को नष्ट करने वाले आपके दोनों चरणकमल दीपक के समान हैं। जैसे दीपक अंधकार को नाश कर देता है, वैसे-ही हे नाथ! आपके चरणकमल रूपी दीपक हमारे अज्ञान-अंधकार का नाश कर देते हैं।

ज्ञानियो! समझो, कुन्दकुन्द भगवान् क्या कह रहे हैं? "जोई विकहादिविप्पमुक्को" परम योगीश्वर विकथादि से विरक्त रहते हैं। धर्मध्यान में लीन परम वीतरागी श्रमण प्रथम तो मौन रहते हैं, यदि कुछ कहना पड़े तो भव्यों के कल्याणार्थ धर्म-उपदेश देते हैं। मात्र वीतरागी कथा करते हैं। राजकथा, चोरकथा, भोजनकथा, स्त्रीकथा से दिगम्बर मुनि विरक्त ही रहते हैं। योगी की वाणी वही है जो टूटते हृदयों को एक कर दे। मुनि मौन ही रहते हैं। यदि कभी कारण बोलना भी पडे, तो हित-मित-प्रिय ही बोलते हैं। "मृदु-मधुर-गंभीरा" साधु के वचन मृदु, मधुर एवं गंभीर होते हैं।

"आहाकम्मादि विरहिदो" दिगम्बर मुनिराज अधः कर्म से रहित होते हैं। "मुनिणां अलौकिकी वृत्तिः" ज्ञानियो! समझो, वीतरागी मुनि कूटना, पीटना, बुनना, काटना, फाड़ना, भोजनादि बनाना आदि अधःकर्म के त्यागी होते हैं। मुनिराज हिंसक क्रियाओं के त्यागी होते हैं। सकलसंयमी वे वीतरागी मुनि ही सम्यक्ज्ञानी होते हैं। "धम्मुद्देसण कुसलो" निर्ग्रन्थ मुनि धर्मोपदेश देने में कुशल होते हैं। तत्त्वों के व्याख्यान में निपुण होते हैं। उनकी वीतरागी मुद्रा ही भव्यों को उपदेश देती है। धन्य हैं धरती के देवता, 'धण्णा ते भयवंता'।

'अणुपेहाभावणाजुदो' वे परम योगीश्वर वीतरागी निर्ग्रन्थ मुनि व्रतों में स्थिर रहने के लिए द्वादश अनुप्रेक्षाओं का नित्य-निरन्तर चिन्तवन करते हैं।

"मुणिराओ णिंदावंचणदूरो"। ज्ञानी! वह मुनिराज निन्दा तो करते हैं, लेकिन स्वयं के दोषों की, परन्तु परनिन्दा के पूर्णतः त्यागी होते हैं। "परिसह-उवसग्ग-दुक्खसहमाणो" क्षुधा, तृसा, दंस-मसक, डांस, अज्ञानादि परीषहों; देवकृत, तिर्यंच कृत, पुरुषकृत उपसर्गों को समतापूर्वक सहन करते हैं वह मुनिराज। किसी के द्वारा उपसर्ग करने पर भी वह उसका विरोध नहीं करते हैं। सर्दी हो, गर्मी हो, उसे भी सहन करते हैं। कोई गाली भी दे, कोई भजन भी सुनाये, तब भी हर्ष-विषाद नहीं करते हैं। "सुहझाणज्झयणरदो" श्रमण शुभ ध्यान और स्वाध्याय में लीन रहते हैं।

हे ज्ञानी! वीतरागी मुनि अहिंसा महाव्रत, सत्य महाव्रत, अचौर्य महाव्रत, ब्रह्मचर्य महाव्रत, अपरिग्रह महाव्रत के धारक होते हैं। ईर्या, भाषा, एषणा, आदान-निक्षेपण एवं प्रतिष्ठापन समिति के धारक होते हैं। स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु एवं कर्ण इन्द्रिय का निरोध कर व्रतों में निरत रहते हैं। समता, स्तुति, वंदना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान आदि षटावश्यकों में प्रयत्नशील रहते हैं। केशलुंचन यानि दिगम्बर मुनि चार माह के अन्दर-अन्दर अपने हाथों से सिर, मूँछ एवं दाढ़ी के बालों का लुंचन करते हैं। गर्मी हो, सर्दी हो, फिर भी दिगम्बर जैन मुनि दिन में मात्र एक बार आहार ग्रहण करते हैं, वह भी छयालीस दोषों को टालकर। बत्तीस अंतराय का पालन करते हुए प्रासुक आहार ग्रहण करते हैं।

"धण्णा ते भयवंता"। धन्य हैं वीतरागी मुनि जो देह की पुष्टि के लिए नहीं, वरण् वैय्यावृत्ति और संयम साधना के लिए अल्प आहार, वह भी निर्दोष, ग्रहण करते हैं। जिसकी आहारशुद्धि नहीं, वचनशुद्धि नहीं, ज्ञानी! वहाँ भावशुद्धि कैसे होगी? "गदसंगो होदि" मुनिराज वस्त्रादि बाह्य परिग्रह एवं कषायादि अंतरंग परिग्रह से रहित होते हैं।

'अवियप्पो' वीतरागी तपोधन विकल्पों से रहित होकर साधना करते हैं। " णिद्दंदो णिम्मोहो" ज्ञानी! मुनिराज द्वन्द्वरहित/निर्द्वन्द्व एवं मोहरहित होते हैं। "निर्मोहो मोहिनो मुने" निर्मोही ही मुनि हैं। "णिक्कलंकओ णियदोणिम्मलसहावजुदो" वीतरागी मुनि (योगी) निष्कलंक और निर्मल स्वभाव वाले ही होते हैं। निर्ग्रन्थ वीतरागी, धरती के देवता, मुनिराज ही सच्चे योगी हैं।

वीतरागी तपोधन, धरती के देवता, निर्ग्रन्थ योगीश्वर जयवंत हों। जयवंत हो श्रमणसंस्कृति, श्री जिन नमोऽस्तु शासन। ज्ञानी! ऐसे योगीश्वर भावलिंगी मुनि ही नमोऽस्तु के पात्र हैं। संयमी मुनि ही योगी हैं।

"आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

॥ भगवान् महावीर स्वामी की जय ॥

❖ ❖ ❖

"मिथ्या तप से मोक्ष नहीं होता है"

तिव्वं कायकिलेसं, कुव्वंतो मिच्छभाव संजुत्तो।
सव्वण्हुवदेसे सो, णिव्वाणसुहं ण गच्छेदि।। 97।।

अन्वयार्थ—जो **(तिव्वं)** तीव्र **(कायकिलेसं)** कायक्लेश **(कुव्वंतो)** करता हुआ भी यदि **(मिच्छ भाव संजुत्तो)** मिथ्यात्व-भाव से युक्त है, तो **(सो)** वह **(सव्वण्हुवदेसे)** सर्वज्ञदेव के उपदेश में **(णिव्वाणसुहं)** मोक्ष-सुख को **(ण गच्छेदि)** प्राप्त नहीं करता।

"रागी को आत्मप्रतीति नहीं होती है"

रायादिमल जुदाणं, णियप्परूवं ण दिस्सदे किं पि।
समलादरिसे रूवं, ण दिस्सदे जह तहा णेयं ।। 98 ।।

अन्वयार्थ—(रायादिमल जुदाणं) रागादि मल से युक्त जीवों को **(णियप्परूवं)** अपना आत्मस्वरूप **(किं पि ण दिस्सदे)** कुछ भी दिखाई नहीं देता **(जह समलादरिसे रूवं)** जैसे मलिन दर्पण में रूप **(ण दिस्सदे तहा णेयं)** दिखाई नहीं देता वैसा ही समझना चाहिए।

।। देशना ।।

अन्तिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना, जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है।

यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवंत हो, जयवंत हो वीतराग श्रमण संस्कृति ।

आचार्यप्रवर कुन्दकुन्द स्वामी ग्रन्थराज रयणसार जी में श्रमण और श्रावक इन दोनों धर्मों की व्याख्या करते हुये समझा रहे हैं।

संसार की सन्तति का जो अविराम परिणमन है, उसका विराम कैसे हो? उसके लिये ज्ञानी! रत्नत्रय धर्म है। अन्तरंग के क्लेश का अभाव कैसे हो? उपशम भाव का उद्भव कैसे हो? हे ज्ञानी! जिस कषायभाव से वर्तमान का यह सुख समाप्त हो रहा है, यह काषायिक भाव भविष्य में सुखदाता होगा क्या इसका अनुमान कैसे लगाया जा सकता है?जिस कषाय की कणिका से वर्तमान की शान्ति भंग हो रही है, क्या वह कषाय भविष्य में सुख का साधन बनेगी? ये अनुमान लगाया जा सकता है। संसार में जो परिभ्रमण है। उस परिभ्रमण को कहने के पूर्व इतना समझने की आवश्यकता है। किंचित् मात्र भी मन में क्लेश आया है, विषाद आया है, वह जीव भी ज्ञानी है जो मन में आये क्लेश को दु:ख और अशान्ति समझता है।

ज्ञानी! अशान्ति के वातावरण को जो सुख मानता है, यही अज्ञानी की प्रथम पहचान है। पाप क्रिया को करने पर वर्तमान में स्वयं का चित्त ही अप्रसन्न है। एक क्षण ऐसा जीव के अन्तस् में आता है जब उदासता छाई है। कहीं-न-कहीं आप अपने पापों से थक गये हो। जिस दिन पापों से थक जाता है, उस दिन उदासता छा जाती है। और पुनः पापों की थकान नष्ट होने पर शक्ति आती है और तब तुम्हारा पुनः पापों में प्रवेश होता है। मिथ्यात्व ही पाप है। मिथ्यादृष्टि का तप भी व्यर्थ है।

ज्ञानी! ये अच्छा नहीं हुआ है, शरीर में उमंग नष्ट हो रही थी, क्योंकि आप इतना अशुभ कर्म कर चुके थे कि उमंग को देने वाली शक्ति क्षीण हो चुकी थी । अज्ञानी इसे वैराग्य भी कहने लगते हैं। ज्ञानी! थकान का नाम वैराग्य नहीं है। बूढ़ेपन का नाम वैराग्य नहीं है, शिथिलता का नाम वैराग्य नहीं है। शरीर, संसार और भोगों से विरक्ति के साथ जो भाव है, उसका नाम वैराग्य है।

ज्ञानी! शक्ति क्षीण होना वैराग्य नहीं है। राग में भर करके जीव ने क्या-क्या किया है? यदि आप नहीं समझ पाये, तो आगे छठवें काल में कोई समझाने को नहीं मिलेगा। एक रात्रि के निकलते ही साल बदल जाती है। एक रात्रि के निकलते ही युग बदल जाता है। एक रात्रि के निकलते ही सदियाँ बदल जाती हैं। वो भी प्रभात की बेला होगी जब इस भारत की भूमि पर पुरूष नंगे घूमेंगे। जैसे पशु विचरण कर रहे होंगे, ऐसा पुरुषों का विचरण होगा। क्या आपको वह दृश्य देखने के भाव हैं? ज्ञानी! मिथ्या-भाव का त्याग करो।

ज्ञानियो! एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को कच्चा ही खायेगा, वो भी दिन आयेगा। वो दिन भी देखने की इच्छा है क्या? यदि नहीं है, तो पंचमकाल की जब तक श्वासें चल रहीं हैं, तब तक सम्यक्त्व की आराधना करके और पर से निरपेक्ष होकरके, सयंमी होकरके, स्वयं में लीन होकरके साधना कर लेगा तो तू छट्वें काल के दुःख से तो बच ही जायेगा। यह पूरा चिन्तन आपको परिवार को छोड़कर करना पड़ेगा, राग को छोड़कर करना पड़ेगा, मित्रों को छोड़कर करना पड़ेगा। मिथ्यात्व भाव को छोड़ना ही पड़ेगा।

ज्ञानी! यदि परिवार को साथ लेकर तुम परमात्मा बनने का चिन्तन करोगे, तो कभी नहीं कर पाओगे।

जब तक विपरीत श्रद्धान है, मिथ्याभाव है, तब-तक उत्कृष्ट से उत्कृष्ट तप कर लेना, उपवास कर लेना, परन्तु वह कुतप निर्वाण का साधन नहीं है। मिथ्यात्वसंसार भ्रमण का मुख्य हेतु है। इस जीव ने अनादिकाल से मिथ्यात्व का सेवन करके संसार-संतति को विस्तृत किया है।

ज्ञानी! कुतप करना सरल है, सुलभ है, परन्तु मिथ्यात्व को छोड़ पाना अत्यन्त कठिन है। इस जीव ने अनेक भवों में अनेक बार कुचारित्र को धारण किया, कायक्लेश किया, परन्तु सम्यक्

श्रद्धान् नहीं कर पाया। यदि संसार के दु:खों से मुक्त होना चाहते हो तो सम्यक्त्व रत्न को प्राप्त करो। सम्यक्त्व के साथ की गई रत्नत्रय की साधना ही मुक्ति का कारण है।

भगवान् कुन्दकुन्द देव कह रहे हैं कि-"कायकिलेसं कुव्वंतो" ज्ञानी! कायक्लेश करता हुआ भी यदि " मिच्छभावसंजुत्तो " मिथ्याभाव से संयुक्त है, तो "णिव्वाण सुहं ण गच्छेदि" वह निर्वाणसुख को प्राप्त नहीं कर सकता है।

ज्ञानी! यह वीतरागी श्रमणपरम्परा है। यहाँ नग्नता मात्र से निर्वाण नहीं है, निर्ग्रन्थ भाव, वीतराग भाव, सम्यक्त्व के साथ रत्नत्रय की आराधना, संयम-साधना से मुक्ति सम्भव है।

ज्ञानी! निर्वाण चाहिये है,तो निर्ग्रन्थ भेष को धारण करो। वीतराग भाव ही मुक्ति का साधन है। सम्यक्त्व के साथ की गई संयम-साधना ही सर्वज्ञदेव के शासन में मान्य है। यह 'नमोऽस्तु शासन' निर्ग्रन्थों का शासन है। यहाँ पर वीतराग भावों के साथ ही वीतराग भेष वन्दनीय है। वन्दना भी उनकी करना, जिनकी वन्दना से कर्मों का आस्रव-बंध न हो। निर्ग्रन्थों की वन्दना करना, परन्तु निर्बन्ध होने के लिये ही करना। वीतराग मुद्रा आत्मसिद्धि मात्र के लिये ही ग्रहण करना। वित्त इकट्ठा करना वीतरागी का कार्य किंचित् भी नहीं है। यह वित्तरागियों का नहीं, यह वीतरागियों का मार्ग है। यह रत्नत्रय का मार्ग है।

ज्ञानियो! यह राग वह आग है जो जीव को कल्याण के मार्ग में नहीं लगने देती है। रागीजीव सम्यक्-निमित्त मिलने पर भी कल्याणमार्ग को प्रशस्त नहीं करता है। मोह का मद जिसे चढ़ जाता है, वह भव-भव में भटकता है। रागादि से संयुक्त जीव अपने आत्मस्वरूप पर किंचित् भी दृष्टि-पात नहीं करता है।

हे भव्य! मोही जीव, रागी जीव आत्मसिद्धि नहीं कर पाता है, अपितु संसार में ही रुलता है। भगवान् कुन्दकुन्द देव कह रहे हैं कि-"रायादिमल जुदाणं" राग-द्वेष-मोह आदि कषायों से संयुक्त जीव को "णियप्परूवं किं पि ण दिस्सदे" अपना आत्मस्वरूप किंचित् भी दिखाई नहीं देता है। "समलादरिसे रूवं ण दिस्सदे" जैसे मलिन दर्पण में रूप दिखाई नहीं देता है, वैसे ही मलिन हृदय वाले रागी को आत्मस्वरूप दिखाई नहीं देता है।

भगवान् पूज्यपाद स्वामी ने भी 'इष्टोपदेश' में कहा है कि—

मोहेन संवृतं ज्ञानं, स्वभावं लभते न हि।
मत्तः पुमान्-पदार्थानां, यथा मदनकोद्रवैः।।7।।

मोह से आवृत्त(ढंका) ज्ञान निश्चय से स्वभाव को प्राप्त नहीं होता है, जैसे नशीले कोदों को सेवन करने वाला मदमत्त हुआ पुरुष पदार्थों को समीचीन नहीं जान पाता है।

ज्ञानी ! मलिन शरीर वाले को कैवल्य प्रकट हो सकता है, परन्तु हे भव्य ! रागादि कषाय की किंचित् भी लगार है, तो कैवल्य प्रकट नहीं हो सकता है। आत्मसिद्धि करना है,तो ज्ञानी ! रागादि का परित्याग करो और निज-स्वरूप की ओर निहारो।

"आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

॥ भगवान् महावीर स्वामी की जय ॥

❖ ❖ ❖

"मिथ्यादृष्टि असंयमी दीर्घ संसारी"

दंडत्तय सल्लत्तय, मंडिदमाणो असूयगो साहू।
भंडण-जायणसीलो, हिंडदि सो दीह संसारे॥ 99॥

अन्वयार्थ—जो **(साहू)** साधु **(दंडत्तय)** तीन दण्ड **(मन-वचन-काय)** को वश में नहीं करता **(सल्लत्तय)** तीन शल्य, **(माया-मिथ्या-निदान)** से युक्त **(मंडिदमाणो)** अभिमानी **(असूयगो)** ईर्ष्यालु और **(भंडणजायण सीलो)** कलह करने वाला, याचना करने वाला है **(सो)** वह **(दीहसंसारे)** दीर्घसंसार में **(हिंडदि)** भ्रमण करता है।

प्रमादी कौन है ?

देहादिसु अणुरत्ता विसयासत्ता कसायसंजुत्ता।
आदसहावे सुत्ता, ते साहू सम्मपरिचत्ता॥ 100॥

अन्वयार्थ—जो **(देहादिसु अणुरत्ता)** देहादि में अनुरक्त **(विसयासत्ता)** विषयों में आसक्त **(कसायसंजुत्ता)** कषाय से युक्त **(आदसहावे सुत्ता)** आत्मस्वभाव में सोये हुए प्रमादी हैं। **(ते साहू)** ऐसे साधु **(सम्मपरिचत्ता)** सम्यक्त्व से रहित हैं।

॥देशना॥

अन्तिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेश की पीयूष देशना, जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है।

यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवन्त हो। जयवन्त हो वीतराग श्रमणसंस्कृति।

आचार्यप्रवर भगवान् कन्दकुन्द स्वामी ग्रन्थराज 'रयणसार' में श्रमण और श्रावक इन दोनों धर्मों की व्याख्या करते हुये समझा रहे हैं।

ज्ञानी! सम्यक्त्वशून्य साधक की साधना मोक्ष का साधन किंचित् भी नहीं है। असंयमी मुनि निर्वाणसुख को प्राप्त नहीं कर पाता है।

ज्ञानियो! संसार की संतति का विराम कैसे हो? तो उसके लिए निर्मल रत्नत्रय धर्म की साधना करना ही एकमात्र उपाय है। अन्तरंग के क्लेश का अभाव करना है, तो मिथ्यात्व की लगार को हटाना पड़ेगा। मिथ्यात्व को बुद्धिपूर्वक छोड़ने की आवश्यकता है। जब तक सम्यक्त्व को प्राप्त नहीं किया है, तब तक तप-साधना भी सम्यक् नहीं है। सम्यक्-रत्न को प्राप्त करके रत्नत्रय की साधना करो, क्योंकि सम्यक्त्व के साथ की गई साधना ही निर्वाण का हेतु है।

हे ज्ञानी! साधु बनना सरल है, परन्तु साधुत्व आना अत्यन्त कठिन है। समत्व के साथ साधना दुर्लभ है। "अधिक अधिकस्य फलं" ज्ञानी! जितनी अधिक निर्मल साधना होगी, विशुद्धि होगी, उतने ही शीघ्र कर्मों की निर्जरा होगी।

ज्ञानी! देह के त्यागी बहुत मिलेंगे, परन्तु आन्तरिक भावों के त्यागी अल्प-में-अल्प हैं। जो देहादि के विषयों में आशक्त हैं, कषाय से कलुषित हैं और आत्मस्वभाव से दूर हैं, प्रमादी हैं, ऐसे साधु साधुभेष में रहकर भी सम्यक्त्वशून्य हैं।

यदि व्यक्ति को भोगों का विकल्प न हो, सबसे पहले जैसे-ही भोगसामग्री देखता है तो "तस्य उपयोगेण" उस पर उपयोग गया। देखा, उपयोग गया और जैसे-ही उपयोग गया, तो विषय पर प्रवृत्ति प्रारम्भ हो गई। पहला हेतु दर्शन। शुभ में भी दर्शन, अशुभ में भी दर्शन। इसलिये आँख को सम्हालो। हे नारायण कृष्ण! आपने रुक्मणि का चित्र ही तो देखा था आपने रुक्मणि को तो देखा ही नहीं था। नारद जी ने चित्र ही तो दिखा दिया था। नारायण जैसा महापुरुष भी चित्र को देखकरके चित्त चंचल कर बैठा और नारदजी से पूछ बैठे, यह कोई देवी है या मनुष्यनी? यह कौन है ?

ज्ञानी! आज भी जितने चित्त चंचल हो रहे हैं, चित्र को ही देखते हो। युवाओ! टेलीविजन पर क्या देखा है? चित्र ही तो देखते हो। प्रशस्त चित्र देखोगे तो प्रशस्त चारित्र दिखेगा।अप्रशस्त चित्र देखोगे तो अप्रशस्त चारित्र बनेगा।

ज्ञानी! जिनमुद्रा दिखती है, अर्हन्त मुद्रा दिखती है तो परिणाम विशुद्ध होते हैं। वहीं किसी ऐक्टर आदि के चित्र दिखाई दें तो तुम्हारे परिणाम वैसे ही होते हैं आँख को स्थिर करो। इसलिये साधुपुरुष "निमग्नदृष्टि", नासाग्र करके चलते हैं।

तिरछा देखना ही तिरछापना है। तिर्यक् वे देखें, जिनके परिणाम तिर्यञ्च के हैं, जिनकी सम्पूर्ण संज्ञायें प्रकट हैं, अज्ञानता से भरे हुये हैं। ज्ञानियो! निहारना, यदि आपकी किसी भी संज्ञा को परपुरुष समझ लेता है तो मनुष्यपना समाप्त, साधुत्वपना समाप्त।

हे ज्ञानी! आपकी किसी भी संज्ञा को अन्य पुरुष समझ रहा है कि इनकी काम की इच्छा चल रही है, कि भोजन की इच्छा चल रही है, इनकी परिग्रह संचय की दृष्टि चल रही या भय लग रहा है? ये चारों संज्ञायें तेरी प्रकट दिख जायें दूसरे पुरुष को, तो समझ लेना कि ये तिर्यंच है। मनुष्य तो मानव है, मर्यादापूर्ण है। संज्ञाओं की पूर्ति भी करता है, तो मर्यादा के साथ करता है। ये श्वान की पर्याय नहीं है। स्पष्ट शब्दों में कह रहा हूँ। जिसको कोई विवेक नहीं होता है। किसी भी स्थान पर अपनी इच्छाओं की पूर्ति करने के लिये खड़ा है। कोई विवेक नहीं है, मर्यादा नहीं है। ज्ञानी मनुष्य होकर भी मनुष्यत्व से शून्य है। तो फिर साधुत्व कहाँ?

यदि वर्तमान के ज्ञानी लोग अमर्यादित जीवन जी रहे हैं, तो सिद्धांतशास्त्र की भाषा में बोल देना कि ये द्रव्य से पुरुष का भेष अवश्य है, मनुष्य है, लेकिन भाव से तिर्यञ्च ही है। तिर्यञ्चों के जो संज्ञा होती है, वह प्रकट दिखाई देती है। आप सब समझ रहे हो? उनके पास कोई लोकमर्यादा नहीं होती है। जिनकी लोकमर्यादा ही भंग हो चुकी हो, वह अपने आप को मनुष्य कहना ही बन्द करदें। ज्ञानी! एक नारी की एवं एक साधु की यदि लज्जा समाप्त हो गई, तो समझ लेना कि सबकुछ गया।

हे ज्ञानी! आत्मवंचना तो तभी हो चुकी होती है, जब पाप करने का भाव आता है। आत्मनिंदा तो तभी हो चुकी है जब पाप करने का भाव आता है। आत्मनिंदक तो हो चुका है। जो चित्त की प्रसन्नता, हृदय का गद्‌गद् भाव निर्दोषता में होता है, वह सदोषता में नहीं होता है। एक ग्रास भी यदि आपने छिपके उठाकर खा लिया हो, तब भी मन में टीस होगी, विकल्प रहेगा। पूरा भोजन सामने करके आना, विकल्प नहीं होगा। पर छिपकर एक ग्रास खानेवाली जीवन की उन अवस्थाओं का चिन्तवन करो, संयमी जीवन बनाने के पहले का जो जीवन था, उस पर चिन्तवन करो।

लोचन शुद्ध है, तो सब वस्तु पवित्र दिखाई देंगी। लोचन शुद्ध नहीं है, लोचन स्पष्ट नहीं है, पाण्डु रोग हो गया, पीलिया हो गया जिसके लोचन में, उसको हर वस्तु पीली दिखाई देगी और लोचन साफ है तो वस्तु जैसी है वैसी दिखाई देगी।

ज्ञानी! इसलिये लोचन साफ करने के लिये आलोचन है। करो निज आलोचन। लोचन यानि आँख। अक्ष यानि लोचन, अक्ष यानि आत्मा। आँख का पर्यायवाची है लोचन और लोचन यानि आत्मा। दर्शनगुण किसमें है? आत्मा में। इसलिये आलोचन इसलिये करना कि निज लोचन शुद्ध हो जाये।

बुद्धि की प्रशस्तता आने के पूर्व क्या-क्या कर चुके हो? जब घर में पैसा नहीं था, तो गरीबी के दिनों में आपने कैसे-कैसे काम किये? उनका चिन्तन करो। धन कमाने के लिये क्या-क्या नहीं किया? जन्म देनेवाली माँ के साथ भी दगा करा देता है पैसा। जिसने तुझे अंगुली पकड़कर चलना सिखाया था, जब तू चलना नहीं जानता था, उस पिता को भी दगा देता है तेरा लोभ, पैसा। पचास रुपया भी बड़े भैया को अधिक मिल जायें तो छोटे भैया की हालत देखो? इसे पैसा महत्त्वपूर्ण है। जिसे तू पिताजी कहकर पुकारता था, पड़ोसी से अच्छा बोल लेता है, परन्तु पिता तुझे पचास रुपये नहीं दे पाया तो पिता तेरा शत्रु बन गया।

हमारे योगीश्वरों को, मुनीश्वरों को भावात्मक उपदेश और भावात्मक सुधार की व्याख्या करनी चाहिये, तत्त्व की विवेचना करनी चाहिए।

ज्ञानी! झगड़ा हो गया किसी से, स्वाध्याय किया, कहीं तत्त्व-उपदेश सुने, तो कषाय ऋजु हो गई, तो अब उसे शर्म आती है कि मैं कैसे बोलूँ? हाँ, ऐसा ही होता है। कषाय की मन्दता में भाव भी करें कि अब तो मुझे बोल लेना चाहिये है। भैया पिता से कभी भी झगड़ा हो जाये, तो पिता से बोलना बंद मत करना, नहीं-तो पिता की अंतिम श्वास आयेगी तब भी णमोकार सुनाने में हिचक आयेगी। यहाँ कोई श्रावक ऐसा भी बैठा हो। यदि कोई विकल्प आ जाये, संसारी हो, गृहस्थ हो, आ भी जाये विकल्प, तो भी सोने के पहले-पहले पिता के पैर छू आना।

ज्ञानी! पुद्गल के टुकड़ों के पीछे भगवान्-आत्मा से द्वेष नहीं करना। समयसार यहाँ लगाना चाहिये कि पिता का जीव भगवान्-आत्मा है कि नहीं? और तू भगवान्-आत्मा है कि नहीं? जब दोनों भगवान्-आत्मा हैं, तो कषाय के आवेग में भगवान्-भगवान् का विद्रोह कैसा? कषाय क्या तेरी निज वस्तु है? कुन्दकुन्द की गाथाओं को मात्र स्मरण करके आलोचनापाठ मत भूल जाना। कुन्दकुन्द देव ने "समयसार" लिखने के पूर्व प्रवचनसार, नियमसार, पंचास्तिकाय आदि अलौकिक ग्रन्थ लिखे हैं। वारसाणुपेक्खा, अष्टपाहुड़, चौरासी पाहुड़ ग्रन्थ कुन्दकुन्द स्वामी ने लिखे हैं। इन महायोगी ने 'षट्खण्डागम' जी ग्रन्थ पर विशाल टीका लिखी है। "कुन्दकुन्द स्वामी" चारों अनुयोगों के ज्ञाता थे। "धवला टीका" बहुत बाद की है। षट्खण्डागम जी पर धवला टीका नौवीं सदी में लिखी गई। इसके पूर्व कुन्दकुन्द स्वामी षट्खण्डागम पर टीका लिख चुके थे। ये अपना दुर्भाग्य है कि अनुपलब्ध हो गयी वह टीका।

ज्ञानियो! जब निज घर में ही मधुरता नहीं, तब परघर में मधुरता कैसी? अपको यूँ लगता होगा कि महाराज व्यवहार से बोल रहे हैं? नहीं। आप समझो मैं क्या कह रहा हूँ? परिवार के लोगों को आप परिवार क्यों मानते हो? इनको पहले जीव द्रव्य मानिये। संबंध त्रैकालिक नहीं हैं आपके, जीवद्रव्य त्रैकालिक है। ज्ञानी! आपका पोता, नाती सुबह से मंदिर की ओर दौड़े, बिना समझाये और कहे कि महाराजजी के दर्शन के लिये ले चलो, प्रवचन के लिये ले चलो, बेटा मचल रहा है, अब विश्वास मानिये कि पुण्यात्मा जीव ही घर में आया है। उसकी भवावलियाँ अल्प बची हैं।

ज्ञानियो! जो आज जीवद्रव्य मानकरके सन्तान के प्रति शुभभाव रख रहा है और जिनालय की ओर ले जा रहा है पिता, वह बेटा भी तुमको मंदिर के दर्शन करायेगा। इसलिये हे माँ! जितने अच्छे से स्कूल के लिये तैयार करती हो बेटों को, ऐसे-ही बहुत अच्छे से जिनालय की ओर ले जाने के लिये तैयार किया करो। उसके सम्यक् के साधन बनो। निहारो निज की ओर। एक पुद्गल के टुकड़े के अर्जन के राग में कितने भविष्य के भगवानों के प्रति अशुभ भाव किये हैं? एक का पक्ष लिया था, दूसरे का विपक्ष किया था, पर हे ज्ञानी! स्वभाव से देख तेरे लिये दोनों ही भिन्न हैं। दोनों ही तेरे काम में नहीं आयेंगे। पर पक्ष-विपक्ष में जो संक्लेश परिणाम किये थे, उनसे जो कर्मास्रव हुआ था, वह तेरे काम में अवश्य आयेगा।

हे माँ! ज्येष्ठ पुत्र,लघु पुत्र, कोई एक के प्रति राग है, दूसरे के प्रति द्वेष है, पर ध्यान रखना माँ! वे दोनों ही कार्यकारी नहीं होंगे। उन दोनों के राग-द्वेष में जो तूने कर्मास्रव किया है, वह कर्मास्रव अगली पर्याय में तुझे अवश्य काम में आयेगा।

ज्ञानी! कोटि-कोटि उपवास करने की अपेक्षा तटस्थ जीवन जीना उत्कृष्ट साधना है। भोजन का भूखा बना रहना तो शरीराश्रित है, पर परिणामों को तटस्थ बनाके रहना, ये निज के भीतर का पुरुषार्थ है। गाली देने वाले और प्रशंसा करने वाले, दोनों के प्रति परिणाम तौलिये। निंदा करने वाले, स्तुतियाँ करने वाले इन दोनों के युगपत् होने पर उस समय परिणामों को निहारिये। किसके प्रति मुस्कराहट छूटती है और किसके प्रति भृकुटियाँ खिचती हैं। आप समझ लो कि मोक्षमार्ग कितना प्रारम्भ हुआ है? साधु बनकर साधुत्व कितना आया है?

मोक्षमार्ग में भी, मोक्षमार्गियों के बीच में आकर के भी, मोक्षमार्गियों के प्रति राग-द्वेषात्मक भाव बन रहे हैं। मैं क्या करुँ? ये अनादिसंसारी के संस्कार हैं। बकरियों को मणिमय भूमि पर खड़ा कर देना। कोई कूड़ा नहीं होना चाहिये वहाँ पर, कंकड़ नहीं होना चाहिये, कुछ नहीं होना चाहिये। साफ-स्वच्छ भूमि पर खड़ा कर देना। तब भी बेचारी बकरी करें क्या? उसके जातीय संस्कार ऐसे हैं कि बिना जमीन को कुरेदे वह बैठ नहीं सकती है। कितना ही स्वच्छ पानी भरा हो, भैंस को पिलाने ले जाना, पीने के पहले क्या-क्या करती है? आपको पता है क्या? बिना लघुशंका किये वो पानी पीना शुरू नहीं करती। कुछ ऐसे भी ज्ञानी लोग होते हैं, तुम उनको कितने ही ऊँचे शिखर पर बिठाल देना, पर जब तक वे अपने हृदय की गंदगी नहीं फैला लेंगे, उन्हें शान्ति नहीं मिलती, ऐसे जीव बिघ्नसंतोषी मिथ्यादृष्टि हैं।

ज्ञानी! लोचन साफ करो, यदि वस्तु की यथार्थता जानना है तो। मिट्टी से युक्त कटोरे में खीर भरोगे, तो खीर का स्वाद बदल जायेगा। कषाययुक्त परिणामों से जिनवाणी सुनोगे तो जिनवाणी का स्वाद बदल जायेगा। जिनवाणी का वाचन भी करो तो शान्तभाव से करो।

ज्ञान का आनन्द लूटना है, तो पहले अपने हृदय को खाली करो। सम्पूर्ण प्रकार से आलोचना करो। निज निंदा करो कि मैंने इस जीवन में क्या-क्या किया? सुनाई पढ़ रहा है, आप सबको ? चेहरे उदास क्यों कर रहे हो ? जबसे समझ में आई है, तब से आजतक, सोच लीजिये। माँ के संबंध को सम्बंध नहीं जाना, बहिन के सम्बंध को संबंध नहीं जाना, पिता के संबंध को सम्बन्ध नहीं जाना। चार संज्ञाओं ने क्या-क्या नहीं कराया है?

अहो पापी चित्त! तूने तिर्यंचों के बीच में, तिर्यञ्च ही बनाके रख दिया। आपके कानून में दण्ड-संहिता है। मुझे मालूम है कि ऐसे नर-अधम भी होंगे जो सुजाति सुवंश को छोड़करके अपनी इच्छाओं की पूर्ति तिर्यञ्चों से भी करते हैं। ऐसे पापी जीव हैं लोक में, जिनकी संज्ञाये प्रकट हैं। निज की इच्छाओं की पूर्ति, पशुवृत्ति, पशुओं के साथ भी करते हैं। क्या करोगे? उस समय के हृदय को टटोल लो और निहारो। समझ आने के पूर्व जो किया है, उसे आज की समझ से समझ लो और श्वास निकलने के पहले प्रायश्चित लेके जाना। पश्चाताप कर लेना और ज्ञानी! उस पाप को छोड़ देना। मिथ्यात्व को छोड़ देना।

ज्ञानी! पुण्य की चमक में चारित्र सत्य हो, यह कोई नियम नहीं है। चारित्र चमके, कोई नियम नहीं है। पूर्व पुण्य के नियोग से आदमी छुपके भी पाप करले और पकड़ा भी जावे, तब भी पुण्य उसका इतना तेज काम कर रहा है कि आदमी उसके दोष को दोष नहीं समझ रहे हैं। ये पुण्य की चमक है, ये चारित्र की चमक नहीं है। जिस दिन पुण्य की चमक फीकी हो जायेगी, तब जो चारित्र का घात किया था वो उदय में नियम से आयेगा। करो, परंतु थोड़ा विचार कर लेना। ज्ञानी! सबके दिन एकसे नहीं होते।

सफेद चमड़ी को देखकरके जो मुस्करा रहे हैं आप सब, ये चमड़ी उतर जाये तो भीतर क्या है? घाव ही घाव है। पुण्य की चमक को आज समझना हो तो समझ लो, भविष्य आप जानो। क्योंकि मुझे निज को ही निहारना है। लगता ये है आपको, कि ये उपदेश चल रहे हैं। यथार्थ मानिये, जितना मैं आपके लिये बोलता हूँ, उतना बोलने वाले को भी बोलता हूँ। ये पुण्य की चमक है। चमड़ी हटी, भीतर देखो, घाव है। पुण्य घटेगा, तब उदय आयेंगे कर्म अशुभ ही अशुभ, फिर बिलखोगे।

ज्ञानी! अभी तुम्हारे घर की दीवाल पर कौआ बैठा हो, आप निकल पड़ो तो उड़ जाता है। पर जिस दिन चमड़ी हट जायेगी, वो उड़ेगा नहीं, शरीर पर बैठकर खायेगा। सुनो ध्यान से, मैं क्या बोल रहा हूँ? जो आज तुम्हें देखकर भाग रहे हैं, वे पुण्य की चादर हटते ही सिर पर बैठना प्रारम्भ कर देंगे, विश्वास मानो। इसलिए किसी को अपना मानना नहीं आज से। जीव-तत्त्व की दृष्टि निहारिये। किसी से बँधके मत रहना, किसीके बनके मत रहना। जहाँ-जहाँ सम्बन्ध होते हैं। वे छूटने के लिये ही होते हैं।

ज्ञानी! जो गाँठ बंधी हुई थी, वो तो खुल गई। पर जो भीतर गाँठ बंधी थी वो आज तक नहीं खुली। गाँठ तो खुलने के लिये ही बांधी गई थी और ये आपको दिखा दिया गया था उसी दिन। और खोली किसने थी? बांधता कौन है? और खोलता कौन है? ओ-हो! तुम तो ऐसे लग रहे थे जैसे साधु बन चुके हो। क्यों मायाचारी कर रहे हो?

ज्ञानी! कितना ही बंध कर लेना मिल-मिलके, जब छोड़ना पड़ेगा तो स्वयं ही छोड़ना पड़ेगा। जिस दिन गाँठ बांधी गई थी, तो सब लोग मंगलाचरण कर रहे थे। जब खुलने का समय आया, तो लोग वहाँ हँसने वाले भी खड़े थे। खोलो कौन कितनी जल्दी खोलता है? बोलो, बात साँची है कि नहीं? उसी दिन आपको मालूम चल जाना चाहिये था कि बंधन के समय संगीत कर रहे थे, गाना गा रहे थे और जब खुलने का समय आया, तो हँसने खड़े थे सब, कि कौन पहले खोलता है?

मुमुक्षुओ! ये बंधन के काल में सब मुस्कराने वाले मिलेंगे, पर छूटने के लिये एकांत में तुझे ही जाना पड़ेगा। हे ज्ञानी! जो बांधा जाता है, बन्धन होता है वह छूटने के लिये ही होता है। जो बंध हैं। वे छूटने के लिये ही हैं। इसलिये आज से रोना बन्द, हँसना बंद। "जो है, सो है।"

ज्ञानी! कौन गुरु? कौन शिष्य? कौन पूज्य? ये तभी तक दिखता है, जब तक मान नहीं सताता। जिस क्षण मान सताता है, तो पूज्यों को भी धक्का देकर अपनी पूजा के लिए खड़ा हो जाता है। ज्ञानी! यह ध्रुवसत्य समझना। तीर्थंकर अरहन्त की प्रतिमा विराजमान हो, यदि किसी ज्ञानी का नाम बुलाया जाये कि इनका सम्मान किया जाना है, तो ये वहाँ भूल जायेगा कि तीनलोक के नाथ विराजे हैं, इन महान् सम्मानीय के चरणों में इस पुद्गल पिण्ड का क्या सम्मान? उनको ही भूल जाता है। भगवान् और गुरु के सामने माला डलवाने में कभी नहीं डरता है। सम्मान अकेले में भी तो हो सकता था। नहीं, नहीं, भैया! पहले महाराज को बुला लो, उनके सामने अच्छा लगेगा। हे रागी! जिनने मान छोड़ा, मालायें छोड़ी, उनके चरणों में भी तू निर्मल भाव नहीं कर पाया। वहाँ पर भी माला पहनने पहुँच गया। जिनके

तन पर धागा तक नहीं है, उनके पादमूल में खड़े होकर तू शाल ओढ़ना चाहता है। ज्ञानी! वह शाल उतारने की बात करते हैं, तू शाल ओढ़े उनके चरणों में खड़ा है। हे मान! तुझे धिक्कार हो।

जिस भूतल पर खड़े होकर निर्वस्त्र होने के परिणाम आना चाहिए थे, जिस भूतल पर खड़े होकर माला फेरने के परिणाम होना चाहिए थे, उस भूतल पर खड़े होकर तेरे माला पहनने के परिणाम हो रहे हैं, यानि अभी तेरी संसार की माला दीर्घ है। पंचपरमेष्ठी के पादमूल में खड़े होकर स्व-सम्मान के भाव आ रहे हैं, तुझे वह पूज्य नहीं दिख रहे हैं। तुझे पुद्गल पिण्ड की पूजा दिख रही है। भैया! स्व के भावों से कहना कि जिनवाणी और जिनदेव से दूर ले चलो मुझे, फिर इस पुद्गल पर माला डाल देना। पर मुझे मालूम है, कि जो मालायें आज पड़ रही हैं, एक दिन और भी पड़ेंगी। इस मल पर माला भी पड़ेगी। फिर ये माला भी मल हो जाती है। जिसके कंठ में माला एक बार डाली जाती है, उस कंठ की माला दूसरे को पहनाना चाहे तो वह स्वीकार नहीं करता है।

जिसके संसर्ग को प्राप्त होते ही पवित्र-से-पवित्र द्रव्य भी अपवित्र हो जाता है, ये मल का पिण्ड तो शरीर है। रस, रक्त, माँस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र इसके अलावा इसके अन्दर सुन्दर क्या है? मूत्र, पीव। चौबीस सेर तो मल भरा है, इसके अन्दर विष्ठा है। इसको क्या सजा रहे हो? क्या दिखा रहे हो? हे ज्ञानी! यह मल की चमक नहीं, पुण्य की चमक है। उस पुण्य की चमक को मल पर मत डाल दो। क्या मिला? सम्मान चल रहा है, जबकि आये थे भगवान् के पादमूल में भव से तिरने के लिए। बड़े प्रेम से कह रहा था कि भव पार हो जाऊँ। ज्ञानी! अध्यक्ष आया, उसने गले में माला डाली तो प्रसन्न हो गया। यह माला किसमें डाली गई है? भव में, कि भवातीत में? चिन्तन को गहराई में ले जाइये। वर्तमान की दशा भव नहीं है क्या? वर्तमान का शरीर भी एक भव ही तो है। तू भव का ही सम्मान करा रहा है, भवाभिनन्दी! भवातीत कैसे होगा? जब तक भव का सम्मान चलेगा, तब तक भवातीत होने वाला नहीं है। हे भवाभिनन्दनीयो! भव का अभिनन्दन चाहनेवाले! जगत् भव का अभिनन्दन करे, परन्तु तू भवातीत होना चाहता है तो भगवान् का अभिनन्दन करो, इस भव का अभिनंदन मत करो।

अष्टमी का दिन है, हरी (सब्जी) मत खाओ, क्योंकि ऐसा करने से जीवों की हिंसा होगी। परंतु भैया! मेरी आँखों में कुछ दिख रहा है। इधर कहता है कि आज अष्टमी है, हरी खाने का त्याग है, हे अज्ञानी! उन पुष्पों में कोटि-कोटि जीव मर रहे हैं, उन फूलों की

माला पहनने से कौन-सा पेट भरता है? भैयाजी कहते हैं, महाराज! मैं फूलों की माला नहीं पहनता, मैं तो प्लास्टिक की माला पहनता हूँ। हे ज्ञानी! मेरा एक प्रश्न है। जब पाषाण के परमात्मा की वंदना करने से निर्बन्ध हो सकते हो, तो पुष्पों के नाम पर प्लास्टिक की माला पहनोगे, तब भी कर्म का ही बंध होगा, क्योंकि आपने संकल्प पुष्पमाला का ही किया है। सुनो, ज्ञानी! जब पाषाण के परमात्मा की वंदना करके मैं निर्बन्धता को प्राप्त होता हूँ, क्योंकि मैंने स्थापना-निक्षेप से संकल्प किया है कि ये परमात्मा हैं, ऐसे-ही प्लास्टिक की माला में भी उद्देश्य यही है कि ये पुष्पमाला है। गजरा ही है, हार ही है। जो मान से हार गया, वह हार पहने। जो मान से जीत गया, वह माला फेंक देगा।

भैया! तेरे साथ घोर छल किया जा रहा है। विचारो, कि मैंने बहुत पाप किया है। जब से आँख खोली, होश सम्हाला, तब से पैसा-पैसा। पैसे के राग में यह भी नहीं देखा कि कितने नष्ट हो गए और कितने नष्ट हो रहे हैं? जैनकुल में जन्म लिए ऐसे भी पापी लोग मिल जायेंगे जो महुये का व्यापार कर रहे हैं। महुये के व्यापारियो! नरकों में मालूम चलेगा कि कैसे सड़ना पड़ता है। इतना ही नहीं, यह मानकषाय, पैसा होना चाहिए। पैसे के राग में तूने भट्टे भी खोल दिए, कोटि-कोटि जीवों की हिंसा हो रही थी। पैसे के राग में तू कीटनाशक दवाइयाँ भी बेचने खड़ा हो गया। खाद की दुकान किए बैठा है, सारे-के-सारे पावडर बेच रहा है। हे ज्ञानी! तू जैनकुल में जन्मा है, लेकिन तेरा कर्म म्लेच्छ का है। इस पर्याय को नष्ट मत करो। जब हिंसा के काम करने से पैसा मिल सकता है, इतना पुण्य तेज है, तो ज्ञानी! अहिंसा का काम करेगा तो अपने आप पैसा आयेगा। भैया! विधान भी कराना किसी का तो उससे पूछ लेना कि तेरा उद्देश्य क्या है? किसी की दुकान का उद्घाटन हो, भैयाजी पहुँच जायें, भैया! पूछ लेना कि खोल क्या रहे हो आप? नहीं तो ध्यान रखना, आपने उसकी अनुमोदना की है।

किसी के फेरे पड़वाये जाकर, तो जो नवकोटि जीवों की हिंसा होगी, उसकी अनुमोदना का फल तुझे मिलना-ही-मिलना है। जो है, सो है। वह तो मिलना है। वह मान के लिए धन कमा रहा है, और वह कह रहा है कि मैंने पैसे के लिए घोर-घोर पाप किये हैं। यहाँ तक कि माँ के साथ भी छल किया है, पिता के साथ भी छल किया है। मानश्री के लिए क्या करता है? सगे भाई व पिता को भी घुमा दिया और अपने नाम पर पूरी जायदाद कर ली। हे अभागे! कौरवों से पूछना-'मेरा सो मेरा, तेरा सो मेरा'। जिसके ऐसे भाव आयें, उससे बड़े प्रेम से कह देना कि यह कौरववंशी लोग अभी भी जीवित हैं। सभी की सम्पत्ति हरण

करने के जिनके परिणाम चल रहे हों, उनसे कह देना, मेरे भैया! महाभारत का कितना ही युद्ध चला हो, लेकिन कौरववंशी अभी जीवित हैं, अभी गये नहीं हैं। बुरा लगे तो छोड़ देना भैया की सम्पत्ति हड़पना। जिनके पीछे भैया को भी भैया नहीं कह पा रहा है, कुछ वर्ष पहले तो बोलचाल थी अब बोलचाल बंद हो गई। क्यों? हे ज्ञानी! मत बोलो। ये धन के राग में एकेन्द्रिय वनस्पति बनकर खड़ा होगा, फिर बोलने को चाहेगा, तब भी नहीं बोल पायेगा। ये श्री और स्त्री के राग में परस्पर में विसंवाद मत करना। बोलना मत छोड़ देना। क्योंकि बोलना छोड़ दिया तो भव-भव में मूक बन जाओगे।

दान का मतलब आपने पढ़ा होगा। 'दान देय मन हरख विशेखै' जिसको देने के बाद मन में हर्ष आता है, उसका नाम दान है। एक बार मैंने तेली को तेल निकालते देखा। कोल्हू या स्पेलर से नहीं। छोटे-मोटे जो तेल निकालते, वे हाथ से भी निकाल लेते हैं। उन्होंने पहले पीस लिया। पानी जरा-सा। उसको मसला, कपड़े में रखा, तो उससे तैल निकलना प्रारंभ हो जाता है। मिक्सी से रस निकालते तो देखा, हाथ से भी तो रस निकालते हो? अनार का रस क्या हाथ में रखते ही निकल आता है? नहीं। मसलना पड़ता है। दया भी नहीं आती। हे माँ! जब अनार से रस निकाल रही होगी और द्रव्यदृष्टि चली जायेगी, तो हाथ खुल जायेगा तेरा, क्योंकि ये पूर्व के तेरे लाल हैं, पिता हैं, वे ही जीव वनस्पति बने हुए हैं, आज रागवश संस्कार काम में आया। कभी उन्होंने तेरा धन निचोड़ा होगा, आज तूने उनके शरीर को ही निचोड़ कर पी लिया। जैसे उस अनार का रस निकालता है, जैसे तेल निचोड़ रहे थे, भैया! ऐसे किसी के परिणामों को निचोड़ करके दान लेने मत जाना। उसके भावों की हिंसा मत करना। समाज का श्रावक है, उसका भी सम्मान है, इज्जत है। दस लोगों के बीच में खड़ा कर दिया, 'भैया! बोलो।' नहीं है उसकी ताकत, भैया! आपने तो उसकी पूरी उतार दी। जिसने ऐसा किया, उसने घोर हिंसा की। "दान देय मन हरष विशेखै।" जैसे यहाँ श्रावक आते हैं, स्वतः बोलकर चले गये, ठीक है, भैया! लेकिन किसी को पकड़कर खड़ा मत कर देना। आप तो जीवों को बचाते हो, पानी छानकर पीते हो, तो दूसरे के परिणामों को क्यों चूसते हो? दान और धर्म की व्याख्यायें सुनो, सत्यता को समझो। सामने वाले की सामर्थ्य को देखो। सामर्थ्य को देखे बिना उससे दान 'निचोड़' रहे हो, यानि उसके परिणामों को कलुषित कर रहे हो, तो उसका दान नहीं है। अपनी श्रद्धा से, आस्था से और मुस्कराकर देता है और देने के बाद भी चेहरे पर दमक होती है, इसका नाम 'दान' है। पूछो ज्ञानी से। घर में मुनिराज पधार जायें तब आहार देने के बाद उस दाता के चेहरे को देखना, कैसे भाल चमकते हैं उसके? हे ज्ञानी! लोक में कहा जाता है कि नहाने के बाल, खाने के गाल अलग दिखते हैं। बिना

खाये भी गालों में चमक आती है तो मात्र दिगम्बर मुनि को आहार देने के बाद आती है और जिस घर में आहार न हों और वह व्यक्ति भोजन भी करके आ जायेगा, फिर भी उसका चेहरा उतरा मिलता है। 'काये भैया! का हो गओ?' 'भैया! खाली गओ।'

हे ज्ञानी! तुझे जगत् में कोई धर्मात्मा नहीं दिखा। इतने सारे धर्मात्मा थे, मन्दिर के पुजारी थे, त्यागी-व्रती थे, उनको ही ले जाता। खाली कभी नहीं जाता। भवाभिनन्दी नहीं बनना है। दिगम्बर जैन अम्नायी योगेन्दुदेव ने एक ग्रंथ लिखा है 'योगसार प्राभृत' यह पूरा 'समयसार' के ऊपर लिखा गया है। उन्होंने इतने सुन्दर शब्दों का प्रयोग किया है 'हे भवाभिनन्दनीयो! भव का अभिनन्दन छोड़ो।' लोकाचार में जीते-जीते लोकोत्तराचार का तो नाश ही कर दिया। निर्ग्रन्थ मार्ग श्रमण मार्ग है मोक्षमार्ग। ये लोकाचार का, तिलकधारियों का मार्ग नहीं है। रत्नत्रय के तिलक का मार्ग है, ये लोकोत्तराचार का मार्ग है।

त्रिलोक-चूड़ामणि भगवान् महावीर स्वामी जयवन्त हों। बेचारा बोल रहा था-भैया! मैंने कमाने में घोर-घोर पाप किये। मैंने धन कमाने में कोटि-कोटि जीवों की हिंसा की है। जो कर्म मेरे करने लायक नहीं था, उसको भी करके आ गया। ज्ञानी! मैं तो नाई भी बन गया। घर के द्वारे पर जहाँ लिखा होना चाहिए था "तीर्थंकर शासन जयवन्त हो, नमोऽस्तु शासन जयवन्त हो," वहाँ लिखा था 'ब्यूटी पार्लर।' पूर्व में तूने इतना घोर पुण्य किया था कि तुझे सुकुल जैनकुल मिला, तीर्थंकर अरहन्त का शासन मिला और ऐसे कुल में भी आकरके नाई का काम कर रहा है। ज्ञानी! राग ही कर पाओगे, द्वेष ही कर पाओगे। आप कमा-कमाकर रख भी दोगे, तो रागी-भोगी आकर भोगेंगे। ज्ञानी! जो जीव ऐसे काम कर रहे हों, वे निर्ग्रन्थ योगी के हाथ पर ग्रास रखने की भावना न भायें। इन बेचारों ने सबकुछ छोड़ा है, कम-से-कम इनको ही शुद्ध रहने दो और बहुत अच्छा हो कि आप भी शुद्ध हो जाओ। ज्ञानी! दूसरा काम कर लेना, लेकिन बहुहिंसक और जैनकुल को लज्जित करने वाले काम मत करना।

ज्ञानी! संसारसागर से पार उतरना है, तो रत्नत्रय की निर्मल साधना करना। समकित के साथ की गई साधना ही सकल कर्मों का क्षय कर सकती है। सम्यक्त्व रहित साधक की साधना संसारभ्रमण का ही कारण है।

ज्ञानी! जो जीव त्रयशल्य (माया-मिथ्या-निदान) से सहित है, मानी है, घमण्डी है, ईर्ष्यालु है, कलहप्रिय है, याचना करता है, वह मुनि भी दीर्घसंसारी है, मिथ्यादृष्टि है तथा जिनेन्द्र के शासन को कलंकित करता है। 'सो दीह संसारे हिंडदि' वह मुनि भी संसार सागर में भटकने वाला है।

ज्ञानी! जो परीषहों को सहन करता है, उपसर्गों को भी सहन करता है, परन्तु सम्यक्त्व से रहित है, वह आत्मसिद्धि से अत्यन्त दूर है। "कषाय संजुत्ता आद सहावे सुत्ता" जो साधु कषाय से संयुक्त है, कलहप्रिय है और आत्म-स्वभाव में प्रमादी है, ऐसा साधु "सम्मपरिचत्ता" सम्यक्त्व से शून्य है, मिथ्यादृष्टि है, दीर्घ संसारी है।

ज्ञानियो! समझो, रत्नत्रय ही आत्मसिद्धि का साधन है। सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चारित्र ही मोक्ष के मार्ग हैं। तीनों की एकता ही रत्नत्रय है। ज्ञानी! रत्नत्रय की निर्मल साधना ही आत्मसिद्धि का साधन है।

"आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

॥ भगवान् महावीर स्वामी की जय ॥

❖ ❖ ❖

"विराधक साधुओं के लक्षण"

आरंभे धणधण्णे, उवयरणे कंखिया तहासूया।
वयगुण सीलविहीणा, कसाय कलहप्पिया मुहरा॥101॥

संघविरोह कुसीला, सच्छंदा रहिद गुरुकुला मूढा।
रायादिसेवया ते, जिणधम्म विराहया साहू॥102॥

अन्वयार्थ—जो **(साहू)** साधु **(आरंभे)** आरंभ में **(धण धण्णे)** धन-धान्य में **(उवयरणे)** उपकरणों में **(कंखिया)** आकांक्षा रखते हैं **(तहा)** तथा **(असूया)** ईर्ष्यालु हैं **(वयगुणसील विहीणा)** व्रत गुण शील से रहित हैं **(कसाय कलहप्पिया)** कषायप्रिय और कलह प्रिय हैं **(मुहरा)** वाचाल हैं।

(संघविरोह कुसीला) संघ का विरोध करते हैं, कुशील हैं **(सच्छंदा)** स्वच्छन्द हैं **(रहिद गुरुकुला)** गुरु के समीप नहीं रहते हैं **(मूढा)** अज्ञानी हैं **(रायादिसेवया)** राजादि की सेवा करते हैं **(ते)** वे साधु **(जिणधम्म विराहया)** जैनधर्म के विराधक हैं।

"साधुओं को दूषण कार्य"

जोइस-वेज्जा-मंतोवजीवणं वायवस्स ववहारं।
धणधण्ण परिग्गहणं समणाणं दूसणं होदि॥103॥

अन्वयार्थ—(जोइस-वेज्जा-मंतोवजीवणं) ज्योतिष, वैद्यक, मंत्र-विद्या द्वारा जीविका चलाना **(वायवस्स ववहारं)** वात विकार का व्यापार, भूत प्रेत की झाड़-फूँक का व्यापार **(धणधण्णपरिग्गहणं)** धन-धान्य का प्रतिग्रहण करना **(समणाणं)** श्रमण/मुनियों के लिए **(दूसणं)** दोष **(होदि)** होते हैं।

॥ देशना॥

अन्तिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेश की पीयूष देशना, जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है।

यह सर्वज्ञशासन, नमोऽस्तु शासन जयवन्त हो। जयवन्त हो वीतराग श्रमणसंस्कृति।

आचार्यप्रवर भगवान् कुन्दकुन्द स्वामी ग्रंथराज रयणसार जी में श्रमण और श्रावक इन दोनों धर्मों की युगपत् व्याख्या करते हुये समझा रहे हैं।

ज्ञानियो! जिन्होंने सबकुछ छोड़ दिया और पुनः-पुनः संस्कार वश आरंभ में, धन-धान्य में, उपकरणों में आशक्त हैं, लंपट हैं, वे मुनिभेष में रहकर भी मुनित्वभाव से शून्य हैं, रहित हैं। आरंभ कार्यों में लिप्त होकर व्रत, संयम-साधना से शून्य हो गये हैं। कषायों में लिप्त होकर कलह-प्रिय, कषाय-प्रिय हैं। वाचाल हैं एवं धर्मात्माओं से ईर्ष्याभाव रखते हैं। स्वच्छंद हैं, गुरु-आज्ञा से विहीन हैं और राजादि की सेवा में लीन हैं, वे साधु होकर भी जिनशासन के विराधक हैं।

ज्ञानी! यह जिनशासन है। यह वित्तरागियों का नहीं, वीतरागियों का शासन है। यह निर्माण का नहीं, अपितु निर्वाण का साधन है। यह स्वाहा का नहीं, अपितु स्वात्मकल्याण का मार्ग है। ज्ञानी! साधु के पास समत्व भाव तो होना ही चाहिये।

ज्ञानी! कभी श्वान को देखा? ओ हो! घोर आश्चर्य; श्वान वमन करके स्वयं ही रुचि पूर्वक उसको चांटता है। वैसे हे ज्ञानी! जिनने संकल्पपूर्वक सब-कुछ छोड़ दिया है और पुनः उसमें लिप्त हो रहे हो? सोचो, तुम क्या हो?

ज्ञानियो! जयवंत हों वीतरागी तपोधन/श्रमण। जिन्होंने सकल परिग्रह को बुद्धिपूर्वक त्याग दिया है एवं आत्मसिद्धि के लिए आत्माराधना कर रहे हैं। वीतरागी तपोधन किसी को श्राप नहीं देते, किसी को वरदान नहीं देते और नित्य ही कर्मक्षय के लिए या तो आत्मा में लीन रहते हैं अथवा करुणाभाव से भव्यों को कल्यान हेतु जिनेन्द्र के वचनों का पान कराते हैं।

दिगम्बर तपोधन, धरती के देवता, वीतरागी मुनि अनेक विधाओं के पारगामी होते हैं। मंत्र-तंत्र, ज्योतिष हस्त-रेखा, निमित्त-शास्त्र के ज्ञाता होते हैं, फिर भी आत्मसिद्धि को प्रधान करके आत्मसाधना करते हैं। मंत्रादि के जानकार होकर भी उसका कभी व्यापार नहीं करते हैं। ओ हो! "धण्णा ते भयवन्ता" धन्य हैं धरती के देवता। निहारो, महामुनि सनतकुमार को एक क्षण।

जो तीर्थंकर की मुद्रा को धारण करके मंत्र-तंत्र, ज्योतिष-विद्या का व्यापार करता है एवं आत्मसाधना को छोड़कर भूत-प्रेतादि को उतारना, कीलना आदि कार्य करता है, विद्याओं का व्यापार करता है, इनका प्रयोग कर आहार ग्रहण करता है, अपनी प्रसिद्धि के लिए तंत्र-मंत्र करता है, यह सब साधन में एवं महाव्रतों में दोष है।

ज्ञानी! जानना सरल, परन्तु विद्या को पचाना अत्यन्त कठिन है। यह वीतरागियों का निर्मल मार्ग है, इसमें निर्मल साधना करना ही श्रेष्ठ है, ज्ञानी! रत्नत्रय को धारण करके आत्मसिद्धि का लक्ष्य रखना ही श्रेष्ठ है। रत्नत्रय ही निर्वाण का हेतु है।

भैया! ध्यान से सुनना, कितने भी विशाल भूखंड के स्वामी बन जाना, लेकिन जब तुम यहाँ से विदा होगे, तब एक प्रदेश भी लेकर नहीं जा पाओगे। जितने राज्य-वैभव के लिए जीवों की हिंसा चल रही है, उनसे भी कह देना कि तुम क्रूर कर्म करके, कत्लखाने खोलकर, घोर पाप करके नारकी तो बन जाओगे, लेकिन इस धन का कणमात्र भी लेकर नहीं जा पाओगे। लेकिन ज्ञानी! ध्यान रखना, कृत-कारित-अनुमोदना। अब अखण्ड जैनसमाज को, इस अहिंसक समाज को विचार करने की आवश्यकता है। अनुमोदना उसी की करना, जो अहिंसा की अनुमोदना करे। जो अहिंसा की अनुमोदना नहीं करता है, उसकी पेटी में कागज मत डालना, बटन मत चटकाना। उनको मना नहीं कर सकते हो, लेकिन अपनी स्वतंत्रता का प्रयोग तो कर सकते हो। विवेक से काम लो। बनाकर बिठाला किसने? आज नहीं मान रहे हो। ऐसा दिन भी आयेगा जब तुम हमारे द्वार पर आओगे मनाने, तब हम भी आपकी नहीं मानेंगे।

जीवन में प्राणों की आहुति दे देना, सल्लेखना मरण कर लेना पर उन द्रव्यों का उपयोग मत करना, यदि महावीर की अहिंसा का पालन करना चाहते हो। उनका उपयोग ही जीवों के घात का कारण है। बाहुबली से पूछ लेना, जब राग था तो पूरा पोदनपुर नजर आ रहा था। जब राग था तो भरतेश को छहखंड दिख रहे थे। जीवन के किसी भी पल में वैराग्य उमड़ सकता है। समरभूमि वैराग्यभूमि नहीं थी। वैराग्यभूमि बनाने की आवश्यकता नहीं है, वैराग्य लाने की आवश्यकता है। एक क्षण समरस्थल था, दूसरे क्षण वैराग्यभूमि बन गया। बेटा सोम का हाथ पकड़ा बाहुबली ने और भैया भरत के हाथ में सौंप दिया—'मेरे भैया! आज से बेटा आपका है।' वस्तु कहाँ बदली? वही पोदनपुर था, वही सोम था, वही भरतेश था। चल दिये जंगल की ओर। भीतर का बोध हुआ, सो आत्मा का शोध हुआ। जब तक भीतर का बोध नहीं है, तब तक आत्मा का शोध संभव नहीं है। कीर्ति की खाई में मत डूब जाना। भैया! कभी मुनि बनने के भाव आयें तो सबसे पहले ख्याति, लाभ, पूजा का त्याग कर देना। यदि यश:कीर्ति तेरी होगी और तू कमरे के अंदर भी बैठा होगा, तो तेरा नाम वहाँ भी होगा। हल्ला करने की अवश्यकता नहीं है, सुगंध भरने की आवश्यकता है। हे ज्ञानी! धूपदान की धधकती अग्नि में धूप डालकर, ढक कर, घर के अंधेरे कोने में रख आना। आँख किसी की पहुँचे या न पहुँचे, परन्तु सुगंध सबकी नाक में पहुँच जायेगी। ऐसे-ही ज्ञानी! यदि तेरे पास यश:कीर्ति की सुगंध है, तो कितना ही कोई तुमको ढकना चाहे, छिपाना चाहे, वो छुपनेवाली नहीं है, वह तो प्रकट होगी ही। इसलिये यश की आकांक्षा मत करो, आप तो पुण्य की धूप बढ़ाओ। हमारे तीर्थंकर भगवन्त गये तो कहाँ पहुँचे? सम्मेदशिखर गये, पारसनाथ टोंक देखी, सुवर्णभद्र कूट पर गये, भगवान् चन्द्रप्रभ के ललितकूट को निहारा? आज तो

फिर भी साधन हैं जब तीर्थंकर भगवान् गये होंगे, क्या बियाबान घनघोर जंगल होगा। जो जगत् से परिचित होता है, वह स्व से अपरिचित हो जाता है और जो जगत् से अपरिचित होकर बैठता है, एक दिन ऐसा आता है कि विश्व परिचित हो जाता है। जो दुनियाँ को जानने की भावना रखता है, वह दुनियाँ को जान नहीं पाता है और जो दुनियाँ को भूलकर बैठ जाता है, वह केवली भगवान् बन जाता है। जो जानने को लेकर बैठता है, वह जान नहीं पायेगा। जो न-जानने को बैठ जायेगा, विश्वास रखो, वो नियम से सारे विश्व को, सारे द्रव्यों की सभी पर्यायों को जानेगा।

सबसे बड़ी भूल कषाय है। हे प्रभु! मेरे द्वारा कषाय के आवेश में आकर मोक्षमार्ग की विराधना हो गई हो, तो वह मिथ्या हो। स्वप्न में भी कभी जिनदेव की अवहेलना हो गई हो, स्वप्न में जिनवाणी की अवहेलना हो गई हो, जब तक लोचन खुले हैं, तब तक आलोचना कर लेना। लोचन बन्द हो गये, आलोचना नहीं कर पाये, तो नियम से दुर्गति होगी। इससे तीर्थंकर भी नहीं बचा पायेंगे आपको। भविष्य में ऐसा युग भी आयेगा कि कोई दिगम्बर मुनि कहने को भी नहीं मिल पायेगा। आनंद इस बात का है, हे परमेश्वर! आप हो या न हो, लेकिन आपकी मुद्रा नजर आ रही है, पंचमकाल का चमत्कार यही है।

पंचमकाल में किसी देवी-देवता के चक्कर में, चमत्कार में अपने आप को लुटाकर मत बैठ जाना, यदि पंचमकाल का कोई चमत्कार है तो। कलिकाल में चित्त चलायमान है, देह अन्न का कीड़ा बना हुआ है, ऐसे खोटे काल में भी अरहन्त की मुद्रा धारण करने वाले दिगम्बर नर दिखाई दे रहे हैं, यह पंचमकाल का चमत्कार है। 'नमोऽस्तु शासन' जयवन्त हो रहा है। न गंडा, न ताबीज, न अंगूठी, न मुद्रा। ये कुछ नहीं। सब अयथार्थ है, ढोंग हैं। दुनियाँ के शनिग्रह उतारने वाले से पूछ लेना, ज्ञानी! तूने कितनों को मालामाल कर दिया और तू बाल्टी लिए आज तक घूम रहा है। हमारे पंडित दुनियाँ के नवग्रह उतरवा रहे हैं। हे ज्ञानी! इन ज्योतिषियों से कह देना कि जब तुम सबके उतार देते हो, तो फिर रुपया क्यों माँगते हो? अपना क्यों नहीं उतार लेते हो? दुनियाँ के तन्त्र-मंत्र में डूबकर श्रद्धा के तन्त्र को मत छोड़ देना। सम्यक्त्व एक बार चला गया, तो मिलना बहुत दुर्लभ है, अत्यन्त दुर्लभ है।

"चत्तारि सरणं पव्वज्जामि, अरिहन्ते सरणं पव्वज्जामि, सिद्धे सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि, केवलीपण्णत्तो धम्मं सरणं पव्वज्जामि।"

बस, इनकी शरण में चले जाना जब तक व्यवहार में हो। निश्चय में पहुँचो तो 'अप्पा सरणं पव्वज्जामि।' मैं ध्रुवधाम ज्ञायकस्वभावी भगवान्-आत्मा की शरण में जाता हूँ। परंतु

जीवन में कभी भी दोष किया हो, निमेष मात्र काल भी दोष किया हो, तो भैया! प्रायश्चित लेकर ही जाना। निधत्ति, निकाचित कर्म का बन्ध, भगवान् भी नहीं छुड़ा पायेंगे। एकेन्द्रिय की रक्षा की बात कर रहे हो, लेकिन घर में पिजड़ों में पक्षियों को पाल रहे हो, घरों में कुत्तों को पालकर रखे हो, तो उनकी स्वतंत्रता का हनन कर रहे हो। सीता से पूछ लेना। कबूतर-कबूतरी को पृथक् करा दिया था, उसका बंध ऐसा हुआ कि सीता की पर्याय में पति का वियोग हुआ था।

मंदिरों के जितने ट्रस्टी बैठे हों, इन पदों के राग में आकर स्वपद को मत भूल जाना। कोई मंदिर के दर्शन करने आ रहा हो, आपने देख लिया, मंदिर बन्द करने का भी समय हो गया हो तो दर्शन कराके बन्द करना, लेकिन कर्म का बन्ध मत करना। बड़े-बड़े तीर्थों के ट्रस्टी जो मंदिर के द्रव्य पर दृष्टि रखे रहेंगे, उनके परिवार में वंश में कहीं आधे पागल, लंगड़े, कुष्ठी आदि मिल जायेंगे।

बड़े सम्भलकर रहना। ये देव, शास्त्र, गुरु अग्नि हैं। जब भी रोटी सिकेगी तो कहाँ सिकेगी? अग्नि पर सिकेगी। जब भी रोटी जलेगी तो कहाँ पर जलेगी? अग्नि पर जलेगी। फेरते रहोगे तो सिक जाएगी और स्थायी रख दिया तो जल जाएगी। ऐसे ही पंचपरमेष्ठि के पादमूल में आकर श्रद्धाभक्ति कर लेना, लेकिन उनको अपना मत बनाना और उनके बनके मत रहना। उनकी वन्दना मात्र करना, अपना नहीं बनाना। वह राग के स्थान नहीं हैं, वह भक्ति के स्थान हैं। उनके बनकर मत रहना। वे किसी के होते नहीं हैं, तो तुम्हारे क्या होंगे? समझो, ये ध्रुवसत्य है। भैया। क्यों महाराज पर भरोसा करता है? जिनने अपने जन्म देने वाले माता पिता को छोड़ दिया, तुझे क्या अपना बनायेंगे? उनकी वंदना करो, पर बंध मत करो। जितना समय मिले, वंदना में लगाओ।

सभी जिनालयों की वंदना कर लेना। क्या मालूम किस जिनबिम्ब को देखकर निज का बिम्ब झलक जाये, तो जिनबिम्ब गौण हो जायेगा, निजविम्ब प्रधान हो जायेगा। ताली पीटना भी अनुमोदना है। ये भी तुम्हारी कर्मनिर्जरा का साधन है। अन्दर में आह्लाद आता है। "तस्स मिच्छामि दुक्कडं" हे प्रभु! मेरे माध्यम से किसी जीव को कष्ट पहुँचा हो, किसी परमेष्ठी की अवहेलना हुई हो, तो "तस्स मिच्छामि दुक्कडं।" आचार्यभगवान् कह रहे हैं प्रतिक्रमण, प्रायश्चित। महाराज! प्रायश्चित दे दो। प्रायश्चित, ये कोई प्रसाद नहीं है। अन्दर में ये तो देखो कि तुमसे कोई दोष हुआ है, वह दोष तुमको महसूस हो रहा है कि नहीं? जिसको दोष महसूस होने लगेगा, वह पुनः प्रायश्चित लेने का पात्र ही नहीं बचेगा, क्योंकि एक बार वह प्रायश्चित ले लेगा, फिर दुबारा वह पाप करेगा ही नहीं।

चलो, हो जायेगा, ले लूँगा महाराज से प्रायश्चित, माला ही तो देंगे। ज्ञानी! तुझे माला दिख रही है, उस जीव के तो प्राण ही चले गये। चींटी खत्म हो गई, दे देंगे कायोत्सर्ग। एक क्षण तू चीटी बनकर तो देख। कैसे फड़फड़ा रही है वो? उसका तो जीवन खो गया। माँ! माँ कहलाती हो, मात्र जन्म देकर तू माँ बन गई तो कौन-सा बड़ा काम किया? वो तो चिड़िया भी बन जाती है। पिता! पिता कहला रहे हो, एक दो को जन्म दे दिया तो पिता बन गए। ये तो पशु-पक्षी भी देना जानते हैं। यदि जनक-जननी के परिणाम तुम्हारे हैं, तो सोचना चाहिये कि जगत् के पक्षी मात्र मेरी सन्तान हैं, मैं उनका सगा हूँ अतः मेरे से किसी जीव को कष्ट नहीं होना चाहिए। इधर भगवान् की पूजा चल रही है, उधर घर की दीवार में किसी ने ध क्का मार दिया तो गाली देने पहुँच गया। दीवाल की ईटें तो पुनः ठीक हो जायेंगी, पर विशुद्धि की दीवाल ठीक होने वाली नहीं। भवन गिर भी गया तो पुनः बन सकता है, पर विश्वास रखना, कोटि-कोटि द्रव्य के खर्च करने पर भी जो विशुद्धि के अंश तेरी आत्मा में जागृत हो रहे थे, उनका मिलना बड़ा दुर्लभ है। कोई व्यक्ति गरजने-बरसने आ जाय, उससे कह देना, तुझे जो चाहिये सो ले जा, परंतु मेरे अंतरंग में अशुद्धि मत फैला, क्योंकि मैंने भव-भव की तपस्या के प्रभाव से आज तक परिणाम विशुद्ध बनाये हैं। यदि तूने वो ही छीन लिये, तो मेरे पास कुछ भी नहीं बचा, मैं तो कंगाल हो गया।

हे श्रावको! योगियों के पास जब भी जाना, विशुद्धि की बात लेकर जाना। ये बेचारे तो बुद्धिपूर्वक सब छोड़ बैठे हैं। उन बेचारों के पास कुछ तो बचा नहीं है। कपड़े-लफड़े कुछ भी नहीं बचे। जिससे वो मुस्करा रहे थे, यदि वही तूने छीन लिया, तो अब उनके पास क्या बचा? निर्धन हो गये। तपस्वी के पास कोई वैभव है तो परिणामों की विशुद्धि मात्र है। यदि परिणामों की विशुद्धि नहीं आ पा रही है, तो वह तपस्ती भिखारी ही कहलायेगा। इसीलिए किसी योगी/मुनि के पास भीख माँगने मत जाना, कि कोई तंत्र-मंत्र, गंडा-ताबीज दे दो, समय दे दो। मुनि कैसे बनना पड़ता है? ये समझने के लिए समय ले लेना और कोई समय लेने मत आना। ये मुनि हैं, इनको मुनि ही रहने दो, इन्हें मुनीम मत बनाओ। आज विश्व की पवित्र मुद्रा दिगम्बर मुद्रा ही है। इससे पवित्र मुद्रा जगत् में अन्य कोई दृष्टिगोचर होती नहीं है। हजारों लोगों के होने पर भी ये ही भविष्य के सिद्धभगवान् हैं। इन शरीरों में अशरीरी को निहारो। घर में व्यक्ति रहता है, व्यक्ति 'घर' नहीं होता है। देह में आत्मा रहती है, आत्मा 'देह' नहीं होती है। "अशरीरी स्वरूपोऽहं"। आँखें बन्द कर चिंतन करो, मैं अशरीरी भगवान्-आत्मा हूँ। उपदेश किसलिए सुन रहा हूँ? मात्र अशरीरी होने के लिए सुन रहा हूँ। कितनी विधियाँ हैं? मौसम के अनुसार विधि बदलती है, वस्तु नहीं बदलती। जीवन में कभी मट्ठा बनते देखा है?

गोपिका मथानी से मट्ठे को मथ रही है। मक्खन निकालने के लिए पानी के छीटें मारती है। गर्मी में मक्खन निकालना हो तो शीतल पानी के छींटे मारती हो। शीत में मक्खन निकालने पर गर्म पानी के छीटें मारने पड़ते हैं। निकलता मक्खन है, पर समझो ध्यान की धारा। काल बदलता है तो कला बदलती है, लेकिन वस्तुव्यवस्था अभंग है, वह भंग नहीं होती। प्रायश्चित बदलता है। शीत-उष्ण काल को देखकरके प्रायश्चित बदलता है, छींटे बदलते हैं, लेकिन मथानी नहीं बदलती, मटकी नहीं बदलती, गोपिका नहीं बदलती। निन्दा, गर्हा नहीं बदलती। प्रायश्चित बदलता है, लेकिन निन्दा, गर्हा, आलोचना तो पूरी ही करनी पड़ती है। ऐसा नहीं है कि पंचमकाल को देख करके आलोचना में भेद आ गया हो। जैसे बेटा मार्ग में जो-जो देखकर आता है, अपनी माता से सबकुछ कह देता है। उसे मालूम है कि क्या कहना चाहिए और क्या नहीं कहना चाहिये। ऐसे-ही शिष्य वही है, जो अपने गुरु के चरणों में बालकवत् सबकुछ कह देता है। जिनने छिपाकर रखा, ऐसे तुम घोर-घोर तपस्या कर लोगे, पर समाधिमरण नहीं होगा। कितने ही उपवास कर लेना, नीरस कर लेना, घोर तपस्या कर लेना, लेकिन समाधि फिर भी नहीं होगी।

मार्ग कितना भी अच्छा हो, शरीर ठीक है, पर पैरों में काँच/काँटे घुसे हुए हैं, तो पग मार्ग पर अच्छे से नहीं रखे जाते हैं। मोक्षमार्ग पर चरण तेरा अच्छा नहीं है, क्योंकि तेरे अन्दर शल्य बैठी हुई है दोषों की। जब तक शल्य निकलेगी नहीं , तब तक तेरे परिणाम शुद्ध नहीं होंगे एवं परिणामो की शुद्धि के अभाव में समाधि होती नहीं। एक बात ध्यान रखना, किसी से ऋण लिया हो, देने के परिणाम हों, तो चुका देना। जिस जीव ने दोष होने के पहले ही सोचा था कि मैं अपने जीवन में निर्दोष चर्या का पालन करूँगा, वह शिष्य अपने गुरु से दोष छिपायेगा नहीं। जिसने शुरू से ही शुरू कर दिया कि किसी ने देखा नहीं तो ठीक है, इतना तो चलता है। मोक्षमार्ग भी कहता है कि जब तेरे अपराध चलते हैं, तो मेरा शुद्धमार्ग चलता है, अशुद्धों के लिए मेरे यहाँ कोई स्थान नहीं है। कुरूप को, कुबड़े को, निर्धन को राजकन्या वरमाला डालेगी क्या? उसे अपना पति चुनेगी क्या? जब कुरूप को राजकन्या नहीं चुनती है तो ज्ञानी! जिसका मन कुबड़ा/कुरूप हो चुका है, निन्दा/आलोचना से शून्य है, ऐसे पापी को मुक्तिकन्या क्या वरमाला डालेगी? मुक्तिकन्या की वरमाला चाहते हो तो मन को सुन्दर बनाओ। सुमन मत चढ़ाओ सु-मन चढ़ाओ। हे ज्ञानी! सुमन चढ़ाते-चढ़ाते ढेर लगा लिए, सु-मन बना लेता तो सुमन चढ़ाने की क्या आवश्यकता थी? सुमन नहीं बनाया।

साता का उदय है तो जंगल में मंगल है और असाता का उदय है तो भवन में अमंगल है। वैद्य मंत्र द्वारा विष को अमृत बना देता है। वैद्य कुचला (संखिया) को संस्कारित करके

उससे रोगों को दूर करता है। यद्यपि संखिया विष होता है, तथापि संस्कारों के माध्यम से वैद्य जहर को निर्विष कर देता है। ऐसे-ही मुमुक्षु जीव दोषों की निन्दा, गर्हा, आलोचना करके अमृतभूत कर लेता है और दोषों का शमन करके परमात्मा बन जाता है। स्वसाक्षीपूर्वक दोषों की आलोचना करना 'निन्दा' है। धिक्कार हो, दुनियाँ मुझे साधु कहती है, दुनियाँ मुझे महान् कहती है, मुझे श्रेष्ठ धर्मात्मा मानती है, पर मेरे परिणामों को किसने देखा? मुझसे बड़ा पापी कौन होगा?

बुरा जो देखन में चला, बुरा न मिलिया कोय।
जो दिल खोजा आपना, मुझसे बुरा न कोय॥

रावण के दोष दुनियाँ को मालूम चल गये, सो तुम उसका पुतला जला लेते हो। अपने मन से क्यों नहीं पूछते कि तुम पुतला जलाने के लायक हो क्या? काला चश्मा लगाकर आँखों की फूली को दुनियाँ की नजरों से बचा सकते हो, लेकिन स्वयं को मालूम होता है कि मेरी आँख में गड़बड़ी है। ऐसे-ही ऊपर से कितना भी दिखा लो, लेकिन स्वयं की आत्मा में गड़बड़ी है, सो है। जो है, सो है।

ज्ञानी! वीतराग भाव में लीन होकर अपनी आत्मा का कल्याण करना ही श्रेष्ठ है। जगत् के सभी प्रपंच आत्मा को कष्ट देने वाले हैं। इसलिए निजआत्मा में लीन होकर मोक्षमार्ग प्रशस्त करना।

"आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

॥ भगवान् महावीर स्वामी की जय ॥

❖ ❖ ❖

"सम्यक्त्वहीन साधु"

जे पावारंभरदा, कसायजुत्ता परिग्गहासत्ता।
लोयववहार पउरा, ते साहू सम्म उम्मुक्का॥ 104॥

ण सहंति इदरदप्पं, थुवंति अप्पाणमप्प माहप्पं।
जिव्हणिमित्तं कुणंति, कज्जं ते साहु सम्म उम्मुक्का॥ 105॥

अन्वयार्थ—(जे) जो **(पावारंभरदा)** पाप और आरम्भ में रत हैं **(कषायजुत्ता)** कषाय युक्त हैं **(परिग्गहासत्ता)** परिग्रह में आसक्त हैं **(लोयववहारपउरा)** लोकव्यवहार में बहुत निमग्न हैं **(ते साहु)** वे साधु **(सम्म उम्मुक्का)** सम्यक्त्व से रहित हैं।

जो **(साहु)** साधु **(इदरदप्पं)** दूसरों के बड़प्पन को **(ण सहंति)** नहीं सहते हैं **(अप्पाणं)** अपनी और **(अप्पमाहप्पं)** अपने माहात्म्य की **(थुवंति)** प्रशंसा करते रहते हैं **(जिव्हणिमित्तं)** जिह्वा के लिए **(कज्जं)** कार्य **(कुणंति)** करते हैं **(ते)** वे साधु **(सम्म उम्मुक्का)** सम्यक्त्व रहित हैं।

"पापी धर्मात्मा से द्वेष करता है"

चम्मट्ठि-मंसलवलुद्धो सुणहो गज्जदे मुणिं दिट्ठा।
जह तह पाविट्ठो सो धम्मिट्ठं दिट्ठा सगीयट्ठो॥ 106॥

अन्वयार्थ—(जह) जैसे **(चम्मट्ठि-मंसलवलुद्धो)** चर्म, अस्थि और माँस खण्ड का लोभी **(सुणहो)** कुत्ता **(मुणि)** मुनि को **(दिट्ठा)** देखकर **(गज्जदे)** भोंकता है **(तह)** उसी प्रकार **(पाविट्ठो)** जो पापी है **(सो)** वह **(सगीयट्ठो)** स्वार्थवश **(धम्मिट्ठं)** धर्मात्मा को **(दिट्ठा)** देखकर भोंकता है, कलह करता है।

॥ देशना॥

अंतिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेश की पीयूष देशना, जिनेन्द्र वाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है।

यह सर्वज्ञ शासन, नामोऽस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति।

आचार्यप्रवर कुन्दकुन्द स्वामी ग्रंथराज रयणसार जी में श्रमण एवं श्रावक के गुणों का युगपत् व्याख्यान करते हुए समझा रहे हैं।

ज्ञानियो! भगवान् कुन्दकुन्द स्वामी ऐसे काल में हुए जब उन्हें एक ओर तो वस्तुतत्त्व का व्यख्यान करना था, तो दूसरी ओर श्रमणों में बढ़ते शिथिलाचार का खण्डन भी करना था। भगवान् कुन्दकुन्द देव ने अलौकिक व्याख्यान किया है अपने ग्रन्थों में। ज्ञानियो! ध्यान दो, कुन्दकुन्द देव एक ऐसे आचार्य हुए जिनके पास साक्षात् तीर्थंकर देव की वाणी थी।

"धण्णा ते भयवन्ता", धन्य हैं ये धरती के देवता। जयवंत हो वीतराग शासन, नमोऽस्तु शासन। जयवंत हों आचार्य कुन्दकुन्द देव एवं उनका सत्-साहित्य। ज्ञानियो! इस भारत की भूमि पर कुन्दकुन्द देव, आचार्य जिनसेन स्वामी, आचार्य रविसेन स्वामी, आचार्य समन्तभद्र स्वामी, आचार्य अकलंक स्वामी, आचार्य विद्यानंद स्वामी, आचार्य नेमिचन्द्र स्वामी महान्-महान् आचार्य हुए हैं, जिन्होंने विपुल साहित्य लेखन करके जिनेन्द्र के सूत्रों को सुरक्षित रखा है।

ज्ञानियो! सबकुछ दे देना, परन्तु श्रद्धा नहीं देना। श्रद्धा ही पूँजी है हमारे जीवन की। ज्ञानी! यह मस्तिष्क देव-शास्त्र-गुरु के चरणों में तो झुकाना, लेकिन किसी कुलिंगी के सामने कभी नहीं झुकाना। ज्ञानियो! प्राण कल जाते हों तो आज चले जायें, चिंता नहीं करना, परन्तु हे भव्य! सम्यक्त्व के प्राण चले गये, तो फिर भव-भव में भटकना पड़ेगा। ज्ञानी! नाग डस ले तो कम कष्ट होता है, परन्तु यदि मिथ्यात्व का डंक लग जाये तो वह भवों-भवों तक कष्ट देता है। इसलिए ज्ञानी! समकित-रस का पान करो।

सम्यग्दर्शन की महत्ता बताते हुये आचार्यभगवान् समन्तभद्र स्वामी कह रहे हैं कि—

दर्शनं ज्ञानचारित्रात्साधिमानमुपाश्नुते।

दर्शनं कर्णधारंतन्मोक्षमार्गे प्रचक्षते॥ 31 र.क.श्रा.॥

सम्यग्ज्ञान और चारित्र की अपेक्षा सम्यग्दर्शन उत्कृष्टपने को प्राप्त होता है, इसलिये सम्यग्दर्शन को मोक्षमार्ग में खेवटिया के समान कहा जाता है।

ज्ञानियो! जैसे अनेक शून्य हों और उनके आगे अंक न हों, तो क्या मूल्य है? वैसे ही कितनी ही साधना करना, कितना ही उत्कृष्ट तप करना, उपसर्ग सहन करना, परन्तु यदि सम्यक्त्व नहीं है, तो साधना भी संसारभ्रमण का ही कारण बनेगी।

भगवान् कुन्दकुन्द देव कह रहे हैं "जे पावारंभरदा कसायजुत्ता" जो पाप और आरम्भ में रत हैं, कषाय युक्त हैं "परिग्गहासत्ता" परिग्रह में आसक्त हैं "लोयववहार पउरा" लोक व्यवहार में बहुत निमग्न हैं "ते साहू सम्मउम्मुक्का"वह साधु सम्यक्त्व से रहित हैं।

ज्ञानी! ध्यान दो, यह अहंकारभाव है कि मात्र मैं ही साधु हूँ, अन्य दूसरा कोई साधु नहीं है। यदि कोई साधक ऐसा कहता है कि कोई मुनि नहीं है पंचमकाल में, तो ज्ञानी! उससे कहना कि पहला मिथ्यादृष्टि तू ही है, क्योंकि पंचमकाल के अंत तक इस धरती पर नमोऽस्तु शासन, श्रमण-संस्कृति ऐसे ही जयवंत होती रहेगी। पंचमकाल के अंत तक भावलिंगी वीतरागी तपोधन, धरती के देवता इस भारत की वसुन्धरा पर विचरण करते रहेंगे। ज्ञानी! पुण्य के उदय में अहंकार मत करो, क्योंकि सबके दिन एकसे नहीं होते हैं।

नाङ्गहीनमलं छेत्तुं दर्शनं जन्म सन्ततिम्।
न हि मन्त्रोऽक्षरन्यूनो, निहन्ति विषवेदनाम्॥21 र.क.श्रा.॥

हे ज्ञानी! जैसे अक्षर हीन मंत्र विष की पीड़ा को नष्ट नहीं करता है, उसीप्रकार अंगहीन सम्यक् दर्शन जन्मों की लगार को, परम्परा को नष्ट करने में समर्थ नहीं होता है।

ज्ञानियो! एक-एक तंतु जुड़कर ही वस्त्र बनता है, एक-एक बूँद एकत्रित होकर सरोवर भरता है, परन्तु एक धागे को कोई वस्त्र नहीं कहता है, एक-एक बूँद को कोई सागर नहीं कहता है वैसे ही एक-एक मोक्षमार्ग नहीं, अपितु सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चारित्र तीनों की एकता ही मोक्षमार्ग है। ज्ञानी! एकाक्षी मत बनना।

भयाशास्नेह लोभाच्च, कुदेवागमलिङ्गिनाम्।
प्रणामं विनयं चैव, न कुर्युः शुद्धदृष्टयः॥30 र.क.श्रा.॥

हे ज्ञानी! शुद्ध सम्यग्दृष्टि जीव भय, आशा, प्रेम और लोभ के वशीभूत होकर कुदेव, कुशास्त्र, कुगुरुओं को नमस्कार नहीं करता और न ही मिथ्यात्व की विनय करता है।

"अप्पाणं अप्पमाहप्पं" जो साधु (श्रमण) मात्र अपनी और अपने माहात्म्य की ही प्रशंसा करते रहते हैं, दूसरे के गुणों को गौण करते हैं, ऐसे श्रमण "सम्मउम्मुक्का"। ओ हो! कुन्दकुन्द देव ने क्या कह दिया है? यह आज के श्रमणों को पढ़ने की आवश्यकता है। "सम्मउम्मुक्का" वह श्रमण सम्यक्त्व से शून्य है।

ज्ञानियो! आपको पता है बाली कौन थे? पूर्वजन्म में बाली एक हिरण था। जंगल में विचरण कर रहा था। वहीं एक मुनिराज जिनवाणी का अत्यन्त सुरीले कण्ठ से पाठ कर रहे थे। वह हिरण प्रतिदिन समय पर आकर जिनवाणी के पाठ को सुनता था। उस जीव ने नियोग से ऐसे प्रबल पुण्य का बंध किया कि वही मृग का जीव बाली मुनिराज हुआ, जिसने कैलाश पर्वत पर स्थित मंदिरों की एवं जीवों की रक्षा की। इसलिये जब भी पाठ करना, अच्छे से

करना। बारह भावना, वैराग्य भावना, मेरी भावना आदि पाठ इसलिये हैं कि आपके प्रशस्त परिणमन से, शब्द वर्गणाओं से दूसरे भी प्रभावित हों।

मन, वचन, काय इन तीनों को एक करके निज स्वरूप में लीन हो जाना, इसका नाम सामायिक है। आप लोगों ने सामायिक का अर्थ लगा लिया माला फेरना, पाठ करना। ये यथार्थ में सामायिक नहीं, शुभ भावना है। यथार्थ सामायिक तो निज आत्मश्रद्धा का नाम है। जब तक जीवन में समता भाव नहीं आया, तब तक जीवन में कोई सामायिक नहीं, शुभ भावना है। यथार्थ सामायिक तो निज आत्मश्रद्धा का नाम है। जब तक जीवन में समता/साम्य भाव नहीं आया, तब तक जीवन में कोई सामायिक नहीं। आर्त्त-रौद्र परिणामों के अभाव होने का नाम सामायिक है।

सभी प्राणियों में समता होना सबसे कठिन है। माँ बनना। माँ का हृदय होगा तो सबको बेटे-जैसा देखेगी। माँ बनने से कठिन महात्मा बनना है। माँ को तो मात्र अपना उत्पन्न किया बेटा ही दिखता है, परन्तु महात्मा को तो एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक के सभी जीव बेटे दिखते हैं। जिस दिन महात्मा बन जाओगे, उस दिन से भेददृष्टि तेरे अन्दर से पलायन कर जायेगी।

मात्र कपड़े उतारना महात्मापना नहीं है। कपड़े उतारना साँप की केंचुली उतारने के समान है। कषाय उतर जाये, यह साँप के जहर की थैली निकलने के समान है। कपड़े उतारकर फेंक भी दिये, परन्तु तुम्हारे मन में भाव कलुषित हो रहे हैं, तो ज्ञानी! जिनमुद्रा को प्राप्त करके भी जिनरूप प्राप्त नहीं कर सके, तो तूने जीवन में क्या किया?दुःख लगता है, यथार्थ मानिये, बड़ा कष्ट भी होता है। जो भी त्यागी बनें, वे समाज, धर्म और गुरु पर लक्ष्य रखें। अगर तू श्रेष्ठ साधु बन गया, तो ये समाज मुस्करायेगी और कहेगी कि ये मेरे नगर के महाराज हैं और ज्ञानी! जरा भी गड़बड़ हुआ, तो तेरा सगा भाई भी नाम लेने को नहीं आयेगा। यह मोक्षमार्ग है। आप विश्वास मानना, जो आन्नद अपने बेटे की प्रशंसा में नहीं आता, वो गुरु की प्रसन्नता में आता है। ये समाज मुस्कराती है। बस, भैया! तुम कुछ कर सको या नहीं, लेकिन समाज तुम्हारे नाम पर मुस्कराती रहे, इतना काम कर देना।

मनीषियो! आचार्यप्रवर कुन्दकुन्द स्वामी अन्तस् की भावना को उद्घाटित करते हुए समझा रहे हैं- साधु को साम्य, सुशांत होना होगा। साम्य हुए बिना सामायिक नहीं होती। सामायिक हुए बिना समाधि नहीं होती और समाधि हुए बिना निर्वाण नहीं होता। निर्वाण की सिद्धि चाहिये तो तुम्हें सामायिक करना पड़ेगी। सामायिक की सिद्धि चाहिये तो पहले साम्यबुद्धि चाहिये, पानी-जैसा परिणमन चाहिये। भूमि चाहे गहरी हो या उथली हो या संकीर्ण

हो, कँकरीली हो, समतल हो या गड्ढे हों, लेकिन पानी जब भी बहता है सम होकर ही बहता है। कितनी ही चट्टानें पड़ी हुई हों, गड्ढे हों लेकिन जब भी पानी बढ़ता है तो गढ्ढे को भरकर ही आगे बढ़ता है। वैसे-ही सामायिक करनेवाला जीव अपने अन्तस्तल में किसी प्रकार के गर्त को स्थान नहीं देता, गड्ढे को स्थान नहीं देता है। रौद्र परिणाम में साम्यभाव कहाँ? और साम्य भाव के अभाव में सामायिक कहाँ?

ज्ञानी! किसी पर करुणा हो या न हो, किसी पर दया हो या न हो, लेकिन अपने परिणामों पर दया होना चाहिये। वह पुरुष मेरे सामने नहीं है और उस जीव के प्रति हमारे अशुभ परिणाम आ जायें। हो सकता है उसे मालूम ही नहीं हो कि मेरे बारे में कौन क्या सोच रहा है? वह तो तन्मय होकर भगवान् की आराधना में लीन है और सोचने वाला बेचारा झुलस रहा है, दहक रहा है। पर का घात हो या न हो, परन्तु पर के घात का चिन्तवन करनेवाला स्वघाती नियम से होता है। समझ में आ रहा है? पर का घात तेरे द्वारा नहीं होता है। उसके परघात नामकर्म का उदय है, तो ही तेरे द्वारा पर का घात हो सकता है और उसका परघात नामकर्म का उदय नहीं है, तो उसे तोप के गोले के सामने भी खड़ा कर दिया जायेगा, तो तोप का गोला भी ठंडा हो जाएगा। उसका बाल-बाँका नहीं हो सकता है। तीर्थंकर वर्द्धमान के महान्-भक्त दीवान की सम्राट के सामने किसी ने आलोचना कर दी। सम्राट ने बोल दिया कि तोप के गोले से नष्ट कर दो, लेकिन तोप का गोला ही नष्ट हो गया।

ज्ञानी! वार तो किया जा सकता है, परन्तु मरण नहीं कराया जा सकता है। वार करना, ये तेरी कषाय है। आप वार कर पाओगे, मार किसी को नहीं पाओगे, विश्वास रखना। कर्म की 148 प्रकृतियों का जीव को ज्ञान हो जाये, ज्यादा तत्त्वबोध न भी हो, तो काम चलेगा। नामकर्म की 93 प्रकृतियाँ हैं। उन प्रकृतियों को पिण्डरूप में, अपिण्डरूप में समझ लेता तो आज बिलखना न पड़ता। आज सारे विश्व को 'तत्त्वार्थ सूत्र' पढ़ने की आवश्यकता है। ज्ञानी! विश्वास रखना, आज छल-कपट करके तिर्यञ्च आयु का बन्ध तो कर पाओगे, परन्तु छल-कपट से सिंहासन को प्राप्त नहीं कर पाओगे, इसमें शंका मत करना। पुनः कहता हूँ, ज्ञानी! अहित भी करना चाहेगा तो किसी का नहीं हो सकता और तू हित भी करना चाहेगा तो किसी का नहीं हो सकता। जिसका तू हित करना चाहता है, उसका भी पुण्य चाहिये। यदि पुण्य नहीं है, तू उसको कोटि-कोटि द्रव्य भी दे देगा, लेकिन डाका पड़ जायेगा। यदि तेरा पापोदय नहीं चल रहा है, पुण्योदय चल रहा है, तो विश्वास रखना, कोई तुझ पर अंगारा फेंकेगा तो तेरे पुण्य के प्रभाव से वो फूलमाला बनेगा।

धर्म के प्रभाव से अग्नि हिम हो जाती है और कालिया नाग भी फूलों की माला बन जाता है। महासती सीता को देखो। हे श्रीराम! आपने सीता को अग्निकुण्ड में प्रवेश कराया था, आप अग्निकुण्ड में प्रवेश तो करा सकते हो, परन्तु अग्नि में जला नहीं सकते हो। जलता पाप है, चमकता पुण्य है। सब लोग सोच रहे थे कि अब सीता कहाँ मिलेगी? इतना विशाल कुण्ड हो और उस कुण्ड में इतनी प्रचण्ड अग्नि जल रही हो। लक्ष्मण, राम, सब निहार रहे थे। लव-कुश देख रहे थे। बिलख रहे थे वो दोनों लाल कि अब मेरी माँ मिलनेवाली नहीं है, वो तो भस्म हो जायेगी। परन्तु किट्टिमा जल जाती है और सोना निखर आता है। राम! आप भूल गये थे कि कौन किसका बालबाँका कर पायेगा?

भैया! शील में ताकत है। सील बन्द है, तो विश्वास सारे जगत् में है। सील खुल गई, तो विश्वास निकल गया। जितना भगवान् पर विश्वास है, उतना स्वयं पर विश्वास जिस दिन हो जाएगा, उस दिन तू ही भगवान् हो जायेगा। परमात्मा पर विश्वास करने से स्वर्ग मिलता है, लेकिन स्वयं पर विश्वास करने से शिव मिलता है। सीता को विश्वास था। उसने ये नहीं कहा-हे अग्नि! हे देव ! हे राम! मुझे बचाओ। पंचपरमेष्ठि का स्मरण करके सीता कहती है, हे अग्नि! यदि मेरे शील में दोष हो, तो ध्वस्त कर देना। वह डाली गई तब अग्नि कुण्ड था, लेकिन सरोवर स्थित खिले हुये कमल पर प्रकट हुई।

सोमा की सासू ने कालिया नाग रख दिया था और वो कालिया नाग हार बनके निकलता है। दुनियाँ में कहीं भी चले जाना, अपने चारित्र को पवित्र रखना, अपनी परिणति को पवित्र रखना। जगत् में काँटों की बाड़ी भी लगी होगी तो वो तेरे लिये पुष्पों का द्वार बन जायेगा, शत्रु के घर में भी सम्मान मिलेगा। यदि संयम क्षत-विक्षत हो चुका है, तो स्वयं के घर में भी अपमान मिलेगा। गुटखा खाने वाले पिता का सम्मान पुत्र नहीं करता। मदिरा की बोतल ढालने वाले पिता को बेटा भी देखना पसन्द नहीं करता।

जिसका पुण्य बलवान है, उसके लिये कालिख लेकर तुम दौड़ोगे तो फिसलकर गिर जाओगे, तेरा हाथ ही तेरे चेहरे पर चला जायेगा, तेरा ही चेहरा काला हो जायेगा, लेकिन पुण्यवान् के चेहरे को काला नहीं कर पायेगा। बाहुबल मत देखना, सैन्यबल मत देखना। बल देखना हो तो मात्र पुण्य का बल देखना। नारायण श्रीकृष्ण को मारने के लिये कंस ने कितने उपक्रम किये? पूतना को आंचल में जहर लगाकर भेज दिया और कहा कि आंचल का पान करा कर आओ। हे कंस! तू जहर लगवा सकता है, परन्तु मरण नहीं करवा सकता है। पुण्यात्मा के मुख में जहर भी अमृत हो जाता है।

भो ज्ञानी! राग ही कर पायेगा, द्वेष ही कर पायेगा, परन्तु कर किसी का कुछ नहीं पायेगा। तू राख ही हो जायेगा। जीवन में ये सूत्र हमेशा याद रखना जगत् में नाना जीव व अजीव हैं। सबको देखो, जानो और जाने दो। तुम किस-किस के साथ जाओगे? मेरी आत्मा का धर्म दुनियाँ के साथ जाना नहीं है। मेरा तो ज्ञायकस्वभाव है। 'देखो, जानो, जाने दो'— इतना सीख लेना। घर में उपद्रव हो जाये, विसंवाद हो जाये तो कहना, 'देखो, जानो, जाने दो,' क्यों समय बर्बाद कर रहे हो? हे माँ! तूने ये सूत्र हृदय में उतार लिया तो तेरा घर आज से ही स्वर्ग बन जायेगा। यह ध्रुव सत्य है कि दुनियाँ के बारे में सोचोगे तो विकल्प होंगे। अपनी शांति व साता को पास में रखना है तो दुनियाँ के बारे में मत सोचो।

कौन क्या कहता है? कौन क्या बोलता है? ज्ञानी! देखो, जानो, जाने दो। क्योंकि कण-कण स्वतंत्र है। जब तेरी आत्मा स्वतंत्र है, तो दुनियाँ के टेंशन क्यों पालूँ? सामायिक करना है तो पहला सूत्र- 'देखो, जानो, जाने दो', क्योंकि सामायिक में दुनियाँ को लेकर बैठ जाओगे तो सामायिक कब कर पाओगे? सामायिक के पूर्व दुनियाँ के सारे संपर्क दूर कर दो, क्योंकि जगत् से संपर्क रखोगे तो जब फुर्सत में रहोगे तो वही-वही सामने आयेगा। वैद्य भी एक रोगी को देखने के बाद थोड़ा ठहर कर दूसरे रोगी को देखता है। मैंने पूछा, वैद्यजी! ऐसा क्यों करते हो? अभी मैं जिसको देख रहा था, वो मेरे ज्ञान में ज्ञेय बना था, उसका रोग मेरे अन्दर गूँज रहा था। तुरंत दूसरे को देखूँगा तो ज्ञान मिश्र बन जाएगा, मालूम ही नहीं चलेगा कि किसको क्या हुआ? हे ज्ञानी! व्यवहार से, लोकाचार से तो आप मेरे हो, परन्तु मेरी आत्मा के अंशमात्र भी नहीं हो। मेरी आत्मा तो शाश्वत एक अखण्ड है। संसार के बंध के साधनों के साधन हो आप। ये चेला, चेली जब बंध के साधन हैं, तो पुत्र, स्त्री, बेटा, बेटी आदि ये मोक्ष के साधन कैसे हो जायेंगे? आचार्य महाराज को भी अपने आचार्य पद का विसर्जन करना पड़ता है और चेला-चेलियों का राग छोड़ना पड़ता है। चेला-चेली का राग भी बन्ध का ही कारण है।"न शिष्यो गुरुर्नापि हीनं न दीनं, चिदानन्दरूपं नमो वीतरागम्।"

मैं हीन हूँ, मैं बाल हूँ, आदि विकल्प भी आत्मा का ध्रुवधाम नहीं है। एकमात्र चिदानन्द चैतन्य स्वभाव आत्मा का शुद्ध स्वभाव है।

ज्ञानी! अचानक निधि मिल जाये तो तिजोरी में बन्द करके छिप-छिपकर देखता है और घर के बाहर चबूतरे पर भी बैठा रहता है, तब भी निधि दिखाई देती है और मुदित होता रहता है। इसी प्रकार जो जीव अपनी निधि भूला था, जब निज निधि का बोध हो जाता है, तो शान्ति का बोध करने लगता है।

ज्ञानियो! मैत्री का अर्थ किसी के घर जाकर भोजन करना नहीं है। किसी के जूठे पत्तल में खाना नहीं है। किसी से गले मिलना नहीं है। किसी के हाथों को रगड़ देना नहीं है। मैं तेरे बेटे की शादी में खर्च करता हूँ, तू मेरे बेटे की शादी में खर्च कर देना, इसका नाम मैत्री नहीं है। तो मैत्री क्या है? मैत्री है, तो एकेन्द्रिय में भेद नहीं दिखेगा। जगत् के प्राणीमात्र को दुःख न हो, ऐसे परिणाम मन में होना, इसका नाम मैत्री है।

भैया! जीवन में ध्यान रखना, यदि अपने जीवन में एक भी जीव को तू जीवनभर शत्रु मानता है तो मुनि ही नहीं, महान् आचार्य भी बन जायेगा तो भी साम्यभाव का अभाव है। सामायिक तभी होगी, जब तेरा सोच 'शौच' हो जायेगा। जिसका सोच शौच नहीं है, उसके पास समता किंचित् भी नहीं है। कल्पना कीजिये, क्रियारूप धर्म कितना फलित हो रहा है और धर्मभूत धर्म कितना फलित हो रहा है? किसी को धर्मात्मा देखते हो तो उसे अपने पक्ष का बनाने का पुरुषार्थ प्रारम्भ कर देते हो। वह बेचारा धर्म का आनन्द लूट रहा था, उसे आपने आकरके पक्ष में डाल दिया, उसका धर्म भी नष्ट कर दिया।

बहते पानी में चाहे पीला रंग मिलाओ चाहे नीला रंग मिलाओ, दिखने में तो अच्छा लगेगा, लेकिन पानी की वास्तविकता/ सत्यता का तो अभाव किया ही है। चाहे किसी को मित्र बना लो, चाहे किसी को शत्रु बना लो, मित्र या शत्रु बनाकर आपने दोनों स्थितियों में उसकी पवित्रता का नाश कर दिया। मित्र नहीं बनाना चाहिये था, मैत्री होना चाहिये थी।

हे माँ! घर में सासू को गाली देकर आई हो, बहू को पीटकर आयी हो और भगवान् से कह रही हो, 'मैत्रीभाव जगत् में मेरा, सब जीवों से नित्य रहे।' धन्य हो माँ! तेरे लिये। यदि सब जीवों से मैत्रीभाव है, तो बहू कौन तुम्हारी दुश्मन थी? वह भी एक जीवद्रव्य है। सत्य है ना? आज घर जाकरके बहू के पैर छू लेना। नहीं है ताकत तो तुम्हारा सब धर्म ढोंग का है। ऐसी कौन बहू होगी जो सासू से पैर पड़वायेगी, तुम छू के तो देखना? लेकिन आप पैर छुओगे तो ये विश्वास रखना कि तुम्हारे घर का वातावरण परिवर्तित हो जाएगा। कितना ही कषायी हो, उस पर झुक जाओ, तो वह अपने आप ठण्डा हो जाता है।

ज्ञानियो! मंदिरों की संख्या बढ़ रही है, श्रीजी की संख्या बढ़ रही है, साधुओं की संख्या बढ़ रही है, साध्वियों की संख्या बढ़ रही है, लेकिन साम्यभावियों की संख्या घट रही है। इसका कारण यह है कि हम बहिरंग की बातों पर जोर दे रहे हैं, अंतरंग पर लक्ष्य नहीं जा रहा है। एक करोड़ मंदिर स्थापित कर देना कठिन नहीं है, क्योंकि मंदिर स्थापित करने में तेरा कुछ भी नहीं जाता है, वह तो द्रव्य का पररूप परिणमन करा रहा है, लेकिन प्राणीमात्र में मित्रता रखना, ये निज के परिणामों की परिणति है और मंदिर बनाना बहिरंग परिणति है।

हे श्रावको! ध्यान रखना जीवन में, निर्ग्रन्थों को निर्ग्रन्थ बनकर रहने देना, उनको भोगी बनने में निमित्त न होना। तुम्हारे नगर में आयें, तब उनकी साधना में सहयोग तो करना, लेकिन ज्ञानी! विराधना में सहयोग मत करना। ये कूलर, पंखे ये योगियों का काम नहीं है। पंचमकाल में आप पर्वत पर नहीं बैठ सकते हो, लेकिन शांति से कमरे में बैठो। भैया! न ऐसी मन की प्रवृत्ति करना, न ऐसी वचन की प्रवृत्ति करना, न ऐसी काय की प्रवृत्ति करना जिससे किसी प्राणी को दु:ख हो। समता भाव है, तो विश्वास रखना, चौबीस घंटे साधु के रूप में निकलेंगे। एक बार भोजन करके दिन भर निकाल लेते हो कि नहीं? एक बार पुद्गल के टुकड़े को खाकरके दिनभर आप ऊर्जा को प्राप्त कर लेते हो। ऐसे-ही ज्ञानी! समताभाव करोगे तो दिन भर शक्ति का संचार होगा। सम्यक्त्व के साथ की गई साधना ही भव से पार करने में साधन बनेगी। जो शक्ति ध्यान में है, वह शक्ति जगत् में कहीं नहीं है। दुनियाँ के तीर्थों में, दुनियाँ के मंदिरों में जाने की आवश्यकता नहीं है। यदि एक मिनट को ध्यान लग गया, तो विश्वास रखना, आपने अनंतगुणी कर्म की निर्जरा कर ली।

ज्ञानी! गुणीजनों को देख करके प्रमुदित भाव हो जाना। नगर में कोई ज्ञानीजीव, विद्वान्, त्यागी, ऋषि, यति, मुनि, अनगार आयें, तो जैसे सूर्यमुखी फूल सूर्य के उगने के साथ-साथ खिलता है, ऐसे-ही सम्यग्दृष्टि जीव खिल जाता है, परन्तु अज्ञानी पापीजीव चमगादड़ के समान होता है, दिवांध। चमगादड़ सूर्य के उदित होने पर किसी अंधेरे कमरे में जाकर उल्टा लटक जाता है। जिस जीव को तिर्यञ्च आयु का बन्ध हो चुका है, वह धर्म और धर्मात्मा को देखकर उल्टामुख लटक जाता है। जिस जीव की स्वर्ग की तैयारियाँ चल रही हैं, वह परमात्मा के सम्मुख आकर नमन करने खड़ा हो जायेगा। 'गुणीजनों को देख हृदय में प्रेम उमड़ आवे।' हे भगवान्! क्या विष्णुकुमार अब पुराणों में ही मिलेंगे या कि पंचमकाल में कोई मुनि विष्णुकुमार के रूप में दिखाई पड़ेंगे? विष्णुकुमार मुनिराज सातसौ योगियों के उपसर्ग को दूर करने आ गये, लेकिन आज तो ज्ञानी! कोटि-कोटि जीवों का बध कर रहे हैं, वे ही लोग आज हमारे कार्यक्रमों में फीता काटने आते हैं, ध्वजारोहण करने आत हैं।

हे ज्ञानी! अब भूल जाओ इस बात को कि "जीके राज में रहियो ऊकी जैसी कहिओ, ऊँट बिलइया ले गई, तो हाँजू हाँजू कहियो।" मालूम, ऐसा युग चल रहा है। किसको मालूम नहीं है कि ऊँट को बिल्ली ले जा सकती है क्या? लेकिन तब भी भैया! जगत् की लीला ऐसी है कि जिसके राज में रहना, उसके-जैसी कहना पड़ती है। ध्रुव सत्य तो ये है कि हाँजू हाँजू कह लोगे, परन्तु सत्य तो सत्य ही होता है। सत्य को आवृत किया जा सकता है, सत्य को ढँका जा सकता है। सूर्य को मेघ आच्छादित कर सकते हैं, परन्तु नष्ट नहीं कर सकते हैं। हे मेघो! वायु चलेगी, तुम तो उड़ जाओगे, लेकिन सूर्य वैसे का वैसा है। इस बात को

आज से भूल जाना 'जीके राज में रहियो ऊके जैसी कहियो'। वह नहीं कहना हमको। जो जिनवाणी कह रही है, वह कहना है। राज किसी के नहीं बचे। राजा अनेक हो गये। स्वतंत्र भारत में कितने प्रधानमंत्री बदल गए? बदले ना? परन्तु संविधान तो वही है ना? ऐसे-ही ज्ञानियो! मैं तीर्थंकर भगवन्त से भी कह सकता हूँ, भगवन्! आप बदल सकते हो। तीर्थंकर पद शाश्वत है पर तीर्थंकर पुरुष शाश्वत नहीं है, उसका भी निर्वाण होता है। आप बदल जाओगे, लेकिन तीर्थंकर के शासन के संविधान को बदलने कोई नहीं आयेगा। पाँच महाव्रत शाश्वत हैं, पाँच समितियाँ शाश्वत हैं, तीन गुप्तियाँ शाश्वत हैं, तेरह प्रकार का चारित्र शाश्वत है। कोई भी तीर्थंकर नहीं बचे, कोटि-कोटि तीर्थंकर हो चुके हैं। आपको कितनों के नाम मालूम हैं? चौबीस। बहुत हुआ तो भूत, भविष्य, वर्तमान के नाम याद हो जायेंगे, लेकिन ज्ञानी! अनंतानन्त चौबीसियाँ हो चुकी हैं, उनके नाम मालूम हैं क्या? जब तीर्थंकर-जैसे पुण्यात्मा जीव का नाम नहीं दिखाई देता, तो विशुद्धसागर का नाम कहाँ चलनेवाला है?

इस बात को भूल जाओ। ये अंदर की अज्ञानता ही है कि मेरा नाम चलेगा। मेरा नाम ही नहीं है तो मेरा काम क्या चलेगा? जिसका नाम है, वह देहाश्रित है। जो देह है, वह पौद्गलिक है, वह ध्वस्त हो जायेगी। जो मैं हूँ, वह मैं ही हूँ। मैं क्या हूँ ?जो हूँ, सो हूँ। मेरा कोई नाम नहीं है, ये तो आचार्य विरागसागर जी द्वारा दी गई संज्ञा है। मैंने तो इसी पर्याय में नाम बदलते देखा। ज्ञानी! जब इस पर्याय में एक नाम नहीं बचा, तो अनन्त भव के क्या नाम बचेंगे? जब रागियों के बीच में था, तब कोई दूसरा नाम लेता था। जब आचार्य विरागसागरजी के पास आये, तो ब्रह्मचारी बनके आ गये। थोड़े और रहे तो क्षुल्लक यशोध रसागर बनकर आ गये। और दिन बीते तो एलक बन गए। दिन बीतते-बीतते मुनि विशुद्धसागर बन गए। पहले राग था यशोधरसागर से, फिर विशुद्धसागर से। वे यशोधर सागर कहाँ—चले गए? जब एक पर्याय में मेरा नाम शाश्वत नहीं, तो अनन्त भवों में मेरा नाम कहाँ बचने वाला है? ये मात्र पागलपन है कि मेरा नाम रहेगा। दी गई संज्ञायें शरीर की हैं, संज्ञान नहीं है, परन्तु बेचारे तो इस बात पर पागलपन कर रहे हैं कि मेरा नाम चलेगा।

ज्ञानी! वस्त्र उतारना भी बहुत कठिन, तप करना भी कठिन, परीषह सहन करना भी कठिन, ज्ञानी! जिनप्रव्रज्या धारण करना अत्यन्त कठिन है। नग्न मुद्रा, दिगम्बर भेष, पिच्छि-कमण्डलु धारण करना, यह तो मात्र बाह्य भेष है; परन्तु ज्ञानी! यह निर्वाण का साधन नहीं है। सम्यक्त्व के साथ रत्नत्रय की साधना होती है, वही निर्वाण का हेतु है। सम्यक्त्व-शून्य साधना हे ज्ञानी! मात्र श्रम ही है, परन्तु सुख नहीं है और न ही सुख का साधन है।

ज्ञानी! ध्यान दो, कर्म का भी नोकर्म होता है, यह समझो। यह वीतराग शासन है, नमोऽस्तु शासन है। ज्ञानी! तीर्थंकर की मुद्रा को धारण करके भी यदि परिणामों में विशुद्धि नहीं आ

रही है, भोगों में परिणति जा रही है, कषायों में वृद्धि हो रही है, वैरागियों को देख कर द्वेष-भाव आ रहा है, संयम के प्रति अरुचि हो रही है, गुरु के प्रति विद्रोह के भाव आ रहे हैं, साधर्मियों, गुरु-भाइयों को देखकर द्वेषभाव/ईर्ष्याभाव आ रहा हो, तो ज्ञानी समझ लेना कि दुर्गति में जाना निश्चित हो गया है।

ज्ञानी! उपकारी के उपकार को कभी भी नहीं भूलना चाहिये। एक अक्षर का उपदेश देने वाला भी उपकारी होता है। इस भूमि पर यदि कोई सबसे बड़ा पापी है, तो वह उपकारी के उपकार को भूलकर उपकारी का अपकार करने वाला है। ओ हो! जिस गुरु ने तुम्हें शिक्षा दी, दीक्षा दी, साधना की डगर दी, मोक्ष का पथ दिया, ऐसे भगवान्-जैसे गुरु का अनुपकार करने वाला, गुरु से ईर्ष्याभाव/द्वेष-भाव रखने वाला नियम से मिथ्यादृष्टि, संसार में भ्रमण करने वाला, जिन-शासन, नामोऽस्तु-शासन का विराधक है। ऐसा कलुषित मन वाला साधु-भेष में रहते हुये भी साधुत्व से शून्य है। मिथ्यादृष्टि है।

आचार्यभगवान् कुन्दकुन्द स्वामी कह रहे हैं कि- "सुणहो मुणि दिट्ठा गज्जदे" जैसे श्वान श्रमणों को देखकर भोंकता है, उसी प्रकार "पाविट्ठो सो सगीयट्ठो धम्मिट्ठं दिट्ठा" जो पापी हैं, कालुष्य-हृदय हैं, दीर्घसंसारी हैं, कलहप्रिय हैं, वह स्वार्थवश धर्मात्मा को देखकर कलह करता है।

ज्ञानी! समझो, जैसे चर्म का लोभी, माँस का इच्छुक श्वान दिगम्बर वीतरागी तपोधन मुनिराज को देखकर भोंकता है, उसी प्रकार जो दीर्घसंसारी हैं, अशुभ गतियों का पात्र जीव धर्मात्माओं को देखकर भृकुटियाँ चढ़ाता है, द्वेष करता है, कटुवचन बोलता है।

ज्ञानी! भव्यजीव धर्मात्मा को देखकर आनंदित होता है। सम्यक्-दृष्टि जीव धर्मात्मा को आते देखकर प्रफुल्लित होता है, साधुओं की विनय करता है, उनकी यथायोग्य सेवा/वैय्यावृत्ति करता है। ज्ञानी! समत्वभाव ही साधुता की पहचान है। समकितभाव, समत्वभाव ही साँचे श्रमण की पहिचान है।

कहाँ गये वे आचार्य विमलसागर जी? कितना वात्सल्य था। ज्ञानी! साधकों में आपस में वात्सल्य भाव की आवश्यकता है। ऊँचे सिंहासन पर बैठना साधुत्व नहीं है?

"आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

॥ भगवान् महावीर स्वामी की जय ॥

❖ ❖ ❖

मोक्षमार्गी साधु

भुञ्जेदि जहालाहं, लहेदि जइ णाण संजमणिमित्तं।
झाणज्झयणणिमित्तं, अणयारो मोक्खमग्गरदो॥ 107॥

अन्वयार्थ—(जइ) साधु **(जहालाहं)** यथालाभ/जो प्राप्त हो गया **(भुञ्जेदि)** भोजन करता है **(णाण संजम णिमित्तं)** ज्ञान और संयम की वृद्धि के लिए तथा **(झाणज्झयणणिमित्तं)** ध्यान और अध्ययन के निमित्त **(लहेदि)** ग्रहण करना है **(अणयारो)** वह साधु **(मोक्खमग्गरदो)** मोक्षमार्ग में रत है।

भव्य बंधुओ!

अन्तिम तीर्थेश भगवान् वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति। आचार्यप्रवर भगवान् कुन्दकुन्द स्वामी 'रयणसार' जी ग्रंथ में श्रमण और श्रावक उभय धर्मों का व्याख्यान कर रहे हैं। 10 दिन पर्युषण में आपने आत्मसाधना की, आत्मआराधना की। कोई भी क्रिया होती है, उसकी द्वैत अवस्था होती है। साधना आपने स्वात्मोपलब्धि की सिद्धि के लिए की है। जो निज आत्मा के लिए साधना करता है, उससे जिनशासन की प्रभावना स्वयमेव हो जाती है। हर क्रिया में द्वैत भाव है। इन्द्रियाँ आपको मिली हैं। एक-एक इन्द्रिय के दो-दो काम हैं। परिणति तेरी है। आँख मिली है यदि आपको, तो अज्ञानी कहता है कि आँखों ने पाप करा दिया, इसलिए आँखें फोड़ दो। नहीं, कहीं आँखें फोड़ मत देना, इन्द्रियों को नष्ट कर मत देना। किस अज्ञानी ने कह दिया कि आँखों ने पाप कर दिया और यूँ कह रहा था कि आँखें न होतीं तो मैं गलत कार्यों को न देखता, अशुभ न करता? यह बहुत बड़ा भ्रम था। यदि आँखें फोड़कर बैठ जाता, तो स्वाध्याय किससे करता? अरिहंत की वन्दना किससे करता? निर्ग्रंथ की आराधना कैसे करता? और जीवों को देखकर कैसे चल पाता? आँखों ने पाप कहाँ किया है? ये आँखें तो महाव्रतों का पालन करवा रही थीं। जो आँखों का सदुपयोग करना चाहता है, उसको आँखें साधु बना देती हैं। परन्तु आँखों में न साधु है, न असाधु है। दृष्टि जैसी है, वैसा तुझे दिखाई देगा।

भैया! यह मत कहना कि आज के युवा बिगड़ रहे हैं। युवा-अवस्था को दोष मत देना। युवाओं से ही गलियों में नमोऽस्तु शासन जयवंत हुआ है, यह युवाओं ने ही तो किया है। युवा-अवस्था में कोई दोष नहीं है। युवा अवस्था में कोई पाप नहीं है। जितनी साधना युवा कर सकते हैं, उतनी शिशु और वृद्ध नहीं कर पाते हैं। युवाओं को यह नहीं कहना कि बिगड़ चुके हैं,

अपितु दिशा देने वाले की आवश्यकता है। इन वृद्ध माताओं और बुजुर्गों ने मिलकर द्वैत अवस्था का निर्वाह किया है। ज्ञानियो! न अद्वैतएकांत हमारे यहाँ है, न द्वैतएकांत हमारे यहाँ है। द्वैताद्वैत दशा है। जब इन्द्रियाँ दो काम कर रही हैं, तो आपकी साधना ने भी दो काम किये हैं। अंतरंग में आपके परिणामों की विशुद्धि से आपके कर्मों की निर्जरा हुई है और बहिरंग में जिनशासन की प्रभावना हुई है। अपने जीवन में भावना भाना कि अभी 10 दिन हमने साधना की है, वह दिन कब आए जब प्रतिदिन 24 घण्टे ऐसे ही साधना करते हुए निकलें। भगवान् कुन्दकुन्द स्वामी ने स्पष्ट लिखा है—आत्मरथ पर आरूढ़ होकर आत्मगुणों की जो आराधना है, वही ध्रुव प्रभावना है। ध्रुव सत्य है, जब सारी शक्तियाँ कार्य करना बंद कर देती हैं, तब उत्साह शक्ति ही काम आती है। यदि उत्साहशक्ति है, तो जगत् की कोई थकान आने वाली नहीं है।

भरत चक्रवर्ती, चन्द्रगुप्त को स्वप्न आया था कि जिनेन्द्र के रथ को छोटे-छोटे बछड़े खींच रहे हैं। भगवान् ऋषभदेव के समवसरण में भरतेश पहुँचता है और कहता है—हे स्वामी! मैंने अर्द्धरात्रि के समय सोलह स्वप्न देखे हैं, उन स्वप्नों में यह भी स्वप्न था कि छोटे-छोटे बछड़े रथ को खींच रहे हैं। तीर्थंकर ऋषभदेव की दिव्यदेशना में खिरा,—"भरतेश ! स्वप्न यह तृतीय काल में आया है आपको, लेकिन इसका फलादेश पंचमकाल में होगा। भरतेश! पंचमकाल में जिनेन्द्र शासन, श्रमण संस्कृति को खींचनेवाले यदि कोई होंगे तो युवा होंगे, वे जिनशासन को आगे ले जायेंगे।"

विश्वास रखना, किसी को चारित्र में स्थापित करना हो तो डाँटना मत। समझाने के तरीके अनेक हैं। प्रशंसा भी सुधार है। आचार्य अमृतचंद्र स्वामी ने स्थापित करने के लिए दो शब्दों का प्रयोग किया है—तर्क (युक्ति और आगम) से धर्म में स्थापित करना चाहिए। जिसके पास आगम-ही-आगम है, वह किसी को बचा नहीं पाएगा। जैसे संतानविहीन पुरुष और नारी, इनके हृदय शुष्क होते हैं और जिनके संतान है उनका स्वभाव भिन्न मिलेगा। जो श्रमण साधुसंघ में रहता है, उसका स्वभाव अलग मिलेगा और जो एकलविहार करता है उसका स्वभाव भिन्न मिलेगा। संतानयुक्त स्त्री-पुरुष में लोच मिलेगा और जो माता-पिता नहीं बना है वह कठोर मिलेगा। मात्र भोगी, परन्तु दुलार देना नहीं जानता।

मात्र आगम का ज्ञाता है जो, उसका हृदय शुष्क हो जाता है। वह हर बात के लिए शास्त्र खोलता है। भैया! केवल पाकशास्त्र को पढ़कर कोई स्वादिष्ट भोजन नहीं बना सकता। ध्यान दो, आगम का ज्ञान होना ही चाहिए। स्वाद आटे में है कि घी में है? दोनों का स्वाद दोनों में है, फिर भी वह स्वाद नहीं आता है। खाली घी खाओगे तो उल्टी हो जाएगी। खाली आटा खाएगा

क्या? यदि दोनों को मिश्रित करने की विधि माँ से बनती है, उससे पूछना, मौन डालकर परांठा कैसे बनाती है? ऐसे-ही आगम की भाषा को आत्मतत्त्व की गहराइयों में स्पर्श कराकरके भावात्मक व्याख्यान करके युक्ति और आगम का प्रयोग करेगा जो, वही गिरते हुए को उठा पायेगा। और जिसके पास युक्ति और आगम नहीं है, वह आगम मात्र को जानकर गिरते हुए को धक्का और दे देगा। प्रीति कभी नष्ट नहीं होना चाहिए। जैसे पिचके बर्तन को ठोकर मारी जाती है, पर ठोकर मारनेवाला समझता है कि कितनी ठोकर मारना है। पिचके को मिटाना है कि फोड़ना है? बस, माता-पिता और गुरुओं को इतनी शिक्षा लेकर रखना चाहिए कि शिष्य की और बेटे की पिचक मिटाना है, न कि उसको फोड़ना है। उतना संभलकर, भीतर हाथ लगाकर धक्का लगा दो, जिससे पिचक मिट जाए, फूट न जाए। स्थितिकरण के लिए युक्ति चाहिए, आगम चाहिए। यदि युक्ति है, तो श्रेय मत लूटना कि मुझे श्रेय मिल जाए कि मैंने इसे सुधार कर रखा है। आप यह देखना कि सुधर जाए। आपकी बात न माने तो जिसकी मानता हो उससे बोल देना। पुरुष का कल्याण दिखता हो आपको, तो चर्म का लक्ष्य नहीं होना चाहिए, धर्म का लक्ष्य होना चाहिए। धर्मात्मा मात्र वे ही होते हैं, जिनके चर्म के लक्ष्य नष्ट हो जाते हैं, मात्र धर्म का लक्ष्य रहता है। जिनका चर्म का लक्ष्य है कि मेरे शरीर का नाम होना चाहिए, उनसे कभी न 'स्व' का कल्याण होगा, न 'पर' का कल्याण होगा। जो श्वान गलियों में घूमते हैं, उनका विशेष डर नहीं लगता; परन्तु जो किसी के घर में बंधे होते हैं, उनका डर बहुत होता है। जो जीव संयम में नहीं होते हैं, उन्हें असंयम में आने का टेंशन नहीं होता है। और संयम की सांकल खुल जाए, तो बंधे श्वान की भांति होते हैं जो खुलते ही काटने दौड़ता है। भैया! संयम में बंधकर ही रहना और यह विचार करना, अहो! वह पर्याय कब होगी मेरी? जैसे सीमंधर स्वामी के कैवल्य में मेरी धोती-दुपट्टा की पर्याय झलक रही थी, ऐसे-ही प्रत्यक्ष दिगम्बर पर्याय कब झलके? ऐसा विचार करके जाना। और ध्रुव सत्य है, वट का बीज कभी कहीं पड़ा होगा, वह कभी-न-कभी पर्वत को फाड़ेगा और विशाल छायादार वृक्ष बन जाएगा। ऐसे-ही इस भवन में बैठकर आपने वट बीज के समान जो साधना की है, वह तुम्हारी साधना इतनी विशाल हो कि कर्म के पहाड़ को तोड़ दे और तुम सिद्धशिला पर जाकर बैठ जाओ।

ज्ञानियो! जीवन में वह दिन सबके साथ आता है। जब उदासीनता आती है, तब लगता है कि मैंने किया क्या है?

यथा-यथा समायाति, संवित्तौ तत्त्वमुत्तमम्।
तथा-तथा न रोचन्ते, विषयाः सुलभा अपि ॥ इष्टो.॥

जैसे—उत्तम तत्त्व की संवित्ति होती है, सुलभ-से-सुलभ विषय रुचिकर लगते नहीं हैं और

यथा-यथा न रोचन्ते, विषयाः सुलभा अपि।
तथा-तथा समायाति, संवित्तौ तत्त्वमुत्तमम्॥ इष्टो.॥

जैसे-जैसे सुलभ विषय रुचिकर नहीं लगते, वैसे-वैसे स्वात्म संवित्ति का जागरण होता है।

राजा मधु हाथी पर बैठा हुआ था। धनुष-बाण हाथ में है। उधर शत्रुघ्न बाण छोड़ रहा है और देखते-देखते दृष्टि मुड़ गई, धनुष फेंक दिया और गज पर बैठे-बैठे केशलुंचन प्रारंभ हो गए। क्या चिंतवन चल रहा था? जमीन पर उतरकर भी तो केशलुंचन किए जा सकते थे। कहीं हाथी से नीचे उतरा और उतरते-उतरते कहीं परिणाम उतर गए, तो फिर क्या होगा? अहो आश्चर्य! दिगम्बर वीतरागी तपोधन बनकर खड़े हो गए। जो शत्रुघ्न बाण छोड़ रहा था, वह हाथ जोड़कर, 'भो स्वामी! नमोऽस्तु' करने लगा। सेनापति हाथ पकड़ता है, 'राजन्! यह आपका शत्रु है, आप नमस्कार कर रहे हो?' नहीं, सेनापति! जो शत्रु था, वह उतर गया है। ये वीतरागी दिगम्बर मुनिराज हैं। ये जगत् के गुरु हैं। शत्रु राग था, शत्रु द्वेष था। अब मेरा शत्रु नहीं बचा, मित्र नहीं बचा तो ये तो धरती के देवता दिगम्बर तपोधन हैं। जयवंत हो संयम, जयवंत हो साधना। शत्रु को भी सिर टिकवा देता है, उसका नाम संयम है। कुन्दकुन्द स्वामी बार-बार यही संकेत करते हैं:—

"धम्मो दया विशुद्धो"

जो दया से विशुद्ध है, वही धर्म है। और सबसे बड़ी कोई दया है तो, निज के परिणामों को संभाल लो, यही विश्व की सबसे बड़ी दया है। चींटी को उठाकर उस पर तो दया की, परन्तु स्वयं के कषाय परिणाम स्वयं को काट रहे थे, उस निजात्मा पर दया नहीं की। किसी नारी को पता चले कि उसका स्वामी दूसरी स्त्री के घर जाने लगा है, तो क्या भाव होंगे उस नारी के? बिलख जाएगी नारी, तड़प जाएगी नारी, कि घर में मेरे होते हुए ये कहाँ जाने लगे हैं? हे ज्ञानियो! जैसे स्वपति को परपत्नि के घर में जाते हुए देखकर उस नारी का हृदय तड़पता है, ऐसे ही आत्मरमणी तेरी तेरे घर में तड़प रही हो और तू पर के ऊपर दृष्टि डाले, इससे बड़ा व्यभिचारी कौन होगा? अपनी नारी को देख। तेरी नारी सबसे सुन्दर है, उसका नाम आत्मरमणी है।

मोक्षमार्ग में लीन परम योगियों की चर्चा यहाँ कुन्दकुन्द स्वामी कर रहे हैं:—

भुञ्जेदि-जहा-लाहं, लहेदि जइ णाणसंजमणिमित्तं।
झाणज्झयणणिमित्तं, अणयारो मोक्खमग्गरदि॥ 107॥

ज्ञानी! धरती के देवता, निर्ग्रंथ तपोधन शरीर के तेज के लिए, शरीर के बल के लिए, इच्छाओं की पूर्ति के लिए आहार नहीं करते हैं। तो ये आहार क्यों करते हैं? हे योगी! आप श्रावक के घर से आहार लेकर आते हो, वह गप्पें लगाने के लिए नहीं, प्रपंच में जाने के लिए नहीं। यदि आपने प्रपंच में जीवन लगाया है, तो श्रावक का भोजन लेकर आपको नियम से दुर्गति का पात्र बनना पड़ेगा। एक गाड़ी में पैट्रोल डाला है आपने। आप चाहो तो गाड़ी को जिनालय की ओर ले जाओ, चाहो तो वैश्यालय की ओर ले जाओ। धन्य हो श्रावक आपकी आस्था, धन्य हो श्रावक आपकी श्रद्धा, धन्य हो आपकी भक्ति। श्रावक जैसे-ही निर्ग्रंथ को देखता है, गद्गद् हो जाता है। उसको लगता है कि मैं किस रूप में इनकी वैयावृत्ति करूँ कि इनका मोक्षमार्ग निर्बाध, निरन्तर चलता रहे। श्रावक मुनिराज के हाथ पर एक ग्रास भी रखकर अपना जीवन धन्य मानता है। उसको लगता है कि मैं एक ग्रास देकर स्वयं का भी मोक्षमार्ग प्रशस्त कर रहा हूँ।

हे तपोधन! आपने ग्रहत्याग करके संयम धारण मोक्षमार्ग को प्रशस्त करने के लिए किया है तो उसका दुरुपयोग मत करो। आहार को शरीर की रक्षा के लिए, संयम पालन करने के लिए, ज्ञान की वृद्धि के लिए, तप-ध्यान के लिए ग्रहण किया है। उसका उसी में उपयोग करो, जिससे विशुद्धि में निरन्तर वृद्धि होती रहे। मोक्षमार्ग में लीनता निरन्तर वर्द्धमान होती रहे।

"आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

॥ भगवान् महावीर स्वामी की जय ॥

❖ ❖ ❖

मुनिचर्या के विभिन्न प्रकार

उदरग्गियसमण-मक्खमक्खण-गोयार-सब्भपूरण-भमरं।
णाऊण तप्पयारे, णिच्चेवं भुञ्जदे भिक्खू॥108॥

अन्वयार्थ—(उदरग्गियसमण-मक्खमक्खण-गोयार-सब्भपूरण-भमरे) उदराग्निशमन, अक्षभ्रक्षण, गोचरी, सब्भपूरण और भ्रामरी **(तप्पयारे)** मुनिचर्या के इन भेदों को **(णाऊण)** जानकर **(भिक्खू)** भिक्षु /साधु **(णिच्चेवं)** नित्य ही **(भुञ्जदे)** आहार ग्रहण करता है।

भव्य बंधुओ!

अन्तिम तीर्थेश भगवान् वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोस्तु-शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति। आचार्यप्रवर भगवान् कुन्दकुन्द स्वामी 'रयणसार' जी ग्रंथ में श्रमण और श्रावक उभय धर्मों का व्याख्यान करते हुए समझा रहे हैं। श्री जिनेन्द्र के शासन को जयवंत रखने में दोनों की भूमिका है-श्रमण और श्रावक। श्रमण धर्म का अभाव हो जाएगा तो श्रावकधर्म का अभाव सहज हो जायेगा और श्रावकधर्म का अभाव हुआ, तो श्रमणधर्म का भी अभाव हो जाएगा। एक रथ है, उसके दो पहिए हैं। श्रमण चर्या नहीं करेगा तो श्रावक के अतिथि संविभाग व्रत का पालन कैसे होगा? और श्रावक अपने अतिथि संविभाग व्रत का पालन नहीं करेगा तो श्रमणचर्या कैसे चलेगी? ये दोनों एक रथ के दो चक्र हैं। इन दोनों ने ही मिलकर भगवान् अरिहंत के नमोऽस्तु शासन को अनादि से जयवंत किया है।

जहाँ वीतरागी आचार्यपरम्परा में माघनन्दि, अभयनंदि इन आचार्यों के पूर्व आचार्य धरषेण स्वामी, पुष्पदंत, भूतवलि स्वामी जैसे आचार्य हुए, जिन्होंने जिनवाणी की रक्षा और जिनसूत्रों की रक्षा, धर्म की रक्षा यानि आगम की रक्षा की। यदि आगम की रक्षा नहीं हो सकी, तो धर्म की रक्षा सम्भव ही नहीं है। धर्म की व्याख्या जो है, वह आगम में है और जहाँ आगम का लोप हुआ, वहाँ विश्वास रखना, धर्म का लोप सहज हो जाएगा। तीर्थंकर की वाणी को आचार्यों ने श्रुत के माध्यम से लिख करके सुरक्षित किया। एक ऐसा भी समय आया जब भारत की भूमि पर दिगम्बर मुनियों का अभाव तो नहीं हुआ, परन्तु न्यूनता आ गई। तीर्थंकर महावीर स्वामी के निर्वाण से लेकर आज तक, यह भारत भूमि बांझपन को प्राप्त नहीं हुई है, निर्ग्रंथ मुनियों से शून्य नहीं हुई है। इस भ्रम को हृदय से हटा देना कि आदिसागर महाराज ने श्रमण परम्परा चलाई, कि शांतिसागर (छाणी) ने, कि शांतिसागर (दक्षिण) ने श्रमण परम्परा चलाई।

ये निर्ग्रंथ मुनिपरम्परा चलानेवाले आचार्य नहीं हैं, ये निर्ग्रंथ परम्परा में हुए आचार्य हैं। बहुमान आना चाहिए, परन्तु बहुमान में इतिहास का नाश नहीं होना चाहिए। इन योगियों ने श्रमणपरम्परा को जन्म नहीं दिया है, श्रमणपरम्परा में ये योगी हुए हैं। हाँ, मृदुल चर्या प्रारम्भ हो चुकी थी, उस मृदुल चर्या को पुनः गम्भीर रूप में लानेवाले हैं। वे तीन आचार्यभगवंत हुए आचार्य शांतिसागर (दक्षिण), आचार्य आदिसागर व आचार्य शांतिसागर (छाणी)। जब ये आचार्य हुए उस समय यह मध्यभारत, छोटे पण्डित और बड़े पण्डित जी के नाम से जाना जाता था।

मध्यकाल में उत्तर भारत में निर्ग्रंथ मुनियों की अत्यधिक न्यूनता हो गई, लेकिन दक्षिण भारत में निर्ग्रंथ मुनि थे। आचार्य शांतिसागर जी से पहले वहाँ चार आदिसागर थे। कहाँ? दक्षिण भारत में। उत्तर भारत का यात्री जब दक्षिण से वापस आता था, तब कहता था, भैया! हमने महाराज के दर्शन भी किए हैं। तो श्रावक यों कहते थे धन्य हैं कि आप जो आपने भगवान् के दर्शन किए हैं और महाराज के भी दर्शन किए हैं। वे महाराज कैसे होते हैं? तो यहाँ, बहुत बड़े आश्चर्य की वस्तु कोई देखकर आया हो, ऐसे वह दक्षिण भारत की यात्रा कर लौटा श्रावक माना जाता था। तुम्हारे घर में जैसे मुनिराज पहुँच जायें तो आनंदित होते हो, ऐसे ही दक्षिण से लौटा श्रावक उत्तर में मुनिराज की बातें करता था, तो यहाँ के श्रावक आनंदित होते थे।

यथार्थ मानो, तीर्थराज सम्मेदशिखर भी चले जायें और कोई मुनिराज वहाँ न दिखें, तो सूना-सूना लगता है। यह भाव रहता है कि तीर्थवन्दना करने जा रहे हैं, तो वहाँ मुनिराज भी मिलेंगे। इस मुद्रा का प्रभाव ही ऐसा है। परन्तु धर्म की रक्षा करने वाला कोई-न-कोई तो हुआ है। एक ऐसा समय निकला बीच का, जिसमें आचार्य महावीरकीर्ति महाराज, शांतिसागर (दक्षिण), शांतिसागर (छाणी), आचार्य विमलसागर और आचार्य देशभूषण, ये बड़े-बड़े धुरंधर योगी जब विचरण कर रहे थे। एक ओर चारित्र की धारा बह रही थी, दूसरी ओर ज्ञान की धारा बह रही थी और तीसरी ओर देखें तो श्रद्धा की धारा बह रही थी। आप समझो, प्रकृति में कोई प्रकोप आता है तो प्रकृति उस प्रकोप को थामने के लिए वस्तु भी तैयार कर लेती है। जब चारित्र में खोखलापन आ रहा था, तो आचार्य शांतिसागर, आचार्य आदिसागर पर दृष्टिपात किया। जब लोग न्यायविद्या को भूल रहे थे, महावीर कीर्ति महाराज न्याय के प्रकाण्ड विद्वान् हुए हैं। लोग भूत-प्रेतों के नाम से दुनियाँ के चबूतरों पर सिर टेक रहे थे, जगह-जगह सिर पटक रहे थे, तब लोगों ने आचार्य विमलसागर की ओर देखा। दुनियाँ में भटकने की आवश्यकता नहीं है। जब मध्यभारत में "मङ्गलं भगवान वीरो मङ्गलं गौतमो गणी" की जगह, बेटा-बेटी की शादी में भी दूसरे मंगलाचरण आना प्रारम्भ हुए तब पण्डितों

को जन्म देने वाले वर्णी जी हुए। आप देख लो अपने दादा की कुण्डली, उसमें फोटो किसका छपा मिलेगा?

जैसे आज पूजन-विधान पद्धति सिखाई जा रही है, ऐसे-ही आपको ज्योतिष का भी अध्ययन कराना चाहिए। कारण पूछो क्यों? क्योंकि कल यह कहने को हो जाएगा कि ज्योतिष विद्या जैनों के पास नहीं है। परन्तु ज्योतिष के व्यापार के लिए नहीं। जिसने ज्योतिष और तंत्र-मंत्र का व्यापार किया है, वह नियम से कुमरण को प्राप्त होता है, इसमें शंका नहीं है। इसी ग्रंथ में आप पढ़ चुके हो, तंत्र-मंत्र की विद्या में लिप्त होकर जो आजीविका करता है और स्वप्न में भी सिर हिलाता है कि मेरे ऊपर देव आ रहे हैं, उस पर देव आयें या न आयें, परन्तु भविष्य में भूत नियम से बननेवाला है, भविष्य का वह व्यंतर है। इसलिए, यथार्थ ज्ञान होगा जिसे, वह घर-घर में कुण्डली देखने कभी नहीं जायेगा। होलसेल दुकान वाले कभी ठेला लगाकर गलियों में घूमते नहीं मिलते। जिसकी दुकान पर माल व्यवस्थित होता है, वह शहर के किसी कोने में भी खोले बैठा होगा दुकान, वहाँ पर भी ग्राहक पहुँचते हैं। रोज कमाओ, रोज खाओ वाले ही ठेला लगायेंगे। इसी प्रकार से जिसको तत्त्व का बोध है, तत्त्वज्ञान है, तत्संबंधी विद्या का परिपूर्ण ज्ञान है, वह कभी घूमाफिरी नहीं करेगा, उससे विद्या प्राप्त करने के लिए लोग स्वयं दौड़ेंगे। आप गृहस्थ हो, गृहस्थी छोड़ नहीं पा रहे हो और कहीं-न-कहीं आपको पूजन-विधान कराने ही होते हैं, तो 'मङ्गलं भगवान् वीरो' कहने वालों से ही करवाना।

जिसने एक अक्षर भी दे दिया, उस पर आदमी की श्रद्धा चली जाती है, ध्यान रखना। मध्यकाल में क्यों ऐसे महापुरुष हुए? आवश्यकता थी। मिथ्यात्व कुल में जिसने जन्म लिया हो और मिथ्यात्व कुल में जन्म लेने के उपरांत भी तत्त्व की बड़ी-बड़ी बातें करने वाले लोग भी अन्तिम समय में डगमगा जाते हैं और समयसार सुनकर नहीं, गोम्मटसार जीवकाण्ड-कर्मकाण्ड सुनकर नहीं, पद्मपुराण जैसे महान् साहित्यिक प्रथमानुयोग ग्रंथ को सुनकर वह डगमगा जाते हैं। भैया! पद्मपुराण में रात्रिभोजन त्याग का प्रकरण चल रहा था। यदि किसी ने एक महीने तक रात्रिभोजन का त्याग कर दिया, तो उसे 15 दिन के उपवास का फल नियम से मिलता है। बिना भूखे रहे उपवास का फल मिलता है। कौन ऐसा होगा जो इतने बड़े लाभ को छोड़ देगा? मड़ावरा में जैनियों के जितने घर थे, हर घर में एक पण्डित था उस समय। यह मत कहना कि मध्यभारत, बुण्देलखण्ड वर्णी जी के पहले विद्वान्शून्य था। यदि शून्य होता तो वर्णी जी को पद्मपुराण सुनाया किसने? मडावरा में उस समय भी न्यायाचार्य और बड़े-बड़े विद्वान् थे। खुरई में पण्डित थे, सागर में भी थे, जबलपुर में भी थे। भैया गणेश पद्मपुराण ग्रंथ का वाचन सुन रहे थे। जैसे एक दरिद्री को निधि मिल

जाए, ऐसे ही एक अजैन बंधु को इस शब्द को सुनकर महान् निधि मिल गई। भैया गणेश क्या बोलते हैं? पण्डित जी! क्या रात्रिभोजन का त्याग मैं भी कर सकता हूँ? पण्डित जी कहने लगे—भैया! यह तो वीतराग धर्म है। इसमें वित्तरागियाँ की महिमा नहीं है, यह तो जन-जन का धर्म है। जब एक लोमड़ी रात्रिभोजन छोड़ सकती है, फिर आप तो एक मनुष्य हैं। जिनशासन किसी व्यक्ति विशेष का नहीं होता है। जो उसको स्वीकार कर लेता है, वही जैन होता है। जितना विशद् व्याख्यान समाज की अखण्डता का जैनदर्शन में है, वैसा अन्यत्र कहीं नहीं मिलेगा। वह विषय अलग है कि रूढ़िवादी लोगों ने उसे जाति-पात में डाल दिया है। यह आपकी भूल है, यह जैनधर्म की भूल नहीं है। क्यों भैया! चाण्डाल भी देव हो सकता है कि नहीं? हो सकता है।

सम्यग्दर्शन सम्पन्न, मपि मातङ्गदेहजम्।
देवादेवं विदुर्भस्म, गूढ़ाङ्गारान्तरौजसम् ॥ 28 र.क.श्रा.॥

चाण्डाल था चाण्डाल और उसका काम क्या था? फाँसी लगाना। जिस जीव ने आपके समाज पर इतना उपकार किया है, उसका नाम भी ले लो तो कौन पाप पड़ता है। पुनः पुनः कह रहा हूँ, कि इस ब्रह्माण्ड में सबसे बड़ा कोई दरिद्री पुरुष है, तो वह जो गुणियों के गुण को कहना नहीं जानता है। वह सबसे बड़ा दरिद्री है। जिसके पास जो गुण हैं, उसका व्याख्यान करना चाहिए। ज्ञानी! नीम में भी गुण हैं। खुजली हो जाए तो उसके पानी से ठीक हो जाती है। तुम बबूल के काँटे को ही क्यों देखते हो? तेरी दृष्टि काँटेभूत है। तू चुभनेवाला काँटा ही क्यों देखता है? किसी को निमोनिया हो जाए तो काढ़ा तो बबूल के काँटों का ही बनाया जाता है। काँटों को काँटा ही क्यों देखते हो? जब आवश्यकता पड़ती है तो काँटा ही काँटे को निकालता है।

पद्मपुराण का स्वाध्याय सुनते-सुनते जीव के भाव बदल गए। धर्म की व्याख्या रासायनिक तत्त्व से निहारिये। लोग कहेंगे कि भाई गणेश के भाव बदल गए। आगम का शब्द-शब्द मंत्र है, इसे श्रद्धा में लाइये पहले। विश्वास मानो, किसी को कालिया नाग भी डस ले, उस समय तुम्हारे सामने कुछ भी न हो और उसे बचाना चाहते हो आप, कोई मंत्र भी आप नहीं जानते हो, आप तो 'अ' से लेकर 'ह' तक के वर्ण पढ़ने लग जाना, उसका जहर उतर जायेगा।

'अ' जो है, बहुशक्तिमान बीजाक्षर है। इसका उच्चारण करने से कितना ही कषायी व्यक्ति होगा, कितना ही मानसिक तनाव में बैठा होगा, जैसे ही उच्चारण पूर्ण होगा, उसके

मस्तिष्क में, चेहरे पर खुशी आएगी-ही-आएगी। इस विज्ञान को छुपाकर रखा है लोगों ने। यह भाषाविज्ञान है। जैसे-ही जिनवाणी का शब्द सुना जीव ने, तो उसके भाव परिवर्तित हो गए। जिनवाणी का प्रत्येक शब्द मंत्र है।

पद्मपुराण सुनते-सुनते उस जीव के अंतरंग में एक अलख जगी, कि सत्यार्थ यह है। कितना बड़ा निर्णय, संप्रदाय से हटकर आना और किसी संप्रदाय में जाना, यह टेढ़ी खीर है। भैया! आप अपने घर से बाहर जाओ तो दूसरे घर में नींद नहीं आती, यहाँ तक कि अच्छे से भोजन करने में भी शर्म आती है। अपने मिथ्यात्व के घर से निकलकर और सम्यक्त्व महल में आना, यह कितनी बड़ी बात थी। धीरे-से निर्णय कर लिया। जिनके घर में पत्नी बैठी हो, माँ बैठी हो, सबकुछ हो और माँ के सामने बेटे ने कह दिया कि मैं तो अब जैनधर्म मानूँगा। सब नाराज हो गए, बोले कि इतना कठिन है, कैसे चलेगा? बोले—कुछ भी हो, मैं तो जैनधर्म मानूँगा। समझानेवाले समझाते रह गए, परन्तु जिसने निर्णय कर लिया था, उसका निर्णय इतना अकाट्य हुआ कि कई जगह अनादर भी सहन करना पड़ा, फिर वह दिन कैसा होगा जब 'न्यायदीपिका' लेकर बनारस पहुँचे। सवा रुपये थमाकर एक ब्राह्मण विद्वान् को पुस्तक दी। विद्वान् ने जैसे-ही देखा कि यह तो 'न्यायदीपिका' है, तो पुस्तक को फेंक दिया। उस समय पूछो कि क्या बीती उन पर, कितना कष्ट हुआ होगा? जिनवाणी को फेंकते देखा। उस सवा रुपये के फेंकने की घटना से ही स्याद्वाद विद्यालय बनारस की नींव पड़ी थी।

वर्णी जी को दिगम्बर मुनि के प्रति जो आस्था थी, उस समय उनकी परीक्षा हुई। बनारस में श्वेताम्बर विद्यालय चल रहे थे। श्वेताम्बर साधु ने उनसे कहा कि बेटा। तुम विकल्प मत करो, यहीं भोजन करो, यहीं पढ़ाई करो, यहीं विद्वान् आते हैं, उनसे पढ़ना। एक ब्राह्मण विद्वान् पढ़ाने आते थे श्वेताम्बर संस्था में। वर्णी जी कहने लगे कि मैं सविनय प्रार्थना करता हूँ कि मैं यहाँ पढ़ तो लूँगा, लेकिन जब मैं पढ़कर यहाँ से निकलूँगा तो आपको कष्ट होगा। क्यों? इसलिए होगा क्योंकि मैं आपकी विनय नहीं कर पाऊँगा। मैं दिगम्बर मुनि को मानता हूँ, मैं वीतरागता का उपासक हूँ। मैं श्वेताम्बर पूजा नहीं करता हूँ। मैं आपकी संस्था में पढूँगा और आपकी विनय नहीं करूँगा तो आपको कष्ट तो होगा। मैं आपको कष्ट में देखना पसन्द नहीं करता हूँ। परन्तु आपकी सहजता को मैं धन्यवाद अवश्य देता हूँ कि आपने मुझे योग्य समझा। बस, ऐसा कह करके वहाँ से निकलने लगे। जो पण्डित जी पढ़ाते थे, वे पीछे से लग गए, बेटा! इधर आ, मैं पढ़ाऊँगा तुझे, तू चिंता मत कर, मेरे यहाँ आ जाना। एक विद्या की ललक थी, सीखने की ललक थी। अध्ययन स्वयं से होता है। ललक है तो सर्वत्र ज्ञान है और ललक नहीं है तो दुनियाँ में भटक आना, कहीं ज्ञान होता नहीं है।

गुरु निमित्त मात्र हैं, उपादान स्वयं का है। चिरौंजा बाई को भी कहना पड़ा—बेटा! जब तक तू पढ़ता रहा, तब तक तूने खूब उन्नति की, लेकिन जबसे तू सुखभोगी हुआ, तबसे जितना मैं चाहती थी, उतना तू पढ़ नहीं पाया। वर्णी जी से कुछ सीखना हो तो इतनी बात सीख लेना, चर्या और ज्ञान की बात गौण करना, सरलता देखना हो तो वर्णी जी में देख लेना। अपनी गल्ती को ऐसे लिख पाना हर व्यक्ति के वश की बात नहीं है। जिसने यह तक लिख दिया हो कि जिस बाई ने मेरे लिए सबकुछ सौंप दिया हो, उस बाई की इच्छापूर्ति मैं नहीं कर पाया। मैं न्याय पढ़ने गया बनारस, परन्तु जितना न्याय पढ़ना चाहिए था उतना मैं पढ़ नहीं पाया। क्यों नहीं पढ़ पाया? उसमें सागर की ही देन है। वर्णी जी का सागर से घना सम्बन्ध है। कहीं भी घूमकर आ जायें, परन्तु उन्हें सागर जरूर दिखाई देता था।

समाधि के समय ईसरी (पारसनाथ) में थे, सागर वाले पहुँच गए। चलो, महाराज। उन्हें थोड़ा राग तो आया कि अपने प्रांत में चलते हैं। पार्श्वनाथ भगवान् की निश्रा का प्रभाव ऐसा कि उस जीव के अंदर एक दृढ़ता आ गई, नहीं, अब रागियों के बीच में समाधिमरण नहीं करना है, अब वीतरागी पारस प्रभु के चरणों में करना है। उस दृढ़ता ने इतना काम किया कि अन्तिम समय में उन्होंने अपनी लंगोटी भी छोड़ दी और क्षुल्लक गणेश वर्णी से मुनि गणेशकीर्ति होकर, सल्लेखना को प्राप्त किया। जो सल्लेखना हुई, यह ज्ञान से नहीं हुई, संस्थाओं से नहीं हुई। जो उनके अंदर सरलता थी, उस सरलता ने सल्लेखना करा दी। यह मत सोचना कि 'समयसार' की वाचना करनेवाले इतने ही हैं। वर्णी जी ने भी समयसार की वाचना की है, समयसार की चर्चा की है। यहाँ तक कि जो विद्वान् समयसार में कहीं अटकते थे, वे पत्र के माध्यम से वर्णी जी से पूछ लेते थे। वर्णी जी ने समयसार पर संक्षेप में सारभूत टीका लिखी है।

मुनिराज छः कारणों से आहार करते हैं—(1) क्षुधाशमन के लिए, (2) वेदना के शमन के लिए, (3) षट् आवश्यक पालन हेतु, (4) संयम की रक्षा के लिए, (5) प्राणों की रक्षा के लिए, (6) धर्म की रक्षा के लिए। आहारचर्या की विधि पांच प्रकार कही कई है, इस गाथा में आचार्यभगवन् वर्णन कर रहे हैं। जितने कम-से-कम भोजन में भूख शान्त हो जाये, उतना ही आहार लेना यह "उदराग्नि शमन" कहलाता है। आवश्यकता से अधिक आहार साधु को नहीं लेना चाहिए। पटरियों वाली गाड़ी के पहियों में, रथ के चक्रों में जैसे ध ुरी पर चिकनाई /तेल /ग्रीस डालना पड़ता है, उसी प्रकार शरीररूपी रथ को मोक्षनगर पहुँचाने के लिए आहाररूपी चिकनाई डालनी पड़ती है, यह अक्षम्रक्षण चर्या कही जाती है। गाय को जब भोजन दिया जाता है, तब गाय भोजन देनेवाले को नहीं देखती है कि भोजन देनेवाला

सुन्दर है या कुरूप है, गरीब है या अमीर है। मात्र उसकी दृष्टि रहती है कि खानेयोग्य है या नहीं। इसी प्रकार से निर्ग्रंथ तपोधन आहारचर्या में यह नहीं देखते हैं कि दाता अमीर है या गरीब है, दाता सुन्दर है या कुरूप है। वे मात्र इतना ध्यान रखते हैं कि दाता आगम के अनुसार होना चाहिए। ग्रहण करनेवाली वस्तु भक्ष्य, प्रासुक होनी चाहिए। यह "गोचरी" कहलाती है। गर्त / गड्ढे को रेत, मिट्टी, कूड़े-कचरे आदि से भर दिया जाता है, उसी प्रकार शरीर को चलाने हेतु पेटरूपी गर्त को सरस, नीरस चाहे जैसा भी हो, शुद्ध, प्रासुक आहार के द्वारा भरते हैं। यह "श्वभ्रपूरण" (गर्तपूरण) चर्या कही जाती है। भंवरा, मधुमक्खी आदि फूलों को कष्ट पहुँचाये बिना थोड़ा-सा रस ग्रहण करते हैं। कभी भी फूल के पूर्ण पराग रस को नहीं चूसते हैं। इसी प्रकार मुनिराज भी गृहस्थ को किसी प्रकार का कष्ट दिये बिना आहार ग्रहण करते हैं। वे कभी भी ऐसी स्थिति उत्पन्न नहीं करते हैं कि श्रावक कष्ट में आ जाये। जब उनको मालूम चलता है कि अमुक वस्तु मंहगी हो गई है तो वे उसका त्याग कर देते हैं। वे हमेशा ऐसी वस्तु ही आहार में लेते हैं, जिससे श्रावक पर आर्थिक बोझ न पड़े। यह "भ्रामरी" चर्या जानी जाती है।

साधु का उद्देश्य आहार ग्रहण करने का मात्र इतना ही है कि षट् आवश्यकों का पालन, संयम, तप-ध्यान बिना किसी शारीरिक बाधा के चलता रहे।

"**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।**" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

॥भगवान् महावीर स्वामी की जय॥

❖ ❖ ❖

धर्मानुष्ठान के योग्य शरीर पोषण के योग्य है

रसरुहिर मंसमेदट्ठिसुकिल मलमुत्तपूयकिमि बहुलं।
दुग्गंधमसुइचम्ममयमणिच्चमचेदणं पडणं॥109॥

बहुदुक्ख भायणं कम्मकारणं भिण्णमप्पणो देहं।
तं देहं धम्माणुट्ठाणकारणं चेदि पोसएभिक्खू॥110॥

अन्वयार्थ—(देहं) शरीर **(रसरुहिर मंसमेदट्ठिसुकिल मलमुत्तपूयकिमि बहुलं)** रस-रुधिर, मांस, मेदा, अस्थि, शुक्र, मल, मूत्र, पीव और कीड़ों से भरा हुआ है **(दुग्गंधं)** दुर्गंधयुक्त **(असुइ)** अपवित्र **(चम्ममयं)** चर्ममय **(अणिच्चं)** अनित्य **(अचेदणं)** अचेतन **(पडणं)** पतनशील /नाशवान **(बहुदुक्खभायणं)** अनेक प्रकार के दु:खों का पात्र **(कम्मकारणं)** कर्मास्रव का कारण **(अप्पणो भिण्णं)** आत्मा से भिन्न है। **(तं देहं)** उस देह को **(धम्माणुट्ठाणकारणं)** धर्मानुष्ठान का कारण है **(चेदि)** यह मानकर **(भिक्खू)** भिक्षु/साधु **(पोसदे)** पालन-पोषण करता है।

भव्य बन्धुओ!

अन्तिम तीर्थेश भगवान् वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति। आचार्यप्रवर भगवान् कुन्दकुन्द स्वामी जैनदर्शन में लब्धप्रतिष्ठित, बहुश्रुत-पारगामी, अध्यात्म-तत्त्व के अलौकिक वेत्ता, जिन्होंने समयसार नामक गूढ़ ग्रंथ का सृजन करके सारे विश्व को यह इंगित कर दिया कि जिस दृष्टि में आप जी रहे हो, जो सुख की अनुभूति आप ले रहे हो, उससे कोटि-कोटि गुणा सुख कुछ और भी है। हलचल का आनंद तो जीव ने अनंत बार प्राप्त किया है, परन्तु शांतता का आनंद यदि कहीं है तो अध्यात्म विद्या में है। सारी विद्यायें जहाँ शांत हो जाती हैं, सारी विधाओं का जब अंत हो जाता है, वहाँ से अध्यात्म विद्या का प्रारंभ होता है। कैसी होगी उस योगी की दशा, जो अहर्निश समरस में लीन रहता है?

जब-जब भगवान् के चरणों में पहुँचो, तब-तब यह मत कहना कि हे प्रभु! संसार के इन्द्रियसुखों की किंचित् प्राप्ति हो जाए। यह तो आपके लाभांतराय कर्म के, भोगान्तराय कर्म के क्षयोपशम से प्राप्त हो जायेगी। परन्तु ध्यान रखना, स्वात्मा की अनुभूति का जो आनंद है, वह किसी धर्म के क्षयोपशम से नहीं मिलता है, वह तो आत्मा का आत्मा से ही प्रकट होता है। जो पारिणामिक भाव है, परमस्वभाव है और जिस पारिणामिक भाव में किसी कर्म की अपेक्षा

नहीं है, वह आत्मा का सहज भाव है। पानी को मीठा पीना है तो भैया शक्कर डालनी पड़ती है। ज्ञानी! नमकीन शिकंजी बनानी है तो नमक डालना पड़ता है, परन्तु ध्रुव सत्य है, यह दोनों अवस्थायें पानी का वास्तविक स्वाद नहीं है। जिसमें कुछ नहीं है, वह पानी का भूतार्थ स्वाद है। नमक है वह पर वस्तु है, बूरा है वह भी पर वस्तु है। लाभ कर्म का क्षयोपशम है, वह भी परवस्तु है। भोग कर्म का क्षयोपशम है, वह भी परवस्तु है। उपभोग कर्म का क्षयोपशम है, वह भी परवस्तु है। जिस पानी में कुछ नहीं डाला, वह ध्रुव शुद्ध पानी का स्वाद है। ऐसे ही कर्म का किंचित् भी अपेक्षित भाव जिसमें नहीं है, वह आत्मा का ध्रुव स्वभाव है। जिसमें लाभ नहीं है, हानि नहीं है, अन्य कोई विकार नहीं है, वह जो अवस्था है, यही आत्मा का सहज भाव है। इस भाव की प्राप्ति के लिए एक बार नहीं, अनेक बार नहीं, अनंतानंत बार जीव ने प्रयास किया। कोटि-कोटि भव लग जायेंगे, तब कहीं एक भव में वह प्राप्त कर पाएगा। ऐसे वीतरागी तपो धन सहज स्वरूप में लवलीन हों, उनका चिंतवन क्या चलता है, वह कुन्दकुन्द स्वामी कहने जा रहे हैं।

आहारचर्या को जा रहे हैं, लोगों की आँखें देख रही हैं कि मुनिराज भोजन को जा रहे हैं, परन्तु योगी भोजन से रहित होकर भजन के लिए जा रहा है। इस देह को भोजन क्यों दूँ? आत्मा तो अनशन स्वभावी है। अशन इसका धर्म नहीं है, वसन इसका धर्म नहीं है। अशन-वसन से मुक्त है, उसका नाम आत्मा है, लेकिन फिर भी महाराज अंजुलि लगाकर क्यों जा रहे हो। तीर्थंकर जैसे महायोगी चर्या को निकलते हैं। अहो श्रावको! वह घर कितना पुण्यभूमि होगा, वह श्रावक कितना पुण्यात्मा जीव होगा, जिसके द्वार पर तीनलोक के नाथ तीर्थंकर अंजुलि लगाए खड़े हों। उस श्रावक का कमाया हुआ धन कितना सम्पत्तिभूत होगा, कितने पवित्र भावों से अर्जित किया होगा, जिसके द्वार पर तीर्थंकर अंजुलि लगाए खड़े हों। सामान्य महाराज की खोज करते हुए श्रावक को कितना श्रम करना पड़ता है, उसके नयन सजल हो जाते हैं—हे स्वामी! मेरे द्वार पर तो पधारो। और जिनके द्वार पर तीर्थंकर खड़े हों? हे श्रेयांश! हे सोम! इस युग के प्रथम दाता, जिसने प्रथम तीर्थंकर की पारणा करवाई हो, इससे पुण्यात्मा जीव जगत् में और कौन होगा?

बेटा जब घर के आँगन में खेलता है तो माँ को कैसा आनंद आता है? यह बाँझ से मत पूछना। ऐसे-ही निर्ग्रंथ मुनि के हाथ पर रखे ग्रास का आनंद भव्य श्रावक ही ले पाता है, अभव्य को वह आनंद आयेगा कहाँ? जिसका दुर्गति का बंध हो चुका है, वह कभी निर्ग्रंथ गुरु के चरणों में मस्तक नहीं टेक पाएगा और उनके हाथ पर ग्रास भी नहीं रख पाएगा, उसके भाव नहीं बनेंगे। दो हेतु आज भी अपने पास हैं, अपनी भवितव्यता की पहचान करना हो तो।

एक-तीर्थंकर भगवंतों की शाश्वत् निर्वाणभूमि गिरिराज सम्मेदशिखर की वंदना और निर्ग्रंथ मुनि के हाथ पर ग्रास रखना। सम्मेदशिखर जी की वंदना के अंतरंग में स्वयं भाव उत्पन्न हों, किसी के द्वारा प्रेरित न हों। और नगर में पधारें वीतरागी श्रमण तो उनकी वंदना के भाव सहज उत्पन्न हो रहे हैं, तब यह समझ लेना कि मेरी भवितव्यता पवित्र है। किसी से पूछने मत जाना कि मेरी कौन-सी गति होगी? ये भीतर के भाव हैं। दूसरा तो पर्याय की बात करेगा, परन्तु मेरी कौन-सी गति होगी, तू अपने परिणामों से बात करेगा। आपके परिणामों का ज्ञान मुझे है कि आपको है?

सम्प्रति में कोई मनःपर्ययज्ञानी मुनि नहीं हैं, जो कि दूसरे के भावों को जान सकें। यदि वर्तमान में कोई जीव दूसरे के भावों की व्याख्या करता है तो उससे बड़ा असत्य बोलनेवाला जगत् में कोई है नहीं। यदि वर्तमान में किसी के भावों को जानने वाला कोई है तो वे हैं विदेहक्षेत्र में विराजे मनःपर्ययज्ञानी मुनिराज। भरतक्षेत्र में बैठकर दूसरे की भवितव्यता का निर्णय करने तुम बैठ जाओ तो तुमसे बड़ा अभव्य जगत् में दूसरा कोई नहीं है। किसी के भावों का निर्णय आप नहीं दे पायेंगे और देने का प्रयास भी नहीं करना। जितना पुरुषार्थ दूसरे के परिणामों की ओर ले जा रहा है, उतना पुरुषार्थ स्वयं की परिणति में ले जाए तो तेरी दुर्गति बंद हो जाए। आयु के निषेक कहाँ जा रहे हैं? भावों की धारा कहाँ जा रही है? किसी को मत संभालो। जैसे वस्त्र स्वच्छ करके आए हो, जितनी मेहनत वस्त्रों के धोने में की है, उतनी मेहनत भावों के धोने में कर ली होती तो वस्त्र पहनने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। वस्त्र वे ही ध ारण कर पाते हैं जिनके भाव नहीं धुल पाते हैं। जिनके भाव धुल जाते हैं, उनको वस्त्र पहनने की आवश्यकता समाप्त हो जाती है। इसी का नाम योगी है। जो वस्त्र धोता रहता है, तब तक भोगी होता है और जिसको वस्त्र धोने की आवश्यकता समाप्त हो जाती है, जो मात्र भावों को धोकर बैठता है, उसका नाम योगी है।

यदि बुरा लगता हो तो वस्त्रों के धोने के समय को कम कर दो और भावों के धोने के समय को बढ़ा दो, तो तेरे वस्त्र उतर जायेंगे। यदि आपसे 24 भगवंतों का नाम भी न बनता हो, तब भी तुम्हारा कल्याण हो जाएगा। इतना ध्यान रखना, भगवान् का नाम ध्यान न रहे तो विकल्प मत करना, परन्तु भगवान् की भक्ति कम न होने पाए। समझो, वस्त्र धोने का समय कम कर दो, उस समय को भावों को धोने में देना प्रारंभ कर दो। जब मोटे-से-मोटे वस्त्र ब्रुश के चलने से, साबुन के लगने से फट सकते हैं, तो बार-बार तू निज का ध्यान करेगा तो कर्म के वस्त्र भी फट जायेंगे और तू भगवानात्मा बन जाएगा। अज्ञानी कहता है कि कपड़े धुल रहे हैं और ज्ञानी कहता है कि कपड़े फट रहे हैं। जब-जब धुल रहे थे, तब-तब फट रहे थे कि नहीं?

एक-एक क्षण-क्षण में वस्त्र फट रहे थे। हे ज्ञानी! उस दृष्टि को दूसरी ओर पुनः ले जाइए, भोगों का ब्रुश चल रहा है और आत्मा में रखा पुण्य का वस्त्र तेरा नष्ट हो रहा है। जितनी पुण्य की चद्दर तूने बढ़ाकर रखी थी, तेरे पुण्य का द्रव्य तेरे द्वारा ही नष्ट हो रहा है। यदि भीख मांगने के लिए कटोरा हाथ में आएगा तो किसी दूसरे के द्वारा नहीं दिया आएगा, स्वयं के द्वारा ही आएगा। सोने-चाँदी के बर्तनों में भोजन करने को मिलेगा, वह भी तेरे द्वारा ही स्थापित किया जाएगा। इसलिए परकर्त्तृत्व को यहाँ से हटा दीजिए। कहाँ से? निज के हृदय से परकर्त्तृत्व भाव का विसर्जन कर दोगे तो हर व्यक्ति के प्रति आपका मैत्रीभाव हो जाएगा।

कपड़े नहीं उतारना चाहिए पहले, पिच्छि-कमण्डलु नहीं लेना चाहिए पहले। पहले तो घर में बैठकर कर्तृत्व भाव पर विचार करना चाहिए। जैसे ही परकर्त्तृत्व भाव हट जाएगा, वैसे ही आपके अंदर मुनित्व भाव प्रकट होना प्रारंभ हो जाएगा। फिर आप कपड़े उतारकर बैठोगे तो सच्चे भावलिंगी मुनि बनकर बैठोगे। कारण पूछो क्यों? पंखा दूध के ऊपर उन्हें चलाना पड़ता है, जो बर्तन को अग्नि से उतारे बिना और शीघ्र ही पीना चाहते हैं। आप तो दूध के बर्तन को अग्नि से उतारकर जमीन पर रख दो, तब तक णमोकार की माला फेरो, तुझे पंखा भी नहीं हिलाना पड़ेगा, फूँकना भी नहीं पड़ेगा और भगवान् का ध्यान भी हो जायेगा।

वे वीतरागी तपोधन, धरती के देवता, निस्पृही योगी, निज शांत-स्वांत स्वभाव में लीन होकर, तब भी अंजुलि लगाकर श्रावक के घर की ओर जा रहे हैं। और क्या चिंतन कर रहे हैं? पैरों के नीचे जिसे आप दबाकर चलते हो, उसकी रक्षा भी करते हो। वे चरणपादुकाएँ तेरे चरणों की रक्षा कर रही हैं तो तेरी दृष्टि भी रहती है कि ये सुरक्षित रहनी चाहिए। क्यों? उनकी सुरक्षा के लिए सुरक्षित नहीं कर रहे हो आप। पैरों की रक्षा न होती होती, तो इतना वजन तू क्यों खींचता? चरणपादुका की जो तू रक्षा कर रहा है। कहता यह है कि मेरी चरणपादुका हैं, परन्तु दृष्टि यह भी है कि ये नहीं होंगी तो कांटा मुझे ही लगेगा। ऐसे वे निर्ग्रंथ तपोधन, वे भी स्वार्थी हैं। एक ओर क्या कह रहे हैं—"स्वार्थ त्याग की कठिन तपस्या बिना खेद जो करते हैं" और मुनियों से बड़ा स्वार्थी जगत् में कोई होता नहीं है। ध्रुव सत्य है कि जो स्वार्थी होता है, वही मुनि बनता है और फिर महास्वार्थी होता है मुनि बनकरके। स्वार्थी। मैं स्वयं के मोक्ष जाने के लिए मुनि बना हूँ, तुम्हारे निर्वाण जाने के लिए मुनि नहीं बना हूँ। कितने स्वार्थी होते हैं। स्वयं के लिए, स्वार्थी। फिर, स्वार्थ-त्याग की कठिन तपस्या? हाँ, जो इन्द्रियविषय सुखभूत स्वार्थ है, उनका त्याग करके मुनि बनते हैं। परन्तु आत्मस्वार्थ को ही छोड़ देंगे तो बिना प्रयोजन तो चींटी भी नहीं चलती है, हम क्यों चलेंगे? तुम निर्ग्रंथ बनकर यूँ ही घूमोगे तो उद्देश्य क्या है, स्वार्थी? जैसे एक पथिक पैरों में चरणपादुका धारण करता है अपने स्वार्थ के लिए। यदि वे विदीर्ण हो

जायेंगी, नष्ट हो जायेंगी तो उसका पैर भी छिल जायेगा। ऐसे ही दिगम्बर मुनि जब आहारचर्या को निकलते हैं, ये महास्वार्थी होते हैं। ये शरीर को भोजन कराना नहीं जानते हैं, शरीर चलेगा तो मेरी साधना चलेगी। अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए शरीर को भोजन कराने जाते हैं। कितना स्वार्थ है? कितने मतलबी होते हैं महाराज लोग देह के प्रति भी? अपने को लगता है कि आहार लेने जा रहे हैं, परन्तु वे उससे भी काम निकालने जा रहे हैं। और कितना दे रहे हैं? जितने से काम बन जाए। जिससे काम लेना है, घर में कोई अनुचर है, उसे उतना ही खिलाना-पिलाना जिससे वह सो न जाए। यदि आपने उसकी सीमा से ज्यादा खिला दिया, तो वह सो जाएगा और तेरे घर में डाका पड़ जाएगा। ऐसे-ही इस देह को आपने इतना गरिष्ठ खिला दिया, इतना अधिक दे दिया, तो वह सो जाएगा और कर्मचोर रत्नत्रय धर्म को चुराकर ले जायेंगे। प्रमाद आया, जीव सोया और सोते-सोते कहीं मृत्यु हो गई तो सल्लेखना कैसे होगी?

कोई भी दोष हो, तो तुरन्त प्रायश्चित करो। क्यों? क्योंकि कर्मबंध का कोई समय नहीं होता है, कर्म कोई सूचना देकर नहीं आते हैं कि अब शुभ कर्म आयेंगे, अब अशुभ कर्म आयेंगे। प्रतिक्षण कर्म आते हैं तो उनका शुभाशुभ परिणमन कैसे होता है? यों होता है, नल की टोंटी से पानी निकल रहा था और एक ने उसमें नमक छिड़क दिया, तो पानी खारा हो गया और उसी क्षण में एक ने बूरा छिड़क दिया, तो पानी मीठा हो गया। पानी एक था, लेकिन नमक गया तो खारा, बूरा गया तो मीठा। ऐसे ही कर्म की धारा एक है। शुभ परिणाम हुए तो शुभ हो गया और अशुभ परिणाम हुए तो अशुभ हो गया। कर्म दो नहीं आते हैं, कर्म एक ही होकर आता है, यहाँ दो बन जाते हैं। जैसे एक माँ रोटी बनाते-बनाते ही मीठी रोटी बना लेती है और नमकीन रोटी बना लेती है, आटा वही होता है। ऐसे ही भगवान् बनने के लिए साधु बनने के लिए, न अलग से कोई शरीर लाना पड़ता है, न अलग से कोई परिणाम लाने पड़ते हैं। इसी शरीर से तू चाहे तो भगवान् बन जाए, चाहे तो नारकी बन जाए, अलग से शरीर लाना नहीं पड़ता है। बस, इतना ध्यान रखना। हाथ में क्या है? नमक या बूरा। इतना ध्यान रखना कि भावों में नमक है या बूरा। धर्म बहुत सरल है। जिनवाणी कहती है कि यदि तू धर्म का पालन करेगा तो धर्म तेरा पालन करेगा। निर्ग्रंथ तपोधन जा रहे हैं और चिंतवन क्या चल रहा है? आचार्य कुन्दकुन्द कह रहे हैं—'पोसदे भिक्खू।' भिक्खु यानि साधु। भिखारी नहीं, भिक्षु। ये दिगम्बर योगी भिखारी नहीं होते हैं, वे भिक्षु होते हैं। भिखारी वे होते हैं, जो कटोरा लेकर घूमते हैं। भिक्षु वे होते हैं, जो मात्र शरीर दिखाते हैं और कटोरे जिनके चारों ओर घूमते हैं। भिखारी रोटियों के पीछे घूमता है और रोटियाँ भिक्षु के पीछे घूमती हैं, दोनों में इतना अन्तर होता है।"

मुनिराज क्या सोच रहे हैं? इस देह को निहार रहे हैं। जो भोजन करते हैं अपन, उससे पहली धातु बनती है रस और दूसरी धातु बनती है रुधिर और रुधिर से बनता है मांस, मांस से आगे जो धातु बनती है वह है मेदा और मेदा से बनती है अस्थि और अन्तिम कोई धातु है शरीर में, धातुओं का राजा, उसका नाम है शुक्र यानि वीर्य। इस शरीर में ये सात धातुएँ भरी हुई हैं और मल-मूत्र पीव का समूह है। यह जो चर्म की चादर लिपटी हुई है, सो अच्छी चमक रही है। जरा-सा छिल जाए, फिर आँख से देखो तो वीभत्स दिखती है। ऐसे दुर्गंध से युक्त शरीर, जो अनित्य है, अचेतन है, पतनशील है, नाश होने वाला है, कब देह विलीन हो जाए कोई निश्चित नहीं है, श्वास कब निकले किसी को पता नहीं है। कल चर्चा कर रहे थे आपके साथ में, आज चर्चा उनकी हो रही है। भरोसा नहीं है कब किसका विमान सज जाए। इसलिए हमारी देह का विमान सजे, इसके पहले हमारे भावों का विमान तैयार हो जाए। भवातीत होने के लिए, इसलिए आज ही सबसे क्षमा माँग लेना। ईंट की दीवार पर किसी ट्रक की ठोकर लग जाए तो हो सकता है कि उसका एकाध डेला मिल भी जाए, परन्तु देह में ठोकर लग जाए तो बिखरा ही मिलता है। इसमें (देह) भरा ही क्या है? मल-मूत्र का पिण्ड है, अशुचिमय है, आत्मा से भिन्न है। वह देह फिर भी धर्म के अनुष्ठान का कारण है। इसलिए भिक्षु इस शरीर का भी पोषण करता है। दिन में एक बार आहार लेने जा रहे हैं। यह धर्म के अनुष्ठान का साधन है, इसलिए इसे (देह को) जबरदस्ती नष्ट मत कर देना। इसको एक बार भोजन देते रहोगे, आपका काम चलता रहेगा तो यह (शरीर) आपको शिवालय की यात्रा करायेगा।

आदहिदं कादव्वं जदि सक्कदे परहिदं च कादव्वं।
आदहिद परहिदादो, आदहिदं सुट्ठू कादव्वं॥

आत्महित करना चाहिए, संभव हो तो परहित भी करना चाहिए, परन्तु उत्कृष्ट यही है कि आत्महित ही करना चाहिए।

वे दिगम्बर योगीश्वर इस शरीर को सुरक्षित रखने के लिए आहार लेने नहीं जा रहे हैं। शरीर की दशा तो उनको मालूम है, परन्तु इस शरीर से रत्नत्रय की साधना होती है, इसलिए योगी इस (शरीर) की रक्षा करते हैं, आहार पानी देते हैं। मानव की देह स्वभाव से अपवित्र होने पर भी रत्नत्रय से पवित्र है। बुद्धिमान पुरुष रत्नत्रय की पूर्णता के लिए इसका पोषण करते हैं।

"आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

॥भगवान् महावीर स्वामी की जय॥

❖ ❖ ❖

युक्ताहारी साधु ही दु:खों के क्षय में समर्थ

संजम तव झाण ज्झयण विणाणए् गिण्हदे पडिगहणं।
वज्जदि गिण्हदि भिक्खू ण सक्कदे वज्जिदुं दुक्खं ॥111॥

अन्वयार्थ—(भिक्खू) भिक्षु **(संजम तव झाण ज्झयण विणाणए)** संयम, तप, ध्यान, अध्ययन व विज्ञान के लिए **(पडिगहणं)** प्रतिग्रहण /आहार **(गिण्हदे)** ग्रहण करता है वह यदि **(वज्जदि)** इन कारणों को छोड़कर **(गिण्हदि)** आहार ग्रहण करता है तो **(दुक्खं वज्जिदुं)** संसार के दु:खों को छोड़ने के लिए **(सक्कदे ण)** समर्थ नहीं हो सकता है।

वह साधु है क्या?

कोहेण य कलहेण य, जायण सीलेण संकिलेसेण।
रुद्देण य रोसेण य, भुंजदि किं विंतरो भिक्खू॥112॥

अन्वयार्थ—जो साधु **(कोहेण य)** क्रोध से **(कलहेण य)** कलह से **(जायण सीलेण)** याचना करके **(संकिलेसेण)** संक्लेश से **(रुद्देण य)** रौद्र परिणामों से तथा **(रोसेण य)** रुष्ट होकर **(भुंजदि)** आहार ग्रहण करता है वह **(किं भिक्खू)** क्या भिक्षु /साधु है? वह तो **(विंतरो)** व्यन्तर है।

भव्य बन्धुओ!

अन्तिम तीर्थेश भगवान् वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति। आचार्यप्रवर भगवान् कुन्दकुन्द स्वामी रयणसार जी ग्रंथ में श्रमण और श्रावक उभय धर्मों का व्याख्यान करते हुए समझा रहे हैं—अनंत-धर्मात्मक यह आत्मद्रव्य है। जगत् के जितने द्रव्य हैं, वे अनंतधर्मात्मक हैं। परन्तु विशेषता यह है, कि अनंतधर्मात्मक द्रव्यों में अनंत द्रव्यों को जाननेवाला यदि कोई द्रव्य है, उसका नाम जीवद्रव्य है। निज के धर्मों को पहचानने की सामर्थ्य किसी में है, पर के धर्मों को पहचानने की सामर्थ्य किसी में है, वह मात्र जीवद्रव्य है। शेष जो द्रव्य हैं, वे निजधर्म को पहचानने की भी सामर्थ्य नहीं रखते हैं। अहो जीव! तुझे वह शक्ति प्राप्त हुई है, जो जगत् के किसी द्रव्य को प्राप्त नहीं हुई है। सबको जानने, सबको समझने की सामर्थ्य किसी में है तो एकमात्र चैतन्य द्रव्य में है। हेय-उपादेय का विवेक कहीं है, तो एकमात्र जीव के पास है। जड़, जड़ हो तो उसमें विकल्प नहीं है, परन्तु चैतन्य की बुद्धि जड़ नहीं होनी चाहिए।

एक चींटी मक्खी को खींचे, मृतक केंचुए को खींचे, तो समझ में आता है, क्योंकि वह असंज्ञी है, विवेकहीन है। हे नर! मृतक केंचुए को खींचनेवाली चींटी को देखकर आपको लगता है कि यह क्या कर रही है? दूसरे की चमड़ी, दूसरे के नोकर्म को खींच रही है। उस चींटी ने मुख से दूसरे के चर्म का स्वाद लिया है, परन्तु हे ज्ञानी! पर की चमड़ी का स्वाद तूने आँखों से लिया है। यदि मुख से स्वाद लेते समय चींटी के कण्ठ में कुछ अनुभव होता है तो हे ज्ञानी! आँखों से जब तू दूसरे को निहारता है, तब तू कण्ठ में भी कुछ गटकते नज़र आता है। जैसे भीतर के भाव होते हैं, देह का परिणमन वैसा प्रारम्भ हो जाता है। इन आँखों से क्या-क्या किया है? लेकिन नेत्र कहेंगे कि हमने जो कुछ भी किया है, उसके लिए हमें दोष मत देना। दो नयन कह रहे हैं कि हे ज्ञानी! मेरे से तूने काम तो किया है, मेरे से तूने कर्म तो कराया है, परन्तु मैंने कोई कर्म किया नहीं है। सैन्यबल देश की सीमा पर है, कितने नष्ट हो रहे हैं सैनिक, कितनों को नष्ट कर रहे हैं सैनिक? तब भी सेना की विजय होती है, कि सम्राट की विजय होती है? कितने ही शहीद हो गये, लेकिन जब देश की ध्वजा फहराती है तो सैनिकों को तो पुरुस्कार मात्र मिलता है, परन्तु विजयश्री सम्राट की होती है। सेना की विजय नहीं हुई है, सेना ने विजय हासिल की है। ज्ञानियो! इन आँखों को दोष मत देना। आँखों ने तो तेरा काम किया है सेना की भांति। दोषी कोई है, विजय मिली है, विजय नष्ट हुई है, वह आँखों की नहीं हुई है, वह आत्मा की हुई है। जिसने आँखों को बंद करके आत्मा में ही लगाया है, उसकी विजय हो गयी और जिसने आँखों को पर की आँखों में लगाया है, उसकी हार हो गयी। चींटी को देख रहे थे, चींटी मांस के लोथड़े को खींच रही है, मृतक केंचुए को खींच रही है, हे ज्ञानी! उसने तो मृतक केंचुए को खींचा है, परन्तु तेरी आँखों ने कितने जिन्दा केंचुए खींच लिए? नारी ने नर के शरीर को खींचा, नर ने नारी के शरीर को खींचा। हे भविष्य की बननेवाली चींटियो! तुम अभी यों खींच रहे हो, फिर मरे हुए केंचुए खींचना। चींटी का सिर टूट जाए, शरीर टूट जाए, परन्तु लाल चींटी चिपक जाए तो छूटती नहीं है। कमर टूट रही है, सिर फूट रहा है, परन्तु ज्ञानी! तू चींटी जैसा चिपका है भोगों में, उसे छोड़ नहीं पा रहा है।

इन्द्रियों को दोष मत देना, आँखों को दोष मत देना। जैसी आँखें आपके पास हैं, वैसी ही आँखें निर्ग्रंथों के पास हैं। आँखों को दोष मत दो, देखनहारे से मिलो; जो देख रहा था और देखते-देखते आनंद ले रहा था। उस विषयानंदी से पूछो कि पड़ौसी का भवन खड़ा हो गया, आप ज्यों-के-त्यों ही क्यों हो? आँखों से नहीं मिलना, देखनहारे से मिलो। ऊँचाइयाँ, गहराइयाँ और निम्नता, ये दूसरे के हाथ में नहीं है, मेरे स्वयं के हाथ में है और कितना अपकर्ष कर सकता हूँ, यह मेरे हाथ में है। जीवन का उत्कर्ष-अपकर्ष पर सापेक्ष नहीं है। जीवन का उत्कर्ष-अपकर्ष

स्वसापेक्ष है। मेरा विकास, मेरा ह्रास दूसरे के हाथ में नहीं है। इस भ्रम को निकाल देना कि मेरा अपकर्ष अमुक व्यक्ति ने करवाया है, या मेरा उत्कर्ष अमुक व्यक्ति ने करवाया है। यह निमित्तप्रधान कथन तो है, लेकिन ध्रुव सत्य यह है कि यदि उपादान तेरा पवित्र है तो उत्कर्ष तेरे हाथ में है। यदि उपादान हीनता की ओर प्रवृत्त हो रहा है, तो अपकर्ष ही होगा।

आपकी जेब में सौ का नोट हो और आपका बालक एक रुपये की गोली माँगे, तो आपको थोड़ा विकल्प होता है कि एक रुपये की गोली के लिए सौ का नोट कौन तुड़वाये। मन में भाव क्या आ रहा है? सौ का नोट टूट गया तो फिर वह जल्दी समाप्त हो जाएगा और रखा है तो रखा ही है। भो ज्ञानी! जब तुझे इतना विवेक, इतना ज्ञान है, तो तू पूर्व की पर्याय में एफ.डी. बनाकर लाया था, उसको यहाँ एक रुपया तो बहुत बड़ी बात है, पर की पर्याय को, पर के नोकर्म को देखने में अपने पुण्य को क्यों तोड़ रहा है? इधर तू पुण्य लेकर आया था, इसमें शंका नहीं करना। विश्वास रखो, पुण्य लेकर आए थे आप, और कहाँ-कहाँ तोड़ा है कहाँ-कहाँ नष्ट नहीं किया है। सुबह जागकर जब हड्डी पर हड्डी घिस रहे थे, तब भी पुण्य नष्ट हो रहा था। उस समय तेरा विवेक कहाँ चला गया था? आयुकर्म का क्षय हो रहा है, पुण्यकर्म का क्षय हो रहा है। धन्य हों वे धरती के देवता, निर्ग्रंथ तपोधन, जो कभी मुख में अंगुली ही नहीं डालते, दाँतों को ही नहीं धोते हैं। अदंतधावन नाम के मूलगुण का पालन करते हैं। हड्डी के घिसने में अपने समय को नष्ट नहीं करते हैं।

ज्ञानियो ! क्या किया? किन-किन कार्यों में पुण्य को नष्ट किया है? भैया! जितने बड़े शहर में रहो, उतना अधिक पैसा चाहिए पड़ता है। शहरों में सुखमय जीवन उसी का है, जिसके पास पैसा है। जिनके पास पैसा नहीं है, उनका शहर में रहना दुःखमय है। सुनो ध्यान से, हर वस्तु के लिए पैसा चाहिए पड़ता है कि नहीं? यहाँ तक कि तुझे अपने घर की नाली भी साफ करवानी पड़ेगी तो उसके लिए भी पैसा चाहिए। यह बताओ, घर की नाली साफ करवाने के लिए जिसे पैसा दिया जाता है, वह पैसा अलग होता है क्या? और भोजन के लिए जो पैसा देना पड़ता है, वह अलग होता है क्या? दोनों पैसों के कमाने की शैली अलग होती है? एक ही होती है। ज्ञानी! जिस दिन तूने पैसा कमाना शुरू किया था, उस दिन की याद करना, और प्रथम दिन जो कमाकर लाया था, जितना राग तुझे अपने बेटे में नहीं हुआ है, उससे कई गुना राग तुझे उस टुकड़े में हुआ था और मुस्कुराकर कहता है—माँ! आज कमाकर लाया हूँ। जब कमाने गया था तो घर में विराजी माँ को छोड़कर गया था, जनक को भी छोड़कर गया था, बेटे की माँ को भी छोड़कर गया था, और सोचकर गया था कि पैसा कमाकर लाऊँगा। उस समय शून्य होकर पैसा कमा रहा था। शून्य से तात्पर्य है कि सम्पूर्ण विकल्पों को छोड़ दिया था, मात्र पैसा

दिख रहा था। उस समय तूने नहीं सोचा था कि पूरे वीर्यांतराय कर्म का क्षयोपशम लगा रहा हूँ। पैसा कमाते समय बुद्धि भी लगी थी। बिना ज्ञान के तो पैसा कमाया नहीं जाता। आज आत्मा की अपूर्व शक्ति है, जो आत्मा की मौलिक शक्ति है। जो आत्मा का मौलिक गुण है, उसका नाम ज्ञान-दर्शन है। उस ज्ञान-दर्शन का उपयोग भी तूने पैसे के लिए किया था।

आप घर की नाली पर खड़े हुए हो और जो नाली को साफ करने आया है, उसको वही पैसा आप दे रहे हो। हे ज्ञानी! इतनी मेहनत से द्रव्य कमाया और उसको तूने नाली साफ करने में लगाया है। नगर छोड़कर भी जाना पड़ा था, कहाँ-कहाँ घूमकर पैसा कमाकर लाए थे। परन्तु घर में आकर उसका व्यय कहाँ किया? जिस नाली में तू मल विसर्जन करता था, तू स्नान करता था, तू लघुशंका जाता था, ऐसी घर की नाली को साफ कराने में तूने उस पैसे का व्यय किया है। इतना पुरुषार्थ तूने इसलिए किया था क्या? पैसे कमाने की विधि तो एकजैसी थी, प्रयोग कहाँ किया है? दृष्टांत पर ही नहीं झूलते रहना, अब भीतर जाना है। तीनलोक के नाथ के मस्तक पर तू जल की धारा छोड़ रहा था और उस धारा को देखकर दिगम्बर मुनि भी खड़े हो गए, यह भव्यजीव भगवान् का अभिषेक कर रहा है। जैसे ही तूने अभिषेक किया, मुनिराज भी अनुमोदना करने खड़े हो गए। तीर्थंकर बालक का अभिषेक होता है सुमेरु पर्वत पर। हरिवंश पुराण में आया कि आकाशमार्ग से ऋद्धिधारी मुनिराज जा रहे थे, उनके भी मन में आह्लाद आया, अहो! सहज नियोग मिला है। सौधर्म इन्द्र तो 170 तीर्थंकरों का अभिषेक कर लेता है, मुझे तो आज पहली बार देखने को मिला है इन आँखों से। वे भी खड़े होकर निहार लेते हैं। यद्यपि मुनिराज पूज्य होते हैं, वे जिनबालक थे, परन्तु जिनबालक हर समय महान् ही होते हैं। मुनिराज भी अभिषेक को खड़े-खड़े निहार रहे थे। निर्ग्रंथ मुनि के हाथ पर ग्रास रखा, अहो दाता! अहो पात्र! देखने वालों के भी हृदय गद्गद् हो जाते हैं। भैया! सिंह, सुअर, नेवला, बंदर, इन जीवों ने भी जब मुनिराज के आहार देखे, तो उनके मन में भाव आए, कि हे भगवन्! काश मैं मनुष्य होता, तो मैं भी मुनि के हाथ पर ग्रास रख लेता। भैया! सुनो, जब तक तुम्हारे ये हाथ स्वच्छ हैं, शरीर काम कर रहा है, मन अच्छा है, तब तक निर्ग्रंथों के हाथ पर ग्रास रख लेना, अन्यथा कभी सिंह, सूअर, नेवला, बंदर जैसे प्राणी बने तो कह ही पाओगे, रख नहीं पाओगे।

भविष्य का भगवान् ही भगवान् का अभिषेक कर पाएगा। भविष्य का निर्ग्रंथ ही निर्ग्रंथ के हाथ पर ग्रास रख पाएगा। निर्ग्रंथ को आहार दिए, अरिहंत का अभिषेक किया और पुण्य का द्रव्य संचित किया, उस स्थान को जरा देख लो, मैंने द्रव्य इकट्ठा कहाँ किया था? और अब उस द्रव्य का उपयोग कहाँ कर रहा हूँ? पुण्यद्रव्य का संचय पंचपरमेष्ठी के चरणों में किया था, ऐसे पुण्य के द्रव्य को तू नष्ट कर रहा है तो पाँच पापों में कर रहा है। तू कर क्या रहा है?

अरिहंत के चरणों में इकट्ठा किया द्रव्य तू भोगों की नाली में लगा रहा है। ज्ञानी! तूने कौन-सा अच्छा काम किया है? इतने पुरुषार्थ से प्राप्त द्रव्य को तू लगा कहाँ रहा है? कोई भी वस्तु खरीदो तो पैसा खर्च होता है। यदि एक नेत्र का पलक ऊपर किया, इतने में भी तेरा पुण्य खर्च हुआ है। किसी के अशुभ शब्द को सुनने में मन लगाया है, तो पुण्य खर्च किया है। और किसी को अशुभ शब्द कहने में मन लगाया है, तो भी पुण्य को खर्च किया है। जब आप सौ के नोट को एक रुपये के लिए खर्च करना पसंद नहीं करते हो, तो दूसरे को गाली देने के लिए अपनी इतनी बड़ी पुण्य की एफ.डी. को क्यों खर्च करते हो? अब यदि कोई प्रसंग भी खड़ा हो जाए और मन उद्वेलित करे बार-बार कि बोलना है, फिर भी नहीं बोलना। एफ.डी. दूसरे की खर्च नहीं होगी, मेरी होगी। घर के झगड़ों में अपना द्रव्य नष्ट मत करना। अंत में होता क्या है? समझौता। दोनों हो गए खाक कि अब कर लो समझौता। पहले ही कर लेते समझौता, तो पुण्य का द्रव्य तो नष्ट नहीं होता।

जिन लोगों को परस्पर में अपनी प्रीति को जीवंत रखना है, वात्सल्य को जीवंत रखना है और हृदय को स्वच्छ रखना है, तो सबसे दूरी बनाकर रखो। पूज्यों से भी दूरी बनाकर रखना, जिससे उनकी विनय तुम करते रहोगे और पास रहोगे तो विनय में कमी आ जायेगी। पिता-पुत्र को भी अधिक पास में नहीं रहना चाहिए, थोड़ी दूरी बनाकर रखो, जिससे बेटा तुम्हारा सम्मान करता रहे। पिता का कर्त्तव्य है कि हर बात पर बेटे को अरई लगाना छोड़ दो।

पुण्य के द्रव्य को जहाँ से कमाकर लाए हो, पैसा खर्च करते समय पैसे की कमाई का दिन याद आ जाए तो हाथ का पैसा जो दूसरे को देने वाला था वह हाथ खींचने लगता है, संकुचित हो जाता है। ऐसे ही जिस दिन तू जहाँ से पुण्य कमाकर लाया है, उस स्थान का ध्यान करने लग जाएगा, तो यह पुण्य का द्रव्य खर्च करने में थोड़ा तो विवेक जागेगा। व्यर्थ का वचनालाप कर रहे हो, उससे भी पुण्य क्षय हो रहा है। व्यर्थ का सोच रहे हो, इससे भी पुण्य का क्षय हो रहा है। अपने घर में कोई वस्तु पुरानी रखी हो और वर्तमान में उसकी प्राप्ति का कोई दूसरा उपाय नहीं दिखता है, तो क्या उसे बारिश में छोड़ देंगे? धूप में डाल देंगे क्या? उसको सुरक्षित रखते हैं कमरे में, अलमारी में। अभी कोई पुण्य का नया स्त्रोत नहीं समझ में आ रहा तुम्हें तो जितना तुमने संग्रहीत किया था उसको सुरक्षित रख दो। भविष्य की याद है कि नहीं? हर वस्तु को अच्छे से देखना प्रारंभ करो। भिखारी भी गली से निकले तो उसको देख लिया करो अच्छे से, सुंदर हृष्ट-पुष्ट शरीर वाले भी भीख माँगते मिल जायेंगे। फिर सोचना कि यह क्या हुआ इसके साथ? बुद्धि काम नहीं कर रही है, पुण्य क्षीण हो चुका है, इसने निर्माल्य का खाया होगा, धर्म का खाया है अथवा गरीबों को सताया है। भिखारी को बिल्कुल भी शर्म नहीं होती है, दरिद्री के

सामने भी हाथ फैला देता है कि दे-दो। भैया! पैसे के दरिद्री हो जाओ तो टेंशन मत लेना, परन्तु श्रद्धा से दरिद्री मत हो जाना, क्योंकि पंचपरमेष्ठी की श्रद्धा से ही पैसा आया था। पैसे से पैसा न कभी आया, न आयेगा। दासी के घर का दास बन लेना, परन्तु परमात्मा के प्रति श्रद्धा को मत छोड़ देना।

कभी-कभी विपत्ति के समय में लोग सबसे पहले धर्म को छोड़ते हैं। बड़ा आश्चर्य है, सबसे पहले भगवान् को दोष देते हैं। बोले कि इतने दिन पूजा करते-करते हो गए, मेरे साथ क्या हुआ? छोड़ो भगवान् के मंदिर जाना। ऐसा क्यों नहीं बोलते हो कि मंदिर जाते रहे तो तुम बचे हो, मंदिर न जाते होते तो तुम भी नहीं मिलते। कितनी ही बड़ी विषमताएँ आ जाएँ, मैं कौड़ीपति से करोड़पति हो जाऊँ तब भी और करोड़पति से रोड़पति हो जाऊँ तब भी, पंचपरमेष्ठी की श्रद्धा से दूर नहीं जाऊँगा। जाने का मन न भी करे मंदिर में, तब भी जबरदस्ती चले जाना। दु:ख के दिन होते हैं, तो मुख में रोटी खाने की इच्छा नहीं होती, लेकिन तब भी रोटी खाता है कि नहीं? जबरदस्ती भी खाएगा तब भी सप्तधातु बनेंगी उस रोटी से। यदि जबरदस्ती, बिना मन के भी, मंदिर गया है, तब भी विश्वास रखना, पुण्य का आस्रव नियम से होगा। ठीक है, यदि प्रसन्नचित्त होकर खाता रोटी, तो जो स्वच्छ धातु बननेवाली थी, वैसी चित्त की अप्रसन्नता में नहीं बनती, लेकिन बनती अवश्य है। ऐसे ही हृदय को गद्गद् करके भगवान् के पास जाएगा तो जैसा पुण्य का संचय होता है, वैसा बिना मन के जाने पर नहीं होगा, लेकिन पुण्य संचय तो होगा। संकट के दिनों में मित्र के घर में नहीं जाना, संकट के दिनों में ससुराल नहीं जाना, संकट के दिनों में मात्र पंचपरमेष्ठी के द्वारे जाना। बहन के घर और ससुराल भूलकर मत जाना संकट के दिनों में। ये दो स्थान ऐसे हैं कि आपत्ति के समय इन दोनों स्थानों पर अनादर होता है। बस, जाना है तो पंचपरमेष्ठी के चरणों में चले जाना और जो कुछ होगा, वही होगा।

चत्तारि सरणं पव्वज्जामि
अरिहंत सरणं पव्वज्जामि, सिद्धे सरणं पव्वज्जामि,
साहू सरणं पव्वज्जामि, केवलि पण्णत्तं-धम्मं सरणं पव्वज्जामि।

जिसके पास चार-चार शरण बैठे हों, ऐसा पुण्यात्मा होकर भी कैसा अभागा होगा जो दुनियाँ के चबूतरों पर भटकने जाएगा।

आचार्यभगवन् कह रहे हैं कि वे वीतरागी तपोधन शरीर को चलाने के लिये आहार लेने जा रहे थे। वे क्यों लेने जा रहे थे, आहार की क्या आवश्यकता पड़ गई, वह समझा रहे हैं—

भैया! जिन-जिन को मुनिराज बनने के भाव आ रहे हों, वे सब बड़े ध्यान से सुनना, नहीं-तो तुम पूरी समाज को लजाओगे। मुनिराज आहार क्यों लेते हैं? संयम के पालन के लिए, तप व ध्यान की सिद्धि के लिए, अध्ययन के लिए और वीतरागविज्ञान स्वभाव की प्राप्ति के लिए जो साधु आहार ग्रहण करता है, वह संसार से मुक्त हो जाता है और इनको छोड़कर जो साधु आहार लेता है, वह संसार के दुःखों से मुक्त होने वाला नहीं है। शरीर के तेज के लिए, विषयों की पुष्टि के लिए यदि आहार लेते हैं, तो उनका संसार नष्ट होनेवाला नहीं है। और क्या कह रहे हैं कुन्दकुन्द स्वामी? साधु बन गए, अंजुलि लगाकर चल दिए और तनिक-सी इच्छा के विपरीत चर्या हो गई, सो आग-बबूला हो गए, बोले—कुछ नहीं बनता तो क्यों लगाकर बैठ गए चौका? हे महाराज! तुमने क्या दिया है? उसने सुबह से इतना श्रम किया है, उसकी भावनाओं से तो पूछो, जितना अच्छा अपने बेटों को नहीं खिला पाया, उतना आपको बनाकर खिला रहा है। आपको तनिक तो विवेक से बात करनी चाहिए। (यह साधुओं को समझा रहे हैं।) भैया! साधु आयें घर में, तो होली, दीपावली जैसा पर्व दिखाई दे, तब तो आनंद आए कि साधु पधारे हैं। साधु नगर में आए अथवा घर में पधारे और घर में क्लेश दिखने लग जाए, तो श्रावक कहेगा, भैया! कहाँ भूल कर ली हमनें? चौका लगाया क्यों? यह आपत्ति खड़ी कर ली सिर पर कि आओ बैल, मुझे मारो। नगर में साधु पधार जायें और संघ शांत है, तो समाज में रोज पर्व मनता है और साधु क्लेश करें, आपस में ही झगड़ते हों, तो विश्वास मानो, नमोऽस्तु करने तो जायेंगे श्रावक, परन्तु मन करता है, क्या करूँ एक महीना और बचा है, पन्द्रह दिन और बचे हैं, अब तो विहार हो ही जाएगा। इतने तुम महान् हो कि समाज को सोचना पड़ रहा है कि अब पन्द्रह दिन और बचे हैं। सुनो, मुनि बनकर क्लेश मत करना किसी के घर जाकर। नारी की लज्जा और साधु की लज्जा, ये दो गुण नष्ट नहीं होना चाहिए। याचनाशील नहीं होना चाहिए, साधु को कभी किसी से कुछ माँगना नहीं चाहिए। महाराज बन गए, अब अंजुलि लगाये खड़े हो और श्रावक से इशारे में वस्तु मँगा रहे हो। अरे ज्ञानी! यह अरिहंत की मुद्रा है, तीर्थंकर की मुद्रा है, इस मुद्रा में आप लड्डू माँग रहे हो। नहीं, भैया! उपवास कर लेना, न मिले तो समाधि ले लेना, लेकिन जिनमुद्रा में तुम कोई भी वस्तु मत माँगना। याचना नहीं करना, क्योंकि जिनशासन भिक्षुओं का मार्ग है, भिखारियों का मार्ग नहीं है। और संक्लेश परिणामों से, रौद्र परिणामों से ऐसा रूप बना लिया, बोले कि तुम ऐसा काम करो, नहीं तो सब भस्म हो जाओगे। हे महाराज! आयुकर्म के क्षय से मेरी मृत्यु होगी। तुम्हारे कहने से मैं भस्म हो गया होता तो कौवा के कोसने से ढोर नहीं मरते। किसी के श्रापों से मरण हो जाता तो जगत् में कोई बचता ही नहीं। किसी के वरदानों से मालामाल हो जाते तो कोई गरीब नहीं बचता।

आहार लेते जा रहे हैं और मिसमिसाते जा रहे हैं, कि अच्छा नहीं मिला। जो साधु आहारचर्या को गया, हूँ-हूँ, हाँ-हाँ, ही-ही कर रहा है, आँखें निकाल रहा है और संकेत कर रहा है, आचार्यभगवान् कह रहे हैं—यह भिक्षु है या व्यंतर है? जिनमुद्रा प्राप्त करके भी, मुनिराज बनकर भी ऐसा कर रहा है, वह भिक्षु है कि व्यंतर है? इसलिए ध्यान रखना, साधु की दृष्टि कैसी हो? नीचे जो पात्र रखा है, उस पर दृष्टि रखना कि कोई जीव न गिर जाए और दृष्टि अंजुलि पर रखना, ताकि अभक्ष्य सामग्री न आ जाए। और जो देनेवाला है, एक हल्की-सी दृष्टि उस पर डाल देना, कोई अंधा-लूला-लंगड़ा तो नहीं है, नेल-पॉलिश लगाकर आ गया हो, लिपिस्टिक आदि लगाकर आ गया हो। इतनी दृष्टि रखना। बाकि, शर्म आना चाहिए कि कब तक खायेंगे? हे भगवन्! वह दिन कब आए जब यह आहार लेना बंद हो जाए।

अनशन स्वरूपोऽहम्।

बस, ऐसी भावना भाना चाहिए, परन्तु पुद्गल के टुकड़ों के राग में अरिहंत की मुद्रा को बदनाम नहीं करना।

"आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

॥भगवान् महावीर स्वामी की जय॥

❖ ❖ ❖

आहारशुद्धि संदेश

दिव्वुत्तरण-सरिच्छं जाणिच्चाहो धरेदि जदि सुद्धो
तत्तायस-पिंडसमं, भिक्खू तुह पाणिगद-पिंडं॥113॥

अन्वयार्थ—(अहो) हे **(भिक्खू)** भिक्षुक /मुनि **(जदि)** यदि **(तुह पाणिगद पिंडं)** तुम्हारे हाथों में गया पिण्ड **(तत्तायस पिंड समं सुद्धो)** तपाये हुए लोहे के पिण्ड के समान शुद्ध है तो उसे **(दिव्वुत्तरण-सरिच्छं)** दिव्य नौका के समान **(जाणिच्चा)** जानकर **(धरेदि)** ग्रहण कर।

पात्रों के अनेक प्रकार

अविरद देस महव्वय, आगम-रुइणं वियार-तच्चण्हं
पत्तंतरं सहस्सं, णिद्दिट्ठं जिणवरिंदेहिं ॥114॥

अन्वयार्थ—(अविरद देस महव्वय) अविरत सम्यग्दृष्टि, देशव्रती, महाव्रती **(आगम रुइणं)** जिनागम में रुचि रखने वाले **(वियार-तच्चण्हं)** तत्त्वों के विचारक की अपेक्षा **(जिणवरिंदेहिं)** जिनेन्द्रदेव ने **(पत्तंतरं सहस्सं)** हजारों प्रकार के पात्र **(णिद्दिट्ठं)** कहे हैं।

भव्य बन्धुओ!

अन्तिम तीर्थेश भगवान् वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति। आचार्यप्रवर भगवान् कुन्दकुन्द स्वामी इस भारतभूमि के ऐसे अलौकिक महाश्रमण हुए, जिन्होंने तीर्थंकर महावीर स्वामी की वह अध्यात्म विद्या जन-जन के हृदय में परोस दी। वस्तुव्यवस्था व्यवस्थित है। श्रेय-अश्रेय यह जीव का यश-अपयश नामकर्म की प्रकृति के उदय से है। किसी भी व्यवस्था को कोई पुरुष चाहे कि मैं इसे अनवस्थित कर सकूँ, तो यह उसके हाथ में नहीं है। आज आप जिस भूमि पर बैठे हो, कभी यहाँ पर हल चला करते थे। ज्ञानी! सबके दिन एक-से नहीं होते। जब भूमि के भाग्य बदल सकते हैं, तो भगवानात्माओं के परिणाम कैसे नहीं बदल सकते हैं? जो आनंद अखण्ड में है, वह आनंद खण्ड-खण्ड में नहीं है। पंचमकाल में निर्वाण नहीं होता है, यह ध्रुव सत्य है। वहाँ सिद्धशिला पर एक में अनेक विराजते हैं। हे ज्ञानियो! यदि आपको उस सिद्धशिला पर एकसाथ बैठना है तो यहाँ एकसाथ बैठना सीख लोगे तो वहाँ सिद्धशिला पर भी एकसाथ बैठ लोगे। ज्ञानी! जो यहाँ एकसाथ बैठ पाएगा, वह सिद्धशिला पर भी एकसाथ बैठ पाएगा। वर्तमान में बैठना तो सीख लो। जिसके अंतस् में एकत्व भाव नहीं, जिसके अंतस् में साम्य भाव नहीं, मृदुल भाव नहीं, वह सिद्धशिला पर कैसे बैठ पाएगा।

मन्दिर में जाकर हाथ जोड़कर नमस्कार करना भगवान् को, वे बन चुके भगवान् हैं। क्षमावाणी के दिन आप हाथ जोड़कर परस्पर क्षमा माँग रहे हो, ये बननेवाले भगवान् हैं। पाषाण की प्रतिमा में तो कोई संवेदना नहीं है, परन्तु जो घर में बैठे भगवान् हैं, इनमें संवेदनाएँ हैं। घर में बैठे भगवान् को नहीं पहचान पाओगे तो पाषाण में अरिहंत को क्या पहचान पाओगे? भाई बिलख रहा हो, माँ रुदन कर रही हो और बेटा कह रहा हो—माँ! मैं श्री जी की पूजा करने जा रहा हूँ। बेटे! श्री जी की पूजा करने तो जाना तेरा धर्म है, लेकिन साथ में इतना ध्यान रखना, श्री जी से श्री जी नहीं बने हैं। पाषाण से पूछ लेना, वह भगवान् कैसे बने हैं। शिला पड़ी थी ज़मीन पर और किसी पथिक का पैर लग गया। एक पुष्प की कली मुस्कुरा रही थी। जगत् में भी तो दिख रहा है कि फूलते वे ही हैं, जो फूल (Fool) होते हैं। दूसरे के कष्टों को देखकर मुस्कुरा जाना, यह कोई महानता नहीं है। यदि आपके अंदर क्षमता है, वीरता है, तो दूसरे के सुख को देखकर मुस्कुराना सीखो तो मानें कि तुम धर्मात्मा हो। दूसरे के दु:ख को देखकर मुस्कुरा जाना, यह साधु लोगों की पहचान नहीं होती है। जो दूसरे के सुख को देखकर सुखी हों और दूसरे के दु:ख को देखकर दु:खी हों, उनका नाम साधुपुरुष है। पुष्प की कली मुस्कुरा दी, जगत् की लीला ही ऐसी है। वह पाषाणखण्ड सोचता है—"सबके दिन एक-से नहीं होते।" जिनवाणी के अनेक पृष्ठों को समझ पाओ या न समझ पाओ, परन्तु इतना सूत्र समझ लेना कि "घूरे के दिन भी बदलते हैं।"

शिल्पकार ने छैनी-हथौड़ा मारकर देखा कि पाषाण तो उत्तम है। और जैसे-ही छैनी पड़ती है पाषाण पर, पुष्प की कली पुन: मुस्कुराती है। अभी तो ठोकरें खा रहा था, अब छैनी पड़ रही है। महान् बनना है तो सहन करना होगा। जो सहन करना नहीं सीख पाता है, वह कभी महान् बन नहीं पाता है। दो शक्तियाँ जीव को महान् बनाती हैं। एक का नाम सहनशक्ति है और दूसरी का नाम उत्साहशक्ति है। जीवन में चाहे साधु हो, चाहे श्रावक हो, चाहे राजनेता हो, चाहे धर्मनेता हो, दो शक्तियाँ उसे सदैव अपने हृदय में लेकर चलना पड़ेंगी। सहनशक्ति कैसी हो आपकी? जमीन में बीज पड़ा है, ऊपर से मिट्टी भी किसान छोड़ देता है, कभी-कभी उस खेत पर से निकल भी जाता है, तब भी अंकुर कहता है कि मेरी शक्ति है, सबको सहन करके ऊपर निकल आऊँगा, तो आकाश में मेरे ऊपर दाने आयेंगे, तब सभी मुझको ही निहारेंगे। मिट्टी के अंदर बीज को कौन देखता है? जब मिट्टी में पड़ा-पड़ा सहन कर लेता है और उत्साहशक्ति से उग आता है, तब सारी दुनियाँ की आँखें खेत की बालों पर होती हैं। बीज ज़मीन में घबरा जाता तो बालें कहाँ से बनतीं?

ज्ञानी! तू पहले दिन पढ़ने गया था और एक चाँटा टीचर का पड़ा और तू रोकर घर में बैठ जाता, तो आज यहाँ खड़ा न होता। पाषाण शांत हो गया और चिंतवन में लीन हो गया।

सम्पूर्ण प्रश्नों का समाधान मुख से नहीं देना चाहिए, सम्पूर्ण प्रश्नों का समाधान समय के ऊपर छोड़ देना चाहिए। आचार्य विद्यासागर जी ने भोजपुर में कहा था—विशुद्धसागर जी! जीवन में यह बात ध्यान रखना, "जीव की उन्नति या अवनति उसके स्वयं के हाथ में है।" जो पिता अपने बेटे से पैर छुलवाना चाहता है, बेटा गल्ती कर रहा हो तो उसे बताने मत जाना, उसके मित्र को समझा देना। क्योंकि यदि बेटा आवेग में होगा तो आपकी मर्यादा भंग कर देगा। उसको ठंडा हो जाने देना, उसके मित्र को समझा देना। विश्वास रखना, पिता की नहीं मानेगा वह, लेकिन मित्र की मान लेगा और आपके चरण छू लेगा। आचार्य महाराज बोले—जीवन में कितनी ही विषम घटनायें घटें, लेकिन हर प्रश्न का उत्तर मुख से मत देना। योगियों का मुख उत्तर नहीं देता है। योगियों का मुख तो मात्र जिनवाणी देता है। उत्तर तो उसकी साधना देती है, सर्वांग देता है। और सारे प्रश्नों का उत्तर समय पर छोड़ देना, जमीन में किए हुए गड्ढे के समान। यदि ज़मीन में गड्ढा हो गया है तो आपको कुछ करने की आवश्यकता नहीं है, समय दे दो, गड्ढा समय पाकर स्वतः भर जाएगा।

हर विषय का खुलासा करने की आवश्यकता नहीं है और जो बहुत ज्यादा सफाई देने का विचार रखते हैं तो आप समझ लेना कि उनके हृदय में कोई-न-कोई कमी छुपी हुई है। क्या करें, समय कम है और कीचड़ ज्यादा है। जितने में तू सफाई करेगा, उतनी देर में तू ही साफ हो जाएगा। इसलिए सफाई की आवश्यकता नहीं है। यदि गंदगी हो भी गई है जीवन में, और सफाई के लिए तेरे पास समय नहीं बचा है, तो बहुत अच्छा है। घर में मेहमान आ जायें और तेरे घर के कोने में चूहा सड़ जाए, तो बता, क्या करेगा? जब तक तू चूहा उठाएगा, तब तक मेहमान चले जायेंगे। जहाँ चूहे की सड़ांध आ रही थी, वहाँ तू एक धूपदान रख देता, उसमें धूप छोड़ देता, उसकी सड़ांध महकने लगती, चूहे की सड़ांध अपने आप बंद हो जाती। यदि गल्तियाँ आपसे हुई हैं, तो गलतियों को मत दोहराइये, इतना अच्छा काम करना प्रारंभ कर दो कि गल्तियाँ अपने आप समाप्त हो जाएँ। ये तो मुश्किल है कि आप पुरानी गल्तियों को ठीक कर पाओ। इसलिए जो गड्ढे हुए हैं, उनको भरने का प्रयास मत करो। जो गल्तियाँ हुई हैं, उनको सफाई देने की आवश्यकता नहीं है। नया जीवन प्रारंभ करो कि अब आगे जो करूँगा उसमें गल्ती नहीं करूँगा।

तत्त्वज्ञानी जीव बहुत विवेकी होता है। यदि कोई उसे गाली देकर आगे बढ़ जाए, यदि जीव समझदार है तो पीछे मुड़कर गाली देने जाएगा नहीं, क्यों? इतना उसे चलना पड़ेगा पीछे। हे ज्ञानी! जो गाली का उत्तर देने जाएगा उसे उतना पीछे जाना पड़ेगा और उत्तर नहीं देगा तो आगे तेरा मार्ग और बढ़ जाएगा। इसलिए मुमुक्षु जीव, योगी पुरुष कभी उपसर्गकर्ताओं को उत्तर

देने नहीं जाते हैं। अपने मार्ग को उत्तरोत्तर आगे बढ़ाते हैं और शिवालय की ओर पहुँचते हैं। जो उत्तर देने जाएगा, वह पीछे ही रह जाएगा। उत्तर देने नहीं जाना। समय बर्बाद हुआ कि नहीं? यदि गाड़ी पर हो, तो पेट्रोल उतना जलेगा कि नहीं, और आयुकर्म नष्ट होगा कि नहीं? जिसको गणित आता होगा, वह कभी किसी को उत्तर देने नहीं जाएगा। बुद्धिमान पुरुष जो होते हैं, वे धूप-छाँव को नहीं देखते हैं, वे अपनी वृद्धि को देखते हैं।

पुष्प की कली मुस्कुराती रही और पाषाण ठोकरें खाता रहा और एक दिन ऐसा आया जब वह मूर्ति के आकार में ढल गया। जो पैरों के नीचे था, उससे प्रतिमा उत्कीर्ण हो गई और जैसे-ही प्रतिमा उत्कीर्ण हुई, तो वह प्रतिष्ठा संस्कार को प्राप्त हुई। वह पाषाण प्रतिमा बन गया, प्रभु बनकर पूजा को प्राप्त हो गया। एक भक्त गया और जो पुष्प खिल रहा था, मुस्कुरा रहा था, उसी को चुनकर लाया और प्रभु के चरणों में समर्पित कर दिया। पुष्प और पाषाण ने एक दूसरे को पहचान लिया।

यदि भगवान् बनना है तो पाषाण-जैसी क्षमता धारण करो। छैनी चलें, हथौड़े चलें, दुनियाँ की सुनने को मिलें, लेकिन मौन होकर बैठ जाना, तो परमात्मा अपने आप बन जाओगे। पर्याय मिली है, मिल चुकी हैं और मिल जायेंगी। पर्याय मिलने के पहले उन परिणामों को मिटा देना जिनसे पर्याय धारण करनी पड़ती हैं। किसी को मालूम नहीं है कि इस जीव की आँख कब बंद होने वाली है? आँख बंद होने का समय आए, उससे पहले कषाय को बंद कर देना। आपको ज्ञात है अगली क्षमावाणी पर आपकी क्षमावाणी आएगी क्या? यही भाव रखना कि यह क्षमावाणी मेरे जीवन की पूर्ण क्षमावाणी हो। एक वर्ष तक बच गया तो पुनः माँग लूँगा। आप पर्याय के सम्बन्धी हैं परन्तु पर्यायी ध्रुव भगवानात्मा है। जब तक धर्मसभा में रहते हैं, तब तक निर्मल भाव रहते हैं। यह तो मिट्टी का स्वभाव है कि जब तक पानी पड़ता रहता है, तब तक मृदु है और सूखी, तो सिर फोड़ देती है। ज्ञानी! मिट्टी-जैसे परिणाम नहीं करना है। यदि परिणाम करना है तो हंस पक्षी जैसे रखना है, जो नीर-क्षीर को भिन्न कर लेता है।

भैया! श्वास प्रमाण काल भी मेरे निमित्त से किसी को क्लेश पहुँचा हो तो अपने ही परिणामों से क्षमा माँग लेना। अपने मन से कहना—हे मेरे मन! तू मेरा मित्र हो जा। मुझे अगली पर्याय में नरक और तिर्यंच में न जाना पड़े, इसलिए तू मेरा मित्र बन जा। तू इतना सरल, इतना सहज हो जा कि हर व्यक्ति को मैं माँ देखूँ या महात्मा देखूँ। मात्र दो सम्बन्ध दिखें, कोई तीसरा सम्बन्ध न दिखे। क्षमा तभी आ सकती है। संसार में रहना चाहते हो तो माँ बनकर रहना और संसार से दूर होना चाहते हो तो महात्मा बनकर रहना, कोई तीसरा सम्बन्ध स्थापित करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

मन में कुछ आ भी जाए, तो वचन बोलना मत छोड़ना। वचन बोलते रहे तो विश्वास रखना, एकसाथ बैठने के अवसर हैं और मुख से बोलना ही छोड़ दिया तो समझ लो कि दूरियाँ बहुत बढ़ जायेंगी। कुछ भी कहो, एकल कोई रहना पसंद करता नहीं है। बस, ध्यान रखना जीवन में, किंचित् भी विकल्प आए, तो क्षमा माँग लेना और यदि क्षमावाणी पर्व मना रहे हो तो यह सूत्र कण्ठ में बैठा लेना–

द्वाविंशतिरप्येते परिषोढव्याः परीषहाः सततम्।
संक्लेशमुक्तमनसा संक्लेशनिमित्तभीतेन ॥208 पु.सि.॥

यदि हम-आप मित्र हैं और क्षमावाणी पर्व है, तो इतना याद रखना कि मन को संक्लेशता से मुक्त रख लेना, इसी का नाम क्षमावाणी है। जिसका मन संक्लेशता से मुक्त हो चुका है, उसे अब जगत् में न किसी को क्षमा करने की आवश्यकता है न क्षमा माँगने की आवश्यकता है। क्योंकि 'संक्लेशमुक्त मनसा', अपने मन को पाँच मिनट भी संक्लेशता से मुक्त रख पाना बहुत कठिन है। जैनदर्शन में साधु बनने का उद्देश्य मात्र इतना है कि अपने मन को संक्लेशता से मुक्त रख सकें। बहुत समय हो गया, अनंत भव निकल गए इतना समय हो गया, अब जितने जल्दी हो सके, "संक्लेश मुक्त मनसा", मेरा मन संक्लेशता से मुक्त हो जाए।

आचार्यभगवन् कुन्दकुन्द स्वामी बता रहे हैं कि मुनि को कैसा आहार ग्रहण करना चाहिए। जो आहार प्रासुक हो, शुद्ध हो, भक्ष्य हो, उसे ही ग्रहण करना चाहिए। लोहे का गर्म पिण्ड शुद्ध होता है, क्योंकि गर्म होने के कारण कोई जीव उसके पास नहीं जाते हैं। इसी तरह का शुद्ध आहार ग्रहण करना चाहिए। शुद्ध आहार ही तप व ध्यान का उत्तम साधन बनेगा। ध्यान से कर्मनिर्जरा होगी, वह संसारसागर से पार होने के लिए नौका का कार्य करेगी। कहा भी गया है कि "जैसा खावे अन्न, वैसा होवे मन"। मुनि को छियालीस दोषों से रहित आहार ग्रहण करना योग्य है। अशुद्ध आहार करेगा, गरिष्ठ आहार करेगा तो ध्यान में, आवश्यकों के पालन में मन नहीं लगेगा, नींद आयेगी, तेरा समय व्यर्थ में जायेगा। आहार पेट भर कर नहीं करना। ऊनोदर अर्थात् भूख से कम खाना, तो आलस्य नहीं आयेगा। आहार भी दिन में एक बार उचित समय पर लेना। आहार में रसों की इच्छा नहीं करनी चाहिए। आहार लेते समय किसी वस्तु विशेष में गर्हता का भाव नहीं रखना।

आहारदान के योग्य अनेक प्रकार के पात्र होते हैं। सर्वश्रेष्ठ पात्र महाव्रती मुनिराज होते हैं। मध्यम पात्र में देशव्रती श्रावक आते हैं। अविरत सम्यग्दृष्टि को जघन्य पात्र कहा गया है। यदि जिनागम में रुचि रखने वाले, शास्त्र का अभ्यास करने वालों को भी गिना जाय तो पात्र

हजारों प्रकार के हो सकते हैं। कोई कहे कि शास्त्र का अभ्यास करने वाले, तत्त्व का चिंतन करने वाले 'पात्र' कैसे? जो जीव मंदकषायी होगा, उसे ही शास्त्र पढ़ने-सुनने में रुचि होगी। जिनेन्द्र भगवान् के द्वारा कथित तत्त्व का चिन्तन मंदकषाय की अवस्था में ही होता है। जब जिनवाणी नहीं सुहा रही हो, तब मानना कि तीव्र कषाय का उदय चल रहा है, असाता का उदय चल रहा है। निकटभव्य जीव को ही जिनवाणी सुनने में, पढ़ने में, तत्त्वचिन्तन करने में रुचि होती है।

"आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

॥भगवान् महावीर स्वामी की जय॥

❖ ❖ ❖

मुनियों की पात्रता

उवसमणिरीहझाणज्झयणादि महागुणा जहा दिट्ठा।
जेसिं ते मुणिणाहा, उत्तमपत्ता तहा भणिदा ॥115॥

अन्वयार्थ—(जेसिं) जिन मुनियों में **(उवसमणिरीह-झाणज्झयणादि)** उपशम, निरीहता, ध्यान, अध्ययन आदि **(महागुणा)** महान गुण **(जहा)** जैसे **(दिट्ठा)** देखे गए **(तहा)** उसी प्रकार **(ते मुणिणाहा)** वे मुनिराज **(उत्तमपत्ता)** उत्तम पात्र **(भणिदा)** कहे गये हैं।

भव्य बन्धुओ!

अन्तिम तीर्थेश भगवान् वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति। आचार्यप्रवर भगवान् कुन्दकुन्द स्वामी 'रयणसार' जी ग्रंथ में श्रमण और श्रावक उभय धर्मों का व्याख्यान करते हुए समझा रहे हैं। धन्य हैं वे योगीश्वर, जिन्हें कनक-कामिनी की वाँछा नहीं है। धन्य है उनके वैराग्य की धारा, धन्य है मुनिदशा, जो संसार की समस्त दशाओं से निज को भिन्न कर चुके हैं। ऐसे परम तपोधन, भ्रामरी वृत्ति से युक्त, श्रावक के घर में जाकर चर्या करते हुए भी श्रावक को किंचित् भी कष्ट नहीं देते।

जहाँ क्रोध का त्याग हो गया हो, क्लेश का त्याग हो गया हो, रोष का त्याग हो गया हो, ऐसे योगी को जिनशासन में भगवान् कहा है।

भिक्खं वक्कं हिययं, सोधिय जो चरदि णिच्च सो साहू।
एसो सुट्ठिद साहू, भणिओ जिणसासणे भयवं ॥1006 मूलाचार॥

आचार्यभगवान् कुन्दकुन्द स्वामी कह रहे हैं—जिनकी भिक्षा प्रवृत्ति, वचन प्रवृत्ति शोधनपूर्वक है, आगमपूर्वक है, ऐसे श्रेष्ठ साधु को जिनेन्द्र के शासन में भगवान् कहा है। वे ही कुन्दकुन्द स्वामी 'रयणसार' जी में कह रहे हैं—"किं विंतरो-भिक्खु?" यदि भिक्षाप्रवृत्ति में मनमानी करते हैं, वचनप्रवृत्ति की मनमानी करते हैं, आगम की दृष्टि को न रखकर, भाषा समिति को खोकर, ग्रामीण भाषा का प्रयोग कर रहे हैं और चर्या के समय रोष कर रहे हैं, क्लेश कर रहे हैं, कोप कर रहे हैं, ऐसे साधु के लिए कुन्दकुन्द स्वामी कह रहे हैं—हे साधु! तुझे साधु कहूँ कि व्यंतर कहूँ? यह अंतरंग में संभालने की भाषा है। साधु कभी व्यंतर नहीं होता है, लेकिन कहीं व्यंतर हो न जाए, इसलिए आचार्य महाराज पहले ही समझा रहे हैं।

कर्म का नोकर्म होता है। व्यक्ति के माथे पर देखो, सब कुछ झलकता है। यदि वही पुरुष लम्बे समय तक तनाव में रहने लगे, तो उसके माथे पर नसें दिखना प्रारम्भ हो जायेंगी। चिंता में नसें फूल जाती हैं, चेहरे पर झुर्रियाँ आ जाती हैं। जगत् में ऐसे बहुत सारे जीव हैं जिन्हें वस्तु से प्रयोजन नहीं है, परन्तु आपको दु:खी करने से प्रयोजन है। लेकिन दु:खी वही होता है, जो वस्तु को अपना मान लेता है। जिसने वस्तु को अपना स्वीकार ही नहीं किया, वह दु:खी नहीं हो पाता है। व्यक्ति दु:ख देने तो आएगा, परन्तु दु:खी होकर ही जाएगा। यदि कोई अपना चेहरा विकृत करके आपको चिढ़ाना चाहे और तूने निर्णय कर लिया है कि मैं आज से चिढ़ने का त्याग करता हूँ, तो विश्वास रखना, चिढ़ानेवाला चिढ़कर ही चला जाएगा, लेकिन तेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ पाएगा। कष्ट देना परभावना है, कष्ट को लेना स्वभावना है।

जैनदर्शन का सर्वाधिक आनंद देनेवाला कोई सूत्र है, तो—"कण-कण स्वतंत्र है"। आप मुझे कष्ट देने के परिणाम तो कर सकते हो, परन्तु आप मुझे कष्ट में डाल नहीं सकते हो। आप मुझे दु:ख देने का पुरुषार्थ तो कर सकते हो, परन्तु आप मुझे दु:खी कर नहीं सकते हो। दु:खी मैं तभी हो सकता हूँ, जब मेरा निज का राग काम कर रहा होगा। यदि निज का राग काम नहीं कर रहा है, तो जगत् की कोई ऐसी शक्ति नहीं है जो मुझे दु:खी करके चली जाए। किसी वस्तु में ताकत ही नहीं है मुझे कष्ट देने की। ज्ञानी! धूल भी वहीं चिपकती है जहाँ स्निग्धता होती है। दु:ख वहीं होता है, जहाँ राग होता है। जहाँ राग ही नहीं है, वहाँ दु:ख होता ही नहीं है। जब भी रुलाते हैं, अपने ही रुलाते हैं, पर कभी नहीं रुलाते हैं। इसलिए परायों के बीच में रहना चाहिए, वे कम-से-कम रुलाते तो नहीं हैं। अपना मानना बंद कर दो, तो रोना बंद हो जाएगा। हे ज्ञानी! जैसे पर के मरने पर तुझे रोना नहीं आता है, क्योंकि उनमें राग नहीं रहता है, ध्रुव सत्य है, जिनके साथ तुम रहते हो, जैसे पर 'पर' हैं, ऐसे ही तेरे भी 'पर' ही हैं। जब तू जायेगा, तो जिन्हें तू अपने कह रहा है, वे भी कुछ नहीं कर पायेंगे, खड़े ही रह जायेंगे। बल्कि उल्टा होगा। जो पराए होंगे, वे हिस्सा माँगने तो नहीं आयेंगे, लेकिन जिन्हें तू अपना मान रहा था, वे मृत्यु के काल में भी टेंशन देने जरूर आ जायेंगे।

अनादि अविद्या के वश हुआ जीव कुशल है, किसके लिए? पर को समझाने के लिए। कुशलता विलीन हो जाती है स्वयं को समझाने के लिए। कुन्दकुन्द स्वामी कह रहे हैं-हे योगीश्वर! जो उपदेश आप सभा में श्रावकों को देते हो, वह उपदेश स्वयं की सभा में स्वयं को भी दे दिया करो। लाभ-अलाभ, सुख-दु:ख में समता भाव रखना सामायिक है, ऐसा मुनिराज उपदेश दे रहे थे। हे साधक! चौके में इष्ट वस्तु की भी कमी हो जाए तो श्रावक को लाल आँख मत दिखाना। तत्त्वज्ञानी सद्भाव को निहारता है, तत्त्वज्ञानी अभाव को देखकर रोता नहीं

है। ध्यान रखना, जीवन में कभी शत्रु बनाकर मत जाना। यदि कोई थाली भी छीन ले तो उपवास कर लेना, परन्तु बदला मत लेना। भोजन करते समय यदि चित्त प्रसन्न है, तो तीव्र प्रीति होती है और भोजन करते समय कोई प्रसंग कषाय का मिल गया, तो तीव्र कषाय होती है।

बैरी से बैरवृत्ति करना है या साम्यवृत्ति करना है, यह आपका पुरुषार्थ है। कर्म के घर में किसी के साथ कोई समझौता नहीं है। जैसे तिमाही, छमाही के अंक वार्षिक पर कुछ असर डालते हैं कि नहीं? इतना ही नहीं, छात्र कितना अनुशासनप्रिय है, कितना आदर्श है, उसके भी अंक मिलते हैं कि नहीं? मिलते हैं। तो भो ज्ञानी! इन ज्ञानियों से कहो, जब अन्तिम निर्णय होगा तेरे जीवन का, तो तूने जीवन में किस पर कितना गुस्सा किया, किसको कितना दिया, कितना लिया और कितने जीवों का घात किया है, सबका लेखा-जोखा होगा। संभलकर रहना। यदि चुटकी भी बजाई, तो जीवहिंसा हो गई। भैया! सिगरेट पीने से कैंसर होता है। तो कुछ लोग सिगरेट नहीं पीते, लेकिन उन्हें सिगरेट का धुँआ अच्छा लगता है तो सिगरेट पीने वाले के पास बैठ जाते हैं। क्या सिगरेट के धुँए से भी कैंसर होता है? हे ज्ञानी! सिगरेट का पान न भी किया हो तो, सिगरेट के धुँए से भी कैंसर हो जाता है। ऐसे ही तुमने पाप न भी किया हो, परन्तु पापियों के सम्पर्क में रहोगे, उनकी अनुमोदना करोगे, तब भी तुम पाप को प्राप्त करोगे। जिस वंश में खोटे काम हो रहे हों, उस वंश का पानी भी पीयेगा तो तुझे भी नियम से पाप का बंध होगा। सिगरेट के धुँए से भी कैंसर होता है। पापियों के बगल में भी बैठेगा तो भी पाप का बंध होगा। बदनाम तो होता ही है, इसमें शंका नहीं है। अपने आप लोग कहते हैं कि बेटा किसकी संगति में है?

धन्य हो योगी की दशा को, जो कर्मों को घोंट रहे हैं। भैया! कभी गाय-भैंस की पीठ पर भी डण्डा मत मारना। ज्ञानी! अपने दादा को मत सताना और दादा को बैल मारने आ जाए तो क्या करोगे? सच्चा अरिहंत का भक्त होगा तो यूँ कहेगा कि दादा को भी बचाऊँगा और बैल को भी बचाऊँगा, उसका नाम जैन है। "जियो और जीने दो", "परस्परोपग्रहो-जीवानाम्", अपनी रक्षा के पीछे दूसरे का घात मत कर देना। देह की रक्षा तो कर पाओगे, परन्तु कर्मों से आत्मा की रक्षा नहीं कर पाओगे। इसलिए बैल को भी नहीं मारना, दादा को बचा लेना। लेकिन द्रव्यदृष्टि में जब जाएगा, तो जैसा बैल भिन्न है, ऐसे तो दादा भी भिन्न हैं। जैसे दादा में आत्मा है, वैसे बैल में भी आत्मा है। मेरे लिए तो दोनों मित्र हैं, अतः दोनों की रक्षा होनी चाहिए, घात किसी का भी नहीं होना चाहिए। इतना चिंतवन बन जाए तो विश्वास रखना, विश्व में आपको कोई सम्प्रदाय नहीं मिलेगा। तुम जो पंथों में बंट रहे हो, किसी भी पंथ के आप हों, तो आप धर्मात्मा नहीं हो।

कुन्दकुन्द स्वामी कह रहे हैं—मुनिराजों के किंचित् भी कषाय की रेखाएँ न उभरती हों। चर्या को गए, कितनी भी विषमताएँ आ जाएँ, शीत हो चाहे उष्ण हो, रूखा, सूखा हो, तो भी साम्यभाव से लेकर आते हैं, उपशम भाव है। किसी भी प्रकार की चेहरे की विकृति श्रावक को पता नहीं चलना चाहिए कि मुनि का मन लग नहीं रहा है आहार में। पात्र का मन प्रसन्न नहीं है तो विश्वास रखना, दाता का मन भी उदास हो जाता है। उदास भाव से देना, उदास भाव से लेना, तो ज्ञानी! पुण्य भी उदासरूप ही फलित होता है। जो पंचाश्चर्य होते हैं महाराजों के आहार के बाद, वे रोते लेने वाले और रोते देने वाले के घर में नहीं होते हैं। जो प्रसन्नचित्त होकर आहार ले रहा है और प्रसन्नचित्त होकर दाता दे रहा है, उसके घर में पंचाश्चर्य होते हैं। भूख ही भाग जाती है। बोलो कि जाओ, भोजन कर आओ, तो कहता है महाराज! आज भूख ही नहीं है। धन्य हो श्रावक के परिणामों को। महाराज के आहार हुए और चेहरा श्रावक का चमकता है। अलग से पहचान में आ जाता है कि इसके यहाँ महाराज के आहार हुए हैं। भोजन के बाद गाल और स्नान के बाल जैसे चमकते हैं, ऐसे ही जिसके घर में महाराज के आहार हो जायें, उसका चेहरा तो देखने लायक होता है श्रावक के घर महाराज आयें और चले जायें, तो उसका चेहरा देखने लायक होता है। जिसको सुबह से दूध-पानी चाहिए था, वह सब भूल गया। ये भक्ति का आनंद है। हे श्रमण! जब भी आहार लेने जाओ, उपशम भाव से जाओ। मात्र आहार लेने जाओ, तभी उपशम भाव क्या? नहीं, चौबीस घण्टे उपशम भाव। यह निर्ग्रंथ मुनि की वृत्ति है। निस्पृहता, अपेक्षारहित वृत्ति। कौन बड़ा, कौन छोटा, इन विकल्पों से रहित होकर।

श्री पर दृष्टि तो निर्ग्रंथ मुनि की होना ही नहीं चाहिए। श्री और स्त्री पर दृष्टि साधु की साधना के लिए घातक है। ज्ञानी! गेहूँ के अन्दर तिरूला देखा? ऊपर से चमकता है गेंहूँ का दाना, परन्तु अन्दर खोखला। तो जैसे गेंहूँ में तिरूला लग जाते हैं, ऐसे ही कोई मुनि के अन्दर द्रव्य रखने की दृष्टि आ गई, तो समझ लो कि इनकी साधना में लग गए तिरूला। ऊपर से चमकता दिखेगा, परन्तु अन्दर हो गया खोखला। खोखला होने से बचना है तो इन सब से दूर रहना। निस्पृहता तभी तक है, जब तक आपने किसी से नहीं कहा—'दे-दो'। जिस दिन 'दे-दो' शब्द आ गया, उस दिन सबकुछ गया। जो ध्यान और अध्ययन में लीन हैं, इन गुणों को क्या लिखा आचार्यभगवान् ने? ये महागुण हैं। उपशमभाव, निस्पृहवृत्ति, ध्यान-अध्ययन में लीनता, ये मुनियों के महान् गुण हैं। ऐसे गुण जहाँ देखने को मिलें, ऐसे मुनि ही उत्तम पात्र हैं। उन्हें भरपूर दान देना और प्रसन्न होकर देना कि हे प्रभु! आपको दिया दान मेरे निर्वाण का साधन बनेगा, मेरी लोभकषाय कम होगी और आपका ध्यान-अध्ययन चलेगा, दोनों का परस्पर उद्धार होगा। चौका लगाना तो दूर की बात है, जब नगर में महाराज आने की सूचना मिलती है, तभी से

श्रावक का मन प्रमुदित हो जाता है कि मेरे गाँव में महाराज आयेंगे। जो बच्चे दस बजे जागते थे, वे पाँच बजे यहाँ आकर बैठ जाते हैं। उन्हें कौन जगाता है? माँ-पिता नहीं जगाते, ये अन्दर की भक्ति के परिणाम जगाते हैं। जब अंतरंग में विशुद्धि रहती है, तो न घड़ी की आवश्यकता पड़ती है न जगाने वाले की आवश्यकता पड़ती है। भीतर का भगवान् स्वयं जाग जाता है।

"आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

॥भगवान् महावीर स्वामी की जय॥

❖ ❖ ❖

अज्ञानी का तप

ण वि जाणइजिणसिद्धसरूवं तिविहेण तह णियप्पाणं।
जो तिव्वं कुणदि तवं, सो हिंडइ दीह संसारे॥116॥

अन्वयार्थ—(जो) जो **(जाणइजिणसिद्धसरूवं)** जिन-अरिहन्त और सिद्धि का स्वरूप **(तह)** तथा **(णियप्पाणं)** अपनी आत्मा को **(वि)** भी **(तिविहेण)** तीन भेद से—बहिरात्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा **(ण जाणइ)** नहीं जानता है, और **(तिव्वं)** तीव्र **(तवं)** तप **(कुणदि)** करता है **(सो)** वह **(दीह संसारे)** दीर्घ संसार में **(हिंडइ)** भ्रमण करता है।

भव्य बन्धुओ!

अन्तिम तीर्थेश भगवान् वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह नमोऽस्तु शासन, सर्वज्ञ शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति। आचार्यप्रवर भगवान् कुन्दकुन्द स्वामी, ग्रंथराज रयणसार जी में श्रमण और श्रावक उभय धर्मों का व्याख्यान करते हुए संकेत कर रहे हैं, समझा रहे हैं कि भो ज्ञानी! सम्पूर्ण धर्म की दृष्टि द्रव्यदृष्टि है। जब आत्मद्रव्य पर दृष्टि है, तो सम्पूर्ण क्रियाएँ सम्यक् हैं। यदि स्वात्म द्रव्य पर दृष्टि नहीं है, तो सम्पूर्ण क्रियाएँ होने पर भी संसार का ही कारण है। समर्थ कारण आत्मद्रव्य है। समर्थ कारण उपादान की योग्यता है। उस समर्थ कारण के लिए सहकारी कारण अनेक हो सकते हैं, परन्तु सहकारी कारण तभी कारणभूत है, यदि समर्थ कारण है तो। बाहुबली स्वामी तीर्थंकर नहीं बने, तब भी भगवान् बाहुबली स्वामी की आराधना तीर्थंकर से कम नहीं है। यह जीव की स्व उपादान की दृष्टि रही है। पर की दृष्टि से तीर्थंकर अवश्य नहीं हैं, परन्तु आत्मसुख की दृष्टि से तीर्थंकर के सुख और भगवान् बाहुबली के सुख में कोई अन्तर नहीं है।

जयसेन स्वामी ने समयसार की टीका में कहा कि भो ज्ञानी! किसी जीव ने भगवान् को देखा है और किसी जीव ने भगवान् को तो नहीं देखा है, परन्तु भगवान् के बारे में बताया है। आपको भगवान् के बारे में बताया है, तो आपको भगवान् की छवि अनुभव में आती है कि नहीं? जैसे प्रत्यक्ष ज्ञाता ने जाना है, ऐसे-ही परोक्ष ज्ञाता भी उस आनंद को ले लेता है। एक जीव भोग भोगकर बंध कर रहा है, दूसरा भोगों को देखकर ही बंध कर रहा है। एक को पाप दिख ही नहीं रहे हैं, परन्तु पाप की भावना भा कर ही बंध कर रहा है। व्यर्थ में पापास्रव कैसा? भैया! घटना घटी अमेरिका में, आप बैठे भारत में और ऐसी घटना घट गई जो आपको बहुत अच्छी लगी। आपके शत्रु का घात वहाँ पर हो गया तो आप खुश हो गए। ज्ञानी! उसका

जो हुआ, सो हुआ है, तूने घात नहीं किया, परन्तु खुश होकर आपने कर्म का बंध कर लिया। क्या आवश्यकता थी इसको कहने की? इसलिए अचानक जो मुख से शब्द निकलते हैं, उनका भी संयमित होना आवश्यक है। शब्द निकल गए, लेकिन बंध नहीं निकला, वह तो बंध गया। व्यर्थ में पापास्रव हो रहा कि नहीं? पाप बहुत नहीं किया, लेकिन पाप का बंध बहुत हो गया। जब बैठे-बैठे पापास्रव हो सकता है, चलते-चलते पापास्रव हो सकता है, तो आप ऐसा भी तो कर सकते हो कि बैठे-बैठे, चलते-चलते, खाते-खाते पुण्यास्रव कर सकते हो। पर्याप्त समय आपके पास है। यदि अमेरिका में किसी का घात हुआ है, ऐसा भी तो सोच सकते थे कि अच्छा नहीं हुआ, जीव की रक्षा होनी चाहिए थी। स्वयं में आनंद आता है तो पुण्यास्रव होता है।

अच्छा चिंतवन करने के लिए भी पुण्य चाहिए। अच्छी सोच उसी की बनती है जिसकी भविष्य की पर्याय पवित्र होने वाली होती है। जिनकी दुर्गति निश्चित हो चुकी होती है, उसकी सोच भी शौचभूत नहीं होती है। प्रशस्त परिणाम भी पुण्योदय ही होते हैं। प्रशस्त परिणाम पाप की सत्ता में नहीं हो पाते हैं। बहुत सारे लोग अच्छा सोचने का मन करते हैं, परन्तु उनके मन में अच्छा आता ही नहीं है। मनुष्यों को ही देखो, विश्व में कितने सारे मनुष्य हैं जो अपने से ऊँचे लोगों को देख रहे हैं। जब कोई जीव चारित्र के उन्मुख होता है, तो लोगों के सम्मान रूप परिणाम होने लगते हैं। ऐसे परिणाम चारित्र धारण के मेरे क्यों नहीं हो रहे हैं? यह किसी से पूछना नहीं, स्वयं से पृच्छना करना कि अच्छे लोग दिखाई देने पर बुरे लोग भी अपने मुख से उनकी प्रशंसा करते हैं। तब भी मेरे अच्छे होने के परिणाम क्यों नहीं होते हैं? बहुत सारा उपदेश आपके पास ही होता है।

तालाब में जाल फैलाए आदमी भी आपको मिल जायेंगे। बुरा सोच सकते हो, बुरा कर सकते हो, परन्तु किसी का मन बुरा स्वीकार करता नहीं। मिर्चों को नाक से सूंघा तो जा सकता है, परन्तु नाक उसे स्वीकार नहीं करेगी, उसे छींक आती है शीघ्र ही। ऐसे-ही प्रत्येक पुरुष का चित्त पाप करने के उपरांत भी उस पाप को स्वीकार नहीं करता है। यदि स्वीकार करता, तो पश्चाताप नहीं होना चाहिए था। हर व्यक्ति के मन में आता है कि मैं गलत कर रहा हूँ। यदि तेरा किसी के द्वारा अशुभ भी हो गया हो, उस आवेग में तू किसी से गलत शब्द भी बोल पड़ेगा, बोल सकता है, परन्तु जब ठण्डा होगा तो तेरा मन कहेगा, नहीं, मुझे तो नहीं बोलना चाहिए था। यह कौन बोल रहा है? स्वयं का हृदय साफ है। छोटी-सी बात मान लो, मेरी मानो या न मानो, पर जो तेरा सच्चा हृदय बोले, उसकी बात मान लो। विश्वास मानो, हर व्यक्ति साधु है। चौबीस घण्टे में ऐसा समय भी आता है जब हर व्यक्ति का हृदय सत्य को स्वीकार करता है। अपने हृदय से पूछ लीजिए, जो-जो आपने सोचा है, जो-जो आपने किया है, वह सही किया है क्या?

हम दुनियाँ को तो नहीं बता पाते, लेकिन जैनदर्शन में एक बहुत बड़ी विधा है, उसका नाम प्रतिक्रमण है। दुनियाँ के लोग पाप करके बेचारे कुण्ठित तो हो लेते हैं, परन्तु अपने पाप को प्रकट करने की सामर्थ्य यदि कहीं है तो जैनदर्शन में है। दुनियाँ मुझे क्या कह पाएगी कि तू पापी है? मैं स्वयं कह रहा हूँ–

पापिष्ठेन दुरात्मना जड़धिया मायाविना लोभिना।
राग-द्वेषमलीमसेन मनसा दुष्कर्म यन्निर्मितम्॥

प्रभु के पादमूल में स्वयं बोल रहा है, कि मैं पापी हूँ। भैया! तुमसे बहुत बड़े प्रतिक्रमण के पाठ न बनते हों, लेकिन चौबीस घण्टे में एक बार यह तो सोच लिया करो कि मैं हूँ क्या? जिस घर-परिवार-कुल में जन्मे हो, जिस नगर-प्रांत-देश में जन्मे हो, इतने के लिए तुम नहीं जन्मे हो। जन्म लेने के लिए जो जन्मे, वह ही मिथ्यादृष्टि है। जन्म-मरण से रहित होने के लिए जो जन्मे, वह ही सम्यग्दृष्टि है। ये जन्म इसलिए मिला है कि ऐसा पुरुषार्थ कर लो जिससे जन्म-मरण का अभाव हो जाए। मृत्यु की पीड़ा को निहारना। कितना ही स्वस्थ पुरुष होगा, अन्तिम समय में चींटी भी तड़पती है, पुरुष भी तड़पता है, क्योंकि जब प्राणों का संकोच होता है तो तीव्र पीड़ा होती है। आत्मप्रदेश जब खिंचते हैं, निकलते हैं शरीर से बाहर, उस समय तीव्र वेदना होती है। ऐसी मृत्यु की वेदना हे प्रभु! इस पर्याय के बाद पुनः न हो।

एक जगह कीटनाशक पाउडर छिड़क दिया एक सज्जन ने, वहाँ मक्खियाँ और चींटियाँ बिलबिला रही थीं, तड़प रही थीं। तुम तो खींचकर चले गए लक्ष्मण रेखा। हे माताओ! छोड़ो ये लक्ष्मणरेखा। जो मृत्यु की पीड़ा है, एक क्षण को नाली का कीड़ा बनकर देख लो तो मृत्यु की पीड़ा का बोध हो जाए।

ज्ञानियो! राख होने वाले के राग में तुमने कितनों का नाश किया है। चमका लो, परन्तु चमकते रह नहीं पाओगे। वर्तमान कब भूत हो जाएगा, निश्चित नहीं है। वर्तमान कब भूत हो जाएगा, यह भविष्य को मालूम नहीं है। इसलिए भविष्य पर मत बैठो। वर्तमान को ही पवित्र कर लो तो वर्द्धमान हो जाओगे। एक-एक समय भूत हो रहा है। हे भूतो! दुनियाँ जब अर्थी जलायेगी तब जला लेगी, तुम तो आज ही देख लो कि मेरा एक-एक समय मरण को प्राप्त हो चुका है। ज्ञानियो! यह संभलने का समय चल रहा है। अभी भी नहीं समझ पाए तो विश्वास रखना, तीर्थंकर महावीर स्वामी अब आपको समझाने आने वाले नहीं हैं। महावीर स्वामी तो नहीं आयेंगे, जो आयेंगे वे महावीर स्वामी नहीं होंगे, क्योंकि जो परमात्मा हो जाता है, वह लौटकर वापस आता नहीं है। जो वापस आता है, वह भगवान् होता नहीं। इसलिए क्या लिख रहे हैं

कुन्दकुन्द स्वामी—हे सुधी श्रावको! जिसे तुमने कमाकर रखा है, उसे ऐसे मार्ग में लगाओ जो तेरा पाप का द्रव्य पुण्य में फलित हो जाए, घूरे के कूड़े के समान। कूड़े को खंति में पटक दें तो किस काम का? और कूड़े को खेत में पटक दो तो मोतियों जैसे धान्य आयेंगे। ऐसे-ही आपने जो द्रव्य कमाया है, उसे सुपात्रों में लगा दो, जो पुण्यरूप फलित होकर परम्परा से मोक्ष का कारण बनेगा। और वही द्रव्य आपने भोगों मात्र में नष्ट किया है तो घूरे को खंति में फेंकने के समान है। दान तो देना, परन्तु स्थान देखकर। अपवित्र स्थान में दान नहीं दे देना। बर्तन देखकर ही खीर परोसी जाती है। अस्वच्छ पात्र में खीर नहीं परोसी जाती है। हे मुमुक्षु! अपने द्रव्य को तू दान में दे रहा है तो पात्र को स्वच्छ देखना चाहिए। पात्र अस्वच्छ है तो तेरा दान भी व्यर्थ चला जाएगा। इसलिए दान देने के पहले निहार लेना कि उपयोग क्या होगा? जिस कुल में महाव्रतियों के हाथ पर ग्रास रखा जाता हो, उस घर में माँसाहारियों को भोजन नहीं परोसा जाता। दृढ़ आस्था, दृढ़ विश्वास है तो जगत् के मिथ्यात्व में कोई ताकत नहीं होती है, घबराने की कोई आवश्यकता नहीं है। अच्छे को अच्छा कहने वाले जीव कोटि-कोटि हैं, परन्तु अच्छे पर चलने वाले लोग अंगुलियों पर गिनने लायक हैं।

आचार्यभगवान् पुनः मुनियों के लिए कह रहे हैं—हे योगीश्वर, हे मुनिराज! आप महान् हैं, तपस्वी हैं, लेकिन लोग नहीं जानते हैं अरिहंत और सिद्ध के स्वरूप को और निज आत्मा को। देखो, साधु बनो तो कम-से-कम इतनी तो पहचान रखो। अरिहंत का द्रव्य, अरिहंत का गुण, अरिहंत की पर्याय, सिद्ध की द्रव्य-गुण-पर्याय, जो इनको जानता है और अंतरात्मा, बहिरात्मा, परमात्मा इनके भेद को भी नहीं जानता है, और निजात्मा को नहीं जानता है। वह कितना ही तीव्र तप कर ले, परन्तु आत्मद्रव्य को जाने बिना, अरिहंत-सिद्ध के स्वरूप को समझे बिना, अंतरात्मा, बहिरात्मा, परमात्मा में भेद जाने बिना जो तपस्या करेगा, वह दीर्घसंसार में भ्रमण ही करेगा।

क्या किया बेचारे ने? घर-कुटुम्ब-धन-मकान छोड़ा, संसार का सुख छोड़ा, लेकिन तब भी संसार में भटका, क्यों? विधि के अभाव में वस्तु भी कोई कार्यकारी नहीं होती। मुनि भी बन गया और मुनिपने की विधि नहीं जानता है, तो मुनि बनकर भी आनंद नहीं ले पाएगा।

"आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

॥भगवान् महावीर स्वामी की जय॥

❖ ❖ ❖

पात्र विशेष

दंसण सुद्धो धम्मज्झाणरदो संगवज्जिदो णिस्सल्लो।
पत्तविसेसो भणिदो सो गुणहीणो दु विवरीदो॥117॥

सम्मादिगुण विसेसं, पत्तविसेसं जिणेहिं णिद्दिट्ठं।
तं जाणिदूण देदिसुदाणं जो सो हु मोक्खरदो॥118॥

अन्वयार्थ—(दंसण सुद्धो) निर्दोष सम्यग्दर्शन वाले **(धम्मज्झाणरदो)** धर्म्यध्यान में रत **(संगवज्जिदो)** परिग्रह-रहित **(णिसल्लो)** तीन शल्यों से रहित **(पत्तविसेसो)** विशेष पात्र **(भणियो)** कहा गया है **(गुणहीणो)** जो इन गुणों से रहित है **(सो दु)** वह तो **(विवरीदो)** विपरीत /अपात्र है **(सम्मादिगुण विसेसं)** जिसमें सम्यक्तवादि विशेष गुण हैं—वह **(जिणेहिं)** जिनेन्द्रदेव ने **(पत्तविसेसं)** पात्र-विशेष को **(णिद्दिट्ठं)** कहा है **(जो)** जो जीव **(जाणिउण)** जानकर **(सुदाणं)** सुदान **(देइ)** देता है **(सोहु)** वह निश्चय से **(मोक्खरओ)** मोक्षमार्ग में रत है।

भव्य बन्धुओ!

अन्तिम तीर्थेश भगवान् वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना, जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन, जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति। आचार्यप्रवर भगवान् कुन्दकुन्द स्वामी ग्रंथराज रयणसार जी में श्रमण और श्रावक उभय धर्मों का व्याख्यान करते हुए समझा रहे हैं—यदि ये सारा विश्व श्रावकाचार की प्रवृत्ति को स्वीकार कर लेता है तो विश्वशांति का सूत्र अलग से समझाने की आवश्यकता नहीं है। सारे विश्व को एकत्व की दृष्टि देने वाला और प्राणीमात्र के प्रति समदृष्टि रखने वाला कोई दर्शन है तो वह जैनदर्शन है। भेषों में अंतर हो सकता है, भावों में अंतर हो सकता है, परन्तु चेतनत्व में कोई अन्तर नहीं है। जब चेतनत्व की बात होती है, तो क्रूर परिणामी सिंह की रक्षा की भी जो बात करे, उसका नाम अहिंसा धर्म है। आत्मरक्षा की दृष्टि से पर का घात करना 'भी' हिंसा ही है। जो आत्मरक्षा की दृष्टि से पर का घात कर रहा है, उसकी दृष्टि पर्यायदृष्टि है, उसकी आत्मदृष्टि है ही नहीं, तो उसकी आत्मरक्षा हुई ही नहीं है।

जब भी लोक में अहिंसा की बात आती है, तो किसी जीव के प्राणों का घात नहीं करना अहिंसा है, ऐसा कहा जाता है। विश्व इतनी ही अहिंसा को जानता है। लेकिन श्रमण संस्कृति कहती है—यह अहिंसा का एक पक्ष है। किसी जीव के प्राणों का विघात करना हिंसा है, यह तो क्रूर परिणामी हिंसक जीव भी जानता है। जैनदर्शन में दो प्रकार की अहिंसा का वर्णन है और दो

प्रकार की हिंसा का वर्णन है। एक का नाम द्रव्यहिंसा है, दूसरे का नाम भावहिंसा है। द्रव्यअहिंसा-भावअहिंसा। प्राणों की रक्षा करना यह तो द्रव्यअहिंसा है और स्वयं के परिणामों को कलुषित नहीं होने देना, यह भावअहिंसा है।

जीने के लिए जीता है, वह घोर हिंसक होता है। जो स्वयं के जीवन को ही जीवन मानता है, वह हिंसक होता है, क्योंकि उसे जीने में राग है और जहाँ राग है, उसका नाम हिंसा है। मैं जीता रहूँ, और अपने जीवन के राग में तूने कितने जीवों को खा डाला? जिस औषधि में प्राणियों के शरीर के टुकड़ें पड़े हुए हैं, जीवों का कलेवर है और जीने के राग में तू उन औषधियों का सेवन कर रहा है। ऐसी औषधि खाकर तू जी भी जाएगा तो क्या जीयेगा? तू द्रव्यप्राणों से जी पायेगा, लेकिन भावप्राण तेरे नष्ट हो चुके हैं। धर्म की सम्यक् व्याख्या तभी कर सकेंगे, जब आपको आत्मा की त्रैकालिक सत्ता पर श्रद्धा होगी और जिसको आत्मा की त्रैकालिक सत्ता पर श्रद्धा नहीं है वह कभी भी वस्तुस्वभाव का व्याख्यान कर नहीं पाएगा। जिसको मात्र स्वयं के जीने का राग है, वह नास्तिक है। उसने यह मान लिया है कि मात्र जीना ही जीवन है। ज्ञानियो! जीना ही जीवन नहीं है, मरने के बाद भी जीवन है। यदि जीना मात्र ही जीवन है, तो पुण्य-पाप के व्याख्यान की क्या आवश्यकता है? क्योंकि जब तक जी रहा है, तभी तक जीवन है, तो किस बात का पुण्य किस बात का पाप? जैसा मन आए, करो, क्योंकि बाद में तो कुछ बचता नहीं है।

जब तक जीव की सत्ता का बोध नहीं होगा, तब तक पुण्य-पाप की व्याख्या करके क्या करोगे? जिसके विचार में ऐसा आ गया हो कि आत्मा नाम की कोई वस्तु नहीं है, जिसने आत्मा नाम की वस्तु का अभाव कर दिया हो, उसे पुण्य-पाप, अहिंसा-हिंसा से क्या प्रयोजन? जिससे शरीर गर्म था, वह कौन था? जो शरीर को गर्म किए है, उसी का नाम आत्मा है। शरीर में सात धातु हैं। ये सात धातु तभी तक शरीर में हैं, जब तक आत्मा विराजी है। आत्मा के निकलते ही सातों धातु विकृत हो जाती हैं। शरीर को ऊष्मा कौन दे रहा है? जगत् में उल्टा-सीधा जो कुछ भी हो रहा है, उस सबका कर्ता भी आत्मा है। बुद्धि सम्यक् चल रही है तो सत्य दिखाई देता है, असम्यक् चल रही है तो असत्य दिखाई देता है।

सबसे पहली व्याख्या प्रारम्भ होना चाहिए, कि आत्मा त्रैकालिक है। जब जीव की सत्ता को त्रैकालिक स्वीकारोगे, तभी जीवतत्त्व की व्याख्या कर पाओगे। आत्मा की त्रैकालिक सत्ता नहीं मानते, उस व्यक्ति से कहना कि अवस्तु की व्याख्या क्या? अवस्तु की व्याख्या नहीं होती है। यह जैनदर्शन का दार्शनिक पक्ष चल रहा है। बेचारे कभी नहीं पुजते, विचार पुजते हैं। जैनदर्शन किसी जाति को नहीं पूजता, किसी पंथ को नहीं पूजता, यहाँ तक कि किसी साधु को भी नहीं पूजता है। ये तो मात्र—

'वन्दे तद्गुण लब्धये'

पवित्र विचारों से युक्त जो स्वभाव होता है, उसकी पूजा होती है। विचार पूज्य हैं, परन्तु कौन से विचार पूज्य हैं? जो आचार की पवित्रता के घोल से घुले हुए विचार हैं, वे पूज्य हैं। दुनियाँ के विचार पूज्य नहीं हैं। लोक में जितने पूज्य हुए हैं, (केवली एक नहीं हुए, अनंतानंत हुए हैं) विचारों से हुए हैं। जो विचार रखता है, उसका प्रचार अपने आप होता है। जितना उत्कृष्ट तुम्हारा विचार होगा, विश्वास रखना, उतना उत्कृष्ट तुम्हारा प्रचार होगा। प्रचार करने की आवश्यकता नहीं है, विचारों की उत्कृष्टता की आवश्यकता है। जिसका विचार उत्कृष्ट होगा, उसका आचार नियम से उत्कृष्ट होगा। जब भी पतन होता है आचार से नहीं होता, विचार से होता है और जिसके विचार दूषित हो जाते हैं, उसका आचार संभालने भगवान् भी नहीं आ सकते।

ज्ञानियो! चारित्र भ्रष्ट पहले होता है, कि चित्त भ्रष्ट पहले होता है? लोक ने जो चर्चा की है, वह चारित्रभ्रष्टों की चर्चा की है, लेकिन जैनदर्शन चारित्र पर पहले नहीं जाता है, चित्त पर पहले जाता है। चित्त उसका भ्रष्ट हुआ तो उसका चारित्र भ्रष्ट होता है। चित्त जिसका पवित्र होता है, उसका चारित्र पवित्र होता है। जिसकी चित्त की अहिंसा है, उसकी चारित्र की अहिंसा भी हो सकती है। जिसके चित्त में ही अहिंसा नहीं है, उसके चारित्र में अहिंसा हो ही नहीं सकती है। जिसके चारित्र में अहिंसा नहीं है, उसका चित्त क्रूर होगा। पाप प्रवृत्ति जो होती है, बहुत न्यून होती है, लेकिन पापपरिणति कोटि-कोटि गुणा अधिक होती है।

पापप्रवृत्ति की चर्चा सारा विश्व करना जानता है, परन्तु पापपरिणति की चर्चा जैनदर्शन मात्र के पास है। जो भी देश में जेल/कारागृह आदि हैं, ये सब अपराधियों के दण्ड के स्थान हैं, पापियों के दण्ड का स्थान एक भी नहीं है। विश्व को हम क्या दे पायेंगे यह बात छोड़ो, पहले अपने अंदर झाँकना प्रारम्भ करो। अपराधियों की संख्या विश्व में बहुत कम है। भारतभूमि में तो अत्यन्त न्यून है। क्योंकि आप अपराधी उन्हें मानते हो जिनके क्रिया-कलाप दिखाई दे जाते हैं। जो दृष्टिगोचर शासन है, उनकी पहुँच अपराधियों मात्र तक है, पापियों तक नहीं है। परन्तु ज्ञानियो! एक जैनशासन ऐसा है जिसकी पहुँच पापियों तक है। जो पाप शरीर से होते दिखते हैं, वे अपराध हैं। जो मन में हो रहे हैं खोटे भाव, उसका नाम पाप है। आप यह तो कह सकते हो कि मैं समाज के विरुद्ध कार्य नहीं करता हूँ, देश के विरुद्ध कार्य नहीं करता हूँ, इसलिए अपराधी नहीं हूँ, लेकिन आत्मप्रदेश के विरुद्ध कार्य किया है कि नहीं? यह तो बताओ। स्वयं से पूछो। जग की बात सदैव की है, परन्तु निज की बात कब की है? सबसे पहले खोटे परिणामों से रक्षा की बात करनी थी।

एक को जिताने के पीछे दूसरे के प्रति कैसे भाव होते हैं? जो जीत गया है, उसका श्रेय तो तू लेकर आ गया और जिसको हरा कर आया है, उसके परिणामों का श्रेय किसको देगा? अब बोल ज्ञानी! तू कुशल है कि अकुशल है? भारत के लोग व्यापारी हैं और व्यापार करने में ये बड़े सुन्दर चतुर हैं, कुशल हैं, परन्तु इनकी कुशलता तभी तक चलती है, जब तक आस्रव की व्याख्या प्रारम्भ नहीं होती है। कुशल तो मात्र पुण्यकर्म है और अकुशल पापकर्म है।

जीव कहता है कि आत्मरक्षा के लिए तो कुछ भी किया जा सकता है। विभिन्न दर्शनों में लिखा है कि अपनी रक्षा के लिए दूसरे के प्राणों का घात किया जा सकता है, दूसरे के कलेवर को खाया भी जा सकता है। स्पष्ट शब्दों में लिखा है। जिन ग्रन्थों के बड़े विशाल नाम विश्व में चलते हैं, उन ग्रन्थों में मैंने लिखा पाया है कि आत्मरक्षा के लिए यहाँ तक कि गाय तक को लोग खा गए, जिसको कि पूजते थे। अभी आत्मरक्षा शब्द का अर्थ ही समझ में नहीं आया है। आत्मरक्षा शब्द का अर्थ समझ में आ गया होता तो शायद ऐसी व्याख्या नहीं होती। आत्मरक्षा का अर्थ जो लोक में है, वह शरीर की रक्षा का है, आत्मा की रक्षा का नहीं है। इसलिए प्रारम्भ में कह दिया था कि शरीर के मरण को आत्मा का मरण मानना भूल जाइए।

गीता में लिखा हुआ है—यह कभी अस्त्र से छिन्न-भिन्न नहीं होती, शस्त्र से छिन्न-भिन्न नहीं होती है। जैनागम कह रहा है—असत् का जन्म नहीं होता है, सत् का विनाश नहीं होता है। वस्तु का अभाव नहीं होता है, वस्तु का परिणमन होता है। ज्ञानियों! आत्मा को, परमात्मा को तुम भगवान् कहकर भटक रहे हो पहले उसे वस्तु मानिए। जो भगवान् है, वह भी वस्तु है। मैं हूँ, वह भी वस्तु है। आप हो, वह भी वस्तु है।

आत्मरक्षा शब्द का अर्थ देहरक्षा कहना, यह आत्मरक्षा शब्द का विपर्यास है, उल्टा अर्थ है। आत्मद्रव्य को कर्मपरमाणुओं से बचाकर रखना, यह आत्मरक्षा है। यदि अपने देहरक्षा के राग में दूसरे के रक्त-माँस का सेवन कर भी लिया, तो भी आत्मरक्षा नहीं हुई। यहाँ से मरण करेगा तो नरक में जाना पड़ेगा। कम-से-कम यहाँ का मरण सहन कर लेता तो नरक के दुःख से तो बच जाता। विद्युत-प्रकाश में आते कीड़े को छिपकली खा रही थी, देखकर तू क्या करेगा? एक अभागा कहेगा कि छिपकली को मार दो तो इतने जीवों की रक्षा हो जाएगी। हे पापी! तू पंचेन्द्रिय की हिंसा कर रक्षा की बात कर रहा है, तूने रक्षा कहाँ की? तूने हिंसा ही तो की है। ऐसा काम करो जिससे छिपकली भी न मरे, जीव भी न मरें, यानि बिजली बन्द कर दो। ज्ञानी! जो हिंसक हैं, उसके बारे में सोचो कि अज्ञानी कैसा पाप का बन्ध कर रहा है? और जिसकी हिंसा हो रही है, उसके बारे में सोचो कि कैसा पाप करके आया है जो मैं खड़ा-खड़ा कुछ कर भी नहीं पा रहा हूँ। धिक्कार हो इस जीवन की परिणति पर। पर इसके प्रशस्त

परिणाम हों। हिंसक के हिंसकभाव छूट जाएँ और हिंसनीय की हिंसा बच जाए। प्रशस्त परिणाम रखना, अन्यथा आपके अहिंसाव्रत का पालन भावात्मक रूप से हो नहीं पाएगा।

अपराधियों की चर्चा लोक में है, पापियों की चर्चा लोक में नहीं है। यदि पापियों को खड़ा किया जाए तो कोई विरला मिलेगा जो पापी न हो। जब भावअहिंसा में चला जाएगा, अपने आप ये शरीर का रक्त जो लाल दिखाई दे रहा है, वह चेहरा सफेद हो जाएगा, विश्वास रखना। जितने-जितने आप साम्य होते जाओगे, क्रूर-से-क्रूर प्राणी आपके पास बैठना प्रारम्भ कर देंगे। बहिरंग साधना के बाद अंतरंग साधना प्रारंभ होना चाहिए। जंगल के वनचर, जन्म-जात विरोधी जीव गाय और सिंह, नेवला-सर्प एकसाथ एक स्थान पर बैठे होते हैं, वह स्थान तीर्थंकर का चरणकमल मात्र होता है। यह साधक की साधना की भी पहचान है। दो विरोधी जीव जिसके सामने शान्त होकर बैठ जायें विरोध छोड़कर, यह सच्चे साधु की पहचान है। मनुष्य की बात मत करना, आप तो इंसान हो। इस बात को श्वान भी जानता है। यदि तुम प्रसन्न हो, तो श्वान भी पूँछ हिलाकर पास में खड़ा हो जाएगा और चेहरा बनाकर खड़े हो तो वह धीरे से चला जाएगा।

परमार्थ दृष्टि में जाओगे तो कण-कण स्वतन्त्र है, प्रत्येक जीव स्वतन्त्र है। कौन किसका रक्षक? कौन किसका घातक? ज्ञानी! आप किस बात पर जी रहे हो? मात्र अपने पुण्य परिणामों पर जी रहे हो। कौन रक्षक है? और यदि अंगरक्षक भी रख लिए और कर्म अशुभ आ गया, तो अंगरक्षक भी भक्षक बन जाते हैं। यदि अंगरक्षक भी नहीं हैं और मारने वाला भी आया है, परन्तु यदि पुण्य प्रबल है, तो मारनेवाला ही बचानेवाला हो जाता है। इसलिए बात मेरी मानो, जब भी दगा देंगे, अपने देंगे। अपनों से दूर रहना सीखो। नज़दीकी लोगों से थोड़ी दूरी बनाकर रखना, क्योंकि इनको तुम्हारी सब हालत पता रहती है। बाहर के आदमी को क्या मालूम तुम कैसे हो? तीर्थंकरों पर भी उपसर्ग हुआ तो किसी बाहर वाले ने नहीं किया। इसलिए ज्ञानी! जो नज़दीक होते हैं, उनसे थोड़ा संभलकर रहा करो। जब भी शत्रु बनेंगे, तो मित्र ही बनेंगे। जब तक तुम इनकी इच्छाओं की पूर्ति करते रहोगे, तब तक मित्र बनकर रहेंगे और जिस दिन उनकी इच्छाओं की पूर्ति नहीं कर पाओगे, उसी दिन शत्रु हो जाओगे। परिणामों की दशा जीव की विचित्र है। मिट्टी काली है। जब तक पानी पड़ता रहता है, तब तक मुलायम रहती है और जैसे ही पानी सूखा, तो कठोर हो जाती है। ज्ञानी! मिट्टी-स्वभावी मत बनो। हंस-स्वभावी बनो, नीर-क्षीर को पृथक् करना सीखो।

आचार्य महाराज कह रहे हैं—दान तो दो, परन्तु इतना ध्यान रखना, जो सम्यक्त्व से शुद्ध है, धर्म्यध्यान में लीन है, परिग्रह से रहित है, माया-मिथ्या-निदान इन तीन शल्यों से रहित है, वही विशेष पात्र है। ध्यान दो, जेब में पैसा हो जाए तो कहीं भी लुटाने मत बैठ जाना। उसे ही दान देना जिसके परिणाम विशुद्ध हों, अहिंसक वृत्ति हो, निशल्य परिणाम हों, दयाधर्म से युक्त हो और मायाचारी से रहित हो। जो स्वयं परिग्रही है, स्वयं कमा रहा है, उसे खिलाकर तुम कहाँ जाओगे? इतना ध्यान रखना, भूखे को भोजन तो करा देना दयारूप में, लेकिन भोजन अपने हाथ से करवाना, उसको पैसे मत देना। वह जाकर माँसाहार करेगा और तेरे द्रव्य का दुरुपयोग होगा। करुणा संभल कर करना, क्योंकि आजकल लोग करुणा का दुरुपयोग कर लेते हैं। भावुकता में धर्म नहीं करना, विवेक से धर्म करना। इसलिए आपको कसौटी दे दी है, इस पर कस लो पहले कि जिसे तुम दान दे रहे हो, वह कैसा हो? यदि उपर्युक्त गुण नहीं है, तो अपात्र है। भगवान् जिनेन्द्र ने उसे पात्र कहा जो सम्यक्त्व आदि गुणों से विशिष्ट है। उसे जानकर जो देता है, वह तो मोक्षमार्गी है, परन्तु बिना परीक्षा के दान दे बैठता है किसी को भी, वह संसारमार्गी ही है। अहोभाग्य मानो आप कि ऐसे खोटे काल में भी उत्तम-मध्यम-जघन्य पात्र मिल रहे हैं। अहोभाग्य मानो कि ऐसे खोटे काल में भी वीतरागी श्रमण विचरण करते दिखाई दे रहे हैं।

"आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

॥भगवान् महावीर स्वामी की जय॥

❖ ❖ ❖

उभयनय-विरोधी

णिच्छयववहार सरूवं जो रयणत्तयं ण जाणदि सो।
जं कीरदि तं मिच्छा-रूवं सव्वं जिणुद्दिट्ठं ॥119॥

अन्वयार्थ—(जो) जो **(णिच्छयववहार सरूवं)** निश्चय और व्यवहार स्वरूप वाले **(रयणत्तयं)** रत्नत्रय को **(ण जाणदि)** नहीं जानता है **(सो)** वह **(जं)** जो **(कीरदि)** करता है **(तं सव्वं)** वह सब **(मिच्छारूवं)** मिथ्यारूप है **(जिणुद्दिट्ठं)** ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है।

भव्य बन्धुओ!

अन्तिम तीर्थेश भगवान् वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति। आचार्यप्रवर भगवान् कुन्दकुन्द स्वामी रयणसार जी ग्रंथ में, श्रमण और श्रावक उभय धर्मों का व्याख्यान करते हुए समझा रहे हैं—अहो जीव! परिणामों की दशा पर्याय से भी अत्यंत नाजुक है। पर्याय के विलीन होने में समय लगता है, परन्तु परिणामों के ऊपर-नीचे होने में समय नहीं लगता है। पलक झपकने में समय लगता है, परन्तु परिणाम कब किसके झपक गए, निश्चित नहीं होता है। उत्कृष्ट-से-उत्कृष्ट परिणाम हीन-से-हीन हो जायें और हीन-से-हीन परिणाम एक समय में भगवत्ता की ओर ले जायें, इतने उत्कृष्ट परिणाम हो जायें। पर्याय को संभालने का कार्य बंद कर देना, क्योंकि पर्याय को संभालकर नहीं रख पाओगे। पर्याय को संभाल ही पाओगे, परन्तु संभालकर रख नहीं पाओगे और पर्याय संभालते रहे तो कुछ भी मिलने वाला नहीं है। यदि परिणाम संभाल लिए तो सुनिश्चित परमात्मा हो ही जाओगे।

पर्याय के संभालने से भगवान् नहीं बनता है। जैसे—जिनेन्द्र भगवान् की प्रतिमा का अभिषेक करके, पवित्र करके जिनप्रतिमा को आप पूजते हो। भगवान् के बिम्ब को तो पानी से प्रक्षाल कर लेते हो, ऐसे-ही निज के चैतन्य बिम्ब का प्रक्षालन जिनवाणी के नीर से करो। समय बहुत ज्यादा नहीं है। प्रतिदिन किसी-न-किसी जीव की पर्याय के विलीन होने के समाचार आपको मिलते हैं। मेरी पर्याय विलीन हो, इसके समाचार किसी के कानों में जाने के पहले ही मेरे परिणाम संभल जायें। पर्याय संभालने की चेष्टाएँ अनंतानंत जीवों ने की हैं। भारत भूमि पर कितने राजा-महाराजा हुए हैं, उनके चित्र भी यदि आप देखोगे तो लगता है कि पुण्य टपक रहा है। परन्तु ज्ञानियो! यमराज और आग ये दोनों कहते हैं, कि चाहे अमृत टपके, चाहे ज़हर टपके, पर मैं सबको कर देता हूँ राख।

पानी में पड़ी हुई वस्तु हो सकता है सड़ जाए, परन्तु कुछ तो मिलेगा। परन्तु आग में गई वस्तु की राख ही मिलती है। आग किसी को छोड़ती नहीं है। जैसे आग किसी को नहीं छोड़ती है, ऐसे-ही आयु किसी को नहीं छोड़ती है। तीन वस्तुओं पर किसी का अधिकार नहीं है। एक आग है, दूसरी आयु है और तीसरा राग है। इन तीन के अन्दर सब झुलस रहे हैं। यदि राग से बच गए तो आग से और आयुकर्म से दोनों से बच सकते हो। सबसे खोटा कोई है तो वह राग है। राग हटाकर पूछो तो सब सबके मित्र हैं, सबमें सबको जीव दिखते हैं। सबका मन यही कहता है, भैया! किसी से राग-द्वेष मत करो। कब किसका विमान निकल जाए? जब व्यक्ति शांत बैठता है तो यही कहता है। ज्ञानी! जैसे-ही राग की आग अन्दर लगती है, उसी क्षण मैं और मेरा प्रारम्भ हो जाता है। वस्तुस्वभाव को देखो। राग जब तक है, तब तक सारे विश्व को राखने की दृष्टि है और राग हट गया, तो सारा विश्व राख दिखता है।

राख में भी राग है। मेरे घर के चूल्हे की राख है और यदि पिता जी भी राख हो गए तो उसे भी भरकर सिर पर रखकर ले जाता है कि मेरे पिताजी की राख है। परन्तु मालूम होना चाहिए कि जिसके ऊपर पिताजी की राख रखी हुई है, वह भी राख है। सबके साथ यही होने वाला है। मन में भावना भाना कि मेरी इस पर्याय की चिता जले तो मैं देखने अवश्य आऊँ। यदि देव बनें तो और अच्छा, वहीं से अवधिज्ञान से देख लूँ। जिस देह के लिए मैंने तेल की बोतलें ढारी हों। जिस देह के लिए कितना घृत-दुग्ध का पान कराया हो, आज देखो वह भी झुलस रही है। राग जिसमें था, उसकी राख हो रही है। इस हड्डी-पिंजर की देह के राग में पता नहीं मैंने कितने भावी भगवंतों का अपमान किया है। विश्वास मानो, जब राग अहंकार के साथ खड़ा हो जाता है, तो व्यक्ति को भगवान् में भी भेद नज़र आता है। जब राख हो जाती है, तब समझ में आता है कि न ये मेरे हैं न वे मेरे हैं। मैं तो अकेला ही हूँ। इसी पर्याय के मध्य में कितने लोगों से मिल चुके आप, कितने लोगों के साथ रह चुके आप, लेकिन साथ कितने लोगों ने दिया है?

जब परिणाम तेरे शाश्वत् नहीं, पर्याय तेरी शाश्वत् नहीं, तो पर की पर्याय, पर की परिणति तेरे साथ शाश्वतपना कैसे निभायेगी। मेरा ही कर्म मेरा साथ नहीं देगा, तो दुनियाँ के कर्म मेरा क्या साथ दे पायेंगे? बहुत अच्छा हो कि जिसमें राग चल रहा है, उससे राग हट जाए और रागरहित दशा प्राप्त हो जाए। चिद्रूप चैतन्य भगवानात्मा, सहजानंद स्वरूप जो सिद्धशिला पर विराजा है, वैसा परमात्मा तुझे तेरे अंदर झलकना प्रारम्भ हो जाएगा। रागदृष्टि है बंध दृष्टि, नरक दृष्टि। यदि नरक नहीं जाना है, तो स्वभाव में मृदुता लाइए, सम्यक्त्व की आराधना कीजिए। बहुआरम्भ-परिग्रह में चित्त चौबीस घण्टे लवलीन है तो तीर्थंकर भगवान्

भी आपको नरक जाने से नहीं बचा पायेंगे। आप नरक जाना तो नहीं चाहते, लेकिन काम वे ही कर रहे हो जिससे जाना पड़े। यदि नरक नहीं जाना है तो इतना करना प्रारम्भ कर दो कि जगत् के जीवों को जीव मानना प्रारम्भ कर दो। जैसे तुम स्वयं को कष्ट नहीं देना चाहते हो वैसे ही दूसरों को कष्ट देना बंद कर दो, तो नरक से बच जाओगे। न शारीरिक कष्ट देना, न वाचनिक कष्ट देना और न मानसिक कष्ट देना। लोक में बहुत सारे ऐसे लोग रहते हैं, जो शरीर से कभी किसी का घात नहीं करते, बिल्कुल दयारूप दिखाई देते हैं, लेकिन दूसरे को मानसिक तनाव इतना ज्यादा दे देते हैं जैसे किसी को शिला के नीचे दबाकर मार रहे हों। जो घर में दूसरे को मानसिक तनाव (टेंशन) में डालकर रख रहा है, वह घोर पापीजीव है। साधुसंघ में भी घुटन नहीं होना चाहिए। यदि घुटन-घुटन में साधना करेगा तो असमाधि और हो जाएगी। जिनलिंग को प्राप्त करके भी यदि मन में तनाव बचा, तो फिर यह मोक्षमार्ग कैसा? जब दुनियाँ में सभी के चेहरे फीके दिखाई देते हैं, तब रत्नत्रय के मार्ग पर चेहरा मुस्कुराता दिखाई देता है। यदि धर्मक्षेत्र पर ही चेहरा उदास होता दिख गया, तो समझ लेना कि धर्मक्षेत्र तो है, परन्तु धर्म नहीं है।

जितना देह को सजा रहे हो, जितना लोक को मना रहे हो, उतना देही को सजा लेता और मन को मना लेता, तो आज दुनियाँ में रुलने क्यों आना पड़ता? एक-दो नहीं, अनंतानंत भवावलियाँ मेरी निकल गयीं इस देह के सजाने और लोक के मनाने में। संयम से चित्त को सजा लेता और अपने मन को मना लेता, तो पंचमकाल के लोगों के बीच क्यों आना पड़ता। काले काल में आए हैं, इसका तात्पर्य कुछ तो काला जरूर किया है। जिसने अशुभ कर्म किया है, वह कितना ही रजाइयों में छुपकर बैठ जाए, लेकिन फिर भी स्वयं को तो जानता है कि मैं कैसा हूँ। कोई निश्चयनय की लकड़ी लिए बैठा है, कोई व्यवहार की लकड़ी लिए बैठा है। ज्ञानियो! एक पैर से तुम चलोगे तो गिरोगे ही और एक आँख से देखोगे तो काने कहलाओगे। जो व्यवहार मात्र को मानते हैं, वे काने और जो निश्चय मात्र को मानते हैं, वे भी काने। इसलिये दोनों आँखों से देखो।

जो निश्चय-व्यवहार के स्वरूप को और रत्नत्रय को नहीं जानता, वह घोर-घोर तपस्या कर ले, परन्तु यदि रत्नत्रय धर्म पर आस्था नहीं है, निश्चय-व्यवहार नय पर एकभूत दृष्टि नहीं है, तो वह मिथ्यादृष्टि है। ऐसा भगवान् जिनेन्द्रदेव ने कहा है। नहीं मानते हो मेरी बात तो सीमंधर स्वामी से पूछ आओ कि हे स्वामी! निश्चयनय मानना चाहिए कि व्यवहारनय मानना चाहिए? ज्ञानी! न निश्चय मात्र मोक्षमार्ग है, न व्यवहार मात्र मोक्षमार्ग है। निश्चयनय और व्यवहारनय दोनों मेरे हैं। दोनों में से एक का भी अभाव होगा तो मोक्षमार्ग पर ही आँच आयेगी। इसलिए नयों के राग में

समाज के खण्ड मत कीजिए, अखण्ड समाज को अखण्ड ही रहने दीजिए। इसलिए न निश्चय को गाली देना, न व्यवहार को गाली देना। ज्ञानी! आज घर में जाकर कह देना कि जिसे सजा रहे हो, वह सज नहीं पाएगा, परन्तु इसके राग में जिसे सजाना चाहिए था उसे सजा नहीं पाया। उसे सजा लोगे तो संसार में आना नहीं पड़ेगा।

"**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।**" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

॥भगवान् महावीर स्वामी की जय॥

❖ ❖ ❖

भव बीज

किं जाणिदूण सयलं, तच्चं किच्चा तवं च किं बहुलं।
सम्मविसोहिविहीणं, णाणतवं जाण भववीयं॥120॥

अन्वयार्थ—(सयलं) सम्पूर्ण **(तच्चं)** तत्त्व को **(जाणिदूण)** जानकर भी **(किं)** क्या लाभ है **(च)** और **(बहुलं)** बहुत **(तवं)** तप **(किच्चा)** करके भी **(किं)** क्या लाभ है **(सम्मविसोहिविहीणं)** सम्यक्त्व की विशुद्धि से विहीन **(णाणतवं)** ज्ञान और तप को **(भववीयं)** संसार का बीज **(जाण)** जानो।

भव्य बन्धुओ!

अन्तिम तीर्थेश भगवान् वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति। आचार्यप्रवर भगवान् कुन्दकुन्द स्वामी ग्रंथराज रयणसार जी में श्रमण और श्रावक उभय धर्मों का व्याख्यान करते हुए समझा रहे हैं—तत्त्वदृष्टि, वस्तु का बोध, सत्यार्थ ज्ञान, इनको समझने के लिए दृष्टि की पवित्रता की आवश्यकता है। जब तक दृष्टि की निर्मलता नहीं है, अंतरंग में विशुद्धि का अभाव है। यह आचार्यों की असीम अनुकम्पा रही है कि अपने अमूल्य क्षणों को निकाल करके श्रुत का निबंधन किया है। यदि कुन्दकुन्द जैसे महान् योगी लेखनी नहीं चलाते तो आज ये महान् श्रुत अपने पास नहीं होता। आचार्यों ने लिखा है, यह तो उनका पुरुषार्थ है, लेकिन आचार्यों की वाणी सुनने का आपका मन कर रहा है, यह भी जिनवाणी का ही प्रचार है। जिसका सुनने का मन नहीं होगा, विश्वास मानना, धर्म की प्रभावना न पर्वतों पर है, न नदी, तालाबों के अन्दर है, न किसी मार्ग पर है। धर्म की प्रभावना तो जीव के परिणामों में है। यदि परिणाम पवित्र हैं, तो गली-गली में 'नमोऽस्तु शासन जयवंत हो' गूंजता है। यदि अंतरंग के परिणाम पवित्र नहीं हैं, तो धर्म का नाम कहाँ सुनाई पड़ेगा?

अब परम सत्य को समझने की आवश्यकता है। जितनी श्रद्धापूर्वक हम भगवान् अरिहंत की प्रतिमा की पूजा करते हैं, जिनवाणी और निर्ग्रंथ गुरुओं की पूजा करते हैं, उतनी ही श्रद्धा से अपने बेटा-बेटी, माता-पिता को देखना प्रारम्भ कर दो। यदि परस्पर की श्रद्धा का अभाव हो गया, तो न अहिंसा दिखाई देगी, न करुणा दिखाई देगी, न धर्म के शब्द सुनाई देंगे, यदि एक-दूसरे के प्रति वात्सल्य भाव समाप्त हो गया। जो धर्म की व्याख्यायें हैं, वे संकुचित हो गई हैं। जो विशाल धर्म था, उसे व्यक्तियों ने अपनी मानकषाय की दीवार में खड़ा कर लिया है। और मानकषाय की दीवार के भीतर धर्म रख लिया तो लोगों को लगने लगा कि धर्म इतने ही

लोगों का है। जबकि धर्म किसी एक व्यक्ति का नहीं है। धर्म प्राणीमात्र का है, प्राणीमात्र का ही था, प्राणीमात्र का ही रहेगा।

भूल कहाँ हो गई? वस्तुस्वभाव की व्याख्या में जबसे हमने धर्म की चर्चाओं को पद्धति में समेट लिया है, तब से धर्म के मानने वालों की संख्या कम हो गई है। पद्धति भिन्न विषय है, और धर्म भिन्न विषय है। गेहूँ के गोदाम में भरे गेहूँ के दाने बहुत हैं। उन दानों को उठाकर एक ने रोटी बना ली है, दूसरे ने पूड़ी बना ली है। जब आकार दे दिया है तो कोई यह नहीं कहता है कि गेहूँ के गोदाम से गेहूँ लेकर आओ। कोई कहता है कि रोटी उठा लाओ, कोई कहता है कि पूड़ी उठा लाओ, हो क्या गया? जिस-जिस ने आकार दे दिए हैं, वे कहने लग गए कि अमुक सामग्री ले आओ। जब गेहूँ के दाने को देखोगे तो यह सब क्या था? जब से पद्धतियाँ बढ़ने लगीं, तब से समाज बँटने लगी। ये पद्धतियाँ हटा दो, गेंहूँ की अखण्ड धारा को देखो। जब से पानी मटके में आया, तब से पानी छोटा हो गया। और जब पानी कुँए में था, सागर में था, तो अगाध समुद्र के रूप में था। पानी पीते समय भले ही गिलास का पानी पियो, क्योंकि पियोगे तो गिलास में ही भरना पड़ेगा। परन्तु इतना श्रद्धा में रखना कि यह गिलास का पानी नहीं है, गिलास में पानी अवश्य है। गिलास में आये पानी को जिसकी गिलास का पानी कहने की आदत पड़ चुकी है, वह समुद्र का नाम भूल गया।

विशुद्धसागर इस जिनवाणी को अपनी न कहने लगें। ज्ञानी! आपको मालूम होना चाहिए, कि महारत्नाकर यदि कोई हैं, तो तीर्थंकर भगवंत हैं। उनकी वाणी है, तुम्हारे गिलासों में भरी हुई है। पानी ने भेद नहीं किए, बर्तन ने भेद किए हैं। गिलास का पानी है या समुद्र का पानी है? समुद्र का पानी वाष्पित न होता तो बादल में कैसे आता? और बादल न बरसते तो तेरे गिलास में कहाँ से आया? वस्तु का परिणमन चल रहा है, वस्तुव्यवस्था को निहारो। इस बात को छोड़ दो कि मैंने आज बहुत अच्छा भोजन किया, बहुत अच्छा पानी पिया। कुछ भी नहीं किया। जो पिया था, वही पिया है। जो खाया था, वही खाया है। वही पुनः पुनः आया है। हे मुमुक्षु! जब तुम ही पुराने हो, तो जगत् में कौन-सी सामग्री नई हो गई? पर्याय नई दिखाई देती है, वस्तु तो पुरानी-की-पुरानी ही होती है। आप अनादिकाल से हो और छह द्रव्य भी अनादिकाल से हैं।

लोगों में सम्प्रदाय के नाम पर भगवान् की भक्ति के स्थान पर ईर्ष्या भर दी गई है और जब ईर्ष्या भर जाती है तो वही पार्श्वनाथ, वही वर्द्धमान में हमारे मन्दिर के भगवान्, तुम्हारे मन्दिर के भगवान् दिखते हैं। और एक-दूसरे के भगवान् को देखना भी पसंद नहीं कर रहे हैं, जबकि भगवान् एक ही हैं। धर्म को समाज से दूर रखिए, समाज में धर्म भर दीजिए। धर्म-व्यवस्था

भिन्न है और समाज-व्यवस्था भिन्न है। रागियों ने समाजव्यवस्था में धर्म को रख लिया है, इसलिए लोगों ने धर्म से दूर होना प्रारम्भ कर दिया। क्योंकि लोक की मानसिकता बन गई है कि ये भगवान् महावीर स्वामी का मन्दिर है, महावीर के मानने वाले लोग हैं। नहीं, यह नहीं कहना है आपको। अपितु यह कहना है—जो महावीर 'को' मानते हैं, वे महावीर के भक्त नहीं होते हैं। जो महावीर 'की' मानते हैं, वे महावीर के पक्के भक्त होते हैं। ऐसा इसलिए कह रहा हूँ, क्योंकि महावीर 'की' वह ही मान पाएगा जो महावीर 'को' मानता होगा। भगवान् महावीर स्वामी ने कहा क्या है—समदृष्टि सम्यग्दृष्टि।

भैया! कुँए के किसी भी घाट से पानी निकाल लेना, उसमें अंगुली डालकर देखना, शीतलता होगी कि नहीं? यहाँ तक कि घाट का पानी तो ठण्डा है ही, जो नाले में काला पानी बहता दिख रहा है, उसमें भी हाथ डालेगा तो वह भी ठण्डा है। पर जो पानी काला दिख रहा है, वह किंचित् भी काला है नहीं। यह कालिमा मिट्टी की है, गंदगी की है। गंदगी हट जाए, तो पानी तो जैसा है वैसा है। संयोग की महिमा को देखो, कलश का पानी भगवान् के मस्तक पर चला जाए तो ये दुनियाँ दौड़ती है कि भैया! गंधोदक देना। और पानी की एक बूँद नाली में चली जाए तो तू देखना पसंद नहीं करता, स्पर्श हो जाए तो नहाने जाता है। संयोग की महिमा तो देखो। साधुपुरुषों का संयोग होगा तो तुम गंधोदक-जैसे बन जाओगे और असाधुओं का संयोग होगा तो मिट्टी में मिल जाओगे। पानी आज तक गंदा नहीं हुआ है, पानी में गंदगी आई है और पानी गंदा होने का कारण पानी नहीं था, बाहर की गंदगी थी। ऐसे-ही यह विषय विश्व के समस्त प्राणियों को समझ में आ जाए तो आज से ही परस्पर मैत्रीभाव प्रारम्भ हो जाए।

मैत्रीभाव हटने का कारण क्या हुआ है? किसी ने निश्चयनय का आलम्बन ले लिया, किसी ने व्यवहारनय का आलम्बन ले लिया। किसी ने परमात्मा की पूजा गृहस्थ अवस्था से प्रारम्भ कर दी है, किसी ने परमात्मा को वीतरागता में देखा है, परन्तु वस्तुस्वरूप को नहीं समझा है। स्पष्ट समझना—एक व्यक्ति भगवान् महावीर को मुकुट लगाकर पूज रहा है और दूसरा व्यक्ति भगवान् महावीर को कपड़े उतारकर पूज रहा है, लेकिन यह प्रश्न करो, पूज किसको रहा है? मुकुटवाले को देखा आपने, तो आपने उनसे द्वेष रखना प्रारंभ कर दिया और आपने कपड़े उतारकर पूजा, तो मुकुटवालों ने आपसे द्वेष करना प्रारंभ कर दिया। परन्तु दोनों महावीर को नहीं पूजते। महावीर की वाणी को समझने बैठते तो दोनों नहीं लड़ते। झलक रहा है कि सत्य के पास पहुँचने वालों की संख्या बहुत कम है।

अखण्डता को जब निहारना तो निहारना, लेकिन सरागता पूज्य नहीं है, वीतरागता ही पूज्य है। परन्तु वीतरागी वे ही हुए हैं, जो सरागी थे। भेषों के राग में परस्पर परिणाम खराब मत

करना। यह सत्य तभी समझ आएगा, जब दृष्टि अनेकांत होगी। इसलिए पंचपरमेष्ठी पर जितनी आस्था है, उतनी आस्था प्रत्येक आत्मा के ऊपर रखनी आवश्यक है। आज से घर में जाकर लड़ना बंद कर देना। जो पाषाण की प्रतिमा जिनालय में विराजमान हैं, वे स्थापना निक्षेप के भगवान् हैं। परन्तु तेरे घर में जो सम्बन्धी बैठे हुए हैं, वे बननेवाले भगवान् हैं। बननेवाले भगवानों का अपमान मत करना। ये क्या जगत् की लीला है? पिताजी ऊपर चले जायें तो तस्वीर पर फूलमाला डालता है और पिताजी के राग में अनेकों को भोजन भी करवाता है, परन्तु जब पिताजी जीवित थे, तब तू गिलास भरकर पानी तक नहीं पिला सका। फूलमाला किस बात की?

ज्ञानियो! वृद्धावस्था में आनंद का जीवन जीना है, सम्मान का जीवन जीना है तो आप मौनव्रत लेना प्रारम्भ कर देना। ज्ञानियो ! जितना ज्यादा बोलोगे, उतना अपमान होगा। दूसरे जो अपमान करेंगे, वह तो तेरे शरीर का कर पायेंगे, परन्तु आत्मा का अपमान तो जीव स्वयं करता है। जितने संक्लेश परिणाम करता है, तो नीचगति को प्राप्त करता है। ज्ञानी! नीचगति को प्राप्त हुआ है तो अपमान किसने किया है? तुम्हारी आत्मा ने तुम्हारी आत्मा का अपमान किया है। शरीर के सम्मान के राग में तूने अपनी आत्मा का अपमान किया है। ज्ञानियो! फल को देखकर फूल को मत भूलो। अभेददृष्टि पर दृष्टिपात करो। आप किसे भगवान् मानते हो? किस जाति के व्यक्ति को भगवान् मानते हो? किस वंश के व्यक्ति को भगवान् मानते हो? हे मुमुक्षु! जगत् में ऐसा कौन-सा भव्य जीव है जो भगवान् बनने की क्षमता न रखता हो? ज्ञानी! नाली का पानी फिल्टर होकर तेरी प्यास बुझाता है कि नहीं? अच्छा बताओ, नदियों में पानी कहाँ से आता है? तेरे द्वार की नाली का पानी जाता है कि नहीं? और वही पानी फिल्टर होकर प्यास बुझाता है। जब नाली का पानी फिल्टर होकर प्यास बुझा सकता है, तो जो तुमको मिथ्यादृष्टि नज़र आ रहे हैं, वे ही फिल्टर हो जायेंगे तो वे भगवान् बनकर पूज्य हो जायेंगे। भगवान् की प्रतिमाओं की रक्षा करना चाहते हो तो जगत् के प्राणियों के प्रति साम्यभाव रखना प्रारम्भ कर दो। अपने घर को सुरक्षित रखना चाहते हो तो पड़ौसी के घर में यदि आग लग जाए, उसे बुझाने चले जाना, नहीं तो संभल कर रहना, तेरा ही घर पास में है।

भैया! घर की आग तो पड़ौसी बुझाने आ जाएगा, लेकिन ईर्ष्या की आग भगवान् भी नहीं बुझा पायेंगे। यदि हृदय बदल गए, तो किसी को बदलने की जरूरत नहीं है। यदि आपको कहीं राज्य करने की इच्छा हो, तो लोगों के हृदय पर राज्य करना सीखो। ज्ञानी! हृदय पर राज्य तभी कर पाओगे, जब स्वयं के हृदय पर राज्य होगा। जिसका स्वयं का मन, स्वयं की वाणी वश में नहीं होगी, वह दूसरे के मन में क्या राज्य कर पाएगा? हे वर्द्धमान! आपको निर्वाण हुए

दो हजार पाँच सौ वर्ष हो गए, लेकिन तब भी आप ऐसे लगते हो जैसे मेरे सामने विराजे हो। प्रभु! जब आप विद्यमान थे, तब कितनों पर शासन था, यह मैंने नहीं देखा। आप आज वर्तमान में महावीर की पर्याय में नहीं भी हो, लेकिन फिर भी बालक-बालक के हृदय में आपका शासन चल रहा है। यह क्यों चल रहा है? क्योंकि आपने शासन नहीं चलाया, अपितु आत्मानुशासन में चले थे, इसलिए सारे विश्व पर आपका शासन चल रहा है। आत्मानुशासन है तो जगत् पर आप शासन कर सकते हो और जिसका आत्मानुशासन खो गया, उसका पूरा शासन उसी दिन नष्ट हो जाता है। व्यापारियों का आत्मानुशासन देखना हो तो उसकी दुकान पर देखने को मिलता है और विशेषकर जो वस्त्रभण्डार वाले होते हैं उनके पास जाकर शान्ति से बैठकर देखना। जैसा नियन्त्रण तू दुकान में बैठकर कर लेता है, ऐसा भावों का नियन्त्रण भीतर से कर लेता, तो तू ही भावी भगवान् है। मेरे से मत पूछो, जीवन के खट्टे-मीठे दिनों को निहारो कि कैसे-कैसे दिन आपने देखे हैं, तब भी आप मुस्कुरा रहे थे।

साम्यदृष्टि, सम्यग्दृष्टि। ज्ञानियो! धर्म की रक्षा करना है तो जगत् के प्राणियों के हृदयों की रक्षा करनी पड़ेगी। जैसे दूसरे के शरीर की रक्षा की बात आप करते हो उपचार करके, साथ में ऐसा उपचार भी करो जिससे उनके परिणामों की रक्षा हो जाए। पंचमकाल की सबसे बड़ी तपस्या यह है कि अपनी इन खुली आँखों से पड़ौसी के महल को खड़ा होते देख सके। दूसरे के प्रभाव को अपनी आँखों से देख पाए और दूसरे की प्रशंसा को अपने कानों से सुन पाए। इससे बड़ा भारत में पंचमकाल का कोई तपस्वी नहीं है। सबसे बड़ी तपस्या पंचमकाल की यदि कोई है तो किसी के उत्कर्ष को सहन कर पाना। इसलिए माताओ! भले एक उपवास कम कर लेना, लेकिन दूसरे का उत्कर्ष एवं स्वयं के अपकर्ष को सहन करने की क्षमता नहीं आएगी तब तक मोक्षमार्ग बहुत दूर है। मोक्षमार्ग ही दूर है, मोक्ष की तो बात ही भूल जाओ। ज्ञानी! जो लोग, जिनशासन में जन्म लेकर नाना भेदों में जी रहे हैं, विश्वास रखो, ये धर्म में एक भी नहीं हैं, मात्र मानकषायी हैं। भैया! अपने स्वयं के कक्ष में बैठकर ही कम-से-कम सत्य को देख लिया करो।

भो ज्ञानी! शरीर के उपसर्गों को दूर करने वाले कोटि-कोटि जीव मिल जायेंगे। परन्तु तेरे निज के परिणामों में निज के परिणामों से जो कषाय का उपसर्ग चल रहा है, इसे दूर करने के लिए भगवान् भी नहीं आ पायेंगे, तुझे ही दूर करना पड़ेगा। इसलिए हे पुरुष! आज से ही पुरुषार्थ करो कि मेरे परिणामों पर उपसर्ग मेरे द्वारा न हो। क्योंकि मेरे परिणामों पर दूसरा उपसर्ग करने तो नहीं आएगा। अपनी सीमा से ज्यादा सोच लेना, यह भी स्वयं के द्वारा स्वयं पर उपसर्ग है। अपने पुण्य से ज्यादा प्रशंसा को सोच लेना, यह भी स्वयं के द्वारा स्वयं पर उपसर्ग

है। विश्वास रखो, हर व्यक्ति को अपने पुण्य-पाप का ज्ञान होता है। उतना ही आगे बढ़ना चाहिए, जितना तुम्हारा पुण्य साथ देता हो और पुण्य से ज्यादा आप आगे बढ़ जाओगे तो असफल होकर रोकर ही आओगे, कर कुछ नहीं पाओगे।

भो ज्ञानी! फल आते ही फूल को दुनियाँ भूल जाती है, इतना ध्यान रखना। इतना नियम ले लो कि अन्तिम समय कोई तड़पता मिल जाए तो तुम लाखों काम छोड़ देना, परन्तु उसके कान में णमोकार सुना देना। श्रीराम के जीव ने पूर्व भव में बैल को णमोकार सुनाया था, वही बैल का जीव सुग्रीव हुआ था।

सम्पूर्ण तत्त्वों को जानने से क्या? और बहुत अधिक तप करने से क्या लाभ? यदि सम्यक्त्व की विशुद्धि से रहित है तो सम्पूर्ण तप, सम्पूर्ण ज्ञान भव बढ़ाने का बीज है। और यदि सम्यक्त्व सहित है, तो निर्वाण का बीज है। सम्यग्दर्शन रूपी रत्न मोक्षमहल की प्रथम सीढ़ी है।

"आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

॥भगवान् महावीर स्वामी की जय॥

❖ ❖ ❖

संसार की वृद्धि

वय गुण सील परीसहजयं च चरियं तवं छडावसयं।
झाणज्झयणं सव्वं, सम्म विणा जाण भववीयं॥121॥

अन्वयार्थ—(वयगुणसील परीसहजयं) व्रत, गुण, शील, परीषह-जय **(चरियं)** चारित्र **(तवं)** तप **(छडावसयं)** षट् आवश्यक **(च)** और **(झाणज्झयणं)** ध्यान और अध्ययन **(सव्वं)** सब **(सम्मविणा)** सम्यक्त्व के बिना **(भववीयं)** भव बीज **(जाणं)** जानो।

भव्य बन्धुओ!

अन्तिम तीर्थेश भगवान् वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना, जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति। आचार्यप्रवर भगवान् कुन्दकुन्द स्वामी ग्रंथराज रयणसार जी में श्रमण और श्रावक उभय धर्मों का व्याख्यान करते हुए समझा रहे हैं—वे श्रावक धन्य हैं जिनके अंतस् में पंचपरमेष्ठी के चरणकमल विराजमान हैं। वे योगी धन्य हैं, जिनके अंतरंग में पंचमहाव्रत विराजमान हैं। ऐसे जीवों का संयोग मिलना दुर्लभ है। स्वर्ग का सौधर्म इन्द्र चाहे कि मेरे स्वर्ग में मुनिराज मिल जायें, या कोई देशव्रती श्रावक मिल जाए,परन्तु उसे वहाँ किसी भी स्वर्ग में दिगम्बर मुनि के दर्शन नहीं हो पायेंगे। यह अहोभाग्य मात्र ढाईद्वीप के जीवों को ही है। भोगभूमि में भी न मुनिराज मिलेंगे न देशव्रती श्रावक मिलेंगे। मात्र पन्द्रह कर्मभूमियों में ही नमोऽस्तु शब्द सुनाई देगा। हे श्रावको! अहोभाग्य आपका है, इस खोटे काल में भले ही जन्मे हो, परन्तु इतना पुण्य है कि निर्ग्रंथ मुनि का पड़गाहन करने को मिल रहा है। वे कैसे अभागे जीव होंगे जो ऐसे पुण्यात्मा कुल में जन्म लेकर भी पड़गाहन नहीं कर पा रहे हैं। नियम से कोई खोटा कर्म करके आए हैं, इसीलिए भाव ही नहीं हो रहे हैं। भवन पर खड़ा टहलता रहेगा, परन्तु जिनवाणी सुनने के भाव नहीं आयेंगे। घर में समय होगा तो सो जाएगा अथवा टी.वी. खोलकर बैठ जाएगा, परन्तु जिनवाणी सुनने के भाव नहीं होंगे। आज जो गाथा आ रही है, वह कुछ संकेत कर रही है। जिन्होंने पुण्य करना बंद कर दिया है, वह भाव विशुद्ध करना भी चाहे, लेकिन होते नहीं हैं। नरक का नारकी कई बार सोचता है कि मैं अच्छे भाव करूँ, लेकिन क्या करे? नरकों में नारकी के—

नारका नित्याशुभतर लेश्या परिणाम देह वेदना विक्रियाः। (त.सू.)

नित्य ही अशुभतर लेश्या, अशुभतर परिणाम, अशुभतर वेदना, अशुभतर विक्रिया ही होती है। परिणाम अच्छे करने की सोचने पर भी परिणाम अच्छे नहीं होते हैं। विष बनाने के भाव हो

जायें, नाली साफ करने के भाव हो जायें, लेकिन सुबह उठकर जिनालय जाकर जिनेन्द्र प्रभु के अभिषेक-पूजन के भाव नहीं होंगे। तेरा दुर्गति का बन्ध हो चुका है। भगवान् की भक्ति, गुरुओं की सेवा, आदि में आत्म-आह्लाद उसी को आता है जिसे स्वर्ग की भूमि पर जाना है अथवा सिद्धशिला पर जाना है। ज्ञानी! जिसे नरक की सात भूमियाँ दिखाई दे रही हैं, उसे धर्म देखकर आनंद आ ही नहीं सकता। सोच सम्यक् है तो सर्वत्र आनंद है और सोच सम्यक् नहीं है तो सर्वत्र शोक है।

जीवन में सम्पूर्ण रूप से अपनी सीमाओं को समाप्त नहीं कर देना चाहिए। लोग बहुत जल्दी दुरुपयोग करने लगते हैं। किसी का सरलता का अर्थ आप कायरता मत समझिए। ध्यान रखना, समझने वाले तो दुर्बुद्धि हैं, परन्तु सरलता तो सरलता ही है और कायरता, कायरता ही है। सरलता, कायरता कैसे? फिर तो मार्दव-आर्जव धर्म कायरता का धर्म हो जाएगा, क्षमा कायरों का धर्म हो जाएगा, जबकि 'क्षमा वीरस्य भूषणम्।' परन्तु कौन समझाए अज्ञानियों को? मेरे भैया! इतना ध्यान रखना कि किसी को लड्डू न खिला पाओ तो मत खिलाना, लेकिन मधुर भाषा का प्रयोग कर लेना।

"माधुर्य गुण प्रीतिः"

नमक के कितने ही बोरे पड़े रहें, एक चींटी नहीं लगती और शक्कर की एक डली भी हो तो हजारों आ जायें। ऐसे-ही जिसके स्वभाव में मधुरता होगी, वहाँ लोग अपने-आप पहुँच जायेंगे। और जो नमक-जैसे खारे बने हों, तो कितना ही तुम बुलाना, लेकिन वे आना पसंद नहीं करते। जीवन में अपना सबको बनाना हो तो एक सूत्र सीख लो—"माधुर्य गुण प्रीतिः"। भूल मत जाना और लिखकर रसोईघर में टांग देना। जो मधुरता भोजन में नहीं होती है, वह मधुरता वाणी में होती है। ज्ञानी! वाणी की मधुरता से युक्त मिर्च भी परोसी जाएगी तो मीठी लगेगी और वाणी की कठोरता से रसगुल्ले, जलेबी, चमचम सब परसो, लेकिन वह कड़वे ही होंगे।

"हितं ब्रूयात मितं ब्रूयात ब्रूयात धर्म यश कारणम्।"

हितकारी बोलो, सीमित बोलो और ऐसा बोलो जिससे धर्म और यश की वृद्धि हो। ऐसा मत बोलो जिससे धर्म का नाश हो जाए और तेरे स्वयं के यश का नाश हो जाए। कितना ही महान् व्यक्ति हो, जैसे ही बोल पड़ा, तो एक क्षण में धुल जाती है सब। घर में जाकर कह देना—वाणी वीणा बने, वाणी लाठी न बने। बाँस की एक लाठी बन जाए तो लोगों की कमर तुड़वा दे और बाँस की एक बाँसुरी बन जाए तो लोगों को संगीत सुनाने लग जाए।

भैया! चेहरा सब कह देता है। मायाचारी का चेहरा भी अलग झलकता है। उसकी मधुर वाणी भी समझ में आ जाती है कि मायाचारी से युक्त है और हृदय पवित्र है तो उसका भी चेहरा

बोल देता है कि करुणापूर्वक बोल रहा है। उपदेश देने के लिए जो उपदेश है, वह उपदेश ही नहीं है। और जीवों पर करुणा करने के लिए जो उपदेश है, वह वास्तव में उपदेश है। प्रवक्तापना दिखाना प्रवचन नहीं है। जीवों पर करुणा रखकर बोलना, इसका नाम प्रवचन है। प्रवक्ता तो छप जाएगा, लोगों के कानों तक पहुँच जाएगा, लेकिन लोगों के हृदय तक नहीं पहुँचेगा। जिनशासन में भाषणवादियों की वन्दना नहीं है। जिनशासन में उपदेशों की वन्दना है। इसलिए मेरा सभी से कहना है—कोई व्यक्ति कितनी ही ऊँची बातें करे, लेकिन जब तक उसका ऊँचा भोजन, ऊँचा रहन-सहन (चर्या) समझ में न आए, तब तक सिर मत टेकना। जैसे लोगों के बीच में बैठोगे, वैसे संस्कार पड़ेंगे।

भगवान् कुन्दकुन्द स्वामी कह रहे हैं—हे मुनीश्वर! व्रत, गुण, शील, संयम, परीषहजय, चारित्र, तप ये सारी-की-सारी आवश्यक क्रियाएँ यदि सम्यक्त्व के बिना हैं, तो भव के ही बीज हैं और सम्यक्त्वसहित हैं, तो भव टालने के बीज हैं। इसलिए सम्यक्त्व परिणति को कभी भूल मत जाना, श्रद्धा को कभी ठुकरा मत देना। अग्नि के कुण्ड में गिरना पसंद कर लेना, लेकिन मिथ्यात्व के हीरे-मोती उठाना पसंद नहीं करना। कितने ही झंझावत चलें, परन्तु श्रद्धा के दीप को बुझने मत देना। माँ जिनवाणी का आँचल छोड़कर किसी दूसरे आँचल का पान करने मत जाना। जिस प्रकार दाना रहित तुष को फटकना व्यर्थ है, वैसे-ही सम्यक्त्वरहित किया गया जप-तप व्यर्थ है, संसार का बीज है, संसार को बढ़ाने वाला है।

"आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

॥भगवान् महावीर स्वामी की जय॥

❖ ❖ ❖

परलोक कैसे सुधरेगा?

खाई-पूया-लाहं, सक्का-राइं किमिच्छसे जोई ।
इच्छसि जदि परलोयं, तेहिं किं तुज्झ परलोयं ॥122॥

अन्वयार्थ—(जोई) हे योगी **(जइ परलोयं इच्छसि)** यदि परलोक की इच्छा करता है तो **(खाई-पूया-लाहं)** ख्याति- पूजा-लाभ **(सक्का राइं)** सत्कार आदि की **(किमिच्छसे)** इच्छा क्यों करता है? **(किं)** क्या **(तेहिं)** उनसे **(तुज्झ)** तुझे **(परलोयं)** परलोक अर्थात् अच्छा लोक मिलेगा?

भव्य बन्धुओ!

अन्तिम तीर्थेश भगवान् वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना, जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति। आचार्यप्रवर भगवान् कुन्दकुन्द स्वामी ग्रंथराज रयणसार जी में श्रमण और श्रावक उभय धर्मों का व्याख्यान करते हुए समझा रहे हैं—भावों की विशुद्धि का उद्घोषक कोई है, तो उसका नाम भाषा है। आपके अंतरंग के परिणाम जितने निर्मल होंगे, भाषा भी उतनी निर्मल निकलना प्रारम्भ हो जाएगी। वात्सल्य की भाषा, करुणा की भाषा, दु:ख की भाषा, कषाय की भाषा अलग से दिखाई देती है। यदि मुख में पानी भरकर पी रहा हो, वह पुरुष यदि बात करे तो समझ में आ जाता है कि पानी पीकर बात कर रहा है। जिसके मुख में जो है, उसके मुख से वही निकलेगा। भगवान् कुन्दकुन्द स्वामी सीमंधर स्वामी के श्रीमुख से जिस दिव्यवाणी का पान करके आए थे। उन्होंने किंचित् भी लोभ नहीं किया कि मैं अपना समय निकालकर सीमंधर स्वामी की वाणी लोगों को कैसे दूँ। जितनी आयु उनको प्राप्त हुई थी, ऐसा एक योगी भारत की भूमि पर हुआ जिन्होंने अपने संयम के काल में एक समय भी श्रुत की आराधना के बाहर नहीं जिया। चौरासी पाहुड ग्रन्थों को लिखा। जिस पर आगामी आचार्यों (जयसेन स्वामी, अमृतचंद्र स्वामी, पद्मप्रभमलधारिदेव) ने संस्कृत टीकाएँ लिखी हैं। नियमसार ग्रन्थ पर पद्मप्रभमलधारिदेव की संस्कृत टीका है।

आचार्यों ने यदि लेखन न किया होता तो आज हम अपने को श्रुतविहीन पाते। एक छोटा-सा बालक भी हँसकर यूँ कह लेता है कि हमारी जिनवाणी में ऐसा लिखा है। जितना श्रद्धान जिनवाणी के प्रति आता है, उससे कोटि-कोटि गुणा श्रद्धान उन योगियों के प्रति

आना चाहिए जिन्होंने जिनवाणी को सुरक्षित रखा है। आश्चर्य तब होता है, जब हम जिन आचार्य भगवंतों के ग्रन्थों का वाचन करके, स्वाध्याय कर रहे हैं, उनकी वाणी को तो मान रहे हैं और उन आचार्य भगवंतों को न मानें तो कैसे मानें कि आप उनकी वाणी मानते हो? ऐसा कोई म्यूज़ियम नहीं है जिसमें जिनप्रतिमा न हो। ऐसा कोई ग्रन्थालय नहीं है जिसमें जैनाचार्यों के ग्रन्थ न हों। कुन्दकुन्द स्वामी का जो ज्ञान था, वह द्वितीय श्रुतस्कंध का गहनतम ज्ञान था, अध्यात्म का गहनतम ज्ञान था। एक चरणानुयोग की पद्धति को जब लोग निहारते हैं तब लगता है कि, अहो! हमारा आगम कितना विशाल है। करणानुयोग को देखते हैं तो लगता है कि सम्पूर्ण विश्व इसमें भरा हुआ है। चारों अनुयोगों में जो द्रव्यानुयोग है, वह बाहर झाँककर नहीं देखता है। भीतर-भीतर में क्या भरा हुआ है, यह द्रव्यानुयोग की दृष्टि है।

जमीन के ऊपर फसल उगाकर पेट भरना, ये तो सभी जानते हैं, परन्तु जमीन के अन्दर खनिज कौन-कौन से छिपे हुए हैं? यह विरले ही जानते हैं। जो चरणानुयोग की पद्धति है, वह चारित्र तो बाह्य में दिख रहा है, यह तो ऊपर की फसल है। द्रव्यानुयोग भीतर के खनिज की बात करता है। आपके ही मध्यप्रदेश में पन्ना नगर के खेतों में वर्षों से खेती कर रहा है किसान, वह गरीब-का-गरीब है। और कोई अन्य व्यक्ति खदान बनाकर हीरा निकाल रहे हैं। जो जीव चरणानुयोग मात्र की पद्धति में निर्ग्रंथ मुनि बनकर व्रतों का पालन कर रहा है, वह तो संयम के पालन करने मात्र में ही लगा हुआ है। परन्तु जिस जीव ने उस बाहर के संयम पालन के साथ भीतर की भेदविज्ञान की छैनी से अंदर के स्वानुभूति के खनिज को निहार लिया है, वह सिद्धशिला का स्वामी बनकर बैठता है। जो जीव भगवान् की वन्दना कर रहा है, समितियों-गुप्तियों का पालन कर रहा है, वह करते दिखाई देता है, कि बहुत साधना में लीन है, परन्तु जो ध्यान में बैठा योगी है, वह निज रत्नों को निहार रहा है, उसकी मानसिक मेहनत अधिक है। कर्मों की निर्जरा उसकी ज्यादा है और निर्वाण जब भी प्राप्त करेगा तो वह हाथ पर हाथ रखनेवाला ही जायेगा।

हीरे का एक कण भी बहुत धन दिला देता है। ऐसे-ही निर्ग्रंथ योगी का एक क्षण प्रमाण भी जो निज का ध्यान है, वह कोटि-कोटि भव के कर्मों को क्षण में नष्ट कर देता है। घनत्व की साधना और विस्तार की साधना। विरलन की जो साधना है उसमें शक्ति क्षीण (अल्प) होती है और घनत्व में शक्ति का संचय होता है। घृत भी दुग्ध से निकलता है,

मलाई भी दुग्ध से निकलती है, मावा भी दुग्ध से बनता है, परन्तु सत्य बताना, सबसे अधिक ताकत किसमें होती है? दुग्ध का घनत्व कोई है तो उसका नाम घृत है। विरलन का अभाव होता है तब घनत्व प्रारम्भ होता है। समूह में जो ताकत होती है, वह एक-एक में नहीं होती है। जरा-सा फूँक दो तो चींटी उड़ जाती है और पचास चींटियाँ इकट्ठी हो जायें तो बड़े टुकड़े को लेकर चल देती हैं।

जैनदर्शन की जो साधना है, वह रासायनिक है। मोक्षमार्ग है, वह रासायनिक है। आपके भाव जैसे होते हैं, शरीर में वैसा स्राव प्रारम्भ हो जाता है। जिस माँ के अंतस् में क्रूरता है, उस माँ के आँचल में दुग्ध नहीं आता। जिनके मानसिक परिणाम अच्छे नहीं हैं, वे शरीर के रोगी अधिक मिलते हैं। जैसा-जैसा पुद्गलपिण्ड परमाणुभूत होता जाता है, उतनी-उतनी उसकी शक्ति अल्प होती जाती है। जो पौद्गलिक शक्ति है, वह अनेकभूत है। शब्दभूत पौद्गलिक शक्ति, द्रव्यभूत पौद्गलिक शक्तियाँ चल रही हैं। आपने मोबाइल से अमेरिका बात की है, आपकी वचनशक्ति प्रबल है जो यहाँ से वहाँ तक रुला पा रही है। और यहाँ पर बैठे-बैठे ही एक आदमी को हँसा देती है। मन की शक्ति जो है, यह पौद्गलिक शक्ति है। जितने सुन्दर शब्दों का चयन करोगे, उतना भावों पर प्रभाव पड़ता है। भावों की पवित्रता, परिणामों की घनत्वता बहुत विराट होती है। जो शक्ति घृत में है, वह शक्ति दुग्ध में नहीं है, जबकि, दुग्ध से ही घृत बना है। आयुर्वेद में घी को आयु कहा है, तेज बढ़ाने वाला है, शीतलता देने वाला है और बुद्धि का विकास करने वाला है। दुग्ध का सार घृत है। ऐसे-ही साधना का कोई सार होता है तो उसका नाम ध्यान होता है। और ध्यान के काल में योगी घनत्व में चला जाता है।

विश्वास रखना, यदि पवित्र सामायिक चल रही है, निर्दोष साधना चल रही है, तो योगी अपने आप जमीन से आकाश में उठता महसूस करता है, और उठ भी जाता है। जो उपयोग चक्षु इन्द्रिय में, कर्ण इन्द्रिय में जा रहा था, घ्राण इन्द्रिय, स्पर्श इन्द्रिय में जा रहा था, सभी इन्द्रियों से उपयोग को हटाकर आत्मा में लगा देता है जब योगी, यही आत्मा उठकर सात राजु प्रमाण में प्रवेश कर जाती है। जब निर्वाण प्राप्त करता है तो एक समय में सात राजु गमन करता है शुद्ध जीव। इसलिए जब भी योगी की वंदना करने जाओ तो यह वन्दना करना—हे मुनिराज! साधु की वन्दना मैंने अनन्त बार की है, मैं योगी की वन्दना करने आया हूँ। जो योग में लीन हो चुके हैं, मात्र घनत्व में बैठे हुए हैं, जिन्होंने उपयोग को संकुचित कर लिया है, मात्र चिद्रूप-विभुत्व शक्ति में लवलीन हैं,

वह योगी की घनत्व की दशा है। भीतर भेदविज्ञान की मथानी चल रही है और वहाँ मक्खन निकल रहा है, घनत्व बढ़ रहा है। यही वास्तविक धर्म की साधना है। जैसे-जैसे भीतर जाएगा जीव, वैसे-वैसे हल्का होता जाएगा और जैसे-जैसे हल्का होता है, वह ऊपर उठता चला जाता है। जिसमें वजन होता है, वह नीचे ही गिरता है और जो हल्का होता है, वह ऊपर ही जाता है।

ऊपर जाना है तो वजन को हटाइए और नीचे गिरना है तो वजन बढ़ाइए। जिसका पाप का वजन बढ़ जाएगा, वह अपने आप सातवें नरक चला जाएगा। और जिसका पाप का वजन घट जाएगा, वह अपने आप स्वर्ग चला जाएगा। और-कम हो जाएगा तो नियम से सिद्धालय में ही जाएगा। गुणों से भारी बनो और पापों से हल्के बनो, तो निर्वाण को प्राप्त करोगे। इसलिए कुन्दकुन्द देव कह रहे हैं कि—हे मुमुक्षुओ! व्रत, संयम, शील यदि इनकी प्रवृत्ति सम्यक्त्वसहित है, तो सिद्धत्व की ओर ले जाएगी और सम्यक्त्वरहित है, तो निगोद की ओर ले जाएगी। दिगम्बर मुनि बनकर भी यदि तिल-तुष मात्र परद्रव्य का संचय कर रहे हैं तो आगम कह रहा है—बड़े प्रेम से तुम निगोद के पात्र बन जाओगे। आचार्यभगवान् कह रहे हैं—हे योगी! ख्याति, पूजा, लाभ इनकी दृष्टि से यदि तू साधना कर रहा है, तो यह उचित नहीं है। ख्याति, पूजा ये साधु के जीवन की सबसे बड़ी बुराइयाँ हैं। सारी बुराइयाँ छूटने के बाद यदि कोई बुराइयाँ बचती हैं साधुजीवन में तो ख्याति, पूजा, यश, नाम। परन्तु ध्रुव सत्य है कि ख्याति चाहने से ख्याति नहीं मिलती। यशःकीर्ति का उदय है, तो अपने आप ख्याति होती है। यदि योगी यह सब (ख्याति, लाभ, पूजा, सत्कार) चाहता है, तो उसके लिए परलोक में कुछ भी मिलने वाला नहीं है। ऐसा आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी कह रहे हैं।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

॥भगवान् महावीर स्वामी की जय॥

❖ ❖ ❖

उदय भावों को जानकर अपनी शुद्धात्मा में रुचि करो

कम्माद-विहाव-सहाव-गुणं जो भाविदूण भावेण।
णिय-सुद्धप्पा रुच्चदि तस्स य णियमेण होदि णिव्वाणं॥123॥

अन्वयार्थ—(जो) जो मुनि **(कम्माद-विहाव-सहाव-गुणं)** कर्मजनित विभाव व कर्मों के क्षय से प्राप्त स्वभाव गुणों को **(भावेण)** भावपूर्वक **(भाविदूण)** भाकर, मनन चिंतन कर **(णिय-सुद्धप्पा)** अपने शुद्धात्मा में **(रुच्चदि)** रुचि करता है **(तस्स य)** उसका ही **(णियमेण)** नियम से **(णिव्वाणं)** निर्वाण **(होदि)** होता है।

भव्य बन्धुओ!

अन्तिम तीर्थेश भगवान् वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना, जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति। आचार्यप्रवर भगवान् कुन्दकुन्द स्वामी ग्रंथराज रयणसार जी में श्रमण और श्रावक उभय धर्मों का व्याख्यान करते हुए समझा रहे हैं—हे परम योगीश्वर! वीतरागी तपोधन!! आत्मा के उपकार का कोई मार्ग है तो जिनलिंग है। जिस अरिहंत लिंग के लिए देव तरसते हैं, तिर्यंच तरसते हैं, नारकी तरसते हैं, मनुष्य भी तरसते हैं, सभी जीवों के वश में नहीं है जिनलिंग प्राप्त करना। ऐसी दुर्लभ जिनमुद्रा को प्राप्त करके, हे योगी! ख्याति की चाह में नष्ट मत कर। त्रिलोकपूज्य यदि कोई मुद्रा है तो मात्र यही वीतराग अरिहंत मुद्रा है।

आचार्यभगवान् कुन्दकुन्द स्वामी इतने गंभीर होकर योगियों को समझा रहे हैं कि जीवन में आत्मा को समझाने से पहले उसके स्वभाव का ज्ञान कर लेना चाहिए। भूल इस बात की होती है कि स्वयं की सीमा का बोध न होने से, अज्ञानता में, स्वभाव से च्युत हो जाता है। उज्जवल कुल में जन्मा पुरुष भी यदि खोटे लोगों की संगति में जन्म से ही चला जाए, उसे अपना कुल न मालूम हो, तो वह भी मदिरा का पान प्रारम्भ कर देता है और स्वयं को पुण्यात्मा समझता है। नीच कुल में जन्मा पुरुष खोटे कार्यों को ही अपना पुण्य समझता है। उस पुण्यहीन को कौन कहे कि तेरा पुण्य नहीं, पाप चल रहा है? उस काल में उसे कोई ज्ञानी पुरुष मिल जाए और कहे—भैया! तू जिस कुल में जन्मा है, उस कुल में मदिरा का पान नहीं होता है। प्रातःकाल जिनेन्द्र का अभिषेक होता है, निर्ग्रंथ को दान दिया जाता है, जिनवाणी का श्रवण होता है। विश्वास मानो, नीच जाति के लोग भी आपको देखकर अंदर में हीनभावना लाते हैं कि देखो जैनियों को; परन्तु वे अपने कुल के राग में कुलपरम्परा को छोड़ नहीं पाते हैं। उन्हें मालूम है कि ये अरिहंत की आराधना करने वाले लोग

चारों ओर से सुख-सम्पत्ति से युक्त हैं और सबसे बड़ा सुख जगत् में यदि कोई है तो अच्छे लोगों के बीच बैठने मिल जाना। यह जगत् का सबसे बड़ा सुख है। श्रेष्ठ लोगों के बीच सम्मान मिल जाना, इससे बड़ा कोई सुख नहीं है। अरबपति, खरबपति हो जाये, परन्तु श्रेष्ठ पुरुषों के बीच बैठने नहीं मिलता हो, तो कोई सुख नहीं है। जो सौधर्म इन्द्र होता है और सामानिक जाति के देव भी होते हैं। सामानिक जाति के देवों का वैभव सौधर्म इन्द्र जैसा ही होता है, लेकिन आज्ञा देने को नहीं मिलता, आदेश देने नहीं मिलता। सम्राट का पिता सम्राट-जैसी सम्पत्ति से युक्त होता है, लेकिन वह सम्राट नहीं कहलाता, क्योंकि आदेश पिता का नहीं, राजा का चलता है। कितना ही आपको सम्मान से रखा जाए, परन्तु किसी कार्य का आदेश दे दिया जाए, तो इतनी पीड़ा उस जीव को होगी कि मुझे आदेश दिया है। लोक में इतने चुनाव हुए हैं, ये किसके पीछे? मेरा आदेश चलेगा। आदेश भी उसका चलता है जिसका प्रबल पुण्य का नियोग होता है और जिसका प्रबल पुण्य का नियोग नहीं है, वह जीव पद पर भी पहुँच जाए तब भी आदेश नहीं चलता।

हीन कुल में जन्मा पुरुष देखता है कि ये सब लोग महानता को प्राप्त हो रहे हैं, एक मैं हूँ जो रोड झाड़ रहा हूँ, एक ये हैं जो सुबह से भगवान् की पूजन करने जा रहा है। एक प्रातः से उठकर कर्म झड़ाता है और एक प्रातः से उठकर रोड झाड़ता है। बस, यही पुण्य-पाप में अंतर है। हर व्यक्ति को पूजा करने के भाव नहीं आ सकते। कितने लोग घर में बैठे होंगे और दूसरे की आलोचना सुन रहे होंगे। पुण्यानुबंधी पुण्य का भोक्ता जीव ही प्रातः से उठकर जिनवाणी सुनने के परिणाम करेगा। और जिसके अशुभ आयु का बंध हो चुका है, वह दूसरे की निंदा-आलोचना तो सुन लेगा, लेकिन उतने समय में जिनवाणी सुनने के परिणाम नहीं कर पाएगा। उत्कृष्ट वस्तु को देखकर, कदाचित् हीनभावना में आकर, ईर्ष्या में आकर, मुख से प्रशंसा न भी कर पाए, परन्तु जब भी बैठेगा तो मन यही कहेगा कि मार्ग तो यह ही है। कभी-कभी ईर्ष्या मुख से गुणियों के गुण कहने नहीं देती है, लेकिन मन तो गुण-दोष को जानता है। कोई छात्र फेल हो जाए, तो अनेक बहाने बनाता है अपनी गल्ती छुपाने के लिए। लेकिन उसे मालूम रहता है कि मेरा मित्र जो श्रेणी बनाकर लाया है, उसकी पढ़ाई भी पता है कि वह कैसे पढ़ता है। यदि कोई साधक भी है, एक उन्नति कर रहा है, दूसरा जहाँ था वहीं है; उस साधक को भी मालूम रहता है कि जब आचार्य महाराज पढ़ाते थे तो मैं बगल में बातें कर लेता था अपने गुरुभाइयों से। परन्तु अमुक महाराज चौबीसों घण्टे आँखें ग्रन्थों पर लगाये रहते थे; फिर उसका फल मिलेगा कि नहीं मिलेगा? मन में ईर्ष्या आ भी जाए, पर हृदय यही कहेगा कि कमी मेरी रही है। इतना घाटा जीव स्वयं करता है। मधुर दुग्ध में एक बूंद जामन की गिर जाय तो दूध खट्टा हो जाता है। चित्त में ख्याति की कणिका गिर जाये तो साधना की मधुरता नष्ट हो

जाती है। यदि कोई सिंह खा जाए मुनिराज को, तो हे योगीश्वर! शरीर ही नष्ट हुआ है। सिंह का खाया मुनि दुर्गति को प्राप्त नहीं होता, परन्तु ख्याति का खाया मुनि नियम से दुर्गति को प्राप्त होता है। निर्ग्रंथों के लिए बहुत बड़ी सीख दे रहे हैं कुन्दकुन्द स्वामी। हे योगीश्वर! ऐसे जिनलिंग को प्राप्त करके किस गड्ढे में देख रहे हो? दूध-रोटी खिलाने के बाद भी जो मल को सूंघता हो, तो वह श्वान अपनी वृत्ति को कहाँ छोड़ पाया? ऐसे-ही हे मुनीश्वर! आपको तीनलोक के नाथ की मुद्रा मिली हो और आपके हाथ पर ग्रास रखकर यह श्रावक अहोभाग्य मानता हो और तब भी तुम ख्याति की खाई के मल के टुकड़े को देखो, तो तुम्हारी वृत्ति कैसी है? इससे बड़ा नाम क्या होगा कि, आपके नाम की जय बोली जाती है। हे स्वामी! यह जय रत्नत्रय धर्म की है। लोग रत्नत्रय धर्म के नाम पर आपकी जय बोलते हैं तो आपको भी रत्नत्रय धर्म की जय बोलनी चाहिए। हे योगी! आप ख्याति की बात मत करो। आप तो रत्नत्रय धर्म की बात करो, ख्याति स्वयमेव फैल जाएगी। निर्दोष संयम ही साधु का यश है। और संयम की अपेक्षा कागजों पर चिपकने की चेष्टा करोगे तो दीवार से चिपककर कुछ दिन में फट कर जमीन में गिर जाओगे, परन्तु किसी के हृदय में चिपक नहीं पाओगे। ख्याति-लाभ-पूजा के राग में इतना डूब गया कि जिसके नाम पर ख्याति मिल रही थी, उस नाम को ही भूल गया।

संयम मार्ग में कोई महान् दोष अवशेष है, तो उसका नाम ख्याति है। सामायिक नहीं हो रही, चिंतवन चल रहा है कि कैसे पेम्पलेट छपेगा। समझदार जीव होगा तो वो इन कामों में कभी नहीं उलझेगा। साधु सामायिक करे, श्रावक साधु की सेवा में कभी कमी रखते नहीं हैं। जो "मैं कुछ हूँ" में आ जाता है, उसी दिन वह कुछ नहीं रहता है। चौबीस घण्टे योगी यदि इस बात में जीवित रहा कि "मैं पूज्य हूँ", "मैं पूज्य हूँ" तो ज्ञानी! तू अपने पूज्यपने की अनुभूति नहीं ले पाएगा। देखो, मैं योगी की प्रधानता से कथन कर रहा हूँ, आप अपने में भी लगा सकते हो। मस्तिष्क ठण्डा किये बिना कभी तत्त्व का सम्यक् निर्णय होता नहीं। और तत्त्व के सम्यक् निर्णय हुए बिना सम्यक् श्रद्धान होता नहीं। और सम्यक् श्रद्धान बिना सम्यक् ज्ञान होता नहीं। सम्यक् श्रद्धान्-ज्ञान के बिना सम्यक्चारित्र होता नहीं। और इन तीनों के हुए बिना मोक्षमार्गी होता नहीं और मोक्षमार्गी हुए बिना सच्चा साधु होता नहीं। ख्याति, लाभ, पूजा में गए, यानि साधुता ही नष्ट हो गई। श्रावकों की पूजा से मुनि पूज्य होते हैं, कि मुनि की पूज्यता से पूजा होती है?

आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी कहते हैं कि जो मुनि कर्म के उदय से होने वाले विभाव भाव और कर्मों के क्षय से उत्पन्न सहज स्वाभाविक आत्मगुणों की भावना करके उनका चिन्तन-मनन करता है, जो अपनी शुद्धात्मा में रुचि करता है, उसका निर्वाण अवश्य होता है। समयसार

कलश में आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी कहते हैं, हे योगी! आत्मा का स्वभाव तो परद्रव्य, परद्रव्य के भाव तथा परद्रव्य के निमित्त से होने वाले अपने विभाव अर्थात् इस प्रकार के समस्त परभावों से भिन्न है। हे योगी! द्रव्य, भाव और नोकर्म आदि पुद्गल द्रव्य में आत्मा के कल्पना रूप संकल्प को भेदविज्ञान से ज्ञान में होने वाले विभिन्न विकल्प को त्यागो, अपनी स्वात्मा में श्रद्धान करो, यही निर्वाण का मार्ग है।

"**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।**" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

॥ भगवान् महावीर स्वामी की जय ॥

❖ ❖ ❖

कर्मरहित मुक्तात्मा तत्त्वों को जानते हैं

मूलुत्तरुत्तरुत्तर दव्वादो भाव कम्मदो मुक्को।
आसव-बंधण-संवर-णिज्जर जाणेदि किं बहुणा ॥124॥

अन्वयार्थ—(मूलुत्तरुत्तरुत्तर) मूल प्रकृतियाँ, उत्तर प्रकृतियाँ और उत्तरोत्तर प्रकृतिरूप द्रव्यकर्म से **(भाव-कम्मदो)** भावकर्म से **(मुक्को)** मुक्त जीव **(आसव-बंधण-संवर-णिज्जर जाणेदि)** आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा तत्त्वों को जानता है **(बहुणा किं)** बहुत कहने से क्या लाभ है?

बन्ध व मुक्ति के भाव

विसय-विरत्तो मुञ्चदि, विसयासत्तो ण मुंचदे जोई।
बहिरंतर-परमप्पा-भेदं, जाणाहि किं बहुणा ॥125॥

अन्वयार्थ—(विसय-विरत्तो जोई) विषयों से विरक्त योगी **(मुञ्चदि)** कर्मों से छूटता है **(विसयासत्तो)** विषयों में आसक्त **(ण)** नहीं **(मुंचदे)** छूटता है। **(बहिरंतर-परमप्पा भेदं)** बहिरात्मा, अन्तरात्मा व परमात्मा के भेदों को **(जाणाहि)** जानो **(किं बहुणा)** बहुत कहने से क्या लाभ?

भव्य बन्धुओ!

अन्तिम तीर्थेश भगवान् वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना, जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति। आचार्यप्रवर भगवान् कुन्दकुन्द स्वामी ग्रंथराज रयणसार जी में श्रमण और श्रावक उभय धर्मों का व्याख्यान करते हुए समझा रहे हैं कि हे योगी! निर्वाणमार्ग जो है, वह निर्माणमार्ग से बहुत दूर है। जब तक कर्मों का निर्माण करता रहेगा, तब तक निर्वाण सम्भव नहीं है। आस्रव के जितने हेतु हैं, वे सब संसारनिर्माण के कारण हैं। जिन-जिन कारणों से स्वयं के विशुद्ध भावों का अभाव हो रहा है, वे सारे-के-सारे परिणाम संसारनिर्माण के हेतु हैं।

भवातीत होने का लक्ष्य कितना है, भवातीत होने के मार्ग को प्राप्त करके भी अंदर की भावना कितनी है? धर्म के मार्ग पर जाकर, धर्म के भेष को प्राप्त करके धर्म के भाव कितने हैं ? यदि धर्म के परिणाम नहीं हैं, तो तुझे चक्रवृर्ति ब्याज जैसे कर्म का आस्रव होगा। जो पाप कर रहा है, वह पापी प्रमाणित है, क्योंकि उसका भेष भी पापी का है। कोई उसे

पापी कहकर यह नहीं कहता है कि तूने धर्म का नाश किया। परन्तु जिस जीव का भेष धर्म का है और प्रवृत्ति पाप की है, वह अनधिकृत पाप कर रहा है, उसको घोर पाप का आस्रव होगा। जिस जीव का भेष भी पापी का है, यदि कोई गृहस्थ गृहस्थी का कार्य करे, तो कोई यह नहीं कहेगा कि तू क्यों कर रहा है? परन्तु श्रमण बनकर ग्राहस्थिक कार्य करेगा तो दुनियाँ के मन में प्रश्न आयेगा। यदि कोई जीव थैली टांगकर भीख माँगने जाता है तो करुणादृष्टि से हर कोई भीख डाल देता है। परन्तु सम्राट यदि थैली टाँगकर भीख माँगने जायेगा, तो लोग सोचेंगे कि बात क्या है? ऐसे-ही निर्ग्रंथ दीक्षा को प्राप्त होकर भी यदि जगत् के प्रपंच की ओर लक्ष्य जा रहा है, तो लोग कहेंगे कि यह राजा भीख क्यों माँग रहा है? विश्व का साम्राज्य गौण है, निर्ग्रंथ के चरणों में चक्रवर्ती भी सिर टेकता है। चक्रवर्ती तो फिर भी छोटा है, सौधर्म इन्द्र भी सिर टेकता है। जगत् के सारे वैभव वहाँ झुक जाते हैं जहाँ बे-भव पर दृष्टि होती है। हे श्रावको! कहीं स्वप्न में भी तुमको मुनि बनने के परिणाम हो जायें, तब भी समझना कि असंख्यात् गुणश्रेणी कर्म की निर्जरा हो रही है। बिना विशुद्ध भावों के स्वप्न में भी मुनि बनने के परिणाम आ नहीं सकते। स्वप्न में भी मुनि बनने के परिणाम आ जायें, तो स्वप्न में भी निर्णय कर लेना कि मैं मुनि बनूँ तो ऐसा बनूँ जैसे महावीर बने, ऋषभदेव बने। ऐसा मुनि न बनूँ जो राजा बनकर थैली टाँगे घूमे। यह निर्ग्रंथों का मार्ग है और निर्ग्रंथ मार्ग में सग्रंथता कैसी? यह मोक्षमार्ग है। जिनशासन में उतारा तो जाता है, पहनाया नहीं जाता। किसी जीव के राग के लोभ में संसार में डूब मत जाना। लाभ का राग, राग का लोभ ज्ञानी! बहुत खोटा होता है। जितने अनाचार हुए, हो रहे हैं, होंगे, राग के लोभ के कारण ही होंगे। जबकि जीव को पता होता है कि कोई मेरा नहीं है।?

दु:शासन ने द्रौपदी का चीर हरण किया, दु:शासन को द्रौपदी से कुछ लेना था क्या? नहीं, राग का लोभ, अपने भाइयों पर राग था। ज्ञानियो! परिवार श्रेष्ठ है, कि संसार पार होना श्रेष्ठ है? यदि संसार से पार होना श्रेष्ठ है, तो विवेक का ध्यान रखो। परिवार के राग में आप क्या-क्या नहीं करते हो।

आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी कह रहे हैं कि मूल प्रकृतियाँ, उत्तर प्रकृतियाँ और उत्तरोत्तर प्रकृतिरूप द्रव्यकर्म से और भावकर्म से रहित जीव आस्रव, बंध, संवर एवं निर्जरा तत्त्वों को जानता है। देखा जाये तो द्रव्यकर्म एक है। मूल प्रकृतियों के हिसाब से भेद करें तो आठ प्रकार का है—ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, मोहनीय, वेदनीय, आयु, नाम, गोत्र, अंतराय। उत्तर प्रकृतियों के हिसाब से एक सौ अड़तालीस भेद हैं। भैया! यदि भावों के अनुसार भेद करोगे तो अनन्त, असंख्यात, संख्यात हैं।

जो मुनि विषयों से स्वयं को विरक्त कर लेता है, वही कर्मों से छूट पाता है। जो विषयों में आसक्त रहता है, वह कर्मों से नहीं छूटता है। जैसे कमल पानी में रहते हुए भी कीचड़ व पानी से लिप्त नहीं होता है, उसी प्रकार से जो योगी विषयों के राग से रहित हो जाता है, वही मुक्ति को प्राप्त होता है।

रत्तो बंधदि कम्मं, मुंचदि जीवो विरागसंपत्तो।
एसो जिणोवदेसो, तम्हा कम्मेसु मा रज्ज॥150 स.सार॥

आचार्यभगवान् कुन्दकुन्द स्वामी 'समयसार' जी में भी कह रहे हैं कि जो रागी है, वह कर्मों को बांधता है और जो विरक्त है, वह कर्मों से नियम से छूटता है, ऐसा जिनेन्द्र भगवान् का वचन है। हे मुनि! यदि तुम संसारसागर से छूटना चाहते हो, जन्म-मरण के दु:खों से छुटकारा पाना चाहते हो, तो प्रीति मत करो, रागी मत होओ।

हे ज्ञानी! तुमने घर-परिवार-संसार को संकुचित करने को छोड़ा था, न कि संसार को बढ़ाने को। चेला, चेली आदि में राग करके दस को छोड़कर हजारों को परिवार बना रहे हो। मेरा नाम हो, यश हो, इस विचार से अकरणीय कार्यों में भी संलग्न हो रहे हो। इससे ख्याति मिलने वाली नहीं है। अगर मिल भी गई, तो निर्वाण से बहुत दूर हो जाओगे। इस पवित्र तीर्थंकर मुद्रा को धारण करके बहिरात्मा के समान आचरण मत करो। जब तक बाह्य पदार्थों से, निमित्तों से स्वयं को अलग नहीं करोगे, तब तक स्वात्म में लीन नहीं हो पाओगे। इस निर्ग्रंथ मुद्रा का आनंद भी नहीं ले पाओगे।

"आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

॥भगवान् महावीर स्वामी की जय॥

❖ ❖ ❖

बहिरात्मा का लक्षण

णिय-अप्प-णाण-झाण-ज्झयण-सुहा मिय रसायणं पाणं।
मोत्तूण-क्खाण-सुहं, जो भुञ्जदि सो हु बहि-रप्पा ॥126॥

अन्वयार्थ—(जो) जो (णिय अप्प णाण झाण ज्झयण सुहा मिय रसायणं पाणं) अपनी आत्मा के ज्ञान, ध्यान, अध्ययन और सुखरूपी अमृत को (मोत्तूण) छोड़कर (अक्खाण सुहं) इन्द्रियसुखों को (भुञ्जदि) भोगता है (सो हु) वह निश्चय से (बहिरप्पा) बहिरात्मा है।

इन्द्रिय विषय किंपाक फलवत्

किंपाय फलं पक्कं विस मिस्सिद मोदगिंद वारुण-सोहं।
जिव्ह सुहं दिट्ठि पियं जह तह जाणक्ख सोक्खं पि 127॥

अन्वयार्थ—(जह) जैसे (पक्कं किंपाय फलं) पका हुआ किंपाक फल (विस मिस्सिद) मोदगिंद वारुण सोहं) विष मिश्रित मोदक, इन्द्रायण फल देखने में भी प्रिय लगते हैं (जिव्हसुहं) जीभ को सुख देते हैं (दिट्ठिपियं) देखने में भी प्रिय लगते हैं (तह) वैसे ही (अक्ख सोक्खं पि) इन्द्रियसुखों को भी (जाण) जानो।

मनीषियो !

अंतिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना, जिनेन्द्रवाणी जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवन्त हो। जयवन्त हो वीतराग श्रमण संस्कृति। आचार्यभगवान् कुन्दकुन्द स्वामी ग्रन्थराज रयणसार जी में श्रमण-श्रावक धर्म का वर्णन कर रहे हैं।

यह अज्ञ प्राणी निज ध्रुव आत्मा की सम्यक् सत्ता न समझता हुआ जो दुःखभूत है ऐसे द्रव्य में सुखानुभूति करता रहा और नाना योनियों में भ्रमण करता हुआ क्लेश को प्राप्त हो रहा है। हे ज्ञानी! क्लेश तभी समझ में आता है, जब तत्त्व का बोध समझ में आ जाये। दुःख भोगते- भोगते इतना लीन हो गया कि दुःख सुख में अन्तर ही भूल गया। ज्ञानी! समझो ध्यान से। दुःखानुभूति को सुखानुभूति मान रहा है, सुखानुभूति में दुःखानुभूति मान रहा है। महान् अन्तर। दुःखानुभूति में सुखानुभूति स्वीकार रहा है, सुखानुभूति में दुःखानुभूति स्वीकार रहा है।

इंद्रिय सुखों में सुख नहीं होता। "परेऽप्रवीचाराः।" स्वर्गों में जो उत्कृष्ट देव हैं, वे विषयसुख से शून्य होते हैं। इंद्रियसुख से शून्य होते हैं। सोलहवें स्वर्ग के ऊपर कोई

विषयसुख नहीं होता। सोलहवें स्वर्ग तक ही कामचेष्टा है, कामक्रिया है। ज्ञानी ! यदि कामेन्द्रिय सुखानुभूति देती होती, तो उपरिम जाति के देवों की अधिक देवियाँ होनी चाहिये थी। जबकि वहाँ कोई देवी नहीं है। देवियों का स्थान मात्र सोलहवें स्वर्ग तक है। उपरिम जाति के देव काय प्रवीचार से ही नहीं, सम्पूर्ण प्रवीचार से रहित होते हैं। इससे ध्वनित होता है कि जो अशांति उत्पन्न कराये और पुनः इच्छाओं की पूर्ति के पश्चात् संताप देके चला जाय, वो सुख कैसा ? जिसकी प्राप्ति के लिये क्लेश, जिसके प्राप्त होने पर असंतोष और भोग के पश्चात् संताप, वह सुख 'सुख' कैसा ?

ज्ञानी! कषाय के उद्वेग में विवेक शून्य हुआ जीव भाषावर्गणा का प्रयोग अन्यथाभूत कर लेता है। अन्यथाभूत प्रयोग कर लेने के बाद, ज्ञानी! स्वयं ऐसा लगता है कि मैंने अच्छा नहीं कहा। कुपित भाव से जब भाषण कर रहा था, उस समय मुझे अशुभ आस्रव ही तो हो रहा था। पर हे ज्ञानी! उद्वेक में था, विवेक भूल गया था और विवेक के अभाव में कुछ से कुछ बोल पड़ा और बोलने के उपरान्त मित्रता जो थी वह नष्ट हो चुकी है और जब ठंडा हुआ तो तेरे पास कोई नहीं था, एकमात्र पश्चाताप के अलावा अन्य कुछ भी नहीं था। जैसे स्वयं के भवन में आग लगा दी हो और दूर खड़ा होकर निहार रहा था। आक्रोश में परिवार को तो नष्ट कर दिया, भवन राख हो गया। आग ठण्डी होने के पहले तू ही ठण्डा हो चुका था। फिर देख रहा था कि हाय! मैंने यह क्या कर डाला ? अब अकेला दिखाई दे रहा है, कोई तेरे पास नहीं है। भैया ! घर की आग बुझवाने के लिये पड़ोसी आ जायेंगे, पर मन के भावों में जो आग लगी है, उसे पड़ोसी देखने भी नहीं आयेगा और बुझाने भी नहीं आयेगा। उसका ताप तो तुझे लेना ही पड़ेगा।

हे प्राणी! तूने संसार में परिवर्तन किया है, नाना योनियों में भ्रमण किया है, उसका हेतु क्या था ? वीतराग अहिंसाधर्म को न समझने के कारण, सम्यक् विचार के अभाव में, ये भ्रमण किया है। पूर्व निर्णय वहाँ पहुँचता है कि जब पर सम्बन्धियों को भीतर से अपना स्वीकार लेता है, तो सारे अनर्थ वहाँ से शुरू होते हैं। संसार के बन्धुओं को भीतर से स्वयं का समझ लेता है, काषायिक भाव को स्वयं की वस्तु मान लेता है, वहाँ से सारे कष्ट प्रारंभ होते हैं।

संपूर्ण आगम का, द्वादशांग का सार यदि कोई है तो पहले अपने आपकी स्वतंत्रता को पहचान लेना। किस-किस के क्लेशों को देखेगा ? प्रत्येक जीव को जो क्लेश हो रहे हैं, स्वकर्माधीन हैं कि पर कर्माधीन हैं ? प्रत्येक जीव को जो कष्ट हो रहा है, विलख रहा है, वह स्वकर्माधीन है या परकर्माधीन है ? यदि स्वकर्माधीन है, तो वह अपने कर्म के अधीनस्थ हुआ भाग रहा है, परन्तु परिणाम खराब करके अपने वर्तमान के सुख को क्यों खो रहा है ?

हम पर के प्रति चिन्ता तो कर पायेंगे, पर के प्रति चिन्तन तो कर पायेंगे। परन्तु विश्वास रखना, आप पर कि चिन्ता को मिटा नहीं पायेंगे। आप पर को निहार करके उस पर चिन्तन भी कर सकते हो, चिन्ता भी कर सकते हो, लेकिन पर की चिन्ता से अपनी चिन्ता को समाप्त नहीं कर पाओगे।

अहो ज्ञानी! ध्रुव भगवान्-आत्मा परमपारिणामिक स्वभाव से युक्त है। अपने नियत स्वभाव को न मानने के कारण अज्ञानी जीव बहिर्भाव में अनुरक्त हो रहा है। ज्ञानस्वभाव में जो आनंद है, वह आनंद जगत् के किसी परभाव में नहीं है। निज वैभव को भूला अज्ञ प्राणी धन व धरती के राग में लिप्त हो रहा है। ज्ञान की एकाग्रता का नाम ध्यान है, उस ध्यान को भी भूल रहा है। चित्त की विशुद्धि का साधन अध्ययन है। जिसके अंतस् में अध्ययन की ललक समाप्त हो चुकी है, उसके शुद्ध चित्त संभव नहीं है।

ज्ञानियो! आत्मशुद्धि के बाहर जितने क्रियाकलाप हैं, वह सब बहिरभाव हैं। ज्ञानीजीव के लिये ज्ञान, ध्यान, अध्ययन अमृततुल्य हैं, यही सुखभूत है। पर अज्ञानी/मूढ़प्राणी इस परम सुख के साधनभूत ज्ञान व ध्यान को छोड़ करके बाहरी क्रियाकाण्डों में लिप्त हो रहे हैं, ईंट-चूना में जीवन बर्बाद कर रहे हैं। यह चित्रों का मार्ग नहीं है, मोक्षमार्ग चारित्र का मार्ग है। ऐसे चारित्र मार्ग में निज को दूर करता हुआ जो इन्द्रियसुखों में लिप्त हो रहा है, वह बहिरात्मा जीव है। बहिरात्मा की दृष्टि है विषयदृष्टि, विषदृष्टि। विष के भक्षण पर मात्र द्रव्यप्राणों का वियोग होता है, पर विषय-कषाय का सेवन करने वाला जीव अनन्तों भवों की विशुद्धि का घात करता है। इंद्रियसुखों से न तृप्ति कभी हुई है, न होगी। नदियों के संयोग से सागर कभी तृप्त नहीं होता, न ईंधन के डालने से अग्नि शान्त होती है तो फिर इंद्रियविषय-भोगों से आत्मशांति कैसे संभव है ? ये मधुर विषयभोग इन्द्रायण फल के समान विषफलवत् हैं। विषफल देखने में तो मधुर लगता है, पर भक्षण करने पर प्राणघातक होता है, प्राणों को हर लेता है। इसी प्रकार से इंद्रिय-भोग भोगने में तो सुन्दर लगते हैं, पर विपाक के काल में वेदना देकर जाते हैं। इसलिये यह सुख 'सुख' नहीं है, "दु:ख मेव वा।" भगवान् उमास्वामी ने 'तत्त्वार्थसूत्र' में कहा है "दु:ख मेव वा"। यही दु:खी जीव है। कितना भी बड़ा पुरुष क्यों न हो, परन्तु भोग के काल में वह तुच्छ हो जाता है। नारियों के अपमान को भी सहन करता है। पांचों इंद्रियाँ उसको विकारी बना देती हैं। एक अरबपति विषयी भी दूसरे के सामने हाथ फैलाता है अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिये। जो भी इंद्रियों के सुख हैं, बाधा सहित हैं अनेक विघ्नों से युक्त हैं। भोग में विघ्न आते हैं। भोगीजीव प्रति समय शंकित पने से युक्त रहता है। उसे कहीं

भी शांति का वेदन नहीं होता है। कभी इंद्रिय पदार्थों की प्राप्ति की आकांक्षा रखता है, मिलने पर भी असंतुष्ट रहता है, लेकिन भोगने के बाद पश्चाताप को प्राप्त होता है। भोगी त्रैकाल सुखाभास में संतप्त रहता है और अन्त में नाश को प्राप्त हो जाता है। केले के छिलके के समान एक पत्ता निकलता गया, अंत में कोई सार नहीं निकलता। ऐसे निःसार ये विषय भोग बन्ध के कारण हैं।

इसलिये अहो हंस-आत्माओ ! ज्ञानियो ! निज वैभव को समझो। निजनाथ पर दृष्टि डालो। जिननाथ के चरणों में यह भावना भाओ कि बहिरात्म सुख से दूर होकरके अन्तरात्मपने को प्राप्त करूँ और अंतरात्मपने से परमात्म पद को प्राप्त होऊँ।

"आत्मस्वभावं पर भाव भिन्नं।" आत्मा का स्वभाव पर भावों से अत्यन्त भिन्न है।

॥ भगवान् महावीर स्वामी की जय ॥

❖ ❖ ❖

बहिरात्मपने की सामग्री

देह कलत्तं पुत्तं, मित्तादि विहाव-चेदणा रुवं।
अप्प-सरूवं भावदि सो चेव हवेदि बहिरप्पा॥128॥

अन्वयार्थ—जो जीव **(देह कलतं पुत्तं)** शरीर, स्त्री, पुत्र **(मित्तादि)** मित्र आदि तथा **(विहाव-चेदणा रूवं)** विभाव चेतना रूप को **(अप्प-सरूवं)** आत्मा का स्वरूप **(भावदि)** भाता है **(सो चेव)** वह ही **(बहिरप्पा)** बहिरात्मा **(हवेदि)** होता है।

बहिरात्मपने का भाव

इंदिय-विसय-सुहादि सु मूढमदी रमइ ण-लहदि तच्चं।
बहुदुक्ख मिदि ण चिंतदि, सो चेव हवेदि बहिरप्पा ॥129॥

अन्वयार्थ—(मूढमदी) अज्ञानी जीव **(इंदिय विसय सुहादि सु रमदि)** पंचेन्द्रिय विषयों के सुखादि में रम जाता है **(बहु दुक्ख मिदि ण चिंतदि)** ये इन्द्रियसुख बहुत दु:खदायी हैं, ऐसा चिन्तन नहीं करता **(सो)** वह **(तच्चं ण लहइ)** तत्त्व को प्राप्त नहीं करता और **(सो चैव)** वह ही **(बहिरप्पा हवेदि)** बहिरात्मा होता है।

भव्य बन्धुओ!

अन्तिम तीर्थेश भगवान् वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना, जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति। आचार्यप्रवर भगवान् कुन्दकुन्द स्वामी ग्रंथराज रयणसार जी में श्रमण और श्रावक उभय धर्मों का व्याख्यान करते हुए समझा रहे हैं। यह सागार-अनगार धर्म की देशना अंतस्थ के मिथ्यात्व को विगलित करने के लिए दिवाकर है। जहाँ समरस है, वहाँ सब रस हैं। जहाँ समरस नहीं, वहाँ सब नीरस है। चाहे साहित्य के नौ रस हों, चाहे भोजन के छः रस हों, तभी तक सरस लगते हैं, जब तक समरस है। परिणामों में साम्यभाव नहीं है तो, न संगीत के सुर आनंद देते हैं, न साहित्य के रस आनंद देते हैं और न भोजन के रस आनंद देते हैं। मन में संक्लेश परिणाम हैं, काषायिक भाव हैं, तो कितनी ही प्रीतिपूर्वक कोई भोजन परोसे, भाता नहीं है। क्यों नहीं भा रहा है? क्योंकि भावना प्रशस्त नहीं है। शत्रु के घर में छप्पन प्रकार के भोजन बने हों, तब भी कहता है कि भाता नहीं, क्योंकि भावना समीचीन नहीं। जिसके प्रति समरस भाव है, उसके घर का नीरस भोजन भी सरस लगता है और जिसके प्रति समरस भाव नहीं है, उसके घर के सरस भोजन भी नीरस लगते हैं। इसी प्रकार, तत्त्वदृष्टि तभी समझ में आती है, जब अंतस् में

समरस भाव है। मैत्रीभाव है, मध्यस्थ भाव है, तब तो जिनवाणी आनंददायिनी होगी और जब अंतस् में समरस भाव का अभाव है, तो तीर्थंकर के समवसरण से भी मारीचि निकलकर चला जाता है। इसमें तीर्थंकर का दोष नहीं है, यह जीव में समरस का अभाव था।

कुन्दकुन्द स्वामी कह रहे हैं, हे ज्ञानी! बहिरात्मा जीव की दृष्टि तो देखो। जिसमें आनंदकंद ज्ञानघन भरा है, ऐसे समरसी भाव को भूलकर, विषयों की लिप्सा में लीन होकर, निज आत्मदेव की वंचना करना कहाँ तक उचित है? इस सभा में ऐसा कौन पुण्यवान् है जो भविष्य का भगवान् न हो? इस सभा में ही नहीं, पूरे विश्व में जो भव्य हैं, वे नियम से भावी भगवान् हैं। हे भगवंतो! इन भविष्य के भगवानों को विषयों का ज़हर पिलाते तुमको शर्म नहीं आती क्या? विषमिश्रित मोदक के समान ये पंचेन्द्रिय के विषय हैं। विषमिश्रित लड्डू रखे हुए हैं, पेट तो भरेगा, लेकिन जीवन जायेगा। भोगों का लड्डू खायेगा, तेरा विषयों का पेट तो भरेगा, लेकिन शुभोपयोग और ब्रह्मचर्य धर्म के प्राण जायेंगे, उसी क्षण प्राण जायेंगे। जो विषमिश्रित लड्डुओं में आनंद लूटता है, उसे ही सर्वस्व मान लेता है, उसे ही आत्मसुख मान रहा है, यह बहिरात्मा जीव की पहचान है। किसी से पृच्छना मत करना, यह अंतस् का विषय है।

इस समय श्रावक की प्रधानता से कथन चल रहा है। हे श्रावको! जिस विषय से किंचित् भी आत्मतत्त्व का ह्रास होता है, उस विषयसुख को आत्मभूत मानकर बैठ जाना, यह बहिरात्मा जीव का लक्षण है। विषय नहीं छूट रहे हैं, यह बात मुझे स्वीकार है, परन्तु विषय को विष मानना नहीं भूल जाना। नहीं सहन कर पा रहे हो कषाय को, नहीं सहन कर पा रहे हो वासना को, परन्तु इतना तो स्वीकार करके चलना कि यह मोक्षमार्ग नहीं है। अपनी गल्ती को प्रमाणपत्र मत दे देना। तू मुनि नहीं बन पा रहा है, इसका तात्पर्य यह मत कह देना कि अब जगत् में मुनि हो नहीं सकते हैं। कहना यह चाहिए कि मेरी क्षमता नहीं है। यह मेरा विषमिश्रित मोदक का स्वाद है, परन्तु यह विषमिश्रित मोदक मरण का कारण है, यह अमृत का कारण नहीं है। रत्नत्रय का शुद्ध लड्डू ही निर्वाण का कारण है। आप क्या कर रहे हो, इससे मुझे प्रयोजन नहीं है, परन्तु सत्य को सत्य कह दो। जो सत्य को सत्य नहीं कह पाता है, उसको देखकर जरूर दया आती है। हे ज्ञानी! यदि आपने यूँ कह दिया कि पंचमकाल में संयम नहीं होता, तो पंचमकाल में जितने पूर्वाचार्य हुए हैं, वे सब असंयमी हो जायेंगे। फिर उनके द्वारा लिखे ग्रन्थ भी झूठे हो जायेंगे।

खींचातानी मोक्षमार्ग नहीं है। वस्तुस्वभाव की प्ररूपणा को समझ लेना और रत्नत्रय को धारण कर लेना, इसका नाम मोक्षमार्ग है। पिच्छि हल्की होती है, परन्तु उसको चलाना वजनदार होता है। असंयम वजनदार होता है, परन्तु संसार में रुलाने के लिए बड़ा हल्का होता है। अब भीतर का गुरु जैसा कह रहा हो, वैसा कर लेना। मारीचि कोई बाहर का जीव नहीं था। महावीर स्वामी

का जीव था, ऋषभदेव का पोता था। जिनवाणी के विपरीत परिणमन किया, तो कितनी बार खोटी पर्यायों में गया। अकौआ बना, यहाँ तक कि गधा भी बना। कैसी-कैसी खोटी पर्याय धारण की हैं। जब पुण्य किया, तो बीच में चक्रवर्ती भी बना। इससे लगता है कि कर्मसिद्धान्त से बड़ा ईमानदार जगत् में कोई नहीं है। इसलिए ज्ञानी! मत करो छल निज के साथ। पर के साथ छल कभी होता नहीं है। पर के साथ छल उसके अशुभ कर्म का उदय होगा तभी घटित होगा। जो पर के साथ छल कर रहा है, वह निज के साथ ही छल कर रहा है। दुर्गति का पात्र स्वयं बनेगा। मत करो निज के साथ छल। सम्पत्ति के राग में आपने जीवन में किंचित् भी कुछ किया हो तो आज "मिच्छा मे दुक्कडं" कह देना, क्योंकि मुझे मालूम है कि आप गृहस्थी कैसे चलाते हो।

किंपाक फलवत् इन विषयों को समझिए। यदि आत्मस्वरूप पर लक्ष्य है, तो इतना ध्यान रखना कि दोष में हर्षित मत होना, दोष को दोष स्वीकार करके पश्चाताप करते रहना।

चर्म के राग में धर्म को भूल रहा है। कितना ही क्रीम-पाउडर लगा लो, लेकिन सबको काली राख होना है। जितना गोरा मेरा शरीर है, परन्तु सब राख ही होना है। कितना ही उपचार कर लो, परन्तु अपने समय पर ही जायेगा। वे अज्ञानी लोग हैं जो दूसरों से कहते हैं कि—भैया जल्दी कैसे चले गए? जिस दिन तू जायेगा, उस दिन क्या कहेगा, क्या करेगा? अरे! कौन किसके आयुकर्म को रोक पायेगा? भव की पीड़ा को दूर करना है तो वीतराग की वाणी का पान करो, तो भवातीत हो पाओगे। वीतराग के नाम पर बैठे-बैठे संसार से मुक्त नहीं हो पाओगे। तत्त्व का विपर्यास कितना होता है। यह तो अपना पुण्य है, संयोग है जो अपने को सुनने को मिल रहा है।

जो देह, स्त्री, पुत्र, मित्र, वैभव, विभाव, राग-द्वेषरूप परिणाम हैं, इनको आत्मस्वरूप मानता है, वही बहिरात्मा होता है। अज्ञानी/मूढ़मति जीव इन्द्रियविषयसुखों में रमण करता है। ये इन्द्रियविषयसुख बहुदुःखदायी हैं, जो ऐसा विचार नहीं करता और तत्त्व को प्राप्त नहीं करता, वही बहिरात्मा होता है। इन्द्रियसुख तो दुःखरूप हैं, ऐसा चिंतवन जिसके नहीं है, उनमें सुख की मान्यता जिसकी बैठी है, यही बहिरात्मा का स्वरूप है। जिन-जिन को परमात्मा होना है, अंतरात्मा बनने का पुरुषार्थ करो। आज तक किसी के भी प्रति अशुभ भाव आए हों तो 'खम्मामि' बोल देना और "तस्स मिच्छा मे दुक्कडं"।

"आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

॥ भगवान् महावीर स्वामी की जय ॥

❖ ❖ ❖

बहिरात्मा कौन ?

जंजं अक्खाण-सुहं तं तं तिव्वं करेदि बहुदुक्खं।
अप्पाण-मिदि ण चिंतदि, सो चेव हवेदि बहिरप्पा ॥130॥

अन्वयार्थ—(जं जं) जो-जो **(अक्खाणसुहं)** इन्द्रियसुख हैं **(तं तं)** वे सब **(अप्पाणं)** आत्मा को **(तिव्वं बहुदुक्खं)** तीव्र बहुत प्रकार के दु:खों को **(करेदि)** देते हैं **(इदि)** इस प्रकार जो **(ण चिंतदि)** चिंतन नहीं करता **(सो चेव)** वह ही **(बहिरप्पा)** बहिरात्मा **(हवेदि)** होता है।

बहिरात्म जीवों का विषय

जेसिं अमेज्झ मज्झे, उप्पण्णाणं हवेदि तत्थ रुई।
तह बहिरप्पाणं बहिरिंदिय-विसएसु होदिमदी ॥131॥

अन्वयार्थ—(जेसिं) जैसे **(अमेज्झमज्झे)** विष्टा में **(उप्पण्णाणं)** उत्पन्न जीवों की **(रुई)** रुचि **(तत्थ हवेदि)** उसी विष्टा में होती है **(तह)** उसी प्रकार **(बहिरप्पाणं)** बहिरात्मा जीवों की **(मदी)** बुद्धि **(बहिरिंदिय विसएसु)** बाह्य इन्द्रियविषयों में **(होदि)** होती है।

भव्य बन्धुओ!

अन्तिम तीर्थेश भगवान् वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति। आचार्यप्रवर भगवान् कुन्दकुन्द स्वामी ग्रंथराज रयणसार जी में श्रमण और श्रावक उभय धर्मों का व्याख्यान करते हुए समझा रहे हैं। हे मुमुक्षु! अंतस्थ के परिणामों की विशुद्धि का होना अत्यन्त सुकृत का उदय है। जिसने पूर्व में घोर-घोर तपस्या की है, अनंतानंत जीवों की रक्षा के परिणाम किए हैं, वही जीव वर्तमान की पर्याय में विशुद्धि को प्राप्त होता है। सम्पत्ति का मिलना इतना महत्वशाली नहीं है जितना समीचीन वृत्ति का मिलना महत्वशाली है। जगत् के संयोगों का मिल जाना इतना श्रेष्ठ नहीं है जितना स्वभावदृष्टि का मिल जाना महत्वपूर्ण है। उपशम भाव का होना, धर्म-धर्मात्मा के पास बैठ पाना और संसार, शरीर, भोगों से उदासता के परिणाम होना, ये बिना तपस्या के मिल नहीं सकता है। ऐसे खोटे काल में जहाँ चारों ओर भौतिकता ही दृष्टिगोचर होती हो, वहाँ पर भी धर्म-धर्मायतनों की रक्षा के परिणाम हो रहे हैं, तत्त्व को सुनने-समझने के भाव हो रहे हैं। ज्ञानी व्यवहारदृष्टि से जिनबिम्ब और जिनालयों की रक्षा करना, परमार्थ दृष्टि से चैतन्य आत्मद्रव्य ही तेरा जिनबिम्ब है और देह ही देवालय है। उस देव की रक्षा के परिणाम कर लिए तो देवाधिदेव बनना तेरी मुट्ठी में है; जिस जीव

ने निज परिणामों की रक्षा की है। भवन की दीवार गिरने लग जाए तो टेंशन होता है। भैया! भवन की दीवार तो तू पुनः खड़ी कर सकता है, लेकिन यदि चैतन्य भवन की दीवार गिरने लग गई हो तो तू कैसे, क्या कर पायेगा? भावों की विशुद्धि की ईंट खिसकने न पाए, इतना ध्यान रखना।

चाहे सुखभूत निमित्त तुम्हारे घर में हों, परन्तु निमित्त कभी उपादान होता नहीं है। जो दुःख के साधन मिल रहे हैं, वो भी आप नहीं हो। जो सुख के साधन मिल रहे हैं, वो भी आप नहीं हो। जो आपको दुःख देना चाहता है, वह भी आपसे भिन्न है और जो आपको सुख देना चाहता है, वह भी आपसे भिन्न है। परन्तु यह ध्रुव सत्य है कि कोई किसी को दुःख देना चाहता है तो उसे सोचना पड़ता है। सामने वाले का प्रबल पुण्य का उदय है तो तू दुःखी तो नहीं कर पाएगा, परन्तु उसके दुःख के बारे में सोचकर तू दुःखी अवश्य हो जाएगा। दुःखी होना या न होना, यह उस जीव के पुण्य-पाप का नियोग है, परन्तु दुःखी करने वाले से कह देना कि तू तो दुःखी हो चुका है। बिना सोचे कोई काम होता नहीं है। यदि कोई किसी को सुखी भी करना चाहता है, तो बिना सोचे कर नहीं सकता है।

यदि आप साधु को भी आहार करवा रहे हो, तब भी तुझे सोचना पड़ता है। सुबह से शाम तक कितना विचार करना पड़ता होगा? परन्तु जिसे तू आहार देना चाहता है, उसे टेंशन ही नहीं है। इन्द्रियजन्य सुख-दुःख पर-सापेक्ष हैं, जबकि अतीन्द्रिय सुख पर-निरपेक्ष है। जो परनिरपेक्ष है, वही सुख है। साधना प्रधान नहीं है, संक्लेशता की हानि प्रधान है। संक्लेशता की हानि के लिए साधना है और साधना में संक्लेशता हो तो वह साधना 'साधना' नहीं है। जो भी पुण्यक्रिया, धर्मक्रिया करें आप, इस विषय को पहले चिंतवन करके प्रारम्भ करना कि मेरे पुण्यकार्य में, मेरे धर्मकार्य में मुझे शान्ति कितनी है और संक्लेशता कितनी है? जीवन में धर्म शान्ति मात्र के लिए किया जाता है और धर्म के काल में शान्ति के स्थान पर संक्लेशता आ रही है तो धर्म नहीं, अधर्म हो रहा है। यह खोज स्वयं बैठकर करना है कि मेरा धर्म शान्तिभूत हो रहा है कि संक्लेशताभूत हो रहा है।

असंक्लेश भाव मोक्षमार्ग है, संक्लेश भाव संसारमार्ग है। यदि आपने द्रव्यसंयम भी धारण कर लिया, मुनिराज भी बन गए और संक्लेशभाव का अभाव नहीं हुआ, इसका नाम द्रव्यसंयम है। और संक्लेशता का अभाव करके संयम धारण किया है, इसका नाम भावसंयम है। भवातीत होना है तो भावसंयम से ही हो पाएगा। द्रव्यसंयम मात्र से भवातीत होने का कोई मार्ग नहीं है। लेकिन भावसंयम तभी मिलेगा, जब द्रव्यसंयम होगा। जो भी कार्य करना पड़ता है, तो तद्रूप भाव बनाना पड़ते हैं, परन्तु कार्य तभी पूर्ण होता है, जब तद्रूप वस्तु होती है। स्वर्णमयी आभूषण धारण करना है तो स्वर्ण धातु को ही खरीदना पड़ता है और चांदी के आभूषण धारण करना है तो चांदी धातु खरीदनी पड़ती है। ऐसे-ही जिन जीवों को नरक जाने की इच्छा हो तो तद्रूप कार्य करने पड़ते हैं

और स्वर्ग जाने की इच्छा हो तो तद्रूप कार्य करने पड़ते हैं और सिद्ध बनने की इच्छा है तो कोई भी काम नहीं करना पड़ता है। जब तक कुछ करते रहोगे, तब तक सिद्ध बनने वाले नहीं हो। जिसकी पुण्य-पाप पर साम्यदृष्टि होती है, वही सिद्ध बन पाता है। जब तक पुण्य-पाप पर दृष्टि है, तब तक स्वर्ग-नरक की यात्रा करना है। यदि पुण्य-पाप की मिश्रित दृष्टि है, तब तक मनुष्य बनता रहेगा। यदि पुण्य-पाप की मिश्रित दृष्टि के साथ मायाचारी है, तो बढ़िया सुन्दर तिर्यंच बन जाओगे। फूल में भी कीड़े होते हैं और मल में भी कीड़े होते हैं। संज्ञा दोनों की कीड़े की है, परन्तु उनमें भी पुण्य-पाप का उदय होता है। एक कीड़ा फूल में सुगंध सूंघ रहा है, एक कीड़ा मल में दुर्गन्ध सूंघ रहा है। परन्तु दोनों जहाँ हैं, वहीं आनंद लूटते हैं।

यो यत्र निवसन्नास्ते, स तत्र कुरुते रतिम्।
यो यत्र रमते तस्मादन्यत्र स न गच्छति ॥43 इष्टोपदेश॥

जो जहाँ निवास करता है, वहीं रति को प्राप्त हो जाता है। वस्तु न सुन्दर है, न असुन्दर है। जिसको जहाँ राग है, वही सुन्दर है और जहाँ द्वेष है, वही असुंदर है। वस्तु अपने स्वभाव को कभी बदलती नहीं है। उसका स्वभाव तो अपरिणमनशील होता है। आप सजा ही पाओगे, परन्तु सजाकर रख नहीं पाओगे।

श्रावकों की अनुभूति का वेदन करो आप। जब ये घर के द्वार पर खड़े होते हैं कि भो स्वामिन्! पधारो। निर्ग्रंथ योगी की प्रतीक्षा में खड़े हैं। मालूम है कि ये कुछ देकर नहीं जायेंगे, चर्या मात्र को आए हैं। हे श्रावको! आज से तुम पड़गाहन करने खड़े होना, परन्तु जीवित होकर खड़े होना और उस समय जो तुम्हारे भाव आ रहे हैं, उन भावों को ज्ञेय बनाना। ध्यान का विषय बनाना उन भावों को। सम्यग्दृष्टि जीव का प्रतिक्षण ध्यान चलता है। जो आनंद जगत् में कभी तुझे नहीं मिला होगा, उस क्षण जब द्वार पर खड़ा होगा, "भो स्वामी! पधारो" उस समय भावों से पूछना कि मैं किसको बुला रहा हूँ? जब स्वामी पधारेंगे, तब भाव अलग होंगे। जब बुलाने के भाव इतने प्रशस्त चल रहे हैं, तो उसी क्षण कर्म की निर्जरा प्रारम्भ हो चुकी है। जीवनभर कमा-कमा कर माँ को खिलाया, बेटे की माँ को खिलाया, बेटियों को खिलाया, लेकिन चेहरे पर मुस्कान नहीं आई। साधु को आहार कराने के बाद जो मुस्कान आती है, वह कौन-सी मुस्कान होती है? स्वयं के परिणामों का वेदन करके पड़गाहन में खड़े होना कि मेरे भावों में क्या हो रहा है? ज्ञानी! यदि द्वार पर खड़े होकर खुश नहीं हो पाया, तो पंचमकाल में खुश होने का और कोई कारण मिलनेवाला नहीं है। ज्ञानी! प्रभु आते नहीं, मात्र गुरु ही अवशेष हैं। गुरु को देखकर भी जिसका मन-मयूर न नाचा, तो अब इस युग में जीवन में उसे कभी खुशी नहीं मिलनेवाली। यह मात्र ढाईद्वीप की महिमा

है। ढाईद्वीप के बाहर देव बनकर भी तुम चले जाना, लेकिन ढाई द्वीप के बाहर तुमको वीतरागी तपोधन का पड़गाहन करने नहीं मिलेगा। जंगल का प्राणी भी निर्ग्रंथ को देखकर मुस्कुरा जाता है।

अपने परिणामों को ज्ञेय बनाना, पर्याय को ज्ञेय मत बनाना। जो पर्याय को ज्ञेय बनाएगा, उसे रोना ही पड़ेगा। क्योंकि जैसा तू कल था, वैसा आज नहीं बचा। क्षण-क्षण में परिणमन हो रहा है, अवस्था ढल रही है। पर्याय का चिंतन करेगा तो रोना ही पड़ेगा और परिणामों का चिंतन कर लेगा तो मुस्कुराहट आ जाएगी। पर्याय तो नश ही जाएगी, परन्तु पर्यायी तो त्रैकालिक ध्रुव है। जीवन में आज तक जितने मित्र बनाए हों, सबको छोड़ देना, कहना, हे ज्ञानी! तू मेरा मित्र पर्याय और पुण्य मात्र का है। पर्याय रही भी और पुण्य नहीं है, तो पर्याय भी छोड़कर लोग चले जाते हैं। किस पर विश्वास करें? निज के भावों पर करो विश्वास। पुण्य की शक्कर का दाना रहेगा तो मित्ररूपी चींटियाँ दौड़ी-दौड़ी आयेंगी। ज्ञानी! पुण्य का दाना हट गया, तो मित्रचींटियाँ हट जायेंगी। कौन किसका है? सारी भीड़ पुण्य की है। इसलिए मेरे मित्र! इतना ध्यान रखना, जगत् को मित्र तूने आँखों से बनाया है, परन्तु निज के मन से कह देना, मेरे मन! तू मेरा मित्र बन जा ताकि परिणाम तेरे पुण्यरूप होते रहें, परमात्मा के चरणों में जाते रहें। बिना मित्र के जीवन जीना कोई जीवन है क्या? कोई एक मित्र तो होना ही चाहिए। आपने आँखों के मित्र अनेक बार बनाए हैं, एक बार आत्मा को मित्र बना लो। एक मित्र बना लो और मित्र तुम्हारा कोई दूसरा नहीं होगा, मन ही तेरा मित्र होगा और मन-मित्र से कह देना कि ज्ञानी! मैंने तेरी इच्छा पूरी की है हर समय, आज मेरी इच्छा अभिषेक करने की है, मेरे साथ चल। जिनके मन मित्र हो जाते हैं, वे ही भगवान् की भक्ति कर पाते हैं। जिनके बन्ध अशुभ हो जाते हैं, उनके वन्दना करने के भाव नहीं होते हैं। ज्ञानी! जिनके बन्ध कटने के समय आ गए हैं, उनके भाव नियम से बन जायेंगे। पुण्य होता है तो अपने आप टपकता है।

जैसे मल में उत्पन्न हुआ कीड़ा, उसकी रुचि मल में ही जाती है। जैसे कीड़े की मति मल में ही जाती है, ऐसे-ही बहिरात्मा जीव की मति विषय-कषाय में ही जाती है।

पंचपरमेष्ठी को देखकर सहज मुस्कुराहट आती है, यही सम्यग्दृष्टि का आनंद है। अंतस् में बैठकर तत्त्व का निर्णय लेना कि जब-जब मेरे परिणाम स्वयं सहज होने लग जायें, किसी से पूछने मत जाना कि मैं पुण्यात्मा हूँ या पापी हूँ? निज के परिणामों से मात्र पूछ लेना कि मेरे परिणाम कैसे चल रहे हैं? हर व्यक्ति अपना ज्ञाता-दृष्टा है। जो है, सो है।

"आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

॥ भगवान् महावीर स्वामी की जय ॥

❖ ❖ ❖

बहिरात्मा की विवेकहीनता

पूय-सूयरसाणाण, खारामियभक्खभक्खणाणं पि।
मणु जाइ जहा मज्झे, बहिरप्पाणं तहा णेयं ॥132॥

अन्वयार्थ—(जहा) जैसे **(मणु जाइ)** मनुष्य जाति **(पूय-सूयरसाणाण)** अपवित्र और खाने योग्य रसों में **(खारामिय भक्खभक्खणाणं पि)** क्षार और अमृत, भक्ष्य और अभक्ष्य के **(मज्झे)** मध्य विवेक नहीं करती **(तहा)** उसी प्रकार **(बहिरप्पाणं)** बहिरात्मा को **(णेयं)** जानना चाहिए।

भव्य बन्धुओ!

अन्तिम तीर्थेश भगवान् वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना, जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन, जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति। आचार्यप्रवर भगवान् कुन्दकुन्द स्वामी ग्रंथराज रयणसार जी में श्रमण और श्रावक उभय धर्मों का व्याख्यान करते हुए समझा रहे हैं—अंतरात्मा की दृष्टि, परमात्मा की दृष्टि और बहिरात्मा की दृष्टि, तीनों दृष्टियाँ अत्यन्त भिन्न हैं, जबकि एक ही आत्मा बहिरात्मा भी होती है, अंतरात्मा भी होती है और परमात्मा भी होती है। एक वस्तु के रस भिन्न कैसे? और रस भिन्न ही नहीं, द्रव्य में भिन्नत्व है। जैसे रस भिन्न हुआ, द्रव्य के स्वरूप में भिन्नत्व आया। बहिरात्मा का जो रसास्वाद है, वह भिन्न है, अंतरात्मा का रसास्वाद भिन्न है, परमात्मा का रसास्वाद भिन्न है। जबकि एक ही जीव, जो बहिरात्मा था वह अंतरात्मा होगा और जो अंतरात्मा था वही परमात्मा हुआ है। यदि यही समझ में आ गया, तो समझ लो कि आपको सारा समयसार समझ में आ गया। जिसे बहिरात्मा, अंतरात्मा, परमात्मा ये विषय समझ न आए, तो उसे प्रयोग करके समझना चाहिए। जैसे—दुग्ध एक था, परन्तु दुग्ध के परिणमन के भिन्नत्व में रसास्वाद में भिन्नत्व आया कि नहीं? जैसे दुग्ध के एकीभूत होने पर भी उसके पर्याय बदलने पर गोरसपने का अभाव तो नहीं हुआ है, लेकिन गोरस में परिणमन अवश्य हुआ है। ऐसे ही आत्मा ही बहिरात्मा थी, आत्मा ही अंतरात्मा हुई है और आत्मा ही परमात्मा बनी है, परन्तु हर अवस्था में आत्मा के होने पर भी, आत्मा की अनुभूति में एकत्व नहीं था।

आपने दूध पिया? दूध के स्वाद में अन्तर था कि नहीं? घृत का स्वाद भिन्न है, मट्ठे का स्वाद भिन्न है, दही का स्वाद भिन्न है, मक्खन का स्वाद भिन्न है। जबकि ये सम्पूर्ण सामग्रियाँ दुग्ध से उत्पन्न हुई हैं। आज के युवाओं को परमात्मा कहकर, सीधा नहीं समझाना चाहिए। ये तत्त्व की भूल चल रही है कि दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय को तो जीव समझते हैं और पंचेन्द्रिय जीव दिखाई नहीं

देता। परमात्मा की जो व्याख्या की गई है, परमात्मा के रूप में की है, इसलिए युवाओं को यह लगने लग गया कि परमात्मा मेरे से कोई भिन्न वस्तु है।

जब भी वक्ता बनकर आओ, तो ज्ञानी बनकर मत आना, मित्र बनकर आना। ज्ञानी तो आप हो ही, जब मित्र बनकर आओगे तो सभा से पहले यह मत कहना कि मैं ज्ञानी हूँ, पहले सभा को आप अपना बना लेना और आप सभा के हो जाना। जो चर्चायें मित्रों से होती हैं वे चर्चायें ज्ञानियों से नहीं होती हैं, क्योंकि मित्रों से खुलकर बात होती है और ज्ञानियों का थोड़ा लिहाज़ करना पड़ता है। वे वक्ता फेल हो जाते हैं जो ज्ञानी बनकर बैठते हैं। आज तक आपने महावीर स्वामी को भगवान् कहते सुना है, परन्तु प्रश्न यह करो, भगवान् महावीर स्वामी, भगवान् पहले थे कि इंसान पहले थे? जैनदर्शन विश्व का पहला ऐसा दर्शन है जिसने अपने भगवान् को पहले भगवान् नहीं कहा, पहले इंसान कहा है। पहले परमात्मा नहीं कहा, पहले अंतरात्मा कहा है। ज्ञानी! अंतरात्मा बाद में कहा पहले बहिरात्मा कहा है। यदि इस भाषा का प्रयोग हमारे युवा मित्रों के साथ किया जाए तो आपके भगवान् को मानने में उनको देर नहीं लगेगी। भगवान् को भगवान् कहने में थोड़ी दूरियाँ होती हैं, क्योंकि मैं सामान्य में चला जाता हूँ और भगवान् विशेष में चले जाते हैं।

आत्मा का क्रमिक विकास होता है, उसका नाम परमात्मा होता है। ब्रह्माण्ड में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है जिसने आत्मा को विकासशील कहा हो। एकमात्र जैनदर्शन ने कहा कि आत्मा का विकास परमात्मा है। परमात्मा को परमात्मा कहने में मैं हाथ जोड़ पाऊँगा, परन्तु उनसे मिल नहीं पाऊँगा, क्योंकि मैं सोचूँगा कि परमात्मा कोई भिन्न शक्ति है और मैं कोई भिन्न शक्ति हूँ। जबकि भगवान् कोई भिन्न शक्ति नहीं है, मेरे आत्मा का उत्थान ही भगवान् है। जो उत्तानशील आत्मा है, वही भगवान् बनती है। बीज में अंकुर है कि नहीं? बीज में वृक्ष है कि नहीं? बीज में फल है कि नहीं? जैसे बीज में फल विराजा है, दूध में घृत विराजा है, ऐसे-ही बहिरात्मा में परमात्मा विराजा है। आपकी देखने की दृष्टि होनी चाहिए। जो सिद्धालय में विराजे परमात्मा हैं, वे फलभूत भगवान् हैं और जो इस सभा में विराजे हैं, वे बीजभूत भगवान् हैं। ये प्रस्तावित भगवान् हैं। जिसने बीज में फल नहीं जाना, उस अज्ञानी को जगत् का कोई भी ज्ञान नहीं है। यदि द्रव्यदृष्टि का ज्ञान नहीं होता, तो सब यहाँ भूतार्थ दिगम्बर धर्म को स्वीकार क्यों करते?

परमात्मा को परमात्मा मात्र मानना, यह अंधकारमय जीवन दिखाई देता है। हर व्यक्ति के अन्दर जिज्ञासा उत्पन्न होती है, कि यह वस्तु कैसी है? और आज का एक छोटा सा बालक भी उसके मन में प्रश्न होते हैं, कि यह वस्तु कैसी है? एक बार आनंद ने बुद्ध से प्रश्न किया—भंते! स्वर्ग और मोक्ष के विषय में आपका क्या चिंतन है? उत्तर मिलता है, अरे आनंद! तू क्या स्वर्ग और मोक्ष की कल्पना करता है। किसने देखा स्वर्ग-नरक, सामने देख जो दिख रहा है। प्रत्यक्ष में जो

दिख रहा है उसे स्वीकार करो। यदि वर्द्धमान का शिष्य वहाँ बैठा होता तो कहता, भो ज्ञानी! प्रत्यक्ष जो दिख रहा है, उसे ही आप मानते हो और स्वर्ग-नरक आपको दिखाई नहीं दे रहा है उसे आप नहीं मानते हो, तो मैं एक जिज्ञासा प्रकट करता हूँ, ये आपका ज्ञान उत्तर दे रहा है, या आपका अज्ञान उत्तर दे रहा है? यदि किसी ने कमरे में सुरक्षित स्थान पर मोती को रख दिया है और आपने देखा नहीं है मोती को और आप कहने लगो कि इस कमरे में कोई मोती नाम की वस्तु नहीं है।

'अभाव प्रमाण मिथ्या प्रमाण'

जैनदर्शन अभाव प्रमाण को प्रमाण नहीं मानता है। हे ज्ञानी! ऐसा कहो कि मेरी बुद्धि में ज्ञान का अभाव है, परन्तु मोती का अभाव नहीं है। जिनवाणी को खोला नहीं, आगम को पढ़ा नहीं, तो वस्तु का अभाव कैसे कर दिया? आपकी प्रज्ञा की न्यूनता है, यह वस्तुस्वभाव की न्यूनता नहीं है। वर्द्धमान कहेंगे—हे ज्ञानी! तू यह क्यों नहीं बोलता है कि मेरे अन्दर सर्वज्ञता का अभाव है, न कि वस्तु का अभाव है? जो सर्वज्ञ होगा, वह सम्पूर्ण वस्तुओं को जानेगा। जो सर्वज्ञ नहीं होगा, वह पीठपीछे की वस्तु को भी नहीं जान पाता है।

भगवान् को भगवान् कहना प्रारम्भ कर दिया। भगवान् को इतना बड़ा बना दिया, कि हर एक कोने में एक भगवान् उत्पन्न होने लग गया। व्यक्ति पाँच पाप में लिप्त है, वह भी कहता है—"मैं भगवान्"। हाँ, द्रव्यदृष्टि से तू भगवान् है, लेकिन क्रम का ध्यान दो। बहिरात्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा, इस क्रम को भंग करके चल नहीं सकते आप। तीनों आत्मा हैं, परन्तु तीनों का स्वाद भिन्न है। ज्ञानी! यदि तीनों का स्वाद एकजैसा हो गया, तो फिर अमृत, गुड़ और मिश्री में अन्तर क्या है? जैसे परमात्मा क्रम से प्रकट होता है, ऐसे-ही ध्यान की सिद्धि क्रम से होती है।

बाँस और बाँस के घर्षण से चिंगारी उत्पन्न हो जाती है। जब दो वस्तुओं के घर्षण से तीसरी पर्याय प्रकट हो जाती है, ऐसे-ही परमात्मा के चरणों में तू अपना सिर झुकाएगा तो वीतरागता की चिंगारी अपने आप प्रकट होती है। इसलिए यह भाषा प्रयोग मत करना जैसे अन्य ढोंगी लोग करते हैं, बोले कि पूजा कुछ नहीं है, स्वाध्याय कुछ नहीं है, ध्यान करो। अरे ज्ञानी! मुझे मालूम है चौकी, बेलन कुछ नहीं है, रसोइया कुछ नहीं है, पेट तो रोटी भरती है। अरे सुन, रोटी आई कहाँ से है? रोटी बनाने की प्रक्रिया में, चौकी, बेलन, रसोइया चाहिए। यदि ध्यान रोटी है, तो अरिहंत की आराधना आदि भी साधन हैं। जो व्यक्ति ध्यान नहीं कर सकता, उनसे यही कहना, बेटा! तुम पूजा करो और जो पूजा करते हैं, उनसे कहना स्वाध्याय करो। पूजा, स्वाध्याय सबमें मन लगने लग गया, तब कहना मुमुक्षु! मुनिराज बनो। जब मुनिराज बन जाएगा, तब कहना ज्ञानी! निज शुद्धात्मा का ध्यान करो।

कुन्दकुन्द स्वामी बहिरात्मा जीव के लिए कह रहे हैं, मनुष्यगति में ऐसे अनेक जीव हैं जिन्हें भक्ष्याभक्ष्य का विवेक नहीं है। जब तक खाने-पीने का विवेक नहीं है, कि कहाँ खा रहा है? कहाँ पी रहा है? जब तक भोजनशुद्धि नहीं है, तब तक भावशुद्धि हो नहीं सकती है। कोई मनुष्य, भोजन में भक्ष्य-अभक्ष्य में विवेक नहीं रखता है, इसे ही बहिरात्मा जानना चाहिए। जैसे मलेच्छ पुरुष खान-पान में विवेक नहीं रखता। ऐसे ही बहिरात्मा जीव कौन देव हैं? कौन अदेव हैं? कौन कुदेव हैं? इसमें किसी प्रकार का विवेक नहीं रखता है।

"**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।**" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

॥ भगवान् महावीर स्वामी की जय ॥

❖ ❖ ❖

अन्तरात्मा के लक्षण

सिविणे वि ण भुञ्जदि विसयाइं देहादिभिण्ण भावमदी।
भुञ्जदि णियप्परूवो, सिवसुहरत्तो दु मज्झिमप्पो सो ॥133॥

अन्वयार्थ—(देहादिभिण्ण भावमई) जो आत्मा को देहादि से भिन्न मानने वाला है **(सिविणे वि)** जो स्वप्न में भी **(विसयाइं)** विषयादि को **(ण भुञ्जइ)** नहीं भोगता है। **(णियप्परूवो)** आत्मा के निजस्वरूप का **(भुञ्जइ)** अनुभव करता है **(दु)** और **(सिवसुहरत्तो)** शिवसुख में लीन रहता है **(सो)** वह **(मज्झिमप्पो)** मध्यात्मा—अंतरात्मा होता है।

भव्य बन्धुओ!

अन्तिम तीर्थेश भगवान् वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना, जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन, जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति। आचार्यप्रवर भगवान् कुन्दकुन्द स्वामी ग्रंथराज रयणसार जी में श्रमण और श्रावक उभय धर्मों की व्याख्या करते हुए समझा रहे हैं—आत्मा का क्रमिक विकास ही परमात्मा है। बीज ही अंकुरित होता है और अंकुरण ही पौधे रूप होता है। वही पौधा वृक्षरूप होता है और उसी वृक्ष में फल लगते हैं। जिस जीव ने आत्मा और परमात्मा में पूर्ण भेद कर लिया है और परमात्मा को भिन्न सत्ता स्वीकारा है, उसको बड़े सहज भाव से समझा रहे हैं। परमार्थ सत्ता स्वतन्त्र होने पर भी ऐसी स्वतन्त्र सत्ता नहीं है, कि एक ही परमात्मा 'परमात्मा' है। स्वतन्त्र सत्ता परमात्मा की है। स्वतन्त्र सत्ता परमात्मा की ही नहीं है, स्वतन्त्र सत्ता प्रत्येक आत्मा की है। जीवत्व, जीवत्व से हम एक हैं, परन्तु प्रत्येक जीव की सत्ता स्वतन्त्र है। चेतनत्व, चेतनत्व से हम एक हैं। वृक्षत्व, वृक्षत्व से सब एक हैं, परन्तु प्रत्येक वृक्ष स्वतन्त्र है। जैसा वृक्षत्वपना शीशम में है, वैसा वृक्षत्वपना सागौन में है, वैसा ही आम, नीम में है। संज्ञा सभी की 'वृक्ष' है, क्या सभी वृक्ष एक हैं?

जगत् के आचार्यों ने क्या किया? ईश्वर सत्ता को स्वतन्त्र घोषित करके और मुझे मात्र भक्त बनाकर छोड़ दिया। एक सामान्य सम्राट का सेवक भी सेवा करने के लिए कभी सेवक नहीं बनता। बिना उद्देश्य के कोई सेवा नहीं करता। मैं परमात्मा की सेवा क्यों करूँ? सच्चा भक्त, भगवान् की सेवा, सेवा करने के लिए नहीं करता है। इसलिए करता है कि भगवान् के पास जाकर पहचान जाऊँ कि भगवत्ता की प्राप्ति कैसे करनी पड़ती है? भगवान् बनने के लिए भगवान् के द्वार पर जाना चाहिए। प्रभु-सत्ता स्वीकार है, लेकिन एक प्रभु की सत्ता स्वीकार नहीं है। एक ही प्रभु 'प्रभु' बनकर बैठा रहे और सारे जगत् के जीवों को भक्त बनाकर बिठाए

है। ज्ञानियो! जिनशासन कहता है कि जो सेवा करता है, वह भी समझदार होकरके सम्राट बन जाता है। भगवान् का भक्त जो सच्चा होता है, वह नियम से भगवान् बनता है। भारत ही नहीं, विश्व को प्रजातंत्र शासन देने वाला यदि कोई है, तो तीर्थंकर महावीर का गणतन्त्र है। वैशाली का गणतन्त्र सारे विश्व में प्रसिद्ध है। यह सबसे पहला गणतन्त्र शासन था। प्रजातन्त्र शासन कितना विशाल है? प्रजातन्त्र में प्रत्येक जीव को सम्राट बनने का अवसर मिलता है। जिनशासन ही प्रजातन्त्र है। जहाँ प्रत्येक जीव को भगवान् बनने का अवसर मिलता है। हमारी आत्मा जो परमात्मा बनती है, यह कोई सुनिश्चित आत्मा नहीं है। प्रत्येक आत्मा में परमात्मा बनने की शक्ति है। प्रत्येक आत्मा पुरुषार्थ करके परमात्मा बन सकती है। निगोदिया जीव भी पुरुषार्थ करके सिद्धशिला पर बैठने की सामर्थ्य रखता है।

भाग्य अपना काम करेगा, लेकिन भाग्य को बनाने वाला भाग्य नहीं है, भाग्य को बनाने वाला पुरुषार्थ है। परन्तु कार्य तभी सफल होगा जब पुरुषार्थ के साथ भाग्य भी होगा और भाग्य तभी बनता है जब वर्तमान का पुरुषार्थ होता है। जो मात्र पुरुषार्थ के अहंकार में बैठे हैं, वे असफल हो जाते हैं। जो भाग्य के सहारे बैठे हैं, वे भी सफल नहीं हो पाते हैं। क्योंकि कोरा भाग्य क्या करेगा यदि पुरुषार्थ नहीं करेगा? और पुरुषार्थ सफल होगा कैसे यदि पुण्य नहीं होगा? चार पहियों का ठेला धकेलने वाला व्यक्ति कितना अधिक पुरुषार्थ करता है, परन्तु उन बेचारों को सेठों की डांट ही खानी पड़ती है।

धैर्य यदि आपके पास है, तो सबकुछ आपके पास है। जिसकी धीरता चली गई, उसका सबकुछ चला गया। संकट के दिनों में बैठो तो प्रभु और गुरु के चरणों में; और पकड़ कर रखना तो धैर्य को। कभी अधीर मत होना। द्वार पर कोई गरीब आए, उसे अच्छे शब्दों से ही पुकारना। मत किसी को हीन देखना, मत किसी को दीन देखना। नाली के कीड़े को भी भगवान् देखना। लेकिन पूजा करने मत जाना, क्योंकि पर्याय की दृष्टि से वह अभी कीड़ा ही है, पर्याय की दृष्टि से परमात्मा नहीं है। द्रव्यदृष्टि तो द्रव्य दृष्टि है, परन्तु जब तक पर्याय प्रकट नहीं होगी, तब तक अनुभूति नहीं आएगी। प्रत्येक जीव द्रव्य दृष्टि से तो भगवान् है, परन्तु वस्तुस्वरूप से भगवान् नहीं है। पूजा तो प्रकट भगवान् की ही होगी।

आत्मा का क्रमिक विकास होता है। जब अंकुर आ रहा था खेत में और उस खेत में आपने घूमना शुरू कर दिया, तो फिर फसल कैसे आएगी? मिथ्यादृष्टि जीवों के प्रति भी अशुभ भाव मत करना। बहिरात्मा जीव के प्रति भी अशुभ भाव मत करना। बहिरात्मा के बहिरात्मपने को स्वीकार मत करना, परन्तु उनके प्रति भी अशुभ भाव मत करना। ज्ञानी! बहिरात्मा ही अंतरात्मा और अंतरात्मा ही परमात्मा बनेगा, इसलिए वस्तु का नाश करने की बात मत करना। किसी जीव के

प्रति अशुभ भाव किंचित् भी नहीं करना। जो वर्तमान की पर्याय को इन्द्रियसुखों में लगा रहे हैं वे ऐसे अज्ञानी जीव हैं कि उनके खेत में सरसों की फसल आई और उसमें सुंदर पुष्प उगने प्रारम्भ हो गए; परन्तु फूलों को देखकर उनके मन मचल गए, किसी पुष्प को कान पर रखा किसी को माला बनाकर गले में पहना। हे अज्ञानी! तूने पुष्पों को तो चुन लिया अब दाने किसमें आयेंगे? अब फसल नहीं आएगी। हे मुमुक्षु! जितना पुण्य का द्रव्य था, आपने उसको पहले ही चुन डाला, अब मोक्ष के फल किसमें आयेंगे? तुमने सब नाश कर दिया है। डण्ठल खड़े दिखेंगे। जितनी रक्षा फसल की करते हो, उतनी रक्षा फूलों की करनी पड़ती है।

उस किसान से पूछना जिसके आमों में बौर आ गया हो; कैसे मुस्कुराता है बसन्त के आते ही। परन्तु प्रतिक्षण धुक-धुक होती है, चिन्ता सताती है कि पानी न गिर जाए, तूफान न आ जाए। श्रावको! ध्यान दो, जैसे आम के बगीचे के माली को चिन्ता सताती है कि आंधी-तूफान न आ जाए, नहीं तो इतने सुन्दर बौर झड़ जायेंगे। ऐसे ही पुण्य के बौर जो तुम्हारे चमक रहे हैं, इनमें कषायों के तूफान न आ जायें, विषयों की आंधी न आ जाए, भौतिकता के ओले न पड़ जायें। ध्यान दो, आम जैसा नाजुक कोई फल नहीं है। उसको कितना संभालकर किसान रखता है। प्राणियों में मनुष्यनी का बेटा और फलों में आम का फल, इनको बड़े जतन से रखना पड़ता है। परन्तु इनसे भी अधिक नाजुक कोई है तो व्यक्ति के परिणाम। जो परिणाम आज धार्मिक बन रहे हैं, वे कल कब बदल जायें, पता नहीं चलता। सर्वाधिक पुरुषार्थ करना परिणामों को संभालने में। परिणाम संभाल लिए जिसने, वही बहिरात्मा जीव अंतरात्मपने को प्राप्त होता है और विकास करते-करते, जघन्य अंतरात्मा, मध्यम अंतरात्मा, उत्कृष्ट अंतरात्मा को प्राप्त होता है। दिगम्बर मुनि जो होते हैं, बारहवें गुणस्थान में उत्कृष्ट अंतरात्मा होते हैं और वहाँ ऐसी विशुद्धि बनी कि परमात्मपना प्रकट हो गया। जिस जीव के अन्तर्मुहूर्त में कैवल्य प्रकट होने वाला है, उन बारहवें गुणस्थानवर्ती मुनिराज से पूछना, भो स्वामी! आपको कैसी अनुभूति हो रही है? वही मुनिराज, जो मुनिराज बने थे, जिनराज बन गए।

भगवन् कुन्दकुन्द स्वामी कह रहे हैं कि मध्यम अंतरात्मा, निर्ग्रंथ योगी स्वप्न में भी विषयों की आकांक्षा नहीं करते। सेवन तो दूर, स्वप्न में भी आकांक्षा नहीं करते हैं। जिस दर्शन में यदि स्वप्न में दोष लग जाए, उसका प्रायश्चित किया जाता है, तो जागते-जागते दोष कौन करेगा? ऐसा यह नमोऽस्तु शासन है। जैसे निर्ग्रंथ योगी स्वप्न में भी अपने संयम में दोष नहीं लगाता, ऐसे ही मेरे मित्रो, श्रावको! तुम स्वप्न में भी निर्ग्रंथों के प्रति अशुभ भाव मत करना। 'अष्टपाहुड' में लिखा भगवान् कुन्दकुन्द स्वामी ने—

जिणमुद्दं सिद्धिसुहं हवेइ णियमेण जिणवरुद्दिट्ठा।
सिविणे वि ण रुच्चइ पुण जीवा अच्छंति भवगहणे ॥47 मोक्षपाहुड॥

जिस जीव को निर्ग्रंथ मुद्रा स्वप्न में भी न रुचे वह अनंत दीर्घसंसारी जीव है और जिसको स्वप्न आ रहे हों कि मैं निर्ग्रंथ मुनि को आहार दे रहा हूँ, अरिहंत की पूजा कर रहा हूँ, वह पुण्यात्मा जीव है।

जिसको देह से भिन्न भाव है, ऐसा परम अध्यात्म में विराजा वह मध्यम अंतरात्मा जीव शिव-सुख में लीन होता है, परन्तु इन्द्रियविषयों में स्वप्न में भी कभी दृष्टि नहीं डालता है।

"आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

॥ भगवान् महावीर स्वामी की जय ॥

❖ ❖ ❖

अनादिकालीन दुर्वासना

मलमुत्त-घडव्व चिरं वासिद दुव्वासणं ण मुञ्चेदि।
पक्खालिय सम्मत्तजलो य णाणमियेण पुण्णो वि ॥134॥

अन्वयार्थ—यह जीव **(सम्मत्त जलो)** सम्यक्त्व रूपी जल से **(पक्खालिय)** प्रक्षालित करने पर **(य)** और **(णाण-मियेण)** ज्ञानामृत से **(पुण्णो वि)** पूर्ण होने पर भी **(चिरं वासिय)** चिरकाल से दुर्गंधित **(मलमुत्त घडव्व)** मल-मूत्र से भरे घड़े के समान **(दुव्वासणं)** दुर्वासना को **(ण मुञ्चेइ)** नहीं छोड़ता है।

भव्य बन्धुओ!

अन्तिम तीर्थेश भगवान् वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना, जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति। आचार्यप्रवर भगवान् कुन्दकुन्द स्वामी ग्रंथराज रयणसार जी में श्रमण और श्रावक उभय धर्मों की व्याख्या करते हुए समझा रहे हैं—हे मुमुक्षु! संसार से उत्तीर्ण होने का मार्ग रत्नत्रय धर्म है। रत्नत्रय धर्म के अभाव में संसार से न कोई उत्तीर्ण हुआ है, न होगा। जो जीव संयमाचरण के अभाव में निर्वाणश्री का वरण करना चाहता है, संसार के दु:खों से मुक्त होना चाहता है वह जीव पाषाण की नौका में बैठकर संसार से पार होना चाहता है। जैसे पाषाण की नौका से सागर पार नहीं हुआ जाता, ऐसे-ही पाँच पापों में लिप्त आत्मा के लिये संसार से पार होने की कल्पना करना भी नहीं। भवातीत होना है तो पापों की भावना को अतीत कर दो। जब तक पापों की भावना अंतस् में विराजती है, तब तक भवातीत होने की कल्पना करना बन्द कर दो।

आत्मा के क्रमिक विकास की जो धारा है, वह जिनशासन की पवित्र धारा है। मुझे किसी ने नीचे नहीं गिराया, मुझे किसी ने ऊपर नहीं उठाया। गिराने-उठाने वाला मैं स्वयं हूँ। देह को नीचे गिराने वाले लोग मेरी आत्मा को नीचे नहीं गिरा पायेंगे। देह को ऊँचे-ऊँचे सिंहासनों पर रखने वाले जीव मुझे सिद्धालय में नहीं बैठा पायेंगे। शरीर को छिन्न-भिन्न करना, यह परसापेक्ष हो सकता है; लेकिन आत्मा को ऊपर-नीचे करना, यह स्वाधीन दशा है। ध्रुव सत्य यह है कि देह का विच्छिन्नपना भी मेरा, पराधीन नहीं है। मेरे शरीर का नाश करना भी पराधीन नहीं है, मेरे शरीर का नाश भी मेरे स्वयं के कर्माधीन है। किसी ने अस्त्र का वार कर दिया, किसी ने जहर खिला दिया, तब तो पराधीन मरण

हो जाएगा। मुमुक्षुओ! इस बात को भूल जाओ। दूसरे के द्वारा खिलाया जहर भी पराधीन नहीं है, वह भी मेरे स्वयं के कर्माधीन है।

जिस जीव की दूसरों को सुख अथवा दु:ख देने की दृष्टि है, उसने अभी जैनदृष्टि को समझा ही नहीं है। वस्त्र का उतार देना, पिच्छि का ग्रहण कर लेना, कमण्डलु के भार को धारण कर लेना, यह मात्र जिनशासन में दीक्षा नहीं है। यह देहाश्रित दीक्षा है। जब तक तेरे परिणामों की धारा अखण्ड श्रुत में प्रवेश नहीं कर रही है, जब तक तेरे परिणामों की दशा इस बात को स्वीकार नहीं कर पा रही है, कि जगत् में मेरा कोई हर्त्ता नहीं, कर्त्ता नहीं, जब तक यह दृष्टि नहीं, तब तक जैनदृष्टि नहीं। सच्चा जैन वही है, जिसके अंतस् में गूंजने लग जाए 'न कोई मेरा कर्त्ता है, न कोई मेरा हर्त्ता है।' हरण भी होगा तो मेरे कर्माधीन होगा, मरण भी होगा तो मेरे कर्माधीन होगा। मेरे निज आत्मा के स्वाधीन है। मैंने सुखी किया है, मैंने दु:खी किया है, ऐसा कहने वाला सबसे बड़ा दु:खिया है। वस्तुव्यवस्था स्वतन्त्र है, व्यवस्थित है। निमित्त ही बन पाओगे, किसी का उपादान बनकर खड़े हो नहीं सकते हो। रावण से प्रश्न करो, तूने पुरुषार्थ तो बहुत किया राम को मारने का, परन्तु हे लंकेश! मरण किसका हुआ? लंकेश! तुझे मालूम होना चाहिए था कि जिसकी पुण्य की सत्ता प्रबल होती है तो वहाँ कोई उसका बाल भी बाँका नहीं कर पाता। पुण्यात्मा को देखकर तू झगड़ा न करता तो न तेरा मरण होता, न अपयश मिलता। तू अपनी पुण्यक्षीणता को न देखकर लड़ने पहुँच गया, तो हे ज्ञानी! तू अपना नाश करके बैठ गया।

जैसे आत्मद्रव्य का कोई घातक नहीं है, ऐसे-ही मेरे शरीर का घातक भी कोई नहीं है। परघात नामकर्म का उदय होगा, तो तेरा अस्त्र-शस्त्र मेरा घात कर पाएगा। परघात नामकर्म का उदय नहीं होगा, तो दीवान को तोप के गोले के सामने खड़ा किया जा सकता है, परन्तु तोप के गोले को भी ठण्डा होना पड़ जाता है। यह जिनेन्द्र की भक्ति की महिमा तो देखो। यदि हम प्रथमानुयोग की दृष्टि से कथन करेंगे, अरिहंत भक्ति की महिमा का व्याख्यान करेंगे, तो यूँ कहेंगे कि अरिहंत की भक्ति की महिमा तो देखो कि तोप का गोला भी ठण्डा हो गया। चरणानुयोग कहेगा, कि दीवान के चारित्र की महिमा थी। द्रव्यानुयोग कहेगा कि यह जीव के शुभ परिणामों का परिणमन चल रहा था। करणानुयोग कहेगा कि दीवान के परघात नामकर्म का उदय नहीं था, इसलिए तोप का गोला ठण्डा हो गया। आचरण का जैन और आचरण का मुनि, ये दोनों बहुत सरल हैं। परिणति का जैन और परिणति का निर्ग्रंथ मुनि खोजने के लिए जाना पड़ेगा।

आचार्यभगवान् कुन्दकुन्द स्वामी कह रहे हैं कि अनादिकाल से जिस घट में मल भरा हो, उसमें दुर्गन्ध आती ही है। इस जीव में अनादिकाल से दुर्वासनायें भरी हुई हैं। उनको सम्यक्त्वरूपी जल से प्रक्षालित करने पर तथा ज्ञानरूपी अमृत से सिंचन करने पर भी वे आसानी से समाप्त नहीं होती हैं। चिरकाल से दुर्गन्धित सामग्री घड़े में रखने पर उसकी बास घड़े में भर जाती है। बार-बार साफ करने से बास जाती है। इसी प्रकार से यह जीव अनादिकाल से मिथ्यात्व रूपी मल से दूषित होकर संसार में भ्रमण कर रहा है। ज्ञानी! इस मिथ्यात्व रूपी मल को हटाने का एकमात्र साधन सम्यक्त्व रूपी जल है, जिससे कि ज्ञान सम्यग्ज्ञान हो जाता है, जो मल समाप्त करने में सहायक होता है।

"**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।**" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

॥ भगवान् महावीर स्वामी की जय ॥

❖ ❖ ❖

सम्यग्दृष्टि के भोग में अनासक्ति

सम्मादिट्ठी णाणी अक्खाण सुहं कहं पि अणु हवदि।
केणावि ण परिहरणं, वाहीण विणास णट्ठभेसज्जं ॥135॥

अन्वयार्थ—(सम्मादिट्ठी णाणी) सम्यग्दृष्टि ज्ञानी **(कहं पि)** किसी प्रकार /अनिच्छापूर्वक **(अक्खाण सुहं अणु हवदि)** इन्द्रियों के सुख का अनुभव करता है क्योंकि **(वाहीण विणास णट्ठ)** रोग को दूर करने के लिए **(भेसज्जं)** ओषधि को **(केणावि)** किसी के द्वारा **(ण परिहरणं)** छोड़ी नहीं जाती।

परमात्मावस्था प्राप्ति का उपाय

किं बहुणा हो तजि बहिरप्प सरूवाणि सयल भावाणि।
भजि मज्झिम परमप्पा वत्थु सरूवाणि भावाणि ॥136॥

अन्वयार्थ—(हो) अहो **(किं बहुणा)** बहुत कहने से क्या लाभ है? **(बहिरप्प सरूवाणि)** बहिरात्म स्वरूप **(सयल भावाणि तजि)** सकल भावों को छोड़ तथा **(मज्झिम परमप्पा)** मध्यमात्मा और परमात्मा के **(वत्थु सरूवाणि)** वस्तुस्वरूप **(भावाणि)** भावों को **(भजि)** भज।

भव्य बन्धुओ!

अन्तिम तीर्थेश भगवान् वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना, जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति। आचार्यप्रवर भगवान् कुन्दकुन्द स्वामी ग्रंथराज रयणसार जी में श्रमण और श्रावक उभय धर्मों की व्याख्या करते हुए समझा रहे हैं—अहो ज्ञानी! घट को कितना ही धोया जाए, लेकिन जिस घट में मल रखा है उस मल की दुर्गंधि को मिटाना असम्भव है। मलपूरित घट को साफ करना जैसे बहुत कठिन हुआ करता है, ऐसे-ही अनादि अविद्या के संस्कार, मिथ्यात्व-असंयम के संस्कार जो अंतस् में जीव के विराजते हैं, उन संस्कारों को निकालना बहुत कठिन है। जिनालय में पहुँचकर, देवाधिदेव के चरणों में बैठकर, जितना समय जीव निकाल देता है, वह बहुत अच्छा काम किया है। लेकिन फिर परिणामों से पूछो, वहाँ बैठा होने पर भी वहाँ कितना बैठ पाता है? मन के विचार पता नहीं कहाँ से कहाँ पहुँच रहे हैं। अरिहंत की उपासना के काल में वासना ने दबा लिया। जहाँ जिनदेव को देखना चाहिए था, वहाँ किसी दूसरे का चेहरा ही दिखाई देने लगा। कर्म कहेगा—तू अपना स्वभाव नहीं छोड़ पा रहा है तो मैं तो अपना स्वभाव कभी छोड़ता नहीं हूँ। मैं किसी के साथ मैत्री या शत्रु भाव नहीं करता हूँ। जो मेरा काम है, उसे अवश्य करता हूँ।

आराधना करते-करते जो विराधना की है, उसे तो देख सकते हैं। विराधना करते-करते कितनी आराधना की है, वह तो गौण है। आराधना करते-करते कितनी विराधना की है, उसकी सीमा ही नहीं है। परमेष्ठी की आराधना करते-करते परिणाम कहाँ-कहाँ गए थे? जब तक जीव को निज की स्वतन्त्रता का बोध नहीं हो रहा है, तब तक धर्म का प्रारम्भ होता नहीं है। जब तक जीव का किसी से जुड़ाव होगा, लगाव होगा, तब तक धर्म प्रारम्भ नहीं है। जिस व्यक्ति से तुम्हारी प्रीति हो जाती है, हजारों की भीड़ में चेहरा उसी का दिखता है। ऐसे ही कोटि-कोटि देवताओं के बीच में अरिहंतदेव में प्रीति हो जाए, तो चेहरा मात्र उनका दिखने लग जाए और संसार से तेरा कल्याण हो जाए। यह तो आप सबके अनुभव की बात है कि जिसकी जहाँ प्रीति है वह अलग से दिख रहा है। बस, यही दृष्टि पर ध्यान दो। राग से भरकर परिवार का पालन कर लेना यह कोई बहुत महत्त्व की बात नहीं है। यह तो चिड़िया, कबूतर भी करना जानते हैं। परन्तु वैराग्य से भरकर परमात्मा हो लेना, यह मनुष्य की पहचान है।

घट का उदाहरण जब कुन्दकुन्द स्वामी लिख रहे होंगे ग्रन्थ में, तो कितना गम्भीर चिंतवन चल रहा होगा। घट का ही उदाहरण दिया। ज्ञानियो! घोड़े के मल को देखा? आँखों से देखो, कितना चिकना दिखता है और दूर से यदि धूप में पड़ा हो तो चमकता भी है। उसकी चमक को देखकर हाथ में रख मत लेना अन्यथा कई बार धो लोगे, परन्तु उसकी दुर्गंध हाथ से निकालना कठिन हो जाएगी। घट का मल और इस घोड़े की लीद, इन दोनों को साफ करने के लिए समय चाहिए पड़ता है। ऐसे ही विषयों के मल से दूषित इस आत्म-घट को धोने के लिए बार-बार जिनवाणी चाहिए पड़ेगी, एक बार से मन का घट ठीक होने वाला है नहीं। जैसे एक ज्ञानी वैद्य विष का शोधन करके, औषधि मिश्रित करके, जहर को औषधि रूप बनाकर योग्यता को प्राप्त हो लेता है, ऐसे-ही सम्यग्दृष्टि जीव अपने परिणामों का अपने परिणामों से ही शोधन करके निज आत्मा को भगवान् बना लेता है। यह विष शोधन की क्रिया है। जो भेदविज्ञान है, वह यथार्थ में विष शोधन की क्रिया है। पुद्गल से पुद्गल का शोधन कर लेना बहुत सरल है, परन्तु निज के परिणामों से निज का शोधन कर पाना बहुत कठिन है, पुरुषार्थसाध्य है।

हीरा देखा कभी? हीरे में चमक कहाँ से आई? जब खदान से निकलता है तो मलिन होता है, फिर चमक कहाँ से आई? चमक उसमें भरी नहीं गई। तराशा गया है, उसी में चमक थी। हीरे पर पॉलिश नहीं की गई, हीरे में चमक डाली नहीं गई है। उस हीरे में स्वतः चमक है। मलिनता हटायी गई है। इस ध्रुव आत्मा को कहीं से भगवान् प्राप्त कराये नहीं जाते हैं, ऊपर से भगवान् बनाया नहीं जाता है। इस आत्मा में कर्मों की कालिमा जो अवस्थित है, उसको अलग कर दो। यह स्वयं सहज भगवान् है। इसको तराश दो, यही भेदविज्ञान है। शरीर का ढाँचा ऊपर से दिख रहा है,

यह मलिन पिण्ड है। इसको तराश दिया जाए निज की भेदविज्ञान की परिणति से, तो आत्मा की शुद्ध दशा को प्रकट कर लेता है जीव।

शान्ति का आनंद, एकान्त का आनंद, श्रद्धा का आनंद, ज्ञान-चारित्र का आनंद जगत् के सम्पूर्ण विषयानंद से भिन्न है। जब ज्ञान, ज्ञान को पहचान लेता है, वहीं से आनंद आना प्रारम्भ हो जाता है। निर्बंध का जो आनंद है, वह जगत् में कहीं नहीं है। बंधने में भी आनंद है। ऐसा नहीं है कि बंधने में आनंद न हो। बाजे के साथ, घोड़े पर बैठकर बंधने गया था। उस आनंद को भी लूट रहा था कि यह भी एक आनंद है। एक दिन था जब मुख में लाली थी, बेचारा बंधने गया था। जब बंध गया, तो सर्वांग लाल हो गया। यथार्थ बताना, बंधने में आनंद है क्या? परन्तु बंधे हुए लोग कभी-कभी रोते भी दिखाई देते हैं। अरे मुमुक्षुओ! तुम पराधीन आनंद में लवलीन हो, ये मुनिराज स्वाधीन आनंद ले रहे हैं। निर्बंध का जो आनंद है, वह आनंद बन्धन में है ही नहीं। जो वस्तु सहज होती है, उसकी कीमत कम होती है।

बाहर की मुद्राएँ चाक्षुष हैं, भीतर का भगवान् हमारा अचाक्षुष है। दुनियाँ बाहर की मुद्रा को ही देख पाएगी, परन्तु अन्दर की मुद्रा को मैं ही देख पाऊँगा कि मैं क्या हूँ? मेरा वर्तमान पर्याय का रहना तो मुझे दिखाई दे रहा है, लेकिन भविष्य की पर्याय तो शून्य में है मेरी, अजन्मा है। भूत मर चुका है, अजन्मा को मैं कैसे कहूँ कि मैं कहाँ जन्म लेने वाला हूँ? निर्णय कर लो कि जगत् के सभी जीवों के प्रति मैत्रीभाव रखूँगा। यदि मैत्री भाव नहीं रख पाए तो, ज्ञानी! कुणिक जैसा बेटा न बनना पड़े, कंस जैसा बेटा न बनना पड़े। मेरे पिताओ! बेटों में अशुभ संस्कार भी पड़ रहे हों, तो भी उन्हें प्रीतिपूर्वक समझाना, अन्यथा कहीं उसने शत्रुता बांध ली तो भविष्य की पर्याय में शत्रु बनकर आ जाएगा।

जैन वक्ताओं को सर्वप्रथम—"त्रैकाल्यं द्रव्य षट्कम्" से ही व्याख्या प्रारम्भ करना चाहिए। तीन काल और छः द्रव्य, इन पर आस्था है यदि आपकी, तो आप जीव त्रैकालिक हो। भूत में थे, वर्तमान में हो, भविष्य में रहोगे। यदि रहोगे, तो संभलकर रहो अब। बेटे को बेटा तो मानना, लेकिन बेटे को निज की आत्मा मत मान लेना। परिवार का संचालन तो करना प्रीतिपूर्वक, लेकिन तादात्म्य बनाकर मत बैठ जाना। अपने बेटे के प्रति राग है, परन्तु दूसरे के बेटे के प्रति द्वेष बनाकर मत बैठ जाना। जिनको सबकुछ तूने दिया था, वे आग ही लगा पाए; परन्तु जिनको कुछ नहीं दिया था, उनके कांधों से तू गया था। इसलिए ध्यान रखना, अड़ौस-पड़ौस के लोगों से प्रीतिपूर्वक रहना, मैत्रीभाव रखो। वर्तमान को भूत बनने में देर नहीं लगती है। भैया! भूत लगे, इसके पहले भविष्य पवित्र कर लो, यह अपने हाथ में है। "थे" लगने के पहले कुछ कर लो। कथायें रह

जायेंगी, पात्र चला जाएगा। जिस पात्र में जिया था, उसके इतिहास बने रह जायेंगे। इति सभी की होनी है।

नियोग है-संयोग है, परन्तु भूल मत जाना कि वियोग निश्चित है। इसलिए सबके साथ मिलकर तो रहा करो, लेकिन ज्यादा राग बढ़ाकर मत रहना। ऐसे भद्र परिणाम जब तुम्हारे अंतस् में आयेंगे और हर क्रिया को गौण करके मात्र परमेष्ठी झलकेंगे, तो उसकी समाधि सुनिश्चित है। जितने तीर्थों की वन्दना कर सको, उतनी अधिक-से-अधिक करना। अधिक-से-अधिक मुनियों की वन्दना करना। जितने मानस्तम्भ मिलें, मानस्तम्भों की वन्दना करना। जिन-जिन को समाधि करना है, उनकी बात चल रही है। जब अन्तिम श्वांस निकलने का समय होता है, तो बड़े-बड़े श्लोक-गाथायें कुछ भी समझ में नहीं आयेंगे। शरीर इतना कृश हो जाता है कि ओम् कहने में भी ताकत लगती है। वह तो भाग्यवान जीव है जिसके अंतस् में अन्तिम समय तक समयसार गूंजता रहे। अन्यथा ताकत नहीं रहती है। मुख से आवाज नहीं निकलती है, आँख खोलते नहीं बनती है। हे ज्ञानी! जो प्रतिमा तुम देख चुके थे वे प्रतिमायें ही अन्दर दिखेंगी अब। उन प्रतिमाओं से निज प्रतिमा दिखेगी अब। इसलिए जितना बने उतनी प्रतिमाओं का दर्शन करो। किस योगी को देखकर तुम्हारे भाव विशुद्ध हो जायें, पता नहीं इसलिए टेलीविज़न देखना, लोगों से मिलना-जुलना कम कर दो। अधिक-से-अधिक मन्दिर में बैठा करो। बहुत दिन हो गए देखते-देखते, अब तो देखनहार को देखना है।

अपने परिणामों को उपशमित रखो। जिनमें राग है, उनके घर में जन्म होगा क्या? कोई निश्चित नहीं है। शत्रु के घर में भी तुम बड़े बनकर पहुँच सकते हो और अपने घर से जा सकते हो। इसलिए किस घर को अपना कहूँ, किस घर को पराया कहूँ? 'यशस्तिलक चंपू' महाकाव्य में एक कथा लिखी हुई है कि—पिता बकरा हो गए। घर की बकरी के उदर में पिताजी बकरा हो गए। हुआ क्या? वह बकरा तो घरवालों के राग में बार-बार दौड़कर उनके पास आए, लेकिन वे उसे डण्डा मारकर भगा दें। इतना ही नहीं, उसकी एक टांग को निकाल लिया और उसका भक्षण कर लिया। अवधिज्ञानी मुनिराज पधारे, उनसे पूछा, महाराज! यह बकरा क्यों इतनी प्रीति करता है? बोले, हे ज्ञानी! यह तेरा इसी भव का पिता था।

भैया! बकरा-बकरी न बनना पड़े, इसलिए ज्यादा मैं-मैं मेरे-मेरे-मेरे मत किया करो, अन्यथा कहीं घर में मिमियाने के लिए बकरा न बनना पड़ जाए। इन चर्मपिण्डों में लिप्त होकर अचर्म-स्वभावी भगवानात्मा को मत भूल जाना। सत्य स्वरूप यही है, राग में जीव समझ नहीं पाता है। परन्तु जब राग हटता है, तो सत्य समझ में आने लगता है। इतना ध्यान रखना, बादलों की छाया को देखकर मकान मत तोड़ लेना। क्षणिक, सुवासित छाया को देखकर मकान तोड़ मत

बैठना। ऐसे ही जगत् के राग-रंग और दुनियाँ के लोगों की बातों की छाया को देखकर चेतन भवन को तोड़ मत बैठना। निज धर्म ही शरण होगा। हे आप्त! या तो आप मेरी शरण हो अथवा मेरी आत्मा मेरी शरण है, तीसरा मेरी शरण कोई है ही नहीं। आप्त और अप्पा के अलावा तीसरे की शरण में जो जाए, सो बहिरात्मा जीव है। व्यवहार से आप्त की शरण में चले जाना, निश्चय से आत्मा की शरण में चले जाना, तीसरे की शरण में जाने की कोई आवश्यकता नहीं है।

क्या कहें? कुन्दकुन्द स्वामी तो कुन्दकुन्द स्वामी हैं। यदि कोई डॉक्टर मुनिराज बनें और वे उपदेश करें, तो कहीं-न-कहीं डॉक्टर की भाषा आ ही जायेगी, ये जीव के संस्कार हैं। आचार्य अकलंक स्वामी ने एक अध्यात्मशास्त्र लिखा—"स्वरूप संबोधन"। अब वे थे न्याय के आचार्य, लिखते-लिखते वे पहुँच ही गए न्याय में। अब कुन्दकुन्द स्वामी हैं, ये हैं अध्यात्म के आचार्य लेकिन लिख रहे हैं चरणानुयोग, तो उन्हें चैन नहीं पड़ा, इसलिये यहाँ भी समयसार लिख दिया। जो गाथा अभी अपन ने पढ़ी है, यह गाथा समयसार में है। अक्षरों के फेर हैं, लेकिन भाव वही हैं। क्या कह रहे हैं—

सम्मादिट्ठी णाणी, अक्खाणसुहं कहं पि अणुहवदि।
केणावि ण परिहरणं, वाहीणाविणासणट्ठ भसज्जं ॥135॥

सम्यग्दृष्टि ज्ञानी इन्द्रियसुखों को किंचित् भोगता है, लेकिन कैसे? अनिच्छापूर्वक। जैसे दवाई खाने वाला रुचि से कभी दवाई खाता नहीं है, दवाई न खाना पड़े इसलिए दवाई खाता है। ऐसे ही सम्यग्दृष्टि जीव, रोग को दूर करने के लिए जैसे औषधि का सेवन नहीं छोड़ा जाता है, ऐसे ही जो विषयकषाय की वेदना को सहन नहीं कर पा रहा है, इसलिए विषय का सेवन कर रहा है, पर उन्मत्त होने और आनंद लूटने के लिए नहीं कर रहा है। यह सम्यग्दृष्टि जीव की पहचान है। इसलिए कामपुरुषार्थ के काल में भी णमोकार मत भूल जाना। जो ऐसे अशुभ काम करते हुए भी णमोकार की माला फेरते हैं, उनके घर में महावीर-जैसे बेटे होते हैं।

"आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

॥ भगवान् महावीर स्वामी की जय ॥

❖ ❖ ❖

दु:ख का कारण बहिरात्म भाव

चउगदि-संसार-गमण-कारण-भूदाणि दुक्खहेदूणि।
ताणि हवे बहिरप्पा वत्थुसरूवाणि भावाणि॥137॥

अन्वयार्थ—(बहिरप्पा) बहिरात्मा जीव के (वत्थुसरूवाणि भावाणि) वस्तुस्वरूप सम्बन्धी जो भाव हैं (ताणि) वे सब (चउगदि-संसार-गमण-कारण-भूदाणि) चतुर्गति रूप संसार परिभ्रमण के कारण हैं और (दुक्ख हेदूणि) दु:ख के कारण (हवे) होते हैं।

भावमुक्ति के कारण

मोक्ख-गदि-गमण-कारण-भूदाणि, पसत्थपुण्ण-हेदूणि।
ताणि हवे दुविहप्पा, वत्थुसरूवाणि भावाणि ॥138॥

अन्वयार्थ—(दुविहप्पा) दो प्रकार की आत्मा-अन्तरात्मा व परमात्मा के **(वत्थुसरूवाणि भावाणि)** वस्तुस्वरूप सम्बन्धी जो भाव हैं (ताणि) वे सब **(मोक्ख-गदि-गमण-कारण-भूदाणि)** मोक्षगति में ले जाने के कारणभूत और **(पसत्थपुण्ण-हेदूणि)** प्रशस्त पुण्य के कारण **(हवे)** होते हैं।

भव्य बन्धुओ!

अन्तिम तीर्थेश भगवान् वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना, जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति। आचार्यप्रवर भगवान् कुन्दकुन्द स्वामी ग्रंथराज रयणसार जी में श्रमण और श्रावक उभय धर्मों की व्याख्या करते हुए समझा रहे हैं—वही श्रावक परम पुण्यात्मा है जिसके अंतस् में पंचपरमेष्ठी के प्रति आस्था विद्यमान है। वे मुनि महान् हैं जो रत्नत्रय के पालन में लीन हैं। एक का मोक्षमार्ग रत्नत्रय मार्ग की लीनता है और एक का मोक्षमार्ग पंचपरमेष्ठी के चरणों की लीनता है। 'पंचास्तिकाय' ग्रन्थ में शिष्य ने प्रश्न किया "स्वामी। मोक्षमार्ग क्या है?" आचार्य भगवन् ने कहा, मोक्षमार्ग तो रत्नत्रय धर्म है। शिष्य धीरे-से कहता है 'प्रभु! रत्नत्रय धर्म का पालन तो बहुत दुष्कर है। मेरी सामर्थ्य नहीं है कि मैं मुनि बन सकूँ। देह को संभाल लेना फिर भी सहज हो सकता है, लेकिन परिणामों को संभालना बहुत दुष्कर है। मैं कैसे इस अवस्था में योगी बन सकता हूँ? ऐसा प्रश्न करने पर ग्रन्थकर्ता कहते हैं—साक्षात् मार्ग तो रत्नत्रय धर्म ही है। उस धर्म को पालने में यदि आप असमर्थ हैं, तो पंचपरमेष्ठी की आराधना करना, यही गृहस्थों का मोक्षमार्ग

है। जो मोक्ष को प्राप्त हो चुके हैं और जो मोक्षमार्ग में लगे हुए हैं, इन दोनों की उपासना करना गृहस्थों का मोक्षमार्ग है।

परन्तु ध्यान रखना, साक्षात् मार्ग निर्ग्रंथ मार्ग ही है। 'तो फिर मुझे (शिष्य) मोक्षमार्गी क्यों कह रहे हो आप?' क्योंकि नजदीक को भी वह संज्ञा प्राप्त हो जाती है। रत्नत्रय धर्म मोक्षमार्ग है इस रत्नत्रय धर्म के नजदीक जो है, पंचपरमेष्ठी की श्रद्धा रूप जो परिणाम हैं, वह सम्यग्दृष्टि जीव का, सम्यक्त्वजन्य एकदेश, उपचार से मोक्षमार्ग प्रारम्भ हो गया है। कोई गरीब आदमी है, उसके पास मकान नहीं है, परन्तु जीवन जीना है उसे और मकान नहीं है, धूप से बचे कैसे? ज्ञानी! वह भी मार्ग खोज लेता है। जिसकी बहुत ऊँची बिल्डिंग है, उसका पृष्ठ भाग तो होगा और धूप से गरीब को बचना है। मकान में तो नहीं पहुँच पाता है, परन्तु बड़ी बिल्डिंग की जो छाया पड़ रही होती है, उस छाया में बैठकर अपना दिन काट लेता है। आप भगा भी नहीं सकते, क्योंकि आपके मकान में नहीं है, परन्तु छाया में अवश्य है। ऐसे ही जो जीव रत्नत्रय के महल में न भी पहुँचा हो, वह रत्नत्रयधारी के पास में बैठा रहेगा, उनकी छाया में भी बैठा रहेगा, तब भी धूप से तो बच ही जाएगा। जो तड़पते-तड़पते मरने वाला था, वह भवन की छाया में बैठकर मरने से बच जाएगा। बस, मुमुक्षुओ! इतना ध्यान रखना, अच्छा हो कि महल बना पाओ, नहीं बना पाओ तो जिनके महल बने हैं उनकी छाया में तो बैठ ही जाना।

आचार्य कुन्दकुन्द देव 'रयणसार' जी में कह रहे हैं—बहिरात्मा जीव को भी वस्तु पर श्रद्धा होती है और अंतरात्मा जीव को भी वस्तु पर श्रद्धा होती है। जब दोनों को वस्तु पर श्रद्धा है, तो फिर बहिरात्मा अंतरात्मा कैसा? हाँ, श्रद्धा दोनों को है। आपने सरौंता देखा है? दो जीव जिससे सुपाड़ी छील रहे हैं, एक अंतरात्मा एक बहिरात्मा। एक सुपाड़ी ठीक कर रहा है भगवान् को चढ़ाने के लिए और दूसरा सुपाड़ी को ठीक कर रहा है खाने के लिए। दोनों सुपाड़ी को जानते हैं कि नहीं? दोनों सरौंते को जानते हैं कि नहीं? परन्तु एक का सुपाड़ी, सरौंते को जानना बंध का कारण है और दूसरे का निर्बंध का कारण है। जबकि वस्तु का श्रद्धान् दोनों को है, क्योंकि श्रद्धान् और अश्रद्धान् दोनों वस्तु पर होता है। मित्र कौन होगा? व्यक्ति होगा, तभी तो मित्र होगा। व्यक्ति होगा, तभी तो शत्रु होगा। व्यक्ति ही मित्र-शत्रु होगा। अवस्तु न मित्र है, न शत्रु है। मिथ्यादृष्टि भी वस्तु को जानता है, सम्यग्दृष्टि भी वस्तु को जानता है। परन्तु मिथ्यादृष्टि वस्तु को विपरीत रूप से जानता है और सम्यग्दृष्टि वस्तु को सम्यक् रूप से जानता है। जंगल में कहीं जैन प्रतिमा रखी हो, बरेदी भी जानता है कि जैन प्रतिमा है। वह कहेगा भी कि हमने जंगल में "आपके भगवान् देखे हैं।" ज्ञानियो!

अपने भगवान् बना लेता तो सम्यग्दृष्टि हो जाता। भगवान् तो उसने भी देखे हैं। उस व्यक्ति को भगवान् का ज्ञान है कि नहीं? है।

लगता है कुन्दकुन्द स्वामी ने ये दो गाथायें जो लिखी हैं, इसी दृष्टि से लिखी हैं। वस्तु को जानने वाले व्यक्ति जगत् में अनंत हैं। परन्तु वस्तु की वस्तुता को वस्तुस्वरूप समझने वाले अंगुलियों पर गिनने लायक हैं। वस्तु के ज्ञान में सम्यक्पना नहीं है, वस्तु के ज्ञान में मिथ्यापना नहीं है। वस्तु के ज्ञान के साथ वस्तु के श्रद्धान् में सम्यक्त्व और मिथ्यात्वपना है। क्या ऑटोरिक्शा वाले जैनमन्दिर के नाम से किसी गली में नहीं ले जाते आपको? ले जाते हैं, वह आपको जैनमन्दिर के सामने खड़ा कर देगा, खड़ा रहेगा, परन्तु झुकने के भाव नहीं बना पाएगा। जैनमन्दिर का ज्ञान होने से जिनभक्त नहीं हो जाता है, क्योंकि जिनभक्ति भीतर का विषय है। कितनी बार आप मन्दिर में जा चुके, मुनियों के पास पहुँच चुके, कितनी बार जिनवाणी सुन चुके, परन्तु एक बार भी श्रद्धा नहीं जागी। यदि जाग गई होती, तो पंचमकाल में आने को मिलता ही नहीं। पंचमकाल में आए, तो इसका तात्पर्य है कि गए तो थे, परन्तु प्रदर्शन की दृष्टि से गए थे, दर्शन करने नहीं गए थे।

चार गतियों में गमन का कारण और दु:ख का हेतु है, वस्तुस्वरूप को विपरीत जानना। वस्तुस्वरूप को जानता तो है, परन्तु उल्टा-ही-उल्टा जानता है। एक जीव श्रीफल को मोक्षफल की प्राप्ति के लिए अरिहंत के चरणों में चढ़ा रहा है, दूसरा जीव श्रीफल को मुख में खा रहा है। फिर भी ठीक है, क्योंकि उसने पेट भर लिया और तीसरा जीव इसी श्रीफल को किसी मन्दिर में फोड़ रहा है, उसका उद्देश्य बलि चढ़ाना है। जब तीर्थंकर वर्द्धमान की अहिंसा के प्रभाव से पशुबलि बन्द हुई, तो लोगों ने संकल्प करना प्रारम्भ कर दिया। जब तुम पीली चिटक से दीपक का फल प्राप्त कर सकते हो अरिहंत के पादमूल में, तो ज्ञानी! बलि के नाम से, जीव होने के नाम से श्रीफल भी फोड़ा है तो वह भी हिंसा है, संकल्पी हिंसा है। जिनशासन में श्रीफल फोड़े नहीं जाते, मोक्षफल की प्राप्ति के लिए श्रीफल चढ़ाया जाता है।

दिगम्बर मुनियों को 'मूलाचार' में बलि के भोजन का निषेध है। यानि किसी के यहाँ कोई देवता की पूजा थी और उसने शुद्ध भोजन बनाया देवता के नाम पर, और उस देवता को आहुति चढ़ा दी और उसी में पड़गाहन करके महाराज को आहार करवा दिया। यदि महाराज को मालूम चलेगा, पहले तो जायेंगे ही नहीं, और कदाचित् धोखे से पहुँच गए, तो अंतराय करके वापस आ जायेंगे। देवता के नाम पर ही क्या? यदि आपके घर में ज्योंनार चल रही है, बेटे के विवाह आदि के लिए भोजन बना है, उसमें से आप आहार देंगे, तब भी नहीं लेंगे। सामान्य लोगों के बीच में साधु का आहार नहीं होता।

दो बातों को समझना, वस्तु पर ही श्रद्धान् होता है वस्तु पर ही अश्रद्धान् होता है। वस्तु तुमको गुण नहीं दे रही है, वस्तु तुमको दोष नहीं दे रही है। जैसी तुम्हारी परिणति चल रही है, वैसा गुण-दोष प्रकट हो रहा है। इसलिए वस्तुस्वरूप जो पदार्थ हैं, उनका विपर्यास ही मिथ्यात्व है। वस्तु, तो वस्तु है। वस्तु के स्वभाव में कोई विपरीतपना नहीं होता है। परन्तु मानने वाले की दृष्टि विपरीत है तो मिथ्यादृष्टि और सम्यक् है तो सम्यक्-दृष्टि। जब तक तत्त्व को सुनेगा नहीं, तब तक विपरीतपने को ही अपना आगम मानता रहेगा। दूसरे के अभिप्राय को बदलना बहुत कठिन है। सम्यक्त्व का पालन वही कर पाएगा, जिसने निर्णय कर लिया है कि मृत्यु के आगे कुछ होता नहीं है। "जो है सो है।" जिसको मृत्यु से डर है, वह सम्यक्त्व का पालन कर नहीं पाएगा। ऊपर की गाथा में वस्तुस्वरूप की व्याख्या में मिथ्यादृष्टि बहिरात्मा को रख दिया। नीचे की गाथा में कह रहे हैं—अरिहंत की प्रतिमा विराजमान है। कितने क्षेत्र ऐसे हैं, जहाँ अरिहंत की प्रतिमा की ही पूजा हो रही है, परन्तु नाम अलग दे दिये गये हैं। लेकिन अरिहंत को पूजने पर भी अरिहंत की पूजा के फल को प्राप्त नहीं हो रहे हैं। इसलिए यह कभी मत कह बैठना कि मिथ्यादृष्टि जीव वस्तु को नहीं जानते। मिथ्यादृष्टि जीव भी वस्तु को जानते हैं और विपरीत श्रद्धान करके वस्तु का विपर्यास करते हैं।

दुनियाँ से प्रभावित होने की आवश्यकता नहीं है। आपके पास कमी किस बात की है? यह बकरी वाला स्वभाव बदल दो। उसको कितना ही सुन्दर खिला देना, लेकिन दूसरे के खेत से निकलेगी तो पत्ता जरूर तोड़ेगी। जिसके मुख से परदर्शन की प्रशंसा निकल रही है, वह शुद्ध बकरी है। तेरे घर में कमी किस बात की है, यह तो बताओ? दुनियाँ में देव होते हैं, जबकि हमारे यहाँ देवाधिदेव होते हैं। इसलिए रो मत। मुस्कुराओ चौबीस घण्टे। हम देवाधिदेव के चरणों में हैं। जिसके पास निर्ग्रंथ गुरु हों, अरिहंत प्रभु हों, वीतरागी जिनवाणी हो, वह कंगाल किस बात का है? अपने आपको कभी गरीब मत बोलना। गरीब वे हैं, जिनके अंतरंग में पंचपरमेष्ठी के प्रति श्रद्धान नहीं है। जो पंचपरमेष्ठी के प्रति श्रद्धा से भरा है, वह कंगाल होता ही नहीं है। अरिहंतदेव का भक्त दरिद्री होता ही नहीं है।

देवाधिदेव-चरणे, परिचरणं सर्वदु:ख निर्हरणम्।
काम-दुहि काम-दाहिनि, परि-चिनुया-दादृतो नित्यम्॥119 र.क.श्रा.॥

भगवान् देवाधिदेव के चरणों की जो आराधना करता है उसके सम्पूर्ण दु:खों का हरण हो जाता है, यह अरिहंत की भक्ति कामधेनु के समान है। जैसे कामधेनु, जो स्वर्ग की गाय कहलाती है, सम्पूर्ण इच्छाओं को पूर्ण करती है। ज्ञानियो! वह करे या न करे, परन्तु अरिहंत की

भक्ति नियम से सभी इच्छाओं को पूर्ण करती है। ज्ञानी! कितना ही कामनाओं, वासनाओं से भरा पुरुष हो, अरिहंत के चरणों में आकर बैठ जाए तो शान्ति मिलेगी।

ज्ञानी! जो अंतरात्मा है, वही परमात्मा बनता है। जो प्रशस्त भाव उसके अन्दर होते हैं, सब मोक्ष ले जाने वाले होते हैं। अंतरात्मा के जो प्रशस्त परिणाम हैं, वे ही उसे परमात्मा बनाने वाले हैं। ज्ञानी! बहिरात्मा जीव के जो परिणाम हैं, वे ही उसे नरक, दुर्गति में ले जाने वाले हैं। जब तक पर्याय है, जिनवाणी सुनते रहना। नियम से केवली भगवान् बनेगा। सुनने वाला नहीं, सुनाने वाला बनेगा, यदि भव्य है तो।

"आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

॥ भगवान् महावीर स्वामी की जय ॥

❖ ❖ ❖

उभय-समय-ज्ञाता की गति

दव्व गुण पज्जयेहिं, जाणदि परसगसमयादिविभेदं।
अप्पाणं जाणदि सो, सिवगइपहणायगो होदि॥139॥

अन्वयार्थ—जो **(परसगसमयादिविभेदं)** स्वसमय और परसमय आदि के भेद को **(दव्वगुणपज्जयेहिं)** द्रव्य-गुण-पर्याय से **(जाणइ)** जानता है, वही **(सिवगइपहणायगो होदि)** शिवगति के मार्ग का नायक होता है।

भव्य बन्धुओ!

अन्तिम तीर्थेश भगवान् वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना, जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति। आचार्यप्रवर भगवान् कुन्दकुन्द स्वामी ग्रंथराज रयणसार जी में श्रमण और श्रावक उभय धर्मों की व्याख्या करते हुए समझा रहे हैं—परम-समरसी-भाव में लवलीन, चिद्पिण्ड, चैतन्य, ज्ञानघन, आनंदकंद में लीन, स्वसमयी योगी परसमय से निज को सुरक्षित किए है। देह को सुरक्षित कर पाना बहुत कठिन है। सुरक्षा के हेतु तो जुटा पाओगे, परन्तु देह को सुरक्षित रख नहीं पाओगे। देह को सुरक्षित तो नहीं रख सकते हो, लेकिन जब तक देह में देही है, उस देही को सुरक्षित आप कर सकते हो। आयुकर्म जब तक है, तब तक देह है। परन्तु जब तक इस शरीर में आत्मा है, आत्मा के परिणामों को सुरक्षित रख लिया तो दुर्गति से आत्मा की रक्षा हो सकेगी। शरीर को सुरक्षित रख पाना स्वाधीन नहीं है, परन्तु आत्मा के परिणामों को सुरक्षित रख लेना स्वाधीन है। शरीर को संभाल पाना कठिन ही नहीं, दुर्लभ है, जबकि परिणामों को संभालना सरल है।

असद् का कभी सद्भाव नहीं रहता। जो शरीर को सुरक्षित रखना चाहते हैं, वे गगन के पुष्प से अपने कण्ठ को सुशोभित करना चाहते हैं। यदि आकाश के पुष्पों से तेरे कण्ठ का हार नहीं बन सकता है, तो विश्वास रखना, इस देह को भी सुरक्षित नहीं रख पाओगे। भावों को सुरक्षित किया जा सकता है। यह भ्रम निकाल देना कि भावों को सुरक्षित नहीं किया जाता है। भावों को सुरक्षित नहीं किया जाता होता तो विश्व में भगवान् नाम की कोई सत्ता ही नहीं होती। जो प्रभुत्व सत्ता है, भगवत् सत्ता है, ब्रह्म सत्ता है, वह सब परिणामों की विशुद्धि की ही उपलब्धि है। परिणामों को सुरक्षित रखना बहुत सरल है, लेकिन पर्याय को सुरक्षित रखना तेरे हाथ में नहीं है। परिणामों को सुरक्षित रखना तेरे पुरुषार्थसाध्य है, परन्तु पर्याय को सुरक्षित रखना पुरुषार्थसाध्य भी नहीं है।

निकाल दो भ्रम को आज। जो यों कहता है कि महाराज! शरीर को संभालना तो हाथ में है, परन्तु मन को कैसे संभालूँ? अरे मुमुक्षु! शरीर संभालना तेरे हाथ में नहीं है, मन को संभालना तेरे हाथ में है। मैं जैसे परिणाम करना चाहूँ, वैसे कर सकता हूँ। वर्तमान की पर्याय को तू जैसा करना चाहे वैसा नहीं कर सकता है, लेकिन वर्तमान के परिणाम को तू जैसा करना चाहे वैसा कर सकता है और भविष्य की पर्याय तू जो चाहे वह प्राप्त कर सकता है। भविष्य की पर्याय वर्तमान के परिणामों पर आलंवित है। भविष्य की पर्याय वर्तमान की पर्याय पर आलंवित नहीं है। इसलिए वर्तमान की पर्याय को सजाने में समय नष्ट मत करो, वर्तमान के परिणामों को सुधारने में समय लगाओ। जिसे देख रहे हो, उसे क्या देखना? हर नई तस्वीर देखना तुझे पसंद है। कैमरेवाले से कहता है, भैया! अच्छी फोटो निकालना। अरे ज्ञानी! वह अच्छी निकालेगा कब? जब तू अच्छा होगा। जैसा तेरा शरीर होगा, वैसा ही तो चित्र निकलेगा। अरे मुमुक्षु! नामकर्म के हाथ में तेरा नामकर्म नहीं है, भावकर्म के हाथ में नामकर्म है। जैसा वर्तमान का भावकर्म होगा, वैसा अगली पर्याय के लिए नामकर्म का बन्ध होगा।

जिनशासन देहधर्म को नहीं जानता, देहीधर्म को जानता है। 139 नम्बर की जो गाथा है रयणसार जी में, वह समयसार की ही दूसरी गाथा है। "स्वसमय-परसमय"। पर को कितना समय दिया, पर में कितना समय लिया? स्वसमय को खो ही दिया। परम अद्वैत धारा है, निर्द्वन्द्व धारा है। जहाँ द्वैत है, वहाँ द्वन्द्व है। जहाँ कर्त्तव्य है, वहाँ संक्लेश है, कि संवाद है। सहज है कि जिसका जो विषय होता है, वह अपने विषय को छोड़ नहीं पाता है। कुन्दकुन्द स्वामी का विषय ही अद्वैत है। लिख रहे हैं श्रावकाचार, लेकिन चल रहा है समयसार। जो जिस धारा में बहता है, वह वहाँ का स्पर्श करता है। जीवन जीना बहुत सरल है, विशेषता से युक्त नहीं है। जीवन ऐसे जीना कि दूसरे आपके जीवन को जीते देखकर आप से जीना सीखें। शरीर की पहचान से अपनी पहचान कराना, यह तो चिड़िया या चींटी भी कर लेते हैं। जिनशासन में शरीर की पहचान को परमात्मा नहीं माना, गुणों की पहचान जिसकी होती है उसका नाम 'परमात्मा' होता है।

णयरम्मि वण्णिदे जह ण वि रण्णो वण्णणा कदा होदि।
देहगुणे थुव्वंते ण केवलिगुणा थुदा होंति॥30 स.सार॥

जैसे नगर का वर्णन हो जाने से सम्राट का वर्णन नहीं हो जाता, वैसे-ही देह का स्तवन कर लेने से भगवनात्मा का स्तवन नहीं हो जाता है।

"स्वसमय-परसमय"। जिसे तुम देख रहे हो, वह सब परसमय है। जिसे तुम सोच रहे हो, वह सब परसमय है। जो समयसार है, इसका अर्थ क्या है? जो वेदान्त अर्थ है, वह समयसार

अर्थ है। जो उपनिषद् है, वह समयसार अर्थ है। जो समयसार है, वह उपनिषद् है। वेदों में दिगम्बर मुनि को वात-रसायन कहा। जैसे वायु रिसती रहती है, ऐसे-ही श्रमण स्थिर नहीं रहते। कहीं रुकते नहीं हैं, रिसते रहते हैं। उप+निषद्। आत्मा के समीप बैठना, इसका नाम है उपनिषद्। आत्मा में अवस्थित कर दे, निज में उपस्थित कर दे, उस विद्या का नाम उपनिषद् विद्या है, यही विद्या अध्यात्म विद्या है। अधि+आत्म। 'अधि' यानि पास। आत्मा के पास जो स्थित करती है, उस विद्या का नाम है अध्यात्म विद्या। आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी, जिन्होंने समयसार का प्रारम्भ ही अनेकांत से किया है। वेदांत। अंत शब्द का अर्थ है 'धर्म'। 'विद्' धातु 'ज्ञान' अर्थ में है। निज आत्मा के धर्म का वेदन जिससे होता है, उसका नाम है वेदांत। वही है समयसार। 'सम' उपसर्ग है और उपसर्ग लगने पर धातु के अर्थ बदलते हैं। 'अय' धातु है, सम्+अय=समय। सम् यानि समान, एकीभूत; 'अय'=गतौ—गमन अर्थ, ज्ञान अर्थ। जो निज ज्ञान में समयीभूत कर दे, निज ज्ञान में लवलीन कर दे, निज ज्ञान में स्थिर कर दे, निज में जिसका रमण हो, निज में जिसका गमन हो, वह सार रत्नत्रय धर्म है। रत्नत्रय धर्म में जिसका गमन होता है, रत्नत्रय धर्म में लीन होता है जो जीव, वही है समयसार। न ग्रन्थ समयसार है, न व्यक्ति समयसार है। निज ध्रुव आत्मा की लीनता ही समयसार है। उस लीनता का वर्णन करने वाला जो ग्रन्थ है, उसका उपचार से नाम समयसार है। जो समयसार ग्रंथ है, वह द्रव्यश्रुत है। जो समयसार भाव है, वह भावश्रुत है। जिसको वेदांत कहेगा—शब्दब्रह्म है, आगम कहेगा कि यह द्रव्य-आगम है। जो भावश्रुत है, वही भावब्रह्म है। शब्दब्रह्म जो है, आत्मब्रह्म की लीनता का साधन है।

संसार में यदि दुःख का कोई मूल है, तो देह में आत्मबुद्धि। जो-जो देह का संस्कार कर रहे हैं, वे-वे उस समय एवंभूतनय से चर्मकार हैं। शिवगति का पथिक, शिवगति का नेता यदि कोई है, तो वह कौन है? कोटि-कोटि व्रत करो, कोटि-कोटि तप करो, कोटि-कोटि माला फेरो, इनसे स्वर्ग के साधन तो प्राप्त कर पाओगे, परन्तु ये शिवत्व के साधन नहीं हैं। जब तक निज ध्रुवात्मा को नहीं जानेगा, जब तक जाननहार को नहीं जाना, तब तक जगत् को जानने वाला कभी शिवत्व को प्राप्त नहीं हो सकता है। कैसे जानें उस आत्मा को? दुनियाँ को जानना बंद कर दो तो आत्मा जन जाएगी। मणि के ऊपर मिट्टी रखी हुई है, तो मणि को मत खोजो, मिट्टी को हटा दो। भगवानात्मा तो त्रैकालिक भगवानात्मा ही है। ये कर्म की मिट्टी हटा दो, और-कुछ मत करो, तो त्रैकालिक ध्रुव भगवान् है। जो मिट्टी को मणि समझ लेते हैं, वे संसार में प्रेम से घूम लेते हैं। जो मिट्टी में से मणि को देख लेते हैं, वे संसारातीत हो जाते हैं। मणि को मत खोजिए, मिट्टी को हटा दीजिए। चाहे हीरा हो, चाहे सोना-चांदी कोई भी धातु होती हो, मिट्टी

के भीतर छिपी होती है। जैसे मिट्टी से जड़ धातु को निकाल लेते हो। ऐसे-ही ज्ञानी! कर्म की मिट्टी हटा दो, चैतन्य धातु को निकाल लो, तो तेरी धातु त्रैकालिक है।

द्रव्य-गुण-पर्याय। एक ही समय में द्रव्य में द्रव्यत्व भी है, गुणत्व भी है, पर्यायत्व भी है। द्रव्य का जो परिणमन है, वही पर्याय है। द्रव्य का जो स्वभाव है, वही गुण है। तेरी आत्मा में ज्ञान-दर्शन है, यही गुण है। द्रव्य का, गुण का जो परिणमन है, वही पर्याय है। स्वसमय-परसमय के भेद से, यदि दर्शन-ज्ञान-चारित्र में स्थिरता है, तो स्वसमय है। ज्ञानी! दर्शन-ज्ञान-चारित्र से भिन्न पौद्गलिक पदार्थों में जो दृष्टि जा रही है, वह सब परसमय है। परसमय को निहारने की मुद्रायें अनन्त हैं, स्वसमय को निहारने की मुद्रा, तो देवाधिदेव मात्र की मुद्रा है। उत्तम पुरुष स्वात्मा की चिंता करते हैं और अधम पुरुष पर की चिन्ता करते हैं, इसलिए सब चिन्ता छोड़ दो और चिंतवन करो। यदि शिवगति का पथिक बनना है तो द्रव्य, गुण, पर्याय का चिंतवन करो, स्वसमय-परसमय का भेदविज्ञान करो।

"आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

॥ भगवान् महावीर स्वामी की जय ॥

❖ ❖ ❖

स्व-समय कौन? केवल परमात्मा

बहिरंतरप्पभेदं, परसमयं भण्णदे जिणिंदेहिं।
परमप्पा सगसमयं, तब्भेदं जाण गुणठाणे॥140॥

अन्वयार्थ—(जिणिंदेहिं) जिनेन्द्र भगवान् ने **(बहिरंतरप्पभेदं)** बहिरात्मा और अंतरात्मा इन भेदों को **(परसमयं)** परसमय **(भण्णदे)** कहा है **(परमप्पा)** परमात्मा **(सगसमयं)** स्वसमय है **(तब्भेदं)** उनके भेद **(गुणठाणे)** गुणस्थानों की अपेक्षा **(जाण)** जानो।

भव्य बन्धुओ!

अन्तिम तीर्थेश भगवान् वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना, जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति। आचार्यप्रवर भगवान् कुन्दकुन्द स्वामी ग्रंथराज रयणसार जी में श्रमण और श्रावक उभय धर्मों की व्याख्या करते हुए समझा रहे हैं। यदि निजतत्त्व में लीन होता है, तब परतत्त्व के प्रति किंचित् भी अपेक्षा नहीं रखता है। जिस समय श्रमण अपनी स्वानुभूति में लीन होता है, वही उसका स्वसमय है। रयणसार ग्रन्थ में अरिहंत-सिद्ध अवस्था को ही आचार्य महाराज स्वसमय कह रहे हैं। इसके पहले वे परसमय कह रहे हैं। गुणस्थान-सापेक्ष जब कथन करेंगे, तो मिथ्यादृष्टि परसमयी है। समय यानि 'आगम', समय यानि 'दर्शन'। जिसको परआगम पर आस्था है, कुश्रुत पर आस्था है, परमत पर आस्था है, वह परसमयी है और जिसको जिनशासन पर आस्था है, जिनदर्शन पर आस्था है, आगमग्रन्थों पर आस्था है, वह स्वसमयी है, परन्तु वे आगम सत्यार्थभूत होना चाहिए। आगम संज्ञा पर आस्था नहीं होना चाहिए।

जब एक कम्पनी प्रसिद्ध हो जाती है तो उसके नाम पर बहुत से काम ऐसे होने लगते हैं कि माल तो खोटा है, लेकिन कम्पनी के नाम पर चोखे के नाम से बिकता है। ऐसी ही अवस्था जगत् में सर्वत्र हुई है। यदि कम्पनी बहुत पुरानी भी हो, तब भी आपको कम्पनी के नाम से वस्तु नहीं खरीदनी चाहिए। अब विवेक आ चुका है, आपको वस्तु की पहचान भी जानना चाहिए। यदि वस्तु की पहचान नहीं जानते हो, तो कम्पनी के नाम से बहुत सारी वस्तुएँ ऐसी आ रही हैं जिन पर कम्पनी का लेबल तो होता है, परन्तु वस्तु वास्तविक नहीं है। यही धर्म में हुआ है। सबसे पहले 'आगम' शब्द का ही प्रयोग हुआ, लेकिन धीरे-धीरे आगम के नाम पर अनागम की चर्चाएँ प्रारम्भ हो गईं।

आज यहाँ किसी वक्ता को खड़ा कर दो, उसे मालूम नहीं है कि आगम की परिभाषा क्या है और कहता है कि मैं आगम से बोल रहा हूँ। जबकि जिस शब्द को तू बोल रहा है उस शब्द का आगम में कोई प्रयोग ही नहीं है। ज्ञाता को गम्भीर होना चाहिए। ज्ञाता गम्भीर ही होता है। जो ज्ञाता नहीं है, उसकी गम्भीरता पलायन कर जाती है। 'आगम' शब्द के प्रयोग के साथ जो खिलवाड़ हुआ है, उस पर ध्यान दो। ऐसा कौन-सा दर्शन है, कौन-सा सम्प्रदाय है? (मैं 'धर्म' नहीं बोलता हूँ। सभी वस्तुएँ धर्म नहीं हो जाती हैं)। यदि कोई जीव अभिनव सम्प्रदाय तैयार करके उसमें अहिंसा का ही प्रचार क्यों न करता हो, तब भी मैं उसको कुधर्म ही कहूँगा। क्योंकि अहिंसा आपके द्वारा स्थापित धर्म नहीं है, वह तो शाश्वत् अवस्था है। उसका जिनागम में कथन किया गया है। आप अलग से जो रूप दे रहे हो, वह कषाय की पुष्टि के लिए दे रहे हो। और कषाय धर्म नहीं होता है, कषाय अधर्म ही होता है। यह विभाव-भाव है। यदि कोई विभाव-भाव को धर्म के रूप में स्वीकारता है, तो उसे स्वीकारने दो, परन्तु यह विभावधर्म है, यह स्वभावधर्म नहीं है। स्वभावधर्म जो होता है, उसके नाम पर किसी सम्प्रदाय का जन्म होता ही नहीं है। अभिनव सम्प्रदाय को जन्म देना, यह ध्रुव सत्य है कि वे अधर्मी लोग हैं। जो-जो सम्प्रदाय बनायेंगे, वे सब अधर्मी लोग हैं। जो-जो नए पंथ बना रहे हैं, बना चुके हैं, वे सब अधर्मी लोग हैं। पानी शीतल है, इसके लिए सम्प्रदाय की क्या आवश्यकता? अग्नि ऊष्ण है, इसके लिए सम्प्रदाय की क्या आवश्यकता? जीव ज्ञान-दर्शन स्वभावी है, इसके लिए सम्प्रदाय की क्या आवश्यकता? मालूम, लोग घबराने क्यों लगते हैं? सत्य स्पष्ट होने लगता है तो असत्य को घबराना ही पड़ता है। अब असत्य को कैसे छुपायें? तो सत्य कहनेवाले को पकड़ना शुरू कर दो, उसकी आलोचना करो। कितनी ही आलोचना करो, लोचन साफ हैं और लोचन साफ तो आलोचन से ही होते हैं।

'आगम' शब्द सुनकर प्रभावित मत हो जाना। क्योंकि आजकल ऐसा समय चल रहा है, मन की कोई भी बात पुस्तक में छाप दी और जब छपकर आ जाती है तो आप 'जिनवाणी' संज्ञा दे देते हो, 'आगम' बोलने लगते हो। परन्तु मूल आगम से विपरीत कथन जिसने लिख दिया, तो उससे बड़ा हत्यारा जगत् में कोई दूसरा नहीं होगा। क्यों? क्योंकि बच्चों की श्रद्धा विपरीत मार्ग में लगा रहे हैं। पुण्य की तीव्रता में आगम के विरुद्ध रचना कर सकते हो, परन्तु भविष्य की अशुभ पर्याय तुम्हारा इंतजार कर रही है। पूर्व पुण्य की सत्ता में आप आगम के विरुद्ध बोल सकते हो। लोग आपको सुनने भी आयेंगे। वे ही आयेंगे जिनकी दुर्गति सुनिश्चित हो चुकी है। ज्ञानियो! आगमविरुद्ध बोलने वाले के लिए भविष्य की अशुभ पर्याय मुख खोले बैठी हुई है। 'आगम' शब्द पर ध्यान दो, 'परमागम' शब्द पर ध्यान दो। आगम, वेद, पुराण,

परमागम यह सारे शब्दों का प्रयोग अन्य लोगों ने भी किया है। इसलिए 'आगम' शब्द मुझे प्रमाण नहीं है।

आगमप्रमाण देने के पूर्व, प्रमाण की प्रामाणिकता लाइए आप। कम्पनी तो प्रमाणित हो चुकी, परन्तु कम्पनी की वस्तु सत्य है या नहीं, इसकी प्रामाणिकता क्या है? प्रमाण की प्रामाणिकता। हमारे आगम में देव-शास्त्र-गुरु की परीक्षा के लिए भी कथन है। जिस पर मैं श्रद्धा करने जा रहा हूँ, जिसे मैं प्रमाण मानता हूँ, उनकी प्रामाणिकता क्या है? 'देव' नाम से हमारे यहाँ किसी की पूजा नहीं है। 'शास्त्र' नाम से, 'गुरु' नाम से हमारे यहाँ किसी की पूजा नहीं है। गुरु शब्द और भगवान् शब्द इतना महान् है कि हर व्यक्ति बिना गुरुता लाए गुरु बनना चाहता है और बिना भगवत्ता लाए भगवान् बनना चाहता है, क्योंकि बड़ा मधुर शब्द है। तब फिर प्रमाण की प्रामाणिकता की आवश्यकता पड़ गई। भीड़ कुछ समय तक ही पुज पाती है, परन्तु सत्य अपने आप छनकर सामने आ जाता है। वे दिन गए जब नाम पर किसी की भी पूजा होती थी। अब इंसान इतना ज्ञानी हो चुका है कि भगवान् की भी परीक्षा करता है।

आप लोगों से मेरा कहना है कि भगवान् की प्रतिमा जयपुर से लेकर आओ, उनकी प्रतिष्ठा कराओ, पूजा करो, बड़ी अच्छी बात है, लेकिन जमीन में गाड़कर, फिर निकालकर, चमत्कार की बात मत करना। झूठे चमत्कारों से जो हँसी होती है धर्म की, वह कोई दूसरा नहीं करवाता, आप ही करवाते हो। आपको धर्म की प्रभावना करना हो, तो दर्शन-ज्ञान-चारित्र से करो, दान-पूजा से करो, विद्या से करो। ज्ञानियो! अतिशय का बोध न हो तो अतिशय मत दिखाना। झूठे चमत्कारों से जगत् की वंचना मत करो। जब जगत् को सत्यता का बोध होगा, तो दुनियाँ आपसे नफरत करेगी। यदि नहीं है आपके पास चमत्कार, नहीं है कोई ज्ञान, तो अपनी मौनसाधना करो, कुछ करने की आवश्यकता नहीं। यश:कीर्ति से प्रसिद्धि होती है, मायाचारी से प्रसिद्धि नहीं होती है। जैसे—तुम गुड़ या घी को स्वाद लेकर खरीदते हो, ऐसे-ही वंदनीय की वंदना उनकी वंदनीयता को देखकर करना। इसलिए आचार्य महाराज कह रहे हैं—आगम प्रमाण नहीं है। आगम प्रकट कहाँ से हुआ है? उस आप्त की खोज करना चाहिए। आप्त के वचन आगम हैं। वे आप्त प्रमाण हैं, इसलिए उनका आगम भी प्रमाण है। जो आप्त ही प्रमाण नहीं है, तो उसका आगम भी प्रमाण नहीं है। वक्ता प्रमाणित है, तो वचन प्रमाणित हैं और वक्ता प्रमाणित नहीं है, तो वचन प्रमाणित नहीं हैं। आप्त की सिद्धि हो जाएगी, तो आगम की सिद्धि हो जाएगी। आप्त की सिद्धि नहीं है, तो आगम की भी सिद्धि नहीं है। पहले आगम की प्रमाणिकता नहीं खोजनी पड़ती थी। जब सारे झूठे लोगों

ने अपने आप को देव कहना प्रारम्भ कर दिया, गुरु कहना प्रारम्भ कर दिया, तब प्रामाणिकता की आवश्यकता पड़ी।

आप्तेनोच्छिन्न दोषेण, सर्वज्ञेनागमेशिना।
भवितव्यं नियोगेन नान्यथा ह्याप्तता भवेत्॥5 र.क.श्रा.॥

जो आप्त के द्वारा निबन्धित वचन हैं, वही आगम है। जो आप्त के वचन नहीं हैं, वह आगम नहीं है। आप्त वही है, जो अठारह दोषों से रहित है। गुरु वही है, जो रत्नत्रय से मण्डित है, आरम्भ-परिग्रह से रहित है, विषय-कषाय से रहित है, ज्ञान-ध्यान-तप में लीन है।

विजित-मदनकेतुं-निर्मलं निर्विकारं, रहित-सकलसङ्गं संयमासक्त चित्तम्।
सुनयनिपुणभावं ज्ञाततत्त्वप्रपञ्चं, जननमरणभीतं सद्गुरुं नौमि नित्यम्॥आचार्य भक्ति॥

नित्य ही सद्गुरु को नमस्कार करता हूँ। पर वह मेरा सद्गुरु कैसा है? जो विषय-कषाय आरम्भ-परिग्रह से रहित है, ज्ञान-ध्यान-तप में लीन है और दिगम्बर मुद्रा से युक्त है, पिच्छि-कमण्डलु से युक्त है, उसका नाम सद्गुरु है। विश्व का हर कोना चारित्र की पूजा करता है। किसी पुरुष के चक्कर में निज पुरुष को खो मत देना। अंतरात्मा बनो, परमात्मा बनना है, तो अंतरात्मा बने बिना परमात्मा नहीं बन सकते हो।

प्रमाण के नाम पर मत जीना, प्रमाण की प्रामाणिकता खोजना। जब अज्ञानी जीवों ने अपने वचनों को आगम कहना प्रारम्भ कर दिया, फिर आचार्यों को परिभाषा बनाना पड़ गई।

कापथे पथि दुःखानां, कापथस्थेऽप्यसम्मतिः।
असम्पृक्तिरनुत्कीर्तिरमूढ़ा-दृष्टिरुच्यते ॥14 र.क.श्रा.॥

जो खोटा पथ है, दुःख का कारण है, ऐसे पथ पर मत चले जाना। तो फिर क्या है? आगम।

आप्तोपज्ञ मनुल्लंघ्य, मदृष्टेष्ट विरोधकम्।
तत्त्वोपदेशकृत्सार्वं, शास्त्रं कापथघट्टनम् ॥9 र.क.श्रा.॥

यह आचार्य समंतभद्र स्वामी की गर्जना है। जो आप्त के द्वारा कहा हुआ हो, अनुलंघनीय हो, प्रत्यक्ष-परोक्ष विरोध से रहित हो और खोटे पथ का खण्डन करने वाला हो, उसका नाम आगम है, वही परमागम है। जिसमें वीतराग शासन के विरुद्ध बातें लिखी हों, उसे हम परमागम कैसे कह दें? इसलिए ध्यान रखना, कलम लेकर लिखना प्रारम्भ कर मत देना जीवन में, जब तक मूल तत्त्व का ज्ञान न हो।

अंतरात्मा, बहिरात्मा दो भेद भगवान् जिनेन्द्रदेव ने कहे हैं। इन्हें भगवान् जिनेन्द्रदेव ने परसमयी कहा है और जो परमात्मा है, वह स्वसमय है। उनके भेदों को जानो गुणस्थान क्रम से।

"**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।**" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

॥ भगवान् महावीर स्वामी की जय ॥

❖ ❖ ❖

गुणस्थानों की अपेक्षा आत्मा का वर्गीकरण

मिस्सो त्ति बाहिरप्पा, तरतमया तुरियं अंतरप्प-जहण्णो।
संतो त्ति मज्झिमंतर खीणुत्तम परम जिणसिद्धा॥141॥

अन्वयार्थ—(मिस्सो) प्रथम, द्वितीय और तृतीय गुणस्थान वाले **(त्ति)** ये **(बाहिरप्पा)** बहिरात्मा हैं **(तरतमया)** तरतमता से **(तुरियं)** चतुर्थ गुणस्थानवर्ती **(जहण्णो)** जघन्य **(अंतरप्प)** अन्तरात्मा हैं **(संतो त्ति)** पाँचवें से उपशांत मोह यानि ग्यारहवें गुणस्थान तक **(मज्झिमंतर)** मध्यम अन्तरात्मा हैं, **(खीणुत्तम)** क्षीण मोह यानि बारहवें गुणस्थान वाले उत्तम अंतरात्मा हैं **(परमजिणसिद्धा)** जिन यानि तेरहवें व चौदहवें गुणस्थानवर्ती और सिद्ध, ये दोनों परमात्मा हैं।

भव्य बन्धुओ!

अन्तिम तीर्थेश भगवान् वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना, जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति। आचार्यप्रवर भगवान् कुन्दकुन्द स्वामी ग्रंथराज रयणसार जी में श्रमण और श्रावक उभय धर्मों की व्याख्या करते हुए अंतरात्मा व बहिरात्मा दोनों को परसमयी कह रहे हैं और परमात्मा को स्वसमयी कह रहे हैं। इसमें भेद क्या है? जो परभाव में लवलीन है, देहादि द्रव्यों को आत्मभूत मानता है, वह तो बहिरात्मा ही है। ज्ञानी! बहिरात्मपने को समझने के लिए भी आगमज्ञान चाहिए और अंतरात्मा को समझने के लिए भी आगम ज्ञान चाहिए। ज्ञानियो! नयविवक्षा को जाने बिना, आँखों-देखे द्रव्य को शीघ्र ही निर्णय कर देना कि यह तो बहिरात्मा है, वह अंतरात्मा है, यह आपका विवेकहीन समाधान है।

एक क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव अपने राज्य को अपना कहता है, अपने भवन को अपना कहता है, बेटे को बेटा कहता है। पर को अपना कहना, यह बहिरात्म भाव है। जब क्षायिक सम्यग्दृष्टि पर को अपना कहता है, तो वह भी बहिरात्मा हो जाएगा। इसलिए नय का ज्ञान होना अनिवार्य है। मिथ्यादृष्टि जीव का ज्ञान, सम्यग्दृष्टि जीव का ज्ञान बहिर्द्रव्यों में सादृश्य होता है। यदि घड़ी में दस बजे हैं तो दोनों ही उसे दस ही बोलेंगे। यदि मिथ्यादृष्टि जीव का प्रत्येक भाषण मिथ्या हो गया, तो लोक-व्यवस्था ही भंग हो जाएगी। आप भगवान् की प्रतिमा बनवाने जाते हो जयपुर। जो प्रतिमा बना रहे हैं, क्या वह सम्यग्दृष्टि जीव हैं? ज्ञानी! सम्यग्दृष्टि नहीं हैं, मिथ्यादृष्टि हैं। उनमें अभक्ष्य खाने वाले लोग भी मिल जायेंगे, परन्तु बिल्कुल नाप-तोल कर समचतुरस्र संस्थान प्रतिमा बना रहे हैं। बहिरात्मा-अंतरात्मा की पहचान शब्दों से नहीं कर सकते हो, बाहर

के ज्ञान से नहीं कर सकते हो। जो शीघ्र ही प्रमाणपत्र दे देते हैं कि ये मिथ्यादृष्टि है और ये सम्यग्दृष्टि है, यह तुम्हारे ज्ञान का विषय नहीं है। बहिरात्मा भी वस्तु को ही कहता है और अंतरात्मा भी वस्तु को ही कहता है। अवस्तु का कथन तो दोनों ही नहीं करते हैं। जो भी कथन होता है, वह वस्तु का होता है। मिथ्यादृष्टि भी अपने घर को अपना घर बोलता है, सम्यग्दृष्टि भी अपने घर को अपना घर बोलता है। इसलिए—

"देह जीव को एक गिने, बहिरातम तत्त्व मुधा है।"

अपनी देह को अपनी मानता है मिथ्यादृष्टि जीव, तो सम्यग्दृष्टि जीव भी अपनी देह को अपनी बोलता है। कहीं सम्यग्दर्शन के नाम पर मिथ्यात्व में नहीं डूब जाओ, इसलिए इसको स्पष्ट कर रहा हूँ। बहुत सारे लोग सम्यक्त्व के नाम पर मिथ्यात्व में जा रहे हैं। यदि किसी से पूछो—मिथ्यादृष्टि देव का लक्षण क्या है? 'छहढाला' की पंक्तियों में जो कथन है, वह सब आगमभूत मत समझ लेना, वह एकदेश कथन है। जिसके हाथ में गदादि चिह्न हैं, अस्त्र-शस्त्र हैं, वे कौन से देव हैं? जितना आपके मस्तिष्क को भ्रमित किया है, मिथ्यात्व में पटका है, यह विद्वानों ने पटका है। आगम का तो विवेक ही नहीं आया। आत्मभूत लक्षण—अनात्मभूत लक्षण। सम्यग्दर्शन जीव का आत्मभूत गुण है कि अनात्मभूत गुण है? अग्नि में उष्णता भरी गई है, कि है? किसी को ठण्ड लग रही थी, आप हाथ गर्म करके आए, उसको लगा दिए, यह आत्मभूत है कि अनात्मभूत है? यह अनात्मभूत है। सम्यग्दर्शन आत्मा का गुण है कि शंख, गदादि चिह्न का गुण है? सम्यग्दर्शन आत्मा की परिणति है, कि अस्त्र-शस्त्र की परिणति है? आत्मा की परिणति है। आश्चर्य लगता है, कि प्रवचनकार बनकर आ गए और आगम का ज्ञान किया नहीं। पण्डिताई को छोड़ो, पहले किसी गुरु के पास बैठकर अध्ययन करो। अधूरा ज्ञानी होने की अपेक्षा अज्ञानी होकर रहना श्रेष्ठ है। कम-से-कम इतना ज्ञान तो है कि मुझे कुछ भी ज्ञान नहीं है। तो वह निर्णय नहीं लेगा। परन्तु जो अधूरा ज्ञानी बनकर आ गया है, वह निर्णय करने बैठ जाएगा। वह धर्म का, समाज का जो घात करेगा, उससे बड़ा कोई शत्रु नहीं होगा।

मिथ्यात्व का लक्षण अस्त्र-शस्त्र नहीं है। 'तत्त्वार्थ सूत्र' के चौथे अध्याय का प्रथम सूत्र है—

"देवाश्चतुर्णिकायाः"

चार निकाय के देव होते हैं। चार निकाय के जो देव हैं, वे सभी मिथ्यादृष्टि नहीं होते हैं। आपने सभी को मिथ्यादृष्टि घोषित किया है, आप किस ज्ञान से बोल रहे हो? क्या आप केवली हो, अवधिज्ञानी हो? यदि आप सबको मिथ्यादृष्टि बोलते हो, तो आपके पास तो श्रुतज्ञान भी नहीं है,

आप तो मिथ्याज्ञानी ही हो। भवंत्रिक देव जन्म से मिथ्यादृष्टि होते हैं, परन्तु अन्तर्मुहूर्त के बाद सम्यक्त्व की योग्यता रखते हैं। जो कल्पवासी देव होते हैं, वे सभी मिथ्यादृष्टि नहीं होते हैं, उनमें सम्यग्दृष्टि भी होते हैं।

आत्मभूत-अनात्मभूत लक्षण पहले समझाना। जो तादात्म्य सम्बन्ध रहित हैं, अविनाभाव सम्बन्ध रहित है, वह अनात्मभूत लक्षण है। जैसे क्षमाशील पुरुष, यह कथन आत्मभूत है। सम्यग्दर्शन जो है, वह आत्मा में प्रकट होता है। 'छहढाला' के साथ कैसा विपर्यास चल रहा है लोगों का? ज्ञानियो! क्षायिक सम्यग्दृष्टि चक्रवर्ती, उसके हाथ में चक्र रत्न था। यदि शंख, गदा, हल आदि से मिथ्यात्व की पहचान करते हो आप, तो चक्रवर्ती के हाथ में चक्ररत्न होता है, तो मिथ्यादृष्टि हो गया क्या? नहीं हुआ। यह जितने अल्पज्ञ लोग हैं, जो विपरीत बोल रहे हैं, क्लास लगाओ इनकी, अन्यथा बेचारे सब-के-सब मिथ्यात्व में चले जायेंगे। नाम बना रह जाएगा और दुर्गति हो जाएगी। मैं बड़ी करुणा-दया से बोल रहा हूँ कि मेरे देखते-देखते इतने सारे जीव धर्म के भेष में मिथ्यात्व में डूब जाएँ, क्योंकि व्याख्या विपरीत हो रही है। क्षायिक सम्यग्दृष्टि के हाथ में चक्ररत्न होता है कि नहीं? और यदि अपना ही मित्र हाथ में लाठी लेकर चल दे, तो क्या वह उसी क्षण मिथ्यादृष्टि हो जाएगा? ज्ञानी तीर्थंकर के पंचकल्याणक में प्रतिष्ठाचार्य शंख फूंकते हैं, तो क्या वह मिथ्यादृष्टि हो जायेंगे? तर्क की कसौटी पर कसिये आप। बलभद्र के हाथ में तो हल रहता है। श्रीराम के पास हल रहता है कि नहीं? था। धनुष-बाण भी था। क्षत्रिय थे, योद्धा थे, लेकिन सम्यग्दृष्टि थे कि नहीं? थे। जो शंखादि चिह्नों से युक्त जीवों को मिथ्यादृष्टि घोषित कर रहे हैं उनसे कहना है कि आप समाज को भ्रमित मत कीजिए, आप वास्तविक उपदेश दीजिए। मिथ्यादृष्टि जीव उन चिह्नों से युक्त हो सकता है, लेकिन इन चिह्नों से युक्त होने पर सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि हो जाए, यह नियम नहीं है। आपके घर में भी लाठी रखी मिल जाएगी, तो जिसके घर में अस्त्र-शस्त्र रखा है वह मिथ्यादृष्टि हो जाएगा क्या? भो ज्ञानी! संकल्पी हिंसा का त्यागी होता है सम्यग्दृष्टि, लेकिन विरोधी, आरम्भी, उद्योगी हिंसा का त्यागी नहीं होता है सम्यग्दृष्टि? जिनशासन की रक्षा के भाव रखेगा कि नहीं सम्यग्दृष्टि? श्रावक के विषय को श्रावक तक उपदेश करो। अंतरात्मा को अपना बेटा, 'बेटा' दिखता है कि नहीं? और बहिरात्मा को बेटा 'बेटा' दिखता है कि नहीं? सम्यग्दृष्टि परवस्तु को अपना मानता है क्या? स्यात् हाँ तो सम्यग्दृष्टि बचा क्या? ज्ञानी! बड़ी अव्यवस्था खड़ी हो जाएगी। सम्यग्दृष्टि जीव और मिथ्यादृष्टि जीव। अन्तरात्मा और बहिरात्मा। ज्ञानी! यहाँ तो परसमय कह रहे हैं अन्तरात्मा को भी; उसका स्पष्टीकरण करना है। यहाँ पर स्वसमय केवल परमात्मा को कह रहे हैं, लेकिन यह एकांकी विषय नहीं है, अनेकांत से है।

इसीलिए आगम का ज्ञान होना चाहिए। पर को अपना कहना बहिरात्मा का लक्षण है। हे ज्ञानी! स्यात् शब्द का प्रयोग कीजिए। ध्यान दो, तीर्थंकर ऋषभदेव का जन्म अवधपुरी में हुआ। उनके माता-पिता थे। ऋषभदेव की संतानें भी थीं। ऐसा नहीं है कि वे उन्हें नहीं मानते थे। एक-दो नहीं, जिनके सौ बेटे हों, वे तीर्थंकर अन्तरात्मा थे कि बहिरात्मा थे? इसलिए स्वाध्याय करने वालों की बात सीधे-सीधे मत मान लेना। वे तीर्थंकर परमेश्वर बहिरात्मा नहीं थे, अन्तरात्मा ही थे और निश्चित परमात्मा बनने वाले थे। बिना भोग भोगे इतनी संतानें कहाँ से आ गयीं? तीन तीर्थंकर (शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरहनाथ) तीन-तीन पदवी (तीर्थंकर, चक्रवर्ती, कामदेव) के धारी, जो छियानवे हजार रानियों का स्वामित्व करते हों, अठारह करोड़ घोड़े, चौरासी लाख हाथी, छः खण्ड का स्वामित्व और फिर भी बहिरात्मा नहीं थे, अंतरात्मा ही थे। तीर्थंकर जैसी आत्मा चक्रवर्ती पद को संभाल रही थी, तो उस समय उनके हाथ में चक्ररत्न था कि नहीं?

सात प्रकृतियों का क्षय—क्षयोपशम जिसका होता है, उसका नाम सम्यग्दृष्टि होता है और सात प्रकृतियों का क्षय-क्षयोपशम जिसका नहीं है, वह मिथ्यादृष्टि होता है। इन द्रव्यों से युक्त कोई सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि नहीं होता है, यह तो बहिरंग लक्षण है। और सम्यग्दर्शन तो श्रद्धा गुण है। किसी व्यक्ति को अस्त्र लिए दिखने पर तुम उसे मिथ्यादृष्टि घोषित मत कर देना। छहढालाकार जहाँ "गदादि चिह्नों से युक्त" लिख रहे हैं, वह मिथ्यादृष्टि कुदेवों की व्याख्या है। यहाँ तक कि जैनशासन के देवी-देवता भी उसमें नहीं आये। श्रद्धा को दृढ़ करो, जीवन में कुदेव-कुशास्त्र-कुगुरु की सेवा नहीं करना और चार निकाय के देवों पर अश्रद्धान् नहीं करना। जो वस्तु जैसी है, उसे वैसा स्वीकार करो। यह पूजा करने की व्याख्या नहीं चल रही है। यह अंतरात्मा-बहिरात्मा की व्याख्या चल रही है। चक्रवर्ती अपने भवन को अपना भवन कहता है, तीर्थंकर बालक भी अपने भवन को अपना ही बोलते हैं। तो महाराज! परवस्तु को अपना कहना बहिरात्म भाव है, यह कैसे घटित होगा? सुनिए—

स्वजातीय, विजातीय, असद्भूत-व्यवहार नय। उपचरित-अनुपचरित, यह व्यवहार नय के भेद हैं। स्वजातीय उपचरित असद्भूत व्यवहार नय, (1)उपचरित असद्भूत व्यवहार नय, (2) विजातीय असद्भूत व्यवहार नय, (3) स्वजातीय-विजातीय असद्भूत व्यवहार नय।

स्वजातीय उपचरित असद्भूत व्यवहार नय से स्त्री-पुत्र शिष्यादि मेरे हैं, ऐसा कहना मिथ्यात्व नहीं है।

विजातीय उपचरित असद्भूत व्यवहार नय से मकान, दुकान, वस्त्रादि को अपना कहना मिथ्यात्व नहीं है। नय लगाना पड़ेगा।

स्वजातीय-विजातीय उपचरित असद्भूत व्यवहार नय से स्वर्णादि से युक्त आपका पुत्रादि आपका है ऐसा कहना मिथ्यात्व नहीं है। स्वजातीय क्यों? क्योंकि वह जीवद्रव्य है। विजातीय क्यों? क्योंकि उसके जो वस्त्रादि आभूषण हैं, वे जीव नहीं हैं। ये सब व्यवहारनय से मेरे हैं। परन्तु सम्यग्दृष्टि जीव इनको अपना नहीं मानता है। और मिथ्यादृष्टि जीव स्वभाव-विभाव का भेद ही नहीं जानता है इसलिए मिथ्यादृष्टि है। पूरी कथा यह है। 'आलाप पद्धति' का अध्ययन करना पड़ता है, नयचक्र को समझना पड़ता है। क्योंकि जो प्रवचन आप सुन रहे हो, ये सास-बहू की बातें नहीं चल रही हैं। यह तो स्वभाव की व्याख्या चल रही है।

यदि शरीरादि को अपना नहीं मानता है, तो अहिंसा धर्म का लोप होता है। ज्ञानी! जीव का मल होता है क्या? जीव का कोई मल नहीं होता है। जब जीव का मल नहीं होता है तो फिर विसर्जन की क्या आवश्यकता? क्योंकि जीव भिन्न है, शरीर का मल भिन्न है। हे ज्ञानी! स्वभाव दृष्टि से देह मेरा धर्म नहीं है, लेकिन संश्लेष सम्बन्ध कर्म का है। एकेन्द्रिय, दो-इन्द्रिय आदि जो जीव हैं, यदि उन पर दया ही नहीं करेगा, तो अहिंसा धर्म का लोप हो जाएगा। द्रव्यप्राणों का जो वियोग है, वही जीव का वध है। चैतन्य को चैतन्य स्वीकारना, मिश्र को मिश्र स्वीकारना, अमिश्र को अमिश्र स्वीकारना, यह अंतरात्मा का धर्म है। इनमें अनर्थ मत कर देना। जो भी रक्षा की जा रही है, जो भी अणुव्रतों का पालन हो रहा है, वह मिश्र की रक्षा के लिए है; अमिश्र की तो कोई रक्षा ही नहीं है। अमिश्र का घात ही नहीं है। योगियों को, त्यागियों को संभलकर तत्त्व को समझना पड़ेगा।

जीव प्रथम गुणस्थान से तृतीय गुणस्थान तक तो नियम से बहिरात्मा ही होता है। चतुर्थ गुणस्थान से लेकर (अलग-अलग आचार्यों की व्याख्या) कहीं चतुर्थ गुणस्थान को जघन्य अंतरात्मा, पंचम गुणस्थान को मध्यम अंतरात्मा, और छठवें से बारहवें तक अंतरात्मा।

अन्य आचार्य की व्याख्या से चतुर्थ से छठवें गुणस्थान तक जघन्य अंतरात्मा, बारहवें में उत्तम अंतरात्मा और इसके बीच में मध्यम अंतरात्मा। तीनों शिवमगचारी हैं, परन्तु तीनों के मोक्षमार्ग में अन्तर है। तारतम्यता है। गुणस्थान एक होने पर भी एक गुणस्थान में अनेक जीव हैं, परन्तु सबके परिणाम एकसे नहीं होते हैं। इसलिए आचार्य-भगवान् कह रहे हैं—मिथ्यादृष्टि जीव परसमयी है। सम्यग्दृष्टि जीव सम्यक्त्व को प्राप्त हुआ है। मिथ्यात्व की अपेक्षा से स्वसमय है, परन्तु संयमी की अपेक्षा से सम्यग्दृष्टि परसमय में है। जो चारित्रवान है, वह स्वसमय में है।

छठवें गुणस्थान तक सराग अवस्था है। पंचपरमेष्ठी की आराधना चल रही है, व्यवहार संयम का पालन हो रहा है, इस दृष्टि से परसमय है। सप्तम गुणस्थान के योगी शुद्धोपयोग में लीन हैं इस दृष्टि से स्वसमय है। परन्तु दसवें गुणस्थान तक कषाय है, वह मेरा निज स्वभाव नहीं है, इस अपेक्षा से दसवें गुणस्थान तक का जीव परसमय में है। ग्यारहवें गुणस्थान से स्वसमय, परन्तु ग्यारहवाँ-बारहवाँ गुणस्थान भी छद्मस्थ का है, छद्मस्थ दृष्टि से वह परसमय है और केवली भगवान् स्वसमय हैं। दर्शन-ज्ञान-चारित्र की लीनता समयसार की अपेक्षा स्वसमय है और मिथ्यात्व, अज्ञान, असंयम में बैठा जीव परसमय है। परन्तु यहाँ आचार्य महाराज कह रहे हैं—दर्शनलाभ के फल को प्राप्त हो चुका है, वह कार्यसमयसारभूत है, वही स्वसमय है, बाकी सब परसमय है। यह अपेक्षाकृत कथन है।

ध्यान रखना, चार निकाय के देव सम्यग्दृष्टि भी होते हैं, मिथ्यादृष्टि भी होते हैं। परन्तु इन देवों को हमारे जिनागम में परमेष्ठी के रूप में किंचित् भी स्वीकार नहीं किया है। पूज्यता का व्यवहार देवाधिदेव के लिए है, निर्ग्रंथ गुरु, वीतरागवाणी के लिए है। परन्तु इन तीनों के राग में आकरके वस्तुस्वभाव का विवेक मत खो देना। सम्यक्त्व की व्याख्या में भी मिथ्यात्व में प्रवेश न हो जाए। श्री जिनेन्द्रदेव को जिनेन्द्रदेव ही स्वीकारना। तीर्थंकर परमात्मा से भीख मांगने नहीं जाना। एक तरफ उन्हें वीतरागी देव कहते हो, दूसरे ओर उनसे शनि ग्रह उतरवाते हो। भगवान् में भेद मत करो। ऐसे कोई तीर्थंकर नहीं जिनकी पूजा से तुम्हारे कर्मों का क्षय न हो। गुरु में भेद मत करो, वीतरागी जिनेन्द्रवाणी में भेद मत करो।

मिथ्यादृष्टि जीव परवस्तु को आत्मभूत मान रहा है, इसलिए मिथ्यादृष्टि का ज्ञान मिथ्या है। जीवादि सात तत्त्वों पर विपरीत श्रद्धान कर रहा है, इसलिए मिथ्या दृष्टि है, परन्तु संसार के विषयों में तो एकसा बोलता है। रोटी को वह भी रोटी कहता है, आप भी रोटी कहते हो। इसमें सम्यक् या मिथ्यात्व नहीं है।

"तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्"

जो तत्त्वार्थ पर श्रद्धान् है, उसका नाम सम्यक्त्व है। तत्त्वार्थ पर विपरीत श्रद्धान् कर रहा है, इसलिए मिथ्यात्व है।

रयणसार जी की यह गाथा बहुत प्रसिद्ध गाथा है। जब-जब बहिरात्मा-अंतरात्मा की व्याख्या होती है, तो इस गाथा का उल्लेख जरूर किया जाता है। प्रथम गुणस्थान से तृतीय गुणस्थान पर्यंत तारतम्य से जीव बहिरात्मा है, यानि बहिरात्मपने में भी अंतर है। सभी बहिरात्माओं के परिणाम एकसे नहीं होते हैं। एक समय था जब लोग अनाज तोलते थे तो पहले तोल को

एक नहीं बोलते थे, रामा बोलते थे और चौथे तोल को तुरिया बोलते थे। तुरिया यानि 'चार'। चतुर्थ गुणस्थान जघन्य अंतरात्मा है, पाँचवें से ग्यारहवें गुणस्थान तक मध्यम अंतरात्मा है रयणसार की अपेक्षा से। क्षीणकषाय बारहवाँ गुणस्थान जो है, वह उत्तम अन्तरात्मा हैं, और सयोगकेवली, अयोगकेवली और सिद्ध भगवान्, ये परमात्मा हैं। परमात्मा के दो भेद हैं—सकल परमात्मा, निकल परमात्मा।

तेरहवें, चौदहवें गुणस्थान में सकल परमात्मा हैं। सिद्धभगवान् निकल परमात्मा हैं, जो समस्त कर्मों से रहित हो चुके हैं। इसलिए मुमुक्षुओ! बहिरात्मपने को छोड़ो, अन्तरात्मा बनो और परमात्मा की प्राप्ति का लक्ष्य बनाओ।

"आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्"। आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

॥ भगवान् महावीर स्वामी की जय ॥

❖ ❖ ❖

दोषों के त्याग से मुक्ति

मूढ़त्तय सल्लत्तय, दोसत्तय दंडगारवत्तयेहि।
परिमुक्को जोई सो, सिवगदिपहणायगो होदि ॥142॥

अन्वयार्थ—जो **(जोई)** योगी **(मूढ़त्तय)** तीन मूढ़ताओं **(सल्लत्तय)** तीन शल्यों **(दोसत्तय)** तीन दोषों **(दंड गारवत्तयेहि)** तीन दण्डों और तीन गारवों से **(परिमुक्को)** परिमुक्त यानि रहित होता है **(सो)** वह **(सिवगइपहणायगो)** शिवगति के मार्ग का नायक **(होइ)** होता है।

भव्य बन्धुओ!

अन्तिम तीर्थेश भगवान् वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना, जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति। आचार्यप्रवर भगवान् कुन्दकुन्द स्वामी ग्रंथराज रयणसार जी में श्रमण और श्रावक उभय धर्मों की व्याख्या करते हुए समझा रहे हैं—बहिरात्मपने का परित्याग करके, अंतरात्मपने को जो प्राप्त हुआ है वही जीव निज पुरुषार्थ करके परमात्म पद को प्राप्त होता है। परमात्मपद की जो दशा है वही स्वसमय की दशा है। जगत् में जितनी क्रिया हैं, जितने अनुष्ठान हैं, इन सबका लक्ष्य परमात्म पद है। जिस अनुष्ठान में स्वात्मोपलब्धि सिद्धि का ही अभाव है तो वह क्रिया मात्र पुण्यवर्धिनी तो हो सकती है, लेकिन संसारतारिणी नहीं हो सकती है। पुण्यवर्धिनी क्रियाएँ जीव ने अनंत काल से की हैं। पापवर्धिनी क्रियाएँ भी जीव ने अनंतकाल से की हैं। ज्ञानियो! पुण्यवर्द्धन के साथ कर्मक्षय की हेतु जो क्रियाएँ हैं, वह मात्र सम्यग्दृष्टि जीव के होती हैं। मिथ्यादृष्टि जीव की क्रियाएँ मात्र पुण्यबंध का तो कारण होती हैं, लेकिन कर्म क्षय का कारण, संसार-अभाव का कारण तो सम्यग्दृष्टि की क्रियाएँ ही हैं:—

यस्मात् क्रियाः प्रतिफलन्ति न भावशून्याः ॥38 क.मं.स्तोत्र॥

जो क्रिया भाव से शून्य होकर हो रही है, वह फलवती नहीं होती है। श्वास के कोटि-कोटि भाग कर दो, उसके अंश प्रमाण भी अरिहंत के चरणों में श्रद्धा जग गई, उसके संसार का अंत हो गया। ज्ञानी! विश्व में कोई ताकत नहीं बची कि उसे संसार में रोककर रख पाए। उसका अर्द्धपुद्गल परावर्तन के अंदर-अंदर नियम से निर्वाण होगा।

देवाधिदेवचरणे, परिचरणं सर्व-दुःख निर्हरणम्।
कामदुहि-कामदाहिनि, परि-चिनुया-दादृतो नित्यम् ॥119 र.क.श्रा.॥

दो शब्दों का ध्यान रखना, अरिहंत की वाणी 'कामदुही, कामदाहिनि'। एक क्षण को भी वन्दना के परिणाम किए, जैसे कामधेनु गाय इच्छित फल प्रदान करती है, ऐसे-ही संसार के सुख देने वाली अरिहंत की भक्ति है। भक्ति कामवासना को दहन करने वाली है, निर्वाण को प्रदान कराने वाली है। यह कौन कह रहा है? महान् तार्किक आचार्य समंतभद्र स्वामी। अंतरंग में जाग गई आस्था, एक समय प्रमाण काल की आराधना। एक माली की कन्या जो पुष्प किसी माला के काम का नहीं बचा, उसको अरिहंत की देहरी पर चढ़ाकर चली गई। परन्तु श्रद्धा थी, विश्वास था। जब बिना काम में आए पुष्प को चढ़ाने से स्वर्ग की विभूति को प्राप्त हुई वह कन्या, पूछा अवधिज्ञानी मुनिराज से कि इस जीव ने कौन-सा पुण्य किया है जो स्वर्ग में ऋद्धिधारी देव हो गया? मुनिराज बोले, कुछ नहीं। यह माली की कन्या थी। जो पुष्प काम का नहीं था, वह मन्दिर की देहरी पर चढ़ाकर चली गई थी श्रद्धा से। उसके ऐसे विशुद्ध परिणाम हुए कि वह निम्न कुल को छोड़कर देवपर्याय को प्राप्त हुई। यह अंदर की आस्था है, विशुद्धि के परिणाम हैं। अंतरात्मा की जो परिणति होती है, वह चहुँओर जगत् से भिन्न होती है। अंतरात्मा की परिणति लबालब श्रद्धा से भरी है। चाहने से मिलता नहीं, जो पुण्यबंध करके आए थे, उससे ही मिला है। वस्तुव्यवस्था व्यवस्थित है। स्वसमयी जो जीव है, उसको जगत् में कुछ नज़र आता नहीं। संसार के व्यापार में भी उसे निज स्वरूप की दृष्टि झलकती है। यदि स्वपरमात्म दृष्टि का वेदन नहीं हो रहा है, प्रत्येक क्रिया करते समय, तो वह सम्यग्दृष्टि नहीं है। मार्ग में चलते-चलते पथिक को मार्ग में खड़ा हुआ पुरुष चलता दिखाई देता है, परन्तु वह चल रहा है कि खड़ा है? जो चल रहा है, वह खड़ा है। पैर चल रहे हैं, पथ तय कर रहा है, परन्तु बिना खड़े चल नहीं सकता है। जहाँ उसे जाना है, वहाँ स्थिर है। यदि उसका साध्यभूत स्थान अस्थिर हो जाए तो पैर चलेंगे कैसे? आपको मोराजी आना था तो पैर चले थे, परन्तु चित्त कहाँ था? पैर चल रहे थे, परन्तु लक्ष्य स्थिर था, खड़ा हुआ था, तभी मोराजी आ पाए हो। यदि लक्ष्य स्थिर न होता, तो पैर कहीं-के-कहीं चले जाते।

सम्यग्दृष्टि जीव कदम-दर-कदम चलता अवश्य है, लेकिन लक्ष्य उसका स्थिर होता है, उसका नाम सिद्धशिला है। चाहे वह स्वाध्याय करे, चाहे पूजन करे, चाहे मुनि को आहार दे, लेकिन हर धार्मिक क्रिया में उसका लक्ष्य स्थिर है। यहाँ तक कि स्वयं भोजन करे, तब भी लक्ष्य स्थिर है। सम्मेदशिखर की वन्दना करने जाओगे तो क्या उपवास लेकर जाओगे? पर्वत आरूढ़ करना है, तो अधिक ताकत की आवश्यकता पड़ेगी, इसलिए और-गरिष्ठ खाकर जाएगा। ऐसे-ही सम्यग्दृष्टि जीव, जिसको समाधि दिख रही हो, सिद्धशिला दिख रही हो, वह अपनी साधना के पाथेय को कम नहीं करेगा अपितु बढ़ायेगा। जिसकी उत्साहशक्ति भंग हो

चुकी है, उसके सारे काम निष्फल हो चुके हैं। बूढ़ा होना कोई पाप नहीं है, उत्साहहीन हो जाना, महापाप है। धर्म से उत्साहहीन हो जाना यह पापकर्म का उदय है। वृद्धावस्था कोई पाप नहीं है, यह तो पुद्गल का परिणमन है। परन्तु वृद्धावस्था आते-आते धर्म की वृद्धि में हानि होने लग जाए, तो तेरा अशुभ कर्म का उदय सामने आ चुका है। वृद्धावस्था आते-आते धर्म की वृद्धि होनी चाहिए। दीपक भी बुझने को होता है, तो उसकी लौ बढ़ने लगती है। जब तेरे प्राणों का दीपक बुझने लग जाए, तो धर्म की लौ बढ़नी चाहिए। समाधि उसी की होती है जिसकी धर्म की लौ बढ़ती है। कुमरण उन्हीं का होता है, जिनकी कषाय की लौ बढ़ने लगती है। युवावस्था में धर्म दिखे और वृद्धावस्था में लालसाएँ बढ़ें, यह कुमरण करने वाले की पहली पहचान है। वृद्धावस्था आते-आते उपशम भाव बढ़ना चाहिए, संतोष परिणाम बढ़ना चाहिए, दया और विशुद्धि की वृद्धि होनी चाहिए, लोभ और मान की हानि होनी चाहिए।

अंतरात्मा की परिणति – नाक नहीं सिकोड़ेगा, होंठ नहीं चबायेगा, नेत्र रक्त नहीं करेगा, कपकपायेगा नहीं, चेहरा बंदर-जैसा नहीं बनाएगा, जो धर्म्यध्यान में लीन होगा। जिसके अंतरंग में ईर्ष्याभाव हो, शरीर कांप रहा हो, नेत्र रक्त हों, यह रौद्र ध्यानी के लक्षण हैं; और रौद्रध्यान में आयु का बंध हो गया तो नरक-तिर्यंच के आगे तो बोलना ही नहीं है।

जिनमन्दिर में यदि एक घण्टे भी पूजा करो, तो कम-से-कम एक मिनट अपनी मृत्यु का ध्यान कर लेना। क्यों? मृत्यु के काल में पूजा नहीं हो पाई, पूजा के काल में मृत्यु हो जाए। मृत्यु के काल में सामायिक नहीं हो पाई, किसने देखा, परन्तु सामायिक के काल में मृत्यु हो जाए, यह जिनदेव ने देखा है। हे प्रभु! एक क्षण के परिणाम मेरे पूजन करते-करते आ जायें कि मेरी समाधि चल रही है, मेरे सामने बेटा नहीं, बेटी नहीं, जनक नहीं, जननी नहीं, मेरे सामने जिनदेव-जिनवाणी निर्ग्रंथ गुरु हैं और उनको निहारते-निहारते मेरी अन्तिम श्वास निकल गई है। श्वास निकलती जाए, परन्तु श्वास प्रमाण काल भी हे जिनेदेव! आपके चरण न छूटें। जिनेन्द्र की भक्ति पूर्वसंचित कर्मों का क्षय कर देती है। एक श्वास प्रमाण काल भी परमात्मा के चरणों में सिर टेक लिया, तो संसार का अंत तेरा सुरक्षित है। इसलिए भक्ति के काल में मृत्यु का ध्यान रखना कि जैसे मैं आज भक्ति कर रहा हूँ, मृत्यु के काल में भक्ति मेरी दिखना चाहिए। क्योंकि अन्तिम समय में बड़ी-बड़ी गाथायें, बड़े-बड़े श्लोक समझ में नहीं आते, अन्तिम समय तो वही समझ में आता है जो तेरी आँखों में झलक चुका था। ज्ञानी! तिर्यंच गति में जीव चला जाए तो उसे कहाँ अष्टद्रव्य मिलेगी? और हर जीव के पुण्य उस मेंढ़क जैसे नहीं हैं जिसको पुष्प की पंखुड़ी मिल गई। एक हाथी का जीव सूंड़ में पानी भरकर लाया करता था और

तीर्थंकर की प्रतिमा जहाँ जमीन में गढ़ी थी वहाँ रोज अभिषेक करता था। जिस पर्याय की जितनी योग्यता है, वह अपनी पर्याय से धर्म करता है। आपको परिणाम देखने पड़ेंगे।

अरिहंत की आराधना वही कर पाएगा, जिसकी भवावलि न्यून है। जिसका भव अभी दीर्घ है, उसके भगवान् के चरणों में आने के परिणाम ही नहीं होंगे। अंदर का मन-मयूर नाचना चाहिए। अष्टद्रव्य से पूजन करने का अवसर या तो मनुष्यपर्याय में है या फिर देवपर्याय में है, शेष दो पर्यायों में तुम्हें अष्टद्रव्य मिलने वाली नहीं है। यदि आपको अष्टकर्म का नाश करना है तो अष्टद्रव्य से पूजन करने का अवसर मात्र इसी पर्याय में है। चार रोटी खाने का द्रव्य घर में हो तो तीन रोटी खा लेना, परन्तु एक रोटी का द्रव्य बचाकर उससे अष्टद्रव्य से अरिहंत भगवान् की पूजा भक्ति करना। भोजन भले ही दूसरे के द्रव्य से कर लेना, लेकिन भगवान् की भक्ति तो अपने द्रव्य से ही करना।

जो योगी तीन मूढ़ताओं से, तीन शल्यों से, तीन दोषों से, तीन दण्डों से, तीन गारवों से रहित होता है, वही शिवगति का पथिक होता है। ये तीन-तीन के भंग अंदर में समाप्त नहीं हुए तो शिवगति मिलने वाली नहीं है।

"आत्म स्वभावं परभाव भिन्नम्", आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

॥ भगवान् महावीर स्वामी की जय ॥

❖ ❖ ❖

"आत्मविशुद्धि से मुक्ति मिलती है"

रयणत्तय - करणत्तय - जोगत्तय - गुत्तित्तय विसुद्धेहि ।
संजुत्तो जोई सो, सिवगदिपहणायगो होदि ॥143॥

अन्वयार्थ—जो **(जोई)** योगी **(रयणत्तय)** रत्नत्रय **(करणत्तय)** तीन कारणों **(जोगत्तय)** तीन योगों **(गुत्तित्तय विसुद्धेहि)** तीन गुप्तियों की विशुद्धि से **(संजुत्तो)** संयुक्त है। **(सो)** वह **(सिवगदि पहणायगो)** शिवगति के मार्ग का नायक **(होदि)** होता है।

अर्थ—जो योगी रत्नत्रय तीन करणों, तीन योगों, तीन गुप्तियों की विशुद्धि से युक्त है। वह मोक्षमार्ग का नेता होता है।

''वीतराग योगी को मुक्ति मिलती है''

जिणलिंगहरो जोई, विराय - सम्मत्तसंजुदो णाणी ।
परमोवेक्खाइरियो, सिवगदिपहणायगो होदि ॥144॥

अन्वयार्थ—(जिणलिंगहरो) जिनमुद्रा का धारक **(विरायसम्मत्तसंजुदो)** वैराग्य और सम्यक्त्व से संयुक्त **(णाणी)** ज्ञानी और **(परमोवेक्खाइरियो)** परमउपेक्षा वीतरागभाव का धारक-ऐसा **(जोई)** योगी **(सिवगदिपहणायगो)** मोक्षमार्ग का नेता **(होदि)** होता है।

अर्थ—जिनमुद्रा का धारक, वैराग्य और सम्यक्त्व से संयुक्त, ज्ञानी और परम उपेक्षा (वीतराग भाव) का धारक—ऐसा योगी मोक्षमार्ग का नेता होता है।

भव्य बन्धुओ!

अन्तिम तीर्थेश भगवान् वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेश की पीयूष देशना, जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति।

आचार्यप्रवर भगवन्त कुन्दकुन्द स्वामी ग्रंथराज ''रयणसार'' में आत्मा के सम्यक् गुण की व्याख्या करते हुए समझा रहे हैं। अहो मुमुक्षु! मुक्ति का संगम कराने वाला कोई है, वह सम्यक्त्व है। संसार में भ्रमण कराने वाला कोई हेतु है, तो वह मिथ्यात्व है। इससे बड़ा कोई शत्रु नहीं है। अश्रद्धान से बड़ा कोई दु:ख नहीं है। अप्रीति से बड़ा कोई दु:ख नहीं है।

जिसके प्रति आस्था थी, भैया! वो आस्था टूट जाये, तो उस आस्थावान् से पूछना कि तुमको कितनी वेदना हुई है? हे मुमुक्षु! जगत् में किसी की पंचपरमेष्ठी के चरणों में आस्था

है, धन-धरती तुम छीन लेना, लेकिन उसकी आस्था को नष्ट कराने का प्रयास मत करना। जो वैभव है, वह तो पुण्य का मल है। भैया! 'सबके दिन एकसे नहीं होते हैं।' 'सब दिन एक से नहीं होते।' ज्ञानी! आत्मविशुद्धि की आवश्यकता है।

हे ज्ञानी! मिट्टी खोदने वाला महलों में बैठा होता है। महलों में बैठने वाला मिट्टी खोदते मिलता है। ऐसा भी होता है। हे मिट्टी खोदने वाले! महलों में बैठकर अहम् में मत डूब जाना और जो महलों में बैठने वाले मिट्टी खोद रहे हैं, वह भी हीनभावना में मत जाना। ये तो संसार का परिणमन ही ऐसा है। इसमें विकल्प करने की आवश्यकता नहीं है।

जिसमें राग किया करते थे, वह राख हो जाता है। जिसमें टीन के टीन सुगन्धित तेल के लगा चुके थे, वह भस्म के रूप में परिवर्तित दिखाई देता है। हे ज्ञानियो! जिनालय में वन्दना करने आते हो, कभी-कभी समय मिल जाये तो श्मसान पर भी घूमकर आ जाया करो। जब भी मौका मिले, एक बार श्मसान की ओर जाकर देख आया करो।

जो अहम् में डूबे हुए थे, वे अग्नि में झुलस चुके हैं। एक-एक अस्थि-पंजर को उठाकर के लोगों ने बीन-बीन करके, कहीं बिखरा न दिख जाये, उठा-उठाकर डाल दिये हैं। उस ध्रुव भगवान् आत्मा को निहारो। देह-पंजर के अन्दर जो विराजी है, उससे कह देना, हे भगवान् आत्मन्! जिससे राग कर रहा है, वह तो राख होगा। राख होने वाले में राग क्यों? और जिसके प्रति तेरा ध्यान ही नहीं है, वो भगवान् है।

सम्यक्त्व के ऊपर लगे शंकादि मल का धोवन करो। सम्यक्त्व में शंकादि मल को तो धोओ, परन्तु तन के मल को धोकरके तुम निर्मल नहीं कर पाओगे। कड़वी तुम्बी को कितना ही धो लेना, हे मुमुक्षु! कड़वी तुम्बी की कड़वाहट को तुम दूर नहीं कर सकोगे। ऐसे ही यह देह चर्म के पिण्ड को तू शुद्ध करना चाहता है, लेकिन ये शुद्ध नहीं हो पायेगी।

कड़वी तुमड़ी (लौकी, घिया) खायेगा तो मृत्यु हो जायेगी, क्योंकि वह जहर होती है। लेकिन उसी कड़वी तुमड़ी को सुखा लेना और जब वह सूख जाये तो विशाल सरोवर में लेकर कूद जाना। सागर में कूद जाना, तो वही कड़वी तुमड़ी तुझे सागर से पार कर देगी। वही कड़वी तुमड़ी, सूखने के बाद तुझे सागर से पार कराने की सामर्थ्य रखती है।

ऐसे-ही इस देह का उपयोग यदि भोगों को भोगने में करेगा, तो कड़वी तुमड़ी के समान तेरे संयम को मारकर तेरे को दुर्गति में भेज देगा। ज्ञानी! यदि तू कड़वी तुमड़ी रूपी शरीर से साधना करके सुखा लेगा, तो वह तुझे भव-सागर से पार करा देगा। किसी वस्तु को एकदम

हेय मत समझो, उसका उपयोग करना सीखो। खाने के लिए हेय है, पर समुद्र में तैरने के लिये हेय नहीं है, इसलिए उसके प्रति अशुभ भाव भी मत लाओ।

अरे भाई! इस देह को एकदम मत सुखाओ। शरीर नहीं होगा तो मोक्षमार्ग की साधना किससे करोगे? ज्ञानी! निगोदिया में भी अर्हन्त शक्ति है। निगोदिया में सिद्धत्व शक्ति है, लेकिन क्या निगोदिया अर्हन्त बन पायेगा? क्या उसी पर्याय से सिद्ध बन पायेगा? पर्याय की प्रत्यासत्ति भी चाहिये।

ब्रह्मचारियो! बाहर के लोगों की बातों को सुनकर एक गहरी बात समझना। राग बन्ध का कारण है, तो क्या द्वेष मोक्ष का कारण है? जैसे राग बन्ध का कारण है, वैसे ही द्वेष भी बन्ध का कारण है। आपको अपने कुटुम्ब के प्रति राग नहीं होना चाहिये, लेकिन द्वेष भी नहीं होना चाहिए। इस देह को देखकर आप यह कह रहे हो कि शरीर मुझे दु:खी किये है।

विश्वास रखना, शरीर ने आजतक किसी को दु:ख दिया ही नहीं है। असाता के उदय ने दु:ख दिया है और साता के उदय ने सुख दिया है। कुछ ऐसे अज्ञानी लोग हैं, उनके शरीर में रोग होते ही, वृद्धावस्था आते ही उनकी सोच बदलना प्रारम्भ हो जाती है। अब तो ये शरीर नष्ट हो जाता तो अच्छा था। ये शरीर दु:ख दे रहा है। ज्ञानी! शरीर दु:ख देता होता, तो जगत् में जितने देहधारी हैं; सभी रोते ही मिलना चाहिये। अर्हन्त भी सशरीर होते हैं। ज्ञानी! ऊपरी-ऊपरी धर्म की व्याख्या बहुत समझ रखी है आपने। जो साधक किसी गृहस्थ को यूँ कहता है कि शरीर दु:ख का कारण है, गृहस्थ कहीं शरीर को पीड़ित करने में लग गया, उसने धर्म से दूर होकरके निज के साथ छल कर लिया।

दादा जी! आपकी अभी वृद्धावस्था है। आप अभी मरना पसन्द करते हो कि यहाँ जीकर के जिनदेव की पूजन करना अच्छा है? दादा जल्दी मरकर ऊपर चले भी गये, कदाचित् पुण्य के योग से देव भी बन गये, विश्वास मानो, एक सामान्य भी देव होता है उसकी 32 महादेवियाँ होती हैं। सामान्य तो अनेक होती हैं। दादा! कहीं सम्यक्त्व गुण नहीं जगा और स्वर्ग में जाकर बैठ गये तथा देवियों के साथ अब्रह्म में लीन होकर के जीना, वो ज्यादा अच्छा है कि मनुष्य पर्याय में यहाँ रहकरके अर्हन्त की भक्ति करना और निर्ग्रन्थ को दान देना, जिनवाणी का पान करना ज्यादा अच्छा है कि वहाँ अव्रती होकर बैठ जाना अच्छा है।

मेरा सोच यह है कि जीने की भी इच्छा मत करना, मरने की भी इच्छा मत करना। ज्ञानियो! जब तक जी रहे हैं, अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु (पंच परम महापुरुषों) की भक्ति करना और मृत्यु का समय जब आ ही जाये, तो फिर ये मत सोचना कि ये छूट रहे

हैं मेरे से नहीं छूट रहे हैं। भीतर भावना लेकर जाना। विश्वास रखना, यहाँ तो यहाँ के भगवान् की मात्र भक्ति कर रहे थे। जब तुम देव हो जाओगे, तो ऐसी भावना से जाना कि सुमेरू पर्वत पर अकृत्रिम जिनबिम्बों की वंदना करना और विदेह जाकर सीमंधर स्वामी की दिव्यदेशना का पान करना और नंदीश्वर द्वीप में जाकर अकृत्रिम जिनबिम्बों की आराधना करना। ऐसे भाव बनाना कि वहाँ तीर्थंकर के समवसरण में बैठकर दिव्यध्वनि सुनते-सुनते क्षायिक-सम्यक्त्व को प्राप्त करके और ऐसे परिणामों की विशुद्धि के साथ फिर स्वर्ग से च्युत होना कि मनुष्य पर्याय को प्राप्त करके, निर्ग्रन्थ मुनि बनकर, अर्हन्त बन जाना। ऐसे भाव बनाकर चलना।

भैया! वैराग्य की बात तो करना, पर वस्तुस्वभाव को लक्ष्यपात करके। देह को सुखाके मत रहना। देह से जो सुख भोग रहे हो, उनको सुखाइये। शरीर नरक में नहीं ले जाता, शरीर स्वर्ग भी नहीं ले जाता, शरीर सिद्ध भी नहीं बनाता, विश्वास रखना। उपादान दृष्टि है। देह नरक ले जायेगी, तो ये मुनिराज भी देहधारी हैं, इनको भी नरक जाना पड़ेगा। देह स्वर्ग ले जायेगी, तो ज्ञानियो! कालिया नाग नाना-जीवों का भक्षण कर रहा है, वो भी देहधारी है, तो वो भी स्वर्ग चला जायेगा। देह सिद्ध बनायेगी, तो जगत् में जितने देहधारी हैं, सब सिद्ध बन जायेंगे। देह निगोद ले जायेगी तो जितने देहधारी हैं, क्या सभी निगोद चले जायेंगे?

हे ज्ञानी! शरीर नरक नहीं ले जाता, स्वर्ग नहीं ले जाता, सिद्ध नहीं बनाता, निगोद नहीं ले जाता। हे मुमुक्षु! देह बिना बोले ही आप से बोल रही है कि मैं तेरे सुकृत से तुझे प्राप्त हुई हूँ। तू मेरा उपयोग जैसे करना चाहे, वैसा मैं तद्रूप तेरे लिये आलम्बन रूप हूँ स्वस्थ शरीर है तो भोग भी अच्छे से भोगे जाते हैं। स्वस्थ शरीर है तो साधना भी अच्छे से हो जाती है। स्वस्थ शरीर वाला ही अच्छे से नरक जा पाता है, क्योंकि अच्छे भोग भोगेगा तो अच्छे से नरक जायेगा।

भैया! ध्यान रखना, स्वस्थ शरीर वाला ही निर्दोष संयम की साधना करेगा, तो अशरीरी सिद्ध भगवान् बनेगा। निगोदिया के शरीर में सिद्धत्व शक्ति अवश्य है, लेकिन जब तक मनुष्यायु मनुष्यगति, मनुष्यशरीर की प्रत्यासत्ति नहीं होगी, सुकुल नहीं मिलेगा, उत्तम परिणति नहीं बनेगी, तब तक भगवत्ता को प्राप्त करने की योग्यता नहीं आयेगी।

हे ज्ञानी! इस देह को तू कितने दिन बचाके रख पायेगा? भैया! देह तेरे हाथ में नहीं है। द्रव्यकर्म तेरे हाथ में नहीं है। नोकर्म तेरे हाथ में नहीं है। इसको में बचाने का प्रयास भी करूँगा, क्योंकि में भी तो आपके बीच में हूँ। प्रतिदिन आहार देने इसके लिये जाता हूँ। प्रतिदिन इस शरीर को भोजन देता हूँ।यह सुरक्षित रहे, क्योंकि इसमें मेरा स्वार्थ निहित है। यह अच्छे से रहता

है, तो मेरी सामायिक आदि क्रियायें अच्छे से होती हैं। इस देह को सुरक्षित तो नहीं रख पायेंगे। किंचित् भी समझ में आ रहा हो तो थोड़े गम्भीरता में प्रवेश कीजिये और समझिये कि मैं क्या कर रहा हूँ? जिसे खिला रहा हूँ, पिला रहा हूँ, सजा रहा हूँ, यथार्थ में शरीर न खा रहा है, न पी रहा है। शरीर के माध्यम से खा-पी रही है आत्मा। अनुभूति ले रही है आत्मा आनन्द कौन लूट रहा है?

ज्ञानियो! निज देह का भी भोग कर रही है आत्मा और पर देह का भोग कर रही है आत्मा। यदि इसको अच्छे से स्नान भी करा रहे हो, साबुन, तेल आदि का प्रयोग करा रहे हो, यथार्थ मानिये, ये आत्मा के द्वारा शरीर का भोग चल रहा है। स्वयं के शरीर का। दर्पण के सामने खड़े घण्टों-घण्टों तुम बाल सजा रहे थे। क्या कर रहे थे तुम? क्या बालें निकलेंगी इसमें अब? बालों में बालें निकलने वाली हैं क्या? पर हे रागी ! आँखों से नहीं देख पा रहा, सो दर्पण में अपने चेहरे को देखकरके अपने शरीर का भोग कर रहा था। कितने आयुकर्म के निषेक आपने नष्ट किये हैं? पर सम्हालते-सम्हालते हुए भी क्या हम देह को बचा पायेंगे? माताओ! आप लोग बचा पाओगी? नहीं बचा पायेंगे न? तो फिर ध्यान दो।

हम इस नोकर्म को तो नहीं बचा पायेंगे। कितना ही दुग्ध पिलाओ, फल खिलाओ, कुछ भी खिला देना, सन्तुष्टि मात्र है निज की। इसको मैं निश्चित समय पर खिलाता रहूँगा, लेकिन आयुकर्म जब क्षीण हो जायेगा, उस दिन तीर्थंकर भगवन्त, चक्री, नारायण, बलभद्र, कामदेव, इन्द्र आदि भी खड़े हो जायेंगे तेरे द्वार पर पहरा देने, तब भी बचा नहीं पायेंगे।

तत्थ भवे किं सरणं, जत्थ सुरिंदाण दीसदे विलओ।
हरि हर बंभा दीया, कालेण य कवलिया जत्थ॥ 23 का.अ.॥

''तत्थ भवे किं सरणं''। अरे भाई! तेरा शरण कौन होगा? मृत्युंजय जाप करा रहा है, विधान करा रहा है, क्यों? बोले-मृत्यु से बच जायेंगे। अरे भाई! मृत्युंजय विधान में जिसकी आराधना कर रहा है, वे तीर्थंकर भी क्यों न हों, इन्द्र-धरनेन्द्र भी क्यों न हों, जब वे भी विलीन हो गये, तो विधान कैसे तेरी रक्षा करेगा? सुरेन्द्र का भी विलय देखा गया है। हरि, हर, ब्रह्मा आदि भी ''कालेण य कवलिया जत्थ'' काल के द्वारा कवलित हो गये हैं। तो मेरी शरण कौन होगा?

''मणि मंत्र-तंत्र बहु होई, मरते न बचाबै कोई।''

जब याद ही है तो, भैया! क्यों दुनियाँ के गोना-गुरिया के चक्कर में पड़े हो?

मणिमंतो सहरक्खा, हयगयरहओ य सयल विज्जाओ।
जीवाणं ण हि सरणं, तिसु लोए मरणसमयम्हि॥ 8 वा. आ.॥

कुन्दकुंद देव ने 'वारसाणुपेक्खा' ग्रन्थ में लिखा है। जो बारह भावनायें हैं, इन बारह भावनाओं का सबसे प्राचीन कोई ग्रन्थ है, स्वतंत्र ग्रन्थ, वह है 'वार साणुपेक्खा'। हिन्दी की जो नई-नई बारह भावनायें छप रही हैं भिन्न-भिन्न लोगों के द्वारा, उसका मूल जो साधन है, वह ''वारसाणुपेक्खा'' ग्रन्थ है। दूसरा ग्रन्थ है 'कार्तिकेयानुप्रेक्षा' तो कुन्दकुन्द स्वामी 'वारसाणुपेक्खा' ग्रन्थ में कह रहे हैं कि मणि-मंत्रादि जो हैं, 'हयगय रहओ य सयल विज्जाओ', हाथी, घोड़े आदि, सम्पूर्ण विद्या, जो विद्याओं का स्वामी था वो भी विलीन हो जाता है।

हे जीव! तेरा कोई शरण नहीं है। तीनों लोकों में मरण के समय में कोई भी शरण नहीं है। माँ की गोदी में बैठा बालक भी चला जाता है। पिता की अंगुली पकड़ने वाला पुत्र भी चला जाता है। कितना ही छिपाओ माँ पुत्र को गोदी में, हंस के जाने का समय होता है तो परमहंस भी नहीं रोक पाते हैं। कितनी माँयें बिलख चुकी हैं मेरे वियोग में, कितने पिता नयन सुजा चुके हैं मेरे वियोग में। पर मैं क्या करूँ? मैं कितना अभागा हूँ? माता-पिता की आँखों के आँसू को रोक नहीं सका। किंचित् भी दया हो, करुणा हो, तो ऐसा उपक्रम करो कि मेरे वियोग में किसी को रोना न पड़े। मित्रो! ऐसा कार्य करो कि जगत् की किसी माँ को अब रोना न पड़े मेरे वियोग में। माँ के रुदन को मैंने देखा। आपने देखा? कैसे विलख-विलख कर रोती है? इष्ट के वियोग में किसी को कुछ भी समझ में नहीं आता।

हे मुमुक्षु! जब संयोग का वियोग नियत है, तो विलखना किसलिये? सैंतालीस शक्तियों में सम्प्रदान शक्ति का प्रयोग कीजिये। समयसार में सैंतालीस शक्तियों का वर्णन है। सम्प्रदान शक्ति का प्रयोग क्यों नहीं करता है? भाई तू ईंट पर ईंट चूने पर चूना लगाकर भवन बना रहा है। पर आज, भैया! इतना कर लेना, उस भवन में जाकरके एक-एक दीवाल, एक-एक ईंट को निहारना और अंतरंग से पूछ लेना—भैया! ये किसके लिये?

बेटे को जन्म भी दिया है ब्रह्म का नाश करके, किसके लिये? जीने के लिये। जिसमें जन्म हुआ था, झोपड़ी थी, मरने के लिये भवन बना लिये हैं बेचारे ने। किसके लिये? गरीब माता-पिता के घर में जन्मा, झोपड़िया में जन्मा, मरने के लिये महल बना लिया। हे ज्ञानी! इस सत्य को कौन टाल सकता है? क्योंकि मैं उन लोगों में से नहीं हूँ कि मैं अध्यक्षों की झूठी प्रशंसा करके उनको फुलाते रहूँ। इनको सत्य का बोध कराना चाहिये। ये भी नहीं बचेगा।

सुबह यहाँ के युवा मुझे शुद्धि को ले जाते हैं और ऐसे स्थान से गुजरते हैं जहाँ बड़े-बड़े अट्टालिका, महल, भवन बने हुए हैं। ज्ञानी! जिनमें राजा-महाराजा रहते थे, आज लोग उनमें

शौच करने जाते हैं। क्या हुआ भाइयो? हे ज्ञानी! जिसने बनबाया था, उसने कभी नहीं सोचा था, लेकिन आपको मालूम होना चाहिये कि

''सबके दिन एकसे नहीं होते हैं।''

जब कोई रहने को नहीं मिलता, तो कबूतर तो आकर विराजमान हो ही जाते हैं। ज्ञानी! जिसके घर में कबूतर विराजमान हो गये, उल्लू आकर बैठ गये, अब समझ लो कि तुमको तो यहाँ से उड़ना ही पड़ेगा। यह शकुन शास्त्र का नियम है। तो सैंतालीस शक्तियों में सम्प्रदान शक्ति कह रही है, किसके लिये? आज तूने अच्छा विचार किया भैया। माँ! कैसे तुम स्वार्थी लोग हो? जिससे पैसा मिलता है उसको तो तुम राखी बाँधते हो। इसकी जितनी राखी थी, सब झूठी थी। ये राखी सत्य है। अब कोटि-कोटि जीवों की रक्षा होगी छन्ना से।

जिससे जीवों की रक्षा हो, वही तो राखी है। ठीक है, आज अपने बेटे की माँ के हाथ में राखी बांधना और कहना हे ज्ञानी! मेरे संयम को राख कर रखना और जब मेरी अन्तिम श्वास निकले तो रोकर आँख में आँसू मत गिराना, मुझे ''णमोकार मंत्र'' सुनाना। यदि तू मेरी धर्म पत्नी है, तो आज राखी बांध ही देना। ज्ञानी! तुम टेंशन मत करो, मैं तो बैठा हूँ। तुम तो राखी बांध ही देना और भरी सभा में बांधना, तो ये लोग देखें, प्रश्न करें, आज तो इसने दुनिया को राखी बेची है। आज अपनी पत्नी को राखी बांध रहा है और दिखाके बांध रहा है, कैमरे वाले को बुलाकर फोटो भी खिंचवा लेना। ताकि दुनियाँ के लोग देखें और कहें कि राखी बांध रहा है पत्नी को और पत्नी से राखी स्वयं बंधवा रहा है।

हे ज्ञानी! बहन तो पर घर चली जायेगी। सच्ची बहन तो यही है। ये अन्तिम समय में मुझे ''णमोकार'' सुनायेगी और मेरे शील को राख के रखेगी। इसलिये ये आज से मेरी बहन है। समझ में आ रहा है? जो नोकर्म हैं, यानि शरीर, इसे में कितना ही सुरक्षित रखूँ, पर मेरे भैया! ये बचनेवाला नहीं है। आज ये चमक रहा है, कल इसका भरोसा नहीं है कि, इसमें क्या हो जाये? कौन-सा रोग आ जाये?

इसलिए एक निर्णय कर लो, कि मैं नोकर्म को रख नहीं सकता हूँ सुरक्षित, पर भावकर्म को सुरक्षित रखना मेरे अधिकार में है। देह को सुरक्षित नहीं कर पाओगे, पर परिणामों को सुरक्षित कर सकते हो। समझ में आ रहा है, क्या कह रहा हूँ? देह तुम्हारे वश में नहीं है। ये नियत काल तक है। पर भावकर्म तेरे वश में हैं। जितने निर्वाण को प्राप्त हुये हैं, होंगे, हो रहे हैं, वे द्रव्यकर्म को और नोकर्म को सम्हालने से नहीं हुए हैं। भावकर्म को सम्हालने से हुये। भावकर्म मेरे वश में हैं। अपने भावों को जो सम्हाल लेगा, वही भगवान् बन जायेगा।

भावकर्म के अनुसार नोकर्म में परिणमन होता है। भैया! इस बात को आपको स्वीकार करना ही होगा। ज्ञानी! भावकर्म के अनुसार नोकर्म में परिणमन होता है। भाव कर्म जो होता है, वह नोकर्म को बदल देता है और जैसे-ही तुम्हारे क्रोध के परिणाम होते हैं, तो तुम्हारा नोकर्म (चेहरा) लाल हो जाता है। ज्ञानी कुछ मिल जाये तो, पेट भले ही खाली हो, पर चेहरा चमकता है। कुछ चला जाये, तो फिर खूब ठूँस-ठूँस कर पेट में भर देना, तब भी बेचारे का चेहरा मुरझाया हुआ होता है।

द्रव्यकर्म और नोकर्म को बदलने का कोई आलम्बन होता है, तो भावकर्म है। दुनियाँ को क्या सुधारने का? दुनिया को क्या सम्हालने का? जिससे मेरा भावकर्म बिगड़े, ऐसा कर्म नहीं करने का। विश्वास रखना, द्रव्यकर्म को भावकर्म ही बदलता है और नोकर्म को भी भावकर्म ही बदलता है। माँ जो हृदय से शुष्क है, क्रोध से भरी है, उस माँ के आँचल का दूध भी सूख जाता है और जो माँ गद्गद् भाव से युक्त है, बेटे के प्रति प्रीति रखती है, उस माँ के आँचल में दुग्ध की धारा बह पड़ती है। शंका मत करना इस विषय पर।

शरीर के रक्त भी उनके ही शुद्ध रहते हैं, जिनके भाव विशुद्ध होते हैं। ये बात लिख लेना अपने हृदय की डायरियों पर। उनके शरीर के रक्त भी दूषित हो जाते हैं, जिनके भाव दूषित होते हैं। जैनदर्शन की विधा को सीखिये आप। तीर्थंकर भगवान् के सर्वांग में जो रक्त होता है, वह सफेद क्यों होता है? एक बेटे को जन्म देने वाली माता के आँचल में दुग्ध कब आता है? जब उदर में बेटा आता है, जन्म लेता है तब। बेटे के दुलार के कारण दुग्ध आया है। हार्मोंश बदलते हैं। जिस जीव को जगत् के प्राणीमात्र के प्रति दुलार हो, उसके सर्वांग में रक्त सफेद होता है। प्राणी मात्र के प्रति करुणा जिनके बैठी हुई हो, ऐसे भगवान् के शरीर में रक्तकणिकाओं की वृद्धि होती है। ज्ञानी! श्वेत कणिकाओं की वृद्धि उनके होती है जिनके चित्त प्रसन्न होते हैं। श्वेत कणिकाओं की वृद्धि होती है, तो उनमें रोग प्रतिकार की क्षमता होती है।

रक्तकणिकायें बढ़ जाती हैं, तो रोग प्रतिकार की क्षमता घट जाती है। इसलिये बेटा! कितने ही तेरे दादा नाराज हों, तो तू कहना ज्ञानी! गुस्सा न करो, अपने भाव विशुद्ध करो। ऐसा मत समझना कि ये बच्चों को समझ में नहीं आता। सब समझ में आता है। हे बेटे! जब दादा नाराज हों तो कहना दादा जी! आप भी प्रवचन सुन रहे थे, मैं भी सुन रहा था, महाराज जी ने क्या कहा था?

गुस्सा करने से शरीर में जहर फैल जाता है। माँ जब घर में तेरे को गुस्सा आ रही हो, और बेटा भोजन करने आये, तो धीरे-से कह देना, बेटा! वो रखा हुआ है, तू उठा ले, खा ले। हे माँ हाथ मत लगा देना। देखो, आपको पता नहीं, हम लोग बहुत समझदार हैं। आपके हाथ से

ग्रास तभी लेते हैं, जब मुँह से बुलवा लेते हैं मनशुद्धि, वचनशुद्धि, कायशुद्धि। सबसे पहले किसकी शुद्धि? मनशुद्धि। ज्ञानी! जब तुम्हारा मन ही शुद्ध न हो तो काहे की शुद्धि? कोई शुद्धि नहीं है।

ज्ञानियो! किसी के पैर भी छूना हो, पैर भी दबाना हो, यदि परिणाम कलुषित हैं, तो दूसरे के पैर मत छू लेना। अशुद्ध वर्गणायें तुम्हारी उसको प्रभावित करेंगी। ज्ञानी! साधकों पर करुणा करना, तुम तो भरे ही हो कषायों से। जो बल्व प्रकाश करता है, जरा सा वायर को टच करना पड़ता है, पूरे में विद्युत प्रवाहमान हो जाती है। ऐसे-ही ये हमारी अंगुलियाँ हैं। ये ग्रहण करती हैं। पैर के अंगूठे हैं, छोड़ते हैं। यही कारण है कि अपनी परम्परा में है कि अंगूठा छूकर हाथ मस्तिष्क पर लगा लेते हैं। ये तरंगें हैं। आप तो छूने की बात कर रहे हो, जितनी निर्मल साधना करोगे, दूर से महसूस होना प्रारम्भ हो जाता है कि इसके परिणाम कैसे हैं? वर्गणायें कैसी हैं? उसके सामने आते ही अनुभव होने लगता है कि इसके आने से प्रभावित हो रहा है। परिणमन हो रहा है, इसे दूर रखो यहाँ से। ये आभा मण्डल है। परमात्मा का जो भामण्डल है, वही तो आभामण्डल है। इतना विशाल होता है कि योजन-योजन के लोग अपने आप बैर-वृत्ति छोड़ देते हैं। शक्ति बढ़ाइये, साधना बढ़ाइये।

उत्कृष्ट साधना यदि कोई है तो, वह है मौन। कभी मुनि बनने के परिणाम आप लोगों के आ रहे हों, तो मौन आज से ही शुरु कर देना। जो घर में मौन नहीं रख पाते और बाहर के लोगों के क्लेश नहीं सह पाते, वो मुनि बनने मत जाना। जो बेटे की पत्नी की डाँट सहन कर लेगा, वो साधु भी बन सकता है। कैसे आप जी रहे हो? मुझे मालूम है। आप अपनी मत कहलवाओ। वो तो भाग्य है कि यहाँ आकर मुस्करा लेते हो, मुझे मालूम है कि, घर में कैसे रहते हो?

तू स्वयं सोचता है कि दुनियाँ तो मुझे नाम से जानती है, पर घर में कैसे बच्चे बनकर रहना पड़ता है? आप एक को ही मत पकड़ो, उसमें आप सब भी हो। पर मुझे आश्चर्य तो ये लगता है, एक तोता किसी के हाथ में फंस जाये, वो अवसर देखता है कि कब इसका हाथ ढीला हो और मैं कब उड़ जाऊँ? तुम लोग ऐसे कबूतर हो, कि कितना ही छोड़ कर रखा जाये, वहीं पहुँच जाते हो। तोतों को कितनी ही खीर, मलाई, दूध रखो, सोने के पिंजड़े में रखो, तब भी मौका मिलते ही उड़ जायेगा? पर कबूतर ऐसा होता है, वहीं गंदगी करता रहता है और घूम फिर करके वहीं बैठता है, गंदगी पर ही।

धन्य हो। आप समझो क्या हो? मैं नहीं कह रहा भैया! मैं तो आपको ज्ञानी बोलता हूँ। हे कबूतर! यदि परिणति पवित्र हो जाये तो कबूतर क्या, नारकी भी तर जाता है। इसलिये किसी को मत सम्हालो आज से।

ज्ञानी! आयुकर्म के निषेकों को भोगों की गंदगी में क्यों नष्ट कर रहे हो? अब तुम परमात्मा के चरणों में ज्यादा प्रयोग करो। गुरुओं के पास रहो जिससे असंख्यात-गुण-श्रेणी कर्मों की निर्जरा का लाभ होने वाला है।

अब तो 60-60, 70-70 साल के हो गये हो, कनेक्शन काट दो विषय-कषायों से। जिनवाणी में लगाओ। स्वाध्याय बढ़ाओ। मेरा विश्वास है कि जो स्वाध्याय करेगा, वो अपने आप मुड़ेगा। स्वरूप-सम्बोधन मिल गया आपको। जितने युवा हैं, सब पुरुषार्थ-सिद्धि-उपाय पढ़ो। ज्ञानियो! जैन परम्परा में ही नहीं, पूरे विश्व में अहिंसा का विशद् वर्णन करने वाला कोई ग्रन्थ है, उसका नाम 'पुरुषार्थ सिद्धि उपाय' है। प्रत्येक जैन श्रावक-श्राविका को उस ग्रन्थ का अध्ययन करना चाहिये।

हे ज्ञानी! कभी-कभी क्या होता है, कि मणियाँ तो अपने पास हैं, उसका उपयोग करना नहीं जानते हैं। ग्रन्थ तो अपने पास हैं, पर उसको समझते नहीं हैं कि ग्रन्थ कौन सा खोलूँ?

भैया ! अमेरिका में जैन ग्रंथ मँगाये जा रहे हैं। वहाँ के लोग स्वध्याय कर रहे हैं। आप कल्पना करो। आज जैन-तत्त्व को समझने के लिये विदेशी तरस रहे हैं। जीव को मत मारो, इस बात को तो दुनियाँ कहना जानती है। बध करना तो पाप है ही, परन्तु बदनाम करना भी पाप है। द्रव्यहिंसा का त्याग तो दुनिया ने कराया है, पर भावहिंसा का त्याग कराने वाला जैन दर्शन है। यह ध्रुव सत्य है।

जितने मंच पर मनीषी व मुनिगण बैठे हैं, मेरा तो वही भाव है कि इनके श्रीमुख से भगवान् महावीर की शुद्ध वाणी निकले। एकसौ विद्वान् जितनी प्रभावना कर पायेंगे, उतनी एक योगी प्रभावना कर देगा। विद्वान् को कार्यक्रम करने पर लोग मिलते हैं, पर निर्ग्रन्थ योगी जहाँ पहुँच जाते हैं, उस दिन, उस नगर में महोत्सव पर्व प्रारम्भ हो जाते हैं। ज्ञानी! किसी के घर में तो सालभर में एक बार होली दीवाली आती है, परन्तु भाग्यवान के घर में जिस दिन साधु के चरण पड़ जाते हैं उस दिन होली दीवाली होती है।

मुमुक्षु! भाव-कर्म सम्हालो आज से, भावकर्म। माँ! सत्य बताना, बेटे से दूध का भरा हुआ गिलास गिर गया। क्या करेगी तू? हे अभागी माँ! तूने खींचकर गाल पर चाँटा मार दिया। माँ! क्या दूध गिलास में भर गया? हे माँ! दूध तो गिर ही गया था धोके से। पर पूत को तूने जानकर मारा है। दूध भी गया, पूत भी गया।

बेटा यदि ज्ञानी होता, तो क्या बोलता? माँ! दूध में तुझे राग था तो दूध तो कहीं भी नहीं गया। गिलासाकाश से जमीनाकाश में पड़ा है, दूध कहीं नहीं गया। दूध तो फिर भी दिखाई दे

रहा है, पर हे माँ! ये तेरे परिणामों की जो विशुद्धि थी, वह मेरे गाल पर चांटा मारने से गुम गई। कितना ही तू दुलार दे दे मुझे, पर मालूम है मुझे कि तू तभी तक दुलार देगी जब तक तेरा काम नहीं बिगड़ा और काम बिगड़ जायेगा तो दुलार कहाँ रहेगा?

हे माँ! दूध में भी तेरा राग नहीं था, क्योंकि दूध जमीन पर पड़ा है। पूत में भी राग नहीं था, क्योंकि पूत के गाल पर चाँटा मार दिया है। दूध तो पीना चाहती थी, इसलिए मारा है। क्योंकि तेरा राग में राग था। वो पीने लायक नहीं बचा, इसलिए तूने मेरे गाल पर चाँटा मार दिया। सच्ची माँ होती तो कहती कि कुछ नहीं, बेटे! लग तो नहीं गई तुझे? गाल में ही लगा है, अगर आँख में लगता तो बेचारे बेटे की तो आँख ही चली जाती।

इतना संतोष ला पाओगे? नहीं ला पाओगे, तो जैनकुल में जन्म लेने का सार क्या निकला? जिनवाणी सुनने का सार क्या निकला? हे मुमुक्षुओ! आज से चिन्तन को बदल दो। जो काम बिगड़े थे अबुद्धिपूर्वक, पर तुमने जो उपद्रव किये हैं बुद्धिपूर्वक। देश भी आज इतना हीनता में जा रहा है, उसका मुख्य कारण क्या है? एक छोटा सा काम करवाने के लिये हड़ताल करवा देते हैं और उसमें कितने भवन टूटते हैं सरकारी? पर आपको मालूम होना चाहिये है कि उसकी पूर्ति आखिर में तुम्हारे द्वारा ही होती है। महावीर के सिद्धांत यदि अन्दर प्रवेश कर जायें, तो विश्व की सब व्यवस्थायें स्वयं ही बन जायें।

हे ज्ञानी! क्या कह रहे हैं भगवान् कुन्द-कुन्ददेव? जो परम योगी रत्नत्रय धर्म, तीन गुप्तियों (मन-वचन-काय) एवं उत्कृष्ट विशुद्धि को प्राप्त है ऐसा परम-योगी ही मोक्षमार्ग का और श्रीजिन नमोऽस्तु शासन का नेता होता है।

भगवान कुन्दकुन्ददेव अलौकिक सूत्र प्रदान कर रहे हैं। ''जिणलिंगहरो'' जिनमुद्रा का धारक, ''विरायसम्मत्त संजुदो'' वैराग्य और सम्यक्त्व से संयुक्त, ''णाणी'' ज्ञानी, ''परमो वेक्खाइरियो'' परम उपेक्षा यानि वीतराग भाव का धारक, ''जोई'' परम-योगी श्रमण मोक्षमार्ग का नेता है।

"आत्म स्वभावं परभाव भिन्नम्", आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

॥ भगवान् महावीर स्वामी की जय ॥

❖ ❖ ❖

शुद्धोपयोगी को मुक्ति मिलती है

बहिरब्भंतरगंथविमुक्को सुद्धोपजोयसंजुत्तो ।
मूलोत्तरगुणपुण्णो, सिवगदिपहणायगो होदि ॥145॥

अन्वयार्थ—(बहिरब्भंतरगंथविमुक्को) बाह्य-अभ्यान्तर परिग्रह से रहित **(सुद्धोपजोयसंजुत्तो)** शुद्धोपयोग से संयुक्त और **(मूलोत्तरगुणपुण्णो)** मूल और उत्तम गुणों से युक्त योगी **(सिवगदिपहणायगो)** शिवगति के मार्ग का नायक **(होदि)** होता है।

अर्थ—बाह्य-अभ्यान्तर परिग्रह से रहित, शुद्धोपयोग से संयुक्त और मूल एवं उत्तर गुणों से युक्त (योगी) मोक्षमार्ग का नेता होता है।

''साधु सम्यक्त्व की साधना करता है''

जं जादिजरामरणं, दुहदुट्ठविसाहिविसविणासयरं ।
सिवसुहलाहं सम्मं, संभावदि सुणदि साहदे साहू ॥146॥

अन्वयार्थ—(जं) जो **(सम्मं)** सम्यक्त्व **(जादि जरा मरणं)** जन्म, जरा, मृत्यु **(दुहदुट्ठवि-साहिविसविणासयरं)** दु:ख रूपी दुष्ट विषधर सर्प के विष का नाश करने वाला है। **(सिवसुहलाहं)** शिव-सुख का लाभ कराने वाला है **(साहू)** साधु **(संभावदि)** उसी की भावना करता है **(सुणदि)** उसी के बारे में सुनता है और **(साहदे)** उसी की साधना करता है।

अर्थ—जो सम्यक्त्व जन्म, जरा, मृत्यु और दु:खरूपी दुष्ट विषधर सर्प के विष का नाश करने वाला है और मोक्षसुख का लाभ कराने वाला है साधु उसी की भावना करता है, उसी बारे में सुनता है और उसी की साधना करता है।

ज्ञानियो! अन्तिम तीर्थेश भगवान् वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना जिनेन्द्र-वाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवन्त हो। जयवन्त हो वीतराग श्रमणसंस्कृति।

आयार्चप्रवर भगवन्त कुन्दकुन्द स्वामी ग्रन्थराज श्री ''रयणसार'' जी में परम योगीश्वर की दशा का व्याख्यान कर रहे हैं। कैसे हैं वे योगीश्वर? सम्यक्त्व रत्न से भूषित हैं।

जो सम्यक्त्व जन्म-जरा-मृत्यु और दु:ख रूपी दुष्ट विषधरों के विष को निर्विष करने वाला है। और क्या कह रहे हैं भगवान् कुन्दकुन्द देव? ''सिवसुहलाहं'' शिव-सुख का लाभ कराने वाला है।

ज्ञानी! शिव-सुख को चाहते हो तो सम्यक्त्व की भावना करो। सम्यक्त्व वह अनमोल रत्न है जो ज्ञान एवं चारित्र को चमक प्रदान करता है। इसलिए मोक्षार्थी श्रमण उसी की भावना करता है, उसी के बारे में श्रवण करता है तथा उसी सम्यक्त्व की साधना करता है।

अनुशासन करना है तो पहले अनुशासित होना पड़ेगा। सिद्ध बनना है तो पहले श्रद्धान को मजबूत करना पड़ेगा। श्रद्धान के अभाव में साधना भी व्यर्थ है। ज्ञानियो! परम सुख चाहिये तो सम्यक्त्व की भावना करो, मिथ्यात्व का परित्याग करो।

किसी पर अनुशासन चलाने की आवश्यकता नहीं है। आत्मानुशासन में जीव जीने लग जाये तो क्यों अनुशासन की आवश्यकता? जो जेल में जाने पर पश्चाताप होता है। जेल यथार्थ में दण्ड नहीं है। आपको समय देने के लिये स्थान है कि आप यहाँ सोच सकें। भैया ऐसा ही है, आप गहरी बात समझिये।

जो आचार्य होता है, वो एक बहुत बड़े सम्राट का संविधान होता है। वो विषय अलग है कि संविधान को पढ़ें नहीं और गद्दी पर बैठ गये, तो आपको क्या मालूम कि क्या होता है? लगभग सभी ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं और लोगों के हाथों में हैं, लेकिन प्रायश्चित ग्रन्थ, शेष बचा है, जो मात्र आचार्यों के ही हाथ में रहता है।

जीव यदि आत्मानुशासन में जीने लग जाये तो किसी की क्या ताकत कि उसको दण्डित कर दे। गुनहगार को जो जेल में पश्चाताप होता है, वो जेल में जाने के कारण से पहले ही अलग हो गया होता, तो जेल में जाने का अवसर ही क्यों आता? गल्ती करने के बाद जो दु:ख होता है, वह गल्ती करने के पहले हो गया होता तो गल्ती क्यों करता? इन बेचारों के चेहरे देखो कैसे देखने लायक हैं? कभी क्या होता है कि आपने गल्ती नहीं की और दूसरों की गल्ती से चले गये हो। वर्तमान की पर्याय में तुमने नहीं किया, ये बिल्कुल सत्य है। पर भूत में कर चुके थे, इसलिए फँस गये हो।

जेल में चला जाये तो कह रहा है कि महाराज! दूसरों की गल्ती से गया हूँ। पर हे ज्ञानी! तू अपने बेटे की माँ को लेने गया था, तो तू दूसरों की गल्ती से गया था कि अपनी गल्ती से गया था। इसकी कभी बात नहीं करता बेचारा। भैया! मेरे पास एक सज्जन आये, बोले-महाराज! आशीर्वाद दे दो, बहुत दु:खी हूँ। मैंने कहा-क्या हो गया? न बेटा बात मानता, न पत्नी बात मानती। मैंने कहा-आज पूछने आया है। उस दिन पूछने क्यों नहीं आया था, जब तू घोड़े पर बैठकर जा रहा था। आज पूछ रहा है। अरे! मुझे तो पहले से ही मालूम था, सो अपन ने पहले

से ही छोड़ दिया। ऐसा ही तू कर लेता। वे पूर्व के तपस्वी लोग हैं, जिनके घर में पत्नी भी धर्मात्मा हो, पुत्र भी धर्मात्मा हो, पिता भी धर्मात्मा हो, पूरा परिवार ही धर्मात्मा हो ये विश्वास रखना, ये पूर्वभव के तपस्वी का संयोग होता है। पूर्व के पुण्यात्मा जीव इकट्ठे हुये हैं।

चन्दन की लकड़ी में भी धुँआ निकलता है, बबूल की लकड़ी में भी धुँआ निकलता है और बेशरम की लकड़ी में भी धुँआ निकलता है जलाने पर, लेकिन शेष धुँआ-ही-धुँआ देते हैं, पर चन्दन की लकड़ी खुशबू के साथ धुँआ निकालती है। ऐसे-ही धर्मात्मा पुरुष के घर से आवाज भी निकलती है तो धर्म की खुशबू की निकलती है और पापियों के घर से आवाज निकलती है, तो नरक के नारकियों के जैसे लड़ने की निकलती है।

इधर से निकलो, तो आस-पास मंदिर है, मंदिर की घंटियों से पता चल जाता है कि ये जैनमंदिर की घंटियों की आवाज आ रही है। ऐसे ही किसी घर से निकलो, काटो-मारो की आवाज आ रही है तो नारकियों के घर से आवाज आ रही है। इसलिए सुबह से भैया! अच्छी आवाजें निकाला करो। वे घर धन्य हों, जिनके द्वारे से निकले, 'भो स्वामी! नमोऽस्तु।' शब्द गूंज रहे हैं और एक अभागे का घर है, बोले, 'भगाओ-भगाओ।' किसको भगा रहा था? बोले पिताजी को भगा रहा था। भैया! ठीक है? इतना नियम तो ले लो कि अपने बूढ़े माँ-बाप को घर से बाहर नहीं निकालोगे। अपने घर के किसी भी सदस्य को भगायेंगे नहीं।

ज्ञानियो! मुनि बनने की सामर्थ्य हो तो ब्रह्मचारी बनो। नहीं-तो भैया! ब्रह्मचारी बनने का शौक है, तो अपने घर की व्यवस्था लेकर कहीं भी शान्ति से रहो। वो ज्यादा अच्छा है। पर समाज पर भार बनकर रहना बिल्कुल अच्छा नहीं।

ज्ञानी ! मुनिसंघ में रहोगे तो सभी सम्मान से देखते हैं। तुम अकेले विचरण करोगे, तो आपको मालूम होना चाहिये कि महानगरों में शादीशुदा को ही किराये पर मकान मिलता है। अकेले लड़कों को तो कोई मकान भी नहीं देता। भैया! ऐसा क्यों होता है? अरे क्या पूछना? भैया! पत्नी साथ में है, तो उपद्रवी तो नहीं होगा। ऐसे ही जो एकलविहारी साधु है, लोग उन्हें भी ऐसा ही देखते हैं।

संघ में रहते हैं तो अहाहा! इनका कुल कितना बढ़िया है? ये कौन-से संघ के महाराज हैं? ऐसे भाव आते हैं कि नहीं आते? यही कारण है कि अकेले ब्रह्मचारी को नहीं घूमने का। किसी-न-किसी का नाम तो बताना ही पड़ेगा। हमसे ही कोई पूछे महाराज! कहाँ से आये हो? तो मैं भी यही कहता हूँ 'आचार्य श्री विराग सागरजी' के संघ से आया हूँ। कोई स्थान का नाम तो लेना पड़ेगा आपको, तब लोगों को विश्वास होता है।

भैया आपको मालूम होना चाहिये कि बिटिया की शादी भी करता है तो तीन-चार पीढ़ियाँ देखता है इधर-उधर की। जब राग के संबंध के लिये इतना ऊपर-नीचे देखना पड़ता है, तब श्रद्धा का संबंध होता है, तो वहाँ कुल क्यों नहीं देखा जाता है? आगम में 10 भेद किये वैयावृत्ति के। उसमें 'कुल शब्द' का प्रयोग है। सम्यक्-दृष्टि ही पण्डित है और वही मुक्ति का अधिकारी है।

पण्डितोऽसौ, विनीतोऽसौ, धर्मज्ञः प्रियदर्शनः ।

यः सदाचार सम्पन्नः, सम्यक्त्व-दृढ़ मानसः ।। सा.स.।।

ज्ञानी! ''सम्यक्त्व दृढ़ मानसः'' जिसका मन सम्यक्त्व में सुदृढ़ है। व्यवहार से सच्चे देव, शास्त्र, गुरु पर श्रद्धा है। निश्चय से आत्मतत्त्व के श्रद्धान से युक्त है। ''पण्डितौऽसौ'' वही पण्डित है। जो सम्यक्-दृष्टि है, वही पण्डित है। मुनियों को देखे, दुत्कार दे तो वह नाम का पण्डित है। भैया! तेरी आँखें काँच की हैं। भैया! उन जीवों के नैनों में तो देखो, कितना उनके नैनों में दुलार टपकता है? ये भी सोचते हैं जब सामने दिखते हैं। ऐसे वात्सल्य की आँख से देखते हैं, तब लगता है कि इन तिर्यञ्चों को भी भगवान् की पहचान है। ज्ञानी! नरों को भगवान् की पहचान न हो, तो वे तिर्यञ्च भी नहीं हैं। कितना निरीह प्राणी है? तब लगता है कि हे जीव! तूने कौन-सी मायाचारी की होगी जो इस पर्याय में गया है? लेकिन अभी परिणाम सुधर गये, तो ज्ञानी! तू परमात्मा बन सकता है। इसलिये भैया! बहुत अच्छी बात कह रहे हैं। वह पण्डित है, ''विनीतौऽसौ'' वही विनीत है, वही धर्मज्ञ है, जो सम्यक् से युक्त है। ''प्रियदर्शनः'' भैया! मैं कुछ नहीं कह रहा आपसे। एक बहुत सुन्दर शब्द का प्रयोग किया है। इस शब्द को अपने-आप में लागू करने की सामर्थ्य हो, तो तुम मुस्करा कर रहना।

हे प्रियदर्शियो! वही सबको प्रिय देखने योग्य है जो सम्यक् दर्शन से युक्त है। जिसके पास सम्यक्त्व नहीं है, वो प्रिय देखने लायक भी नहीं है। अब क्या? भैया! तू धीरे से कह देना—प्रियदर्शी है क्या? जो सम्यक्-दृष्टि होगा, वह सदाचार से सम्पन्न तो होगा।

मेरा एक सोच है, आपको भी अच्छा ही लगेगा। साधु बाद में बनना, व्रती बाद में बनना, पहले सज्जन बनना। मुनि बनने का तत्पर्य ये नहीं है कि आप सबकी इज्जत ही नाश करो। अच्छे शब्दों का प्रयोग करो, आप तो समिति वाले हो।

''जिनके वचन मुखचन्द्र तैं अमृत झरै''

आपके श्रीमुख से तो वे शब्द निकलना चाहिये जिनके सामने अमृत भी फीका पड़ जाये, पर निर्ग्रन्थ गुरु के वचन फीके न पड़ें। बीन की आवाज सुनकर कालिया नाग भी भैया बामी से बाहर निकल आता है और नाचने लगता है, तो हे योगीश्वर! तुम्हारी मधुर वाणी को सुनकर के मिथ्यात्व कालिया नाग भी नाच उठें और सम्यक्त्व को प्राप्त कर लें।

ज्ञानियो! भगवत् कुन्दकुन्द देव कह रहे हैं कि शुद्धोपयोगी को ही मुक्ति सम्भव है। जो श्रमण परिग्रह से दूर है एवं शुद्धोपयोग से युक्त है तथा ''मूलुत्तर गुण पुण्णो'' मूल और उत्तर गुणों से युक्त है, ऐसा परमयोगी ही ''सिवगदि पहणायगो'' शिवगति अर्थात् मोक्षमार्ग का नायक होता है। वही श्रमण श्रेष्ठ साधना करता है।

"आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्", आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

॥ भगवान् महावीर स्वामी की जय ॥

❖ ❖ ❖

परमात्मा सम्यक्त्व के कारण पूज्य हैं

किं बहुणा हो देविंदाहिंद-णरिंद-गणहरिंदेहिं ।
पुज्जा परमप्पा जे, तं जाण पहाणसम्मगुणं ॥147॥

अन्वयार्थ—(हो) हे भव्य! **(बहुणा किं)** बहुत कहने से क्या लाभ है **(जे)** जो **(परमप्पा)** परमात्मा **(देविंदाहिंद-णरिंद-गणहरिं-देहिं)** देवेन्द्र, नागेन्द्र, नरेन्द्र, गणधरेन्द्रों से **(पुज्जा)** पूजित हैं **(तं)** उनमें **(पहाणसम्मगुणं)** सम्यक्त्व गुण की प्रधानता **(जाण)** जानो।

''पंचमकाल में उपशम सम्यक्त्व''

उवसम्मइ सम्मत्तं, मिच्छत्तबलेणं पेल्लदे तस्स ।
परिवट्टंति कसाया, अवसप्पिणी कालदोसेण ॥148॥

अन्वयार्थ—(अवसप्पिणी कालदोसेण) अवसर्पिणी काल के दोष से **(मिच्छत्तबलेणं)** मिथ्यात्व के उदय से **(तस्स)** जीवों का **(उवसम्मइ सम्मत्तं)** उपशम सम्यक्त्व **(पेल्लदे)** नष्ट हो जाता है, फिर **(कसाया)** कषाय **(परिवट्टंति)** पुनः उत्पन्न हो जाती है।

''श्रावक की तिरेपन क्रियाएँ''

गुण-वय-तव-सम-पडिमा-दाणं-जलगालणं-अणत्थमिदं ।
दंसण-णाण-चरित्तं, किरिया तेवण्ण सावया भणिदा ॥149॥

अन्वयार्थ—(गुण) आठ मूलगुण **(वय)** बारह व्रत **(तव)** बारह तप **(सम)** समता (पडिमा) ग्यारह प्रतिमा **(दाणं)** चार दान **(जलगालणं)** जलगालन **(अणत्थमिदं)** सूर्यास्त के पश्चात् भोजन न करना **(दंसण-णाण-चरित्तं)** सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र **(सावया)** श्रावक की **(तेवण्ण किरिया)** तिरेपण क्रियाएँ **(भणिदा)** कही गई हैं।

अन्तिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेश की पीयूष देशना, जिनेन्द्र वाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवन्त हो। जयवन्त हो वीतराग श्रमणसंस्कृति।

आचार्यप्रवर भगवान् 'कुन्दकुन्द स्वामी रयणसार जी ग्रन्थ में श्रमण और श्रावक उभय धर्मों की व्याख्या कर रहे हैं। श्रावक की परम श्रेष्ठ भावना का प्रतिफल ही श्रमणचर्या है। राग से मण्डित जीव, जब अखण्डित चैतन्य पिण्ड पर दृष्टिपात करता है तो उसका मन वैराग्य से भर जाता है। अहो! भव्यों को गिरते वृक्ष को देखकर वैराग्य हो गया। ज्ञानियो! दर्पण में

चेहरा देख रहे थे भगवान् चन्दाप्रभु स्वामी पूर्व पर्याय में और देखते-देखते एक सफेद बाल दिख गया। एक सफेद बाल के दिखते ही, बनने वाले अष्टम तीर्थंकर के मन में एक भाव जाग्रत हो गया। जिसे मैं संहाल रहा था उसके बीच में ये सफेदी कहाँ से आ गई? अरे! ये सफेदी नहीं है, ये यम के दूत की सूचना है।

एक सफेद बाल को देखकर उनको वैराग्य हो गया। राजभवन को छोड़कर वन की ओर चल दिये। क्षण मात्र में चमकता हुआ चेहरा, फीका हो गया। अहो! आश्चर्य! बाल की सफेदी को देखकर वैराग्य।

ज्ञानियो! निहारो, कितने बाल सफेद हो चुके हैं? झड़ भी गये, झिर भी गये, सफेद भी हो गये, तब भी ज्ञानियो! हृदय नहीं बदला। यानि अभी तक दर्पण नहीं देखा। जिस दिन ज्ञानी दर्पण देख लेगा, उस दिन तेरा मन चारित्र में अर्पित हो जायेगा। अभी तक दर्पण नहीं देखा है। ज्ञानी! जो दर्पण देखा है, वह राग से भर कर देखा है। एक बाल के देखते ही वैराग्य हो गया। ऐसे-ऐसे योगी इस भारत की भूमि पर हुये हैं, जिन्होंने आकाश की ओर दृष्टिपात किया और टूटते तारे को देखकर वैराग्य हो गया।

वही कुन्दकुन्द स्वामी कह रहे हैं कि तुम वर्द्धमान स्वामी से पूछना। जिस जीव की आपने कल चर्चा की थी। आज का तीर्थंकर, आज का महाप्रभु, जो महाप्राणों को प्राप्त हुआ है, ज्ञानी! सम्यक्-दर्शन के साथ चारित्र ही पूज्यता प्रदान करता है। हे वर्द्धमान! आपने कितना गम्भीर चिन्तन किया। जो सबसे बड़ी धारा उनके चिन्तन में आयी थी वह ज्ञानी! अटूट धारा थी मैं नये जन्म लेकरके, किसी माँ की कोख में आकरके, किसी माँ से जन्म लेकरके, उसको प्रसूति की वेदना नहीं देना चाहता हूँ। माँ की पीड़ा को माँ ही जानती है। बेटा! तुम्हारा जन्म लेना ही हिंसा है।

अध्यात्म की उस चरमोत्कर्ष सीमा पर प्रवेश करो। बेटो! जन्म, मरण करना भी हिंसा ही है। जब जन्म होता है तो माँ का कितना रक्त बहता है? जब जन्म होता है, तो कितने आरम्भ-सारम्भ होते हैं? जब जन्म होता है तो उस माँ को कितनी वेदना होती है? माँ की वेदना की पीड़ा की हिंसा, माँ के शरीर से निकले मल आदि की हिंसा, रक्तादि में नष्ट हुये जीवों की हिंसा, और ज्ञानी! स्वयं के मुख में जा रहा अशुभ द्रव्य, उस द्रव्य में उत्पन्न हुये जीवों की हिंसा, ये जन्म के समय की हिंसा है। यदि जन्म के समय की हिंसा को इकट्ठा कर दिया जाये, जन्म के समय की हिंसा का हिसाब किया जाये, जन्म मरण की हिंसा की बात कर रहे हो,

बीच की हिंसा कितनी की है? उसके बारे में क्या सोचा है? सबको समझ में आ रहा है। जन्म मरण के बीच में जो तुम जीये थे, उस काल में तुमने कितनों को जन्म दिया और कितनों को तुमने मरण कराया है? उस हिंसा की बात क्यों छोड़ दिये? जन्म की हिंसा, मरण की हिंसा, लेकिन जन्म-मरण के बीच में जो समय तुम्हारा था एक पर्याय का, भैया! उस समय की हिंसा की बात करो।

जब आपने दूसरों को जन्म देने की बात सोची थी, उस समय कोटि-कोटि जीवों की हिंसा। जब तुम जीवन जीने के लिये व्यापार कर रहे थे, उस समय कितने और जीवों की हिंसा की है? उसका चिन्तवन कर लो। जब मरण हो रहा था, आत्मा के प्रदेश संकुचित हो रहे थे, उस समय जो पीड़ा हो रही थी, उस पीड़ा के काल में भाव तुम्हारे विघटित हो रहे थे, वो भावहिंसा। ज्ञानी! मरण के बाद जो शरीर तुम छोड़कर जा रहे थे, उस शरीर में कोटि-कोटि जीव उत्पन्न हो रहे थे प्रतिक्षण, नष्ट हो रहे थे प्रतिक्षण। शरीर में जो जीवों की हिंसा हुई है, उसमें निमित्त तेरा ही था।

अब करो प्रश्न स्वयं से। क्या जन्म लेना अहिंसा है? जीवन जीना क्या अहिंसा है? मरने पर क्या अहिंसा है? इसलिये अहिंसक तो वही हो सकता है, जो जन्म-मरण नष्ट करने का पुरुषार्थ कर रहा है। उसका नाम निर्ग्रन्थ मुनि है। उसका फल तीर्थंकर , अर्हन्त, निर्ग्रन्थ और सिद्धपरमेश्वर है।

धन्य हैं वे जीव जिन्होंने ऐसे खोटे काल में जन्म लेकरके भी अहिंसकों की आराधना करने के परिणाम किये हों। भैया! विश्वास रखना, धर्मप्रभावना की दृष्टि यदि देखना है तो ज्ञानी! इसको श्री से मत नापो। यदि इसे नापना है तो नन्हें बच्चों की श्री जी की भक्ति से नापो।

आज भगवान् महावीर का निर्वाण हुआ है, वर्द्धमान की आत्मा सिद्धालय में पहुँच चुकी। अनन्तानन्त योगियों की आत्मा सिद्धालय में है और बहुत सारे पञ्चम काल के मुनिराज स्वर्ग में बैठे हुये, निहार रहे होंगे अपने अवधिज्ञान से और सिद्धों के कैवल्य में झलक रहा होगा कि भरतक्षेत्र में और मध्यभारत के मध्य में, सागर में आज भी जिनशासन की पताका लहरा रही है। क्योंकि ये नन्हे से बच्चे श्रमणसंस्कृति को जयवन्त करने के लिये आज भी ध्वज उठाये हुये हैं।

ज्ञानियो! तीर्थंकर की वाणी, चन्द्रगुप्त के स्वप्न और भरत चक्रवर्ती के स्वप्न आज भी फलित हो रहे हैं। निर्वाणदिवस पर कोई ये न सोच बैठे कि अब तो भगवान् चले गये, शासन

कौन चलायेगा? इस बात को यहाँ के बच्चों ने स्पष्ट कर दिया कि भगवान् गये हैं, पर भगवान् का शासन नहीं गया है। भगवान् की वाणी नहीं गयी है और भगवान् की मुद्रा नहीं गयी है। यही कारण है कि कितने सारे बच्चे संगठित होकर खड़े हो गये हैं वीर शासन की प्रभावना करने।

ज्ञानियो! इस प्रभावना का श्रेय किसी को जाता है तो न किसी पुरुष को, न किसी महिला को, न किसी भगवान् को, न किसी साधु को। इस प्रभावना का श्रेय अगर किसी को जाता है तो सामने देखो, कुछ लिखा है—''माधुर्य गुण प्रीतिः''। इस प्रभावना का श्रेय जाता है किसी को, तो ''माधुर्य गुण प्रीतिः''। यदि जीवन में मधुरता है तो सब जगह आनन्द है और यदि मधुरता ही निकल गई, तो ज्ञानी! सब जगह फीका-ही-फीका है।

परमात्मा के द्वार पर जब भी पहुँचना तो ''माधुर्य गुण प्रीतिः''। साधु के पास जब भी पहुँचना तो ''माधुर्य गुण प्रीतिः'' और जब तू अपनी माँ के पास जाता है तो ''माधुर्य गुण प्रीति'' और भगवती माँ जिनवाणी के चरणों में आया है तो ''माधुर्य गुण प्रीतिः''। जगत् में किसी को एकसाथ बिठालना है तो ज्ञानी! व्यवस्था बनाने का परित्याग कर देना और लोगों को समझाने का भी त्याग कर देना।

अगर तेरे पास कुछ है, तो विश्वास रखना कि यदि तू श्रीफल लेकर कभी जायेगा तो भी एक भी चींटी नहीं आयेगी और हाथ से उठा-उठाकर लायेगा, उनका घात ही कर पायेगा, मिला नहीं पायेगा। यदि शक्कर घोल देगा, मिश्री छोड़ देगा, आपको कहीं भी श्रीफल लेकर नहीं जाना पड़ेगा, चींटियाँ स्वयं ही आ जायेंगी। ऐसे-ही तुम्हारे हृदय में वात्सल्य है, माधुर्यता है, तो सारे लोग अपने-आप इकट्ठे हो जायेंगे।

इतने लोग यहाँ आते हैं, सब 'माधुर्य गुण प्रीतिः'। इस जीवन में कुछ सीख पाओ या न सीख पाओ, साधु-संगत का फल इतना ही सीख लेना 'माधुर्य गुण प्रीतिः'। ज्ञानियो! आपको निहारना हो तो निहार लो। जो शक्कर में मिठास नहीं होती है, वह गन्ने में मिठास होती है। ज्ञानियो! जो गन्ने में मिठास नहीं वह स्वभाव में मिठास होती है।

घर-घर को सुधारकर चलना है, घर-घर को बनाकर चलना है तो सूत्र याद कर लेना। 'माधुर्य गुण प्रीतिः'। भगवान् तीर्थंकर वर्द्धमान स्वामी सिंह की पर्याय में जब बैठे थे तो कोई अच्छे काम नहीं कर रहे थे, वो एक मृग का घात कर रहे थे। उस काल में भी यदि उनको किसी ने सम्यग्दृष्टि बनाया है तो वह सूत्र था 'माधुर्य गुण प्रीतिः'। उन दो (युगल) मुनिराजों ने यही तो कहा था। उन्होंने ये कभी नहीं कहा था कि हे अभागे, पापी सिंह! तू ये क्या कर रहा है? मालूम, ऐसा बोलते तो सिंह तो सिंह ही था, वह तो बलवान था, उन मुनिराजों पर भी

आक्रमण कर सकता था। पर उन मुनिराज ने क्या कहा? हे भावी भगवान् अहिंसा का नाद करने वाले आपको हिंसा शोभा नहीं देती है। इस सत्य को सुनते ही, वह मंत्र भीतर प्रवेश कर गया, जैसे अमृत का पान कर लिया हो। वह पंजा-पंजा रह गया। आँखों से आँसू टपकने लग गये। 'माधुर्य गुण प्रीतिः'।

अपने कृत्य को देखकर पश्चाताप में डूब गया और यहीं से ज्ञानी! वर्द्धमान की वर्द्धमान बनने की प्रक्रिया प्रारम्भ हो गयी। वो दिन था आज का। सिंह की आत्मा नरसिंह हो गयी। जो नरों में सिंह होते हैं, उनका नाम तीर्थंकर जिनेन्द्र परमात्मा होता है। सिंह जंगल में हाथी के दांत खींचता है, परन्तु नरसिंह जो होते हैं वे कर्मों के दांत खींचते हैं। जो नरसिंह होते हैं वे दन्ती के दाँत नहीं खींच रहे हैं, वे कर्म रूपी दन्ती के दाँत खींचते हैं और इन्द्रियों का दमन करते हैं। इसलिये इनका नाम है नरसिंह।

सब लोग एक क्षण के लिये पावापुर के सरोवर पर पहुँच जाओ। वे वर्द्धमान परम औदारिक शरीर से मण्डित पावापुर के सरोवर के मध्य विराजते हैं। तभी सौधर्म इन्द्र का सिंहासन हिलता है। अपने अवधिज्ञान से लगाता है कि वीर प्रभू वीरगति को प्राप्त हो गये हैं। पूरा स्वर्ग का मण्डल मध्यलोक में उतरकर खड़ा हो गया। राजे, महाराजे, नर-नारी सब पावापुर की ओर दौड़ रहे हैं। वीर अपनी वीरता में लीन हैं। वर्द्धमान तो सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति शुक्लध्यान में लवलीन होकरके अशेष कर्मों की प्रकृतियों को क्षय करने में लगे थे।

तेरहवें गुणस्थान की अंतिम धारा, जहाँ आत्मा का उत्कृष्ट स्थान था। परमौदारिक शरीर कुछ क्षण पूर्व दृष्टिगोचर हो रहा था। शुक्लध्यान की उत्कृष्ट सीमा में पहुँचकर वे वर्द्धमान स्वामी अ, इ, उ, ऋ, लृ इन पाँच ह्रस्व अक्षर प्रमाण काल चौदहवें गुणस्थान में प्रवेश किये और अन्तिम शुक्लध्यान को माड़ करके व्युपरत क्रिया-निवर्तिनी शुक्लध्यान में लीन हुये। जो दिख रहा था शरीर, उस शरीर से आत्मा क्षणमात्र में निकल गई। एक समय प्रमाण काल में, जो आत्मा मध्य लोक में विराजती थी, वह सिद्धलोक में विराजमान हो गई।

वो वर्द्धमान 'थे', शब्द प्रारम्भ हो गया। वर्द्धमान 'हैं', शब्द चला गया। हे यमराज! तूने किसी पर भी करुणा नहीं की। तीर्थंकरों जैसी आत्मा को नहीं छोड़ा। पण्डित-पण्डित मरण हो गया। सारा शरीर कर्पूर की भांति उड़ गया। नख, केश अवशेष बचे। सौधर्म इन्द्र निहारता है कि प्रभू विराजते थे। गये तो कहाँ गये? पुनः देखता है अपने अवधिज्ञान से कि प्रभू तो सिद्धलोक के स्वामी हो गये और वह नख, केश को उठाकरके गोशीर चन्दन में संस्कार करता है।

प्रभू के उन अंगों का संस्कार करके, जो राख थी उसको अपने माथे पर लगाता है। अहोभाग्य समझता है और इसके बाद, इस पंचम काल के प्रारम्भ होने पर, इस भरत क्षेत्र में और जब तक कोई पुनः तीर्थंकर आयेगा तब तक भरत क्षेत्र के अन्तिम तीर्थेश की राख अपने माथे पर लगा लूँ।

क्षायिक सम्यक्-दृष्टि सौधर्मइन्द्र निहारता है और प्रभू के निर्वाण जाने के उपरान्त अशरीरी सिद्धों की भक्ति करना प्रारम्भ कर देता है। हे ज्ञायकस्वरूपी भगवान्! आप अब कभी नहीं आयेंगे इस लोक में–

अट्ठविहकम्म वियला सीदीभूदा णिरंजणा णिच्चा।
अट्ठगुणा किदकच्चा लोयग्गणिवासिणो सिद्धा।।68 गो.जी.।।

आठ कर्मों से रहित हो गये हैं, अनन्तगुणों से मण्डित हो गये हैं। अनन्तसुखों को प्राप्त हो गये हैं। हे प्रभू! आप नित्य निर्विकार हो चुके हैं। ज्ञानियो! जिनशासन में एक बार परमात्मा बनने के उपरान्त आत्मा पुनः वापिस नहीं आती है, जले बीज के समान। जैसे-जला बीज अंकुरित नहीं होता है, ऐसे-ही जिस आत्मा के कर्मबीज नष्ट हो चुके हैं। अब वे भगवान कितने ही कल्प काल क्यों न बीत जायें, दूसरे तीर्थंकर का जन्म तो हो जायेगा, लेकिन जो तीर्थंकर निर्वाण को प्राप्त हो चुके हैं, पुनः इस संसार में नहीं आयेंगे।

ज्ञानियो! वर्द्धमान तो कर्मों से मुक्त हो गये। ये नरसिंह (श्रमण) भी आज से चतुर्मास से मुक्त हो गये। अभी तक तो बन्धन था, पर अब खुल चुके हैं। देश में जितने भी श्रमण होंगे, वे सब अपने विहार के विचार कर रहे होंगे, क्योंकि अब कोई के बन्धन में नहीं बचे। स्वतंत्र हो चुके हैं।

ये क्षेत्र की पुण्य वर्गणा और श्रावक के पुण्य का नियोग होता है कि जिस क्षेत्र में योगियों के चरण पड़े, जिस क्षेत्र में साधकों की साधना हो, समाधि हो, दीक्षा हो, ये सब भव्यों के भाग्य का ही परिचय होता है।

पुण्यात्मा के पुण्य के अभाव में तीर्थंकर का भी विहार नहीं होता। ये जीवन में अपनी डायरियों पर नोट कर लेना। तीर्थंकर भगवान् किसी के बुलाने पर नहीं आते, किसी के श्रीफल चढ़ाने पर नहीं आते। जिनके भाग्यवृद्धि के भाग्य होते हैं, भगवान् का विहार उस दिशा में सहज हो जाता है।

''भवि भागन वश जोगे वशाय''

भव्यों के भाग्य के नियोग से भगवान् का भी विहार होने लगता है। सम्पूर्ण समाज से मेरा कहना है कि भैया! जैसे आपने ये चातुर्मास पूर्ण सफलता के साथ, प्रभावना के साथ पूर्ण किया है, वैसे-ही भविष्य में आने वाले श्रमणों, साधकों, निर्ग्रन्थों का चातुर्मास भी सानन्द पूर्ण करना।

समाज में, नगर में कोई भी एक साधु विराजमान रहता है तो पूरे नगर का माहौल ही बदला रहता है। हजारों विद्वान् एक साथ उपदेश करके चले जायें और एक निर्ग्रन्थ आकर विराजमान हो जाये, विद्वान् तो जब बोलेगा, तब मात्र प्रवचन होता है। श्रमण यदि आहार को निकलते हैं तो देखो कैसे नन्हे बच्चों से लेकर बूढ़े तक 'हे स्वामी! नमोऽस्तु, नमोऽस्तु।' ज्ञानियो! अभागे लोगों के घर में तो मात्र आज ही चौक पुरेगा, लेकिन पूरे साल भर चौक सूना रहता है, क्योंकि आज दीपावली है। कुछ ऐसे भी लोग होते हैं कि भैया! चौक पूरो, नहीं तो पैसा नहीं आयेगा। इस राग में चौक बनवाते हैं। पर भाग्यवान लोगों के घर में तो 365 दिन ही चौक पुरे रहते हैं। जिस घर में निर्ग्रन्थ योगियों के चरण पड़ते हैं, वहाँ साल भर दीपावली पर्व होता है।

मालूम, ये बालक क्या बोल रहे थे? बहुत ज्ञानी हैं। बोल रहे थे कि महाराज कुछ लोगों के घर में एक दीपावली होगी आज और कुछ लोगों के घर में दो दीपावली होंगी। कैसे? बोले-जिन लोगों के घर में निर्ग्रन्थों के चरण पड़ेंगे उनके घर में दो दीपावली होगी।

ज्ञानियो! निर्वाण महोत्सव से तात्पर्य लड्डू चढ़ाने से मत समझ लेना। भगवान् को मिठाई खिलाना मत समझ लेना। ये निर्वाण लाडू जो है, अनन्त आनन्द का प्रतीक है। ये सिद्ध परमेश्वर अनन्त आनन्द से युक्त हो चुके। जैसे-शक्कर का ठोस लड्डू, कहीं से पोला नहीं है, ऐसे-ही सिद्धों का सुख पोला नहीं है। चारों ओर से मीठा-ही-मीठा होता है। ऐसे ही सिद्धों का सुख अनन्तसुख है, मीठा ही मीठा होता है।

सुबह ही निर्वाण लाडू चढ़ना चाहिये और शाम को दीपावली होती है। क्यों? इसका हेतु समझना। जब प्रभू को निर्वाण होना था, गौतम स्वामी प्रच्छना कर रहे थे कि स्वामी! मुझे कैवल्य क्यों नहीं हो रहा है? तो वर्द्धमान के श्रीमुख से आया था—गौतम! आपको अभी महावीर में राग है।

हे मुमुक्षुओ! जब वर्द्धमान का राग गौतम को कैवल्य से रोककर रखे था, इन मुमुक्षुओं को जगत् के अन्दर नारियों का राग कहाँ से भगवान् बनायेगा? भगवान् तो तभी बन पायेगा जब राग का विसर्जन कर पायेगा। एक पिता हो, वह भी कैसा हो? जब वह अन्तिम श्वास

भर ले, तो बेटे के भावों से पूछना, कैसा लगता है? जिसके तीनलोक के पिता तीर्थंकर-जैसे महावीर आज चले गये हों, उस समय गौतम स्वामी से पूछना। जिस समय महावीर का निर्वाण हुआ, तो गौतम स्वामी ने देर नहीं लगाई और उसी क्षण से बैठ गये और ध्यान में लीन हो गये। दूसरा दिन भी नहीं होने दिया। अंतरंग की विशुद्धि की महिमा तो देखो, प्रातःकाल की बेला में गुरु को निर्वाण हुआ, प्रभू का निर्वाण हुआ और गौतम स्वामी शिष्य कैवल्य को प्राप्त हो गये।

सौधर्म इन्द्र ज्ञानी स्वर्ग में भी नहीं पहुँच पाया होगा, तुरन्त सूचना मिल गयी। चलो, अभी तो सुबह निर्वाण महोत्सव मनाके आये थे, अब शाम को केवलज्ञान महोत्सव मनाने आ गया। जो हमारे यहाँ दीपावली मनती है, उसका उद्देश्य है कि भगवान् गौतम स्वामी को कैवल्य प्रकट हुआ था, उसकी खुशी में दीपक जला रहे हैं और भगवान् महावीर के निर्वाण की खुशी में लाडू चढ़ा रहे हैं।

केवली तो अनन्त हुये हैं। उनकी खुशी में दीपावलियाँ क्यों नहीं मनी? भैया! आपको मालूम होना चाहिये कि ये ऐसे केवली हैं, ये अनुबद्ध केवलियों में प्रथम केवली हैं इसके बाद 3 केवलियों के बाद अनुबद्ध केवली परम्परा समाप्त हो गयी थी। ये तीर्थंकर के साक्षात् गणधर परमेष्ठी थे और अन्तिम गणधर होने के नाते, अन्तिम केवली होने के नाते और तीर्थंकर के मुख्य गणधरों में, होने से इतना आनन्द था।

ज्ञानियो! भगवान् गौतम स्वामी को कैवल्य प्रकट हुआ। इसलिये आज ध्यान रखना। जगत् की कोई लक्ष्मी की पूजा नहीं। ये कैवल्य-लक्ष्मी की पूजा है। अनन्तचतुष्टय की पूजा है और अनन्तचतुष्टय की पूजा में बहुत सारी रूढ़ियाँ समाप्त हो गयीं।

धन्य है उन बच्चों को वे कह रहे हैं कि महाराज! पटाखे नहीं फोड़ेंगे। ज्ञानियो! यही साधु-संगत का फल प्रतिफल में परिवर्तित हो रहा है। कोटि-कोटि जीवों की रक्षा हुई है। और-तो-और पटाखों की आवाज बन्द हो गई, नमोऽस्तु शासन की आवाज गूंज रही है। श्री वीरशासन जयवन्त हो।

भैया! कुन्दकुन्द स्वामी से मिले आप चार माह। श्रमण दिन में एक बार नहीं तीन बार प्रतिक्रमण करते हैं और प्रतिक्षण ये सूत्र बोलते रहते हैं—

खम्मामि सव्व जीवाणं, सव्वे जीवा खमंतु मे।
मित्ती मे सव्व-भूदेसु, वैरं मज्झं ण केणवि ।। 3 प्रतिक्रमण।।

जबसे कलश स्थापना हुई है, तब से संघ में आपको मालूम है कि वृद्ध साधु भी हैं, युवा हैं ये सब और ये छोटे-छोटे बच्चे, दर्जनों ब्रह्मचारी हैं। इन सबकी साधना में आपने कितना सहयोग किया है? माँ अपने बेटे को सूखा खिला देती है, पर मुनि को कभी सूखा नहीं खिलाती है। कितनी ही ऐसी माता होंगी जिनके चौक तो पुरे रहे, लेकिन चौक तक मुनिराज नहीं पहुँच पाये, तब भी इनके चेहरे प्रसन्न रहे।

ज्ञानियो! चातुर्मास में किसी भी जीव को संघ के माध्यम से किंचित् भी मन में क्लेश पहुँचा हो, क्लेश को प्राप्त हुये हों तो, पूरे संघ को क्षमा करना आप लोग। गल्ती कभी श्रावक करता नहीं है, भूल से भी हो जाये। मेरा यहाँ तक विश्वास है कि सच्चा गुरुभक्त अपने गुरु के प्रति कभी गल्ती करता नहीं है। सच्चा श्रावक कभी गल्ती करता नहीं है और भूल से हो जाये, तो मुनिराज का कर्तव्य है कि उनकी गल्ती को क्षमा कर दें। इसलिये आपकी गल्तियाँ सब क्षमा।

तन-मन से आपने पूर्ण भक्ति की है। सारे के सारे लोग चार माह तक लगे रहे। ये ध्रुव सत्य है कि अगर मंच बना है तो सिंहासन दिख रहा है। मैं बैठा दिख रहा हूँ, चौकी दिख रही है। ऊपर का तो सब नजर आ रहा है, लेकिन इसके नीचे जो बल्ली लगी हुई है, वो किसी को नजर नहीं आ रही है। यहाँ का बच्चा-बच्चा बल्ली है, माता-माता बल्ली है, बहनें-बहनें और भैया-भैया बल्ली हैं। सबके मन में परिणाम विशुद्ध थे। एक भैया तो कह रहा था कि महाराज पूरा चातुर्मास समाप्त हो गया समीकरण-समीकरण में।

आप समझो उसकी भाषा। समीकरण का अर्थ समझते हो? सब गणित पढ़े हुये हैं। समीकरण का अर्थ है समतल। कहीं गड्ढे नहीं हुये, कहीं खाइयाँ नहीं हुई। आज वर्तमान में हमारी समाज बहुत ज्ञानी हो चुकी है। वो सम्हलना जान चुकी है। वो सीख चुकी है। हित-अहित मुझे मालूम है। चन्द लोगों के राग में हम धर्म से वंचित न हो जायें। पूरे देश की समाज को बोध हो चुका है। भैया! जब तक नेता कुछ कराये न, तब तक उनका नाम नहीं होता। ध्रुव सत्य है कि वे भी भगवान्-आत्मा हैं। किसी भी जीव के प्रति अशुभ भाव मत लाना। यदि कोई गाली दे, तो उससे ये कहना कि धन्यवाद तुझे, तूने मेरे राग में अपना मुँह तो खराब किया। क्षमा करदो और जय जिनेन्द्र बोल देना, जिससे मुँह शुद्ध हो जाये।

कुछ लोग बहुत समझदार होते हैं, घर के द्वार पर गड्ढा है उसके भरने के लिये मिट्टी ढोने नहीं जाते, जब वारिस होती है तो गड्ढे के आगे थोड़ा-सा ऊँचा उठा देते हैं या लकड़ी,

रेत डाल देते हैं। अब रहस्य समझो आप। कहते हैं कि जब पानी बरसेगा तो पानी के साथ अकेला पानी नहीं बहता है, साथ में मिट्टी लेकर आता है। इसलिये मिट्टी एकत्रित होते-होते हमारा गड्ढा भर जायेगा। ऐसा ही यहाँ के लोगों ने किया है कि माँ जिनवाणी बरसी है और इन्होंने अपने मन में भावों की दीवाल खड़ी करके, चैतन्य अखण्डता की जो मिट्टी बहकर आ रही थी, सभी के हृदय के गड्ढे भर चुके हैं। इसलिये साधु के चातुर्मास का सार ही ये है कि टूटते हृदय जुड़ जायें। इसका नाम ही योग है। भैया! इतना ध्यान रखना कि जो चातुर्मास में समाज की अखण्डता को देखा है, एक आंगन में आकर के बैठे हैं, ये समाज ऐसी ही बैठती रहे, बस, मुझे और-कुछ नहीं चाहिये। धर्मप्रभावना करने की कोई आवश्यकता नहीं है, यही प्रभावना है।

कुन्दकुन्द स्वामी को दोनों समय आपने सुना है। जब दोनों समय सुना है तो मेरा सभी समाज से कहना है कि, भैया! जब कोई गाली देने आये, तो उसे क्षमा कर देना, मुड़कर गाली देने मत जाना।

ये शब्दों की भाषा मत समझना, यह हृदय की आवाज को समझना, क्योंकि उन योगियों ने पंजा मारते शेर को उपदेश दिया था और शेर ही आज के निर्वाण को प्राप्त हुये महावीर हैं। जब मृग को मारने वाला शेर महावीर बन सकता है। परिणामों की भूल है, कभी छोटे जीव की हो जाये तो पुनः बदल जाती है यदि तेरा परम मित्र भी शत्रु बन गया हो, तब भी तू मित्र ही मानके चलना और गहरा मित्र मान के चलना। क्यों? पहले मित्र था राग का, अब मित्र हो गया तेरे 'वैराग्य' का। राग में तुम कुछ भी कर सकते थे। आज समझ में आ गया कि कोई किसी का होता नहीं है। ज्ञानी! ये तुझे शिक्षा देकर गया है। ये तेरा परम मित्र हो गया है। वर्द्धमान का तो निर्वाण हो गया है। उधर प्रभू को निर्वाण हुआ, इधर कैवल्य ज्योति प्रकट हो गयी। तुम विषाद मत करो, उत्साह मनाओ। इधर चातुर्मास पूर्ण हुआ, उधर तुम्हारा विधान प्रारम्भ हो गया। नियति को कोई टाल नहीं सकता। ये जैन मुनि ही एक मात्र विश्व में ऐसी संस्था हैं, जिनकी कोई संस्था नहीं होती है। फिर भी एक ऐसी आलौकिक संस्था है, जो पूरे देश को मान्य होती है। एकमात्र दिगम्बर मुनि है, जिनकी कोई संस्था नहीं होती है। पर ऐसी संस्था है कि सारे विश्व के लोग जिस संस्था को मानते हैं। नमोऽस्तु बोलते हैं और इनका नियत है भैया! जब वायु विचरण करती है, तो शीतल बहती है। दिगम्बर मुनि विचरण करते हैं, तो अपने स्वभाव में समरसी भाव से शीतल होते हैं। इसलिये मुनियों का विहार निश्चित होता है।

अब तुम टेंशन मत करना। मानसिकता दूसरी बनाना है कि भैया! आये राम, गये राम। आत्माराम, सदा राम। मालूम मैं ये क्या बोल रहा हूँ? मैं 'मूलाचार' से बोल रहा हूँ। मूलाचार जी में लिखा है कि इस प्रकार की भाषा का प्रयोग शुरू कर देना चाहिये, क्योंकि चार माह में इनको लगाव हो गया है। अचानक तुम पिच्छि-कमण्डलु लेकर चले जाओगे तो इनको धक्का लगेगा। इसलिये ये आगम में लिखा है कि इनको महसूस होने लग जाये कि अब तो ये साधुओं का धर्म है। विचरण करना इनका स्वभाव है। तो श्रावक अपने धैर्य को प्राप्त हो जाये।

हमारे आचार्यों ने कितना ध्यान रखा? कि श्रावक को धक्का नहीं लगना चाहिये कि अचानक चल दिये। पर ज्ञानियो! कितना अच्छा काम होगा जब श्रमण विहार करेंगे, गली-गली में विहार कर रहे होंगे, वो भी एक आनन्द का क्षण होगा। ज्ञानी! यही तो 'समय सार' है। अभी सुना था 'समय सार' अब विहार करो 'समय सार' में।

इसलिये भगवान् कुन्दकुन्द स्वामी कह रहे हैं कि ये सब आस्था का प्रभाव है श्रद्धा का प्रभाव है। कभी आपको सुनाई पड़ा, कभी किसी श्रावक तक ने भी नहीं कहा कि महाराज-सिर दर्द कर रहा है। ध्रुव सत्य है कि सुख के दिन सहज ही निकल जाते हैं और दु:ख का एक दिन भी भारभूत होता है।

ध्रुव सत्य है कि जब सुख में, आनन्द में समय निकलता है तब बड़ी-बड़ी काली अमावस्या की रातें पूर्णमासी की उजाली रातें हो जाती हैं। आज अमावस की रात भी वर्द्धमान के निर्वाण से पूर्णिमा की ही रात हो गयी और केवली की कैवल्य ज्ञान ज्योति से आज की अमावस की रात्रि पूर्णिमा की रात्रि बन गयी। आज के अर्हन्त के भक्त उस अमावस्या की रात को अपने उत्साह, उमंगों के दीपकों से पूर्णिमा की रात्रि बनायेंगे।

ज्ञानी! चातुर्मास पूरा हो गया है, लेकिन 'रयण सार' पूरा नहीं हुआ अभी। अभी विकल्प मत करना 'रयणसार' तो पूरा होगा ही, यदि पर्याय रही।

उवसम्मइ सम्मत्तं, मिच्छत्तबलेणं पेल्लदे तस्स ।
परिवट्टंति कसाया, अवसप्पिणी-कालदोसेण ।। 148 ।।

आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी कह रहे हैं। पञ्चमकाल में हर व्यक्ति के मन में प्रश्न आता है कि महाराज! जिनवाणी सुनते-सुनते इतने विशुद्ध परिणाम होते हैं, लेकिन घर पहुँचते-पहुँचते परिणाम परिवर्तित क्यों हो जाते हैं? भैया! इसमें आप अपने भावों को ही सर्वथा दोष मत दो। द्रव्य, क्षेत्र, काल का भी प्रभाव पड़ता है।

ऐसा काल का प्रभाव पड़ता है। हुण्डावसर्पिणी काल चल रहा है। बारिश के क्षण में मिट्टी में पानी डाल दो और उस मिट्टी को घर में जाकरके अन्दर रख देना। तब भी 2-3 दिन सूखने में लगेंगे। ठण्डी के काल में भी सूखने में समय लगता है। परन्तु ग्रीष्म की तपन में मिट्टी में पानी डाल दो और अन्दर रख दो, कमरे के अन्दर रख दो। तब भी सुबह की मिट्टी शाम को सूख जाती है।

ये खोटा काल ऐसा चल रहा है कि यह ग्रीष्मकाल की दुपहरिया चल रही है। इसमें ज्ञानी! कितनी ही जिनवाणी डालो, जैसे-ही बाहर रखो, सूख जाती है। तुरन्त सूख जाती है। ये काल का प्रभाव है। लेकिन समझदार लोग जो होते हैं, अपनी बाटलों को ठण्डा रखना चाहते हैं। खसखस की फट्टी लगा देते हैं और पानी छिड़कते रहते हैं।

भैया! कितनी ही दुपहरिया चल रही हों अपन को तो 'समय सार' छिड़कते ही रहना है, क्योंकि छिड़कना यदि बन्द कर दिया तो लू लग जायेगी। यदि पञ्चमकाल में आपको इस लू से बचना है, तो समय-समय पर जिनवाणी को छिड़कते रहना, धार्मिक अनुष्ठान करते रहना, निर्ग्रन्थों की सेवा करते रहना, आराधना करते रहना, श्रमणों का सहयोग करते रहना।

ग्रीष्म की दुपहरिया भी निकल जाती है और फिर बदलियाँ आती हैं आषाढ़ की और फिर मोर चीखने लगते हैं, चिल्लाने लगते हैं। ऐसे-ही ये पञ्चम छठवाँ काल, सब काल निकल जायेंगे, तब भारत की भूमि में पुनः चतुर्थ काल की बदलियाँ आयेंगी। पुनः भगवान् की वाणी गूँजेगी और यहाँ से ही सारे जीव मुक्ति को प्राप्त करेंगे। यह क्षेत्र पुनः विदेहक्षेत्र बनेगा। इसलिये तैयारियाँ करो। तैयारियाँ करें आज से ही। ये मत सोचना कि अब तो महावीर चले गये, अब तो छठवाँ काल दिखेगा। छठवें के बाद, ज्ञानी! पुनः चतुर्थ भी आयेगा। टेंशन नहीं लेना। जेठ के महीने में पूरे बुन्देलखण्ड के खेत सूखे दिखते हैं, लेकिन तब भी चेहरे मुस्कराते हैं, क्योंकि सूखने के पहले उनके दाने निकालकर रख लिये अपने घर में। माँ जिनवाणी अपने पास है। निर्ग्रन्थ गुरु अपने पास हैं। तुम बिल्कुल मत घबराना।

आचार्य शान्तिसागर महाराज की समाधि हुई तो पण्डित जगनमोहनलाल शास्त्री रोने लगे। समाधि के पहले पूछने लगे कि महाराज! मेरा कौन होगा? अभी तो मेरे भाव होते थे तो में उत्तर भारत से दक्षिण में आकरके पूछ लेता था। आचार्य महाराज ने मात्र एक शब्द बोला-पण्डित जी! आपका मैं हूँ। मेरा कौन है? पण्डित जी बोले-आपका तो धर्म है। महाराज श्री बोले-पण्डितजी, जो मेरा है, वही तेरा है। मैं चला जाऊँगा, लेकिन धर्म जाने वाला नहीं है।

''केवलि पण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि''

मनीषियो! केवलि की शरण में चले जाना। ''उवसम्मइ सम्मत्तं'' उपशम भाव सम्यक् बने 'मिच्छत्त बलेणं पेल्लदे तस्स' मिथ्यात्व के उदय से इस खोटे काल में उपशम सम्यक्त्व नष्ट हो जाता है। क्यों? 'अवसर्पिणी काल दोसेण', ये अवसर्पिणी काल का दोष है। क्षण-क्षण में आदमी को गुस्सा आ जाता है। क्षण-क्षण में कुभाव हो जाते हैं। क्षण-क्षण में श्रद्धा टूटती है। 'परिवट्टंति कसाया' ये कषाय का परिवर्तन पुनः-पुनः हो रहा है। ये वर्तमान में अवसर्पिणी काल, उसमें भी हुण्डा-अवसर्पिणी काल है।

भैया! यदि कोई तुझे मंदिर में भी गाली दे जाये, तो बिल्कुल ठण्डे रहना। ये उसका दोष नहीं है, ये तो हुण्डा-अवसर्पिणी काल का दोष है। भैया! अभी तक तो तू अपने भाई का भाई था, लेकिन आज से तू प्राणीमात्र का भाई बन गया। मंदिर में क्या, तेरे घर के आंगन में कोई गाली देकर चला जाये तो इस गाथा को याद रखना। ये अवसर्पिणी काल का प्रभाव है, कि लोगों के परिणाम कलुषित हो रहे हैं। फिर भी ध्यान रखना।

जब मौसम आयेगा, तो ये ही भगवान् बनेंगे। जो मुझे गाली दे रहे हैं, उनके प्रति भी अशुभ भाव नहीं लाना।

हे ज्ञानी! समझो, श्रावक का आचार समझो। क्या कह रहे हैं भगवान् कुन्दकुन्द देव? एक ही गाथा में श्रावकाचार भर दिया है। धन्य हो उनकी प्रज्ञा।

गुण-वय-तव-सम पडिमा-दाणं जलगालणं अणत्थमिदं।
दंसण-णाण-चरित्तं, किरिया तेवण्ण सावया भणिदा ।। 149 ।।

आठ मूलगुण, बारह अणुव्रत, बारह तप, समता, ग्यारह प्रतिमा, चार दान, जलगालन सूर्यास्त के पश्चात् भोजन नहीं करना, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र यह श्रावक की तिरेपन क्रियाएँ कही गई हैं।

ज्ञानियो! यह संक्षेप में समझना। शेष कल चर्चा करेंगे यदि पर्याय रही तो।

"आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्", आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

॥ भगवान् महावीर स्वामी की जय ॥

❖ ❖ ❖

ज्ञान मुक्ति का कारण है

णाणेण झाणसिद्धी, झाणादो सव्वकम्मणिज्जरणं ।
णिज्जरणफलं मोक्खं, णाणब्भासं तदो कुज्जा ॥150॥

अन्वयार्थ—(णाणेण) ज्ञान से **(झाणसिद्धी)** ध्यान की सिद्धि होती है **(झाणादो)** ध्यान से **(सव्वकम्मणिज्जरणं)** समस्त कर्मों की निर्जरा होती है। **(णिज्जरणफलं)** निर्जरा का फल **(मोक्खं)** मोक्ष है **(तदो)** अत: **(णाणब्भासं)** ज्ञानाभ्यास **(कुज्जा)** करना चाहिये।

अर्थ—ज्ञान से ध्यान की सिद्धि होती है, ध्यान से समस्त कर्मों की निर्जरा होती है, निर्जरा का फल मोक्ष है, अत: ज्ञानाभ्यास करना चाहिये।

''ज्ञान-भावना से तप-संयम-वैराग्य होता है''

कुसलस्स तवो णिवुणस्स संजमो समपरस्स वेरग्गो ।
सुदभावणेण तत्तिय, तम्हा सुदभावणं कुणह ॥151॥

अन्वयार्थ—(कुसलस्स) कुशल व्यक्ति के **(तवो)** तप होता है **(णिवुणस्स)** निपुण व्यक्ति के **(संजमो)** संयम होता है **(समपरस्स)** समताभावी के **(वेरग्गो)** वैराग्य होता है और **(सुदभावणेण)** श्रुत की भावना से **(तत्तिय)** ये तीनों होते हैं **(तम्हा)** इसलिए **(सुदभावणं)** श्रुत की भावना **(कुणह)** करो।

अर्थ—कुशल व्यक्ति के तप होता है। निपुण व्यक्ति के संयम होता है। समताभावी के वैराग्य होता है और श्रुत की भावना से ये तीनों होते हैं, इसलिए श्रुत की भावना करो।

देशना

अन्तिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेश की पीयूष देशना, जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवन्त हो। जयवन्त हो वीतराग श्रमणसंस्कृति।

आचार्यप्रवर कुन्दकुन्द स्वामी रयणसार जी ग्रन्थ में आत्मा के प्रधान गुणों की व्याख्या कर रहे हैं। आज जैन दर्शन की हर विद्या को दार्शनिक, तात्त्विक दृष्टि से समझने की आवश्यकता है। ''आत्मज्ञानं प्रधानं'' आत्मज्ञान ही प्रधान है। सम्यक् ज्ञान ही प्रमाण है। लोग इतना भ्रम से ग्रसित हैं, दु:ख से अभिभूत हैं, कि जब विसमता सामने आती है तो उनको मात्र इतना लगता है कि उपचार होना चाहिये। विचार, आचार समाप्त हो जाता है। ये जीवन का राग और इन्द्रियसुख का राग, विचार-आचार इन दोनों को नष्ट कर देता है। फिर विवेक और

शास्त्रीय ज्ञान का पाण्डित्य समाप्त हो जाता है। ऐसे अज्ञानी जीव भारत की भूमि पर, जैनकुल में जन्म ले लिये, जिन्होंने पत्नी के व्यंतर के उतारने के राग में आकरके एक बकरे और मुर्गे की बलि दे दी। चतुर्दशी के दिन तो चाण्डाल ने भी हिंसा नहीं की थी। दिगम्बर मुनि से नियम लिया हो और किसी अज्ञानी पाखण्डी ने, एक ऐसे धर्मात्मा पुरुष को उलझाके रखा और चतुर्दशी के दिन जीव का घात करा दिया। ये सब क्यों हुआ? हे ज्ञानी! हिंसा से शुभ होता, तो अहिंसा धर्म का क्या होता?

कोई अपनी विक्रिया से, अपनी मायाचारी से, अपने पुरुषत्व के बल से चमत्कार दिखा सकता है। आज कोई बालक है, दुबला-पतला है, क्षीणशक्ति है और दूसरा अधिक शक्तिशाली, मस्त है। दुबले-पतले चार बालकों को एकसाथ पटक देता है। ये ज्ञानियो! कोई चमत्कार नहीं है, उसके शरीर का बल है। ये कोई अतिशय नहीं है, उसके शरीर का बल है। ऐसे कोई देव हैं, व्यन्तरादि हैं। वह देवगति का जीव है। उसके पास शक्ति-सामर्थ्य है। तद्जन्य पर्याय के कारण उसको उतनी ताकत प्राप्त है। वह अपनी ताकत का प्रयोग करके आपके इष्ट-अनिष्ट में सहकारी बन जाता है। उसके सहकारीपने को देखकरके चमत्कार मान करके, जीवों का बलिदान देकरके ये मत समझ लेना कि बलिदान से तू स्वस्थ हुआ है। जीव की हिंसा करने से तू स्वस्थ हुआ है या धन मिला है, उसने तेरे लिये दुर्गति भेजने का उपयोग किया है। सम्यक्-दर्शन की रक्षा करना चाहते हो तो सबसे पहले चार गतियों के जो लक्षण हैं उनका ज्ञान करना। हमारे भैया वकील साहब जी हैं, वो इतनी ताकत रखते हैं कि किसी को भी घुमा सकते हैं मस्तिष्क से। यदि नहीं घुमा सकते होते, तो बिना हल चलाये, बिना तराजू चलाये वो परिवार कैसे चला रहा है? समझो, ध्यान से सुनना। वकील साहब! न हल की मुठिया पकड़ते आप, खेत की मेंड़ पर भी नहीं जाते हो, तराजू भी नहीं तोलते हो, फिर भी आपका परिवार चल रहा है। बड़े आनन्द के साथ, इज्जत के साथ रह रहे हैं। इसमें कौन काम कर रहा है?

जिनका तन काम करता है, वे ज्यादा सुख में नहीं रह पाते हैं। जिनका ज्ञान काम करता है, वे ज्यादा सुखमय होते हैं। तन की मेहनत करने वाले मजदूर कहलाते हैं और जो मस्तिष्क से मेहनत करते हैं, वे बाबू जी बने होते हैं। जो परिवार को छोड़कर मस्तिष्क से मेहनत करते हैं, वे मुनिराज कहलाते हैं। जो मुनिपने का भी राग छोड़ देते हैं, वे केवली भगवान् होते हैं। जो देह से रहित होते हैं, ऐसे सिद्ध भगवान् होते हैं। चार गतियों का लक्षण समझिये आप। मुझे अक्सर लगता है उन विद्वानों को देखकरके, जो समाज को दुःखी देखकर जादू-टोना, तंत्र-मंत्र में फँसा देते हैं तब इनको वहाँ वस्तुस्वरूप की व्याख्या करनी चाहिये।

किसी बात को आश्चर्यचकित होकर देखना, ये दोष है। किसी भी बात को चमत्कारिक रूप में निहारना, ये दोष है। अठारह दोषों में आश्चर्य भी एक दोष है। जिनदेव के आश्चर्य नहीं होता। आश्चर्यचकित होना, ये दोष है। ये 'अहा' तुम्हारा किसमें जा रहा है? तुम सामान्य देखो। यथार्थ बताऊँ मैं आपको? मैं कह रहा हूँ, आप सुन रहे हो, ये ध्रुव सत्य है। ये झलक रहा है, जो मैं कह रहा हूँ। किसी शिल्पकार ने बहुत बड़ी आकृति देकर के एक पुतला खड़ा कर दिया। उस पुतले को देखकर तू आश्चर्य चकित हो रहा है। हे ज्ञानी! पाषाण को तू नहीं निहार रहा है, पाषाण को देख लेता, फिर आकृति को देखता। भाव-प्रमेय में सामान्य है, वहिर्प्रमेय में विशेष है। पाषाण तो पाषाण है। आकार देखोगे तो नानारूप है। किसी के पिता की तस्वीर है तो किसी की माँ की तस्वीर है। जिसे तू माँ की तस्वीर कहता है, पिता की तस्वीर कहता है, उसे ही कोई अपनी पत्नी की तस्वीर बोलता है।

भैया जिसे तू अपनी माँ की तस्वीर कहेगा, उसे तेरा पिता किसकी तस्वीर कहेगा? उसी में एक को मातृभाव झलक रहा है और दूसरे बेचारे को पत्नीभाव झलक रहा है। इसलिये ज्ञानियो! जितने आकार हैं, सब भ्रम के कारण हैं। उनमें राग-द्वेष है। इसलिये निराकार अशरीरी भगवान्-आत्मा, जो है, उनके न राग है, न द्वेष है। वो अमूर्तिक है। परम निरंजन स्वरूप जो भगवान् है, वो निराकार है, निरालंव है।

शक्ति को शक्ति स्वीकारिये। कोई चमत्कार भी दिखा रहा हो, उसको भी नमस्कार नहीं करने का। वो तो विद्या है, उसको क्या नमस्कार करना? बहुत धैर्य चाहिये।

मैंने चमत्कार के लड्डू देखे हैं, मैंने चमत्कार की मिठाईयाँ देखी हैं। लेकिन जो चमत्कार दिखा रहा था, बाद में मैंने उसे कटोरा लेकर भीख माँगते देखा है। वह कह रहा था कि इसमें डालो। चमत्कार के लड्डू से पेट भरता होता, तो वह अंत में पैसे क्यों माँगता? इसका तात्पर्य है कि चमत्कार झूठा है। मेरा व्यापार सत्य है। जैसा मेरा व्यापार होगा, वैसा ही मेरा फल होगा। समझो, रहस्यों को रहस्यों में डाल दिया है। इसमें सामान्य लोग अज्ञानी बनकर पागल हो रहे हैं। माँ! एक बड़ा रहस्य बताऊँ आपको। इस बात की आप पूर्ण ज्ञाता हो। जब तक तुम घूँघट में रहती हो। जिस दिन तुम अपने यहाँ बहू बनकर आयी थीं, उस दिन घूँघट डाल कर आयी थीं कि नहीं आयी थीं? घूँघट पड़ा था जितना लम्बा, उतने ही लोग झाँक-झाँक के देख रहे थे। यहाँ तक कि अड़ोस-पड़ोस के लोग देखने आते थे। ये बात सत्य है कि जितना गूढ़ रखा जायेगा, उसमें उतना ही आकर्षक होता है। यदि आप और घूँघट डाले रहतीं, तो आपकी और कीमत होती जबसे तूने घूँघट उठाया है, तुझे कोई देखता भी नहीं है।

मुझे मालूम है कि चमत्कार कैसे बनते हैं? आजकल मंदिर नहीं बन रहे हैं। मंदिर तो तोड़े जा रहे हैं। जो प्राचीन मंदिर हैं, उनका अज्ञानी लोग नाश कर रहे हैं, तोड़ रहे हैं। बुद्धि तो भ्रष्ट हो गई बेचारों की। मंदिरों को तोड़ करके, हाल बना करके, भगवान् को बिठाल रहे हैं। ये मंदिर नहीं हैं, ये तो हॉल हैं। ये हैं गर्भालय, जहाँ कोई णमोकार भी पड़ता है तो गूंजता है। उसकी तरंगें ऊपर जाती हैं। सारे वातावरण को प्रभावित करती हैं। ये गूढ़ रहस्य है। चमत्कार भी तुम्हारे हाथ में है और नाश भी तुम्हारे हाथ में है।

दोनों हाथ जोड़ो दोनों हाथों को मुकुलित करो, अब अनुभव करो कि दोनों हाथ के मध्य में कुछ हो रहा है क्या? कुछ नहीं हो रहा क्या? क्या हो रहा है? फिर खोल दो। जो बन्द हाथ में गर्मी महसूस हो रही थी अब क्यों नहीं है? ये गर्मी कहीं से लाये हो कि पहले से थी। तो फिर आ क्यों रही है? अगर पहले से थी। वैसे ही हे ज्ञानियो! हर वस्तु में शक्ति विद्यमान है। उपयोग की विधि मालूम नहीं होती है, इसलिए आप ठिठुर रहे हो। यदि हाथ बन्द कर लो, तो गर्मी आती है। ऐसे-ही अपने मुख को बन्द कर लो, श्वासों को बन्द करलो, आँखों को बन्द करलो, योग को सम्हाल लो, तो ज्ञानी तेरे अन्दर वाष्प बनेगी और तेरी वाष्प ही तुझे सिद्धालय की ओर ले जायेगी। वो शक्ति भी तेरे पास है। पर ये ज्ञानी लोगों को कैसे ठगते हैं ? जिसने इस बात का ज्ञान कर लिया, वह उसे चमत्कार संज्ञा दे देता है। मैं कह रहा हूँ कि इसे आप चमत्कार संज्ञा क्यों दे रहे हो? इसे वस्तुस्वभाव संज्ञा क्यों नहीं देते? हाथ गरम हुआ, हाथ गरम ही नहीं हुआ है, और-भी कुछ हुआ है। यदि आप रीढ़ की हड्डी सीधे करके यूँ ही बैठे रहे और प्रभू की ओर निहारते रहे तो कुछ अद्भुत घटित होगा। जिन विद्यार्थियों को अपने चित्त एकाग्र करना हो, विशुद्धि और बुद्धि बढ़ाना हो, मस्तिष्क स्वस्थ रखना हो, तो जितने प्राचीन जिनबिम्ब हों, उनके सामने हाथ जोड़कर उनके मस्तिष्क को निहारना। बेटा! विश्वास रखना, अभागे पापी जीव को देखोगे, चित्रों को देखकर चारित्र भ्रष्ट होता है कि नहीं होता है?

टी.वी. के चित्रों को देखकर चारित्र भ्रष्ट हुआ कि नहीं हुआ है? और जब तीनलोक के नाथ को निहारेगा, तो तेरी बुद्धि क्यों नहीं खुलेगी? चारित्र क्यों नहीं बढ़ेगा? बस, बैठकर देखते रहना। ऐन्टीना व्यवस्थित होता है तो चित्र भी आते हैं। ज्ञानी! ऐसे ही तेरा मनरूपी ऐन्टिना एकाग्र रहेगा, तो विशुद्धि बढ़ेगी और ज्ञान अपने आप छमा-छम बढ़ेगा। मैं जानकर शब्द का प्रयोग नहीं कर रहा हूँ, क्योंकि दुनियाँ में जितने प्रयोग हो रहे हैं, भैया! मुझे सभी प्रयोग मालूम हैं। भारतीय विद्या जिसे लोगों ने अपने नामों से प्रवाहमान किया है, वो यथार्थ में तीर्थंकर अर्हन्त की वाणी थी। जिसको लोगों ने त्राटक बोल दिया है।

कुछ नहीं था त्राटक। मैं तो कह रहा हूँ। आप तो भगवान् को निहारिये। कोई क्या कर रहा है? एक काला बिन्दु रखवा दिया, कोई दीपक दिखवा रहा है कि इसको देखो। कोई अग्नि दिखा रहा है कि इसको देखो। तो हमारे योगियों ने आपसे पहले से कह दिया है कि सामने जिनदेव हैं, उनको निहारो और जिनदेव न हों तो अपनी नाक को निहारो। नासाग्र दृष्टि से बैठेगा तो एकाग्र भी हो जायेगा, तेरी बुद्धि भी बढ़ेगी, आँखों की ज्योति बढ़ेगी और बुद्धि भी तेरी भ्रष्ट हो जाने से बच जायेगी। जीव का जैसा परिणमन होता है, उसका क्षयोपशम तद्रूप परिणमन करता है। देखो, जिसके क्रूर परिणाम हैं, वह दीपक जलाकर त्राटक करेगा। वह दीपक में हिंसा करेगा, घृत को जलायेगा और ज्ञानी होगा तो कहेगा कि कुछ नहीं, जिनदेव के सामने बैठूँगा और अर्हन्त को देखूँगा।

आप मुनिराज हो, तो प्रतिमा लेकर घूमोगे क्या? क्योंकि जिनदेव को देखना है। नहीं, आप सिर पर श्री जी को लेकर नहीं चलेंगे। आप तो अपने आप को देखिये। रहस्य है, रहस्य। हर बात को रहस्य में डालकर छुपाकर रख देना और लोगों को आश्चर्यचकित कर देना, वे ही तो रहस्य के आश्चर्य होते हैं। वो धीरे से मिथ्यात्व की ओर मुड़ जाते हैं। ज्ञानी यथार्थता को यथार्थ कहिये।

भैया! दीवालघड़ी को तिरछा रखेगा, बन्द होगी कि नहीं? और ये भैया गया, बोला, मैं दिगम्बर जैनसमाज का अध्यक्ष हूँ। मुझे चमत्कार आता है। मैं तुम्हारी बन्द घड़ी को ठीक कर सकता हूँ। वो मैकेनिक था भैया। वो था ज्ञानी। उसने जाकरके घड़ी सीधी कर दी। जैसे-ही उसने सीधी की, वह चलना प्रारम्भ हो गई।

भैया! अब आप लोग गये और चार श्रीफल देकर आ गये, बोले, धन्य हो, आपने चमत्कार दिखा दिये। हाँ, तेरी बुद्धि में चमत्कार है, पर उससे पूछो क्या यह चमत्कार है, तो वह कहेगा कि वास्तव में तू ठगा गया है। वह सीधे से बता भी देगा तो भी आप लोग मानने को तैयार नहीं हैं। आपको मालूम होना चाहिये कि जब तिरछी-आड़ी मशीन रखी थी, तो वह बन्द हो जाती है। ऐसे-ही जब तुम तिरछे बैठोगे, तो तुम्हारी कमर टेढ़ी हो जायेगी और गर्दन टेढ़ी हो जायेगी और ज्ञानी! उल्टे-सीधे बैठोगे तो रोग बढ़ेंगे-ही-बढ़ेंगे।

कोई योगी आया और उसने कहा- मैं आपको स्वस्थ किये देता हूँ। आप सीधे बैठो, उसने कोई दवाई नहीं दी, कोई उपचार नहीं किया। आप को व्यवस्थित आसन लगवा दिया। जो आपके कलपुर्जे इधर-उधर हो रहे थे, वे अपना-अपना काम करना प्रारम्भ कर दिये और स्वस्थ हो गया, तो सामने वाला कहने लगा कि देखो, मैंने तुम्हें दवा नहीं दी है, तुझे दुआ दी

है, तू ठीक हो गया। न दवा से ठीक हुआ है और न ही दुआ से ठीक हुआ है, ज्ञानी! व्यवस्थित बैठने से ठीक हुआ है। क्यों डॉक्टरो! ऐसा नहीं है क्या? तो तुम लोग क्यों ठगते हो लोगों को? यथार्थ मानो भैया! में जब से मुनि बना हूँ, त्यागी बना हूँ, पहले मेरी बुद्धि भी छोटी थी और देश में घूमते-घूमते नाना लोगों के नाटक देखे और देखते-देखते मैंने अध्ययन किया कि बेचारे ठगिया लोग हैं लोगों को ठगने के लिये। 'आ हा' करने से कोई मुमुक्षु नहीं बनता भैया। ये तत्त्व का निर्णय होना चाहिये, गहरा-गहरा।

ये हमारे गाँव के लोग हैं। आँखें खोलते, आँखें मींचते और कहते है कि मुझे आत्मा दिखती है। भैया! वहाँ के लोगों को आँखें खोलने-मींचने में आत्मा दिखती है। सुनो-आँखों की टिमकार जितनी अधिक होगी, उतनी हिंसा अधिक होगी। जिस व्यक्ति के जितने परिणाम विकारों से भरे होंगे, किसी भी प्रकार का विकार होगा, उसकी श्वासों की गति, आँखों की टिमकार उतनी तीव्र होगी। जिसके भीतर में भय, काम, क्रोध, मान, माया, लोभ कोई भी कषाय सता रही होगी, उसकी श्वास की गति बढ़ जायेगी और नेत्रों की टिमकार बढ़ जायेगी।

चोर की आँखों से मालूम चलता है कि चोर है। बालक! तूने लड्डू छिपकर खाया है, तो तेरी श्वासें बता देंगी कि तू माँ से छिपकर लड्डू खाकर आया है। जो लड्डू माँ ने दिया है, उसमें स्वाद है। उसी डिब्बे से तूने चुराकर खाया है। पर ज्ञानी! स्वाद तो रहेगा, आनन्द नहीं है बोल बेटा! ऐसा नहीं है क्या? ऐसा ही है। फिर भी चुरायेगा क्या? नेत्रों की टिमकार, श्वासों की गति वृद्धि को प्राप्त होती है। हे ज्ञानी! जितना विशुद्ध परिणामी होगा, जितना ईमानदार होगा, जितना सहज परिणामी होगा, जितना निर्दोष संयमी होगा, उस व्यक्ति को कोई प्राणायाम करने की आवश्यकता नहीं है। नाक के नथुने फुफकारने की आवश्यकता नहीं है। विश्वास रखिये, कोई पेट फुलाने-पुचकारने की आवश्यकता नहीं है।

जितना विशुद्ध परिणाम होगा, उसकी श्वासों की गति सहज मंद हो जायेगी। लोगों को अपनी श्वास पर नियंत्रण करना चाहिये। जिसने श्वास की सिद्धि कर ली, लक्ष्य था आत्मा पर। आचरण में जिसने श्वास की सिद्धि कर ली, सो सब अज्ञानी उसी को देखने लग गये। जिसने श्वास की सिद्धि कर ली है, आत्मा की सिद्धि कर ली है। ज्ञानी! आत्मा की सिद्धि में ही श्वास की सिद्धि है। आत्मा की सिद्धि जिस दिन पूर्ण हो जाती है, उस दिन श्वास का आना-जाना बन्द हो जाता है।

सबका छल चल रहा है। कैसे लोगों को वंचित किया जा रहा है? कमी आपके अन्दर ये है कि हम आपको सीधी विद्या बतायें भी तो आप करने को तैयार नहीं हैं। तुलसी में

आक्सीजन होती है। यदि कोई यूँ कहे कि घर-घर में तुलसी लगालो, तो आप ये कहेंगे कि घर में वृक्ष लगाने की क्या आवश्यकता है? तो लोगों ने क्या किया? कि इसको तुम देव मानके ढारो, तो लोग भगवान् के नाम से पूजने लगे। घर के वातावरण की शुद्धि के लिये लोग उसे पूजना प्रारम्भ कर दिये। ऐसा ही है।

अब ये मेरे से मत पूछना कि आप ये कहाँ से सीखे हो। ये पूछने का समय नहीं है। मैं जो कह रहा हूँ उसे किसी वैज्ञानिक से पूछ लेना और उसको समझ में न आये तो उसको मेरे पास भेज देना। इंजीनियर-बुद्धि पकड़ना भैया। रहस्य को रहस्य कर दिया और लोगों को भ्रम में डाल दिया और यूँ कह दिया कि देखो ये तो मेरे हाथ से ही बनता है। ये तुम नहीं कर सकते हो। मैं क्यों पागलपन में जाऊँ?

जो वस्तु है, आकृति है, किसी शिल्पकार ने दी है। ठीक है, आप पहले मूल पाषाण को निहारिये, फिर शिल्पकार के द्वारा उत्कीर्ण आकृति को देखिये। उससे डरने की क्या आवश्यकता है? अब किसी ने उसको प्रतिष्ठित किया है, उस प्रतिष्ठाचार्य का क्या सदाचार है? अब चमत्कार किसने कर दिये? जो मंत्र था, मंत्र वह शब्द-शक्ति है। इससे में प्रभावित नहीं हो रहा हूँ। प्रभावित हो रहा हूँ, पर प्रभावित नहीं होता हूँ। प्रभावित तो लस्सी से भी होता हूँ। लस्सी किससे बनती है? दही से और बूरे से लस्सी बन जाती है। उसको पीते ही तराबट आ गई उसको। प्रभावित हुआ कि नहीं? चित्त प्रसन्न हो गया, शरीर तराबट महसूस कर रहा है। प्रभावित तो हुये हो, लेकिन प्रभावित हुये क्या? कोई दैव शक्ति आ गई क्या? कोई व्यंतर की शक्ति आ गई क्या? कोई भगवान् की शक्ति आ गई क्या? अरे! वो तो लस्सी थी। दही में बूरा मिला देने से उसका परिणमन हो गया है और उसको पीने से तरावट मिल रही है। प्रभावित हुआ हूँ, पर प्रभावित नहीं हूँ।

जितने ज्योतिषी और जादू-टोने वाले हैं, वे मुझसे परेशान हैं। सत्यता यह है कि जो मैं कह रहा हूँ, ऐसा वो करें, तो उनकी दुकान ज्यादा चलेगी और लोगों को मिथ्यात्व में तो नहीं डालेंगे। मैं लस्सी का निषेध नहीं कर रहा हूँ, पर ये कह रहा हूँ कि लस्सी को कोई दैविक शक्ति मत बना दीजिये। वो लस्सी है। ऐसे-ही ज्ञानियो! जैसे पाषाण की प्रतिमा को मंत्र से मंत्रित किया जाता है, अभिमंत्रित किया जाता है और जितने विशुद्ध परिणामों से प्रतिष्ठा होती है तो जो मंत्र की शब्दशक्ति है, वो प्रभावित करती है। ज्ञानी! मंत्रशक्ति ऐसी होती है जो पाषाण को भी परमात्मा के रूप में प्रकट करा देती है। ये मंत्रशक्ति का प्रभाव है। लेकिन मंत्रशक्ति को हम गूढ़ में नहीं डालना चाहते हैं, क्योंकि वो भी एक पुद्गल की शक्ति है।

जो मंत्रशक्ति है, वो पुद्गल की अर्जित शक्ति है। अरे ज्ञानी! जब शब्दवर्गणा पौद्गलिक हैं, उस पौद्गलिक शब्दवर्गणा से इतना प्रभाव हो सकता है कि रोते को हँसाया जा सकता है, हँसते को रुलाया जा सकता है। मंत्र ही तो चल रहा है। तुम इतने सारे लोग बैठे हो, में अकेला बोल रहा हूँ, मौन क्यों हो?

कल एक श्रावक ने पूछ लिया था मेरे से-महाराज श्री! क्षमा करना। एक बात पूछना है आपसे। मैंने कहा, पूछ लो भैया! क्या पूछना है? महाराज श्री! क्या आप प्रवचन के समय हम लोगों के ऊपर कोई मंत्र छोड़ देते हो? मैंने कहा, क्यों? बोला बच्चे भी शांत बैठे होते हैं। कोई हल्ला करने वाला नहीं होता। यहाँ तक कि छोटे-छोटे शिशु हैं, वो भी नहीं रोते हैं। आप कीलित करते हो क्या? मैंने कहा-हाँ, तू बिल्कुल सही कह रहा है। मैं कीलित करता हूँ, पर ध्यान रखना, कीलें नहीं हैं? तंत्र क्या है? हे ज्ञानी! अर्हन्त की वाणी ही तंत्र है। वो ही महामंत्र है। उस मंत्र को जो अपने आप में धारण कर लेता है, वो अपने आप में कीलित हो जाता है।

अर्हन्त की देशना ही मंत्र है। मंत्र किससे लिखे जाते हैं? वर्णों से ही तो लिखे जाते हैं और वाणी क्या है? वर्ण ही है। ज्ञानी! गाली भी तो मंत्र है। जिससे आकर्षित हुआ जाये, जिससे आकर्षित किया जाये, वही तो मंत्र है। आपने देकर देखी किसी को गाली? जरा दूर से देना थोड़ा। भैया! तू गाली दे रहा था और कह रहा था कि मैं मंत्र कर रहा हूँ। हाँ, बिल्कुल मंत्र कर रहा है। अभी जो हाथ जोड़े है मुमुक्षु, उसके हाथ मारने को हो जायेंगे। दूर से भी करो, तो भी। मंत्र किसे कहते हैं? उतने दूर उसके हाथ जुड़े हुये हैं। ये यहाँ से गाली का प्रयोग कर रहा है। जैसे ही गाली सुनता है, नेत्र लाल हो गये, नाक फड़कने लग गयी, भृकुटियाँ चढ़ गईं। ओ हो! शब्दशक्ति कितनी महान् होती है? उसने ऐसा प्रयोग किया, सो ऐसा हो गया। वह धीरे से कहता है, भैया! मुझे क्षमा कर देना, मेरे से भूल हो गई, मैं तो आपका सेवक हूँ, आप महान् हो, मुझे क्षमा कर दो।

विश्वास रखना, इतना निर्दयी भी नहीं है। वह कहेगा, हाँ, भैया! मैंने क्षमा कर दिया। ये क्या हो गया? ऐसा नहीं होता क्या? मंत्र चलाना सीखो। नाद की जो भाषा है, नाद की विधि मालूम होना चाहिये

''ब्रह्मानन्द स्वरूपोऽहं''

क्या हुआ? इसलिये जो नाद है, वो ध्वनि है। जो ध्वनि है वह अक्षर का विकल्प लेकर नहीं चलती। क,च,ट,प ये तरंगें चंचल रूप में आ रही हैं। ओऽम्....ये नाद जब ब्रह्मनाद होता

है तो नाभि से मस्तक तक गूँजता है। तब विकारी तरंगें विलीन हो जाती हैं और विशुद्ध वर्गणायें अन्तस् में प्रवेश कर जाती हैं। यह नाद जो है, जिसको चन्द्र नाद कहा है ''ऋषिमण्डल स्तोत्र'' में अर्हद्नाद कहा है। जो अर्हद्नाद है, वो ही अशुभ का घात करने वाला है। इसलिये माताओ! यदि स्वस्थ रहना चाहती हो, घर के वातावरण को स्वर्गमय बनाना चाहती हो, तो जब-जब तुमको समय मिले, बतयाना बन्द करके नाद को सुनना।

यथार्थ मानिये, गम्भीर रोग से दूषित प्राणी भी होगा, वो भी यहाँ आनन्द महसूस करेगा। कुर्सी पर बैठने वाला, वो भी जमीन पर बैठा मिलता है। भैया! सही बात है कि नहीं? आज उपदेशों की आवश्यकता है। आज वस्तुस्वभाव की व्याख्या की आवश्यकता है। जितने जो हास्पिटल चल रहे हैं, यदि मानसिक तनाव को दूर करने की व्यवस्था की जाये, तो शायद नये-नये हास्पिटलों की आवश्यकता न पड़े। अब भैया! देख, तेरे घर में कमरे हैं तीन और तीन कमरों में तू घुस के रहेगा और शुद्ध वायु मिलेगी नहीं, तो मस्तिष्क दर्द करना ही है तेरा, आँखें भी दर्द करेंगी। अब जायेगा तू हास्पिटल में, कि मेरी आँखें दर्द हो रही हैं। वैध आँखों की दवाई देगा, कमरे बड़े करने की दवाई नहीं देगा। तू उससे आँखों की दवाई लेकर आयेगा और बन्द कमरे में डालेगा। पहले से ही कमरे ये गरमागरम और ऊपर से दवाई और डाल लिये। पहले तो ठण्डा लगेगा, लेकिन बाद में और दिक्कत बड़ेगी।

आप विश्वास मानो, सुबह से आप थके-थकाये होते हो और घर के भीतर पंखों की हवा में सो रहे होते हो, सो और बीमार हो जाते हो। वहीं तुम घर के बाहर निकल कर देखो, आपको हल्का महसूस होता है कि नहीं होता? रहस्य पकड़िये। ये इतने विशाल जिनालय क्यों ऐसे बनाये गये हैं? खुले। भैया! हजार सिर का कोई देवता यहाँ आकर खड़ा हो जाये और वो कहे कि मंदिर तोड़ दो। मंदिर मत तोड़ देना कभी। बुजुर्गों की सम्पत्ति है। तुम बना नहीं सकते कभी तो तोड़ने का विचार मत करना।

तुम्हें कोई विशाल मंदिर बनाना हो, तो दूसरा नया बना लेना, लेकिन इस मंदिर को ऐसा ही बना रहने देना। जिस पंचायत, जिस श्रेष्ठी ने इस मंदिर की नींव रखी होगी, वो पुण्य के नियोग से स्वर्ग में देव हुआ होगा, तो वो वहाँ भी ताक रहा होगा, कि मेरे बेटों ने इस मंदिर को कैसे सजाके रखा है? प्राचीनता को नाश करने का विचार भी मत लाना। रहस्य समझो। कषायिक भाव में भीतर के रहस्य नष्ट होते हैं। गाली दिये, दूसरे को आकर्षित किया। आह्वानन् में, रोने में, इस सब में भाषा का भिन्न-भिन्न प्रयोग होता है।

भो ज्ञानी! हे मूढ़! क्या शांत बैठा है? कुछ हुआ कि नहीं हुआ। क्या मूढ़ बोल दिया है? उत्तेजना बढ़ गई। हे मुमुक्षु! अपने भीतर के भगवान् को देख। भाषा में औषधियाँ। जिन-जिन को अपने घर को पूर्ण स्वस्थ रखना हो, वे हाथ ऊँचे तो करो। मैं व्यवहार से बोल रहा हूँ। घर को स्वस्थ तभी रख पाओगे, जब तुम अपने भीतर के घर को स्वस्थ रखोगे। जिसका भीतर का भाव स्वस्थ होता है, उसकी बाहर की भाषा स्वस्थ निकलती है और जिसकी भाषा स्वस्थ निकलती है। वह दूसरों को स्वस्थ परिणमन करती है। मरीज जाता है वैद्य के पास, वैद्यजी! बोलिये, क्या है? क्या आत्मीयता दिखाता है? उसके शुद्ध भाषण से आधा रोग तो वहीं ठीक हो जाता है।

कहीं यमराज का सगा भैया मिल गया, 'ओ हो हो! बहुत सीरियस है, सम्भावना बहुत कम दिखती है।' वो बेचारा बचने वाला भी होगा तो तेरी बात सुनकर चला जायेगा। ज्ञानी! इस भाषा का प्रयोग नहीं होना चाहिये। हाँ, यदि सीरियस है, तो क्या बोलना चाहिये? भैया! मैं उपचार अपनी तरफ से पूर्ण कर रहा हूँ। मेरा आपसे अनुरोध है आप सब प्रभू का नाम लीजिये और में अपना काम कर रहा हूँ। तो ज्ञानी! तुझे मालूम है कि आयुकर्म के क्षीण होने पर न तंत्र काम में आते, न मंत्र काम में आते, न औषधि काम में आती है। ये तभी तक काम में आते हैं, जब तक आयुकर्म शेष है। तू कितना हितेषी हो जायेगा? तू यूँ कहना कि मैं अपना काम प्रारम्भ कर रहा हूँ, तुम लेटे-लेटे करोगे क्या? इसलिये भगवान् का नाम लो। हे ज्ञानी! तू उसका परम मित्र हो गया। जैसे ही भगवान् का नाम लिया, तूने उसका हाथ पकड़ा और उसका 'अर्हन्त नाम सत्य' हो गया। कम-से-कम भगवान् का नाम लेते-लेते तो गया। पर वैद्य की दृष्टि 'श्री' और रोगी की दृष्टि जीने पर, ये दो दृष्टियाँ जिसकी लगी हैं उसका कभी समाधिमरण नहीं हो सकता। ज्ञानी! मंत्र क्या था? प्रशस्त, संस्कारित वर्णों की शैली। उच्चारण की जो शैली है, वही मंत्र है। इसलिये शब्दशक्ति पौद्गलिक है और एक-दूसरे को प्रभावित करती है, इसलिए हम इसको भी आश्चर्य में नहीं डालते हैं कि किसी मंत्र से ऐसा हो गया। वो तो ऐसा होना ही था, तुमने क्या किया? कोई गाली देगा, तो सामने वाले को गुस्सा आयेगी। इसी प्रकार से यदि महामंत्र का पाठ करेगा तो तेरा इष्ट होगा।

आश्चर्य में जाने की आवश्यकता नहीं है। हल्दी में चूने को डालेगे तो रंग बदलेगा कि नहीं। एक भैया कह रहा है कि मैं इंजीनियर हूँ, मैंने ऐसा तंत्र किया है, कि देखो, पीली हल्दी, और सफेद चूना बदल गया और लाल रंग हो गया। अरे! तुझे मालूम होना चाहिये कि रासायनिक परिणमन हुआ है। एक-दूसरे के मिश्रण से तीसरी पर्याय का जन्म हुआ है। ऐसे-ही,

हे ज्ञानियो! कुछ नहीं है, रासायनिक परिणमन है। भावों को मिश्रित करके जो बात की जाती है, उसका नाम 'प्रवचन' होता है।

हे ज्ञानी! जो अपने स्वार्थ को लेकर बात की जाती है। उसका नाम नेताओं का भाषण होता है। जो दूसरे को प्रभावित करने के लिये बोला जाता है, वह जादूगर की भाषा होती है। जो भीख मांगने के लिये की जाती है, वह पण्डितों (ब्राह्मणों) की भाषा होती है। दक्षिणा कैसे अच्छे से मिलेगी, उतनी मधुर भाषा बोलनी चाहिये।

आप विश्वास रखो, मूंगफली बेचने वाले की भी भाषा अलग होती है। यदि इनको भेजा जाये कि मूंगफली बेच कर आओ तो वो मूंगफली बेचके नहीं आ पायेगा। पहले इनको मूंगफली बेचने की भाषा सीखना पड़ेगी। भैया! इनको भिखारी बनाके भेज दिया जाये कि भीख मांग कर लाओ, तो भैया खाली झोली लेकर आयेगा। भाई भीख भी माँगना है, तो आपको भिखारी की भाषा सीखना पड़ेगी। जब भिखारी को भिखारी की भाषा में भीख मिलती है तो यदि तू दिगम्बर मुनि बनकर दिगम्बर मुनि की भाषा नहीं सीख पाया, तो भगवान् कैसे बन पायेगा? यहाँ भाषा समिति, वचन गुप्ति, सत्य महाव्रत, सत्य अणुव्रत और सत्य धर्म ये सब वचनों की शिक्षा है। ज्ञानी! कभी भी कपड़े उतारकर फेंक मत बैठना, जब तक यहाँ की भाषा न सीख पाओ।

हर क्षेत्र की भाषा भिन्न है, पर जिस क्षेत्र में प्रवेश करोगे, वहाँ की भाषा ही प्रभावित करती है। मुमुक्षु! आपके संसद भवन की अलग भाषा होती है। मैं तो इन योगियों से कहता रहता हूँ बार-बार, कि जैसे ही किसी परिसर में प्रवेश करो वहाँ की भाषा को सुनकरके बोध होता है कि अमुक परिसर है। ऐसे-ही तुम लोग 24 घण्टे मुख से उन बातों को ही निकालना या मौन रहना। ताकि बाहर का कोई व्यक्ति आकर निहारे तो कहे कि ये योगियों की परिषदि है, इसमें योगमय भाषा ही चलती है, इसमें चकार-मकार की भाषा का प्रयोग नहीं होता और निर्ग्रन्थों की भाषा तो अलौकिक भाषा है।

एक श्रावक अपनी पत्नी को लेकर आये और बोले, महाराज! मैं तो नहीं आ रहा था। लेकिन पारस टी.वी. पर हमारी देवी ने आपके प्रवचन सुने, तब से लगी थी कि एक बार दर्शन तो करा के लाओ, इसलिये में इसको दर्शन कराने लाया हूँ। मैंने कहा, क्यों? ऐसा कैसे हो गया?

बोले-महाराज जी! क्या मालूम। वो शब्दों को सुनकर आ गये। अब कल्पना करो, जब यहाँ बैठकरके व्यक्ति बात कर रहा है और वहाँ टी.वी. पर देख करके कोई प्रभावित हो गया।

अब समझ में आ रह है कि तीर्थंकर भगवान् की देशना को सुनकरके एक दिन में हजारों-हजारों लोग दीक्षा लेते थे, इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। जितना तुम्हारी वाणी में मंत्र होगा, उतने ही लोग आकर्षित होंगे। जब तक तीर्थंकर की दिव्य-ध्वनि नहीं खिरती, तब तक तीर्थंकर के समवसरण में दीक्षार्थियों की संख्या भी नहीं बढ़ती। भगवान् को केवल ज्ञान होने के बाद जब सभा लगती है, तभी लोग आते हैं। जब तक वो मुनिराज रहते हैं, सामान्य रूप से विचरण करते रहते हैं।

यही कारण है कि दिगम्बर जैन आम्नाय में ही नहीं, सारे विश्व में, समरभूमि में भी युद्ध होता है, तो पहले सेनापति का भाषण होता है वीर रस में। यदि सेनापति का भाषण नहीं होगा, तो सेना के सैनिकों की भुजायें काम नहीं करती हैं। ऐसे-ही अहो सैनिको! ये सेनापति का भाषण होता है, सुबह-शाम आप सुनते हो। भैया! तो आपकी भुजायें फड़कनी चाहिये कि मैं पिच्छि कैसे उठाऊँगा? कमण्डलु कैसे लूँगा? अंजुली कैसे लगाऊँगा? और स्वानुभूति की अनुभूति कैसे लूँगा?

ज्ञानियो! ये विश्वास रखना, जगत् के झमेले में उलझने की कोई आवश्यकता नहीं है। हाँ, ये मानिये कि एक द्रव्य में दूसरे द्रव्य को प्रभावित करने की शक्ति है, सामर्थ्य है। पर एक द्रव्य में दूसरे द्रव्यरूप होने की सामर्थ्य नहीं है। आप रोटी खाते हैं, पेट भरता है, संतुष्टि मिलती है, सब बराबर है।

ज्ञानी! वो भोजन, वो पानी सब भीतर तेरे पेट में पहुँच गया, संतष्टि भी दिला दी, आनन्द भी दिला दिया, फिर भी वह रोटी का टुकड़ा अपने बल रूप परिणत हुआ है, तेरी आत्मारूप परिणत नहीं हुआ। वो कहता है कि तू पागल संतुष्ट हो तो हो। मैं आकाश में था, तू पेटाकाश में ले गया और सुबह मैं फिर आकाश में आ गया। मैं तो जो हूँ, सो हूँ। तू रो ले, चाहे हँस ले, पर मेरे अन्दर कुछ भी तेरा परिणमन हुआ नहीं। क्यों मुमुक्षु! वस्तु के परिणमन को बदल पाओगे क्या ? ज्ञानी! जो गिलास में था, पेट में गया, फिर कहाँ गया ? फिर बाहर आया, फिर कहाँ गया ? फिर नाली में गया, फिर नदी में गया, फिर पाइप लाइन से तेरे नल में आ गया, फिर तेरे गिलास में आ गया, फिर पेट में गया, फिर कहाँ गया ? फिर वहीं गया भो ज्ञानी! चक्र चल रहा है। वस्तु का परिणमन त्रैकालिक चल रहा है और तू संतुष्ट हो रहा है। अहो शुद्ध पानी! क्या पता नहीं कितने पेटों का पानी है ?

सही नहीं है क्या ये ? इसलिये आज भोजन करना, पानी पीना, पर इतने राग से मत करना बस, सोच लेना कि क्या पी रहा हूँ ? वो ही पी रहा हूँ, जो पिया था। ठीक है? अब तुम कितनी ही भाषा बना लो, लेकिन वस्तुस्वभाव क्या है ? 'जो है सो है।'

'सुचिर भूमि गतं तोयं'

भूमि में बहता पानी 'निर्मला' पवित्र हो जाता है। पर है तो वही। जो है, सो है।

हे ज्ञानियो! आज से कभी ये मत सोचना कि अहा! आनन्द आ गया। मुस्करा-मुस्करा के सुन रहे हो। आनंद आ गया, आज तो गजब का भोजन खाने को मिला, अच्छा रुचिकर भोजन था, महाराज! इतना स्वादिष्ट भोजन जैनभवन में बना है, कि वो तो खाली ही नहीं हो रहा है। अरे ज्ञानी! क्या स्वादिष्ट बना है ? अनन्त बार बना, अनन्त बार गया, फिर आ गया, क्या स्वादिष्ट बना ?

लोग क्या सोच रहे हैं ? आज भोजन करने भी दोगे कि नहीं? हे भगवान्! वो दिन कब आये, जब भोजन भी बन्द हो जाये। सही में मैं तो तुमको बताऊँ, जब तुम्हारे घर भोजन करने जाता हूँ, इतनी शर्म लगती है मुझे कि, मैं सिर भी ऊपर नहीं कर पाता हूँ। हे भगवान्! कब यहाँ से जल्दी भागूँ ? बहुत शर्म लगती है। क्या है ? पूर्ण स्वतंत्र होने के बाद भी तुम्हारे घर पर जाना पड़ता है, ये अच्छी बात नहीं है। लेकिन पुरुषार्थ जारी है। हे भगवान्! वो दिन कब आये?

हे बाहुबली स्वामी! आपको कोटिशः नमोऽस्तु। भारत की भूमि पर पहला योगी हुआ है, जो मुनि बनकर किसी के द्वार पर अंजुली लगाकर नहीं गया। एक वर्ष पर्यन्त ध्यान किये खड़े रहे और किसी के घर अंजुली लगाकर नहीं गये। पर क्या करूँ ? मैं अभागा, रोज जाना पड़ता है तुम्हारे द्वार पर। भावना भा रहा हूँ कि वो दिन भी कभी आयेगा, जब तप्त ऋद्धि प्रकट हो, कोई भोजन की आवश्यकता नहीं।

ज्ञानी! घोर-घोर साधना करने पर भी शरीर में कोई कमजोरी नहीं आती जब तप्त ऋद्धि प्रकट होती है तब। ऐसे ऋद्धिधारी के नाम उच्चारण करने मात्र से चित्त स्थिर हो जाता है। इसलिये भैया! जगत् में लोगों को दर-दर से तो बचाके लाना, अर्हन्त के चरणों में रख देना ज्ञानी! अर्हन्त चरणों में तो रखना, परन्तु श्री व स्त्री के राग में आकर के किसी अन्य के चरणों में उसे मत रखना। उससे कहना भाई! तेरे असाता का उदय चल रहा है। प्रभु के चरणों में साता मिलेगी। ओहो! मैना सुन्दरी के लिये मुनिराज ने क्या कहा था ? मैना सुन्दरी ने पूछा कि मेरे स्वामी का कुष्ठ कैसे दूर होगा ? 'तुम सिद्धों की आराधना करो।' जब सिद्धों की आराधना करने बैठी मैना, तो पति का कुष्ठ दूर हो गया। हुआ कि नहीं हुआ?

जब कर्मों के कुष्ठ दूर हो सकते हैं, तब देह के कुष्ठ क्या करते ? बस परिणामों की विशुद्धि पवित्र होना चाहिये। भैया! सारे जगत् से लोगों को उठाकर लाना और अर्हन्त

के चरणों में रख देना। ठीक है? उपकार की दृष्टि है। ऐसा उपकार करो। आयुर्वेदिक औषधि दो। यदि रोग ठीक भी नहीं होगा, तो कम-से-कम दूसरा रोग तो नहीं होगा। भैया! बराबर? नहीं-तो आप ही लोग कहते हैं, साइड डिफेक्ट.....। मालूम चला कि काले बाल करने के चक्कर में आँखें सफेद हो गयीं। ज्ञानी! चाँदी अच्छी लगती है कि ये कालापन अच्छा लगता है?

जैसे युवावस्था चेहरे पर दिख रही है, ऐसे-ही हे ज्ञानी! आत्मा की उमंग की युवावस्था न निकल पाये। जो उत्साह धर्म के प्रति आज है, वही उत्साह 90 वर्ष में भी होना चाहिये अनेक बुजुर्ग लोग यहाँ सभा में बैठे हुये हैं। धन्य हो इनके परिणामों को। यदि जीवन के किसी भी क्षण में इनको समझ में नहीं आया होतो अभी भी समझ आ जाये, तब भी ज्ञानी! जीवन में आनन्द-ही-आनन्द है।

अहो! आश्चर्य। एक वे जीव हैं जो घर में चारपाई पर पड़े-पड़े भगवान् का नाम ले रहे हैं, हाथ में माला लिये हुये हैं। एक वे अभागे हैं, जो मंदिर के द्वार पर बैठे-बैठे सिगरेट पी रहे हैं। बेचारों के लिये क्या कहोगे ? पर वे भी भगवान्-आत्मा हैं। अच्छी बात है। कम-से-कम उसकी हिम्मत तो देखो कि मंदिर के द्वार पर बीड़ी पी रहा है।

हे ज्ञानी! तू इतना धर्मात्मा न होता तो मंदिर के द्वार पर क्यों आता वह आदत का लाचार है। पर फिर भी चिन्ता मत करो। उसको तुम गाली मत देना, उसको समझाने भी मत जाना। उसको समझाना नहीं, उसको आने देना। कभी-न-कभी ऐसा भाव उसका बनेगा कि धिक्कार हो मुझे, कि लोग तो मंदिर में द्रव्य लेकर आ रहे हैं और में बीड़ी-सिगरेट पी रहा हूँ। मुझे मालूम है कि कौन पीता, कौन नहीं पीता। पर मैं किसी का नाम नहीं ले रहा हूँ।

लेकिन भैया। जो पीते हों, आज नहीं पीना। लेकिन उस समय जब मंदिर के द्वार पर कल बैठे थे, आज भी बैठना। उसी समय पर, पर बीड़ी लेकर मत बैठना, माला लेकर बैठना।

देखो, साधुओं की दृष्टि बहुत बड़ी होती है, अतः बच कर रहना। भैया! ध्यान रखना, किसी भी जादू-टोने में उलझ के प्रभावित मत होना। वस्तु की वस्तुता को तो स्वीकारना, लेकिन अन्ध श्रद्धा में मत बह जाना। बिना अग्नि के खिचड़ी बनाई जा सकती है। दाल चावल बनाये जा सकते हैं। अज्ञानी कहेगा चमत्कार, पर मेरे से पूछो, यह रसायन की क्रिया है।

भैया! बिना अग्नि के खिचड़ी पक जाती है। कैसे ? भैया! कटनी का चूना लिया, उसको नीचे डाल दिया और जैसे ही पानी डाला, अंगुली डालोगे तो जल जायेगी तेरी अंगुली। खौलता है और ज्ञानी! उस कटनी के चूने को नीचे डालकरके वटलोई रखी ऊपर और उसमें

डाल दिया चावल, वो तो पकेगा-ही-पकेगा। जादूगर कह रहा है कि देखो, मैं चमत्कार दिखा रहा हूँ। बिना अग्नि के चावल पका रहा हूँ। ये बिना अग्नि के चावल नहीं पक रहे हैं ज्ञानी! चावल को ऊष्मा चाहिये तो उसको उतनी ऊष्मा मिल गयी चूने से।

मैं कह रहा हूँ कि तेरे मस्तक पर फोड़ा हो जायेगा बिना अग्नि के। चूना भी नहीं लगाना पड़ेगा। पचास बार घिस लो माथे को। चमत्कार है? ये वस्तुव्यवस्था है। इसलिये हर वस्तु को व्यर्थ के चमत्कार में डालकरके आश्चर्य में मत जाओ।

आज समझ में आपको आया होगा कि लोगों ने भ्रमित कैसे किया होगा? भैया! समयसार जैसे ग्रन्थों को लोगों ने चमत्कार में डाल दिया। उस समय वस्तुव्यवस्था की व्याख्या करो। जो वस्तु का जैसा परिणमन है, वैसा बोलिये। किसी को उपचार करना है। शीत की खांसी ठण्डी चल रही है और डॉक्टर बोला-इनको सौंठ में गुड़ मिलाके दे दो, इनकी खाँसी ठीक हो जायेगी। अब वो कहता है कि देखो मैंने कैसा चमत्कार किया? अरे चमत्कार क्या हुआ ? वो तो रसायन का परिणमन हुआ है।

आप उपयोग के कर्त्ता हो, कि वस्तु के कर्त्ता हो? प्रयोग के कर्त्ता हो, अपने उपयोग के कर्त्ता हो, वस्तु के कर्त्ता नहीं हो।

ज्ञानियो! कुन्दकुन्द देव क्या कह रहे हैं "णाणेण झाण सिद्धी" ज्ञान से ध्यान की सिद्धि होती है "सव्वकम्म णिज्जरणं" ध्यान से समस्त कर्मों की निर्जरा होती है "णिज्जरणफलं मोक्खं" निर्जरा का फल मोक्ष है "तदो णाणब्भासं" अतः ज्ञानियो! ज्ञानाभ्यास करो।

ज्ञानी! अज्ञान से बड़ा कोई दुःख नहीं है, अज्ञान से बड़ा कोई शत्रु नहीं है। अज्ञान ही मिथ्यात्व है, अज्ञान ही अंधकार है। इसलिए ज्ञानियो! ज्ञान का प्रकाश करो। ज्ञान से ही सुख मिलेगा। भगवान् कुन्दकुन्द देव कह रहे हैं "सुदभावणेण तत्तिय" श्रुत की भावना से तीन की प्राप्ति होती है। तत्तिय अर्थात् श्रुत की आराधना से तप में वृद्धि, संयम में दृढ़ता एवं वैराग्य में उत्तरोत्तर वृद्धि होती है।

ज्ञानियो! दिगम्बर श्रमण श्रुत में अवगाहण करते हैं। श्रमण श्रुत में ही रत रहते हैं। "आगम चक्खु साहू", साधु के नेत्र आगम ही हैं। "श्रुतं प्रधाणं" श्रुत ही प्रधान है। ज्ञानियो! पंचमकाल में कोई श्रेष्ठ साधना है तो स्वाध्याय है, ज्ञानधारा। ज्ञान से ही ध्यान संभव है और ध्यान ही मुक्ति का कारण है। ज्ञानियो! अन्तिम श्वास तक श्रुत का साथ नहीं छोड़ना।

"आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्", आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

॥ भगवान् महावीर स्वामी की जय ॥

❖ ❖ ❖

"मिथ्यात्व से संसार-परिभ्रमण है"

कालमणंतं जीवो, मिच्छत्तसरूवेण पंचसंसारे।
हिंडदि ण लहदि सम्मं, संसारब्भमणपारंभो॥152॥

अन्वयार्थ—(जीवो) जीव **(मिच्छत्तसरूवेण)** मिथ्यात्व-स्वरूप होने से **(अणंतं कालं)** अनन्त काल से **(पंचसंसारे)** पंचपरावर्तन रूप संसार में **(हिंडदि)** भ्रमण कर रहा है, किन्तु उसे **(सम्मं)** सम्यक्त्व **(ण लहदि)** प्राप्त नहीं हुआ **(संसारब्भमणपारंभो)** संसार-परिभ्रमण बना हुआ है।

"सम्यग्दर्शन से सुख मिलता है"

सम्मद्दंसणसुद्धं जाव दु लभदे हि ताव सुही।
सम्मद्दंसण सुद्धं जाव ण लभदे हि ताव दुही॥153॥

अन्वयार्थ—(जाव दु) जब **(सुद्धं)** शुद्ध **(सम्मद्दंसण)** सम्यग्दर्शन **(लभदे)** प्राप्त कर लेता है **(ताव हि)** तभी **(सुही)** सुखी होता है **(जाव)** जब-तक **(सुद्धं)** शुद्ध **(सम्मद्दंसण)** सम्यग्दर्शन **(ण लभदे)** प्राप्त नहीं कर लेता **(ताव हि)** तभी तक **(दुही)** दुखी रहता है।

"सम्यक्त्व है तो सब सुख-रूप है"

किं बहुणा वयणेण दु, सव्वं दुक्खेव सम्मत्त विणा।
सम्मत्तेण विजुत्तं, सव्वं सोक्खेव जाणं खु ॥154॥

अन्वयार्थ—(बहुणा वयणेण दु) बहुत कहने से **(किं)** क्या लाभ है ? **(सम्मत्त विणा)** सम्यक्त्व के बिना **(सव्वं)** सब **(दुक्खेव)** दु:खरूप ही है **(सम्मत्तेण)** सम्यक्त्व से **(बिजुत्तं)** संयुक्त **(सव्वं)** सब **(सोक्खेव)** सुखरूप ही है यह **(खु)** निश्चय से **(जाणं)** जानो।

अन्तिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं।

तीर्थंकर जिनेश की पीयूश देशना, जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है।

यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवन्त हो। जयवन्त हो वीतराग श्रमणसंस्कृति।

आचार्यप्रवर भगवान् कुन्द-कुन्द स्वामी ग्रन्थराज 'रयणसार' जी में श्रमण और श्रावक इन दोनों धर्मों की व्याख्या करते हुये समझा रहे हैं। संसार की सन्तति का जो अविराम परिणमन है, उसका विराम कैसे हो ? उसके लिये ज्ञानी! रत्नत्रय धर्म है। अन्तरंग के क्लेश का अभाव कैसे हो ? उपशम भाव का उद्भव कैसे हो ? जिस कषायभाव से वर्तमान का यह सुख समाप्त हो रहा है,

क्या यह काषायिक भाव भविष्य में सुखदाता होगा? इसका अनुमान कैसे लगाया जा सकता है ? जिस कषाय से वर्तमान की शान्ति भंग हो रही है, वह कषाय भविष्य में क्या सुख का साधन बनेगी? ये अनुमान लगाया जा सकता है अन्तस् में कूदके सुनना। संसार के जो परिभ्रमण हैं, उस परिभ्रमण को कहने के पूर्व इतना समझने की आवश्यकता है। किंचित् भी मन में क्लेश आया है, किंचित् भी विषाद आया है, वह जीव भी ज्ञानी है, जो मन में आये क्लेश को दु:ख समझते हैं, मन में आये क्लेश को अशान्ति समझते हैं।

अशान्ति के वातावरण को जो सुख मानता है, यही अज्ञानी की प्रथम पहचान है। पंच परावर्तन की चर्चा करना है आपको। पंचपरावर्तन की दृष्टि पर जब दृष्टिपात करोगे, इसके पहले ध्यान से समझने की आवश्यकता है। जिस क्रिया को करने पर वर्तमान में स्वयं का चित्त ही अप्रसन्न है, कितना समय निकलता है ? जब एक क्षण ऐसा जीव के अन्तस् में आता है, उदासता छाई है। बुन्देल-खण्डी भाषा में कहने लगता है कि "जीऊ अच्छो नहीं है"। आज जी अच्छा क्यों नहीं है? कहीं-न-कहीं आप अपने पापों से थक गये हो। जिस दिन पापों से थक जाता है, उस दिन ज्ञानी! उदासता छा जाती है और पुन: पापों की थकान नष्ट होने पर शक्ति आती है और तब तुम्हारा जी अच्छा हो गया।

ये जी अच्छा नहीं हुआ है, शरीर में शक्ति बढ़ गई है। शरीर में उमंग नष्ट हो रही थी क्योंकि आप इतना अशुभ कर्म कर चुके थे कि उमंग को देने वाली शक्ति क्षीण हो चुकी थी। अज्ञानी इसे वैराग्य भी कहने लगते हैं। ज्ञानी थकान का नाम वैराग्य नहीं है। बूढ़ेपन का नाम वैराग्य नहीं है, शिथिलता का नाम वैराग्य नहीं है। शरीर में ओज और वीर्य की शक्ति के साथ जो विरक्ति भाव है, उसका नाम वैराग्य है।

शक्ति क्षीण होना वैराग्य नहीं है। राग में भरकरके जीव ने क्या-क्या किया है ? यदि आज भी न समझ पाये तो, आगे छटवें काल में कोई समझाने को नहीं मिलेगा। एक रात्रि के निकलते ही साल बदल जाती है। एक रात्रि के निकलते ही युग बदल जाता है। एक रात्रि के निकलते ही सदियाँ बदल जाती हैं। वो भी कोई प्रभात की बेला होगी जिसमें इस भारत की भूमि पर पुरुष नंगे घूमेंगे। जैसे पशु विचरण कर रहे हैं, वैसा ही पुरुषों का विचरण होगा। क्या आपको वह दृश्य देखने के भाव हैं?

एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को कच्चा ही खायेगा, वो भी दिन आयेगा। वो दिन भी देखने की इच्छा है क्या ? यदि नहीं है, तो पंचमकाल की जब तक श्वास चल रही है, तब तक ज्ञानी! सम्यक्त्व की आराधना करके और पर से निरपेक्ष होकरके, संयमी होकरके, स्वयं में

लीन होकरके साधना कर लेगा, तो तू छटवें काल के दु:ख से तो बच ही जायेगा। यह पूरा चिन्तन आपको परिवार को छोड़कर करना पड़ेगा, राग को छोड़कर करना पड़ेगा, मित्रों को छोड़कर करना पड़ेगा।

यदि परिवार को साथ लेकर तुम परमात्मा बनने का चिन्तन करोगे, तो कभी नहीं कर पाओगे। आज का चिन्तन आप भोजन करते समय करना। क्यों ? जब व्यक्ति को क्षुधा सताती है, तो अपने हाथ का ग्रास दूसरे के मुख में कभी नहीं देता है। एक पिता के चार बेटे क्यों न हों, एक-ही थाली में बैठ भी जायेंगे, लेकिन हर बेटे की दृष्टि अपने पेट की अग्नि के उपशमन की होती है। प्रत्येक बेटा, अपने हाथ का ग्रास अपने मुख में ही रख रहा है। क्योंकि उसकी दृष्टि में है कि उसे अपने पेट की क्षुधा शान्त करना है।

उस समय भैया! परिवार के मुख की तरफ तेरा हाथ क्यों नहीं जाता है ? भोजन के काल में भाई के मुख की ओर हाथ नहीं जाता है। भले ही थालियाँ एकसाथ लगी हुई हों। एक थाली में क्यों न भोजन कर रहा हो, तब भी ग्रास स्व-मुख की ओर ही जाता है। जब भूख सताती है, तो ग्रास स्वमुख की ओर जाता है।

जिसको मोक्ष की भूख सताती है, उसका तत्त्व का निर्णय स्वमुख की ओर जाता है, परमुख की ओर नहीं जाता है। क्षुधा की आवश्यकता है, भोजन की नहीं। भोजन तो केवल क्षुधा कराती है, भोजन नहीं कराता है। धर्म आज भी है, धर्म कल भी था और भारत की भूमि पर 18500 वर्ष तक ये नमोऽस्तु शासन जयवन्त होता ही रहेगा। इसमें किंचित् भी शंका की आवश्यकता नहीं है। पर जिनका रात्रिभोजन का त्याग है, वे सम्पूर्ण कार्य निपटा लेते हैं शाम को और कदाचित पूरे न हो पाये हों, तब भी तू अपना समय देखता है कि संध्या की बेला न आ जाये, रात्रि न हो जाये, क्योंकि भूखा रहना पड़ेगा। जैसे तुझे क्षुधा के उपशमन के लिये रात्री न हो पाये, शीघ्र ही थाली की ओर दौड़ता है, ऐसे-ही हे मुमुक्षुओ! संध्या की बेला आ रही है। छट्वें काल की अंधियारी आ रही है, इसलिये जितनी जल्दी बन सके, निपटा लो और थाली-लोटा लेकरके अपने मुख में पानी भर लो, भोजन कर लो। ये संध्या की बेला है। अभिषेक का लोटा ले लो, द्रव्य की थाली ले लो। यदि पापकर्म से बचना है, तो पुण्य का पेट भर लो। ये संध्या की बेला है। ऐसी रात्रि होगी, वह शुक्ल पक्ष की भी रात्रि नहीं है, वह कृष्ण पक्ष की रात्रि है। शुक्ल पक्ष में फिर भी कुछ चाँदनी, चन्द्रमा की रोशनी से दिखता है, परन्तु कृष्ण पक्ष की रात्रि में तो कुछ भी नहीं दिखता है। अन्धकार ही अन्धकार है। ये छटवाँ काल तो कृष्ण पक्ष की रात्रि है।

जैसे रात्रिभोजन का त्यागी, कितनी सावधानी बरतता है। मुमुक्षुओ, मेरे मित्रो! छोटी सी बात मान लो। सामने अंधियारी आने वाली है। किंचित् भी आपको सुनाई पड़ रहा हो, तो अपने आप को सम्हाल लो। फिर नहीं देखता भोजन के काल में कि कौन बेटा है, कौन बेटी है ? मुख से जरूर कहेगा कि बेटा! तू भी खा ले, लेकिन हाथ का ग्रास उसके मुख की ओर नहीं जाता है। स्वयं के मुख की ओर ही जाता है।

इसी प्रकार से तत्त्व पर चिन्तन हो। जैसे भूखा पुरुष स्व-मुख को देखता है। वैसे ही मुमुक्षु जीव स्व कल्याण को देखता है।

संसार में भ्रमण करता है यह जीव मिथ्यात्व के कारण। "संसरणं संसारः परिवर्तन मित्यर्थः।" यह संसार है, भ्रमण है। उसी का नाम संसार है। संसार में रहना कोई बुरी बात नहीं है, क्योंकि अर्हन्त, सिद्ध भगवान् भी संसार में ही होते हैं। संसार में रहना कोई खोटी बात नहीं है, सिद्ध भी संसार में हैं, अर्हन्त भी संसार में हैं। लेकिन संसारी होना दुख की बात है। सिद्ध परमात्मा संसार में ही है, क्योंकि लोक के बाहर संसार नहीं, संसार के बाहर लोक नहीं, परन्तु संसरणं करना दुःख है।

अरिहंत परमात्मा संसार में होने पर भी संसारी नहीं हैं; क्योंकि भ्रमण उनका समाप्त हो चुका है, इसलिये मुक्त हैं। **संशरण** का नाम संसार है। **संशरण** किया क्यों है ? भूल जाओ आज कि उन्होंने मेरे साथ ऐसा किया। इस अनादि की खोटी चेष्टा को आज से समाप्त कर दो। भैया! जीवन में तुम व्रत ले पाओ या न ले पाओ, कह कर रहा हूँ कि तुम श्रावक भी न बन पाओ, तो कोई विकल्प नहीं करना। मुनि-महाराज न बन पाओ, तो भी कोई विकल्प नहीं करना। परन्तु सबसे पहला व्रत ये ले लेना, भैया! अपनी गल्ती को दूसरों पर थोपने का त्याग कर दो।

तेरी बुराई को देखकर किसी ने कहा, भैया! तू ऐसा मत किया कर। बोलेगा कि वो दादा जी करते हैं, आप उनसे कुछ नहीं कहते हो। भैया! ऐसा कहने से तेरे में सुधार हो जायेगा क्या ? ये विश्व के अन्दर बहुत बड़ी बुराई है, बहुत बड़ी कमी है।

साधुता की प्राप्ति चाहिये है तो अच्छाई को स्वीकार करना सीख लेना और आपकी बुराई भी कोई बताये तो उसको 'बूरा' जैसा समझो, उसको 'बुरा' मत समझो। पर भूल क्या हो रही है ? कि जैसे ही कहा—भैया आपने ऐसी भूल की है ? तो वह कहेगा—'क्या मैंने ही की है? आप दादा जी से क्यों नहीं बोलते हो ? उन्होंने भी तो की है।' अच्छा, उनके कहने से आपका सुधार हो गया क्या ? ये तो आपको संतुष्टि हुई है कि में ही अकेला नहीं कर रहा हूँ, वो भी करते हैं।

इस पंचमकाल में आने का जो आपको श्रेय मिला है, वो इसी का आपको फल मिला है। जिस पंचमकाल में आप उपस्थित हुये हो, वो किसको श्रेय जाता है ? अपनी बुराई को बताने वाले को बुरा कह-कह कर ही पंचम काल में आये हो। हे ज्ञानी। अभी नहीं सम्हल पाये, तो छटवें काल में भी जाओगे। ज्ञानी! मानो मेरी बात, यदि आपको किंचित् भी कल्याण इष्ट हो, तो स्वीकार कर लो और अपने साथ दूसरों को लपेटना बंद करो।

काल मणंतं जीवो, मिच्छत्तसरूवेण पंचसंसारे।
हिंडदि ण लहदि सम्मं, संसारब्भमणपारंभो ॥152 र.सा.॥

हे ज्ञानी। मिथ्यात्व से बड़ा कोई शत्रु है ही नहीं है। मिथ्यात्व के सहयोग से ही संसार परिभ्रमण हो रहा है। भगवान् कुन्दकुन्द देव 'रयणसार' जी में कह रहे हैं कि—"मिच्छत्तसरूवेण" मिथ्यात्व-स्वरूप होने से "अणंत कालं पंचसंसारे" यह जीव अनन्तकाल से पंचपरावर्तन रूप संसार में भ्रमण कर रहा है। "सम्मं ण लहदि संसारब्भमणपारंभो" सम्यक्त्व के अभाव में संसार-परिभ्रमण चल रहा है। इसलिए ज्ञानियो! द्रव्य-क्षेत्र-काल-भव-भाव रूप पंचपरावर्तन से बचना चाहते हो तो मिथ्यात्व से ममकार छोड़कर सम्यक्त्व को प्राप्त करो। सम्यक्त्व ही सुख का साधन है।

सम्मद्दंसण सुद्धं, जाव दु लभदे हि ताव सुही।
सम्मद्दंसण सुद्धं, जाव ण लभदे हि ताव दुही॥153 र.सा.॥

भगवान् कुन्दकुन्द देव कह रहे हैं कि—"सुद्धं सम्मद्दंसण" ज्ञानी। समझो, जब-तक शुद्ध सम्यक्-दर्शन की प्राप्ति नहीं होगी, तब तक सुख नहीं मिलेगा। सम्यक्त्व ही सुख और स्वर्ग का सोपान है।

हे ज्ञानी। मोक्षमार्ग की प्रथम सीढ़ी सम्यक्-श्रद्धान ही है। सम्यक् ही समीचीन व्रतों की प्रमाणिकता का प्रतीक है। निर्दोष सम्यक्त्व प्राप्त करके ही जीव सुखी हो सकता है। ज्ञान और चारित्र को उद्घाटित करने वाला सम्यक्त्व रत्न ही है।

मैं बहुत अच्छे से बता सकता हूँ। कपड़े के व्यापारी बहुत सारे यहाँ पर बैठे हैं। भैया! आप थान किसमें लपेटते हो ? पुट्ठे में, प्लास्टिक के डण्डे में। तो भैया! क्या मस्तिष्क में गूंजा है ? दुकान का कपड़े का थान। क्या बतायें ? वस्त्र की आदत ही लिपटना है। उस वस्त्र से कह देना, कितने ही पुटठों को लिपटा ले, साथ में चाहे तू लकड़ी के डण्डे को लिपटा ले, प्लास्टिक के डण्डे को लिपटा ले, हे वस्त्र! तू विश्वास रखना, कैंची जब भी चलेगी, पुट्ठे या डंडे पर नहीं वरन् तुझ पर चलेगी। हे वस्त्र! तू दूसरों को लिपटा रहा है,

तू मेरे-जैसा हो जा। पर होगा नहीं। पुट्ठा तो पुट्ठा ही रहेगा और डण्डा भी डण्डा ही रहेगा। कैंची तो वस्त्र पर चलेगी, पर विश्वास रखना, कर्म की कैंची उन पर ही चलेगी जो लिपटे हैं।

बहुत सारे लोगों की आदत होती है, कि गल्ती तुमने की और किसी ने आपको बोल दिया कि गल्ती तुमने की है तो तुरन्त आग-बबूला होकर दूसरे को पकड़ेगा वहाँ कि वो भी तो कर रहे थे, उनसे क्यों नहीं कुछ कहा गया वहाँ ? ज्ञानी! ये तेरा कोई सुधार नहीं है, दुर्भावना है। इस आदत को छोड़ दो, यदि मोक्ष जाने की इच्छा है तो।

भैया! कितने लोग मोक्ष जाना चाहते हैं ? यदि मोक्ष जाने की आकांक्षा रखते हो, तो लपटा थाली मात्र में खाना, पर दूसरों को अपने चक्र में मत लपेटना। कैसे जीव हैं जगत् में ? ये पंचमकाल की ही बात नहीं है। मैं आपसे प्रश्न पूछ लेता हूँ, भैया! कहाँ से आये आप ? भैया! आप संसार में कब से हो ? घबराना नहीं, आप अनादि काल से हो। जब अनादि काल से हैं, तो तीर्थंकर ऋषभदेव मेरे सामने मोक्ष गये कि नहीं गये ?

भगवान् से कह देना कि हे भगवान्! आपका मोक्ष जाना पुराना नहीं है। मैं पुराना हूँ। हमने आप-जैसे अनन्त भगवंतों को देखा है मोक्ष जाते। एक व्यक्ति मुझसे कह रहा था कि ये अध्यक्ष कौन लगते हैं ? यहाँ से तो बिलात अध्यक्ष चले गये। हम तो स्थायी अध्यक्ष हैं। मैनेजर बोल रहा था संस्था का, ये अध्यक्ष-मंत्री आते हैं, चले जाते हैं, परन्तु अध्यक्ष तो मैं हूँ। ये मेरे अनुसार चलते हैं। मेरे बिना कर क्या पायेंगे ? हे ज्ञानी! मैनेजर स्थायी है और अध्यक्ष का चुनाव होता है।

मुमुक्षुओ! ये आत्मा संसार में कब से है ? अनादि काल से है। जब तीर्थंकर ऋषभ देव आपके सामने मोक्ष गये हैं, तो इसका तात्पर्य आप चतुर्थ काल में थे, तृतीय काल में थे, अनन्त कालों में थे। पंचम काल में आ कैसे गये ? चतुर्थ काल में न लपेटा होता, चतुर्थ काल में मायाचारी न की होती, तो बन्धुओ! पंचम काल में न आना पड़ता।

चतुर्थ काल की मायाचारी का प्रमाण पत्र है कि पंचम काल में बैठे हो। यदि चतुर्थ काल में मायाचारी न की होती तो, आप भी आदिनाथ के साथ महावीर स्वामी के साथ, अनन्त तीर्थंकरों के साथ में सिद्धशिला पर बैठे होते बेटे को साथ में लिये है, फिर भी कहता है कि मैं बालब्रह्मचारी हूँ। जब बालब्रह्मचारी है, तो बैटा कैसा ? अब पंचमकाल में बैठकर कहो कि में तो बिल्कुल सज्जन हूँ, तो मुझे पता है कि तुम कितने सज्जन हो ? यदि तुम सज्जन होते, तो पंचमकाल में आ कैसे गये ? सफाई देने मत जाना कभी, मायाचारी की सफाई अवश्य हो जायेगी, पर ये तुम्हारी सफाई नहीं। पंचमकाल में आना कौन-से महाव्रत का फल है ?

पंचम-काल का मनुष्य बनना न महाव्रत का फल है, न अणुव्रत का फल है। महाव्रती होगा, तो स्वर्ग जायेगा। अणुव्रती होगा, तो स्वर्ग जायेगा। सम्यक्-दृष्टि जीव, व्रती जीव कभी कर्मभूमि में कर्मभूमि से जन्म लेता ही नहीं है। बिना मिथ्यात्व के पंचमकाल में जन्म होता नहीं। ये महाव्रत का फल नहीं है, ये असंयम का फल है। ये मंदकषाय का फल है। चित्त की शुभ-अशुभ मिश्र धारा का फल है।

हे ज्ञानी! पंचपरावर्तन करते-करते अनन्तानन्त पंचपरावर्तन जीव कर चुका है। द्रव्य परावर्तन पहला परावर्तन।

भुक्तोज्झिता मुहुर्मोहान्मया सर्वेऽपि पुद्गलाः।
उच्छिष्टेष्विव तेष्वद्य, मम विज्ञस्य का स्पृहा॥30 इष्टोपदेश॥

विश्व में, ऐसा कोई पुद्गल परमाणु कर्म पिण्ड, नोकर्म पिण्ड अवशेष नहीं है, इसजीव ने जिसका उपभोग कर छोड़ा न हो। "सर्वेऽपि पुद्गलाः" सम्पूर्ण पुद्गल पिण्डों को। अब भी कह रहा है कि अमुक वस्त्र मुझे चाहिये। जिस परमाणु से वो वस्त्र बना है, उसे तू अनन्त बार भोग चुका है। जिससे वह वस्त्र निर्मित है, उसे तू अनन्त बार भोग चुका है। भैया! नाली में, मल में एक कीड़ा घूम रहा था और उसी मल को खा रहा था। उसे देखकर तेरी नाक सिकुड़ने लगी। पर इतना तो तुझे मालूम होना चाहिये है कि जिस मलपिण्ड को वह खा रहा था, उन परमाणुओं को तू अपनी देह बना चुका था।

"कमसो" शब्द पर ध्यान रखना। "कमसो" क्रम से। ज्ञानावरणी कर्म के, दर्शनावरणी कर्म, ऐसे आठों कर्मों के पिण्ड को क्रम-क्रम से इस जीव ने भोगा। नोकर्म को क्रम-क्रम से भोगा। अक्रम में हो गया, सो गिनती के बाहर चला गया।

घूमते हुये सुअर को भी आप लोगों ने देखा है। उधर नाली पर कचरा पड़ा हुआ था। एक साथ गाय, श्वान, सुअर, सारे प्राणी, कौआ भी बैठा था। सब उस मल का सेवन कर रहे थे। वहाँ गीदड़ पड़ा हुआ था, पर दृश्य क्या देखा ? एक श्वान आया उस पर गुर्रा पड़ा उसको काटने को दौड़ा। क्यों ? एक किसी घर की जूठी पूड़ी पड़ी हुई थी, इसलिये उसको मारने को दौड़ा। वहीं पर मल पड़ा हुआ था, तो एक सुअर दूसरे सुअर को मुख मार रहा था, खींच रहा था, किसके लिये ? मल पिण्ड खाने के लिये।

ये कौन से जीव थे ? दो दृष्टियाँ सामने लाना। हे सुअर! यदि मैं तेरी भूत की पर्याय को देखता हूँ, तो तू कभी मुझे सम्राट के रूप में दिखता है, तो कभी चक्रवर्ती के रूप में दिखता है और भविष्य की पर्याय को देखता हूँ तो भावी सिद्धभगवान् दिखता है। पर तेरी

बीच की पर्याय को देखकर बड़ा दु:ख होता है कि भविष्य का सिद्ध बनने वाला, जिसकी मैं वन्दना करूँगा, ऐसा जीव आज मलपिण्ड पर क्लेश करता है।

अमरावती में चतुर्मास चल रहा था। दो नाग, (नाग-नागिन) आपस में लिपटे हुये, इतने लवलीन थे। हमने पहली बार ऐसा दृश्य देखा। शुद्धि को निकल रहे थे हम लोग। जुगलिया ने जब देखा कि कोई पुरुष आ रहा है, तो द्रुत गति से जाकर एक साथ पानी में डूब गये। काली करतूती को कोई दिखाना पसन्द नहीं करता। नाग-नागिन आपस में लिपटे हुये थे और देखकरके पानी में जाकर डूब गये। दृष्टि कहने लगी कि पानी में नाग युगल नहीं डूबा, ज्ञानी! अशुभ कर्म डूबता ही है। क्योंकि ये तिर्यञ्च भी जानता है कि मैं जो भी कर रहा हूँ, वह करने योग्य नहीं है। मैं साधु को यह रूप कैसे दिखा सकता हूँ ? इसलिये वो भी जाकर पानी में डूब गया।

ध्यान दो मैं क्या बोल रहा हूँ ? एक-एक दाने को झगड़ता है भैया से। जिसे सारे लोक ने सेवन किया और मुख ने निकाल कर छोड़ दिया है, उसे तू मुख में रख रहा है। इस वमन के सेवन के राग में ज्ञानी! एक भगवान्-आत्मा से विद्रोह मत करो। जीवन जीने के लिये रोटी ही तो खाना है। पर दूसरों की रोटी छीनकरके रोटी खाना ये धर्म नहीं है।

रोटी खाना है, तो रोटी को छीनकर रोटी मत खाओ। आज तुम समाज में हो, सब मित्रों के बीच में हो, कभी एक-दूसरों के प्रति भाव शुभाशुभ बनते हैं, पर भैया! विश्वास रखो, ये तेरे ही शुभाशुभ भाव हैं, उसके नहीं हैं। उसके उसे ही होंगे, पर तेरे शुभाशुभ भाव तुझे शुभ और अशुभ देंगे कि नहीं देंगे ? यदि देंगे, तो फल भोगने कौन जायेगा ?

निज के द्वारा निज की दुर्गति स्वीकार है क्या ? धन्य हो। पूरा भवन कह रहा है महाराज! नहीं है स्वीकार। निज के द्वारा निज की सुगति किन-किन को स्वीकार है ? हाँ, सबको स्वीकार है। यदि सबको स्वीकार है तो, मुमुक्षुओ! वही करो, जो करने लायक है। वो मत करो जिसमें तेरा मन कहे, कि नहीं-करने लायक है। अकरनी को मत करो, करनी को ही करो। क्या-क्या किया है ? पेट भरने के राग में कितनों की पेटी छीनी है ?पेट भरने के राग में कितनों के प्राण छीने हैं? ओहो! जब तू नाग था अपने ही बच्चों को भक्षण कर गया था।

जब तू श्वान था, हे जीव! अपने पिल्लों को भूखा श्वान खा जाता है। हे माँ। तू तिर्यञ्च की पर्याय में स्वयं जन्म देकर स्वयं खा गई। ज्ञानी! मनुष्य की पर्याय में जन्म लेकर तुमने कषाय और विषय के राग में टुकड़े-टुकड़े कराकर फेंक दिये थे। वो भी विषयों के सेवन

के राग में सन्तान के टुकड़े किये थे। आपको मालूम होना चाहिये कि अब इसका फल क्या होगा ?

मेरे मित्रो! जिनकी तुम भक्ति कर रहे हो, वे बन-चुके भगवान् हैं। उनकी भक्ति करके स्वर्ग ही जा पाओगे, लेकिन जब तक बननेवाले भगवान् पर करुणा/दया नहीं लाओगे, तब तक भगवान् नहीं बन पाओगे। स्वर्ग भेजने का मार्ग ये बने भगवान् हैं और सिद्ध बनने का मार्ग ये बननेवाले भगवान् को सम्हाल लेना। चारों ओर धूम मची है। भैया! बने-बनाये भगवान् की पूजा दुनिया कर रही है और बननेवाले भगवान का तिरस्कार कर रहे हैं। इनके बनाये भगवान् इनको कभी भगवान् बना नहीं पायेंगे।

हे भैया ! तुम कितने भी मुस्कराओ चाहे रोओ, जब तक ये नीचे बैठे लोगों के प्रति साम्यभाव नहीं होंगे, तब तक ऊपर सिंहासन में विराजे भगवान् तुमको भगवान् बना नहीं पायेंगे। आज समझ में नहीं आयेगा तो कभी नरक में समझ में आयेगा। नरक में नहीं पहँच पाये किसी पुण्य से, तो स्वर्ग में समझ में आ जायेगा। स्वर्ग में समझ नहीं आया तो तिर्यञ्च पर्याय में समझ में आ जायेगा। तिर्यञ्च में नहीं आया तो, ज्ञानी! अब कहाँ जायेगा ? कल-कल भूमि में कलरव करना पड़ेगा।

आगम की किसी पंक्ति को झूठा तो कहा नहीं जाता ? यदि कोई कहे कि महाराज, महावीर की वाणी कहाँ शुद्ध है ? आज आश्रम की कक्षा में एक प्रश्न आया था। भैया ने प्रश्न किया था। महाराज! अब भगवान् की वाणी कैसे कहें कि वही है ? सागर में पानी वर्षा था, बहुत वारिश हुई थी पता है आपको। मोरा जी मंदिर की छत पर पानी गिरा था। इस वर्ष भैया वो पानी कहाँ है ? पानी है कि नहीं, पहले ये बताओ? हाँ, पानी तो है। पर वो विषय अलग है, कि शिखर उसको रोक नहीं पाया। वो कितना पुण्यात्मा जीव होगा, जो बाहुबली की छत का गिरा पानी किसी गिलास में पहुचेगा, वो पीता होगा। पानी तो सुरक्षित है। पीने के बाद भी सुरक्षित है। पेटाकश में पहुँचेगा। पेटाकाश में पहुँच गया और पेटाकाश से पुनः .....।

मैनें देखा अपनी आँखों से, एक दम स्वच्छ पानी था। ज्ञानी! तू भी तो था जब पानी गिर रहा था। शिविर में था कि नहीं? कितना स्वच्छ पानी था ? लेकिन ज्ञानी! जब पानी नालियों में पहुँचा, तो उसका रंग बदल गया था। पर कितना ही रंग बदला हो, वो ही पानी था जो बाहुवली की छत पर गिरा था। ऐसे-ही हे मुमुक्षुओ ! कितने ही पंथ बन जायें, लेकिन

हमारे वर्द्धमान की वाणी तो वही है। नाली के रंग में पानी का रंग अवश्य बदला होगा, लेकिन पानी फिर भी वही है जो बाहुबली की छत पर गिरा था।

हे वर्द्धमान। कितना ही समय व्यतीत हो जाये ? जब तक दूसरा तीर्थंकर नहीं आयेगा इस पृथ्वी पर, तब तक आपकी वाणी ही गूँजेगी। उसका नाम अनेकांत स्याद्वाद होगा। आपका सर्वोदयी तीर्थ अनवरत चलेगा।

ज्ञानी! कण-कण का तूने सेवन किया है। ऐसा विश्व में कोई द्रव्य अवशेष नहीं बचा जिसका उपभोग तूने न किया हो। ये द्रव्यपरावर्तन है।

क्षेत्र परावर्तन। भैया ! तू कहता है कि मेरा मकान तो वह कहता है कि मेरी कॉलोनी। तो तीसरा कहता है कि मेरा गाँव। तो भैया! सुनो। आज सुन लो, फिर तुम्हें जो कहना हो सो कहते रहना। ढाईद्वीप में ही नहीं, पूरे तीन लोक में इस जीव ने जघन्य अवगाहना प्राप्त की और जघन्य अवगाहना, निगोदिया जीव के, लब्धि अपर्याप्तक जीव के, जन्म के तृतीय समय की है। प्रथम समय में जो जीव जन्मता है, वो आयताकार होता है। लम्बाई अधिक, चौड़ाई कम। द्वितीय समय में चतुष्क कोण होता है और तृतीय समय में बलयाकार होता है। जो वलयाकार होता है, उस समय उसकी अवगाहना सबसे छोटी होती है। करणानुयोग से बोल रहा हूँ। इसलिये मेरे भैया! तू सम्हलके रहना। तू मेरा मित्र है, तो किसी मित्र को गडढे में डालना मित्र का धर्म नहीं होता। मेरे मित्रो! सुनो। जितने यहाँ बैठे हैं, वे सभी मित्र हैं मेरे। मित्र का तात्पर्य किसी की छाती से लग जाना नहीं है। मित्र का तात्पर्य क्या है? प्राणीमात्र के दु:ख को दूर करने की भावना जिसको है, उसी का नाम मित्र है।

पर की पीड़ा को दूर करने की भावना जो है, उसी का नाम मैत्री है। हे मित्रो! जितने आकाश के क्षेत्र में एक परमाणु ठहरता है, उसका नाम है प्रदेश। परमाणु जो है, वह पुद्गल द्रव्य की सबसे छोटी इकाई है, जिसका पुन: भाग नहीं होता है।

जितने आकाश के प्रदेश में एक परमाणु अवस्थित होता है, उसको भगवान् सर्वज्ञदेव ने स्थान देने में सामर्थ एक प्रदेश कहा है। इलेक्ट्रान, प्रोटान, न्यूट्रान ये कोई परमाणु के खण्ड नहीं हैं। ये सब स्कंध हैं। जो परमाणु होता है, उसका पुन: कोई भाग नहीं होता है। विज्ञान की भाषा नहीं बोल रहा हूँ मैं, जैनदर्शन की भाषा बोल रहा हूँ। वो नहीं कहना चाहता हूँ मैं कि विज्ञान ऐसा कहता है। क्यों ? अधूरी बात को मैं महत्व देकरके अपने आगम को हीन नहीं करना चाहता हूँ। हमारे आगम में जो कहा है, उसे विज्ञान कहता है सो कहने दो, लेकिन विज्ञान की बात को आगम नहीं कहता।

वे अधूरे लोग हैं, जो वर्तमान में वक्ता बनकर गद्दी पर बैठ गये। मात्र लोगों को प्रभावित करने के चक्कर में अपने आगम को झूठा कर देते हैं कि वैज्ञानिकों ने ऐसा कहा है, उसे ही जिनवाणी कह रही है। अरे ज्ञानी ! ये तू बोल क्या रहा है ? जैसा जिनदेव और जिनवाणी ने कहा है—वैसा वर्तमान के वैज्ञानिकों ने निहार करके अपनी बात कहना प्रारम्भ किया है। लेकिन ध्रुव सत्य है। वस्तु की बात होती है, अवस्तु की बात नहीं होती है। सर्वज्ञदेव बनाते नहीं हैं, तो वैज्ञानिक लोग कहाँ से बनाने लग गये ?

ऐसी भाषा आना चाहिये भैया! आपके मुख से, अन्यथा क्या होगा ? इतने वैज्ञानिकता में डूब मत जाना। जो विज्ञान की प्रधानता से कथन करता है, कोई ऋषि, मुनि, विद्वान्, उसका नाम मिथ्यादृष्टि है। हम लोग विज्ञानवादी नहीं हैं, हम लोग वीतरागविज्ञान वादी हैं। हमारा विज्ञान कौन-सा है ? वीतराग-विज्ञान है।

भेदविज्ञानतः सिद्धाः, सिद्धा ये किल केचन।
अस्यैवाभावतो बद्धा, बद्धा ये किल केचन।।131 स.सा. कलश।।

जितने भी सिद्ध हुये हैं, भेदविज्ञान से हुये हैं और जितने बँध रहे हैं, भेदविज्ञान के अभाव में बंध रहे हैं। विज्ञान की वाणी दुनियाँ के सम्बन्धों से युक्त है और भेदविज्ञान अपादान से युक्त है। भैया! इतना तत्त्व कहने के लिये आपको कक्ष में जाकरके एकांत में निज का तत्त्व निहारना पड़ेगा।

ज्ञानियो ! जितने त्यागी-व्रति मुनिराज पधारें नगर में, उन सबको स्वाध्याय के लिये भरपूर समय देना। मैं बहुत अच्छे से समझता हूँ जब हमारे योगी ज्ञानी व विद्वान् होते हैं, तो हमारी समाज के चेहरे मुस्कराते हैं। गद्गद् भाव आते हैं। कुछ भी कहो, एक माँ का बेटा पढ़ा लिखा हो, तो माँ और पिता कैसे मुस्कराते हैं? जिसका गुरु ज्ञानी हो, तो पूरी समाज मुस्कराती है। इसलिये अपने गुरुओं को समय दो अध्ययन करने के लिये। यथार्थ मानिये, प्रतिष्ठाग्रन्थ में ये लिखा है कि आचार्य का आशीर्वाद लेकरके प्रतिष्ठाचार्य विधी-विधान कराये। मात्र आशीर्वाद के लिये दिगम्बर गुरु चाहिये। मात्र तत्त्वोपदेश, केवल ज्ञान कल्याणक की विधि और दीक्षा के लिये दिगम्बर मुनि चाहिये, शेष कार्य के लिये गृहस्थाचार्य। भो गृहस्थाचार्यो! गृहस्थाचार्य का ही नाम प्रतिष्ठाचार्य है। बाकी पूरा निर्देशन प्रतिष्ठाचार्य का।

बस इतना ही ध्यान रखना कि दिगम्बर योगी को गृहस्थाचार्य नहीं बनाना, उनको निर्ग्रन्थाचार्य ही बनाये रखना। साँची-साँची कहो, भैया! बोली से जितने नहीं मिलते, उतने तो बिना बोली के मिल जाते हैं। बोली में तो घण्टे बरबाद करना पड़ते हैं। समय बचाना हो और आनन्द की लीला देखना हो तो, "जो है सो है।"

एक-एक प्रदेश पर, जघन्य अवगाहना लेकरके, एक-एक जीव ने जन्म लिया और मरण किया। माना कि एक जीव ने यहाँ जन्म लिया है, दूसरे समय में उसी जीव को उसी स्थान पर जन्म लेना चाहिये है। जघन्य जघन्य अवगाहना। ऐसा करते-करते, जितने विश्व में तीनों लोकों में प्रदेश हैं, एक-एक प्रदेश पर, जघन्य-जघन्य अवगाहना लेकर, जन्म-मरण करेगा। एक मध्यम अवगाहना, उत्कृष्ट अवगाहना। प्रदेश के बाहर यहाँ से वहाँ जन्म ले लिया तो गिनती के बाहर चला जायेगा। ऐसा एक-एक प्रदेश पर इस जीव ने जन्म-मरण किया है। विश्व की ऐसी कोई भूमि नहीं बची, जिस पर तू जन्म-मरण करके नहीं आया। अब किस टुकड़े के लिये तू भाई-भाई से लड़ रहा है? भैया! मन में प्रत्याख्यान कर लेना, कि भूमि के राग में, चाहे सगा भाई हो, चाहे पड़ोसी हो, क्रूर भाव मत लाना, क्योंकि भूमि किसी की हुई नहीं है। अपने भगवान् को मत भूल जाओ। ये क्षेत्रपरावर्तन है।

काल परावर्तन। ये जीव अवसर्पिणी काल के प्रथम समय में जन्मा और इसने अन्तर्मुहूर्त में जघन्यायु प्राप्त की है। ऐसी जघन्यायु-जघन्यायु अवसर्पिणी काल में जितने समय होंगे, उतने काल पर्यन्त जघन्य जघन्यायु, मध्यमायु, मनुष्यपर्याय में अन्तर्मूहुर्त से लेकर के तीन पल्य तक की आयु प्राप्त की है। पल्य जानते हो?

दो हजार कोश का गड्ढा खोदो। उसमें उत्तमभोगभूमिया जीव के मेढ़े के बच्चे के बाल के बारीक भाग करके भर दो। मध्यम भोग भूमि का एक बाल और उत्तम भोग भूमि के आठ बाल, बराबर हैं दोनों। मध्यम भूमि के आठ बाल और जघन्य भूमि का एक बाल, बराबर हैं दोनों अपना बाल तो बहुत मोटा है। ऐसे बालों से उस गड्डे को भरने के उपरान्त सौ साल बाद एक बाल निकालना। जितने वर्ष में वो गड्ढा खाली हो जाये, तब एक पल्य। अद्धा पल्य, उद्धार पल्य। ऐसे क्रम के बाहर गया तो गिनती से गया।

नरकायु में दस हजार वर्ष की जघन्यायु से लेकरके प्रत्येक सागरपर्यन्त उत्कृष्टायु तक इस जीव ने जन्म-मरण किया। ये भव परावर्तन है। स्वर्ग की 31 सागर की आयु मिथ्यात्व के साथ जन्म-मरण किया। ऐसे ही चारों गतियों का भ्रमण किया इस जीव ने। इस क्रम से, तब एक भवपरावर्तन होगा।

प्रकृति बंध, प्रदेश बंध, स्थिति बंध, अनुभाग बंध, ये चार जो बंधस्थान हैं, इन सभी बंधस्थानों को प्राप्त किया इस जीव ने। ये इसका भाव परावर्तन है। किसको नया कहते हो, किसको पुराना कहते हो? भैया! आप स्वयं समझदार हैं। घर जाकरके यदि किसी से तू-तू, मैं-मैं हो गई हो, स्वप्न में भी, भैया! घर पहुँचा या नहीं पहुँचा, इसी क्षण, अभी-अभी जगत् के प्राणीमात्र से क्षमाभाव धारण कर लेना।

प्रदेश-प्रदेश के राग के पीछे मैंने पंचपरावर्तन किये हैं। दादा जी! अपनों को अपना मत कहना और परायों को पराया मत कहना। जीवद्रव्य मात्र को देखना। इसका नाम महात्मा-दृष्टि है। मैं आपको बिलखने के लिये नहीं बोल रहा हूँ, न चेहरा उदास करने के लिये बोल रहा हूँ। परद्रव्यों से उदासी लाने के लिये बोल रहा हूँ। कितनी बार मैं कह चुका हूँ कि जब मेरा परमात्मा मेरा सहकारी नहीं है, तो जगत् की आत्मा मेरी कहाँ सहकारी होगी ? इस बात को कहने की शक्ति जैनदर्शन मात्र में है। नहीं-तो लोग भगवान् के नाम पर घबराते हैं। भूत-प्रेतों से घबराते हैं, भगवान् तो बहुत दूर की बात है।

विश्वास मानो, जब परमात्मा के नाम का मुझे डर नहीं है, तो जगत् के भूत-प्रेतों का कहाँ डर लगेगा ? जब 'कण-कण स्वतंत्र' सामने आता है, तो जन्म के बंधन समाप्त हो जाते हैं। इस सूत्र को बच्चे-बच्चे के अन्दर भरना चाहिये है। हे जगत्! निम्न लोगों के राग में आकर के, गृह-नक्षत्रों के राग में आकरके अपनी स्वतंत्र दशा की सत्ता को खो मत देना। क्योंकि ये बड़ा सुन्दर व्यापार बन चुका है। भैया! राजस्थान जाओ, जयपुर जाओ, मोती-माला खरीद लाओ और यहाँ आकरके अच्छा व्यापार करो, चलता है। पर भो ज्ञानी! वो भैया दिख जाये जो दुनियाँ नग की पहचान जानता है। पर नग उसी को फलीभूत होते हैं, जिनके पुण्य के नग जड़े होते हैं। भैया ! तूने तो आज तक नग नहीं पहना, फिर भी तू करोड़ों पर बैठा रहता है।

इसलिये ध्रुव सत्य है, जिसके पास पुण्य का नग है, उसको दुनियाँ में कोई नग पहनने की आवश्यकता नहीं है और जिसके पास पुण्य का नग नहीं है, कितने ही नग लटका लो, पूरे शरीर में चिपका लो, तब भी नग कुछ करनेवाला नहीं है।

चत्तारि सरणं पव्वज्जामि।

चार की ही शरण है, बस। भैया! बुरा तो नहीं लग रहा? इससे पूछ लेते हैं कि जितने सराफा व्यापारी हैं, चिढ़ जायेंगे हमसे सब। बोले-हमारे नग की बिक्री कम हो गई। दादा जी! चिन्ता मत करना। गुट्खे पर बिच्छू बना रहता है, तब भी लोग नहीं छोड़ते। ऐसे-ही मैं कितना ही कहूँ, जब रागियों को महावीर स्वामी नहीं ले जा पाये, तो मैं क्या ले जा पाऊँगा? पर मैं तो करुणा वश कह देता हूँ। लेकिन फिरभी जो है, सो है।

अरे भैया ! भिलाई में मैं प्रवचन कर रहा था, और प्रवचन में बोल दिया लोगों को, कि बच्चों को गोली-बिस्कुट मत खिलाया करो माँ। तो प्रवचन में खूब तालियाँ बजी भैया। जैसे-ही मैं मंच से उतरा, तो एक माँ कह रही थी, भैया! इन महाराज ने कुछ देखो-परखो तो है नईया, इन्हें तो कहवै की पड़ी रहत। अपन बच्चों को कैसे, क्या खिलायेंगे ? एक

बहन तो मालूम क्या बोली ? जब देखो तब महाराज जी महिलाओं के पीछे पड़े रहत। हमने कहा-देखो संसार की लीला। भैया! अनादिकाल से जगत को देखा है। "जो है, सो है"। आप मानो मेरी बात। पंचपरावर्तन से बचना है तो पंचपरमेष्ठी को भजो, पाँच पापों को तजो।

गाथा पढ़लो और घर जाओ। आप सभी समझ रहे हो कि मैं कहाँ जाने की कहता हूँ। मैं कहता हूँ कि जल्दी से कर्मों से छूट जाओ, ऊपर जाओ।

किं बहुणा वयणेण दु, सव्वं दुक्खेव सम्मत्त विणा।
सम्मत्तेण विजुत्तं, सव्वं सोक्खेव जाणं खु।। 154।।

यहाँ कह रहे हैं "किं बहुणा वयणेण दु"। ऐसा लगता है कि कुन्दकुन्द स्वामी बहुत समझाते-समझाते, अब सोच रहे होंगे कि कितना और समझाऊँ ? वो कहते हैं कि मैं कितना कहूँ ? बहुत कहने से क्या लाभ ? "सम्मत्त विणा सव्वं दुक्खेव" जगत् में जितने दु:खी हैं, दु:ख मिलते हैं, सब सम्यक् के बिना मिलते हैं। "सम्मत्तेण विजुत्तं, सव्वं सोक्खेव जाणं खु" और जितने सुख हैं, वो सारे सुख सम्यक् से ही मिलते हैं। सम्यक् से युक्त होकरके सम्पूर्ण सुख प्राप्त होता है, ऐसा निश्चय करके जानो।

इसलिये ज्ञानियो! "मिथ्यात्व को तजो, सम्यक् को भजो"। यही आत्मतत्त्व का सार है।

"**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं**", आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

"सम्यक्त्वहीन ज्ञान और क्रिया संसार के कारण हैं"

णिक्खेवणयपमाणं, सद्दालंकारछंद लहियाणं।
णाडय पुराण कम्मं, सम्म विणा दीहसंसारं॥ 155॥

अन्वयार्थ—(णिक्खेव-णय-पमाणं) निक्षेप-नय-प्रमाण **(सद्दालंकार)** शब्दालंकार **(छंद)** छन्द **(णाडय)** नाट्यशास्त्र **(पुराण)** पुराण इनका ज्ञान **(लहियाणं)** प्राप्त किया **(कम्मं)** बाह्य क्रियाएँ कीं किन्तु ये सब **(सम्म विणा)** सम्यक्त्व के बिना **(दीहसंसार)** दीर्घसंसार के कारण होते हैं।

अर्थ—निक्षेप, नय प्रमाण, शब्दालंकार छन्द, नाट्यशास्त्र, पुराण इनका ज्ञान प्राप्त किया, बाह्य क्रियाएँ कीं (किन्तु ये सब) सम्यक्त्व के बिना दीर्घ संसार के कारण होते हैं।

॥ देशना ॥

अन्तिम तीर्थेश वर्द्धमानस्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेश की पीयूष देशना, जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवन्त हो जयवन्त हो वीतराग श्रमणसंस्कृति।

आचार्यप्रवर भगवन्त् कुन्दकुन्द स्वामी ग्रन्थराज 'रयणसार' जी में श्रमण और श्रावक इन दोनों धर्मों की व्याख्या करते हुये समझा रहे हैं। अहो मुमुक्षुओ! संसार का ऐसा कोई प्रदेश अवशेष नहीं, जिस प्रदेश में तूने जन्म-मरण न किया हो। जघन्य से जघन्य अवगाहना को लेकरके, उत्कृष्ट से उत्कृष्ट अवगाहना को प्राप्त करके जन्म-मरण किया है।

अब भी उन क्षेत्रों का राग है। अभी प्रदेश का राग है। स्वप्रदेश का ध्यान ही नहीं, ज्ञानी! स्वप्रदेश पर दृष्टि लगाइये, परप्रदेश का राग स्वतः ही छूट जायेगा। गम्भीर तत्त्वनिर्णय की आवश्यकता है। कितनी बार पानी के जीव बनकर तुम रह चुके हो? ज्ञानी! कितनी बार वनस्पति बने हो? और कितनी बार वनस्पति में जिये-मरे हो?

जिस पृथ्वी पर राग हो, उस पृथ्वी पर जन्म लिया सो लिया, परन्तु उस पृथ्वीभूतह्वभी जन्म लिया। एक क्षण को वेदन करो। एक व्यक्ति, जरा सा शरीर को स्पर्श कर दे, तो पीड़ा होती है। कितने फावड़े तेरे ऊपर चले थे? कितने छैनी, हथौड़े तेरे ऊपर चले थे? भैया पीडा की स्मृतियाँ यदि बनी रहती, तो जगत् को पीड़ित न करता। शाम का भूखा पेट यदि सुबह भर जाता है, तो व्यक्ति शाम की भूख को भूल जाता है। शाम की भूख की स्मृतियाँ

रहेंगी तो दूसरों की भूख को देखकरके सोचना पड़ेगा उसको। पर "सबके दिन एकसे नहीं होते"।

निज की भूख का वेदन यदि हो जाये, तो दूसरों की भूख का भी आप ध्यान कर पायेंगे। पीड़ा का बोध नष्ट हो गया, इसलिये जगत् को पीड़ित करने के लिये खड़ा हो गया। एक भैया सात्विक है, और एक भैया चिन्तनभूत है। चिन्तनभूतह्नभैया बदलाव करेगा तो उसी दिन जीवनशैली बदल जायेगी। एक पत्थर को यूँ उठाया और जमीन में रख दिया। हाँ, जब तक पत्थर दिख रहा है और आपके शरीर की ताकत दिख रही है, तब तक आपको कुछ नजर नहीं आ रहा है। जिस क्षण पत्थर को उठाते समय जमीन के जीव दिखने लग जायेंगे, भैया! हाथ का पत्थर हाथ में ही रह जायेगा, नीचे रख नहीं पायेगा। एक हल को चलाते समय, एक फावड़े को चलाते समय एक क्षण को वेदन करो कि कितने जीव नष्ट हो चुके थे? हे अज्ञानियो, श्रावको! अविरत सम्यक्-दृष्टि हो आप, इसका तात्पर्य ये नहीं है कि अविरत सम्यक्-दृष्टि को अविरति का बंधन होता हो। इसमें संतुष्ट हो रहे हो आप कि मैं तो देशव्रती हूँ। ज्ञानी! देशव्रती होने से बन्धका अभाव हो गया क्या?

जितने अंश में देशविरत है, उतने अंश में ही बंध का अभाव हुआ है। लेकिन जितने अंश में अव्रती भाव है, उसमें तो बंध-ही-बंध है। साम्य-भाव जितने अंश में है, उतने अंश में निर्जरास्थान है। जितने अंश में कालुष भाव है, उतने अंश में बंधभाव है। बंध बन्द नहीं हुआ है, अनवरत चल रहा है। भैया! जब घास पर बैठता था, वे दिन कहाँ हैं ? ज्ञानियो ! घास बन कर खड़ा है, अब पूछ लो कि वे दिन कहाँ हैं? नेत्रों की ज्योति बढ़ाने के लिये घास पर दौड़ता था, आज घास ही बनकर खड़ा हो गया। कुन्दकुन्द स्वामी बोल रहे हैं-द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भाव ये पंचपरावर्तन में जीव ने अनन्त बार भ्रमण किया है। भैया ऐसा कोई भूमिप्रदेश नहीं बचा, जिस प्रदेश का मैंने भोग न किया हो।

नरक की भूमि का भोग किया। कलकल भूमि, निगोद को देखकर आ गया। यहाँ तक कि सिद्धशिला पर बैठकर भी आ गया। पर सिद्ध बनकर नहीं, निगोदिया बनकर आ गया। सिद्धालय में सुख है, पर ये मुझे कहीं दिखाई नहीं दिया कि सिद्धालय में सुख है। ज्ञानी! सिद्धालय में वे सुख नहीं हैं। बिल्कुल घबराना नहीं भैया! मैं जानकर खींचकर बोलता हूँ, तनिक लगे तो कि क्या बोल रहे हैं?

सिद्धालय में भी सुख नहीं है। जिनालय में भी सुख नहीं है। भैया तुम कैसी बातें करते हो? जब सिद्धालय में सुख नहीं तो जिनालय में कहाँ से सुख है? ज्ञानी! तेरे घर में नौकर

भी है क्या? सही-सही बोलना, गड़बड़ नहीं करना है, भैया! घर तो बढ़िया बना है न? तेरी अमीरी का वेदन तुझे होता है घर में। भैया तेरी अमीरी का वेदन तेरे नौकर को होता है क्या?

जो आपके भवन बने हुये हैं, उसपर सैकड़ों लोग मजदूरी कर रहे हैं। तू तो गाड़ियों में बेठकर घूम-घाम कर आ जाता है। पर जो तेरे घर में काम कर रहे हैं। उनसे पूछना कि मेरे घर की, मेरी अनुभूति आपको हो रही है क्या? उसी भवन में आप रहते हो, उसी भवन में एक कमरा नौकर को दिये हो। पर भो ज्ञानी! जो अनुभूति तुझे होती है, वह नौकर को होती है क्या? उस बेचारे को गरीबी ही दिखाई देती है। पर तू किसी भी झुपड़िया में भी जाकर बैठ जायेगा, तब भी तुझे अमीरी ही दिखाई देगी।

मुमुक्षु! सिद्धालय में सुख नहीं, जिनालय में सुख नहीं। सुख उसे ही होता है, जो सुखिया होता है। जिसको साता का उदय है, उसको सुख है। जिसको असाता का उदय है, उसको दु:ख है। जिसके साता-असाता दोनों निकल चुके हैं, उसको परमसुख है। सुखिया कौन है? इस भ्रम में मत पड़ जाना। भैया माला लेकर बैठ जाये, कि भगवन्! सिद्धालय में पहुच जाऊँ। ज्ञानी! सिद्धालय की रट मत लगा लेना, निगोदिया बनकर भी जाता है। ऐसा कहना, भगवन् सिद्ध बन जाऊँ।

सिद्धालय में सभी जीव सुखी नहीं हैं। वहाँ तो सिद्ध ही मात्र सुखी हैं। जिनालय में मात्र जिनदेव सुखी हैं अथवा जिनभक्त सुखी है। जिनालय में तो चूहा भी घूमते हैं, सांप भी घूमते हैं, छिपकली भी घूम रही है। जिनालय में जितने जीव हैं, उनको जिनेन्द्र नहीं दिखते। अहो आश्चर्य! इतनी विशाल गोम्टेश बाहुबली की प्रतिमा मोराजी में विराजमान है। उस छिपकली को, अभागी को, बेचारी को ऐसे सुन्दर प्रभू नहीं दिखते। उसको सुन्दर जिनदेव नहीं दिखते हैं, उसको तो मात्र जीव दिखते हैं। ऐसे-ही भैया! यदि कहीं जिनवाणी चल रही हो सुन्दर-से-सुन्दर, पर जिसके मन में ईर्ष्या चल रही हो, उसे जिनवाणी नहीं झलकती, उसको तो कलुषित परिणाम ही दिखते हैं। क्या करें? जिसकी दृष्टि जैसी है, उसकी पर्याय वैसी है। परिणति भी उसकी वैसी ही होती है। आपको विश्वास न हो तो अभी देखकर आओ, दीवाल पर छिपकली मिल जायेगी।

श्री जिनालय में छिपकली भी जाती है। घूम रही है दीवालों पर। अपन लोग तो दिन में एक या दो बार पहुँचते हैं, वो 24 घण्टे दीवाल पर चिपकी रहती है। कभी-कभी प्रभू की प्रतिमा पर भी घूमकर आ जाती है। लेकिन ये मत सोचना कि चरण छू रही है ये देख रही है कि प्रतिमा पर जो जीव बैठा है, पकड़ कर लाऊँ।

छिपकली की पर्याय छिपकली की पर्याय से नहीं मिली, जो छिप-छिपकर दूसरों के दोष खोजा करते थे, उन परिणामों से मिली है। जिसका देव दिगम्बर, गुरु दिगम्बर, उसको मानने वाले सब दिगम्बर। कह देना सबसे, जिनदेव की पूजा छोड़ मत देना। जिन गुरुओं ने उपसर्ग सहन किये, परीषह सहन किये, उनके नाम पर तुम कपड़े पहनकर भी दिगम्बर हो। इसलिए जो दिगम्बर को ही न माने, तो दिगम्बर कैसा?

सुख कहाँ है? इस भ्रम को निकाल देना, आज ही, अभी कि परवस्तु में सुख है। न विमानों में सुख है, न वाहनों में सुख है, न भवनों में सुख है। ये सत्य है कि साता का उदय चल रहा है, तो काली रात्रि भी आनन्द देती है और असाता का उदय चल रहा है, तो चन्द्रमा की चाँदनी भी झुलसा देती है। सुख कहाँ है?

कुछ लोग माला इसलिये फेरते रहते हैं कि मैं विदेह में जाकर जन्म ले लूँ। ये पागलपन छोड़ दो आज से। विदेह में जन्म लेने से क्या कल्याण हो जायेगा? अनन्त बार तू विदेह जा चुका है और विदेह में तू क्यों जन्म लेना चाहता है, ये बात तो बताओ? बोले, महाराज श्री! वहाँ पर विद्यमान वीस तीर्थंकर रहते हैं, 24 घंटे रहते हैं, इसलिये वहाँ जन्म लेना चाहता हूँ।

ज्ञानी! इनको पता होना चाहिये कि तुम तीर्थंकर के बेटे तक बन चुके हो, तब भी तुम पंचमकाल में आ गये। तीर्थंकर कुमार का मित्र बन चुका यह जीव, तीर्थंकर के साथ गिल्ली-डण्डा खेल चुका यह जीव, तीर्थंकर के साथ भ्रमण कर चुका है। लेकिन तब भी तीर्थंकर-जैसी तीर्थ-दृष्टि नहीं बनी। इसलिये पंचमकाल में आ गये। कितने ही यहाँ के श्रावक ऐसे हैं जो मुस्कराकर कहते हैं, कि महाराज! हम अमुख महाराज जी के भैया हैं। माता जी का भाई हूँ। पिता हूँ। पर इन सबसे पूछो कि तुम सब होने के बाद भी तुम कहाँ हो? तीर्थंकर-कुल में जन्म लेने से कहीं कल्याण नहीं होता है। तीर्थंकर की जो परिणति होती है, तद्रूप परिणमन करेगा, तब कल्याण होगा। अभी तो तू अहंकार में है, गिरकर नीचे चला जायेगा। किसी जीव को अहंकार आ जाये कि हमारे गांव में पचासों मुनि, आर्यिका हुई हैं। ज्ञानी! इस अहंकार से तेरा कल्याण नहीं होगा। तेरा कल्याण तो तब होगा, जब पिच्छि जैसे तेरे परिणाम मृदु हो जायेंगे। ज्ञानियो! क्या सोच रहे हो? साता का भोग जब तक नहीं छोड़ेगा, असाता का आस्रव बन्ध भी होगा। असाता का आस्रव बंद हुये बिना संसार का निर्बन्ध होना कठिन है। यही तो बात है कि आपस में आप लोग गड़बड़ कर लेते हैं। असाता न आये प्रभू! पर साता के फल को भोगना छोड़ता नहीं है। असाता से असाता नहीं आ रही है, साता का जो फल है, उसके भोग में तू लिप्त है। किसी ने कुछ कहा, तो जल्दी से बुरा मान लेता है। इसी का नाम है राग-द्वेष। साम्य-भाव होता तो सुन लेता। भैया! यह कहता है कि एक

द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ नहीं करता, मैं तो इतनी दूर बैठा था, वह सुनकर इधर कैसे आ गया? ज्ञानी! आप समझो, मैं कुछ कह रहा हूँ, बड़े रहस्य की बात है।

भो ज्ञानी! एक द्रव्य-दूसरे द्रव्यरूप परिणत नहीं होता, पर एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को सहकारी अवश्य होता है। यदि बराबर नहीं होता, तो तू हाथ क्यों जोड़ता? भैया! ध्रुव सत्य है, निश्चय व व्यवहार, दोनों दृष्टियों का समन्वय है। साता का होना, लाभान्तराय कर्म का क्षयोपशम होना, वस्तु का मिलना, स्वाद का आना, ये तभी सम्भव है जब तक पुण्य का उदय है। कभी-कभी वस्तु भी मिल जाती है, लाभान्तराय कर्म के क्षयोपशम से मिल गया द्रव्य, लेकिन मुख का, स्वयं का स्वाद बिगड़ गया। पहले खाई थी जो, उसको अब कड़वा लगता है।

ऐसे ही मुमुक्षुओ! बड़ा पुण्य का संयोग मिला हम सबको। अनन्त पर्यायों में इस जीव ने तीर्थंकर भगवन्तों के सामने बैठकरके जिनवाणी का रसपान किया। लेकिन क्या करूँ? मुख का स्वाद कड़वा था, सो मिथ्यात्व की कड़वाहट में उस रसपान को मीठा लगने ही नहीं दिया। क्या करें? बुखार जब आता है, ये तो प्रायः सभी अनुभवशील हैं, हर वस्तु कड़वी लगती है। अपने बुन्देलखण्ड की भाषा में कहें, "कछु नहीं सुहात ऊ समय"। कितेक मतारी कहे, बेटा! पेड़ा खालो, पापड़ खालो, कछु तो खा लो, तो बेटा कहत माँ! मुझे कुछ नहीं सुहात। जो कछु आप देते हो, सब जहर घाई लगत।

भो ज्ञानी! सीधी-सीधी बोल वस्तु में जहर नहीं है, तेरे मुख की कड़वाहट है। ऐसे-ही भो मुमुक्षुओ! अर्हन्त की वाणी उसको न सुहाय। अर्हन्त की वाणी में जहर नहीं है, तेरे मुख का स्वाद विकार से विकृत है। जब तक मुख का स्वाद ठीक नहीं करोगे, तब तक वस्तु का स्वाद नहीं आयेगा। भीतर तक ले भी जाओ, लेकिन जब तक मुख का स्वाद सही नहीं होगा, तब तक कड़वा ही लगेगा। मुख की लार ही मीठी लगने लगती है तब नमक भी मीठा लगता है।

जब मुख का स्वाद विकृत होता है, तो माँ का मधुर दूध भी कड़वा लगता है। ये किसी से पूछने मत जाना, ये किसी से प्रच्छना मत करना। ये तो स्वयं को मालूम है कि जितना आनन्द अपन लूट रहे हैं, सब साता के उदय की महिमा है। संक्लेशता नहीं है भैया! तब तक आनन्द लूट लो। पता नहीं कौन अभागा समय ऐसा आजाये और संक्लेशता की आग अन्दर लग जाये। भैया! तीर्थंकर भी समझाने आयेंगे हमको तो उस समय कुछ भी समझ में नहीं आयेगा। किसी की बात समझ में नहीं आयेगी।

आदमी को गुस्सा भी आया प्रबल, तो उसको गुरु भी क्यों न समझायें हित की बात भी उसको कड़वी लगती है। यथार्थ मानना। दो बातों को सम्हलकर, ध्यान से सीखना। राग और द्वेष के दो ऐसे क्षण हैं जिसमें हित की बात किंचित् भी प्रवेश नहीं करती है। और यदि समझ में नहीं आये तो समझा भी सकता हूँ। भैया! सही बताना, आज के युग से तुम्हारी शादी हुई थी कि पुराने टाइप से हुई थी? मैं इसलिये पूछ रहा हूँ कि तू अपने बेटे की माँ को देखने गया था, तो मालूम किया था कहीं इधर-उधर से? अच्छा, बस, मैं अब समझ गया सब बात अब ऐसे लोगों से ऐसे ही तो पूछा जाता है। बताने में तनिक झिझकते हैं, लेकिन बता तो देंगे। परिवार के लोग तो गये होगे, पक्का लेकिन कुछ भी हो भैया! तू कहीं भोजन भी कर रहा होगा, पानी भी पी रहा होगा, लेकिन परिवार के लोग जब वापिस आये थे, तो तुझे शर्म लग रही थी, पर कहीं-न-कहीं छुप-छुप कर सुन रहा होगा कि बातें कैसी हो रही हैं। सही बात है न? देखो "जो है, सो है" उसमें क्या दिक्कत है?

भैया! तू पी रहा था पानी, कर रहा था भोजन, पर जब वापिस लौटकर आये थे वहाँ से परिवारजन, ये धीरे-से सुन रहा था। देखो, सुनाई तो पड़ ही जाता है कि बिटिया कैसी है? माँ खुश हो गयी, पिता खुश हो गया, विश्वस्त लोगों के मुख से सुन लिया। ओ हो! क्या गजब की बात है? धन्य हो। यही मोक्षमार्ग है। कोई बिटिया की बात मोक्षमार्ग है, ऐसा मत सोच लेना, मैं क्या कह रहा हूँ? पूरी बात सुनो। नहीं तो अधूरी बात सुन ली, नमोऽस्तु शासन कहाँ से आ गया? अरे ज्ञानी! आगम खोल, आगम सीख। भैया! इतना तो दुनियाँ ने सुन लिया कि नमोऽस्तु शासन कहाँ से आ गया? अरे ये तो और सुनो, वे ये भी कहते हैं। श्री जिन सर्वज्ञशासन, नमोऽस्तुशासन जयवंत हो। जो सर्वज्ञशाासन है, वही नमोऽस्तु शासन है और जो नमोऽस्तु शासन है वही सर्वज्ञशासन है। अब क्या हुआ? अधूरी बात सुन ली कि महाराज कह रहे थे भैया से कि आपने अपनी पत्नी के बारे में जो बात सुनी थी, वही मोक्षमार्ग है। अरे! पूरी बात सुनो भैया! मैं क्या बोल रहा हूँ?

ये विशुद्धसागर जी नहीं बोल रहे, समयसार जी में जयसेन स्वामी ने लिखा है। विश्वस्त पुरुषों से सुना, जब यह युवा था, कि बिटिया अच्छी है। सबसे गहरी बात ये है कि बहन, बहनोई, एकाध मित्र साथ में गये हों, और ये लोग कह दें, तो तनिक और-ज्यादा विश्वास हो जाता है। हाँ, मेरी बहन भी बोल रही है और माँ ने, पिता ने बोला है कि बिटिया अच्छी है। माता-पिता की बात सुनते ही इसने बेटी को देखा ही नहीं था, फिर भी भैया ने मान लिया कि अच्छी है किंचित् भी मना नहीं करता, स्वीकार कर लेता है। बोलेगा कुछ भी नहीं और मन-ही-मन में लड्डू फूट रहे हैं।

हे ज्ञानी! तूने कितना बड़ा गम्भीर निर्णय ले लिया? तू कन्या को देखने नहीं गया, कन्या के घर में भोजन करने नहीं गया, पर माता-पिता के कहने के अनुसार इतना विश्वास किया है कि जब माँ-पिता बोल रहे हैं कि बेटी सुन्दर है तो शान्त होकरके कितना गम्भीर निर्णय ले रहा है? कि अपना पूरा जीवन उस जीव को सौंपने जा रहा है। ठहरो! बेटे ने विश्वास कर लिया और गम्भीर निर्णय किया और युवावस्था की पूरी स्वतंत्रता तूने एक क्षण में छोड़ दी है। इतना ही नहीं, जो कमाया था, उसकी चाबी भी तूने उसे सौंपने का मन बना लिया क्योंकि निर्णय जो भीतर कर चुका था कि अब मेरा घर चलेगा।

ज्ञानी! अभी तक बेटे के मुख से 'मेरा घर चले' शब्द नहीं आता था। भैया कितना गम्भीर निर्णय लिया था। जीवन में जो कमाया था उसे दे दिया। पुरुष तो घर के बाहर रहता है, घर में माता है, पूरा घर उनके ऊपर छोड़के रखा है। कितना विश्वास है आपको? यही मोक्षमार्ग है। क्यों कह रहा हूँ? सुनो ध्यान से।

जैसे जनक-जननी की कही बात पर विश्वास करके तूने संसार की वधू का वरण कर लिया है, ऐसे-ही माँ भगवती जिनवाणी कह रही है, बेटे! तेरा परमपिता परमेश्वर अर्हन्तदेव कह रहे हैं मेरे पुत्र! तेरी मुक्तिवधु इतनी सुन्दरी है। मुक्तिवधु की सुन्दरता तूने देखी नहीं है, तब भी श्रद्धान करता है। जैसे अपनी बनने वाली पत्नी को नहीं देखने वाला, माता-पिता की बात पर ही विश्वास करके, शादी करने को तैयार हो जाता है। वैसे-ही तत्त्वज्ञ ज्ञानीजीव अर्हन्त की वाणी और जिनवाणी को सुनकरके निज आत्मवधु पर विश्वास करलेता है। अभी आपने कहाँ देखी मुक्तिवधु? धन्य हो आप लोगों के लिये और धन्य हो इन युवाओं के लिये।

ये तो यहाँ की भूमि की महिमा है कि एक आठ वर्ष का बालक कहता है कि महाराज! यज्ञोपवीत पहना दो मुझे और कहता है कि मुझे आगे मुनि बनना है। क्या अद्‌भुत अन्दर भाव बैठे हुये हैं? अभी हस्तिनापुर में एक मुनिसंघ विराजमान है। उनके समाचार आये कि बुन्देलखण्ड में तो शिष्य मिलते-ही-मिलते हैं, पर बात ऐसी है कि जिस भूमि में जैसी वर्गणायें भरी हुई हैं, उस भूमिप्रदेश का प्रभाव ही ऐसा है।

भारत के कोने-कोने में जो भी विद्वान् मिलेंगे, वो मध्यप्रदेश के मिलेंगे और आपको हर संघ में मध्यप्रदेश का ही मुनि मिलेगा। इसमें शंका नहीं करना, पुण्यभूमि पर जन्म मिलना भी पुण्य का ही उदय होता है। जिस नगर की गली-गली में अर्हन्त की देशना गूंजती हो, ऐसे नगर में जन्म मिलना भी पुण्य का उदय होता है। ऐसे भी जैनी भाई होंगे, देहातों में अकेला एक-एक घर होगा। वे बेचारे, मंदिर हुआ तो, ज्यादा-से-ज्यादा दर्शन करके आ गये और दिन भर जैसे चींटी घूमती रहती है खाने के लिये, ऐसे दिनभर निकालना पड़ता है।

मुनिमहाराज को देखने के लिये मन करता है, ये बहुत उत्कृष्ट भावना है। सही बताऊँ, कहीं-कहीं देहातों में अपनी समाज को देखने का मन करता था और समाज भी देखने को नहीं मिलती, क्योंकि एक ही घर था, क्या करोगे आप? ये भी ध्यान रखो, इतनी विशाल समाज में धर्मात्माओं के बीच में बैठना ये तुम्हारे पुण्य का उदय है, पाप का उदय नहीं है।

पत्ते तो वृक्ष में ही होते हैं। पर वृक्ष इस अहंकार में न डूबे कि मेरे में पत्ते हैं। हे वृक्ष! पत्ते झड़ जायेंगे, तो ठूँठ पर कौआ भी नहीं बैठता और कहीं बैठ भी जायेगा और तूने देख लिया, तू बाहर जा रहा था, सत्य मानना, इससे बड़ा और-कोई अपशकुन नहीं है। जब रावण जा रहा था युद्ध करने श्रीराम से, उसको ये अपशकुन सबसे पहले हुआ था। सूखे वृक्ष पर कौआ। सूअर के ऊपर कौआ यदि बैठा दिख जाये, तो ज्ञानी! अपने घर लौट आइये सीधे।

ये ध्यान रखना कि कौआ ने कुछ नहीं बिगाड़ा तुम्हारा, न ठूँठ ने बिगाड़ा। नहीं-तो तुम उसको गाली देने लग जाओ। ये तो तुमको सूचना है कि तुम्हारा समय अच्छा नहीं है, इसलिये शान्ति से वापिस आ जाओ। जब रावण युद्ध करने जा रहा था, भूकम्प भी हुआ था, तारा भी टूटा था, लेकिन जिस जीव का पुण्य क्षीण हो जाता है, उसका प्रशस्त विचार भी नष्ट हो जाता है।

रावण विद्वान् होकर भी समझ रहा था, कि ये सब मेरी पराजय की सूचना है। तब भी अहंकार में कहता है मैं अर्धचक्री, राम के पास क्या है? मेरे पास तो चक्र-रत्न है।' पर ध्यान दो, पुण्यरत्न के आगे सारे रत्न समाप्त हो जाते हैं। भैया! ये भूल मत करना जीवन में, कभी किसी से आप को झगड़ा भी करना हो तो अपने अस्त्र-शस्त्र के अहंकार में मत बैठना, सामने वाले के मस्तिष्क को देखना कि इसके ऊपर पाप का पसीना झर रहा है कि पुण्य का गंधोदक बरस रहा है?

ज्ञानी! जिस पर पुण्य का गंधोदक बरस रहा हो, उससे कभी झगड़ा करने मत चले जाना। ये गहरी बातें सीखो कुछ। भैया! सारी शक्तियाँ गौण हो जाती हैं पुण्य के सामने। भैया! महाभारत के युद्ध में दुर्योधन ने क्या माँग लिया? पूरी सेना माँग ली। अर्जुन मुस्करा गये कि चलो, दुर्बुद्धि ने जो माँगना था सो माँग लिया, अब मुझे माँगने की आवश्यकता ही नहीं है। मुझे जो चाहिये था, मुझे वह मिल ही गया। ये है पुण्य और महाराजा कृष्ण की लीला देखो, चातुर्य देखो। बोले, एक ओर मेरी पूरी सेना रहेगी और दूसरी ओर मैं रहूँगा।

अपने बुन्देलखण्ड में कहा जाता है, भैया! नानी के सामने ननिहाल की बात न किया करो। अरे भैया! अब नानी के सामने ननिहाल की क्या सुना रहे हो? पुण्यात्मा के सामने

सब शक्तिहीन हो जाते हैं सेना ने नारायण कृष्ण को नहीं बनाया, नारायण कृष्ण के पुण्य से सेना तैयार हुई है। तो विश्वास रखो। उन वक्ताओं से मेरा कहना है, कि भैया! कहीं आपको भाषण करना पड़ जाये और जिसको आप लिख कर ले गये थे उसको झाँक-झाँक कर सामने वाला देखे, तो बड़े प्रेम से कहना—भैया! तू चोरी मत कर, ये पकड़। पकड़ो, पढ़ो अच्छे से।

विश्वास मुझे है, जब मेरा मस्तिष्क लिखने में चल सकता है, तब तू इतनी बुद्धि नहीं चला पाया, नकल करने में ही तेरी बुद्धि चली गई है। में पहले आपको दे दूँगा, आप बोल लो। यदि वो आपका पूरा भी बोल देगा, तो भैया! विश्वास रखो, तब भी इतना बचेगा कि आप बोल सकते हो।

मट्ठा से कितना ही मक्खन निकाल लो, पर माँ फिर एकाध बार हाथ हिलायेगी तो कुछ-न-कुछ तो फिर से निकल ही आयेगा। ऐसे-ही ज्ञानियो! जब पुण्य प्रबल होता है, तो कोई कितना ही कुछ कर ले, जब मट्ठा से मक्खन निकल सकता है, तो पुण्यात्मा का पुण्य क्यों नहीं निकलेगा? कभी मत घबड़ाना आज से।

क्या माँग लिया इस दुर्योधन ने? कि मुझे तो सेना चाहिये। मालूम, अहंकार में क्या बोलता है ? देखो अर्जुन कैसा पागल है? अकेला ग्वाला क्या करेगा? अहंकार बोल रहा था नारायण श्रीकृष्ण को ग्वाला समझकरके, यही तो भूल है कि आपने ग्वाला समझ लिया। ज्ञानी! आपको मालूम होना चाहिये कि, ग्वाले के घर से दूध न आये, तो सेठ के बेटे भी नहीं जी पायेंगे। इसलिये भैया! ग्वाले का भी अपमान नहीं करना।

किसान का भी अपमान मत करना, जिनके नाम पर तुम सेठ बने हो। वो किसान मेहनत न करे, तो तुम्हारे घर में बोरे कहाँ से आयेंगे? जो तुम्हारे घर में बोरे रखे हैं अनाज के, तुम तो भैया! लेन-देन करके अपना पेट भर रहे हो, लेकिन मेहनत किसने की? जैनदर्शन में एक विशेषता है। सम्पूर्ण जैन शासक की तो व्याख्या की गई है, लेकिन कभी भी राष्ट्र और शासन के विरुद्ध कोई बात नहीं उठाई गई।

भैया! बाँटों में शील लगती कि नहीं? फीता तो नहीं खिसकाते। धीरे-धीरे सब पूछ लेता हूँ। मतलब समझो। इससे बड़ा धर्म कहाँ मिलेगा जिसमें नीति का लिख दिया हो। हीन लेना, हीन देना ये आपके व्रत में दोष है। मिलावट करना, घी के नाम पर आलू फेंट देना और दूध के नाम पर यूरिया मिला देना।

भैया इतना ध्यान रखना कि सूखी रोटी खा कर सो जाना, लेकिन बाजार के दूध के पैकिट का यूरिया मत पीना। इससे बहुत बड़े-बड़े कैंसर-जैसे रोग हो रहे हैं। आप ये कह सकते हैं, महाराज! आप ये व्यवहार की बातें क्यों बोल रहे हो? भैया! मेरे व्यवहार की बातों में भी बड़ा रहस्य है।

यदि हमारे समाज के शरीर स्वस्थ रहेंगे, तो इनके मुख से नमोऽस्तु शासन स्वस्थ रहेगा। जब हमारी समाज ही स्वस्थ नहीं रहेगी, तो जिनशासन कैसे स्वस्थ रहेगा? "न धर्मो धार्मिकैर्विना"। यदि हमारे युवा गुटखा खा-खा करके केंसर से पीड़ित हो जायेंगे और समय के पहले ऊपर चले जायेंगे और ऐसे जाते रहे जाते रहे, तो इन युवाओं की रक्षा नहीं कर पाओगे, तो सबसे पहले जुलूस में झंडा लेकर कौन चलेगा?

धर्म का ह्रास होगा। यदि हमारे ये श्रावक छोटे परिवार के राग में सन्तान को जन्म न दें तो ज्ञानियो! पापियों की संख्या बढ़ती जायेगी, लेकिन धर्मात्मा नष्ट हो जायेगा। ज्ञानी! आप ध्यान रखो या तो ब्रह्मचर्य का पालन करो या फिर सन्तान को जन्म दो। ये संतान रहेगी तो सनातन धर्म भी रहेगा।

"कुरल काव्य" और"नीतिवाक्यामृत" ये बहुत रहस्यमय ग्रन्थ हैं। पूरा धर्म, राजनीति, समाजनीति सारी नीतियाँ विश्व में जितनी हैं, "नीतिवाक्यामृत" ग्रन्थ में लिखी हैं। सोमदेव सूरि ने लिखा कि अब इसके बाद कोई नीतिग्रन्थ नहीं लिखा जायेगा। जो भी लिखा जायेगा, इसी का पिष्ट-पेषण होगा। इतनी दबंगी से कोई लिखने की ताकत रखता है क्या, जितनी दबंगी से "नीतिवाक्यामृत ग्रन्थ में सोम देवसूरि ने लिखा है। नारद की नीतियाँ, विदुर की नीतियाँ, चाणक्य की नीतियाँ, जगत् में जितनी नीतियाँ हैं, सारी-की-सारी नीतियाँ "नीतिवाक्यामृत" ग्रन्थ में भरी पड़ी हैं।

जो दुनियाँ से सलाह ले, उससे बड़ा जगत् में कोई पागल नहीं है। सुनना ध्यान से, कभी न लेना दुनियाँ से सलाह। बात ऐसी है कि लुहारी से चले दादा, सो इनके पास में था घोड़ा। साथ में था बेटा। वे यहाँ की ओर आ रहे थे। रास्ते में कोई गाँव पड़ गया। वहाँ किसी ने पूछा-कहाँ से आ रहे हो? कहाँ जा रहे हो? धीरे-से एक बोला, 'कैसा पागल आदमी है? घोड़ा साथ में लिये है और पैदल चल रहा है।'

थोड़े और आगे चले। दूसरे मिल गये। बोले, 'कैसा हत्यारा है? शर्म नहीं आती इसको। एक जानवर और दो-दो बैठ गये।' सो दोनों उतर गये, पाँव-पाँव चलने लगे।

ईर्ष्यालु व्यक्ति का स्वभाव कैसा होता है? जो अग्नि का स्वभाव है, वही ईर्ष्यालु का स्वभाव है। अग्नि स्वयं भी जलती है और दूसरे को भी जला देती है। ईर्ष्यालु स्वयं भी जलता है और दूसरे पर भी अपनी आँच फेंकता रहता है। जो व्यक्ति ओष्ठ मीसे, नेत्र रक्त करे मदपायी जैसा काँपे, जो दूसरों की प्रशंसा सुनने में जिसे आग लगे, दूसरों की सम्पत्ति देखकर बेचारा झुलस जाये राख हो जाये, दूसरों की सन्तान देखकरके उसकी गोदी जलने लग जाये, बस, समझ लो कि यही ईर्ष्यालु जीव है।

जो अबा में अग्नि जल रही है, वे सभी ईर्ष्यालु जीव ही हैं। जो दूसरों की सन्तान को देखकर जलते हैं। भैया! तूने क्या बबूल नहीं देखा? देखा है। भैया! बबूल से बबूल नहीं बना। जो भैया धर्मसभा में पहुँचे, धर्मात्माओं के बीच में पहुँचे और बेचारे उनके सुख को देख-देखकर के उनको चुभन हो रही है तो उनको सताने लग गये। वे बेचारे अब सर्वांग में कांटे लगाये बबूल बन गये। पर कुछ-कुछ फूल भी तो बन जाते हैं।

ज्ञानी! गुलाब का फूल होता है, उसमें भी कांटे होते हैं। ये क्यों हो गया ऐसा? ज्ञानी! जो धर्मात्मा था, दिगम्बर बन गये, देश प्रतिमाधारी भी बन गये, तब भी उसके अन्दर ईर्ष्या नहीं गई, तो फूल तो बना, परन्तु काँटेवाला बना।

भैया! सम्हलके रहना। इधर अब हमसे न कहना। 'जो है, सो है।' इसलिये इतना ध्यान रखना कि कोई क्या कर रहा है, इसमें नहीं जाना। हमारे परिणाम कैसे अच्छे रह सकते हैं? अभी तो पाण्डव कह रहे थे कि तेरा सो तेरा मेरा सो मेरा। और दुर्योधन कह रहा था कि तेरा सो मेरा, और मेरा सो मेरा बस, समझ लो कि यही तो ईर्ष्या है।

चार भैया थे। पिता ने हिस्सा दे दिया तब भी अपने हिस्सा को नहीं देखता, भैया के हिस्से पर दृष्टि जा रही है। शुद्ध बैल है। बैल को कितना ही घास डाल दो, पर वह बगल की ओर मुँह जरूर मारेगा। बस, समझ लो कि अपनी सम्पत्ति होने पर भी दूसरे की सम्पत्ति को देखता जाये, वह शुद्ध बैल है। वह पर्याय का मनुष्य है परिणामों का बैल है और भविष्य की पर्याय भी बैल है। बुरा न मानना, भैया! 'जो है सो है।'

अभी हम जा रहे थे रास्ते में, तो वहाँ काँच पड़ा था, तो एक भी लड़के ने कांच नहीं बीना, सब देख-देखके निकल गये। भैया! काँच नहीं बीनना अपने पाँव बचाकर निकल जाना। ये पंचमकाल है, यहाँ ईर्ष्या के काँचों से पूरी रोड़ भरी पड़ी हे। अपने पैर बचाके निकल चलो। ओम शान्ति।

कब तक काँच बीनेगे? दया आ भी जाये हम लोगों को कि दूसरों को काँच न लग जाये, सो बीन लो, लेकिन सबसे बड़ी दिक्कत ये है कि आज का युग, भैया! आपको पता है कि समय जल्दी का है। जब तक आपको दया आई काँच बीनने लगा उसे उधर से पीछे से किसी ने ठोक दिया (गाड़ी ने)। अब देखो आप, लाइन-पर-लाइन तो वाहनों की लगी हैं। इससे काँच बीनने में समय मत निकालो, सम्हलके निकल चलो। पीछे से बड़े-बड़े वाहन निकल रहे हैं। यमराज कब ठोकर मार दे और तुम काँच ही बीनते रह जाओ? इसलिये अपने पैर सम्हालके निकल चलो।

एक सज्जन मेरे पास आये, भैया! एक दिन बोले, महाराज! ऐसी-ऐसी बातें हो रही हैं, आप कुछ क्यों नहीं कहते हो? मैंने कहा, तू पगला है। बुद्धिविहीन हो गया है तू। जब तक मैं बातों में लगूँगा, तब तक मेरी आयु निकल जायेगी। मुझे भगवान् जिनेन्द्र की वाणी दिख रही है, तुझे अपनी बाते दिख रही हैं। चलो, आगे चलते हैं। "जो है, सो है"

सज्जन पुरुष तो ऐसा होगा कि पीछे मुड़कर नहीं देखेगा। आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी कह रहे हैं कि जो भी सुख है, वो सम्यक् से मिलता है। बार-बार गहरी श्रद्धा रख लो। जब आपकी शादी श्रद्धा से हुई और घर भी श्रद्धा से बसता है। जब भी आपके घर मिटेंगे, अश्रद्धा से मिटेंगे। मैं स्पष्ट कह रहा हूँ। चाहे वे मुनिसंघ हों, चाहे श्रावक हों। मुनिसंघ भी जब भी मिटते हैं, तो अश्रद्धा से मिटते हैं।

भैया संघ में निभ सको, तो दीक्षा लेना। यदि अपने अनुसार संघ चलाने की भावना लेकर जाये, तो भैया! उस संघ की रक्षा करना। संघ में आप ढल सको, तो संघ में जाना। यदि अपने अनुसार संघ चलाना चाहते हो, तो दूसरे दिन ही संघ टूट जायेगा। जो साधु अपने आचार्य को अपने अनुसार चलाने के लिये कान भरने लगता है, समझ लो कि अब वह साधु संघ को नष्ट कर देगा। आचार्य के कानों तक कभी न जाये। आचार्य साधु को कानों तक लगायेंगे, क्योंकि ये पंचम काल है। मैं गुरु को खुश रखूँ, तो गुरु खुश रहेगा, दूसरे साधुओं को बेचारों को गिरा दूँ।

इस राग में संघ टूटते हैं और आपका घर। जब भी चूल्हे 10 रखे जायेंगे। उसका कारण होगा कि मुखिया को खुश करने के चक्कर में बड़े भैया की निन्दा छोटे भैया से और छोटे भैया की निन्दा बड़े भैया से। पिताजी समझ नहीं पाये और गुस्से में आकर डाँट दिया। बस पिताजी! अब हमें अलग होना है। सुनो ज्यादा, पर मानो कम। मानने के पहले सोच लेना। भैया! सुनना सबकी, करना आगम की। मन की नहीं। जिन-जिन ने मन की की है वे पंथ

बना गये और जिनने आगम की मानी, वह श्रमण बनकर चले गये। मन की नहीं करना पंथ बन जायेगा। ज्ञानी! आगम की करना तो सत्पुरुष बनकर भगवान् बन जायेगा। सम्हलके बोलो, यह जिनवाणी की गद्दी है। जो मन की करता है भैया! विश्वास मानना मन की करने वालों की कोई मानता भी नहीं है।

जिन शासन में नंगे की पूजा नहीं है, नग्नत्व की पूजा है। क्योंकि नंगे तो जगत् में अनेक जीव हैं। सर्वाधिक संख्या नंगों की है, परन्तु जिनशासन में नग्नत्व की पूजा है। एकेन्द्रिय से लेकर संज्ञी पचेन्द्रिय तक सर्वाधिक संख्या किसकी है? जितने तिर्यंच हैं, जितने नारकी हैं। ओर सर्वाधिक तिर्यंच हैं। ये मत कभी कह देना कि मैं तो नंगों को पूजता हूँ। आप ये कहना कि मैं दिगम्बर को पूजता हूँ। रत्नत्रय से मण्डित जो नग्नत्व गुण है, मैं उसकी पूजा करता हूँ।

ज्ञानी! एकांत से ग्रहण नहीं करना। अनेकांत दृष्टि से समझा रहे हैं। भैया! आपका मन करता है कि मैं ज्ञानी बन जाऊँ, मैं छन्दशास्त्र पढ़ लूँ, मैं अलंकार विद्या पढ़ लूँ। जितने पंडित पढ़ने-पढ़ने में लगे हैं, वे निज को पढ़ नहीं पाते हैं। यदि सम्यक् है, तो सारा ज्ञान सम्यक् है। यदि सम्यक् रहित है, तो सारेशास्त्र ज्ञान झूठे हैं।

णिक्खेवणयपमाणं, सद्दालंकार-छंद-लहियाणं।
णाडय पुराण कम्मं, सम्म विणा दीह संसारं॥ 155॥

किस प्रकार से साधक और श्रावक का स्थितिकरण करना चाहिये? ये विद्या सीखना है तो कुन्दकुन्द स्वामी के पास जाओ। इसका तात्पर्य ये नहीं समझ लेना कि विद्या का निषेध कर रहे हैं। विद्या का निषेध नहीं कर रहे हैं।

संगीत भी आगम में विद्या है, गणित भी आगम में विद्या है। छन्दशास्त्र, अलंकार आदि, सारे नाट्य-पुराण आदि हमारे आगम में विद्या है। लेकिन ये सारी विद्यायें मोक्षमार्ग में प्रयोजन-भूत नहीं हैं।

सम्यक् दर्शन है तो सब विद्यायें समीचीन हैं। यदि सम्यक्-दर्शन नहीं है, तो कोई भी विद्या कार्यकारी नहीं है। अभी भी जैनशास्त्रों को पढ़ाने वाले अनेक विद्वान् हैं, जो जैन नहीं हैं। सुबह से सबसे पहले श्री जी का पट् खोलने वाला अजैन है। परन्तु ज्ञानी कितने ही पट् खोले जीव, घंटी तो दूसरे की ही बजेगी, श्रद्धा जिसकी जहाँ है।

भगवान् के द्वार पर बैठना मोक्षमार्ग नहीं है। धर्म को निज के द्वार पर विराजमान करना, इसका नाम मोक्षमार्ग है। बड़े-बड़े तीर्थों पर जाना, जुआरी-शराबी लोग भी खाली चबूतरे

पर ताश खेलते मिल जायेंगे। मंदिर के द्वार पर बैठने से कल्याण नहीं होता है। मन-मंदिर में जाता है, तो सारे जगत् में कल्याण है। नहीं-तो भैया! आप सोचो कि अब तो लग गई पगड़ी, अब तो हो ही जायेगा कल्याण।

'जो है, सो है' भैया! सोचो मत, शौच लाओ।

निक्षेप, नय, प्रमाण, शब्द, अलंकार, छन्द इनको प्राप्त करके भी "णाडय-पुराण कम्मं" सम्यक्त्व के बिना सीख लेना भी दीर्घ संसार का कारण है। ऐसा 'आचार्यभगवन् कुन्दकुन्द स्वामी' कह रहे हैं।

"आत्मस्वभावं पर भाव भिन्नं", आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

"जब तक ममकार है, तब-तक सुख नहीं"

वसदि-पडिमोवयरणे गणगच्छे समय-संघ-जादि-कुले।
सिस्स-पडिसिस्सछत्ते, सुदजादे कप्पडे पुत्थे॥ 156॥

पिच्छे-संथरणे इच्छासु लोहेण कुणदि ममयारं।
यावच्चअट्टरुद्दं ताव ण मुंचेदि ण हु सोक्खं॥ 157॥

अन्वयार्थ—(वसदि) वसति **(पडिमोवयरणे)** प्रतिमोपकरण **(गणगच्छे)** गण-गच्छ **(समय-संघ-जादि-कुले)** शास्त्र, संघ, जाति, कुल **(सिस्स पडिसिस्सछत्ते)** शिष्य, प्रतिशिष्य **(सुदजादे)** पुत्र-पौत्र **(कप्पडे)** वस्त्र **(पुत्थे)** पुस्तक **(पिच्छे)** पिच्छि **(संथरणे)** संस्तर **(इच्छासु)** इच्छाओं में **(लोहेण)** लोभ से **(ममयारं)** ममकार **(कुणदि)** करता है और **(यावच्च)** जब-तक **(अट्टरुद्दं)** आर्त्त-रौद्र ध्यान है **(ताव)** तब-तक **(ण मुंचेदि)** मुक्त नहीं होता **(ण हु सोक्खं)** न ही सुख मिलता है।

अर्थ- जो साधु वसति, प्रतिमोपकरण अर्थात् मनोज्ञ उपकरणों, गण, गच्छ, शास्त्र, संघ, जाति, कुल, शिष्य, प्रतिशिष्य, पुत्र, पौत्र, पुस्तक, पिच्छि, संस्तर और इच्छाओं में जबतक लोभ से ममकार करता है और जब-तक आर्त्त-रौद्र ध्यान है, तब-तक मुक्त नहीं होता और न ही सुख को प्राप्त करता है।

॥ देशना ॥

अन्तिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं।
तीर्थंकर जिनेश की पीयूष देशना जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है।
यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवन्त हो। जयवन्त हो वीतराग श्रमणसंस्कृति।

आचार्यप्रवर भगवन्त कुन्दकुन्द स्वामी ग्रन्थराज रयणसार में श्रमण और श्रावक उभय धर्मों की व्याख्या करते हुये समझा रहे हैं। धन्य हैं वे जीव, जिनके अन्तस् में सम्यक् की ज्योति जली हो। बाहर के दीपकों का प्रकाश वाह्यभूत द्रव्यों के ही दिग्दर्शक होते हैं, परन्तु भीतर के स्वभावधर्म का दर्शन करानेवाला कोई है, तो वह सम्यक् रत्न है, सम्यक् ज्योति है।

हिंसा से रहित धर्म, अठारह दोषों से रहित देव, निर्ग्रन्थ वीतरागी श्रमण और जिनेन्द्र की वाणी पर जिसकी आस्था/श्रद्धान है, वह सम्यक्-दृष्टि है। ऐसा कुन्दकुन्द स्वामी का कहना है।

ज्ञानी! अपने हृदय को टटोलकर निहार लेना। शंकादि दोषों से रहित, छः अनायतनों से रहित, तीन मूढ़ताओं से रहित, आठ मदों से रहित, ये पच्चीस दोषों से रहित, जिसके अन्तरंग में सच्चे तत्त्वों पर आस्था है, वह व्यवहार सम्यक्-दृष्टि है। प्रशम, संवेग, अनुकम्पा, आस्तिक्य के परिणाम जिसके अन्तस् में हैं, वह व्यवहार सम्यक्-दृष्टि है और आत्मविशुद्धि जिसके जाज्वल्यमान हो चुकी है वह निश्चय सम्यक्-दृष्टि है, वीतराग सम्यक्-दृष्टि है।

चतुर्थ गुणस्थान में भी क्षायिक सम्यक्-दृष्टि जीव को आचार्य अकलंक स्वामी वीतराग सम्यक्-दृष्टि कहते हैं। इस जीव ने सात प्रकृतियों का क्षय किया है इस अपेक्षा से 'वीतराग' संज्ञा है, लेकिन चारित्र की दृष्टि से सराग ही है। चारित्र की दृष्टि से कथन करेंगे तो सप्तम गुणस्थान से वीतराग संज्ञा प्रारम्भ होती है। अध्यात्मदृष्टि से, सिद्धांतदृष्टि से कथन करेंगे तो ग्यारहवें गुणस्थान से वीतराग संज्ञा प्राप्त होती है।

धन्य हों वे जीव जो चतुर्थ गुणस्थान में आने पर ही 'देशजिन' संज्ञा को प्राप्त हो चुके हैं। वह स्वरूप तुम्हारे पास आ चुका है, जो जिनेन्द्र के पास है। जहाँ अविरत सम्यक्-दृष्टि जीव के समकित की इतनी महिमा गाई गयी हो, तब समता, सामायिक, संयम की कितनी महिमा होगी? कि जीव ने मिथ्यात्व का भेदन किया है, वो सम्यक्-दृष्टि जीव संयम के अभाव में भी देवेन्द्रों से सम्माननीय हो जाता है।

अविरत सम्यक्-दृष्टि जीव 'देशजिन' संज्ञा प्रारम्भ हो चुकी है। जिसके पिता की परम्परा जिस नगरी की होती है, पुत्र कहीं भी रहे, पर जब गृह नगरी की चर्चा आती है तो उसके हृदय में गद्गद् भाव आता है। थोड़ा-सा राग तो आता है जीव को जब पिता के वंश की चर्चा चलती है उमंग आती है जीव को मेरा वंशीय नगर ये है। जब वंश परम्परा के नाम पर गद्गद् भाव आता है, तो जिनदेव का वंश चौथे गुणस्थान से प्रारम्भ हो जाता है। जो सम्यक्-दृष्टि हैं, वे जिनदेव के वंशज हो जाते हैं। 'एकदेश जिन' संज्ञा प्रारम्भ हो जाती है, यही चौथे गुणस्थान का नियम है। व्यवहार से बात कर रहा हूँ मैं आपसे। ज्ञानियो! व्यवहार से बात करो तो व्यवहार की बात सुनो। भैया! अपने-अपने वंशों का इतिहास जरूर आज खुलवाना कि कहीं यदि तुम्हारे कुल में जिनबिम्ब स्थापित किये गये हों, आपके वंश में कोई त्यागी व्रती हुये हों, आपके वंश में कोई निर्ग्रन्थ मुनि हुये हों। विश्वास रखना, यदि कभी सम्मेदशिखर, गिरनार, कुण्डलपुर गये। मक्सी पारसनाथ में मैं दर्शन कर रहा था। अचानक दृष्टि प्रतिमा पर पड़ी। फिर थोड़ा मैंने सोचा कि प्रशस्ति और देख लूँ कि किस भाग्यवान ने जिनदेव स्थापित किये? उस जिनालय में स्थापित प्रतिमा की प्रशस्ति पर टीकमगढ़ का

नाम लिखा था। जैसे ही टीकमगढ़ का नाम पढ़ा, तो मनोज्ञसागर मुस्करा गये। इस बात पर कि मैं उस प्रसिद्ध नगरी का जन्मा हूँ, जिस नगर के श्रावकों ने इतनी दूर से मालवा में आकरके अर्हन्त की प्रतिमा स्थापित करवाई है। ज्ञानियो! प्रशस्तियों पर नाम वंश के राग से मत लिखवाना। प्रशस्तियों पर नाम लिखाना तो इस दृष्टि से लिखाना कि मेरे वंश का कोई विधर्मी बालक भी हो गया, कदाचित् यहाँ की वदंना करने भूल से भी पहुँच गया और प्रशस्ति पढ़ेगा तो उसके मन में भी प्रशस्त भाव आयेगा-अहो! मैं उस वंश का हूँ, जिस वंश में वेश्यावृति नहीं होती थी, जिस वंश में जिनबम्बों की स्थापना होती थी। इसलिये प्रशस्ति लिखवा देना, क्योंकि जब अपने बुजुर्गों का नाम लिखा मिलता है तब मन में आता है कि धिक्कार हो मुझे, मेरे वंशजों ने इतने विशाल मंदिर बनवाये और मैं मंदिर जाने का भाव नहीं करता हूँ। मेरे जैसा पापी कौन होगा? ज्ञानी दूसरे दिन से मंदिर जाने लगेगा। अपने-अपने वंशों की खोज करना आज और मुझे विश्वास है कि बुन्देलखण्ड की माटी में हर वंश ऐसा होगा जो सवाई सेठ लिखते हों तो इसका तात्पर्य समझो, कोई-न-कोई मंदिर स्थापित करने वाले होंगे?

भैया! खोज करोगे तो मिल जायेगा कि जितने बुन्देलखण्ड में लोग रह रहे हैं, अधिकांशत: गुजराती लोग हैं। ईडर क्षेत्र से आये हुये हैं। जो पैरपट्ट आम्नाय है, वो गुजराती आम्नाय है। वहीं से आकर के चन्देरी क्षेत्र में बसे और चन्देरी से फैल करके पूरे मध्यप्रदेश में आ गये। ये पुरानी परम्परा है। वो राजस्थान से आये हुये अलग हैं। आप जो आये हुये हो, वो गुजराती हो। जब खोज करेंगे आप, तो आपको मालूम चलेगा कि गुजरात में आपके कितने विशाल-विशाल मंदिर थे?

इस बुन्देलखण्ड की समाज की सबसे प्राचीन प्रशस्ति यदि कहीं है, तो वो शाढ़ौरा मन्दिर में है। गुना, शाढ़ौरा, अशोकनगर। निहारना अपने-अपने वंशों की प्रशस्तियाँ। मैं व्यवहार से बोल रहा हूँ। व्यवहार में ज्ञानी! इस देह के वंशियों का नाम लेने पर तुमको गद्गद् भाव आ रहा है, चेहरे मुस्करा रहे हैं। व्यवहार से जितने जैनी हैं, वे क्षत्री हैं, शुद्ध क्षत्रिय।

दिगम्बर धर्म का पालन हीनों की सामर्थ्य तो नहीं है। इस धर्म के संयम का पालन तो क्षत्री लोग ही कर सकते हैं। हमारे 24 तीर्थंकर क्षत्री थे। ये क्षत्रियों का धर्म है। दुनियाँ की शीत-ऊष्णता को झेलना, नग्नमुद्रा को लेकर चलना और ज्ञानी! इसको पिच्छि मत समझो, ये प्राणीमात्र की रक्षा की क्षत्री है। जो पिच्छिका है, इसको ध्यान करने वाले योगी महाव्रती ही धारण करते हैं। महान् वही वंश होता है, जिस वंश में महाव्रत धारण करने की सामर्थ्य होती है। जिस कुल में महाव्रत धारण करने की सामर्थ्य नहीं होती है, उस कुल को जिन-शासन में उच्च कुल नहीं कहा जाता है।

कोटि-कोटि मुनि हुये हैं। ऐसा कोई उच्चवंश नहीं हो सकता है, जिसमें कोई महाव्रती न हुआ हो। इन मुनियों की परम्परा के संस्कार ही तो काम में आ रहे हैं कि यहाँ की गली-गली का बच्चा "नमोऽस्तु शासन जयवन्त हो" बोल रहा है। इसलिये जिनको देव, शास्त्र, गुरु पर श्रद्धान है, पंचपरमेष्ठी पर श्रद्धान है, सात तत्त्वों पर श्रद्धान है, आत्मतत्त्व पर श्रद्धान है, मुमुक्षुओ! व्यवहार सम्यक्-दृष्टि तो आप हैं। अपने आप को मिथ्यादृष्टि कहकरके हीन भावना में क्यों ले जाते हो? अपने आप में उच्चता महसूस करो।

भैया! आपके नगर में लोहा बिकता है कि चाँदी? सबसे ज्यादा लोहा बिकता है, क्योंकि मकान बहुत बन रहे हैं। लेकिन भैया! कीमत ज्यादा लोहे की है, या चाँदी की? ज्ञानी! जिसको कुण्डल पहनना है, वो लोहे की छड़ खरीदने जायेगा कि सोने-चाँदी की धातु खरीदेगा?

भैया! अभी माँ के कुण्डल बने नहीं, वो मात्र सिक्का खरीद कर लाई है चाँदी का। वह सिक्का जो माँ खरीद कर लाई है, उसमें माँ को कुण्डल दिख रहे हैं। ऐसा कौन सा जीव होगा जग में, जो द्रव्य-दृष्टि को नहीं जानता होगा, द्रव्य-दृष्टि को नहीं मानता होगा। वह परिभाषित करना जाने या न जाने, पर विश्व का प्रत्येक कार्य द्रव्यदृष्टि से ही होता है। पर्याय का प्रगटीकरण तो बहुत देर बाद आता है। विश्व में ऐसा कोई परिणमन नहीं होता है जो द्रव्यदृष्टि के अभाव में जगत् में होता हो। हुआ क्या है? जैनदर्शन में उच्च-गुणवत्ता की बातें हैं। ऊँची बातें हैं, तो लोग यह समझते हैं कि ये निश्चय-व्यवहार तो मात्र आत्मा में लगता है। पर ऐसा नहीं है। निश्चय व्यवहार की बातें प्रथमानुयोग में हैं; कि करणानुयोग में हैं, कि चरणानुयोग में हैं। अभी उत्तर आता है। ज्ञानी निश्चय व्यवहार की जो चर्चायें हैं, वे प्रधान रूप से द्रव्यानुयोग में हैं।

द्रव्यानुयोग से तात्पर्य, द्रव्यानुयोग में कौन-से द्रव्य की व्याख्या है? एक द्रव्य की व्याख्या है, कि छहों द्रव्यों की व्याख्या है? क्या बताऊँ भैया! वो थोड़ा समझदार क्या हो गया कि वस्तुस्वभाव को भूल रहा है। भैया! जो विधान हो रहा है, उसमें छहों द्रव्य लग रहे हैं, कि नहीं लग रहे हैं? पूजन में तो आठ द्रव्य लग रहे हैं, लेकिन ये जो तीन लोक का नक्शा है, इसमें ऐसी कौन-सी द्रव्य है जो छूट गई हो?

जब छहों द्रव्य की व्याख्या करता है, तब हे ज्ञानी! चाहे वह किसान हो, चाहे बागवान हो, इन सबको द्रव्य-दृष्टि, पर्याय-दृष्टि दोनों का ज्ञान होता है। पर बेचारे व्याख्यान करना नहीं जानते हैं। एक ज्ञानी कहता कि भैया! आओ, कलेवा कर लो। भैया! वो नहीं जानता तुम्हारी शहर की भाषा को। आओ भैया! बैठिये, भोजन कर लीजिये। उसने कह दिया कि

कलेवा कर लो, और जो तुमको परसेगा, उससे पेट भरेगा कि नहीं? और ये ज्ञानी बनावटी भाषा बोले-आओ, भैयाजी! भोजन कर लो। तो अलग टपकता है कि ये बनावटी भाषा बोल रहा है।

ऐसे ही ध्यान दो। द्रव्य-दृष्टि आगम भाषा, द्रव्यदृष्टि अध्यात्म भाषा। इन दो भाषाओं में किसी भी भाषा का प्रयोग कर लो, लेकिन कथन तो द्रव्य-दृष्टि, पर्याय-दृष्टि का ही होता है। जो अपने आप को सम्यक्-दृष्टि नहीं मानता है, देव-शास्त्र गुरु की पूजा करते हुये भी हर समय अपने आप को मिथ्या-दृष्टि मानता है, उसको बहुत सोचना पड़ेगा। जब माँ! घर में चाँदी-सोने का सिक्का आता है, सत्य बताना, क्या-क्या दिखना प्रारम्भ हो जाता है? घर में गाय होती है तो पता नहीं क्या-क्या दिखता है? उसको। बछड़ा नहीं दिखता, गोबर भी नहीं दिखता। अरे! कभी दूध देखता है, तो कभी दूध की जलेबियाँ देखता है, तो कभी मावा है, तो कभी रसगुल्ले रहता कुछ नहीं है सामने, पर दिखता सबकुछ है।

जब आपको सोने-चाँदी के सिक्कों में आभूषण दिखते हैं, गाय के दूध में मधुर पकवान दिखते हैं मिठाइयाँ दिखती हैं। देवशास्त्रगुरु पर जिसको श्रद्धा हो रही हो, उसको ज्ञानी! सम्यक् की अनुभूति नहीं दिखे, तो उसकी श्रद्धा किस बात की?

जो जीव लौह की छड़ खरीदेगा, उसको लोह की ही अनुभूति आयेगी। यदि आपने अपने आपको मिथ्यादृष्टि के अलावा और कुछ सोचा ही नहीं है, तो कितनी भी पूजा करते रहना, अनुभूति में मिथ्यात्व-ही-मिथ्यात्व आयेगा। अभी दौलतराम जी की छह ढाला समझने के लिये आपको आलाप पद्धति पढ़ना पड़ेगी। यदि एकांत से लगाओगे दोलतरामजी की बात को, तो वही मिथ्यात्व है।

आप किसी पिता के पुत्र हो, कि आकाश से आये हो? उस पिता का नाम क्या है? भैया! तू उनका ही बेटा है न? जब तू उनका बेटा मानता है, तो तू मिथ्यादृष्टि हो गया। कहना पड़ेगा, कि वास्तव में हो? स्वजातीय उपचरित सद्भूत व्यवहार नय से तू दादा जी का बेटा है, परन्तु शुद्ध द्रव्यार्थिकनय से तू पुत्र ही नहीं है, तो बेटा किसका? मैं तो "जो हूँ सो हूँ"।

मैं आचार्य विरागसागरजी का शिष्य हूँ, और पूरे ब्रह्मांड में तीन कम नौ करोड़ मुनि हैं, इन सबका मैं आराधक हूँ। सच्चे भावलिंगी मुनि की वंदना मैं प्रतिदिन करता हूँ। जब ये मुनिराज अपनी आलोचना करते हैं, तब मैं अपनी पिच्छि उठाकर उन योगियों की वंदना

करता हूँ। विदेह में विराजे, ऐरावत में विराजे, भरतक्षेत्र में विराजे सभी वीतरागी भावलिंगी मुनि होंगे, उनके भावों की वन्दना करता हूँ।

भगवान् के भावों से भगवान् नहीं बनता, मुनि के भावों से भगवान् बनता है। जिन-जिन को भगवान् बनना है, उनको मुनि के भाव बनाना पड़ेंगे। भैया! कुछ नहीं है। ये कथन करनेवाले की शैली है। कहाँ से श्रोता को कहाँ पटक देना, ये वक्ताओं के हाथ में होता है। भैया! ये अपना परम पुण्य स्वीकारना चाहिये, मैं तो अहोभाग्य मानता हूँ कि ऐसे योगी से मैं दीक्षित हुआ, जिस योगी ने मेरे से कभी ये नहीं कहा-कि आप को मेरे अनुसार चलना पड़ेगा। बस, उन्होंने तो मेरे से ये ही कहा-कि आगम को छोड़कर मत चलना। आज तक आचार्य विरागसागर जी ने ये नहीं कहा-कि तुम मेरे पंथ आम्नाय से चलना।

वो आचार्यश्री विमलसागर जी महाराज के शिष्य हैं। आचार्य विमलसागरजी महाराज के मैंने दर्शन किये हैं। जिस गंधोदक को अपन अँगुली से मस्तक पर लगाते हैं, वो महाराज गंधोदक को सबके सिर पर फेंक देते थे। तब भी उन्होंने ये कभी नहीं कहा-कि तुम विशुद्ध सागर गधोदक फेंकना। उन्होंने कहा-भैया! इसको मस्तिष्क पर धारण करना। इस बात का मैं अन्दर में गद्गद् भाव लेता हूँ कि कभी मेरे गुरु ने ये नहीं कहा-कि यहाँ की परम्परा को तोड़ना, वहाँ की परम्परा को बढ़ाना। कुछ नहीं।

मैंने तो निवेदन कर लिया था महाराज! मैं भगोड़ा बनकर आपके पास नहीं आया हूँ, वैरागी बनकर आया हूँ। स्वाध्याय जन्म से किया है, इसलिये स्वाध्याय लेकर आया हूँ। मुझे मालूम है कि वस्तुस्वरूप क्या है? आप मुझे जैनेश्वरी दीक्षा दो। लेकिन मैं किसी पंथ में उलझने वाला नहीं हूँ। कोई व्यक्ति जाये तो क्या बाहुवली स्वामी यूँ मुँह लटका लेंगे? और कोई दूसरा पहुँचे, तो क्या खुश हो जायेंगे? यदि ऐसा कर रहे हैं, तो वे बाहुबली भगवान् ही नहीं हैं।

'दिगम्बर' मुनि नाम की पुस्तक लिखी है आर्यिका ज्ञानमती माता जी ने। बहुत अच्छी पुस्तक है। एक क्षुल्लक महाराज जी ने मुझे पढ़ने को दे दी। उस पुस्तक को मैंने पूरा पढ़ा। देखो त्यागीव्रती भी त्यागमय चेहरा पढ़ना तो जानते हैं। एक क्षुल्लकजी आये उन्होंने मुझे 'समाधितंत्र' दे दिया। एक वृद्ध दादाजी आये, पता नहीं उनके मन में क्या भरे थे, बोले-बेटा! क्या पढ़ रहे हो? उस समय मैं अध्ययन कर रहा था महापुराण का बोले-तू 'महापुराण' पढ़ रहा है? तुझे तो 'समयसार' पढ़ना चाहिये। मैंने दादा जी का चेहरा देखा कैसा जीव है जो हमसे कह रहा कि "समयसार" पढ़ो। नहीं बेटा मैं सही कह रहा हूँ तुम 'समयसार' पढ़ो।

पता नहीं कैसा नियोग बना? एक और सज्जन आये और मुझे "समयसार" ग्रंथ देकर चले गये। उस समय मात्र 10 वर्ष की उम्र होगी। जैसे ही मैंने "समयसार" पलटा, इसमें तो आत्मा ही आत्मा लिखी थी सब जगह उस समय "समयसार" मुझे कुछ भी समझ में नहीं आया। दादा ने कहा था- तो लगा कि कुछ विशेष बात होना चाहिये। उसको देखकरके ही रख दिया।

पर वे संस्कार आज काम में आये कि नहीं आये? 10 वर्ष की उम्र में एक बुजुर्ग 80 साल का कह रहा है बेटा। 'समयसार' लो और पढ़ो। बात समझो में क्या बोल रहा हूँ? निर्ग्रन्थ योगी अर्हन्त मुद्रा। जैसे समवसरण में विराजे तीर्थंकर अर्हन्त देव। जिनमंदिर में विराजी तीर्थंकर की प्रतिमायें। चाहे कोई बड़ा पहुँच जाये, चाहे छोटा-सा बच्चा पहुँच जाये, भगवान् के किसी के प्रति अशुभ भाव नहीं हैं। क्यों? वे निजस्वरूप में लीन हैं। पर समय में जो है, वही पर को समय दे पायेगा। जो स्व-समय में है, वह पर को क्या समय दे पायेगा?

जयसेनाचार्य का "धर्मामृत" नाम का ग्रन्थ है, उसमें अष्टांग का वर्णन है। उस ग्रन्थ का भी स्वाध्याय किया। जो वीतरागी दिगम्बर मुनि का वर्णन किया, उस समय झलका कि अहो! जिनदेव कैसे होते होंगे जब जिनदेव के लघुनंदन का ये स्वरूप है। ब्रह्मांड में भगवान् का लघुनन्दन किसी सम्प्रदाय में किसी को नहीं कहा गया। पर ज्ञानियो! इस जिनशासन में, तीर्थंकर के शासन में दिगम्बर मुनि को अर्हन्तदेव का लघुनन्दन कहा है।

जिनदेव के लघुनन्दन क्यों? बेटे के चेहरे को देखकर पहचान नहीं लेते कि तू अमुख का लड़का है क्या? कितना ही अटपटा चेहरा हो बच्चे का, पर कहीं-न-कहीं पिता के चेहरे का मिलान तो होता है, यदि शुद्ध बेटा है तो। जिनको बुरा लगे, सो लग जाये, अपन को क्या करना है? सही बात है। 'जो है, सो है।'

बात क्या है? वंश तक का मालूम चल जाता है, कि तू उनके वंश का है। चेहरे बताते हैं। खुश न हो जइयो पर्याय को देखकर। जब वंश की पहचान होती है, बेटे के चेहरे में पिता का चेहरा दिखता है। ये क्या सही नहीं है? यदि सही है, तो दिगम्बर मुनि के अन्दर जिनदेव का चेहरा दिखाई देना चाहिये। जिनदेव का चेहरा निर्ग्रन्थ मुनि में, न झलकता हो, वे निर्ग्रन्थ गुरु, 'गुरु' नहीं हैं। मैंने इसलिये कहा था कि शुद्ध बेटा हो तो।

पिता की पहचान बेटे से होती है। पिता दिवंगत भी हो जाये, तब भी ज्ञानी! जिसका बेटा इतना धर्मात्मा है, इसका पिता कितना धर्मात्मा होगा? आज हमारे तीर्थंकर नहीं हैं, निर्ग्रन्थ दिगम्बर भावलिंगी मुनियों से ही अर्हन्त की पहचान हो रही है। ये जिनदेव के लघुनन्दन हैं। भैया! बुरा तो नहीं लगता? मीठा तो नहीं लगता?

दिगम्बर वीतरागी मुनि के अन्तस् में ये विकार नहीं रहना चाहिये कि ये अमुख हैं, ये अमुख है। महाराज से हमारा एक श्रावक भिन्न है वो दिनभर राग-द्वेष भी न करता हो, लेकिन जब "श्री जी" के मस्तक पर शान्तिधारा करता है वो रागीद्वेषी श्रावक भी ये सोच लेता है—

सम्पूजकानां, प्रतिपालकानां, यतीन्द्र-सामान्य-तपोधनानाम्।
देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञः, करोतु शान्ति भगवान्-जिनेन्द्रः॥

पापपंक में डूबा ऐसा रागी श्रावक भी विश्व के कल्याण की, शान्ति की भावना जिनेन्द्र के चरणों में करता है। तो जो महाव्रत के आराधक हों, वे जगत् की अशान्ति के बारे में क्या सोच सकते है? कभी भी नहीं सोच सकते हैं। जो अशान्ति का सोचेगा, वो दिगम्बर मुनि हो नहीं सकता है। दिगम्बर तपोधन जब चींटी की रक्षा के भाव रखते हैं, तो बड़े-बड़े प्राणियों की रक्षा के भाव क्यों नहीं रखेंगे? इन युवाओं को निहारो। नाक पोंछने वाले तो कोटि-कोटि लोग मिल जायेंगे। पर धन्य हो उस श्रावक को, जो नाक पोंछने का रुमाल नहीं, बिलछानी करने का छन्ना रखता है।

अब भैया! तुम कितने ही बैनर लगा लो, वो झूँठे हो जायेंगे। जिनशासन ज्ञान की पूजा नहीं करता, जिनशासन शुद्ध चारित्र की पूजा करता है। एक दिन एक भैया कह रहा था, कि कौन कहता है महाराज! कि यहाँ मुनियों की पूजा नहीं होती है? हम लोग तो चारित्र की पूजा करते हैं। आप देख लो हम सब बैठे कि नहीं बैठे हैं? ध्रुव सत्य है।

कनक, कलेवा, छन्ना, ये जैनी के चिह्न हैं। जैनी भाई समझदार होता है, ये पगड़ी भी बाँधता है तो उसमें भी विवेक रखता है। वे तो अभागे लोग हैं, जो पगड़ी उतारके फेंक दें। अगर कहीं बाहर फँस जाये तो लू से बचे, ठण्डी लगे तो ओढ़कर बैठ जाये और कहीं रस्सी न मिले तो कुँआ में डोरी बांधकर पानी खींचकर पी आये। इसलिये पगड़ी बांधना चाहिये। यदि नहीं बांध सकते हो तो ऐसे उतारो, ऐसे उतारो कि एक भी न रखो। पूरे ही उतार दो और हमारे बगल में बैठ जाओ। फिर आपको पानी खींचना नहीं पड़ेगा, खिंचा-खिंचाया मिलेगा और श्रावक कहेंगे-भो स्वामी! नमो ऽस्तु-नमोऽस्तु।

सम्मान देखना है तो छोटे गाँव में जाओ। उसे कैसे सम्मान से भोजन कराते हैं? एक अधिकारी था भैया! वो अचानक गाँव में पहुँचा, हम लोग छोटे-छोटे थे। उसको अच्छे से भोजन कराया। क्यों कराया? वो फील्ड पर काम करने आया होगा। जैन था। उसने पता किया कि मंदिर है क्या? तो किसी ने कह दिया कि घर में एक भगवान् विराजे हैं, तो वह

मंदिर खोजते-खोजते पहुँचा। गाँव के घर में कोई मंदिर खोजते पहुँच जाये मंदिर के नाम पर तो उसको तुरन्त शुद्ध भोजन बनाकर खिला दिया जाता है। वो भोजन कर रहा था। हम साथ मैं बैठे उसके पास। वो त्यागी-व्रती नहीं था, वो अधिकारी था। वो कहता है भैया! बुन्देलखण्ड में 'आचार्य श्रीविद्यासागर जी महाराज' हैं वे ऐसे महान् योगी हैं जो अपनी साधना में लीन रहते हैं। सब संघ ज्ञान में लीन रहता है। वे कह रहे थे और अपने अन्दर लड्डू फूट रहे थे। मैंने बहुत अच्छे से सुना। ये शब्द सुने और अन्दर निर्णय हो गया।

जैनदर्शन प्रचार का दर्शन नहीं है। जहाँ आचार होता है, उसकी सुगन्धि पूरे विश्व में फैल जाती है। उस श्रावक ने ऐसा बोला और मैंने अपने अन्दर निर्णय किया। मैंने धीरे से पूछा-भैया! ये प्रशंसा कब-तक करेंगे आप? बोले, बात ऐसी है बेटा! प्रशंसा करने लायक है, सो मैं करूँगा। फिर एक महाराज मिले, उनने भी कहा, भैया! बहुत अच्छे महाराज है। तब मैंने कहा-ज्ञानी! जब आपको महाराज अच्छे लगते हैं और आप भी महाराज हो, तो वैसे आप क्यों नहीं बन जाते हो?

आपको उनकी चर्या अच्छी लगती है आखिर में वो भी तो एक बार ही भोजन करते हैं एक बार ही पानी लेते हैं, केशलुंचन करते हैं वो ही आप मुझे करते दिखते हो तो फिर विशेषता किस बात की है? देखो एक बार भोजन, एक बार पानी सभी मुनिराज करते हैं, केशलुंचन करते हैं। अब जिसे मुख से कहा न जा सके वो "जो है, सो है" वही विशेषता है। भैया! तू कब तक उन योगी की प्रशंसा करेगा? जो तूने उन योगी के अन्दर देखा है वैसा बनने का भाव क्यों नहीं करता?

एक-जैसा भोजन-पानी करते हुये भी एक-जैसी चर्या नहीं बनती, कारण क्या है? सच्चाई, अच्छाई को जानते हुये भी सच्चाई-अच्छाई पर पापीजीव चल नहीं सकते हैं। सच्चाई-अच्छाई पर चलेगा तो पुण्य की सत्ता चाहिये पड़ेगी। सूत्र समझ में आया? सच्चाई-अच्छाई को जान सकता है पापीजीव भी, पर चल नहीं सकता है पुण्यहीन प्राणी।

गुरु की सेवा-भक्ति, गुरु की प्रशंसा करते हुये कोटि-कोटि शिष्य मिल जायेंगे, पर गुरु जैसा बनने की क्षमता शिष्यों में नहीं आ पाती है। क्यों? पुण्य चाहिये। ज्ञानी! पूर्व में पुण्य किये बिना निर्ग्रन्थ मुनि बन नहीं सकता और बिना पुण्य किये निर्दोष संयम का पालन कर नहीं सकता। 'कार्यलिंग हि कारणम्।" ये इन्द्र बने दिख रहे हैं, ये वर्तमान के इन्द्र नहीं हैं। ये कार्य है। इनने पूर्व में ऐसे शुभ काम किये थे, जो संस्कार आज पंचम काल में भी आकर टकरा गये कि तुम इन्द्र बनकर भगवान् की पूजा करो।

बेटा! पैसा तो सबके घर में है, पर खर्च वही करता है जो पूर्व पुण्य का धारी होता है। ये ब्रह्मचारी बैठे हैं, इनके भी तो भैया लोग हैं, कि नहीं? एक माँ के बेटे होने पर भी, बेचारे, देखो पाँव पड़ते हैं वे सब। भैया! कबहूँ-कबहूँ शर्म लगन लगत, जब बूढ़े-वाड़े पाँय परत। जब मै क्षुल्लक बनकर आया और मेरी उम्र रही 17 साल की। 80 साल के बूढ़े वैयावृत्ति करने आ गए। मैंने कहा-दादा! तुम बच्चे की वैयावृत्ति कर रहे हो? शर्म लगती थी बहुत ज्यादा। पर क्या करें ? धन्य हो जैनदर्शन। आठ वर्ष के बालक के साठ वर्ष का पैर पड़त है। 'चारित्तं खलु धम्मो।'

धम्मो मंगल-मुक्किट्ठं, अहिंसा संयमो तवो।
देवा वि तस्स पणमंति, जस्स धम्मे सया मणो॥ प्रतिक्रमण॥

ज्ञानियो! ये ऐसा महान् धर्म है, साठ वर्ष का वृद्ध भी, "देवावितस्स पणमंति" देवता भी नमन करते हैं। "धम्मो मंगल-मुक्किट्ठं", मंगल है, उत्तम-उत्कृष्ट भी है। 'अहिंसा संयमो तवो' जिसको देवता भी नमस्कार करता है, उस धर्म को सदा स्वीकार करो। नमोऽस्तु शासन जयवन्त हो। 'धर्मस्य मूलं दया' भगवान् सीमन्धर स्वामी अपने सामने होते तो भगवान् एक एक करके ये बता देते कि भैया तू ये था, तू ये था और ये महाराज थे। तुम सब मिल कर एकसाथ बैठ रहे हो ये पूर्व के संस्कार हैं। सब सम्बन्धी हैं, पर ज्ञानी! 'कोऊ, कोऊ को होत नईयाँ' 'आत्मस्वभावं पर भाव भिन्नं।' 'कण-कण स्वतंत्र है'।

भैया अब क्या बतायें? वो तो सब को पता है कि जो पूजा कर रहा था भगवान् जिनेन्द्र की, उस समय एक ही बादाम थी और पुजारी चार थे। तूने मोक्षफल के राग में चावल में बदाम छुपा दई थी सो ज्ञानी! माया के प्रभाव से पंचमकाल में आगया। "जो है, सो है"। लेकिन फिर भी मायाचारी भगवान् के सामने की थी, उसका फल ये मिला कि आज हम भगवान् के सामने आकर बैठ गये।

भैया! आपका व्यवहार सम्यक्त्व पर लक्ष्य है कि नहीं? पहले ये ध्यान दो। निर्दोष देव, शास्त्र, गुरु के प्रति आस्था है कि नहीं? यदि है तो अपने आपको व्यवहार सम्यक्-दृष्टि स्वीकारिये। इसमें कोई शंका नहीं है। क्योंकि 'कुन्दकुन्द स्वामी' कह रहे हैं, 'समन्तभद्र स्वामी' कह रहे हैं।

श्रद्धानं परमार्थानामाप्तागम तपोभृताम्।
त्रिमूढापोढ मष्टाङ्गं, सम्यग्दर्शनमस्मयम्॥ 4॥ (र. क. श्रा.)

इस परिभाषा से घटित ये हो रहा है कि मैं अपने आप को सम्यक्-दृष्टि स्वीकारूँगा देखो, निश्चय सम्यग्दृष्टि करणानुयोग का सम्यक्-दृष्टि इसको सर्वज्ञ देव बतायेंगे। हम तो चरणानुयोग के सम्यक्-दृष्टि की बात कर रहे हैं। जब चरणानुयोग में तू अपने आप को सम्यक्-दृष्टि स्वीकार करेगा,तभी कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र से बच पायेगा और जब तू अपने आप को चरणानुयोग से सम्यक्-दृष्टि नहीं स्वीकारता, तो तू मिथ्या मत से बच नहीं पायेगा। इसलिये सबसे पहले सम्यक् दृष्टि स्वीकारिये। द्रव्यमिथ्यात्व का त्याग कीजिये। और फिर शान्त होकर प्रभू को निहारिये।

बताओ, भैया! "आचार्य विराग सागर जी महाराज" की डाँट न खाते, तो गाथा कैसे सुना पाते? सही बात है न? इसलिये शिष्यों को गुरू के चरणों में डाँट खाकरके हृदय में भरना चाहिये जिनवाणी को। आज दीक्षा और कल भगें, वे खाली के खाली।

देखो अध्ययन में लीन हैं अभी, लगता है कि कुछ जानते नहीं हैं ये। जब हवा भरी जाती है ट्यूव में, तब पता नहीं चलता कि क्या हो रहा है? लेकिन जितना सहज भाव से गुरु के चरणों में जीव जी लेता है। विश्वास रखना दादाजी! यदि गाड़ी का टायर पहले से भगने लग जायगा, तो पिचक जायेगा, और जब दबके भरने लगता है, हवा भरी जा रही है तो कितना ही वजन ढो दो, सब ले जाता है।

ऐसे-ही जो शिष्य गुरु के पास दबके रह लेता है, वो समाज के सारे भार को सहन कर लेता है जो दबके नहीं रह पाता है, वो क्षण में ही पिचक जाता है। जो अरहन्त की द्रव्य गुण पर्याय को जान लेता है। वह निज के द्रव्य गुण पर्याय को जान लेगा और तभी तो सम्यक्त्व को प्राप्त करेगा। और जब सम्यक् को प्राप्त करेगा तभी तो सम्यक् ज्ञान होगा। और जब सम्यक् ज्ञान होगा तभी तो सम्यक् चारित्र होगा। इसलिये ज्ञानियो! आज से ये मत कहना कि मैं मिथ्यादृष्टि हूँ। बड़े आनन्द से कहना मैं व्यवहार सम्यक्-दृष्टि तो हूँ और व्यवहार सम्यक् ज्ञानी! अकार्यकारी नहीं है, कार्यकारी है। एक बार जिसने मिथ्यात्व को सिर टेक दिया, उसे एकसाथ एक लाख वेश्या के व्यभिचार में जो दोष लगता है, उतना पाप का बंध होता है।

यदि तुमने घर में बटैया रख ली और उसको सिर टेकने लग गये। मूसल, कुआँ, तराजू, नव देवताओं को पूजने में मिथ्यात्व लग रहा है तुम्हे कि मूर्ति मत पूजो और तालाब कौन-सा देवता आ गया? देखो, जब तक तुम्हें तीर्थंकर का सानिध्य नहीं मिला, साक्षात् केवली नहीं मिले, कर्म प्रकृतियों का तुमको ज्ञान नहीं है, तब तक ज्ञानी! देव-शास्त्र-गुरु पर श्रद्धान करते

रहना और व्यवहार सम्यक् से च्युत मत हो जाना। यदि व्यवहार सम्यक् से च्युत हो गये तो सब तरफ से च्युत-ही-च्युत हो।

देखो, अपन विधिरूप से कथन करें, तो श्रद्धा बढ़ेगी। इस गाथा को मैं निश्चय रूप से कथन करूँ तो सब मुनियों पर श्रद्धा टूट जायेगी। धन्य हैं वे योगीश्वर। निषेध लगा लेना। मैं धन्य कह रहा हूँ, यहाँ तो धिक्कार लिखा है। सुनो, कैसे?

मुनि के हाथ पर पैसा रखोगे और मुनि उसको पुस्तक में रख ले, तो वह धन्यवाद का पात्र है कि धिक्कार का पात्र है? धन्य हैं वे योगी, जो कंचन, कामिनी पर कभी दृष्टि नहीं फेंकते हैं। इसके विपरीत लगा लेना। ठीक है? ऐसा अर्थ करूँ, कि वैसा करूँ? धन्य हैं वे योगी! जो साँप के समान निवास करते हैं। साँप कभी अपना भवन नहीं बनाता। भवन दीमक बनाती है, साँप योगी आकर निवास करते हैं। दिगम्बर मुनि कभी अपनी वसतिका नहीं बनाता। जो मुनि वसतिका बनाकर जीता है, वो जिनशासन में आर्त्त-रौद्र ध्यान से युक्त कहा गया है।

'वसदि' यानि मकान, भवन, निलय, घर, गृह, मण्डप। ये सभी 'मकान' के पर्यायवाची नाम हैं। "नाम माला" में पढ़ लेना। दक्षिण में मंदिर को 'वसदि' बोलते हैं। "पडिमो" प्रतिमा चाहे अरहन्त की हो चाहे किसी देवी-देवताओं की हो, किसी प्रतिमा विशेष को लेकर नहीं चलता, न ही राग करता है। पर ध्यान रखना, श्रावक प्रतिमा लेकर चल सकता है। "चलचैत्यालय"

जैसे प्राचीन काल में व्यापारी लोग व्यापार करने जाते थे, पूजन के नियम होते थे तो "चलचैत्यालय" की स्थापना होती थी। "गृह चैत्यालय" अलग होता है "चल चैत्यालय" अलग होता है और "स्थायीचैत्यालय" अलग होता है। अपने ये मंदिर हैं, इनके नीचे "अचलयंत्र" रखा जाता है, ये अचल जिनालय है। जो "चलचैत्यालय" होता है, यात्रा को गये श्रीजी को ऊपर विमान में लेकर के जाते थे, रथों में लेकर जाते थे।

जब प्रतिमा की प्रतिष्ठा हो जाती है, जब तक जिनालय में अचल यंत्र रखकर के विराजमान नहीं करो, तब तक वो "चल" है। श्री जी को विमान में लेकर शोभायात्रा में जाते कि नहीं जाते? परन्तु मूलनायक को कभी विमान में लेकर जाते हो क्या? वो "अचल प्रतिमा है" इसलिये अचल बिम्ब को कभी उठाना नहीं चाहिये है कुछ लोग मूल नायक को अभिषेक में रख लेते हैं मूल वेदी कभी खाली नहीं करना। मूलनायक का अभिषेक करना है आपको तो वहीं कर लेना।

देखो मूल का बड़ा महत्व रहता है। दूल्हा चला जाये तो अब करो किसकी बिदा तुम कर रहे हो? "पडिमा" दिगम्बर मुनि प्रतिमा में भी राग नहीं करते हैं, कि मैंने सूरिमंत्र दिया था। कुछ नहीं श्रावक ने बुलाया था, मंत्र देना, मेरा काम हो गया है। अर्हन्त तो अर्हन्त हैं, उनका में भक्त हूँ। मेरे भगवान् नहीं हो गये, मेरे ही भगवान् हैं। इतना भाव होना चाहिये है।

"वयरणे" तुम मूलनायक को नहीं उठाओ, वहीं से करलो। बहुत अच्छी गाथा है। लगता है कि इन गाथाओं को अलग से निकाल करके पूरे दिगम्बर मुनियों के हाथों में सौंप देना चाहिये, महाराज इन गाथाओं को निहारो। कहाँ तुम पड़े हो सच्चाई/अच्छाई को जानते हुये भी। सच्चाई को जानना, अच्छाई को जानना सरल है, पर इस पर चलना बहुत कठिन है

पढ़ते तो सभी मुनिराज हैं, सभी ज्ञानी हैं, कोई विकल्प नहीं है। लेकिन फिर भी भैया राग इतना कठिन होता है कि जानते हुये भी वेचारे छोड़ नहीं पाते हैं। सूर्यग्रहण, चन्द्र ग्रहण पड़ जाये तो आहार को नहीं निकलते, ऐसे भी लोग हैं जो पिच्छि में धागा बाँधकर चलते हैं कि नजर न लग जाये।

"गणगच्छे" ये तो इस समय ऐसी दुर्गंध फैल चुकी है, बहुत बड़ा जहर फैल गया है। मेरा गण, मेरा संघ, वही श्रेष्ठ है। कोई संघ ही नहीं है। इस अभिमान को भूल जाओ, अपने परिणाम देखो। कोई समाधि नहीं हो रही है इस अभिमान से। भैया! तेरे परिणामों की विशुद्धि से समाधि होगी। मालूम, कुछ लोग तो इस राग में डूब गये हैं कि उनके गुरुमहाराज की समाधि हुये वर्षों बीत गये, तब भी मेरे गुरु श्रेष्ठ थे। भैया! वे तो अपनी करके चले गये, तुम एक को श्रेष्ठ दूसरे को हीन कह रहे हो, लेकिन तुम अपने परिणाम सम्हालो। क्या करोगे जानकर कि कौन श्रेष्ठ थे कौन कनिष्ठ थे?

भैया! वह इन्द्र बनकर पूजा कर रहा है उसका पुण्य तुझे मिलेगा क्या? सही कहना। नहीं मिलेगा। तुमको तो इतना ही मिलेगा, तुम प्रवचन सुन रहे हो, उसे दो-गुणा पुण्य मिलेगा, क्योंकि पूजा भी कर रहा है, प्रवचन भी सुन रहा है। भैया! आप दोनों के पिता एक नहीं थे क्या? एक ही पिता थे। पिता ने हिस्सा भी बराबर दिया था। एक के परिणाम इन्द्र बनने के हो गये, दूसरे के नहीं हुये, इसमें उसका क्या दोष? उसी प्रकार से एक गुरु के कई शिष्य होते हैं। अब कोई कहे कि ये "विद्यासागर" के शिष्य हैं ये "विराग सागर" के शिष्य हैं, तो भैया! तुम लोग लड़ो नहीं, तुम्हारे दादा कौन हैं? बोले-महावीर स्वामी।

भैया! अपन तो समझौतावादी हैं। किसी से झगड़ने का नहीं। महावीर के लघुनन्दनों की जय हो। तुम पिता को देखोगे तो भेद आ गया, दादा देखो सो एक हो। बस, जिसे देखकर एक हो उसकी ही बात करो। भैया! सुनना सबकी, देखना आगम से। किसी की व्यक्तिगत बातों को सुनकर के अपने मस्तिष्क को श्रद्धाविहीन मत कर लेना। "गणगच्छे" हे मुनिराज! गणगच्छ के राग में तुम पड़ गये, तो कुछ समय में कुमरण हो जायेगा, समाधि नहीं हो सकेगी।

"समय-संघ-जादि-कुले" मेरा शास्त्र, मेरा कुल। और एक बहुत बड़ी दुर्गंध और फैल गई है, ये तो कभी इतिहास ने भी नहीं सोची होगी। भैया! तू मुनि बनकर आ गया यहाँ की देहरी पर पाँव रखने से पहले पता कर लेता है कि यहाँ परवार कितने हैं? गोलापूरव कितने हैं? खण्डेलवाल कितने हैं? ये दुनियाँ के परपंचों में पड़े हो, तुम ये नहीं देखते कि तुम अर्हन्तो के लिंग को धारण किये हो, तुम जाति उपजाति को मत देखो, रत्नत्रय-धर्म को देखो और अखण्ड दिगम्बर जैनसमाज को देखो।

भैया! विश्वास करना पड़ेगा, ग्रन्थ में लिखा है, इसका मतलब है कि 'कुन्दकुन्द स्वामी' के काल में दुर्गंध आ चुकी होगी तभी लिखना पड़ गया, कि साधु लोग पता कर रहे हैं। वहीं आहार कर रहे हैं। हे मुनी! पहले नाम के राग को भगा, तभी तीर्थंकर बन पायेगा।

"पर्याय दृष्टि नरकेश्वर:,द्रव्यदृष्टि महेश्वर:।

आप विश्वास रखना कि ये विषय हमारे युवा वर्ग में चला गया, इसे आज का प्रवचन मत समझो, इसमें भविष्य की पवित्र समाज देखो भैया! आप समझा करो। बनिया का बच्चा गिरे भी तो मतलब से गिरे। दुनियाँ इसी में तो डूब रही है बेचारी, श्री और स्त्री। श्री, श्रीमती दो में भ्रष्ट हुई मती।

"संघ"। कोई भी संघ का साधु अपने नगर में पधारता है तो हमें संघ को नहीं देखना है पहले चर्या कराना है मिट्टी का पुतला क्यों न हो? दिगम्बर मुद्रा में दिखता है जब हम पाषाण की प्रतिमा में भगवान् खोज सकते हैं, तो ज्ञानी! मुनि में तुमको मुनि ही दिखना चाहिये। "जाति" में अमुख जाति का हूँ। हे महाराज! घर छोड़ दिया, ये जाति के राग न छूटे, तो तुमने क्या छोड़ दिया? "कुल"। मैं उच्च कुल का हूँ। मेरा कुल तीर्थंकर अर्हन्त का रत्नत्रय कुल है।

"सिस्स पडिसिस्सछत्ते"। शिष्य, प्रतिशिष्य। अब देखो, मेरे शिष्य तो महान् हैं ही 'आचार्य विरागसागर' सोचें मेरे शिष्य "विशुद्धसागर" उनके शिष्य "मनोज्ञसागर, प्रमेयसागर"।

उन्हें राग आ जाये, तो हम कहेंगे, महाराज इनमें न डूबो। ये नाती-पंतियों के राग में ये रागी डूबे हैं तुम शिष्य-प्रतिशिष्यों में डूब जाओगे, तो तुम्हारा क्या होगा? महाराज "आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं"।

ये तो गम्भीर विषय बोल दिया शिष्य प्रतिशिष्य तब भी तनिक साता थी। अब अपने "मनोज्ञ सागर" हैं उनके घर में मोड़ा-मोड़ी सोई हैं। मतलब गृहस्थ अवस्था के। अब वे कहने लगें हमारी देवी, हमारा बेटा अरे ज्ञानी अज्ञानी! जब तू छोड़के चल ही दिया है अब तेरा कौन? यदि मुनि के मन में भाव आ जायें ये मेरा बेटा है, ये मेरा पिता है, ये मेरा भाई है। इसका सम्मान करा दो "कप्पडे" स्वयं उतार चुके तब भी कह रहे भैया इनको शाल पहना दो मेरा पिता आया है, इनको चादर उड़वा दो भैया है। भैया! इस राग में मत पड़ जाना। वो पहले से ही पहने है अपन काहे को पहनायें उतरबावे की बात करो।

"पुत्थे" पुस्तक ग्रन्थों का राग। "पिच्छे"। एक नहीं दो नहीं दस-दस रखे हैं। नहीं, भैया! एक वर्ष में एक ही पिच्छि अनेक नहीं। वो भी 'जो है, सो है।' "संथरणे" चिटाई आदि, "इच्छासु" इच्छा में, "लोहेण" लोभ से, "ममयारं" इनमें ममकार बुद्धि रखता है, "यावच्च" जबतक "अट्टरूद्दं" तब तक आर्त्त-रौद्रध्यान है "ण मुंचेदि" नहीं छोड़ पाता है, "ण हु सोक्खं" तब तक निर्वाण सुख नहीं मिलेगा।

"**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं**" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

"निर्मल आत्मा ही समय है"

रयणत्तयमेव गणं गच्छं गमणस्स मोक्खमग्गस्स।
संघो गुणसंघादो, समओ खलु णिम्मलो अप्पा॥ 158 ॥

अन्वयार्थ—(मोक्खमग्गस्स) मोक्षमार्ग में **(गमणस्स)** गमन करने वाले साधु का **(रयणत्तयमेव)** रत्नत्रय ही **(गणं)** गण है **(गच्छं)** गच्छ है **(गुणसंघादो)** गुण-समूह से **(संघो)** संघ है **(खलु)** निश्चय से **(णिम्मलो)** निर्मल **(अप्पा)** आत्मा **(समाओ)** समय है।

अर्थ-मोक्षमार्ग में गमन करने वाले साधु का रत्नत्रय ही गण और गच्छ है, गुणों के समूह से संघ है और निश्चय से निर्मल आत्मा ही समय है।

"सम्यक्त्व कर्मों का नाश करता है"

मिहिरो महंधयारं मरुदो मेहं महावणं दाहो।
वज्जो गिरिं जहा विणसिज्जदि सम्मंतहा कम्मं॥ 159॥

अन्वयार्थ—(जहा) जैसे **(मिहिरो)** सूर्य **(महंधयारं)** गहन अन्धकार को **(मरूदो)** वायु **(मेहं)** मेघ को **(दाहो)** अग्नि **(महावणं)** विशाल वन को और **(वज्जो)** वज्र **(गिरिं)** पर्वत को **(विणसिज्जदि)** नष्ट कर देता है **(तहा)** उसीप्रकार **(सम्मं)** सम्यक्त्व **(कम्मं)** कर्मों को नष्ट कर देता है।

अर्थ-जैसे सूर्य गहन अन्धकार को, वायु मेघ को, अग्नि विशाल वन को और वज्रपर्वत को नष्ट कर देता है, उसी प्रकार सम्यक्त्व कर्मों को नष्ट कर देता है।

अन्तिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेश की पीयूष देशना, जिनेन्द्रवाणी मनीषियो जगत्कल्याणी है।

यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवन्त हो जयवन्त हो वीतराग श्रमण संस्कृति।

'आचार्यप्रवर भगवन्त कुन्दकुन्द स्वामी' ग्रन्थराज "रयणसार" जी में श्रमण और श्रावक उभय धर्मों की व्याख्या करते हुये समझा रहे हैं। बड़े पुण्यात्मा जीव होंगे जिनके श्रीमुख से णमो अरहन्त, सिद्ध का उच्चारण होता हो। जिस जीव के शुभ कर्म का विपाक चल रहा है।

जिस जीव के भाव पवित्र हैं, उस जीव की भाषा भी पवित्र होगी। जिसके भाव और भावनाओं में पवित्रता का अभाव है, वो अच्छा बोलना भी चाहेगा तो भी उस जीव के मुख से अच्छा निकलेगा ही नहीं। नरक का नारकी मन में सोचे भी कि मैं बहुत अच्छा सोचूँ, अच्छा कहूँ, अच्छा करूँ लेकिन तीव्र अशुभ कर्म का उदय होने पर वेदना, विक्रिया, देह लेश्या स्थान ये सारे के सारे ही अशुभ-ही-अशुभ होते हैं। स्वयं की ओर निहारना।

नारकी के परिणाम चल रहे हैं अशुभादि। ये कारण नहीं हैं, ये कार्य हैं। जब इस जीव ने मनुष्य पर्याय में अशुभ भाव किये थे, परिणाम किये थे, वे कारण थे और नरक पर्याय के परिणाम कार्य हैं। धन्य हों वे जीव, पंचमकाल में आने के उपरान्त भी जिनके परिणामों में पंचपरमेष्ठी की आराधना चल रही है और 'भविष्य के बननेवाले भगवन्त आराधना कर रहे हैं।'

भैया! यही पुण्य है, रत्नत्रयधारियों की वृद्धि हो रही है और रत्नत्रय फल की वृद्धि हो रही है प्रतिदिन समाचार मिलता है कि अमुख महाराज का सल्लेखना-समाधिपूर्वक मरण हो गया और हर समय समाचार मिलते हैं कि अमुख जगह दीक्षा होने वाली है इससे बड़ा पुण्य और क्या होगा? ज्ञानियो! वे तो पुण्यात्मा हैं ही, जो संयम को ग्रहण करने जा रहे हैं। पर वे भी महापुण्यात्मा हैं जो संयम की धारणा को देखने के लिये मचल रहे है।

जिस जीव का तीव्र अशुभ कर्म चल रहा है, उसके मुख से धर्म-धर्मात्माओं के प्रति अनुमोदना का भाव भी नहीं आता है

धर्म धम्मं फलं वन्तसंवेगो।

धर्म और धर्म के फल में हर्ष-चित्त होना, इसका नाम संवेग भाव है और संवेग भाव उसी को आता है, जो सम्यक्-दृष्टि जीव होता है।

दिगम्बर जैनाम्नाय में, चाहे वह करोड़ की हो या चाहे दो पैसे की हो एक बार जो वस्तु चढ़ चुकी है, उसको पुनः खरीद के चढ़ाया नहीं जाता। वो तो कम चढ़े सो माली के घर, ज्यादा चढ़े सो माली के घर। यह दिगम्बर जैनसमाज दरिद्र नहीं है जो निर्माल्य बेचकरके मंदिर में प्रयोग करेगी। निर्माल्य को बेंचा नहीं जाता। मेरा काम तो हो गया। मैं उत्कृष्ट द्रव्य लेकर आया था, प्रभू के पादमूल में समर्पित कर दिया, अब मेरे लिये निर्माल्य हो गया है। कोई माल ही नहीं बचा है, क्योंकि मेरा काम तो पूरा हो गया और वस्तु का परिणमन जैसा होना है सो होता रहे, मुझे क्या प्रयोजन?

भैया! गणधर वलय विधान करके आपने इतने श्रीफल चढ़ा दिये और छोड़कर आ गये, ये निर्माल्य हो गये। अब कभी उठाने का मन नहीं करना। ज्ञानी! ऐसे ही घर छोड़ने के बाद निर्माल्य हो गया अब घर जाने के भाव नहीं करना और परिवार वाले भी निर्माल्य हो गये। अहो! जैनशासन अद्भुत है?

चौबीस घण्टे जिसने पालन-पोषण किया हो, वही परिवार आज निर्माल्य दिखाई देता है, इसी का नाम वैराग्य है। जो व्यक्ति घर छोड़ने के बाद, परिवार के सदस्यों को छोड़ने के बाद भी मन में कुछ भाव रखता है उनके प्रति, तो यही मानकर चलना कि ये निर्माल्य का सेवन कर रहा है और निर्माल्य का सेवन करने के लिये इसी ग्रन्थ में आप पढ़ चुके हो।

जिण्णुद्धार-पदिट्ठा-जिणपूया-तित्थवंदण वसेसधणं।
जो भुञ्जदि सो भुंजदि, जिणदिट्ठं णरयगदिदुक्खं॥32॥

जिनेन्द्र की पूजा, प्रतिष्ठा में भैया! सम्हलकर रहना जीवन में। भगवान् की खूब प्रतिष्ठायें करवाना, खूब विधान कराना, लेकिन अपने भावों से कह देना कि भूखा रह लेना या पानी मिले पीकर सो जाना, नहीं मिले तो णमोकार पढ़ते हुये सल्लेखना ले लेना, लेकिन श्री जिनेन्द्र के द्वार पर अर्पित द्रव्य का उपयोग हम जीवन में कभी नहीं करेंगे।

भैया पर्याय का सुख तो उसी पर्याय में है। लेकिन निर्माल्य के भोगी जीव को साठ हजार वर्ष तक विष्ठा में कीड़ा बनना पड़ता है, ऐसा आगम में उल्लेख है। जो द्रव्य आपने अर्हन्त की वेदी के सामने, देव-शास्त्र गुरु के सामने समर्पित कर दिया हो, उसके सेवन करने में इतना पाप होता है तो, ज्ञानी! जिस जीव ने अपनी पर्याय को अरहन्त की मुद्रा को समर्पित कर दिया हो, तो उसका सेवन अन्य कार्यों में करता है, उससे बड़ा पापी जगत् में कौन होगा?

दो ही जीव हैं। एक उच्चकोटि की दृष्टि का पात्र है और दूसरा उच्चकोटि की निंदा का पात्र है। एक तपस्या के लिये चक्री पद को छोड़ रहा है, उसकी क्या स्तुति करूँ? दूसरा विषय-कषाय की पुष्टि के लिये तपस्या छोड़ रहा है, उसकी क्या निन्दा करूँ? गुण- भद्र स्वामी' लिख रहे हैं "आत्मानुशासन ग्रन्थ" में जो तपस्वी बनने के लिये चक्री का पद छोड़ रहा है, उससे श्रेष्ठ कोई प्रशंसनीय नहीं है जगत् में और जो विषय की पुष्टि के लिये तपस्वी पद छोड़ रहा है, उससे बड़ा निन्दनीय कोई पुरुष नहीं है।

आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी "प्रवचन सार" जी में बड़ी सुन्दर बात लिखते हैं हे श्रमण! वसदि, प्रतिमा, उपकरण, जाति, कुल, वंश यदि के प्रति लोभ-परिणाम हैं, राग-परिणाम हैं,

द्वेष परिणाम हैं, तो वे बंधभाव हैं और मोक्षमार्ग बंधने के लिये स्वीकार नहीं करना पड़ता, मोक्षमार्ग छूटने के लिये स्वीकार करना पड़ता है।

ये रत्नाकर है। रत्नाकर में रत्न भरे होते हैं। रत्नत्रय धर्म से बड़ा जगत् में कोई रत्न नहीं है। वे कुन्दकुन्द स्वामी "प्रवचनसार" जी ग्रन्थ में लिखते हैं कि ज्ञायकभाव की दृष्टि जिनकी बन चुकी है, जिस जीव का भेद-विज्ञान जाग्रत हो चुका है, ऐसा भव्य जीव जिनदीक्षा के परिणाम बनाता है गण/गच्छ में प्रवेश करने के पूर्व। तीन मुनियों के संघ को "गण" कहा जाता है। सात मुनियों के संघ को "गच्छ" कहा जाता है और ऐसे गण के नायक का नाम "गणाचार्य" है।

गण या गच्छ में प्रवेश करने से पहले भेदविज्ञान से भर चुका है जिसका हृदय, वह जीव जिसने जगत् के परिणमन का बोध कर लिया है, ऐसा भव्य मुमुक्षु जीव जब दिगम्बर आचार्य के पास पहुँचता है तदुपरान्त विदेही की प्राप्ति के लिये, विदेही में लीन होने के लिये ये दीक्षा धारण करता है।

राजमार्ग ये है कि अपने जनक-जननी से पूछकर आओ। यदि राष्ट्रपुरुष है, तो उसको शीघ्र दीक्षा नहीं दी जाती। आप राजा से पूछकर आयें। राज्याधिकारी है, उसको भी शीघ्र दीक्षा नहीं दी जाती है। पहले शासन से पूछकर आओ। क्यों? कोई राज्यकर्मचारी है, जिससे राजा की राज्य की सिद्धि होती थी, ऐसे व्यक्ति को आपने दीक्षा दे दी और कहीं कुपित हुआ वह सम्राट कि मेरे पुरुष को कैसे आप ले जा रहे हो? संघ पर उपसर्ग कर सकता है, धर्म का विराधन हो सकता है, एक व्यक्ति के राग में आकर के सम्पूर्ण संघ पर उपसर्ग हो सकता है।

अपने जनक-जननी से पूछकर आओ। जब जनक-जननी से पूछने जायेगा, भैया! ये लोग तो पुण्यशाली जीव हैं। ज्ञानी! इन सबके माता-पिता सामने तो बैठे हैं। सब समर्पित करके चले गये। अपन टंटा नहीं पालते हैं। जो कुछ करना है, पहले करके आओ। मुस्करा कर आयें तो जनक और जननी फिर यूँ कहें-महाराज! अहोभाग्य धन्यभाग्य हमारी कोख का है कि कामपुरुषार्थ का फल मुझे मोक्षपुरुषार्थ की ओर ले जा रहा है। धन्य हैं वे जीव जिनने पूरे कुल को मुस्कराने का अवसर दिया हो। धिक्कार के योग्य हैं वे जीव, जो वैश्यालय या मदिरालय जाने लगे। उनके पिता समाज में चेहरा बताने लायक नहीं बचते हैं, जिनके बेटे अशुभ कर्म करने जा रहे हों। जिनके बेटे निर्ग्रन्थ मुनि बनने जा रहे हों, उनके पिता की पूजा होना शुरू हो जाती है।

जब वो भव्यजीव गुरु-आज्ञा लेकर अपने जनक-जननी के पास जाता है। कितने गम्भीर शब्दों का, वैराग्य से परिपूर्ण शब्दों का प्रयोग किया है। वो है भव्य पुण्य ग्रहीत जिनदीक्षा का पात्र। वह जनक-जननी के पास जाकर क्या कहता है?

अहो, मेरे देह के जनक! अहो, मेरी देह की जननी! ये ध्रुव सत्य है कि आपके निमित्त से इस शरीर की रचना हुई है, पर मेरी ध्रुव-आत्मा की रचना नहीं हुई है। हे मेरे देह के जनक-जननी! आपके रज-वीर्य से मेरे शरीर का निर्माण तो हुआ है, पर ये ध्रुव-आत्मा आपके शरीर से निर्मित नहीं हुई है। इसलिये शरीर आपका है और आत्मा मैं हूँ। जो परवस्तु होती है, उसको स्वीकार करना अचौर्यव्रत में दोष लगता है।

ये आपकी वस्तु है, इसलिये आपसे अनुमति लेने आया हूँ। आपके द्वारा प्रदत्त शरीर है, इस शरीर के माध्यम से मैं अपनी भगवान् आत्मा का कल्याण करना चाहता हूँ। वैरागी झोली फेला देता है कि मुझे इस शरीर की भीख दे दो, मैं आपके द्वारा दिये गये शरीर से आत्मकल्याण करना चाहता हूँ। इतनी बड़ी भीख माँगने गया था, क्यों? ये भी एक रहस्य है जिसने जन्म से लेकर जितनी उम्र हो चुकी है तेरी सेवा की है उसको भी धक्का लगेगा। वो भी सोचेगा कि कैसा स्वार्थी जीव था, जिसको मैंने नौ माह तक पेट में रखा इतने वर्ष तक पढ़ाया-लिखाया, खिलाया-पिलाया, सब कुछ किया, कैसा विवित्र जीव है?

इसलिये उनको महसूस करा देता है कि आपका ही शरीर है, पर आपके शरीर से मैं निज आत्मा का कल्याण करना चाहता हूँ। माँ कहती है, बेटे! मेरे सुत! सुख छोड़कर मत जा। बेटा कहता है, माँ! सुखाभास में सुख कहाँ? यदि सुखाभास में सुख होता, तो तीर्थंकर ने त्यागा क्यों? जननी का काम रोना है। जो ममता की माँ है, वो रो ही पायेगी और जो समता की माँ है, वो रोती नहीं है, पीठ भी नहीं ठोकती है। वह तो चारित्र की गोद में बिठालती है।

दो माँ तेरे पास हैं। एक ममता की माँ है, जो रोते मिलेगी और दूसरी है समता की माँ! माता-पिता अभी तक ये सोच रहे हैं कि जिसने जन्म दिया उसके संग दूसरे को बिठाल दिया। हाँ, धर्म के माता-पिता हैं, पर ज्ञानी! जो धर्म के माता-पिता बने हैं, वे अनुमोदना के लिये बने हैं। परन्तु वास्तव में वे माता-पिता धर्म के माता-पिता हैं जिन्होंने ऐसे पुत्रों को जन्म दिया जो जिनशासन की प्रभावना की ओर चले हैं। ये सब पूर्व के नियोग हैं। भैया! जो धर्म के बने हैं, इनके भी कोई पूर्व के संस्कार होंगे।

जब बेटा कहता है कि, हे माँ! मुझे भीख दे दो। तो माँ पूछती है, बेटे! अपने घर में किस सम्पत्ती की कमी है जो तू भीख माँगने आया है? बोल दिया बेटे ने माँ! भीख दे दो। माँ पिता की ओर देखती है कि ये क्या बोलता है? बेटा कहता है, माँ मैं सही कहता हूँ। मैं अनादि का भिखारी हूँ, इसलिये भीख माँगने आया हूँ। जिस सुख की आप बात कर रही हो, जिस सम्पत्ति की बात कर रही हो वो तो अनन्त बार प्राप्त की है।

मैं रत्नत्रय धर्म का भिखारी हूँ, इसलिये उसकी प्राप्ति के लिये तेरे दिये शरीर की थैली बनाकर मैं रत्नत्रय धर्म को रखूँगा और अपनी आत्मसम्पत्ति का भोग करके सिद्धत्व की ओर गमन करूँगा। देखो, माताओ! कैसा लग रहा है? यदि सबके बेटे ऐसे हों, तो कैसा लगे? अब लोग कहते हैं कि महाराज! इतना सब दिखाने की क्या आवश्यकता? इसलिये भो ज्ञानी! पंचम काल में दिखाना ही चाहिये, कि रागियों के राग में इतने लोग नाटक करते हैं, तो राग-ही-राग बढ़ता है, पर वैरागियों की दृष्टि हुई तो कम-से-कम किसी माँ के मन में स्वप्न में भी आ गया, अरे! ये भी तो एक आनन्द है। तब वो अपने बेटे को मुनि बनाने के भाव रखेगी, पिता मुनि बनाने के भाव रखेगा और ऐसे भाव से इस जीव ने अब्रह्म का सेवन नहीं किया, तो उन भावों से किया गया सेवन सन्तति को संस्कार पुण्य रूप देगा और वो ऐसी सन्तान होगी जो आगे चलकर मुनि और आर्यिका बनेगी।

बचपन के भी संस्कार काम में आते हैं। सब नियोग मिलते हैं। भैया! बचपन के संस्कार, माता-पिता के संस्कार और पूर्व पर्याय के संस्कार, ये सब एकसाथ इकट्ठे होते हैं और फिर सद्गुरु का नियोग और भगवती माँ जिनवाणी का पान जिसको हो जाये, तो उसका दिगम्बर रूप दिखाई देगा-ही-देगा। किसी के बेटे मुनि नहीं बनते, तो आज तुम कैसे कह पाते कि सद्गुरु कैसे होते हैं?

उन माता-पिता को भी यूँ कहना चाहिये अपन को कि आपने भी वीतराग श्रमण संस्कृति को बहुत बड़ी देन दी है, जो आपने अपना बालक एक योगीश्वर बना दिया। वह निर्दोष संयम का पालन करके, जिनागम का अध्ययन करके जिनशासन की पताका को लहरायेगा। तब सदियों-सदियों तक श्रमणसंस्कृति जीवन्त रहेगी, जयवन्त रहेगी। कुन्दकुन्द महान् योगी हुए, आज दो हजार वर्ष व्यतीत होने के बाद भी हम उनको सिर पर विराजमान किये हैं।

वे भी एक माँ के इकलौते पुत्र थे। वर्द्धमान भी अपनी माँ के इकलौटे बेटे थे। यदि वर्द्धमान की माँ अपने बेटे को मुनि नहीं बनने देती, तो आज तीर्थंकर महावीर का शासन

कहाँ दिखाई देता? इसलिये हर माता-पिता को अपने मन में चिन्तन करना है कि धर्म की रक्षा करना है, तो साधु बनाना ही होगा। बने या न बने, वो उसका नियोग है, लेकिन अपने भाव तो लाना ही चाहिये। समन्त भद्रस्वामी स्याद्वाद की पताका लहरा गये। आचार्य भगवान् मानतुंग स्वामी भक्तामर की रचना करके अड़तालीस ताले तोड़करके अर्हन्त के शासन को जयवन्त कर गये।

ज्ञानियो! प्रभाचन्द्र स्वामी प्रमेयरत्नमाला, प्रमेयकमलमार्तण्ड, न्यायकुमुदचंद्र ग्रन्थों को लिखकर नमोऽस्तु शासन को जयवन्त कर गये इन निर्ग्रन्थों से कहना, स्वामी! कषायों की गाँठे तो हम लोग बहुत अच्छे से जानते हैं, पर ग्रंन्थों में निर्ग्रन्थ बनने की शैली क्या है? ये हम आपसे जानना चाहते हैं?

निग्रन्थों से कभी काषायिक भावों की बातें मत सुनना, निर्ग्रन्थों से तो मात्र ये पूछना कि गाँठ कैसे छूटे? अब भैया आ गये, महाराज! रक्षासूत्र बांध दो, मेरी रक्षा हो जाये। ज्ञानी तू! निर्ग्रन्थों से गाँठ बँधाने आया है, निर्ग्रन्थों से तो ये पूछना, स्वामी! ये गाँठ छोड़ना कैसे पड़ती है? इसकी विधि बता दो। नहीं-तो हमारे ये भैया आ जायें, महाराज! ऐसा कोई मंत्र बता दो जिसे में कलश में रख लूँ और धन-धान्य से परिपूर्ण हो जाऊँ।

अरे ज्ञानी! मैं ये कह रहा हूँ, कि धनधान्य से शून्य हो जाये, तो तू निर्ग्रन्थ बन जाये, अर्हन्त बन जाये। श्री के राग में श्रीजी को मत भूलो। ये श्री ही सब कुछ नहीं है निज के श्री को निहारो, धन से धर्मात्मा की पहचान मत करना। धन से साधु की पहचान नहीं करना। जिनशासन में निर्ग्रन्थ की पहचान धन से नहीं है, अकिंचन धर्म से है, शौच धर्म से है।

जिसका दिगम्बर रूप शोभनभूत न बने यानि चटके, तिरछे, आड़े, ठाड़े पाषाण की प्रतिमा को प्रतिष्ठित नहीं किया जाता। फिर जिसकी आँख बन्द हैं, अङ्ग हीन है, अंङ्ग अधिक है, जिनलिंग लघु है, ऐसी प्रतिमा की जो प्रतिष्ठा करे, कराये, अनुमोदना करे तो तीनों खोटे फल को प्राप्त होते हैं।

भैया! भावुकता में कभी श्री जिनदेव की प्रतिमा को विराजमान मत कर देना। जब पाषाण की प्रतिमा को भगवान् बनाने के लिये प्रतिष्ठाचार्य को सब निहारना पड़ता है, तो ज्ञानी! एक इन्सान को भगवान् की मुद्रा देने के लिये उसको सब देखना पड़ेगा। उसका शरीर सुडौल हो। जिनका जिनलिंग ही व्यवस्थित नहीं है, ऐसे व्यक्ति को जिनदीक्षा देने का जिनागम में अधिकार नहीं है।

ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य ये तीनों ही जिनशासन में दीक्षा के पात्र हैं। कल्याण अङ्गं का अर्थ होता है निर्दोष व निरोग शरीर। ऐसा नहीं होता है कि आज दीक्षा लो कल आपको

दीक्षा छोड़ना पड़े। नहीं। फिर तो दीक्षाधारियों की सेवा करना ही तुम्हारा मोक्षमार्ग है। जिनको दीक्षा की पात्रता नहीं है, उनको दीक्षाधारियों की सेवा करना ही मोक्षमार्ग है। अनुमोदना कर लेना, पर दीक्षा के राग में जिनमार्ग को दूषित मत करना। ये सब ध्यान रखना।

जिस भव्य जीव ने आचार्य भगवन् के पादमूल में रत्नत्रय धर्म को अंगीकार कर लिया, यहाँ तक तो भैया! सब बढ़िया-बढ़िया था। अब कुन्दकुन्द स्वामी यहाँ अपनी भाषा बदल रहे हैं। यहाँ तक तो भव्य जीव को बहुत अच्छे से समझाया, खूब प्रशंसा की और करने लायक ही था। जिसने सब कुछ छोड़ा हो, उसकी क्यों न प्रशंसा हो? लेकिन हे योगी! आपको मालूम हो कि आप समुद्र पार करके आये हो। श्रावको! ध्यान देना, जो निज बाहुबल से पार करके आयेगा वो प्रशंसनीय क्यों नहीं होगा? एक घण्टे प्रवचन सुनने आने के लिये कितना-कितना सोचकर आना पड़ता है? सब व्यवस्थित करके आते हो। भैया! एक जीव दस मिनट निकालता है, तो उसके दस मिनट का दुरुपयोग नहीं होना चाहिये।

दस मिनट के समय में मैं यहाँ-वहाँ की सुनाऊँ तो विश्वास रखना, मेरे द्वारा इन जीवों को छला गया है। ये सब परिणामों की विशुद्धि के लिये आते हैं और जिनशासन की गद्दी पर बैठा होने पर भी उस जीव की विशुद्धि न बने, तो बड़ा खेद होता है। उस जीव का जब इतना सोचा आपने, तो फिर जिसने पूरा जीवन ही संयम के लिये समर्पित कर दिया हो वह जीव प्रशंसनीय क्यों नहीं होगा?

चंदोवा क्यों लगाते हैं? इसका हेतु क्या है? इसका प्रवल हेतु जीव-जन्तु आदि न गिरे। पर अब कुछ ज्यादा सयाने ज्ञानी लोग हो गये हैं। बोले-महाराज! पक्के मकान हैं, कहाँ के जीवजन्तु? ज्ञानी! चाहे कच्चे, चाहे पक्के हों, मकड़ी के लिये सब एकसे हैं, वो तो अपना जाल बनाना जानती है। भैया! विवाह के समय जो चंदोवा आपके ऊपर तना हुआ था। मण्डप बना था वह भी कितना सुन्दर था? भैया! संसार की वधू से सम्बन्ध करने जाने वाले का इतना सम्मान, तो फिर मुक्तिवधू के साथ शादी करने वाले का सम्मान क्यों नहीं? जब चंदोवा लगा होता है और साधु पहुँचे तो अलग ही माहोल होता है कि महाराजश्री आये हैं। ज्ञानी! जो मुक्तिवधू के कंत का सम्मान कर लेता है, वह भविष्य के भगवान् का सम्मान कर रहा है। किसी मुनि में मुनि ही मत देखो, प्रत्येक योगी में भविष्य का सिद्ध भगवान् देखो।

हे मुनिराज! जिस संघ में आपने दीक्षा ली हो, जिस संघ में आपने प्रवेश किया। संघ में आये हो, संग में नहीं आये। संघ में रत्नत्रय की सिद्धि के लिये आये हो, संग बनाकर नहीं

आये हो। संघ, संग। "ग" लगा दोगे तो परिग्रह हो जायेगा और "घ" लगाओगे तो निःशल्य होगा। ज्ञानी! मुनिसंघ को मुनिसंघ ही बनाकर रखना, मुनिसंघ को मुनिसंग मत बना देना। परिग्रही मत बना देना।

देखो, वैराग्य होने के बाद फिर राग टपकता है जीव को। क्या किया आपने? घर-गृहस्थी को छोड़कर आये, अब आपको जितना राग माता-पिता में नहीं था उतना राग तुमको गुरू में आ गया और मेरा संघ, मेरा संघ, उसी में इतने लवलीन हो गये कि जिस संघ के लिये आये थे उस संघ का तुम्हारे लिये पता ही नहीं चला। तस्वीर, फोटो कागजों में इतने लवलीन हो गये कि रत्नत्रय धर्म पर दृष्टि ही नहीं गई कि मुनि बना ही क्यों? इसके लिये ही कुन्दकुन्द स्वामी ने गाथा लिखी है।

"रयणत्तयमेव गणं"। हे मुनीश्वर! मुनिसंघ में आकर इतने राग में लवलीन मत हो जाना कि जिस धर्म की आराधना के लिये आये थे, उस धर्म का भान ही नहीं है। हर समय प्रत्येक सामायिक में वही चिन्तन चलता है कि अब कौन-से क्षेत्र में मेरी प्रभावना होगी? कौन से क्षेत्र में मैं काम करूँ? किस की निंदा करूँ? किसकी प्रशंसा करूँ? ये लक्ष्य तुम्हारा चल रहा है तो ध्यान रखना, आप मात्र "संग" में आये हो, "संघ" में नहीं आये थे। कितना विशाल चिन्तन था?

"रयणत्तयमेव गणं"। हे योगीश्वर! तीन के संघ को "गण" कहा था व्यवहार नय से, पर निश्चय से गण क्या है? जो मेरा रत्नत्रय धर्म है, वही मेरा "गण" है। यदि उसकी रक्षा नहीं की, तो कोरे गण की रक्षा करने से कुछ होने वाला नहीं है। बहुत ज्यादा उपाधि भी व्याधि है। संघ व्यवस्था के लिये आचार्य होना ठीक है, लेकिन 'संग' व्यवस्था के लिये आचार्य बन गये तो वह भी दुर्गति का ही कारण है।

हे भैया! सुन रहे हो न? कितनी उपाधियाँ प्राप्त करोगे? मुझे आश्चर्य होता है, कि जब श्रावक प्रतिमा लेता है, तो वह जीव भी नियम ले लेता है कि इतना भोग इतना परिभोग आदि करूँगा, सीमित परिग्रह रखूँगा। अहो मुनियो! इतना तो नियम लो कि जीवन में इतनी उपाधियाँ लूँगा। मालूम चला कि पूरा-का-पूरा पृष्ठ उपाधियों से भर गया, नाम छोटा-सा और उपाधि ढेर सारी हो गई।

दुनियाँ की सारी उपाधियाँ ज्ञानी! परिग्रह ही हैं और कहीं ये राग बढ़ गया कि मैं इतनी उपाधियों से मंडित हूँ, सल्लेखना के समय याद आ गई, तो समाधि भंग हो गई।

भैया! जिस दीक्षा को लेने जा रहा है, वह दिगम्बरी दीक्षा है। जो दिगम्बरी दीक्षा है, वह आडम्बर विहीन होती है। आडम्बर में दिगम्बरत्व होता नहीं है। सबके रत्नत्रय निर्मल फलित हों और फल सबका मोक्ष ही हो, इसके आगे कुछ न हो।

भैया! इतना ध्यान रखना, कि मन इधर-उधर होता है, तो घर में रहना अच्छा है। ज्ञानी! दीक्षा लेने के बाद गुरु एक बार बनाना, पर अच्छा ठोस सोच-समझकर बनाना।

"पानी पीवे छानकर, गुरु बनावे जानकर"

ज्ञानी! गुरु बनाने के बाद हिचकिचाने का समय नहीं है, समर्पण होना चाहिये। "कुन्दकुन्द स्वामी" ने लिखा है, इसी ग्रन्थ "रयणसार" में कि "पति की भक्ति से विहीन सती कैसी?"

आजकल बड़ा युग चल रहा है, तलाकशुदा शादी का। वे अज्ञानी लोग हैं अरे! वे पागल लोग हैं, जो तलाक की शादी कर लेते हैं। जो एक की नहीं भई, उसको छोड़कर भाग आई, अब तू चिन्ता मत कर, तुझे भी छोड़कर चली जायेगी।

ये ऐसा विकृत मार्ग हुआ है। यही संघ में चला है, तलाक मार्ग। एक गुरू को छोड़ दूसरे के इधर पहुँच गये। अब उस गुरू को चाहिये कि जो पहले ही अपने गुरु का नहीं बचा, अब मेरे पास क्या रहेगा? कब भग जायेगा, कोई भरोसा नहीं। हमारी जिनवाणी में लिखा है कि जैसे तलाकशुदा स्वीकार नहीं है, वैसे-ही दूसरे का शिष्य भी हमारे "मूलाचार" में, जिनागम में स्वीकार नहीं है। "समन्तभद्र स्वामी" बनो कि कहो सबकछु, पर कहना कोई की नहीं है। "जो है सो है।"

पति की भक्ति से विहीन सती कैसी? गुरुभक्ति से विहीन शिष्य कैसा? ऊसर भूमि में बोया गया बीज जैसे कभी अंकुरित नहीं होता, वैसे-ही गुरुभक्ति से विहीन शिष्य का भी मोक्षफल अंकुरित नहीं होता। भैया! कितने ही ऊपर चले जाना, लेकिन गुरु को हृदय में रखकर चलना, व्यवहार कह रहा है।

जब व्यवहार के गुरु को सम्हालके रख पाओगे, तभी निश्चय के गुरु से मिल पाओगे। साँची-साँची समझियो, ये जगत् है। सबकी सुनी-सुनी नहीं सुनना, जो जिनदेव ने कहा वही कहना है। इसी का नाम "जिनशासन" है। ज्ञानी! विपरीत सोच आपका हो सकता है, पर वहाँ जाकर देखना चाहिये।

सूर्य को मुट्ठी में पकड़ने वाला कोई है? नहीं। न हुआ है, न होगा। न किसी के पुण्य को दबा पाओगे, न किसी के पाप को दबा पाओगे। परन्तु ईर्ष्या करके निज का पाप पुण्य अवश्य क्षीण कर पाओगे।

"गच्छं गमणस्स"। गमन करने वाले साधु का जो रत्नत्रय धर्म है, वही गण है, वही गच्छ है। "गुण संघादो संघो" गुरु का समूह ही संघ है "समओ खलु णिम्मलो अप्पा" निश्चय से जो निर्मल आत्मा है, उसे ही प्राप्त कर।

मिहिरो महंधयारं, मरुदोमेहं महावणं दाहो।
वज्जो गिरिं जहा विणसिज्जदि सम्मं तहा कम्मं॥ 159॥

पुनः कह रहे हैं आचार्य महाराज। ये जीव "मिहिरो महंधयारं" जैसे सूर्य जो है महा अंधकार को नष्ट कर देता है। "मरुदो मेहं महावणं दाहो" और वायु जो है कितनी ही काली घटा मेघों की छा जाये, हवा भी चलने लग जाये, किसान भी समझता है कि अब तो बादल छट गये। कितना ही विशाल जंगल हो, आग की एक काड़ी लग गई तो समझ लो कि भष्म हो गया जंगल।

"वज्जो गिरिं जहा विणसिज्जदि" और पर्वत कितना ही ऊँचा हो, यदि गाज गिर गई, तो पर्वत टूक-टूक हुआ।

ज्ञानियो! जैसे सूर्य अंधकार को वायु मेघ को, अग्नि जंगल को और गाज पर्वत को नष्ट कर देता है, ऐसे-ही "सम्मंतहा कम्मं" सम्यक्-दर्शन जो है वह कर्मों के पहाड़ को नष्ट कर देता है। इसलिये मुमुक्षुओ! सब बातों को छोड़ो सम्यक् को भजो, मिथ्यात्व को तजो, यही मोक्षमार्ग है।

"आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं", आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

"सम्यक्त्व दीपक के समान है"

मिच्छंधयाररहिदं, हियमज्झं सम्मरयणदीवकलावं।
जो पज्जलदि स दीसदि, सम्मं लोयत्तयं जिणुद्दिट्ठं॥ 160॥

अन्वयार्थ–**(जो)** जो **(हियमज्झं)** अपने हृदय में **(मिच्छंधयाररहिदं)** मिथ्यात्व रूपीअन्धकार से रहित **(सम्मरयणदीवकलावं)** सम्यक्त्व-रूपी रत्नदीप समूह को **(पज्जलदि)** प्रज्वलित करता है **(स)** वह **(लोयत्तयं)** तीनों लोकों को **(सम्मं)** भली-भाँति **(दीसदि)** देखता है **(जिणुद्दिट्ठं)** जिनेन्द्रदेव ने ऐसा कहा है।

अर्थ-जो अपने हृदय में मिथ्यात्व रूपी अन्धकार से रहित सम्यक्त्व रूपी रत्नदीप-समूह को प्रज्वलित करता है, वह तीनों लोकों को सम्यक् प्रकार देखता है, ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है।

॥ देशना ॥

अन्तिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शाासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेश की पीयूष देशना जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है।

यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवन्त हो जयवन्त हो वीतराग श्रमण संस्कृति।

आचार्यप्रवर भगवन्त कुन्दकुन्द स्वामी ग्रन्थराज "रयणसार" जी में श्रमण और श्रावक उभय धर्मों की व्याख्या करते हुये समझा रहे हैं। गणों में घूमते-घूमते अनन्त-भव व्यतीत हो गये। "रयणत्तयमेव गणं" रत्नत्रय ही मेरा गण है। स्वभाव और दृष्टि में जब मेल होता है उस काल में योगी सम्पूर्ण विकल्पों को अपने आप से भिन्न देख लेता है। विवेक जो है, वह निसंग है।

ज्ञान में विवेक जब प्रवेश कर जाता है, तभी यही विवेक भेदविज्ञान अवस्था को प्राप्त होता है। विवेक के अभाव में बंधे हुये हैं जीव, बंध रहे हैं सब जीव। विवेक के अभाव में भैया, लोगों ने विवेक का अर्थ क्या लगा लिया है? राग की वृद्धि के हेतुओं को विवेक से करो, पैसा विवेक से कमाओ, सुख विवेक से भोगो। ज्ञानी! विवेक कितना विशाल था कि हर व्यक्ति ने अपने आप में शब्द को स्वीकार कर लिया। विवेक नामका "प्रायश्चितशास्त्र" में एक प्रायश्चित भी है। अध्यात्मशास्त्र में भेदविज्ञान की दशा ही विवेक है। यदि गुरु ने विवेक नाम का प्रायश्चित शिष्य को दिया, कि भोजन तो सभी करना है कोई सामग्री छोड़ेंगे नहीं, लेकिन विवेक से करेगा। अब विवेक से करने का तात्पर्य क्या

हुआ? क्या अभी तक अविवेक से करते थे? नहीं, अविवेक से नहीं करते थे, लेकिन आज विवेक से करना है। ये विवेक बड़ा गहरा था, तो विवेक से तात्पर्य क्या था?

आप आहार करने जायेंगे। जब श्रावक नमक देगा, तो नमक ही नमक लेंगे। किसी सामग्री में डालकर नमक नहीं लेंगे। आपका त्याग नहीं है, लेकिन उठायेंगे नहीं किसी सामग्री में पड़ा होगा तो नहीं लेंगे और पड़ा मिल गया तो अन्तराय करेंगे। त्याग कोई सामग्री का नहीं है, दुग्ध लेंगे तो दुग्ध ही दुग्ध लेंगे, उसमें मीठा नहीं होना चाहिये, पर मीठे का त्याग भी नहीं है। ये विवेक नाम का प्रायश्चित है, कि हर वस्तु को एक-एक करके लेना है।

मिश्रण करके लेना ये अविवेक भोजन है। शुद्ध भोजन तो ज्ञानियो! बहुत बिरले लोगों ने किया होगा आज-तक। आप कह सकते हैं महाराज! सोले का भोजन बनता है मेरे चौके में, मैं शुद्ध भोजन ही करता हूँ। ज्ञानी! जिसे तू शुद्ध कह रहा है, वह तो अशुद्ध ही है। जब शुद्ध भोजन का स्वाद नहीं चखा, अशुद्ध को शुद्ध मानता हुआ शुद्ध की मान्यता दे दी। ज्ञानियो शुद्ध भोजन नहीं चखा, शुद्ध भोजन को जाना नहीं, तो शुद्ध आत्मा का स्वभाव कहाँ चख पाओगे?

कहीं मीठा पानी सुना जाता है? कहीं शर्बत का पानी सुना जाता है? कभी अनेक प्रकार के पानी देखे जाते हैं? लेकिन जब मीठा नहीं लेते हो, तो श्रावक आपसे कहता है शुद्ध पानी। भैया शुद्ध पानी से तात्पर्य क्या हुआ? जिस पानी में मिश्री घोल दी हो, वह पानी दूषित हो गया। मीठा अवश्य है, लेकिन अन्य रसों का मिश्रण है। जिस भोजन में नमक-मिर्च डाल चुके हो वह मिश्रित भोजन है। शुद्ध भोजन कहाँ?

जिसमें षड्रस पड़े हों, वह मिश्रित भोजन है। शुद्ध भोजन कहाँ? शुद्ध भोजन तो भैया पानी में उबली हुई दाल, साग और सूखी रोटी उसका नाम है शुद्ध भोजन। ऐसा शुद्ध भोजन विवेकपूर्ण भोजन है। आज तक इस जीव ने शुद्ध दाल का स्वाद ही नहीं चखा। ये श्रावक हमारे बघार लगाकर दाल दे देते हैं और कहते हैं कि शुद्ध दाल है, बड़ी स्वादिष्ट है। ज्ञानी! दाल का स्वाद तूने चखा ही नहीं है। दाल स्वादिष्ट कैसे है? सीधे-सीधे बोलो कि ये बघार का स्वाद है। ये दाल का स्वाद नहीं है। दाल तो मात्र दाल है।

ऐसे-ही ज्ञानियो! मैं संसार में रहकरके आत्मा का स्वाद ले रहा हूँ। आनन्दमय जीवन जी रहा हूँ। ये विषय-कषायों का स्वाद है। आत्मा का स्वाद तो चिद्स्वभाव है जो अकषायिक भाव है। बहुत आनन्द आया; कहाँ पर आया? महाराज! भगवान् की भक्ति कर रहा था, बहुत आनन्द आया। कैसा आनन्द आया? महाराज! आत्मीय आनन्द आया है।

हे ज्ञानी! ये आत्मीय आनन्द नहीं था। ये प्रशस्त राग का आनन्द था और जब प्रशस्त राग का आनन्द इतना आनन्दित है, तो शुद्धात्मा का आनन्द कितना आनन्दित होगा? इतने दिनों से त्रिलोकमण्डल विधान चल रहा था। पहले के दिन कहाँ गये? ये मुमुक्षु घबराते थे। भगवान् की भक्ति में घबड़ाने की आवश्यकता नहीं है। आनन्द आया कि नहीं आया?

बने भगवान् की भक्ति करने में भक्तों को आनन्द आता है, तो जो स्वयं भगवान् बनकर आनन्द लूटता है, उसका आनन्द कैसा है? जिसने एक बार भी निजशुद्ध स्वभाव को समझ लिया है, पहचान लिया है, जान लिया है, द्वैत में उसका प्रवेश होगा नहीं। द्वैत में एकत्व से गिर भी जाये तो ज्ञानी द्वैत में नहीं जायेगा, एकत्व में ही उठेगा। अद्वैत को जिसने समझ लिया हो वह द्वैत में प्रवेश क्यों करेगा? जहाँ-जहाँ द्वैत है, वहाँ-वहाँ द्वन्द्व है। अद्वैत ही एकत्व-विभक्त सुन्दर स्वरूप है।

सद्भाव के काल में अभाव को देखने की आँख खोल लो, अभाव के काल में सद्भाव की आँख खोल लो, तो ज्ञानी! दोनों आँखों के आँसू समाप्त हो जायेंगे।

हे श्रेणिक! कभी-कभी देखकर के तेरे प्रति भी ऐसा लगता है कि तू कितना पुण्यशाली था। जब परोक्ष में एक सामान्य मुनि/आचार्य के उपदेश सुनकर इतना आनन्द आता है, तो साक्षात् तीर्थंकर की वाणी सुनता था, क्या आनन्द की अनुभूति लेता होगा? ये ध्रुव सत्य है कि आगमग्रन्थों के वाचन में जो आनन्द है, वह जगत् के भाषणों में नहीं है।

भाषण में कषायिक भाव आ सकता है, पर जब जिनवाणी को विराजमान करके वहाँ वाचना की जाती है तो आनन्द आता है। ज्ञानियो! तत्त्व-उपदेश सूत्रप्रधान होता है। वर्तमान के योगियों की वाणी में वही तत्त्वोपदेश होना चाहिये। भैया! जो कुन्दकुन्द स्वामी ने प्राकृत भाषा में लिखा, भगवान् भूतबलि स्वामी ने सूत्रों में लिखा, वीरसेन स्वामी ने टीका रूप सूत्र संस्कृत मिश्रण करके लिखा। अपन को लगता है कि बहुत कठिन है लेकिन ध्रुवसत्य है कि किंचित् भी कठिन नहीं थी। उस समय तो उनकी भाषा सहज थी। आज जैसे अपन को हिन्दी लग रही है, उस काल में पूरे देश की भाषा प्राकृत भाषा थी। जनसामान्य की भाषा।

तो हमारे आचार्यों ने ऐसा लिखा। आज उनकी टीका और आगमसूत्रों को पढ़ते हैं तो लगता है कि महावीर की वाणी अद्भुत है? जिस श्रद्धा से आज हम वीरसेन स्वामी को पढ़ते हैं। कुन्दकुन्द, पुष्पदन्त, भूतबलि स्वामी को पढ़ते हैं, क्या रत्नत्रय धर्म आज नहीं है? क्या जिनलिंग आज नहीं है? आज भी रत्नत्रयधर्म है, जिनलिंग है। जब निर्ग्रन्थ तपोधन कुन्दकुन्द

की वाणी को हम जिनवाणी कहकरके, अर्हन्त की देशना कहकरके, ग्रन्थ को विराजमान करके, अहोभाग्य मानते हैं। भविष्य की पीढ़ी आपके ग्रन्थ रखकरके अहोभाग्य माने, अतः मुनियों को भाषाविज्ञ होना चाहिये।

अन्यथा आगे आने वाली पीढ़ी कहेगी कि भगवान् कुन्दकुन्द स्वामी के बाद फिर कोई ग्रन्थकर्त्ता नहीं हुये। क्यों? जब आपकी भाषा आगमविहीन होगी, विश्वास रखना, कितने ही ग्रन्थ प्रकाशित हों, जिन ग्रंथों में आगम होगा, वो ही जीवित बचेंगे और जिनमें आगम नहीं होगा, वो अलमारियों में बन्द करके रख दिये जायेंगे।

मध्यकाल में ऐसे जीव हुये हैं, जिन्होंने आगमग्रन्थों में अपनी बातें भरीं, तो वे ग्रन्थ सब अन्दर चले गये। बाहर वे ही ग्रन्थ आ पाये हैं जिनमें स्याद्वाद वाणी गूँज रही थी, अर्हन्त की देशना गूँज रही थी। प्रचार उन्हीं का होगा, आचरण उन्हीं का होगा, जो सत्यार्थ होगा। जो सत्यार्थ नहीं होगा, उसका कभी कोई आचरण करता नहीं। क्या बात है कि रत्नकरण्ड श्रावकाचार और पुरुषार्थ सिद्धि उपाय को क्यों इतने लोग महत्व देते हैं?

अगर किसी जीव को लेख लिखना हो, तो उससे कहना भैया सुन जिनवाणी लिखते बनता हो तो कलम हाथ में लेना और मनमानी लिखते बनता हो तो जिनशासन, जैन समाज को नष्ट करने का विचार मत करना, क्योंकि जिन लोगों ने अस्त्र के माध्यम से लोगों का घात किया है, उनसे बहुत घात नहीं हुआ। जैनियों ने कितने उपसर्ग सहे? ये इतिहास से पूछना।

जिन लोगों ने अस्त्र तो नहीं लिया, परन्तु शास्त्र में अनागम भर दिया है, उन लोगों ने हमारे पूरे धर्म का नाश किया है। ध्यान रखना, चाहे वर्तमान के लेखक हों, चाहे पूर्व के लेखक हों, मूल आगम धारा से मिलान खाता है, वही आगम 'आगम' है, शेष अनागम है। यहाँ अनागम की वन्दना नहीं, यहाँ आगम की वन्दना है। भैया! कषायिक भाव जिनवाणी नहीं है, जिनवाणी में कषायिक भाव नहीं है।

उपदेश सुनते-सुनते गद्गद् भाव आना चाहिये। उपदेश सुनते हुए भी एक-दूसरे के प्रति कषायिक भाव आये, तो ज्ञानी! उपदेश ही नहीं है। इसलिये क्या कह रहे हैं? हे योगी! रत्नत्रय धर्म की प्राप्ति के लिये गण में प्रवेश किया था। रत्नत्रय धर्म अब प्राप्त हो चुका है, अब गण में मत जाओ अब "सुगण" में जाओ। रत्नत्रय धर्म ही तेरा गण है। "सुगण" क्या है महाराज? "रयणत्तमेव गणं।"

हे ज्ञानी! अनन्त को जाना, अनन्तों को पहचाना, पर जिसने अनन्तों को जाना-पहचाना, उस अनन्त को समझने वाले को नहीं समझ पाये, तो तुमने क्या समझा? जो जान रहा था,

समझ रहा था, वो कौन था? जिसने आपको दुनियाँ की पहचान कराई हो, दुनियाँ दिखाई हो, वह देखने वाला कौन है?

यदि भैया! उसे ही देख लिया हो, तो विश्वास रखना, किसी को देखने की कोई आवश्यकता नहीं है। जहाँ दो होते हैं, वहाँ आनन्द नहीं है। पुराने लोगों से, विद्वानों से पूछना जब आप एक थे तब की अनुभूति क्या थी? अब जिस दिन से दो हुये हो, उसकी अनुभूति क्या है? भैया! बोलो। नहीं बताओगे क्या?

ये भैया कह रहा है महाराजश्री! जब एक था, तब झुर्रियाँ नहीं आयीं थीं गालों पर, परन्तु जिस दिन से दो हुये हैं, मन में झुर्रियाँ आई तो तन में झुर्रियाँ आ गई। जब-जब दो देखेगा तो झुर्रियाँ ही आयेंगी।

एयत्तणिच्छयगदो समओ सव्वत्थ सुन्दरो लोए।
बंध कहा एयत्ते तेण विसंवादिणी होदि।।3।। (स. सा.)

लोक में सबसे सुन्दर कोई है तो एकत्व-विभक्त्व ध्रुव स्वभाव है। एकत्व में दूसरे के साथ बंध की कथा विसंवाद करने वाली है।

जो बंध की कथा है, वह द्वैत कथा है। वह विसम्वाद का ही कारण है। भैया, अकेले कमरे में कब-कब तूने लड़ाई की है? अद्वैत में आवाज नहीं होती है।

ज्ञानी! आवाज कब आयेगी? कैसे आयेगी? जब दो रागी, दो अहंकारी टकराते हैं, तो कषाय की आवाजें आती हैं। जब दोनों अलग-अलग हो जाते हैं, तो अद्वैत अखण्ड आत्मस्वभाव की अनुभूति आती है।

जिन-जिन को शान्त जीवन जीना है, ज्ञानी! दो से भिन्न हो जाओ। जिनको शान्त जीवन, आनन्दमय जीवन जीना है, अद्वैत में चले जाओ। भैया! अभी तो सुना हुआ आनन्द है। घनानन्द लूटना है, तो दो से भिन्न हो जाओ। विवेक कर लो, विवेक। अद्वैत ही आनन्द है। मेरा काम तो बताना है, क्या करना है, सो आप जानो। जो-जो द्वैत को प्राप्त नहीं हुये हैं, वे ध्यान से सुनें। भैया! तभी तक घूम पायेगा, जब-तक अद्वैत है। पूछ लो इन दादाओं से, द्वैत होते ही क्या हुआ है? ज्ञानी! देवी आते ही बँधकर बैठ गए।

भैया! तू ससुराल गया और तेरी सासुमाँ ने घड़ी दी। इसकी सासुमाँ ने जैसे ही घड़ी दी, इसने हाथ में पहन ली और देखने लगा अच्छी लग रही है। ज्ञानी! बंध अच्छा हो रहा है न? एक समय पूर्व घड़ी के राग के, बन्ध के अभाव से मुक्त था और एक समय पश्चात घड़ी के राग के बँध में बँध गया और मुस्कराया कि अहो, सासुमाँ ने घड़ी दी।

सुन, तू मुस्करा किसमें रहा है? घड़ी को देखकरके और जिनवाणी माँ कह रही है बेटे सासुमाँ ने तुझे पटक दिया। मेरे से मिल ले, तू बन्ध चुका है। जो अभी अबन्ध धारा में बह रहा था, वो बँध-धारा में प्रवेश कर चुका है। क्षण बीत गया, तो अनन्तानुबंधी में चला गया। राग से नरक में भी जा सकता है।

"बह्वारम्भपरिग्रहत्वं नारकस्याऽयुषाः"

भैया! तू बैठा-बैठा मुस्करा रहा है, कि मेरे पास तो सम्पत्ति बढ़ गयी। भैया! अपने घर की दाल-बाटियाँ खायेगा डटकर, तो पेट फूलेगा कि नहीं? और फिर ससुराल की बिना पैसे की खाये तो, फिर उसका क्या कहना।

जो ससुराल में जाके दहेज माँगते हैं, उनके तो पक्के में पेट फूलते ही हैं। जो ससुराल में जाके रूठे और माँगे, उस अभागे ने तो पूरी ही धुला दी। अब भैया! रूठा-राठी नहीं करना जैसे ही घड़ी आई, बिदा हुई। ट्रेन में चढ़ रहा था तू और अचानक झटके में, वो घड़ी की चैन टूट गई। अब करोड़पति अरबपति का बेटा ससुराल गया था। तो चैन भी सोने की थी। जब तक वो देखने को तैयार हुआ तब तक नीचे गिर गई। अब भैया देखना परिणामों को, क्या कह रहे हैं? ऊपर की सीट पर देवी को पहले बिठाल चुका था। जैसे-ही ऊपर सीट पर पहुँचता है, बेटे की माँ पूछती है, चेहरा उदास क्यों है? वह कहता है, वो तो हो गया सब। बोली, क्या हुआ? तो बोला पच्चीस हजार का घाटा लग गया।

ज्ञानी! सद्भाव को तू सद्भाव में देख रहा था, इसलिये तुझे घाटा लग गया। सद्भाव में अभाव देखता रहता, जब ससुराल नहीं गया था, तब तेरी कलाई में घड़ी थी क्या? अब बताओ घड़ी दी कि घड़ी दी। सुख की घाड़ी दी, कि दुःख की घड़ी दी? मुमुक्षुबोलिये घड़ी गई कि घड़ी बदल गई? एक क्षण पूर्व सुखानुभूति ले रहा था, दूसरे ही क्षण दुखानुभूति में चला गया। परवस्तु को जो-जो अपना मानेगा उसके साथ ऐसा ही होगा। जो अद्वैत को स्वीकार कर लेगा, उसकी न घड़ी गई, न घड़ी आई। "जो है, सो है।" जितने रो रहे हैं, बस इसीलिये रो रहे हैं।

ज्ञानी! अभाव में भी अभाव, सद्भाव में भी अभाव को देखो। आज सूत्र याद करलो और फिर जाओ। कहाँ जाओगे? अपने घर। भैया! कहीं मत जाना। सद्भाव में भी अभाव। जैसे ही जन्म हुआ, पर्याय का ही सद्भाव है, उसमें भी अभाव देखा। यह पर्याय भी नष्ट होगी, उस दिन को भी देखो। ज्ञानी! बेटे ने जन्म आज लिया। जब नहीं था, सद्भाव में अभाव को देखो। कहीं अच्छा बेटा नहीं निकला और महान् (अच्छा) निकल गया तब भी ध्यान

रखोगे। था नहीं, आया है। आया है, रहेगा नहीं। क्या करोगे भैया? अच्छा था, धर्मात्मा था, मुनिभक्त था, पर यमराज को कौन कह सकता है? सद्भाव दिखाया था, अभाव करके चला गया। पर अभाव ही था, अभाव ही हुआ है। सद्भाव बीच में दिखा था, पर अभाव में सद्भाव देखा, सद्भाव में अभाव देखा।

सम्यग्दृष्टि जीव क्यों मुस्कराता है? हँसता नहीं है। देखो, आँख-मिचौली जानते हो? भैया! कभी खेली? कितना आनन्द आता है। आँख बंदकर पट्टी बाँध दी। यही घड़ी उसकी थी, जिसको छुपा दिया। अब खोजो चलो। अब जिसकी आँख पर पट्टी थी, पट्टी उतार देने पर भी छुपाई आपने है। खोजेगा कौन?

जिसकी आँख पर पट्टी थी, उतार देने के बाद भी खोजेगा, पर हँसेगा कौन? जिसने जाना नहीं है। वो खोजता है और रोता है कि कहाँ गई? और जिसने जान लिया है कि यहाँ रखी थी वहाँ रख गई, वो रोयेगा नहीं, मुस्करायेगा। आपको खोजते देखकर और मुस्करायेगा। क्यों? अज्ञानी खोजता है, अज्ञानी रोता है। ज्ञानी न खोजता है, न रोता है क्योंकि उसे मालूम होता है कि जहाँ है, वहीं है। जो है, वही है।

तू क्यों रो रहा है? क्यों भटक रहा है? क्योंकि तुझे मालूम नहीं है और जिसे मालूम चल जायेगा कि इधर की पर्याय उधर नष्ट हो गयी, यहाँ का जीव वहाँ चला गया है, वो इसमें रोने का क्या विषय है? रोओगे आज से, हँसोगे आज से? रोने वाला अज्ञानी और हँसने वाला महाअज्ञानी। जो जितने ज्यादा हँसते हैं, वो उतने ही ज्यादा रोते हैं।

अब बेचारे को पगड़ी बंध गई। अब उसे याद करना चाहिये कि उतरने वाली है। भैया! निष्ठापन हो गया। ज्ञानी! जो तुझे जन्म दे गये थे, उनका निष्ठापन हो गया। अब ध्यान रख कि निष्ठापन का समय आ गया। जब निष्ठापन की बेला होती है, पूरी भक्ति के साथ मंगलाचरण, पूजा आदि हुई, फिर शांतिपाठ के साथ निष्ठापन हुआ कि नहीं?

दादाजी! ध्यान से सुनो। जिस दिन ध्वजारोहण हुआ था, उस समय के गीत अलग चल रहे थे। आज निष्ठापन हुआ, तो शांतिपाठ चल रहा था। ज्ञानी! निष्ठापन की बेला आ गई, शांति पाठ प्रारम्भ कर दो, घर में शान्ति बनाओ। शान्ति-विधान तो लोग करते रहेंगे, पर शान्तिपाठ तो तुझे करना चाहिये और जीवन का शान्ति पाठ वही है कि मन्दकषाय और भद्र परिणाम। कैसी अपने यहाँ की परम्परा है कि पुष्प दोनों हाथों में लेकर विसर्जन करते हैं।

हे प्रभू! कितनी ही बिखेर-बिखेर कर पूजा की हो, पर शान्तिपाठ का जब समय आता है, तो दोनों हाथ एक साथ। हे मुमुक्षुओ! जीवन में तुम कितने ही राग-द्वेष में बिखरके रहो, लेकिन जब शान्तिपाठ की बेला आये, तो दोनो हाथ जोड़कर सबसे क्षमा माँग लो। बेटा! निष्ठापन के समय कोई तालियाँ नहीं बजाता, पूजन के समय खूब तालियाँ बजती हैं। ज्ञानी दादा! तालियाँ बजाने के दिन गये। शान्तिपाठ की बेला है, निष्ठापन की बेला है। बस, शान्ति पाठ करो और जो लोग अभी न समझ पायें, तो मैं विश्वास दिलाता हूँ कि तीर्थंकर महावीर स्वामी आपको समझाने अब नहीं आयेंगे।

ज्ञानी! अब आप कह ही पाओगे कि "इतई रहियो महाराज", पर भैया! राख नहीं पायेगा। मैं रहना भी चाहूँगा, तोभी राख नहीं पायेगा। ज्ञानी! कोटि-कोटि महापुरुष हुये, तीर्थंकर जैसे जीवों को लोग यही कहते कि "इतही रहियो भगवान्", लेकिन जब भगवान् नहीं रह पाये, तो विशुद्धसागर क्या रह पायेंगे?

जिस देश में, जिस काल में, जिस विधान से जो कार्य होना निश्चित है, ज्ञानी! "इन्दोवा, जिणिन्दोवा" उसको इन्द्र-जिनेन्द्र टाल नहीं सकते हैं। "अलङ्घ्यशक्तिर्भवितव्यतेयं" भवितव्यता की शक्ति अलंघनीय है।

भैया! मानो मेरी बात, निष्ठापन की बेला अच्छे से कर दो। "शब्दानाम् अनेकार्थाः" आप लगा लीजिये जिन-जिन को जहाँ-जहाँ लगाना हो अपने हिसाब से। इसलिये अपन को शान्ति धारा करना है और शान्ति धारण करना है। क्या है भैया? पंचमकाल है। केवली तो हैं नहीं अपने पास, अवधि या मनःपर्याय ज्ञानी भी नहीं है, इसलिये मैं तो अपनी निष्ठापन की बेला प्रतिक्षण मानता हूँ। वे बता देते तो तनिक धैर्य रखते। अब अपने पास ज्ञान नहीं है, इसलिये अपन चौबीस घण्टे सम्हलके रहते हैं।

मंगलाचरण स्थापना का भी होता है, मंगलाचरण निष्ठापना का भी है। भैया! अपने यहाँ एक परम्परा है। विदाई हो तो समझ लो कि अब चलो यहाँ से। एक बार एक भैया गये किसी के घर भोजन करने, भोजन के थोड़ी ही देर में जोर से कही उसने कि चावल दो, चावल। अब तनिक इज्जत वाले हो, तो जल्दी भोजन करके उठ जाओ। चावल यानि अंतिम। ठीक है अब अन्तिम समय है। ऐसे ही साधुओं की बेला जानते हैं आप। पिच्छि परिवर्तन हुआ, अब समझ लो।

भो ज्ञानियो! प्रतिष्ठापन में जो निष्ठापन को देखता है और निष्ठापन में प्रतिष्ठापन को देखता है, उसकी आँख में कभी आँसू नहीं आता है।

मिच्छंधयाररहिदं हिय-मज्झं सम्म-रयण-दीव-कलावं।
जो पज्जलदि स दीसइ, सम्मं लोयत्तयं जिणुद्दिट्ठं॥160॥

ज्ञानियो! भगवान् कुन्दकुन्द स्वामी कह रहे हैं "जो हिय मज्झं"। भैया! दुनियाँ की फूटे तो फूट जाने दो, पर हृदय की कहीं न फूटे, विवेक की आँख न फूटे। ये "हिय" शब्द प्राकृत भाषा का है। "मिच्छं धया-रहिदं हिय-मज्झं" जो अपने हृदय में मिथ्यात्व रूपी अंधकार से रहित हो चुके हैं। "सम्म-रयण-दीव-कलावं"। मिथ्यात्व अंधकार है और सम्यक्त्व दीप है। सम्यक् दीप जिसका जल चुका है। कैसा दीप? "सम्म रयण दीव पज्जलदि" सम्यक् रत्न दीप को प्रज्जवलित कर लो, पजार लो। भाषा कैसे आगे बढ़ती जाती है? भैया! 'पजार लो' जानते हो?

हमारे इधर दीपक जलाया नहीं जाता, पजारा जाता है। जो दीप प्रज्जवलित होता है "सो लोयत्तयं" जिसके अंतस् से मिथ्यात्व अंधकार निकल चुका है, जिसके हृदय में सम्यक् का दीप जल चुका है, वह जीव "तियलोत्तयं सम्यं" तीनलोक में भलीभांति देखता है। "जिणुद्दिट्ठं" ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है।

बाहर पिच्छि परिवर्तन हो और इधर ज्ञानी के हृदय में परिवर्तन हो, यही मोक्षमार्ग का सम्यक् उपदेश है।

"**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं**", आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

"आत्मा के शुद्ध स्वरूप का अभ्यास"

पवयणसारब्भासं, परमप्पज्झाणकारणं जाण।
कम्मक्खवणणिमित्तं, कम्मक्खवणे हि मोक्खसुहं॥ 161॥

अन्वयार्थ—(पवयणसारब्भासं) प्रवचनसार, आत्मा के शुद्धस्वरूप का अभ्यास **(परमप्पज्झाणकारणं)** परमात्मा के ध्यान का कारण है **(जाण)** ऐसा जानो, परमात्मा का ध्यान **(कम्मक्खवणेणिमित्तं)** कर्मक्षय का कारण है **(कम्मक्खवणे)** कर्मक्षय होने पर **(हि)** निश्चय से **(मोक्खसुहं)** मोक्ष सुख मिलता है।

अर्थ- आत्मा के शुद्धस्वरूप का अभ्यास परमात्मा के ध्यान का कारण है, ऐसा जानो परमात्मा का ध्यान कर्म-क्षय का कारण है। कर्मक्षय होने पर निश्चय ही मोक्षसुख मिलता है।

॥ देशना ॥

अन्तिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेश की पीयूष देशना, जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन नमोऽस्तु शासन जयवन्त हो। जयवन्त हो वीतराग श्रमणसंस्कृति।

"आचार्यप्रवर भगवन्त कुन्दकुन्द स्वामी" ग्रन्थराज "रयणसार" जी में श्रावक और श्रमण इन उभय धर्मों की व्याख्या कर समझा रहे हैं। इस लोक में महा अंधकार कोई है, तो उसका नाम मिथ्यात्व है। उज्जवल जो रत्नदीप है, उसका नाम सम्यक्त्व है। विषमतायें जगत् में कितनी ही हों, पर भैया! अपनी आँख अकिंचन में है। शरीर के सुख के राग में पंचपरमेष्ठी का अनुराग मत छोड़ देना।

जो-जो शरीर के सुखानुभूति के राग हैं, वे निश्चितकषाय भाव हैं। जो कषायिक भाव हैं, वो इन्द्रियसुखानुभूति के राग हैं। बिना कषाय की सत्ता के इन्द्रियसुख की अनुभूति का भाव नहीं होता। बिना काषायिक भाव के इन्द्रियसुख प्राप्ति पर लक्ष्य ही नहीं जाता है। अकषायिक जीव के इन्द्रिय सुख पर लक्ष्य ही नहीं जाता है। चाहे क्रोध हो, मान हो, माया हो, लोभ हो ये कारण हैं, इन्द्रियसुख कार्य है।

श्रमणसंस्कृति कहती है। "कार्यलिंग हि कारणम्"। चार माह से सुने इन सूत्रों को भूल मत जाना। ये तब-तक है, जब-तक संसार की पर्याय धारण करना पड़े। तब-तक इन सूत्रों को स्मरण में रखना। कोई जीव आपको प्रसन्नचित्त दिखे, तब भी प्रभावित नहीं होना। यही

साधना है। बाकी सब साध्य। रोते आदमी को देखकर प्रभावित मत होना और मुस्कराते आदमी को देखकर भी प्रभावित मत होना। क्यों?"कार्य लिंग ही कारणम्" ये कार्य दिख रहा है। रो रहा है कार्य है। मुस्करा रहा है, ये भी कार्य है। तत्त्वज्ञानी कार्य को ही नहीं देखता, कारण को भी देखता है।

कोई रो रहा है, उसके रोने को देखकर प्रभावित हो गये और प्रभावित होकर उसके पक्ष में चले गये, तो भैया! अनर्थ कर सकते हो। ये जिनागम है, इसमें गूढ़ रहस्य हैं। जिनशासन/जिनागम को जिसने समझ लिया, शायद ही वकालत के लिये उसे न्यायशास्त्र का ग्रन्थ पढ़ना पड़े। धारा लगाने के लिये तो आप पढ़ेंगे, लेकिन विषय की उत्पत्ति जो है, जिनागम में बेजोड़ है।

अश्रुपात देखकर न्यायालय में न्याय दिया जाता है, कि हेतु देखकर न्याय दिया जाता है? अश्रुपात देखकरके न्याय दे दिया तो अनर्थ हो जायेगा। क्योंकि गल्ती करके जो आता है, वह भयभीत हो जाता है, वह रोने लगता है। जो अश्रुपात हो रहे हैं, वो अशुभ से अशुभ करके आया है। भैया! द्वितीय क्षण में उसे भी समझ में आता है कि हाय! मैंने ये क्या कर दिया?

अश्रु देखकर कभी निर्णय नहीं करना जीवन में, उसके पक्ष में बोलना प्रारम्भ मत कर देना। क्योंकि अश्रु एक ऐसी वस्तु है, मिर्च के जाने पर भी अश्रु आते हैं और पानी के जाने पर भी। कोई किसी को देखता रहे एकटक, तब भी अश्रु आते हैं। पर ये खोजना चाहिये कि अश्रु किस बात के हैं? भैया! गुस्सा के बाद भी आँसू आते हैं और हँसते-हँसते भी आँसू आते हैं।

जब तेरे घर में आहार हो रहे थे। तो अश्रु आ रहे थे । ये किस बात के आँसू थे? कोई यूँ पूछे कि भैया, कौन सा कष्ट है? कोई गरीबी आ गई क्या? अरे ज्ञानी! आँसू देखकर निर्णय मत कर, चेहरा भी देखो। कष्ट के आँसू देखकर निर्णय मत कर, चेहरा भी देखो कष्ट के आँसू का चेहरा अलग होता है और आनन्द के आँसू का चेहरा अलग होता है। आने वाले काल में पता नहीं कितने रोयेंगे और कितने हँसेंगे और कितने आनन्दित होंगे?

रायपुर में पंचकल्याणक प्रतिष्ठा में ऋषभदेव युवराज के राज्यपद के बाद जितने लोग बैठे थे, मुस्करा रहे थे। जैसे ही दीक्षाभिषेक हुआ, वस्त्राभूषण उतारना प्रारम्भ हुआ। वहाँ एक श्वेताम्बर दादाजी बैठे हुये थे। उपदेश में आना, प्रतिदिन चर्या को देखना उनका नित्यकार्य

था। देखो हर जीव के अन्दर दिगम्बरत्व के प्रति श्रद्धान तो है। लज्जा और कषायवश कह नहीं पायें वह बात अलग है। लज्जा और कषाय ये दो दुश्मन हैं जीव के।

कुछ लोग लज्जा के वश धर्म नहीं कर पाते और कुछ लोग कषाय के वश धर्म नहीं कर पाते हैं। "कोऊ का कैहै" तो क्या हुआ? वो दादाजी पीछे से घूमघाम कर मंच पर आये और बगल में खड़े होकर बोले महाराज साहब! आपको किंचित् भी दया नहीं आई? मैंने कहा, किस बात की? बोले, महाराज जी! आपने भगवान् को नंगा कर दिया। हमने कहा, ज्ञानी! तुझे लज्जा नहीं आई, दु:ख नहीं हुआ, तुझे दया नहीं आई? तूने मेरे भगवान् की वीतरागता पर सरागता चढ़ा दी।

बोले—महाराज! तनिक तो सोचते। मैंने कहा—भैया सुन। यही दया है, परवस्तु को परवस्तु स्वीकार करके फेंक देना और निज वस्तु में लीन हो जाना, इससे बड़ी दया क्या होती है ? भगवान् कुन्दकुन्ददेव ''समयसार'' जी में निन्दा अधिकार में बड़ा सहज कथन कर रहे हैं। हे मुनीश्वर! परिग्रह छोड़ो, परिग्रह धारण करो। हो सकता है, कि ये व्याख्या आपने न सुनी हो तो आपको लगता होगा कि क्या बोल रहे हैं ? महाराज! ज्ञानी, अधूरी बातें सुनकर चले मत जाना, नहीं-तो असंतुलित हो जाते हैं अधूरी सुनकर। 'परिग्रह छोड़ो, परिग्रह धारण करो।' जो परिग्रह नहीं छोड़ता वह मोक्षमार्गी नहीं होता है और जो परिग्रह धारण नहीं करता, वह भी मोक्षमार्गी नहीं होता है भगवन्त अमृतचन्द्र स्वामी ने इसकी बड़ी सुन्दर व्याख्या की है। अभी तक तो परिग्रह छोड़ने की बात होती थी, ये दिगम्बर जैन परम्परा में परिग्रह धारण की बात क्यों आ रही है ?

भैया! जब तक सत्य को नहीं समझेगा, नहीं जानेगा, तब-तक असत्य धर्म की ही रक्षा दिखाई देगी। रोते को देखकर निर्णय कर देगा, तो अनर्थ हो जायेगा। धर्म-जैसा दिखे लोक में और धर्म न हो, उसे धर्म की प्रभावना की संज्ञा देकरके भगवान् महावीर के धर्म का नाश कर देना, ये कोई धर्म नहीं है।

तीर्थंकर महावीर स्वामी ने ही नहीं, प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ से लेकर अन्तिम तीर्थंकरों ने एवं अनन्तानन्त चौबीसियों ने जिनशासन में माँस-पिण्डादि के देने को दान-धर्म संज्ञा से संग्रहीत नहीं किया है।

यदि इसको ग्रंथों में निबन्धन कर दिया, इसे धर्म कहना प्रारम्भ कर दिया, तो भैया! महावीर के शुद्ध धर्म का अभाव हो जायेगा। इसलिए लोक में और भावुकता में आकरके हम वीतराग धर्म का लोप नहीं करा पायेंगे। आप व्यवहार में आकरके जो कर रहे हो, सो

करो, लेकिन इसको ग्रंथों में लिपिबद्ध करके उसको 'धर्म' संज्ञा देना और जिनशासन की प्रभावना कहना, ये प्रभावना नहीं, अप्रभावना है।

आँख के आँसू को देखकर न्याय मत दे देना। जो सम्यक्-दृष्टि है, प्रत्येक जीव मुमुक्षु है। मुमुक्षु न हो तो सम्यक्-दृष्टि कैसा? और सम्यक् दृष्टि न हो तो मुमुक्षु कैसा? पिच्छि देने, लेने में इतना आनन्द है, तो जीवनभर पिच्छि लेने में कितना आनन्द होगा ? अनुमोदना में ही इतना आनन्द आता है।

श्रीमती का जीव, वज्रजंघ का जीव, आदिनाथ स्वामी, श्रेयांस। श्रीमती वज्रजंघ की पर्याय में निर्ग्रन्थों को दान दे रहे थे और एक बन्दर देख रहा था, सिंह, सूअर और नेवला भी देख रहे थे और सोच रहे थे, यदि मैं भी श्रावक होता, तो निर्ग्रन्थों के हाथ पर एक ग्रास रख देता। इन भविष्य के भगवन्तों को एक ग्रास दे देता, तो मेरा भी कल्याण हो जाता। ज्ञानियो! एक भव्यजीव अनुमोदना मात्र से तीर्थंकर होता है। वज्रजंघ का जीव, तो वही शेर भरत चक्रवर्ती होता है।

ये भी ध्रुवसत्य है, कि अपन लोगों ने कहीं-न-कहीं किसी तीर्थंकर के पादमूल में जिनवाणी की अनुमोदना अवश्य की होगी, इसलिये जिनवाणी सुनने को मिली। भले ही कोई ऐसा कार्य किया होगा जो कि पंचमकाल में आना पड़ गया। ऐसे खोटे काल में क्षण-क्षण में मृत्यु, कितना कष्ट, तनाव। शारीरिक कष्ट कम है, पर मानसिक तनाव बहुत ज्यादा है। समूह में जिनवाणी वे ही सुन पाते हैं, जो समूह में पुण्य का बन्ध कर पाते हैं।

अरे दादा! भूल गये क्या? बारिस में गिजाइयाँ नहीं देखीं क्या, समूह रूप में? हजारों गिजाइयाँ एकसाथ गाय के पैर के नीचे नष्ट हो गई। ये वो ही पापीजीव हैं, जो समूह में खोटे काम किये थे और कुछ लोगों ने तालियाँ बजाई थी। बेचारे एकसाथ मर गये।

भैया! 'कार्य लिंग ही कारणं'। कार्य दिख रहा है, तो कारण की खोज करो। शीघ्र किसी से प्रभावित मत होना। भैया! मटका खरीदने जाते हो आप बाजार में, वो भी ठोक-ठोक कर खरीदते हो। उसमें भरना क्या है? पानी। जब पानी भरनेवाली वस्तु को ठोक-ठोक कर लेता है, तो जिस हृदय में जिनवाणी भरी जा रही हो, उस हृदय को कितना पवित्र होना चाहिए?

जब वो जीव कहने लगा—महाराज! आपको दया नहीं आई? मैंने कहा—ज्ञानी! दया तूने जानी नहीं। काषायिक भाव को जो पुष्ट करे, वो दया 'दया' नहीं। जो कषायभाव से रिक्त करे, उसका नाम 'दया' है। हिंसक वे ही हैं, जो बुद्धिपूर्वक तन पर वस्त्र मण्डित कर रहे हैं और तन पर वस्त्र वे ही मण्डित करते हैं, जिनके मन शील से मण्डित नहीं होते हैं।

जिनशासन की पताका को फहराने वाला कोई तीर्थ है, उसका नाम है 'गोम्मटेश बाहुबली स्वामी।' हे गोम्मटेश स्वामी! आपके चरणों का अद्‌भुत प्रसाद है बिना बुलाये सारी श्रमणसमाज इकट्‌ठी हो जाती है।

गोम्मटेश के पादमूल में। अनेकानेक विदेशी लोग वंदनार्थ/दर्शनार्थ आये हुये थे। वहाँ दीक्षा के समय दीक्षार्थियों ने जैसे-ही कपड़े उतारना प्रारम्भ किये, तो अंग्रेजों की आँखों से आँसू टपकने लगे। हमने कहा—देखो, ये भी भावों की भाषा समझते हैं।

ये देखो—रागी का राग रो रहा है और वीतरागी भीतर-ही-भीतर आनन्द के मोदक खा रहा है। पर 'रो ही पाओगे, रोक किसी को नहीं पाओगे' संयम ले रहा है तो ले लेने दो। जो वैरागी है, उसे कोई रोक नहीं पायेगा और रागियो! आपको भी कोई नहीं रोक पायेगा। पिच्छि-कमण्डलु न ले सके, पर ज्ञानी! यमराज से बचकर रुक पाओगे क्या?

बस—जितना समय यहाँ निकाल रहे हो, 'चत्तारि सरणं पव्वज्जामि।' भैया! इस समय को बर्बाद मत करना, उस समय को जिनवाणी में लगाना, स्वाध्याय करना। पंचमकाल में जगत् की बातें सुनने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि जगत् जो है व्यवहार को नहीं देख रहा। व्यवहार को देखे, तब तो खुशी है, आनन्द आये, लेकिन ये लोकाचार को व्यवहार कह रहा है, ये बड़े दुःख की बात है।

व्यवहारधर्म दुःख का कारण नहीं है, व्यवहारधर्म तो परमार्थ का हेतु है, परमार्थ का कारण है, निश्चय का कारण है। लेकिन लोकाचार को धर्म कह देना, ये बहुत बड़ा पाप है। जैसे—भाई तू रोज पूजा करता है। एक दिन पूजा करने नहीं आया तो हमने कहा—भैया! क्या हो गया ? महाराज! व्यवहारधर्म का पालन कर रहा हूँ। मैंने कहा—क्यों ? महाराज! सूतक लग गया है। घर में भैया के बेटा हुआ।

व्यवहारधर्म का पालन कर रहा हूँ, मतलब क्या हुआ ? बोला—महाराज! बाहर जाना पड़ा था, थोड़ा कार्यक्रम था, इसलिये कार्य में लग गया। ये कारणवश मंदिर नहीं गया और लोकसेवा में लग गया। ये व्यवहारधर्म था, कि लोकाचार था। अन्तर डालो नहीं तो अनर्थ हो जायेगा। ये व्यवहारधर्म नहीं है, ये लोकव्यवहार है।

यदि ये व्यवहारधर्म हो गया तो 'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः।' 'समयसार जी' में गाथा न. 7 में कहा है कि दर्शन, ज्ञान, चारित्र की भेदवृत्ति का पालन करना, इसका नाम 'व्यवहार' है और अभेदवृत्ति का पालन करना, इसका नाम 'निश्चय' है। धर्म दो ही हैं। निश्चय धर्म और व्यवहार धर्म। ज्ञानियो लोकव्यवहार धर्म नहीं है। ये लोकाचार है। लोकाचार

को मोक्षमार्ग का हेतु मत कह देना। समाजव्यवस्था तो आपको करना ही पड़ती है, मुझे सिखाने की आवश्यकता नहीं है। रात्रि हो रही थी झुरमुट और भैया शाम को बाहर से आया छः बजे और विशुद्धसागर किंचित् भी समझदार होंगे तो उससे ये नहीं कहेंगे—'बेटा! जाओ, भोजन कर आओ' और न ही ये पूछेगे कि तेरा भोजन हुआ कि नहीं हुआ? बोले—महाराज कैसे हैं? वात्सल्य नहीं है आपके पास।' यही वात्सल्य है। उसे पापों से बचा रहे हैं, रात्रि में भोजन नहीं करा रहे हैं।

महाराज—उसका त्याग नहीं है, तो वो तो अव्रती ही है, मुझे मालूम है कि जब भूख लगेगी तो वो कहीं-न-कहीं खोजके, खाके आ ही जायेगा। वह तो अनर्थ करेगा-ही-करेगा शाम को छः बजे खाकरके। परन्तु आप महाव्रती होकरके, उसकी अनुमोदना करके, अपने व्रत में दोष क्यों लगा रहे हो?

संसार में जिसके शरीर में कष्ट होगा, वह दुनिया में भटकने जायेगा। यहाँ रहने वाले लोग बम्बई, इन्दौर, नागपुर पता नहीं कहाँ-कहाँ, शरीर में तनिक सी फुंसी हो जाये, कैंसर का फोड़ा हो जाये तो हजारों काम छोड़करके जाया करते हैं। जीवन के राग की जो महिमा है, उसको अलग से कहने की आवश्यकता नहीं है। ज्ञानी! रागीजीव दुनियाँ में भटक लेता है, उसको बताने की आवश्यकता नहीं है। राग में कैसे जीना पड़ता है ? ये साधुओं को नहीं सिखाना चाहिए। वीतराग भाव में कैसे आना है, ये साधुओं को जरूर सिखाना चाहिए। ये मोक्षमार्ग है, ये ध्रुवसत्य है। लोकधर्म को धर्म कहना छोड़ दो, इतना नियम तो ले लो। कितने लोग ले सकते हैं इस प्रतिज्ञा को ? बहुत बड़ा नियम है, ध्यान रखना। लोकधर्म को लोकधर्म और जिनधर्म को जिनधर्म मानिये। बस, ये समझो कि मोक्षमार्ग चर्या से प्रारम्भ नहीं होता, मोक्षमार्ग श्रद्धा से प्रारम्भ होता है।

चर्या मोक्षमार्गी को आगे बढ़ाती है। जिसकी श्रद्धा ही गड़बड़ है, उसकी चर्या कितनी पवित्र होगी ? जिस जीव की चर्या और लोकधर्म, आत्मधर्म पर भिन्नत्व नहीं है, उस जीव का मोक्षमार्ग बहुत दूर है। वह सम्यक्-दृष्टि ही नहीं है। ये विशुद्धसागर नहीं बोल रहे, ये अमितगति स्वामी बोल रहे हैं। ये दिगम्बर आम्नाय के ऐसे महान् योगी हुये हैं। जो राजा भोज की राजसभा में नौ रत्नों में गिने जाते थे। जो संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् थे। उन्होंने 'द्वात्रिंशतिका' ग्रन्थ लिखा, 'मरण-कण्डिका' ग्रन्थ लिखा। 'धर्म परीक्षा' ग्रन्थ के कर्ता। 'योगसागरप्राभृत' यानि 'समयसार' जो समयसार में व्याख्या है, वो ही ''योगसार-प्राभृत'' में व्याख्या है। उन्होंने बड़े सुन्दर शब्दों का प्रयोग किया है।

भैया! 'लोकाचार मोक्षमार्ग नहीं, लोकोत्तराचार मोक्षमार्ग है।' जो लोकाचार को धर्म कहते हैं वे भवाभिनन्दी हैं। जो लोकोत्तराचार को धर्म कहते हैं, वे आत्माभिनन्दी हैं। हे भवाभिनन्दी! इस पुद्गल पर पुद्गल को छिपाकर मानकषाय की पुष्टि में क्यों लग रहा है? इससे तेरा कल्याण होने वाला नहीं है।

भैया! सत्य बताना, यहाँ क्यों आये थे ? कर्म नष्ट करने का उद्देश्य लेकर। मुनि क्यों बनना है? शरीर कर्म है, कि नहीं? नोकर्म है। इसे नष्ट किये बिना मोक्ष हो जायेगा क्या? नहीं होगा। दादा जी! जो तेरे शत्रु हैं, उसे टीका लगायेगा क्या? शत्रु से टीका लगवायेगा क्या? आपको रस्सी से बाँधकर डाल दिया जाये, तो उस रस्सी को तिलक लगाकर अ र्घ्य चढ़ायेगा क्या? दादा! तिलक लगाओगे, अर्घ चढ़ाओगे, आरती उतारोगे? किसकी? रस्सी की।

जब तू रस्सी की आरती नहीं उतारना चाहता, तिलक नहीं लगाना चाहता, तो जो ये देह मुझे संसार में बाँधकर रखे हुये है, इस आयु कर्म को, मनुष्यगति कर्म का तू क्यों अभिनन्दन कर रहा है? जो हमें बांध कर रखे हो, उसका सम्मान कैसा? दिगम्बर जैनाम्नाय में ही नहीं, में नहीं, श्वेताम्बर आम्नाय में भी जितने सिद्धान्तग्रन्थ हैं करणानुयोग के, उन सभी में ये ही लिखा है कि आयुकर्म बाँधकर रखे हैं।

गति-कर्म तुझे रुला रहा है और उसे ही तू तिलक लगा रहा है। आप करलो शरीर का अभिनन्दन, लेकिन विश्वास रखो, आप मुझे नमोऽस्तु करते हो, तो पर्याय को देखकरके पर्यायी का ज्ञान होता है। इसलिए तुम शरीर की वन्दना कर रहे हो, लेकिन ये शरीर की वन्दना नहीं, रत्नत्रय धर्म की वन्दना है।

यदि शरीर की वन्दना होती तो, सभी की वन्दना करना चाहिए? कर मत देना ऐसा। जब यहाँ पर इन्द्रसभा चल रही थी, तब नमस्ते करते हो, नमोऽस्तु नहीं करते हो। जय जिनेन्द्र, जुहार साव। समझो, ये इनका अभिनन्दन नहीं हो रहा है जुहार साव में। जुग के आदि में अरह, अरु जो। अरु याने 'अरहन्त तीर्थंकर भगवन्त'। युग के आदि में हुये हैं जो भगवान् ऋषभदेव, ये उनकी वन्दना है। तुम्हारी वन्दना है क्या? नहीं है। जुहार साव।

जैनदर्शन अद्भुत है। बड़े-से-बड़े ज्ञानी तिलमिला जाते हैं, किस बात पर ? कि परिग्रह छोड़ो, परिग्रह धारण करो। परिग्रह धारण करना ही चाहिये और परिग्रह छोड़ना ही चाहिए। वे अज्ञानी जीव हैं जो निज वस्तु को नहीं, परवस्तु को अपना परिग्रह मानते हैं। परवस्तु मेरी

है ही नहीं, जिसे चारों ओर से ग्रहण किया जाये परि याने चारों ओर, उसका नाम 'परिग्रह' होता है।

ये घड़ी किसकी है ? ज्ञानी! तेरी आत्मा का धर्म है क्या? जो मेरी आत्मा में प्रवेश नहीं कर सकता, मेरी आत्मा में जा नहीं सकता है। मेरी आत्माभूत नहीं है, वो परवस्तु मेरा परिग्रह कैसे? जो परवस्तुभूत परिग्रह है, उसे छोड़ो।

मेरी आत्मा का (स्व यानि धन) जो धन है, वह ज्ञान-दर्शन है। उस निज ज्ञान में लीन हो जाओ, वही मेरा निज का परिग्रह है। उसे धारण करो, उसे छोड़ मत देना। निज गुण ही परिग्रह है। मेरा ज्ञान मेरी आत्मा से भिन्न कब होगा ? मेरा दर्शन मेरी आत्मा से भिन्न कब होगा ? न हुआ है, न होगा। ऐसे-ही निज ज्ञान-दर्शन की लीनता ही निज परिग्रह है।

जिसने आगम को नहीं समझा, वो यों कहेगा, कि स्वभाव को परिग्रह कैसे कहूँ ? ये तो पाप है। हे ज्ञानी! जो परवस्तु को ग्रहण करता, वह पापी का मन परिग्रह पाप है। मूर्च्छा परिग्रह है, ममत्व परिग्रह है। निर्ममत्व बुद्धि से युक्त जो गुण है, परिग्रह नहीं, निजभूत परिग्रह है।

भैया! अपन तो छिंगरी पकड़के कौचा पकड़ते हैं। कहने के लिये भी भाग्य चाहिये। विष को भी पिलाया जाता है। आपको मालूम हो या न हो, लेकिन मुझे बहुत अच्छे से मालूम है, भैया! विष को पिलाया जाता है और आदमी निरोग हो जाता है। लेकिन भैया तुम पिला मत देना किसी को।

अधिकांशतः उपचार करने में विष शंख, कुचला आदि-आदि द्रव्यों का प्रयोग हो जाता है। पर उनकी विधि है। भैया! विधिपूर्वक विष का भी प्रयोग किया जाये तो विष भी अमृत का काम करता है। जैसे जन्म-मरण करने वाली आत्मा यदि रत्नत्रय का प्रयोग करले, तो अमृतभूत हो जाती है। इसलिये परिग्रह भी धारण कर लेना। सच्चा मुमुक्षु वही होता है, जो परिग्रह धारण करता है।

इतना विस्तार करके व्याख्या न की जाती तो ये ज्ञानी यही कहते कि विशुद्धसागर महाराज पता नहीं मन से क्या-क्या बोल देते हैं ? बोले—परिग्रह धारण करो। श्रावक कहते, बहुत अच्छी बताई। महाराज! अभी तक तो मैं सोचता था कि मुनि बनूँ। लेकिन जब परिग्रह धारण करना ही पड़ता है, तो छोडूँ क्यों? लेकिन भो ज्ञानी! जिसे तू धारण किये है, उसे तो छोड़ना ही पड़ेगा और जिसे आज तक स्वीकारा नहीं है लेकिन वह तेरे में है, उसे स्वीकारना ही पड़ेगा। क्या बताऊँ ? बेचारे मृग हैं। बुरा नहीं मानना 'जो है सो है'।

भैया! सुगंध नाभि में है, कस्तूरी कहाँ होती है? कस्तूरी नाभि में है और खोज रहा जंगल में है। निज का भगवान् तेरे अन्दर है और खोज रहा है बाहरी तीर्थों में। क्या करूँ? नाभि में तो कस्तूरी है और कहाँ खोज रहा है? जंगलों में खोज रहा है। हे मृग! तू दृष्टि नीचे झुका दे, तो तुझे मालूम चल जायेगा कि कस्तूरी की सुगंध कहाँ से आ रही है?

हे मुमुक्षु ! बाह्य की आँख बन्द करके भीतर की आँख खोल ले, तो तुझे मालूम चल जायेगा कि तेरा चैतन्य भगवान् कहाँ विराजा है ? मात्र गर्दन को नीचा करके। स्वयं की नाभि को निहारने के लिये मुनि बना जाता है, और-कोई काम के लिये मुनि बना ही नहीं जाता। भैया! ध्रुवसत्य ये है।

डाकू से भी पूछना, डाका डालना अच्छी बात है क्या ? वो ये तो कहेगा कि मैं डालता हूँ, पर उसका सत्य हृदय होगा तो वो यही कहेगा कि नहीं, डाका डालना अच्छी बात नहीं है। तुझे डाका डालना है तो डाल लो, पर मैं यही कहूँगा कि अच्छी बात नहीं। ये भले ही गृहस्थ हैं, पर इस बात को स्वीकारते हैं कि मैं जो गृहस्थी में रहकर डाका डाल रहा हूँ, वह निजके साथ छल कर रहा हूँ।

इस बेचारे ने चार महिने ये घास नहीं काटी। पहले कितनी घास काटता था ? कितना पानी फैलाता था। अब बेचारा जाता है, कारखाने के पास उसकी हिम्मत नहीं पड़ रही है। एक दिन कह रहा था मेरे से, महाराज! घास उग आयी है। हिम्मत नहीं पड़ती ? मैंने कहा—क्यों, क्या हो गया ? बोला जब महावीर स्वामी अकउआ में हो सकते हैं, तो मेरे कारखाने के चारों ओर जो घास है, उसमें कितने भगवान् होंगे? अब मैं कैसे छीलूँ ? कैसे काटूँ ?

सम्यक्-दृष्टि जीव होगा, तो ऐसा ही चिन्तन करेगा और जिसकी दृष्टि मिथ्या हो चुकी है, वह कोटि-कोटि जीवों का घात करायेगा, तब भी कह रहा है, कि मैं धर्म कर रहा हूँ। जबकि हिंसा में धर्म होता नहीं।

पवयणसारब्भासं, परमप्पज्झाण-कारणं जाण।
कम्मक्खवण-णिमित्तं, कम्मक्खवणे हि मोक्खसुहं॥161॥

जैसे-जैसे 'रयणसार' पूर्णता की ओर है, वैसे-वैसे 'रयणसार' में बड़ी आनन्द की अनुभूति आ रही है। भैया! जो मेरा होता नहीं, वो जाता ही है। जो तेरा होता है, वो कहीं जाता ही नहीं। जो जाता है, वो मेरा होता नहीं। जो तेरा होता है, वो कहीं जाता ही नहीं। जो जाता है, वो मेरा होता नहीं है। ज्ञानी! किससे कह रहे हो? आज से रोना बन्द, हँसना

बन्द। 'जो है, सो है'। चाहे आये, चाहे जाये। जो मेरा है, वह निज चतुष्टय मेरा धर्म है, वो मेरे से अलग होता नहीं। जो मेरे से अलग होता है, वो मेरा धर्म होता नहीं। सब मुमुक्षु हो गये।

सत्य को किसी का मार्का लगा देना अच्छी बात नहीं है। सत्य तो सत्य ही है। विहार होगा, तो रोना क्या ? क्यों रोना ? तुम तो ये कहना, 'विशुद्धसागर'! जाओ, जाओ। आने वाला जाता ही है। रायपुर जिले में राजिम है, वहाँ शीतकालीन वाचना हुई। भैया! आप आश्चर्य करोगे। बड़े-बड़े दो हाल थे। एक हाल में दिगम्बर जैनसमाज, एक हाल में श्वेताम्बर बीच में अजैन बन्धु, वो लोग सब एक साथ बैठते थे, इसी ''रयणसार'' की वाचना चलती थी। अद्भुत अनुभूतियाँ चल रही थीं।

जैसे ही वाचना पूर्ण हुई, वहाँ सभी समाज इकट्ठी हो गई। दिगम्बर, श्वेताम्बर, स्थानकवासी, अनेक प्रकार के लोग। एक श्वेताम्बर माँ बहुत सुन्दर भजन गाती थी? वो आप सीख लो काम में आयेगा। माँ गा रही थी 'मान जाओ गुरु, मत जाओ न गुरु। यदि नहीं मानते हो, तो जाओ गुरु। पर जहाँ भी रहियो, सुख साता से रहियो गुरु।' क्या सुन्दर भावना थी ?

सीख लिया, क्या ? अरे सुनो। अपना कहीं जाता नहीं और जो जाता है, वो अपना होता नहीं। आप तो पुण्यात्मा जीव हो। अपने ही शरीर में उठ जाये कोई फोड़ा, बिना घी-दूध, बिना भोजन कराये रक्त बनता नहीं, पर जो उसमें फोड़ा हुआ, रक्त है कि नहीं? पीप-मवाद है, उसी का दूषित रूप है। जब शरीर में फोड़ा हो जाता है, तो पैसा देकरके, अपने शरीर के फोड़े को निकलवा देता है साथ में दु:ख भी सहन करता है।

इतना भोजन किया, उससे रक्तादि बना और उस द्रव्य को स्वयं निकलवाने जा रहा है। भैया! अच्छा काम किया क्या? बस, आज एक सूत्र याद रखना। वे जीव भाग्यवान् नहीं जो पैसा देकर फोड़ों का रक्त निकलवायें अपने शरीर का। अहोभाग्य उन जीवों का है, जिनके कर्म उदय में आकर के निकलने लग जायें। कहना, बिना पैसा दिये मेरे फोड़े का रक्त निकल रहा है। जब भी जीवन में उपसर्ग आये, परीषह आये, दु:ख के दिन आयें, तो क्या सोचना ? ये मेरा अशुभ रक्त था, उसको निकलवाना ही पड़ता है और वह निकल जाता है तो शान्ति मिलती है। ऐसे ही ज्ञानियो! संकट, परीषह के दिन निकल जायें तो यही कहना कि अशुभ का रक्त निकल गया। कोई आपकी निन्दा भी करे तब भी मुस्करा के रहना। मेरी निन्दा कोई करे तो उसका मतलब है, जब मेरा नाम लेगा, तभी तो मेरी निन्दा करेगा। मैं कितना

महान् हूँ? कम-से-कम, बड़े-बड़े लोग मेरा नाम तो ले रहे हैं। ऐसा चिन्तन करेगा, तो मुस्करायेगा, नहीं-तो रोयेगा। 'जो है, सो है।'

निन्दा में कूलना नहीं, प्रशंसा में फूलना नहीं, यही तत्त्वज्ञानी की पहचान है। इसलिये ''पवयणसारब्भासं'' यानि प्रवचन का जो सार है, उसका अभ्यास करो। ''परमप्पज्झाण-कारणं जाण'' परमात्मा के ध्यान का कारण है। आत्म तत्त्व को कहने वाले, वीतराग अर्हन्त के द्वारा निर्देशित जिनेन्द्र प्रवचन का अभ्यास करो।

''कम्मक्खवण णिमित्तं'' तत्त्वज्ञान से ध्यान की सिद्धि होती है और ध्यान से कर्म की निर्जरा होती है। ''कम्मक्खवणे हि मोक्खसुहं'' और कर्म का क्षय होता है, तो मोक्षसुख की प्राप्ति होती है। बस, ज्ञानियो! वे अहोभाग्यशाली जीव हैं जिन्होंने इस पंचमकाल में आकरके भी अर्हन्त के उपदेश सुनने के भाव बनाये। वे महान् पुण्यशाली जीव हैं, जिन्होंने उपदेश सुनकरके चारित्र धारण करने के परिणाम बनाये।

वे जीव धन्य हैं, जिनके घर में ऐसे सपूत जन्मे, जो मोक्षमार्ग की ओर चलते हैं। वे हाथ धन्य हैं, जो मोक्षमार्गियों की अनुमोदना में ताली के रूप में बजते हैं।

ज्ञानियो! अपने जीवन में उस परमसत्य को समझना है और परमसत्य को समझ करके, समय को 'समयसार' में लगाना, समय को कुसमय में नष्ट मत करना। 'समयसार' यानि आगम ग्रन्थ। जो आगम ग्रन्थ हैं, वे सभी समयसार हैं।

जगत् में जितने समय हैं, उन सबमें 'सार' जिनेन्द्र की वाणी है। ऐसे समयसार में अपना समय लगाना।

'आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

॥ भगवान् महावीर स्वामी की जय ॥

❖ ❖ ❖

''धर्म्यध्यान से कर्मों का क्षय''

धम्मज्झाणब्भासं, करेदि तिविहेण भावसुद्धेण।
परमप्पझाणचेट्ठो, तेवेण खवेदि कम्माणि॥ 162॥

अन्वयार्थ—(तिविहेण) मन-वचन-काय से **(भावसुद्धेण)** भाव की विशुद्धिपूर्वक **(धम्मज्झाणाब्भासं)** धर्मध्यान का अभ्यास **(करेदि)** करता है-वह **(परमप्पझाणचेट्ठो)** परमात्मा के ध्यान में स्थित होजाता है **(तेवेण)** उसी से **(कम्माणि)** कर्मों को **(खवेदि)** नष्ट करता है।

अर्थ—(जो) मन, वचन, काय से भाव की विशुद्धिपूर्वक धर्मध्याान का अभ्यास करता है, वह परमात्मा के ध्यान में स्थित हो जाता है।

॥ देशना॥

अन्तिम तीर्थेश वर्द्धमानस्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं।

तीर्थंकर जिनेश की पीयूष देशना, जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है।

यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवन्त हो। जयवन्त हो वीतराग श्रमणसंस्कृति।

आचार्यप्रवर भगवन् कुन्दकुन्द स्वामी ग्रन्थराज "रयणसार" जी में श्रमण और श्राावक इन उभय धर्मों की व्याख्या करते हुये समझा रहे हैं। अहो ज्ञानी! स्वानुभूति की अनुभूति की अनुभूति लेना है, तो विषयानुभूति से निज की दृष्टि को दूर कर लो। एक मौसम में दो धारायें नहीं होती। एक काल में दो मौसम नहीं होते। ग्रीष्म की तपन और शीत की शीतलता युगपत्, एक काल में नहीं होती। ऐसे-ही एक ओर विषयानुभूति का आनन्द और दूसरी ओर स्वानुभूति का आनन्द एकसाथ नहीं होता।

परमानन्द का जो रसिक है, परम दशा की अनुभूति का जो वेदक है, ज्ञानी! उस जीव को विषयों की ज्वाला ऐसी झुलसाती है, जैसे मछली के लिये अग्नि झुलसा रही हो। वे जीव धन्य हैं। भैया! कैमरा लगा है दिख रहा है। अगर ये दिख जाये लोगों को, तो वे सब व्यवस्थित बैठ जाते हैं? कैमरा दिखते ही, ये रो भी रहे हों, तो मुस्कराने लगते हैं। क्यों? कहीं कैमरे में मेरा रोते-रोते चेहरा दिखगया, फोटो खिंच गया, तो "कोऊ का कै है"?

कैमरे में अपने चित्र को खिंचता हुआ निहारकरके व्यवस्थित हो जाते हो, लेकिन आपको मालूम होना चाहिये कि 24 घण्टे आपको व्यवस्थित होना चाहिये, क्योंकि भगवान् सीमन्धर स्वामी के कैवल्य के केमरे में आप सबके चित्र दिखाई दे रहे हैं। जड़ केमरे में चित्र आने पर व्यवस्थित हो रहे हो। अहो! ज्ञानी! भगवान् के कैवल्य में मात्र तेरी प्रशस्त-प्रशस्त पर्याय

ही झलके, असमान-जाति पर्याय भी प्रशस्त हो। बाह्य परिणामों की पर्याय प्रशस्त हो। ज्ञानी! असमान-जाति पर्याय को तूने प्रशस्त कर लिया, तो समान-जाति पर्याय के प्रकट होने में देर नहीं लगना है।

विभाव-व्यंजन पर्याय के काल में, यदि स्वभाव-गुण व्यंजन पर्याय पर दृष्टि डाल दी, तो विभाव-गुण-व्यंजनपर्याय का अभाव हो जायेगा और स्वभाव-गुण-व्यंजन पर्याय प्रकट हो जायेगी और स्वभाव गुण व्यंजन पर्याय प्रकट हो जायेगी, तो इसी का नाम सिद्ध पर्याय है। स्वभाव प्राप्ति का उपाय जिन मार्ग है, मात्र। जिनशासन में कोई दूसरा स्थान ही नहीं है, जो स्वभाव प्राप्ति का मार्ग है, वह निर्ग्रन्थ मार्ग है।

जिस प्रदेश में पद्मनी स्त्री हो, राजहंस पक्षी हो और दिगम्बर तपोधन नजर आ रहे हों, वहाँ तो विजय नियम से होती है। जहाँ देखने जाया जाता है, वहाँ टिकट लेकर प्रदर्शन देखा जाता है, रोमांश देखा जाता है, मेला देखने जाया जाता है। विभिन्न नगरों से जितने ज्ञानी मुमुक्षु पधारे हैं, वे देखने एक भी नहीं आये हैं, क्योंकि तीर्थंकर भगवन्त के प्रवज्या कल्याणक को (निष्क्रमण कल्याणक को) देव देखने नहीं आते हैं, देव दीक्षा कल्याणक महोत्सव मनाने आते हैं।

जो श्रद्धाविहीन ज्ञान जानकारी मात्र के लिये आता है, वो देखने के लिये आता है। जो उत्साह के लिये आता है, वो सम्यक् प्राप्ति और चारित्र प्राप्ति की दृष्टि से आता है। जो सम्यक् चारित्र से युक्त हैं, वे क्यों आयेंगे? वे तो निर्वाण प्राप्ति की अनुमोदना के लिये आते हैं। क्योंकि दिगम्बर जैन आम्नाय में जैनेश्वरी दीक्षा को निर्वाण दीक्षा कहा है।

सारे जगत् में अनेक रूप हो सकते हैं, अनेक भेष हो सकते हैं, ज्ञानियो! ध्यान रखना, नाटक में अनेक पात्र बनते हैं, पर नाटकों के पात्र बनते-बनते बदलते रहते हैं। एक ही जीव पता नहीं कितने रूप बदल लेता है? पर ज्ञानियो! जब सारे जगत् के नाना रूप बदल जाते हैं, तब नहीं बदलने वाला एक ही रूप होता है। उसका नाम जिन रूप होता है, उसका नाम निर्ग्रन्थ रूप है। रूपों की प्राप्ति के लिये तो नाना रूप हैं, लेकिन स्वरूप की प्राप्ति के लिये मात्र एक दिगम्बर रूप है। जगत् के जितने रूप हैं, जितने भेष हैं, वे सारे-के-सारे भेष स्वरूप प्राप्ति के लिये अकिंचित्कर हैं। जगत् में जितने भेष हैं, जितनी मुद्रायें हैं, वे निर्वाण प्राप्ति के लिये अकिंचित्कर हैं।

ज्ञानियो! निर्वाण प्राप्ति में कोई कार्यकारी है, उसका नाम जिन रूप है।

"नग्नं पश्यत वादिनो जगदिदं जैनेन्द्र मुद्रांकितम्"

नग्नता ही भगवान् जिनेन्द्र की मुद्रा है, वही निर्वाण प्राप्ति का रूप है। यदि निर्वाण मिलेगा तो दिगम्बर मुद्रा से ही मिलेगा। तथोत्पत्ति। यदि दिगम्बर मुद्रा नहीं है, तो निर्वाण की अन्यथोत्पत्ति ये सिद्धांत है। क्यों? कैसे भाव हो रहे हैं? विश्वास करो, यदि ऐसे भाव अंतिम समय में हो गये, तो भव नष्ट होना अपने हाथ में है।

भव का नाश भगवान् के हाथ में नहीं होता। ये जैनदर्शन है, किसी को कर्त्ता नहीं स्वीकारता। स्वयं का कर्त्ता स्वयं है। जो जीव स्वयं के भव का नाश भगवान् के हाथ में छोड़ता है, वह पहला मिथ्यादृष्टि है। आपके जिनदर्शन में भगवान् की आराधना क्यों है? ज्ञानी! ये परिणामों की विशुद्धि का साधन है। इसलिये प्रभु की आराधना है। भव का नाश भगवान् नहीं करेंगे भव का नाश मेरे निज के परिणामों से ही है। 'स्वतंत्रतः कर्त्ताः।'

हे ज्ञानी! घर जाकर के आज अपने हृदय से बोल देना—ज्ञानी! कर कुछ नहीं पायेगा, राग-द्वेष करके राख ही हो जायेगा, पर जगत् का कुछ कर नहीं पायेगा। जगत् के भावों से दूसरों का भव बदलता होता, भव बिगड़ता होता, तो आज तो पता नहीं आप क्या कर डालते ? बुन्देलखण्डी में कहूँ। हे मुमुक्षुओ! 'कौओं के चिल्लाने से ढोर नहीं मरते।' कौओं के रोने से पशुओं के प्राण नहीं निकलते हैं। ऐसे ही रागी-द्वेषी जीवों के द्वारा ईष्या वश किसी से कुछ कहने से, उसका घात नहीं होता है।

अहो मुमुक्षुओ! जगत् के लोगों को देखो, जानो, जाने दो। स्वतंत्रतः कर्त्ताः वस्तु का परिणमन स्वतंत्र है। जो तत्त्व में आनन्द है, वो जगत् में कहीं आनन्द होता नहीं है। चेहरा हँस जाये, ताली पिट जाये ये विषयानुभूति तो हो सकती है। लेकिन आत्मानुभूति जो होती है, उसमें ताली नहीं पिटती, चेहरा नहीं हँसता, आत्मा अह्लादित होती है, उसका नाम तत्त्व का आनन्द है।

ज्ञानी! इस बात को भगवान् कुन्दकुन्द स्वामी कह रहे हैं कि "पवयणसारब्भासं" प्रवचनसार का अभ्यास करो। 'प्रवचनसार' से तात्पर्य प्रवचनसार" नामक ग्रन्थ को स्वीकार नहीं करना। जो-जो जिनेन्द्र के वचन हैं, वे सभी प्रवचनसार हैं। "प्रकृष्ट वचनं इति प्रवचनं" जो उत्कृष्ट वचन हैं, वे सारे-के-सारे प्रवचन हैं।

ज्ञानियो! सभी लोगों से कहना है कि आपके घर की देहाती/ग्रामीण भाषा का प्रयोग इस गणधर गद्दी पर नहीं होना चाहिये। ये गणधर की गद्दी है, ये गँवारों की गद्दी की गद्दी नहीं है। गणधर की गद्दी पर मात्र अर्हन्त के सूत्र निकलना चाहिये है। कोई ऐसी भाषा का प्रयोग न हो, जिससे अखण्डता का खण्ड हो। हमारी समाज जो है, समरस घोलने वाली है।

भैया! कितना ही आटा हो, नमक की डली जरा-सी होती है, पर तुम्हारी पूरी रोटी को स्वादिष्ट कर देती है। ऐसे-ही जिनशासन है, जो सारे देश को मधुरता देने वाला है। भैया! "मूलाचार" जी ग्रन्थ में नमक के लिये मधुर रस में ही रखा गया है, क्योंकि भोजन में मधुरता देने वाला नमक है। सारे ब्रह्मांड में अध्यात्म की मधुरता देने वाला कोई है, तो ये दिगम्बर जैनाम्नाय का आगम सार है। यही समयसार है।

ज्ञानी! जीवन में भूल नहीं कर लेना कभी भी। टूटते हुये को जोड़ने के लिये तो जिन शासन है, जोड़े हृदय को तोड़ने के लिये जिनशासन नहीं है। जब-जब इतिहास पढ़ता हूँ, तब लगता है कि हमारे वीतरागी आचार्यों ने कितना पुरुषार्थ किया? सबकुछ झेलते हुये भी जिनशासन को नीचे नहीं होने दिया।

जयवन्त हों "भद्रवाहुस्वामी"। धर्म की रक्षा के लिये देश छोड़ कर चले गये थे, प्रांत छोड़कर चले गये थे। उत्तर भारत से दक्षिण भारत की ओर चले गये। ये बड़ी गहरी बात समझना। स्थान का राग नहीं करना कभी भी, यदि स्वच्छ रहना चाहते हो तो।

ज्ञानी! कंस के अत्याचारों से बचाने के लिये, नन्दगोप के यहाँ कृष्ण नारायण को सुरक्षित रखा गया। यशोदा के आँगन में, नन्दगोप के यहाँ रहे नारायण श्रीकृष्ण, तब भी बलभद्र बलराम आँख में आँसू नहीं डाल रहे थे, क्योंकि ज्ञात था कि मेरे आँगन में नहीं है, पर बेटा आँगन में हैं। ज्ञानी आँगन के राग में आँगन में रखते, तो बेटा आँगन में होता नहीं। इसलिए क्षेत्र का राग नहीं करना।

ज्ञानी! उत्तर भारत में जब लोगों ने जिनवाणी का नाश करना प्रारम्भ किया तो हमारी संस्कृति जिणवाणी दक्षिण भारत में चली गई और मूलबद्री जो है, वो हमारे जिनवाणी लिये नन्द गोप का घर है। माँ देवकी का बेटा यशोदा के घर में पल रहा था। ज्ञानी! उत्तर भारत जो है, हमारी मूल माता है, जहाँ से जिनवाणी निकली हुई है और दक्षिण भारत ने रक्षा की है। यदि ये कहते कि नन्द के घर नहीं भेजूँगा, तो रक्षा नहीं हो सकती थी। बात गहरी समझो। माँ अपने आँसू गिराने लगती और कहती है कि मैं अपने बेटे को नहीं छोड़ सकती हूँ, तो क्या नारायण श्रीकृष्ण को देवकी बचा पाती? व्यवहार पक्ष से बोल रहा हूँ।

हे ज्ञानी! क्षेत्र का राग छोड़ देना, बच्चे की रक्षा करना। ये मेरे सपूत हैं, जिनवाणी के लाल हैं। जो-जो "नमोऽस्तु" शब्द का उच्चारण करता है, वह हर बालक माँ जिनवाणी का सपूत है। इन बच्चों की रक्षा हो जायेगी, तो भावी काल में सनातन धर्म की रक्षा होगी। इन बच्चों की, समाज की रक्षा नहीं हुई, तो जिनशासन की रक्षा कैसे होगी? क्योंकि-'न धर्मो धार्मिकै र्बिना।' धर्मात्मा हैं, तो धर्म है। धर्मात्मा नहीं होंगे तो धर्म कहाँ होगा? इसलिये भैया! सुनो, घास बनकर जी लेना, झुक जाना, तूफान आयेगा, तो निकल जायेगा, लेकिन अपन वहीं

खड़े मिलेंगे। तूफान आयेगा निकल जायेगा, विश्वास मानना तूफान के दिन लम्बे नहीं होते हैं, परन्तु सहज मौसम का कालदीर्घ होता है। इसलिये तूफान के काल में, जब आंधी आती है, तब खिड़कियाँ बन्द करके अपने कमरे में बैठना चाहिये। तूफान बन्द करने नहीं जाना।

ज्ञानी! तूफान तेरे हाथ से बन्द नहीं होगा, अपितु उल्टा और हो सकता है कि तूफान में कोई टीन उड़के आ गया और तेरे शरीर पर गिर गया तो तेरा विघात हो जायेगा। इसलिये तूफान को बन्द करने नहीं जाना है। कमरे की खिड़की बन्द करके अपनी आँखों की रक्षा करना, देह की रक्षा करना है। जैसे खिड़की बन्द करके आँखों की धूल से रक्षा करते हो, ऐसे-ही बाहर के तूफानों से भीतर की खिड़की बन्द करके निजात्मा की रक्षा करना। यही धर्म है।

प्रवचनसार का यही सार है। भैया! सभी प्रांतों की समाज बैठी है, सभी से कहना है कि भैया! बच्चों की रक्षा करना।

जब तक अग्नि-अम्बर रहेगा, तब-तक ये दिगम्बर रहेगा।

'महासाहु, महासाहु, महा साहु दिगम्बराः'

हे ज्ञानी! विधि का कथन करेगा तो निषेध अपने आप हो जायेगा। मैं और कुछ नहीं कहना चाहता हूँ। कौन है, कौन नहीं है, ये मैं नहीं जानता। मैं ये जानता हूँ कि मैं तो महासाधु दिगम्बर का उपासक हूँ और मैं कुछ नहीं जानता। "जो है, सो है"।

जो दिगम्बर नहीं है, मैं उनका उपासक नहीं हूँ। ये मुझे कहने की आवश्यकता नहीं है। जब विधि का कथन कर ही दिया है, तो निषेध स्वयमेव हो ही गया है। निरोग रहना चाहता है, तो दिन में रोटी खाया करो, जल्दी ऊपर नहीं जाना है, तो टेंशन से रहित रहो।

ज्ञानी! जिनको ऊपर जल्दी नहीं जाना हो, तो मुमुक्षुओ! 'संक्लेश भाव से मुक्त रहो।' इतने सारे लोग बाहर से आये हैं, मैं इसलिये सुना रहा हूँ उनको। भैया! तू घर जायेगा, तो तेरे नाती-पोते तेरा थैला टटोलते हैं। यदि विश्वास न हो तो घर जाकर देख लेना। भैया! बाजार में कितनी ही अच्छी चीजें मिलती हों, लेकिन बच्चों का दादा के थैले में ही मन है।

वह कैसा अभागा दादा है जो सूखा-सूखा आ गया। भैया समझ गये दादा? यदि घर के बाहर से दादाजी आये, पिताजी आये, तो बेटा थैले को देखता है कि कुछ तो लेकर आये होंगे। भैया! तुम इधर आने के लिये कितने दिनों से तैयारी कर रहे थे? जब यहाँ से तुम जाओगे, तो वे पूछेंगे कि लेके क्या आये हो? उनको क्या दोगे तुम?

ज्ञानी! खाली न जाओ, कुछ लेके जाओ। "संक्लेशमुक्तमनसः" जितना पानी पिआ है उतने जोर से बोलो। किसको कह रहे हो भाई? यदि जीवन में आनन्द लेना चाहते हो, सुखमय

जीवन जीना चाहते हो तो, ज्ञानियो! "जो है, सो है।" सारा-का-सारा तनाव समय पर छोड़ दो और अपने मन को संक्लेशता से मुक्त कर दो। यही मोक्षमार्ग है।

भो ज्ञानी! निर्ग्रन्थमुनि बन गया और संक्लेशता से मुक्त नहीं हुआ। कपड़ों से मुक्त हो गया, परिवार से मुक्त हो गया, समाज से मुक्त हो गया और संक्लेशता से मुक्त नहीं हुआ, तो तेरा मोक्षमार्ग अभी शुरू हुआ ही नहीं है। मोक्षमार्गी तो वही है, जो संक्लेशता से शून्य है।

मुमुक्षु! एक घण्टे यहाँ आकर टेंशन-फ्री हो जाता है तू। चौबीस घण्टे यहाँ रहो तो कितना आनन्द आयेगा? कुछ भी कहो, भैया! योगी के पास आने में यही आनन्द है। हमें पता है कि आप घर में कैसे रहते हो। भैया! चूहा फिर भी फुदक लेता है, लेकिन ये बेचारे अपने बेटे की माँ के सामने ऐसे रहते हैं जैसे पथरा रख दिया हो अस्सी मन का।

ज्ञानी! हँस लो, हँस लो। इधर ही हँसने मिलता है, घर में नहीं मिलता हँसने को। अब घर जाओगे क्या? आनन्द छोड़कर कहीं जाना पड़ता है क्या? अब कहीं नहीं जाना अब तो वहीं रहना है, जहाँ आनन्द है भैया! आपको पता हो या न हो, पता करना, चातुर्मास में लोगों की दवाइयाँ जरूर कम हुई होंगी। विश्वास मानो भैया! पूरे देश में जिनवाणी ऐसे ही गूँजे, तो देश के रोगियों की संख्या अत्यन्त क्षीण हो जाये।

ज्ञानी! जहाँ वचनों में संक्लेशता आयी और लोगों के मन तनाव में हुये, तो बिना रोग का रोगी हो जाता है। माताओ! अपने घर में निरोगता लाना चाहती हो क्या? सही में? तो मधुर बोलना सीख लो। "माधुर्य गुणप्रीति" मधुरता लाइये।

ज्ञानी! ये जिनवाणी की महिमा है कि जो आँसू गिराते आता है वह मुस्करा कर जाता है। 'माधुर्य गुणप्रीति।' मधुरता लाइये व्यवहार में, वाणी में।

धम्मज्झाणब्भासं, करेइ तिविहेण भावसुद्धेण।
परमप्पझाण-चेट्ठो, तेणेव खवेदिकम्माणि॥ 162॥

आचार्यभगवन् कुन्दकुन्द देव कह रहे हैं कि जो मन-वचन काय की विशुद्धि पूर्वक धर्मध्यान का अभ्यास करता है, वह परमात्मा के ध्यान में स्थित हो जाता है और परमात्मा के ध्यान से ही जीव कर्मों का क्षय करता है।

ज्ञानी! जैनदर्शन की यदि कोई श्रेष्ठ साधना है, तो वह ध्यान है।

"आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्", आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

॥भगवान् महावीर स्वामीकी जय॥

❖ ❖ ❖

''काललब्धि का महत्व''

अदिसोहण जोएणं,सुद्धं हेमं हवेदि जह तह य।
कालाईलद्धीए, अप्पा परमप्पओ हवदि॥163॥

अन्वायार्थ—(जह) जिस प्रकार **(अदिसोहण जोएणं)** अतिशोधन क्रिया से **(हेमं)** स्वर्ण **(सुद्धं)** शुद्ध (हवेदि) हो जाता है **(तह य)** उसी प्रकार **(कालाईलद्धीए)** काललब्धि आदि के द्वारा **(अप्पा)** आत्मा **(परमप्पओ)** परमात्मा **(हवदि)** हो जाता है।

अर्थ—जिस प्रकार अतिशोधन क्रिया से स्वर्ण शुद्ध हो जाता है, उसी प्रकार काललब्धि आदि के द्वारा आत्मा परमात्मा हो जाता है।

सम्यक्त्व यथेच्छ सुख देता है—

कामदुहिं कप्पतरुं चिंतारयणं रसायणं परसं।
लद्धो भुञ्जदि सोक्खं, जहच्छिदं जाण तह सम्मं॥164॥

अन्वयार्थ—जिस प्रकार **(कामदुहिं)** कामधेनु **(कप्पतरुं)** कल्पवृक्ष **(चिंतारयणं)** चिंतामणि रत्न **(रसायणं)** रसायन **(परसं)** पारसमणि **(लद्धो)** प्राप्त करनेवाला मनुष्य **(जहच्छिदं)** यथेच्छित **(सोक्खं)** सुख **(भुञ्जदि)** भोगता है **(तह)** उसीप्रकार **(सम्मं)** सम्यक्त्व को **(जाण)** जानो।

अर्थ—जैसे कामधेनु कल्पवृक्ष चिन्तामणि रत्न, रसायन और पारसमणि को प्राप्त करने वाला मनुष्य यथेच्छ सुख भोगता है, उसी प्रकार सम्यक्त्व को जानो।

॥ देशना॥

अन्तिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं।

तीर्थंकर जिनेश की पीयूष देशना, जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है।

यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवन्त हो, जयवन्त हो वीतराग श्रमण संस्कृति।

आचार्यभगवन् कुन्दकुन्द स्वामी ग्रन्थराज "रयणसार" जी में मोक्षमार्ग का प्रथम सोपान जो सम्यक्त्व है, सम्प्रति में सम्यक्त्व गुण की व्याख्या कर रहे हैं। जीवन में महत्वशाली कोई वस्तु है, उसका नाम आस्था है।

ज्ञानियो! लोक में कोई तुम्हारे घर में दान या कोटि-कोटि द्रव्य माँगे, वो दे-देना, क्योंकि वो तो परवस्तु है, लेकिन आस्था का द्रव्य सभी को नहीं दिया जा सकता। श्रद्धा का नीर ज्ञानी! सभी को नहीं प्रदान किया जा सकता है। मानवता के नाते, सामाजिकता के नाते, लोक व्यवहार के नाते एक-दूसरे के सम्मान/आदर के भाव तो हो सकते हैं, लेकिन वस्तु के प्रति श्रद्धा के भाव नहीं किये जा सकते हैं।

सम्मान भिन्न विषय है और आस्था भिन्न विषय है। यदि आपने आस्था सभी जगह सौंप दी, तो ज्ञानियो! विश्वास रखना, कुछ भी आपके पास अवशेष नहीं बचेगा। दुर्बलों की सुरक्षा, देह की सुरक्षा ये महत्वपूर्ण नहीं हैं जितनी श्रद्धा की रक्षा महत्वपूर्ण है। यह सड़ा श्रीफल नहीं है। कोई पानी का लोटा नहीं है जो पत्थर पर ढार दो। यह उतमांग है, मस्तिष्क है। ये परमेष्ठी के पादमूल में झुकता है, अन्यत्र इसको टेकने को कोई स्थान नहीं है।

ज्ञानी! सम्यक्त्व जो परिणति है, समकित जो भाव है, जिसके समकित की रक्षा नहीं, वहाँ सम्यक्त्वाचरण नहीं। सम्यक्त्वाचरण नहीं उसके पहले संयमाचरण कहाँ? और संयमाचरण नहीं, तो स्वरूपाचरण कहाँ? जब समकित भाव होगा, सम्यक्त्वाचरण होगा संयमाचरण होगा, इसके उपरान्त स्वरूपाचरण होगा।

वृद्ध पढ़ें अपनी समाधि के लिये, युवा पढ़े अपनी सामायिक के लिये। सामायिक के लिये कह रहा हूँ। समभाव जो है, वह भैया हाथ में हाथ मिलाने से नहीं आता। अपने शरीर का खून निकालकर दूसरे के शरीर में दे देना, इससे भी समकित भाव नहीं आता है। साम्यभाव नहीं आता है।

ये तो रागदृष्टि है, हिंसादृष्टि है। हे वर्द्धमान! आप होते तो यूँ कहते कि मेरी जन्म-जयन्ति के अवसर पर मेरे नाम पर ये खून मत किसी को दो। मैं खून/पीप का पक्षधर नहीं हूँ। मैं अहिंसा धर्म को कहने वाला हूँ। मेरे मित्रो, युवाओ! महावीर जयन्ति जैसे पर्व पर ऐसे खोटे काम करने का विचार मत करना। महावीर को तुम खुश नहीं कर पाओगे और महावीर किसी से नाराज नहीं होते हैं, खुश नहीं होते हैं, क्योंकि वे तो वीतरागी होते हैं।

इन हमारे विद्वानों को चाहिये है, बुजुर्ग पंचायत को चाहिये है और समाज के लोगों को चाहिये है, कि इन युवाओं को ऐसा दिग्दर्शन दें। ये बेचारे धर्मात्मा हैं। आप विश्वास मानिये। इनके अन्दर ये भाव है कि मैं भी कुछ कर सकूँ महावीर जयन्ति के दिन। पर उनको कुछ नहीं दिखाई देता है तो ये वो कर लेते हैं, जो इन्हें धर्म के नाम पर नहीं करना था।

भो ज्ञानी! आप किसी व्यक्ति के रक्त को देखना और सूक्ष्मदर्शी यंत्र से देखना। उसमें आपको चलते जीव दिखेंगे। पर्याय की रक्षा के परिणाम कर लेना सरल है। पर परिणति कीरक्षा कर पाना बहुत कठिन है। लोगों ने अभी धर्म समझा नहीं है। लोगों को लगता है कि विशुद्धसागर जी जो कह रहे हैं, वह उल्टा-सा महसूस कर रहे हैं। जबकि वह उल्टा नहीं है। जिस दिन उल्टे लटकोगे नरकों में, उस दिन आपको मेरे वचन सीधे लगेंगे। इस धर्म की महिमा तो देखो। एक छिपकली जा रही है दीवार पर। कोटि-कोटि जीवों का घात कर रही है। भैया! उन जीवों की रक्षा के लिये क्या करना चाहिये?

अज्ञानी कहेगा- उस छिपकली का घात कर दो? तो इतने जीव बच जायेंगे। हे अज्ञानी! ये महावीर की अहिंसा नहीं है कि तुम अनेक की रक्षा के लिये एक की हिंसा कर रहे हो। जो लाइट जल रही थी , उस लाइट को बन्द करो, जिससे जीव आना बन्द हों तो छिपकली भी चली जाये और जीव भी बच जायें।

टेलीवीजन पर अशोकनगर में प्रवचन चल रहा था। नगर चेनल पर। आप आश्चर्य करेंगे भैया! मुस्लिम कन्या की शादी थी। ब्राह्मण नायक जी थे, उनके घर कार्ड आया। नेताजी थे। वो कार्ड मेरे पास लेकर आये। उसमें लिखा था, दिन में ही शादी होगी और भोजन की व्यवस्था भी दिन में ही रहेगी।

इन्होंने जाकर वहाँ प्रश्न किया कि आपने ऐसा क्यों किया? बोले-नायक जी! ये मत पूछो। गहरा रहस्य है। नहीं-नहीं, आपको बताना पड़ेगा। आपके यहाँ तो सब चलता है, पर आपने ऐसा क्यों किया? दिन में शादी कर रहे हो। भैया! सत्यता ये है कि यहाँ जो महाराज जी के प्रवचन चल रहे हैं, मेरी बेटी ने टेलीवीजन पर सुन लिये और उसने मेरे से कहा-पिताजी मैंने महाराज के उपदेश सुने हैं। रात्रि में कोटि-कोटि जीवों की हिंसा होती है, इसलिये मैं शादी रात्रि में नहीं कराऊँगी।

जैनसमाज का एक श्रावक वैष्णवसमाज में बैठने गया। ये भी अशोकनगर की घटना है। एक बूढ़ी दादी माँ कह रही थी कि बेटा! बल्ब बन्द कर दो। क्या कल तुमने महाराज के प्रवचन नहीं सुने? तो जैनसाहब चौंक गये, बोले-क्या मतलब हुआ? माँ बोली, महाराज जी ने कहा था कि छिपकली जीव खा रही है। छिपकली को मारोगे तो पंच-इन्द्रिय का घात होगा और वह नाना जीवों को खा रही है, इसलिये आप बिजली बन्द कर दो, ये व्यर्थ की हिंसा मत करो।

ज्ञानी! ये मत सोचना कि उपदेश यहाँ का यहीं लोगों को समझ में आ रहा है। पता नहीं ये शब्द किस जीव के कान में कैसे फलित हो रहे हैं? महाराष्ट्र में एक गाँव में वाचना चल रही थी। कुछ युवा महाराष्ट्रियन पान के डिब्बे पर खड़े हुये थे। हम लोग वहाँ से निकले मंदिर के लिये, भगवान् के दर्शन के लिये, वंदना के लिये। तो युवा क्या बोलते हैं? अरे! भगवान्-आत्मा आ गये हैं। इनको देखो। भो ज्ञानी! ये सब क्या था? वो शाम को सुनते थे, उनको एक शब्द तो रट गया 'भगवान्-आत्मा।'

ज्ञानी! ये आश्चर्य नहीं है। हमारे देश में ऐसे-ऐसे विद्वान् हुये हैं, जिनके सहयोग से डालियों पर बैठे तोते वे भी सूत्र रटा करते थे। ऐसा न्याय का माहौल था हमारे देश की भूमि पर। तो हे ज्ञानी! हमारे ये छोटे-छोटे बच्चे "आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं" न रट पायें, तो कैसे तोते? ज्ञानी! वस्तुस्वभाव समझो।

हे ज्ञानी! में नहीं चाहता हूँ लोकरुढ़ि का धर्म। यह अनेकांत-स्याद्वाद वैज्ञानिक धर्म है। ज्ञानी! लोकरुढ़ि का धर्म तार्किक दर्शन में प्रवेश नहीं होना चाहिये है। लोक क्या कर रहा है? लोक की दृष्टि भिन्न है और आत्मा की दृष्टि भिन्न है। अज्ञानी रात्रि में रोटी खाने की बात कर सकता है, पर ज्ञानी जैनी तो ये कहेगा कि पर्याय की रक्षा तो तभी होगी जब आयुकर्म शेष है। यदि आयुकर्म शेष नहीं है, तूने रोटी खिलाकर उसे दुर्गति में भेज दिया। सच्चा ज्ञानी होता तो ये कहता कि भाई तेरे प्राण तो निकलने वाले हैं, इसलिये बहुत अच्छा होगा कि भगवान् का नाम ले लो।

ज्ञानी! जीवन जीने के लिये बहुत कुछ नहीं खाना पड़ता है, पर जीवन में जीने के साथ स्वाद के लिये और नरक में जाने के लिये बहुत कुछ खाना पड़ता है। यथार्थ मानिये, जीवन जीने के लिये बहुत कुछ खाना पड़ता होता, तो ये साधु लोग तो कभी के ऊपर चले गये होते, जबकि यूँ होता है कि जो कम खाते हैं वो ज्यादा जी लेते हैं।

दिगम्बर जैन परम्परा में, सम्पूर्ण श्रमणपरम्परा में आचारांग का कोई प्रधान ग्रन्थ है, उसका नाम "मूलाचार" है। इस ग्रन्थ में लिखा है कि समकित भाव हो और सम्यक्वाचरण न हो, यह होता नहीं है। ज्ञानी! जहाँ समकित भाव होगा, वहाँ नियम से सम्यक्त्वाचरण होगा। वह सप्त व्यसन का त्यागी होगा, अभक्ष्यों का त्यागी होगा, अनुकम्पा आदि गुणों से युक्त होगा और विवेक से युक्त होगा। सम्यक्-दृष्टि जीव में दया न हो यह कैसे सम्भव है? घड़ियाल देखा आपने पानी में उसके दाँतों में छोटी-छोटी मछलियाँ और छोटे-छोटे जीव-जन्तु अनेक फँसे रहते हैं। भैया! जिस दिन तू अचार खा रहा होगा, आम का, एक साल का मटके में रखा हुआ था। बड़ा स्वादिष्ट लग रहा था। हे मुमुक्षु! उस समय सूक्ष्मदर्शी यंत्र से दिखबा लेना, उसमें कोट-कोटि जीव फँसे मिलेंगे।

ज्ञानी! पहला नरक का द्वार अचार, दूसरा नरक का द्वार वेश्यावृत्ति, तीसरा नरक का द्वार जुआ खेलना, चौथा नरक का द्वार मदिरा पान करना, ये सब नरक के द्वार हैं। भैया! तूने मदिरापान का तो त्याग कर दिया, लेकिन ठण्डी-ठण्डी बोतल वो मदिरा ही है।

माताओ! ध्यान दो, जिस द्रव्य का स्वाद परिवर्तित हो चुका, वो शराब ही है। चलित रस! समकित भाव है, तो करुणा भाव होगा कि नहीं?

ज्ञानी! ये वो परम्परा है, जिस परम्परा में चौबीस घण्टे का उबला पानी पिया जाता है चौबीस घण्टे के बाहर चला गया, तो पानी भी अभक्ष्य हो जाता है। उस परम्परा में ज्ञानी! आजकल तो लोग पैसेवाले हो गये हैं। घर का पानी भी नहीं सुहाता है इनको, बाटल खरीदता है तुरन्त।

भैया! वे दिन कहाँ गये जब 'कनक-कलेबा-छन्ना, ये जैनी के चिन्हा'। आटा, छन्ना और कलेवा (नाश्ता) लेकर चला करते थे। मैं इसलिये व्याख्यान कर रहा हूँ, क्योंकि सम्यक्त्व का वर्णन चल रहा है। ये हमारे ज्ञानी लोग 'सम्यग्दर्शन प्राप्त करो, सम्यग्दर्शन प्राप्त करो,? हल्ला तो कर रहे हैं, परन्तु सम्यग्दर्शन प्राप्त करो कैसे? कुछ दिखाई तो देना चाहिये? समकित भाव हो, पर लक्षण न हो, ऐसा होता नहीं। गर्भाधान हुआ है, तो माँ के उदर की वृद्धि होगी। ज्ञानी! सम्यग्दर्शन हुआ है, तो चारित्र का पेट तो बड़ा दिखाई देगा। सम्यग्दर्शन हो गया, लेकिन चारित्र का पेट ही नहीं दिख रहा है, तो ज्ञानी! सम्यग्दर्शन है कहाँ?

उन बाटलों में क्या पानी छान कर भरा गया है? जो ठण्डी बाटलें हुई हैं, फिल्टर हो रहा है जीवों का उसमें। सत्यता तो ये है कि अहिंसा के पालन की बात करते हो, तुम्हारी प्राचीन जो परम्परा है। एक कड़े वाली बाल्टी होती है, उस बाल्टी से कुये से पानी खींचा जाता है, फिर बिलछानी करके नीचे भेजी जाती है। अब बोरिंग मशीन चला रहे हो, हेण्डपम्प चला रहे हो, अब उन जीवों की आते-आते हालत तो वहीं खराब हो चुकी है, अब क्या छान्ना? मुर्दे आये हैं, उनको पी जाओ साथ में। बुरा तो नहीं लग रहा? देख लो, बुरा भी नहीं लग रहा बेचारों को। बुरा न लगे, बूरा लगे।

समकित भाव जागे और सम्यक्त्वाचरण न पले, तो समकित भाव जगा कहाँ? ऐसे-ऐसे बुजुर्ग त्यागी हमारे देश में हुये, इस राजस्थान की भूमि पर, भैया! अपने दादा, परदादा पर दृष्टि डालो। वो एक लोटा पानी लेकरके स्नान भी हो रहा उसी से और उसी पानी से कपड़े भी धुल रहे हैं।

वो गरीब नहीं थे, वो अहिंसा धर्म से अमीर थे और हिंसा से गरीब थे। आप कहोगे कि एक लोटा पानी से कपड़ा कैसे धो लेते थे? ज्ञानी! उसी कपड़े के ऊपर बैठ गये और ऊपर से पानी डाल लिया, वो गीला हो गया, सो उसी को निचोड़ कर डाल दिया। इस प्रकार जीवों की रक्षा की है।

विश्व की सम्पूर्ण सरकारें महावीर के सिद्धांतों को समझलें, तो गली-गली में, वोर्ड-वोर्ड पर, दीवाल-दीवाल पर न लिखना पड़े "बूंद-बूंद की रक्षा करो"। जैनदर्शन ने तो कोटि-कोटि वर्ष पूर्व कह दिया है कि पानी का प्रयोग घी और तेल के समान करो।

ज्ञानी! जितना पानी अधिक बहाओगे तो उतनी ही हिंसा होगी। अहिंसा परमब्रह्म है अन्य कोई ब्रह्म नहीं है। भैया! मैं जो भी व्याख्यान करता हूँ, एक समय में जो भी व्याख्यान नय से होता है। आपको उपलक्षण पकड़ना चाहिये। जैसे-कि आगम में लिखा है कि आर्यिकाओं के लिये मुनियों को सात हाथ दूर से नमस्कार करना चाहिये है। उपाध्यायों को छह हाथ, आचार्यों से पाँच हाथ, इतनी दूरी से वन्दना करना चाहिये। अब कोई यूँ कहने लग जाये कि

ये तो आर्यिकाओं का वर्णन है। अरे ज्ञानी! आर्यिका तो उपलक्षण मात्र है। जगत् में नारीमात्र को ही इस नियम का पालन करना चाहिये। जैसे-कि तेरी माँ कह गई थी कि बेटे में कुये से पानी लेने जा रही हूँ और ये दही रखा हुआ है। कौआ आये, तो उससे रक्षा करना, पर इतना भोला था तू कि बिल्ली आयी पूरा दही खा गई और तू देखता रहा बैठा-बैठा। माँ आकर पूछती है, बेटे! दही का क्या हुआ? माँ आप ने यूँ कहा था कि दही की रक्षा काक से करना। आपने ये कहाँ कहा था कि बिल्ली से भी रक्षा करना? तुझे मालूम होना चाहिये था कि कौआ तो उपलक्षण मात्र था, जितने बिगाड़ने वाले थे सबसे रक्षा करना चाहिये थी। भैया! तू ऐसा मत कर देना, कि तेरे घर में घोड़ा है पिताजी ने कहा-जाओ सरोवर में इसको पानी दिखा लाओ और भैया तू गया, तालाब के सामने खड़ा किया और वापस लेकर आ गया। बेचारे घोड़े को पानी नहीं पिलाया। आपने कहा था कि पानी दिखाके लाओ, सो मैं दिखाकर लाया हूँ।

भगवान् महावीर स्वामी के भक्त और आदिनाथ जी के भक्त, (शिष्य) के लिए इनको आगम में पूरा प्रतिक्रमण करने का वर्णन है। अजितनाथ से लेकर पार्श्वनाथ तीर्थंकर तक की शिष्य परम्परा में मात्र उतना ही प्रतिक्रमण करते थे, जितना दोष लगता था। "तस्स मिच्छामि दुक्खडम्" से काम चलता था। लेकिन ज्ञानी! महावीर के शिष्यों को पूरा प्रतिक्रमण करना पड़ेगा। आदिनाथ के शिष्यों को पूरा प्रतिक्रमण करना पड़ेगा। बोले क्यों? अधिक सरलता में अधिक दोष लगते हैं और अधिक कुटिलता में अधिक दोष लगते हैं। आदिनाथ के शिष्य अत्यन्त सरल थे और महावीर के शिष्य अत्यन्त कुटिल हैं। ये कहने की जरूरत नहीं है। सामने तो दिख रहे हैं सब। ऐसे भी जीव हैं। बीड़ी का तो त्याग कर देता है और सिगरेट पीना शुरू कर देता है।

ज्ञानी! ऐसे भी लोग हैं, जिनने चाय पीने का तो त्याग कर दिया, लेकिन काफी पी रहे हैं। अब बताओ, मद किसमें ज्यादा है? ऐसे भी लोग मिल जायेंगे आपको और बड़े अच्छे से कह रहे हैं कि महाराज में चाय नहीं पीता हूँ।

समकित भाव है, तो सम्यक्त्वाचरण भी है। समझ में आ रहा है आप सबको, कठिन तो नहीं हो रहा? ध्रुव सत्य है। इसलिये हे ज्ञानियो! मैं चाहता हूँ कि यहाँ की महावीर जयन्ति में भले ही बैण्ड कम बज जायें, बैनर कम लगें। युवाओ! ध्यान दो, नगर में जितने भी युवा हैं, उन सबसे कह देना कि पानी के पाऊच न बाँट करके, उस स्थान पर पानी के छन्ने बांटना प्रारम्भ कर दो।

ज्ञानी! नाक पोंछने के लिये रूमाल रख सकता है, बालों को सम्हालने के लिये कंघी रख सकता है, उनका वजन नहीं पड़ता है और पानी छानने के लिये एक छन्ना रख लेगा,

तो कौन-सा पाप पड़ जायेगा? फिर आप देखोगे जैनत्व की प्रभावना, कि बेटे! तू जहाँ पानी छानते मिल जायेगा। अपने-आप लोग कहेंगे ये जैनी है। यही तो प्रभावना है।

ज्ञानी! जिनसे जिनशासन की प्रभावना हो, ऐसे काम करना। आप सभी को छन्ना बाँटना, पर सुनो, ये टिफिन के काम के लिये नहीं दे रहे हैं। छन्ना इन सबको समझ में आना चाहिये और सबसे पहले इन्हीं लोगों को देना। आप मेरे समाज के गणमान्य लोग हो, पंच लोग हो और पंच सुधर गये तो पूरी समाज का माहौल सुधर जायेगा।

जब से सूखा अध्यात्म आ गया, तो भैया लोग समझ रहे हैं कि मात्र आत्मा व पुद्गल की बात करलो अथवा करणानुयोग वाले कहते हैं कि कर्मप्रकृतियों की बात कर लूँ। जिसकी निज की प्रकृति ठीक नहीं है, तो कर्मप्रकृतियों की बात करने से तू क्या कर पायेगा? प्रकृतियों की चर्चा करने से प्रकृति का नाश होगा, कि अपनी प्रकृति को बदलने से प्रकृतियों का नाश होगा? ओहो! बड़ी गहरी-गहरी चर्चा हो जाती है और मालूम चला कि बेचारे गिद्ध-भोज में खड़े हुये हैं। पशुवृत्ति चल रही है।

अरे! खड़े होकर खाने का ही शौक है, तो मेरे-जैसे खड़े होकर दोनों हाथों से खाओ, मैं कब मना करता हूँ? लेकिन भैया! जब-तक दिगम्बर मुनि बनकर नहीं खा पा रहे हो, तब तक शान्ति से बैठकर भोजन किया करो। ये तिर्यंचों-जैसा भोजन मत करो। इधर से भागते हो, उधर से भागते हो। न जूठन का पता, न सकरे का पता चलता। कुछ नहीं मालूम चलता। अब स्नेहभोजन थोड़े-ही दिया जाता है। बोल दिया कि उस होटल में पहुँच जाना, वहाँ आपकी व्यवस्था है।

ज्ञानियो! वे दिन कहाँ चले गये कमर झुकाकर लोग परोसा करते थे और विनयपूर्वक हाथ-जोड़कर कहते थे कि भैया प्रारम्भ करो। अब तो ऐसा हो गया है कि आओ, खाओ, जाओ। अब ज्ञानी मैं क्या कहूँ? "जो है सो है"।

आप अपने बुजुर्गों की तो याद करो, इन जिनालयों को देखकर अनुभव करो, नगर के मंदिरों को तो देखो, फिर वेदन करो कि कितनी विशाल समाज रही होगी और कितने पवित्र परिणामों से युक्त समाज रही होगी? हे ज्ञानियो! मंदिर बढ़े हैं, बहुत अच्छी बात है। साथ में श्रावक भी बढ़ें और पुजारी भी बढ़ें तो और-भी अच्छी बात है। ज्ञानियो! ये सागर नहीं, महासागर है संस्कारों का, संयम का।

बाँझ स्त्री इन्द्रियसुख भोगकर चली जायेगी, मृत्यु को प्राप्त हो जायेगी, लेकिन संतान देकर जाती है क्या? किसी को देकर नहीं जाती है। हे मुमुक्षुओ! यदि आप अपनी सन्तान को धर्म की सन्तति सिखा कर नहीं गये, तो बन्ध्या के समान तुम्हारी मृत्यु हो जायेगी। तो मृत्यु कैसे होना चाहिये है? भोग-भूमियाँ जीव जैसी होना चाहिये। भोग-भूमिया जीव अपनी

मृत्यु के पहले युगलिया को छोड़कर जाता है। नियम से युगलिया को छोड़कर जाता है। इसलिये ज्ञानियो! अपने घर में और सन्तान में धर्म-संस्कार छोड़ कर जाना, नहीं तो ये विशाल जिनमंदिर कौन निहारेगा?

सब बदल जायेंगे, तो अरिहन्त की वेदी पर कौन बैठा दिखाई देगा? इसलिये आप सबसे मेरा कहना है कि माँ! बेटे के कण्ठ में जन्मघुट्टी पिलाती हो, तो उसके स्थान पर जिनवाणी की घुट्टी पिलाना चाहिये है। ये शहद मत खिलाओ। यदि बेटे को तकलीफ हुई बेटा रो रहा है, तो। आज की माताओं की लीला देखो चरणानुयोग चल रहा है, सम्यग्दर्शन का वर्णन है, इसलिये मैं आप से कह रहा हूँ।

यहाँ की कितनी मातायें हैं जो अपने बिलखते बेटे को कभी मदिरा का पान नहीं करायेंगी। हाथ तो ऊपर करें रोते बेटे को कभी नशीला पेय नहीं पिलाने का। शराब पिलाओगी क्या? पिलाते नहीं हैं, पर नियम ले लो। ठण्डियों में कोई वैद्य ने डाक्टर ने बोल दिया शहद चटा रहे हो। एक बूँद शहद में, जो सात गाँव जलाने में दोष होता है। हिंसा होती है। वही हिंसा एक बूँद शहद के चटाने में होती है। ऐसे द्रव्यों का प्रयोग नहीं करना। कौन सी बेटी तुम्हारी आर्यिका बनने वाली हो और कौन-सा बेटा तुम्हारा मुनिराज बनने वाला हो? उसके संस्कारों को आप पवित्र रखो।

विदेशयात्रा से लौटकर आयीं मेनका गाँधी ने आकरके "आचार्य विद्यानन्द" जी के चरणों में सिर टेक दिया, महाराज आज सारे विश्व में जैनदर्शन ने नाम को ऊँचा किया है। महाराज! हुआ ये कि मैं होटल में शाम छः बजे भोजन करने गयी। मैंने कहा कि देखो, समय हो रहा है, इसलिये आप जल्दी मुझे भोजन दो। हकीकत क्या थी? वो समय विमान का था। उन्होंने इसलिये बोला था किउनके पास समय नहीं था। तब वहाँ का जो मालिक था, वह बोला 'क्या आप जैन हो?'

मेनका गाँधी प्रशन्न हुईं कि अहो! आज यहाँ जैन नहीं दिख रहे हैं, फिर भी यहाँ जैन धर्म का नाम है। जैनधर्म कर्पूर है, चन्दन है, धूप है, इसका प्रयोग किसी कोने में जाकर करदेना, पर विश्वास रखो, वह पूरे महल को महका देता है। ऐसे-ही सुगन्ध जहाँ होती है, वह पूरे जहाँ को महका देती है। जैनदर्शन भारत में है, लेकिन सारे विश्व में उसकी सुगन्ध महक रही है। मेनका गाँधी आकर के आचार्य श्री विद्यानन्द जी से दिल्ली में बोलती हैं कि महाराज, आपकी अहिंसा आज विदेशों में महक रही है। महाराज श्री जी बोले क्यों? वह बोली में आज वहाँ गयी थी होटल में भोजन के लिये। तो वहाँ का मालिक कहता है कि क्या आप जैन हो? बोली, क्यों? क्योंकि जैनी लोग शाम को भोजन करते हैं, रात्रि में भोजन नहीं करते हैं।

ज्ञानी! कोई अजैन बन्धु आपको बुला रहा है और वह कह रहा है कि पाँच बजे व्यवस्था है भोजन की, लेकिन कोई जैन बन्धु रात्रि में पहुँचा भोजन को, तो उसने पूरे जैन-दर्शन को डुबा दिया। कम से कम जितने बुजुर्ग लोग हैं, वे इतना नियम तो करलें। भैया! व्यवहार के नाते तुम लोग रात्रि में किसी दूसरे के घर खाना खाने नहीं जाओगे। ज्ञानी! अपने घर में भी नहीं खाना रात्रि में।

मेरे भैया! आप चिन्तन करो, विचार करो और इतने दृढ़ हो जाओ। अपने ही तो लोग हैं। ऐसा काम करो जिससे हमारे कुल की आन-बान-शान की रक्षा हो। वस्तुस्वरूप समझो, ये भी विषय जानने का है। नहीं-तो लोग भूल ही गये हैं कि वस्तुस्वभाव क्या है? समकित भाव है, तो सम्यक्त्वाचरण है। सम्यक्त्वाचरण दिखता है, तो समकित भाव है। भैया क्या सोच रहे हो? भैया जब -जब यहाँ नई कालोनियाँ बनें, पहले जैनमंदिर बनबाने की बात करना।

आप विश्वास रखो,मंदिर रहेगा तो समाज की रक्षा रहेगी, जिस कालोनी में जाकर बस गये। आज के लोग तो चाहते ही हैं कि भगवान् ही मेरे घर में आ जायें और मैं हाथ जोड़ लूँ। तो फिर कौन जायेगा दर्शनों के लिये? मंदिर हजारों बनाना, पर सम्पूर्ण समाज की व्यवस्था एकरूप में देखना। चाहे कितने मंदिर हों, कितने अध्यक्ष हों, लेकिन जब सभी एकसाथ बैठते हैं तो कितना अच्छा लगता है? इस अखण्डता को खण्डित नहीं होने देना। क्योंकि पंचम काल है, नाना प्रकार के लोग आयेंगे। सबकी सुनना, परन्तु करना सोच-समझकर।

ज्ञानी! जब बिजली चली जाती है, तो घर में दीपक जलाते हो कि नहीं? जलाते हो। समझो, में कुछ कह रहा हूँ, रहस्य की बात। क्या अंधेरे में बैठे रहोगे? दीपक तो जलाते हो, पर रक्षा कैसे करते हो? शीशा रख देता हूँ। हे ज्ञानियो! एक तूफान में जलते हुये दीपक को सुरक्षित रखने के लिये तुम काँच रख देते हो। हे तूफान! तू कितना ही चले, पर मेरे पास काँच का कवच है, मैं अपने दीपक की रक्षा किये हूँ। ऐसे-ही हे ज्ञानियो! इस समाज में नाना प्रकार के कितने ही तूफान खड़े करने वाले लोग आ जायें, लेकिन तुम अपना काँच बनाकर रखना। अपनी श्रद्धा और समाज की अखण्डता को मिटने नहीं देना।

ज्ञानी! क्या करें? ऐसे-ऐसे वक्ता हो चुके हैं जो संतवाद, पंथवाद की दुर्गंध फैलाते हैं। ये कुछ नहीं सुनने का। हमें तो मात्र वीतरागी जिनमुद्रा देखना है, अर्हन्त भगवान् देखना है, इसके अलावा कुछ नहीं देखना है। तुम्हारी परिणति तुम जानो, मेरी समाज की अखण्डता एक है। वो नहीं मिटना चाहिये।

आज इस आँगन में आनन्द आ रहा है कि नहीं? आ रहा है। एक माँ चार बेटों को, एक कटोरे में, एक आँगन में बैठालकर खीर खिलाती है, पर वो ही माँ जब बूढ़ी हो जाये,

तो वो ही बेटे आँगन में चार दीवाल खड़ी करते हैं। उस समय माँ का हृदय टूटता है। बेटो आँगन में दीवाल नहीं है, माँ के हृदय पर दीवाल है।

मेरे बेटो! माँ जिनवाणी आपको चार आँचल से प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग की रसभरी खीर खिला रही है, दुग्ध दे रही है तत्वों का। हे मेरे बेटो! इसमें तुम टुकड़े मत करना। इस अखण्ड खीर के थाल को तुम एकसाथ बैठकर खाना। समाज के टुकड़े नहीं होना चाहिये, मेरा लक्ष्य ही इतना है। वस्तुस्वभाव की दृष्टि हो, इस समाज की अखण्डता बनी रहे।

ज्ञानी! जब हम निगोदिया में भगवान् देखना जानते हैं, सारे विश्व की एकता-अखण्डता की बात कर रहे हों, तो ज्ञानी! कम-से-कम मुट्ठीभर समाज की तो रक्षा करो। भैया! चलती बिरियाँ हैं। कब, कौन जीव, कहाँ चला जाये? इसलिये ऐसा कुछ करके जाना, इस पीढ़ी को समझाकर जाना कि जो तुम्हारे श्रेष्ठ दादा-परदादा ने तुमको सिखाया है। आज तुम मुस्करा रहे हो। बस, मैं इतना ही कहना चाहता हूँ कि आगे आने वाली पीढ़ी भी ऐसे ही मुस्कराती रहे। चिन्ता न करना भैया। भैया! तू गलती कर रहा है कि अकेला आकर बैठ जाता है। युवाओं को और लेकर आना चाहिये है। तुम मित्र किस बात के? पान चबाने वाले मित्र तो कोटि-कोटि मिलजायेंगे, पर जिनवाणी को समझाने वाले मित्र ज्ञानी कहीं-कहीं मिलेंगे।

चाहे समयसार चले, रयणसार या करणानुयोग चले, सबमें आप ऐसे हो जाते हैं, जैसे कुछ हो जाता है आपको। भैया! ये तो पुद्गल की वर्गणायें हैं। क्यों आप इसको देख रहे हो? भैया! एक श्रेष्ठ पिता बनकर जीना। चार बेटों को भी तुम एकसाथ देखना पसन्द करते हो।

हमारे समाज को हर बुजुर्ग अपने बेटे के तुल्य देखे और आप एक अच्छे पिता बनकर रहो, जिससे आपके मन में भाव रहे कि हमारी आगामी पीढ़ी भी नमोऽस्तु शासन को ऐसे ही जीवन्त, जयवन्त करे। ये भी ध्रुव सत्य है। ऐसे-ऐसे ग्रन्थ हमारे सामने आये और जब इन ग्रन्थों की हमने वाचना की, भैया! बड़े-बड़े विद्वान्, जिनकी 80-80 वर्ष की उम्र हो गई, वो बोले, 'विशुद्धसागर जी महाराज! नमोऽस्तु। ये ग्रन्थ का तो मैंने नाम ही नहीं सुना था।' अपने जीवन में, जितने मुमुक्षु भाई बैठे हों ध्यान दो।

"स्वरूप सम्बोधन" ग्रन्थ की वाचना आज ही अपने जिनालय में शुरू करा देना। कारण पूछो, क्यों? दिगम्बर जैन आम्नाय में ही नहीं, पूरी जैन परम्परा में यह एकमात्र ग्रन्थ है। जिसमें न्याय और अध्यात्म की युगपत् व्याख्या है। इन्दौर में इसकी गोष्ठी हुई, विद्वत् सम्मेलन हुआ।आचार्य श्री विद्यानन्द जी महाराज के समाचार मेरे पास आए।

हाँ, यह काम ठीक किया विशुद्धसागर ने, कि जैनन्याय की परम्परा को आज जीवन्त रखा। ज्ञानमती माता जी के समाचार पहुँचे मेरे पास कि 25 श्लोक में इतना मोटा ग्रन्थ हो

कैसे गया? मैंने कहा, माता जी! यह फिर भी कम है। एक-एक श्लोक में इतना भरा हुआ है। भैया इसको पढ़ने का "स्वरूप सम्बोधन परिशीलन"। भैया! आपको तो सम्पूर्ण वकीलों को भेंट करना चाहिये है। जैन न्याय, विक्रमादित्य विश्वविद्यालय उज्जैन के डीन ने, जो अजैन है, इस पर आलेख भेजा है। वह प्रिन्ट हुआ है। तब लगता है कि जैन परम्परा को, जैन विद्या को आज विश्व के हाथों में पहुँचाना चाहिये है। आप तो शान्ति से यहाँ बैठे हो। आप विश्वास रखो दिल्ली, जयपुर में विदेशी आकर जैनदर्शन पढ़ते हैं।

जापान का एक प्रोफेसर है, वह 15-15 दिन तक मेरे साथ रहकर जाता है। वो एक खोज कर रहा है, जैनदर्शन पर डाक्ट्रेड कर रहा है। उसने हर विद्या पर बहुत अच्छा लिखा है। अच्छा ये हुआ, कि वो ठीक स्थान पर आ गया। पण्डित धर्मचन्द जी शास्त्री उसको लेकर आये थे। वो इतना प्रभावित हुआ जैनदर्शन से, कि वह जैनदर्शन पर लिख रहा है।

आपको लगता है कि मैं तो इतना ही हूँ, मेरा कुछ नहीं है। खजुराहो का नाम सुना आपने? खजुराहो में वंदना के लिये गया था। वहाँ पर श्रीलंका की एक पार्टी आयी। मैं बैठा था, वो सारे-के-सारे कैमरा लेकर आ गये। एक लम्बा-सा, मोटा, काला-कलूटा आदमी मेरे बगल में आकर बैठ गया। बोला स्वामी-स्वामी विकल्प मत करो। मैं बहुत दिन से जैनदर्शन पर कार्य कर रहा हूँ। मुझे प्रतिमाओं और ग्रन्थ की तो बहुत सामग्री मिल गयी है, लेकिन मुझे जैन साधु नहीं मिलरहे थे। ये फोटो मैं अपनी पुस्तक में लगाने के लिये खींच रहा हूँ।

आप कल्पना करो कैसे-कैसे लोग हैं? अब जब यूँ कहें कि जैनयोगी की तस्वीर चाहिये। तो फिर जैन योगी एक्टर बनकर न बैठें जैनयोगी-जैनयोगी ही बनकर बैठें। दिगम्बर चित्र जायेगा, तो ओहो! आज जब जिनालयों में राम-सीता के आहार देते हुए चित्र देखते हैं। आदिनाथ के आहार के चित्र देखते हैं, तो रोमांचित हो जाते हैं। यथार्थ बताऊँ, सत्य बताऊँ, हर श्रावक के घर में, रसोई घर में एक दिगम्बर मुनि का चित्र होना चाहिये। बैठक कक्ष में नहीं, शयनागार में नहीं, रसोईघर में होना चाहिये है। प्रश्न करो, क्यों? मुनि को भोजन दे, फिर निज करै अहारे। अरे अभागो! तुम भूल गये हो, जो दिगम्बर मुनि को आहार देने के पहले भोजन कर लेता है, वह तो निशाचर होता है। ऐसा "सोमदेव सूरि" जी महाराज ने लिखा है। परिणाम तुम्हारे क्यों अच्छे नहीं हैं भैया? उधर टेलीविजन खोल लिया, इधर देखो ये युवा, धोती-दुपट्टा पहने खड़े हैं तो आज भी लग रहा है कि जैन नमोऽस्तु शासन को जयवंत कर रहे हैं। भो स्वामी! पधारो। उन माता-पिता से पूछना, जिसके बेटे मुनि की प्रतीक्षा कर रहे हों और उन माता-पिता से पूछना जिनके बेटे वेश्यालयों में जाकरके इन्तजारी कर रहे हों, धिक्कार हो उन माता-पिता को और धन्य हो इनके माता-पिता को। तो मालूम रसोई घर में क्यों चित्र होना चाहिये है? तुम्हारे परिणाम इसलिये अशुद्ध हो रहे हैं कि उधर

बैठक कक्ष में भोजन, पैरों में जूते, कोई खड़े, कोई पैर लटकाये और सामने टेलीविजन, काटो-मारो के चित्र आ रहे हैं। हे अभागे! तू भोजन कर रहा है। जैसी तरंगें जायेंगी वैसे ही तो परिणाम रहेंगे चौबीस घण्टे।

हे ज्ञानी! कम से कम इतने ही प्रतिज्ञाबद्ध हो जाओ अपने मन में, मैं नहीं नियम दिला रहा हूँ, अपने ही मन में सोच लेना, कि भोजन करते-करते टेलीविजन नहीं देखेंगे। क्या मालूम कब कैसे चित्र सामने आयें? भो ज्ञानी! जब दिगम्बर मुनि का चित्र तुझे दिखाई देगा, तब ये भाव तुम्हारे मन में आयेगा कि यह वो परम्परा है कि वीतरागी मुनियों को आहार देकर भोजन करूँ। नगर में साधु नहीं भी हों, तब भी भाव आयेगा कि भारत की भूमि पर ही नहीं, ढाईद्वीप में जितने निर्ग्रन्थ तपोधन विचरण कर रहे होंगे, सबके निरन्तराय आहार हों, ऐसा भाव बनाकर फिर भोजन करना।

यथार्थ मानो, तत्त्व के नाम पर लोगों ने शुष्कता फैलादी है। आज समरसता लग रही है कि नहीं लग रही? आनन्द आ रहा है कि नहीं आ रहा? खींचा-तानी, खींचा-तानी करके पूरी समाज के टुकड़े कर दिये। कोई ये वाले, कोई वो वाले। कुछ नहीं। एक बात में जानता हूँ, बताऊँ आपको? आपको स्वीकार हो जायेगी। बहुत अच्छी बात।

एक पिता के दो पुत्र और दोनों पुत्रों की जो सन्तान है वह अपने पिता को पिता बोलेगी कि चाचा को पिता बोलेगी? वह अपने पिता को ही पिता बोलेगी। पिता-चाचा तक के चक्कर में झगड़े भी हो जाते हैं। अब इनको एकसाथ बिठालना चाहो तो बैठ नहीं सकते। बोले-क्यों? मेरे पिता स्वतंत्र हैं और आपके पिता स्वतंत्र हैं। जब इनके दोनों पोते झगड़ने लग जायें। एक-एक बेटे के दो लड़के। बताओ अब आप निर्णय कैसे करोगे? एकता से कैसे बैठाओगे?

हे ज्ञानियो! पिता के नाम पर तुम भिन्न-भिन्न हो, पर दादा के नाम पर तो एक ही हो। इस समाज से कह दो कि तुम गुरुओं, साधुओं में मत बँटो। साधु अपने-अपने संघ की अपेक्षा अलग-अलग दिखाई दें, लेकिन महावीर स्वामी तो सबके एक हैं। आज देश में क्या हो रहा है? अपनी-अपनी परम्परा के गीत गा रहे हैं। गाओ-गाओ पर सबके महावीर स्वामी एक हैं। दिगम्बर के भी महावीर, श्वेताम्बर के महावीर, स्थानक के महावीर, समैया के महावीर सबके महावीर, तो एक हैं। तो भैया! महावीर के नाम पर ही तुम एक रहो, यही सत्यता है।

ज्ञानी! सभी के दादा एक नहीं हैं क्या? तो तुम सब एक हो कि नहीं? इसलिये भैया अखण्डता के लिये नीति का ज्ञान तो करना पड़ेगा। जुड़े को बिखेर देना, यह तो चिड़िया करना जानती है। लेकिन हे ज्ञानी! बिखरों को जोड़ लेना, यह योगी का काम है। जोड़ने

की आवश्यकता है। खण्ड नहीं चाहिये है, अखण्ड चाहिये है। भेद से अभेद की ओर तो जाना, पर अभेद से भेद की ओर नहीं जाना। यही जैनदर्शन की मूल साधना है।

व्यवहार संयम, भेद संयम। निश्चय संयम, अभेद संयम।

व्यवहार रत्नत्रय, भेद रत्नत्रय। निश्चय रत्नत्रय, अभेद रत्नत्रय।

भो ज्ञानी! हमारे यहाँ भेद से अभेद की ओर जायाजाता है। अभेद से भेद की ओर नहीं जाया जाता है। भैया! न सौंफ ठण्डाई है, न इलायची ठण्डाई है, न बादाम ठण्डाई है, न मिश्री ठण्डाई है, न पानी ठण्डाई है, पर इनके बिना ठण्डाई होती नहीं है। एक-एक चबायेगा, तो स्वाद नहीं मिलेगा और ज्ञानी सबको मिलाकर, घोंटकर, पीस देगा तो क्या हो गया? ठण्डाई। फिर कितनी भी गर्मी पड़े, जो उसका पान करेगा, वो ठण्डा हो जायेगा। इसलिये ज्ञानियो! जितने भेद हैं, उन सबको मिला देगा यही अनेकांत दृष्टि है। यही ठण्डाई है। यही पानक है।

'सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः।' जोड़ने का काम करो, तोड़ने का काम मत करो यथार्थ मानना, तोड़ने की बात वही बोलता है, जिसका हृदय टूटा हुआ होता है। जो स्वयं साम्यभाव में होगा, वह सबको साम्यभाव में रखेगा।

यह वीतरागी शासन, जिनशासन ऐसा है जहाँ गाय-शेर एक घाट पर पानी पीते हैं। लेकिन तुम जैनियों को भी दूर बिठालना चाहते हो। ज्ञानी! ऐसा काम मत करो।

ज्ञानियो! झांसी के पास में टोड़ी फतेहपुर एक तीर्थ है। अभिनव तीर्थ है। दिगम्बर जैन समाज के आठ घर हैं, परन्तु वहाँ जो पंचकल्याणक हुआ, गजरथ महोत्सव हुआ। लाखों लोग आते थे। उपदेश होता था तो यह नहीं लगता था कि आठ घर की जैन समाज है। आस-पास के जो किसान थे, देहाती लोग थे, वो ट्रेक्टर भर-भर के लाते थे। मात्र प्रवचन सुनने के लिये आते थे। हुआ क्या? वहाँ पर एक बहुत बड़े उनके साधु-महात्मा पधारे। जब वो आये गजरथ के बाद। जिनके पास भीड़ लगती थी, वहाँ उनके भक्त नहीं पहुँचे। तो उनको थोड़ा आश्चर्य लगा कि हर वर्ष मैं आता था तो भीड़ लगती थी भक्तों की। अब लोग आये क्यों नहीं?

एक भक्त बोलता है, अपने महात्मा जी से, 'स्वामी जी! क्षमा करना, मुझे मालूम था आप क्या-क्या कहने वाले हो? पर मैंने एक महीने उस तत्त्व को पी लिया है।अब कुछ समझ में नहीं आती, दूसरों की बात।

ओहो! एक व्यक्ति अपने महात्मा जी से कहता है कि महाराज हमने एक महीना जिनवाणी का पान किया है। दिगम्बर मुनिमहाराजश्री से। अब हमें जगत् की कोई बात समझ में नहीं आती है। अब आप मुझे कुछ नया सुनाओ, आत्मा की बात करो, तो सुनने को तैयार हूँ।

तब लगता है कि अजैन बन्धु! ऐसा कर सकता है तो भैया आप से यही कहना है कि एक आँगन में, भगवान् के चरणों में सुना है तत्त्व को। आप मुझे समाज की अखण्डता के साथ तत्त्व को पिलाओ! मुझे समाज के टुकड़े नहीं चाहिये, मुझे अखण्ड समाज चाहिये। ये है आनन्द। समकित सम्यक्-दृष्टि जीव हो और प्राणीमात्र के प्रति एकीभाव न हो, एकत्वविभक्त परिणाम न हों, तो बताओ कैसा समकित भाव? बताओ किसमें भगवान् आत्मा नहीं है? इसलिये अपने दाँतों को साफ करने के लिये किसी वृक्ष की लकड़ी भी तोड़ने जाओ तो पहले रुक जाना, हड्डी को साफ करने के लिये भगवान् आत्मा को कष्ट देने मत जाओ।

ज्ञानी! वो भी भावी भगवान् है। जितनी हरी खाते हो, थाली में सजा-सजा करके, ये भी हमारे भविष्य के भगवान् हैं। भूत के मेरे कोई सगे संबंधी होंगे, जो मेरीथाली में सजकर आये हैं। इसलिये भोजन भी विवेक के साथ करो। धन्य हैं वो योगीश्वर, कम से कम साधारण-वनस्पति का तो सेवन नहीं करना, द्विदल का सेवन नहीं करना, आप अभक्ष्य का सेवन नहीं करना। पंचमकाल जब-तक है। तबतक सम्हल जाओ। छटवें काल में तो तुम्हें कोई विशुद्धसागर भी समझाने वाला नहीं मिलेगा, महावीर भी आने वाले नहीं हैं।

ओहो! नहीं मिलेंगे तुमको कोई साधु। एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को कच्चा खा जायेगा, ऐसा समय आयेगा। अग्नि समाप्त हो जायेगी। इसलिये जब-तक सब कुछ दिख रहा है तब-तक भो ज्ञानियो! अपनी आत्मा की रक्षा करलो और रत्न को सम्हालो।

मेरे भैया! अपन पुनः चर्चा कर लेंगे, यदि पर्याय रही तो। पर मुझे आनन्द इस बात पर आता है। आप क्या सोचोगे, सो आप जानो। जिनवाणी को सुनते-सुनते आपको लगता है कि मैं आपको सुना रहा हूँ। यथार्थ में मैं ही सुनता हूँ और आनन्दित होता हूँ। धन्य हो श्रेणिक। क्यों? हे श्रेणिक! जब विरागसागर, विद्यासागर जैसे आचार्य बोलें तो आनंद आता है। वह श्रेणिक कितना भाग्यवान था कि साक्षात् तीर्थंकर वर्द्धमान स्वामी की बात को सुनता था। जब एक योगी के प्रवचन सुनने में इतना आनन्द आता है, तब साक्षात् वीर की वाणी सुनता है, तू कितना भाग्यवान है?

आचार्य श्री विमलसागर जी कितने साम्य स्वभावी साधु थे? अहंकार की तो कोई बात ही नहीं थी। ये तो आज-कल होने लगा है। तेरा-मेरा पहले नहीं चलता था। उनके संग में मैंने कई साधुओं को चातुर्मास करते देखा है। अनेक विभिन्न संघों के साधु इनके साथ चातुर्मास कर लेते थे। यहाँ सागर में सन् दो हजार में मेरा चातुर्मास हुआ था तब पाँच संघों के साधु एकसाथ चातुर्मास कर रहे थे। पूरी समाज देख रही थी कि क्या होने वाला है? आज झगड़ा होगा कि कल झगड़ा होगा?

जब चातुर्मास हो गया, तब समाज कहती है महाराज! चमत्कार नहीं देखा हमने आज तक, परन्तु हमारे सागर का यही चमत्कार है कि पाँच संघ के साधुओं का एकसाथ चातुर्मास सफल हुआ है। भैया! पाँच लोटों में पानी लाना और इन लोगों को दिखा देना और एक बर्तन बड़ा लाना, पाँच लोटों के पानी को उस बर्तन में डालना। एक भी पानी बर्तन को फाड़कर बाहर नहीं निकलेगा, सब पानी पाँच लोटों के एकमेक हो जाते हैं।

जब जड़ पानी मिल सकता है, तब अहो ज्ञानी! जिनवाणी सुनने वाले, तुम्हारे परिणाम न मिलें तो तुम काहे के साधु हो। जड़ पानी मिलता है कि नहीं? मिलता है। जब जड़ पानी मिलता है तो चेतन परिणाम भी मिलना चाहिये है।

"मुनि मन सम उज्जवल नीर, प्रासुक गंध भरा"

जैसा उज्जवल मुनि का मन है, वैसा नीर तुम भगवान् के चरणों में लेकर आते हो। अब तुम कल्पना करो कि मुनि का मन कितना पवित्र होगा?

सत्य है, जहाँ जिनवाणी है, वहाँ मंगल ही मंगल है। सब वार समाप्त है। इतनी शांति तुम्हारे घर में है क्या? हे अभागे! इतनी शांति छोड़कर घर जायेगा क्या?

हे मुमुक्षुओ! संसार में कोई दरिद्री है, तो मिथ्यादृष्टि है। मिथ्यादृष्टि को तुम सम्पन्न करना चाहते हो, तो उसको अर्हन्त के चरणों की श्रद्धा दे दो, निर्ग्रन्थों के चरणों की श्रद्धा दे दो, माँ जिनवाणी दे दो, ज्ञानी! अपने समान करलो। वही सम्पदशाली है, जो सम्यक्दृष्टि है।

ज्ञानियो! आचार्य भगवन्! कुन्दकुन्द देव कह रहे हैं कि जिस प्रकार शोधन-क्रिया से स्वर्ण शुद्ध हो जाता है, वैसे ही काललब्धि के द्वारा आत्मा परमात्मपद को प्राप्त कर लेता है।

कामदुहिं कप्पतरुं चिंतारयणं रसायणं परमं।
लद्धो भुञ्जदि सोक्खं, जहच्छिदं जाण तह सम्मं॥164॥

आचार्यभगवान् कह रहे हैं कि जिस प्रकार कामधेनु, कल्पवृक्ष, चिंतामणि रत्न, रसायण और पारसमणि को प्राप्त करने वाला मनुष्य इच्छित सुख को भोगता है, उसी प्रकार सम्यक्त्व रत्न को जानना चाहिये।

ज्ञानी! सम्यक्त्व है, तो सम्यक्-ज्ञान है, चारित्र है। यदि सम्यक्त्व नहीं है, तो कुछ नहीं है। सम्यक्त्व तो शून्य पर अंक के समान है। अंक न हो तो शून्य की कोई कीमत नहीं है।

'आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

॥भगवान् महावीर स्वामी की जय॥

❖ ❖ ❖

"रयणसार ग्रन्थ का महात्म्य"

सम्म णाणं वेरग्ग- तवोभावं णिरीहवित्तिचारित्तं।
गुणसीलसहावं तह उप्पज्जदि रयणसारमिणं॥165॥

अन्वयार्थ—(इणं रयणसारं) यह रयणसार ग्रन्थ (सम्मं) सम्यग्दर्शन (णाणं) ज्ञान (वेरग्ग) वैराग्य (तवोभावं) तप भाव (णिरीह वित्ति) निरीह वृत्ति (चारित्तं) चारित्र (तह) तथा (गुणसील सहावं) गुण, शील और आत्मस्वभाव को (उप्पज्जदि) उत्पन्न करता है।

अर्थ—यह 'रयणसार' ग्रन्थ सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, वैराग्य, तपभाव, निरीह वृत्ति, चारित्र, गुण, शील और आत्म स्वभाव को उत्पन्न करता है।

"ग्रन्थ की प्रशस्ति"

गंथ मिणं जिणदिट्ठं, ण हु मण्णदि ण हु सुणेदि ण हु पढदि।
ण हु चिंतदि ण हु भावदि, सो चेव हवेदि कुद्दिट्ठी॥166॥

अन्वयार्थ—(जिणदिट्ठं)जिनेन्द्रदेव द्वारा कथित (इणंगंथ) इसग्रन्थ को जो (णहु मण्णदि) न तो मानता है (ण हु सुणेदि) न सुनता हे (ण हु पढदि) न पढ़ता है (ण हु चिंददि) न चिंतन करता है (ण हु भावदि) न भावना करता है (सो चेव) वह व्यक्ति (कुद्दिट्ठी) मिथ्यादृष्टि (हवेदि) है।

अर्थ—जिनेन्द्रदेव द्वारा कथित इस ग्रन्थ को जो न तो मानता है, न सुनता है, न पढ़ता है, न चिन्तन करता है और न भावना करता है, वह मिथ्यादृष्टि है।

''उपसंहार''

इदि सज्जणपुज्जं रयणसारगंथं णिरालसो णिच्चं।
जो पढदि सुणदि भावदि सो पावदि सासदं ठाणं॥167॥

अन्वयार्थ—(इदि) इस प्रकार (सज्जण पुज्जं) सज्जनों के द्वारा पूज्य (रयणसार गंथं) रयणसार ग्रन्थ को (जो) जो व्यक्ति (णिरालसो) आलस्य रहित होकर (णिच्चं) सदा ही(पढदि) पढ़ता है (सुणदि) सुनता है (भावदि) भावना करता है (सो) वह (सासदं ठाणं) शाश्वत स्थान यानि मोक्ष (पावदि) प्राप्त करता है।

॥ देशना॥

भव्य बंधुओ! अंतिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। मनीषियो! जिनेन्द्रवाणी जगत् कल्याणी है। 'नमोऽस्तु शासन' जयवंत हो, जयवंत हो वीतराग श्रमण संस्कृति।

आचार्यभगवान् कुन्दकुन्द स्वामी ग्रंथराज रयणसार जी में वस्तुतत्त्व की प्ररूपणा करते हुए ग्रंथराज के उपसंहार में उसकी महिमा एवं फल का व्याख्यान कर रहे हैं।

आचार्यभगवन् रयणसार जी ग्रंथ में सम्यक्त्व, ज्ञान, वैराग्य, तपभाव, निस्पृह-वृत्ति, गुण, शील-स्वभाव का अत्यंत विशद् व्याख्यान करते हुये समझा रहे हैं कि यह ग्रंथ इन गुणों को प्रकट कराने में समर्थवान है।

सच्चे देव-शास्त्र-गुरु पर आस्था एवं सम्यक्-तत्त्व पर आस्था तथा आत्म-श्रद्धान ही सम्यक्त्व है। जहाँ आत्मरुचि नहीं, आत्मप्रतीति नहीं, वहाँ सम्यक्त्व कहाँ? यथार्थ में जो जीव जिस गुण को प्राप्त होता है, वह उसकी तज्जन्य अनुभूति को भी प्राप्त करता है।

ज्ञानी! सम्यग्दृष्टि जीव प्रतिक्षण-प्रतिपल संवेग-भाव से युक्त होता हुआ, भेदाभेद रत्नत्रय की प्राप्ति का अहर्निश प्रयास करता है, किंचित् मात्र भी निज के स्मरण को विस्मृत नहीं होने देता। चारित्रमोहनीय के उदय के वश व्रत-नियम धारण न भी कर पाये, फिर भी संयम के प्रति जलविहीन मीन की तरह तड़पता है। जैसे पानी के अभाव में मछली तड़पती है, उसी प्रकार से सम्यग्दृष्टि जीव चारित्र के अभाव में तड़पता है। अविरत सम्यग्दृष्टि जीव निज गुणस्थान संबंधी आस्रव-बंध से अपनी रक्षा करता है, फिर भी अविरति , प्रमाद, योग, कषाय अनंतानुबंधी के अलावा शेष कषाय सम्बंधी आस्रव बंध को प्राप्त होता ही है।

उपचार से मोक्षमार्गी अवश्य है, परन्तु यथार्थ मोक्षमार्ग रत्नत्रय की प्राप्ति पर ही होगा, पूर्ण रत्नत्रयधारी तो महाव्रती ही होता है। यह भी ध्रुव सत्य है कि सम्यक्त्व मोक्ष-प्रासाद का प्रथम सोपान है। सम्यक्त्व के अभाव में ज्ञान में सम्यक्त्वपना नहीं, चारित्र में सम्यक्-चारित्रपना नहीं।

सम्यक्त्व आराधना के उपरांत ज्ञानाराधना आगम में कही गई है, बिना ज्ञान के चारित्र में प्रकर्षता, विशुद्धता, उज्जवलता असंभव है। वीतराग-सर्वज्ञ प्रणीत सिद्धान्त-आगम का ज्ञान ही सत्यार्थ बोध है, इसी के माध्यम से आत्मशोध सम्भव है। बिना समीचीन ज्ञान के न श्रद्धा में निर्मलता आती है, न चारित्र में। इसलिए ज्ञान को मध्य में रखा है, जिसके माध्यम से दर्शन और चारित्र दोनों प्रकाशमान रहें।

संसार-शरीर-भोग इनसे सहज/स्वतः विरक्ति/उदासीनता का होना, वैराग्य है। वैराग्य ही चारित्र की जननी है। बिना वैराग्य के चारित्र का अभाव समझो। वैराग्य-विहीन चरित्र विधवा का शृंगार है। वैराग्य की अनुभूति यथार्थ में वैरागीको ही होती है। अनासक्ति का आनन्द वैरागी के अन्दर ही होता है, रागी को कहाँ? वैरागी जीव के अन्दर स्वतः तपभाव का उदय होता है। वैराग्य के साथ किया गया तप ही कर्म-निर्जरा का साधन है, वैराग्य विहीन का तप शरीर को कष्ट देना मात्र है।

तप-साधना वैरागी के अन्दर एक अलौकिक अनुभूति प्रदान करती है। भूतार्थ तपस्वी की वृत्ति भिन्न होती है, उसमें नि:संगता निस्पृहवृत्ति की सुगन्ध दृष्टिगोचर होती है।

जो वैराग्यशून्य अनशनादि तप करते दिखते हैं, वे श्रम मात्र को प्राप्त होते हैं, भोजन मात्र त्याग दिया, परन्तु परिग्रह धन-धरती भवन-मठों भक्तों के प्रति आसक्ति दिखती है। निस्पृहवृत्ति से रहित तपस्या किंशुक पुष्पवत् है। जैसे टेशू के फूल सुन्दर दिखते हैं, परन्तु सुगन्ध नहीं देते, उसी प्रकार निरीह-वृत्ति साधक की साधना है।

निस्पृहता में अनेक गुण हैं। उसका चारित्र विशुद्धता से युक्त होता है। आडम्बर तो उसके पास स्पर्श ही नहीं कर पाते। अनेक गुणों का समूह स्वत: उस ज्ञानी साधक के पास आ जाता है। शील-वाढ़ उसकी चारों ओर से सुरक्षा करती है। पर-भावों से अत्यन्त भिन्न आत्मस्वभाव की उपलब्धि भी शीघ्र प्राप्त होती है।

नि:संगता ही साधुता है, साधु के प्रति आस्था को प्रकट कराने वाली महान् शक्ति है। ये सम्पूर्ण गुण 'रयणसार' ग्रन्थ के सतत् चिन्तवन-मनन-स्वाध्याय करने से प्रकट हो जाते हैं, इसलिए मुमुक्षु जीवों को आत्महित हेतु 'रयणसार' जी ग्रन्थ का भक्ति-आस्थापूर्वक, प्रमाद रहित होकर स्वाध्याय करना चाहिये।

ग्रंथकर्त्ता स्वयं कह रहे हैं, कि जो अज्ञ प्राणी जिनदेव कथित श्री 'रयणसार' जी ग्रन्थ को न सुनता है, न पढ़ता है, न मानता है, वह अल्प-धी पर-समयी है अर्थात् मिथ्यादृष्टि है।

सम्यक्-तत्त्व का भक्तिपूर्वक श्रद्धान-ज्ञान-आचरण निकट-भव्य,भद्र-परिणामी, भावी भगवान्-आत्मा ही कर सकता है। दीर्घ-संसारी जीव को सम्यक्-तत्त्व-बोध पर आस्था नहीं हो सकती।

जो भव्य-सज्जन इस ग्रन्थ को भक्तिपूर्वक पढ़ता है, सुनता है, चिन्तवन/मनन करता है, धारण करता है, वह नित्य-ध्रौव्य अनन्त सुख को प्राप्त होता है। यह अलौकिक ग्रन्थ साधुपुरुषों द्वारा आदरणीय/पूज्यनीय है।

दुर्जन-दुष्ट-धी जन सम्यक्-तत्त्व पर अश्रद्धा भाव ही प्रकट करते हैं। ज्ञानियो! रयणसार जी ग्रन्थ में सर्वज्ञ-शासन के विरुद्ध कोई भी कथन नहीं है। जैसा तीर्थंकरों, गणधरों एवं आचार्यों की परम्परा में चला आ रहा है, वही ग्रन्थकर्त्ता ने प्ररूपित किया है, इसलिए अहर्निश पठनीय है।

इस प्रकार भगवान् कुन्दकुन्द कृत 'रयणसार' जी ग्रंथ की व्याख्या ज्ञानतीर्थ मोरा जी भवन सागर, मानो संयमियों की गागर, में चौदह निर्ग्रथों के मध्य, भव्यों के कल्याण हेतू, पूर्णता को प्राप्त हुई।

ज्ञानियो! इसी तरह श्रद्धा-भक्तिपूर्वक श्रुत का श्रवण श्रमणों के श्रीमुख से करते रहना, निश्चित ही यह जिनेन्द्र के सूत्र श्रुतकेवली के रूप में प्रकट होंगे। जयवंत हो वीतरागवाणी। जयवंत हो श्रीजिन नमोऽस्तु शासन, वीतराग श्रमणसंस्कृति।

ज्ञानियो! ग्रन्थराज के वाचन में किंचित् भी भूल हुई हो, तो माँ भारती वाग्वादिनी से क्षमाप्रार्थी हूँ। साथ ही, जो भी अच्छा लगा हो आपको, वह सब कुन्दकुन्दादि पूर्वाचार्यों का एवं मम दीक्षा-शिक्षा दाता आचार्य गुरुवर विरागसागर जी का समझना। मैं अल्पधी आपको क्या दे सकता था?

इस "सागार-अनगार धर्मदेशना" में जो भूल-चूक हो, उसे सुधीजन तत्त्वज्ञानी ठीक कर लें। मैं अल्प श्रुतज्ञ हूँ। श्रुत-भक्ति से प्रेरित हो, भव्यों के हितार्थ, अशुभ से रक्षार्थ, यह तत्त्व गवेषणा की है।

भारत-भू पर जब-तक गंगा, यमुना, चंबलादि नदियाँ विन्ध्य, हिमाचलादि पर्वत,नभ में चन्द्र-सूर्य-तारे हैं तब-तक यह श्री नमोऽस्तु जिन शासन को जयवन्त करने वाली जिनेन्द्रवाणी जयवन्त हो। 'रयणसार जी' "सागार-अनगार धर्म-देशना" जयवन्त हो।

इति शुभम् भूयात्।

'आत्म स्वभावं परभाव भिन्नम्।' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

॥ भगवान् महावीर स्वामी की जय ॥

❖ ❖ ❖